3·1

प्राभाकारी हिन्दी टीका लिखकर बड़ा ही स्तुत्य तथा सफल प्रयास किया है। श्री मिश्रजी पाणिनीयव्याकरणके गम्भीर पाण्डित्यके साथ-साथ सुबोध शैलीमें विषय प्रतिपादनकी अपूर्व क्षमता रखते हैं। जो इस टीकामें सर्वथा परिलक्षित है। मैंने श्री मिश्रजी की लघु सि० कौमुदीकी प्राभाकरी टीकाके अनेक स्थलको गम्भीरता एवं रूचिसे सुनी है। आपकी भाषा भावाभिव्यक्ति समर्थ सरल तथा परिष्कृत है, टीकाकार विद्वान्‌ने विषयोंको निगमन शैलीमें समझानेका बड़ा ललित प्रयत्न किया है। हिन्दी भाषामें सरलतासे प्रत्येक सूत्रका अर्थ प्रस्तुतकर वृत्तिके अर्थको भी सरल शब्दोंमें समझाकर विषयोंको रोचक बनाया है कि सामान्य विद्यार्थी भी इस टीकाको स्वयं पढ़कर प्राभाकरी नौकापर आरूढ़ हो पाणिनि सागरको पारकर सकता है। प्रयोगोंके अर्थको हिन्दीमें समझाकर तत्समकक्ष दूसरे बहुतसे प्रयोगोंको लिखकर मिश्रजी ने छात्रोंको व्युत्पत्ति क्षमता बढ़ानेकी एक नवीनतम दिशा दी है। मैंने अपने अभिन्नमित्र श्री प्रभाकरजी मिश्रके इस शुभ कार्यके लिए सहस्रशः साधुवाद वितरित करता हूँ। इस टीकाके अनुदिन प्रचारार्थ और प्रसारार्थ अपनी कोटि-कोटि शुभ कामना अर्पित करता हूँ, एवं इनके इस प्रयासमें नित्य नूतन प्रेरणाके लिए श्री जानकीवल्लभ श्रीराघवेन्द्र भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजूके चारूचरणकमलोंमें अभ्यर्थना करता हूँ। श्रीरामश्शन्तनोतु।

गिरिधर मिश्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

राष्ट्रपुत्रः, देशभक्तः पितुः पुत्रः मातुः स्मरणम्। ङि ओस् सुप् अधिकरण कारकका आधार अर्थ है। कर्ता कर्मके माध्यम् से क्रियाके आधारको अधि०संज्ञा होती है। छात्रः छात्रावासे वसति। कर्ता छात्रके माध्यमसे निवास क्रियाका आधार, छात्रावास हैं, उसमें सप्तमी। विभक्ति दो प्रकार की है। कारक और उपपद क्रियाके सम्बन्धमें हुई विभक्ति कारक है। पदके सम्बन्ध मे आई विभक्ति उपपद है। इति प्रस्तुतिः।

लेखककी जीवनी

जौनपुर जिले के पत्रालय शाहपुर ग्रा० मुकुन्दीपुर निवासी सांकृत्यगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण वंशावतंश का १५ मई १९३६ में जन्म हुआ। काशीके सुप्रसिद्ध व्याकरण न्यायवेदान्तके प्रौढ़विद्वान् पं० श्री शुभकरणमिश्र के पौत्रः (शौभकरणिः) स्वजनपदसेवासमर्पितशरीरःवेदवेदान्तज्योतिष्कर्मकाण्डकर्मकुशलः पं० श्रीहरिप्रसादमिश्र के पुत्र श्रीप्रभाकरमिश्र है। जिनमे समाजसेवा की जन्मजात रुचि है। कुलपरम्परा ही शास्त्रसेवा, समाजसेवा सनातनधर्म संरक्षण प्रचार,प्रसारमें सदा संलग्न रहा। श्री मिश्रजी की प्रवृत्ति शास्त्रको समाज प्रिय बनाने की रही। क्योंकि परम्परा की शैली, भाषा, बड़ी कठिन, दुर्बोध प्रभावहीन अरुचिपूर्ण तथा ह्रास देखकर आपका हृदय क्षुब्ध हो उठा। चिन्तित विद्वान ने सुबोध अध्यापन सुगमशैली, सत्यता की श्रोताओं तक पहुँच, शास्त्रमें रुचि कैसे बढ़े। इस चिन्तनमें निरन्तर प्रगाढ़ गोता लगाते रहे। अपनी सूझ-बूझ से अच्छा अनुसन्धान कर यथार्थ का प्रकाशन किया है। करते रहेंगे। निरन्तर अध्ययन, अध्यापन अनुसन्धानमें तल्लीन विद्वान शुभ लक्षणलक्षित होते हैं। आप का अध्ययन काशीके कई विद्यालयों में (गोयन्दका, राजकीय संस्कृत कालेज आदि) प्रथम पूज्य महाशयजी (रामयशत्रिपाठी) के प्रिय शिष्य पंण्डित श्री रामकरण जी पाण्डेय से पढ़े। सन् १०५२ में काशी पधारे दाऊजी संस्कृत महाविद्यालयमें श्री पंण्डित ब्रह्मदत्त शुक्ल से मध्यमा तक स्वध्याय किये। पश्चात् अनेक विद्यालयों मे पढ़े परन्तु मनस्तुष्टि नहीं होती थी। क्योंकि शिक्षाका उद्देश्य सम्यग्ज्ञान, सुप्रयोग, स्वध्याय, प्रवचन आचरणमें 'उतारना समाजका सुधार धर्म, सत्य, चरित्रका प्रचार-प्रसार होना चाहिए। विद्याभारः क्रियां, विना। विद्या विनु विवेक उपजाये। शास्त्र के प्रतिलोक रुचिका घट जाना क्षोभ का कारण बना था। चिन्ता में बड़ा समय व्यर्थ बीता। संयोग से काशी विद्वन्मूर्धन्य विद्वानों शास्त्रार्थ महारथियों आधुनिक पाणिनिसम्भावनासे सुविभूषित पंण्डित प्रवरो गुरुवरेण्यों के चरन कमलका मधुकर बना सम्पूर्णशास्त्रका अध्ययन किया। काशीके सुप्रसिद्ध

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीगणेशाय नमः

लघुसिद्धान्तकौमुदी

प्राभाकरीयुता

भगवती भवती सुमहस्वती, बुधसरोरुहकाननभास्वती ।
विमलबोधविवेकविभास्वती, विजयते सरसीव सरस्वती ॥ १ ॥

नवतमालरुचिं रुचिरस्मितं, स्मर मनोहरबाणधनुर्धरम् ।
जनकजासहितं महितं सुरैस्तमिह राममहं हृदि भावये ॥ २ ॥

नत्वा मुनित्रयं शम्भुं, वितनोति प्रभाकरः ।
लघुसिद्धान्त - कौमुद्याष्टीकां प्राभाकरीं शुभाम् ॥ ३ ॥

प्राभाकरी टीका शब्दार्थ—लघु = अल्प, थोड़े, संक्षिप्त सिद्धान्त = सिद्धानाम् अन्तः । शब्द, अर्थ, सम्बन्ध ही सिद्ध हैं "सिद्धे शब्दार्थ-सम्बन्धे" इति भाष्य वचनं प्रमाणम् । उन (सिद्धों) का अन्त = सत्यज्ञान, संस्कारविशेष से निर्णय, धर्म-वर्धक परिणाम, प्रक्रिया (सधनिका) फल की कौमुदी = प्रकाशिका । जिस विधि से शब्द, अर्थ, सम्बन्ध का निश्चयात्मक ज्ञान हो, उसकी बोधिका । शब्द का अर्थ और दोनों के सम्बन्ध का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी है । कभी-कभी शब्द (नाम) का ज्ञान है, अर्थ (व्यक्ति या वस्तु) भी प्रत्यक्ष है फिर भी जिज्ञासा जागृत होती है कि "किमिदम्" यह क्या है ? जब दोनोंके सम्बन्धका ज्ञान हुआ कि "अस्य शब्दस्य अयमेव अर्थोऽस्ति" इस शब्दका यही अर्थ (वाच्य वाचक सम्बन्ध) है । तब शब्दब्रह्मका रसास्वादन होता है । यह ज्ञान व्याकरणशास्त्र व प्रमुख प्रयोजन (प्रधान विषय) है ।

प्राचीनास्तु—सिद्धोऽन्तो निर्णयो येषान्ते सिद्धान्ताः, तेषां कौमुदी । लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी च लघुसिद्धान्तकौमुदी । इस समास में लघु शब्द का कौमुदी (प्रकाश) में अन्वय पूर्ण उचित नहीं है । सूत्र का प्रकाश, व्यापक (दूरगामी) है कोई "कौमुदीव कौमुदी" कहकर ग्रन्थ में अन्वय करते है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नवीनास्तु—लघूनां=संक्षिप्तानाम्, अल्पसंख्याकानां किन्तु व्यापकानां सिद्धान्तानां—सिद्धः, निष्पन्नः, अनुशिष्टः, माङ्गलिकः (षिधू शास्त्रे माङ्गल्येच) बोधजनकः पुण्यप्रदः अन्तः = बादिप्रतिबादिभ्यां विवादेन आक्षेपरहितो निर्णयः साधुत्वसंस्कारो येषां = वर्णपदवाक्यशब्दार्थ-सम्बन्धानां ते सिद्धान्तास्तेषां कौमुदी = कौ = पृथिव्यां जनान् मोदयति, शीतलतां प्रापयति, क्लेशं दूरीकरोतीति कुमुच्चन्द्रः, तस्य इयं ज्योत्स्ना-प्रकाशिकाशक्तिः कौमुदी। तद्वत् इयं कौमुदी शब्दःशक्ति (अर्थ सम्बन्ध) प्रकाशेन जनान् मोदयति, ज्ञानानन्ददानेन सुखं वोधयति, वाक्यार्थं पदार्थं, वर्णार्थं (प्रकृत्यर्थंप्रत्ययार्थंप्रकाशेन जाड्यरुपं क्लेशं दूरी करोति।

कुछ सूत्रों के संक्षिप्त किन्तु व्यापक सारभरे अनुशासितनिर्णयों की प्रकाशिका लघुसिद्धान्त कौमुदी हैं। यह वर्ण, पद, वाक्य, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, व्युत्पत्ति, संस्कार, विग्रह, समास, सनाद्यन्तधातु, क्रिया-फल, कृदन्त, तद्धित, एक शेष, जाति, व्यक्ति, लिङ्ग, संख्या, कारक आदि शब्द की विशेषताओं पर पूर्ण अनुशासन कर शब्द के साथ अर्थ और सम्बन्धियों का स्पष्ट ज्ञान कराती है। शब्द पर अधिकार का प्रयोजन शब्दमूलक समस्त वेद, वेदान्त, पुराण इतिहास धर्मशास्त्र, साहित्य आदि सभी वाङ्मय के शब्दों का सत्य अर्थ समझ सकें, समष्टि, व्यष्टि की सेवा कर सकें।

अथ संज्ञाप्रकरणम्

सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में उपयोगी तथा व्यापकसंज्ञाओं का संग्रह ही संज्ञा-प्रकरण है। जैसे—चौदह सूत्रों के आधार पर अल्, हल्, अच्, अण् आदि संज्ञायें तथा इत्, सवर्ण, अनुनासिक, संहिता, संयोग, पद आदि संज्ञायें—सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में जो अधिक क्षेत्रमें व्याप्त हो, उसे अधिक देशवृत्ति व्यापकम् कहते हैं। अन्य संज्ञायें अल्प क्षेत्र में अधिकार द्वारा नियन्त्रित होने से व्याप्य है। (न्यून देश वृत्ति व्याप्यम्) जो थोड़े क्षेत्र में फैले वह व्याप्य है। अचों का धर्म—ह्रस्व-दीर्घप्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक और वर्णों के धर्म समान जाति समझानेवाली सवर्ण संज्ञा, स्थान प्रयत्न इत्यादि संज्ञाप्रकरण के प्रतिपाद्य विषय हैं सन्धि आदि प्रकरणों में उपयोगी हैं।

विघ्नविनाश तथा ससुखग्रन्थ समाप्ति के लिए नमस्कारात्मक मङ्गल प्रस्तुत करते हैं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय　　लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

(अक्षरसमाम्नायः, शिवसूत्राणि)

अ इ उण् १। ऋ लृक् २। ए ओङ् ३। ऐ औच् ४। ह य व रट् ५। लण् ६। ञ म ङ ण नम् ७। झ भञ् ८। घ ढ धष् ९। ज ब ग ड दश् १०। ख फ छ ठ थ च ट तव् ११। क पय् १२। श ष सर् १३। हल् १४।

अन्वय—अहं वरदराजाचार्यः शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्वा पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि ।

व्याख्या—अहं लेखको वरदराजाचार्यः शुद्धां=पवित्रां निर्मलां शब्दशुद्धिसंस्कारवतीं, सत्त्वस्वभावां, दोषरहितां गुण्यां=प्रशस्तैर्गुणैर्युक्ता गुण्या तां प्रशस्तगुणयुक्तां (केच ते 'प्रशस्ताः गुणाः' इति जिज्ञासायां प्रतिभा, सद्बुद्धिः, सद्भावः, जडतानिवारणं, वाक्यपटुता, वाण्यां मधुरता, ज्ञानवीरता, आत्मबलानि इत्यादि) गुणैः परिपूर्णा सरस्वतीं=सरो ज्ञानं तदस्ति अस्यामिति सरस्वती=ज्ञानस्वरूपा देवी=दीव्यति, जिह्वायां नृत्यति क्रीडति, मोदते, विजयं ददाति, व्यवहारकुशलीकरोति, स्वतेजसा वागर्थौ प्रकाशयति ज्ञानमोक्षदायिनो वाग्देवता तां, नत्वा=नमस्कारं कृत्वा पाणिनीयप्रवेशाय=पाणिनिना प्रोक्तम् उच्चारितं लिखितं वा व्याकरण-शास्त्रं पाणिनीयं, तस्मिन् प्रवेशाय=शब्दसम्बन्धिसर्वं ज्ञानं कर्तुं लघु-सिद्धान्तकौमुदीम्=(अत्यन्त-उपयोगिनिर्णयस्य प्रकाशिकां करोमि) रचयामि, गुणान् आदधामि ।

मैं वरदराजाचार्य शुद्ध स्वभाववाली तथा अच्छे प्रशंसनीय गुणों से युक्त सरसता, मधुरता की देवी सरस्वती को नमस्कार करके महर्षिपाणिनि के व्याकरणशास्त्र में प्रवेश पाने के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना (शब्द अर्थ शक्ति वर्धक गुणों की स्थापना) करता हूँ ।

अ इ उ ण् आदि चौदह सूत्र पाणिनि जी के सभी ३९९६ सूत्रों का मूल आधार हैं। प्रत्याहारद्वारा सूत्रों के वाक्यार्थ बोध में कारण हैं। इनकी उपयोगिता प्रत्याहार के अर्थ तथा शक्तिज्ञान कराने में है। जिससे सूत्रोंका अर्थ सुगम होते हैं।

इति—इमानि पूर्वस्मिन् उच्चरितानि चतुर्दशसूत्राणि माहेश्वराणि=महेश्वरः शंकरः, तस्मात् आगतानि माहेश्वराणि। महेश्वरवर प्रसादात् पाणिनिना लब्धानि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः।

न तु कृतानि अन्यथा वेदत्वं हीयेत। ये चौदहसूत्र शंकर भगवान् के वरदान (प्रसाद रूप में) पाणिनि को मिले हैं। ये रचित नहीं है। नहीं तो अपौरुषेय वेदका सादृश्य नहीं घटेगा। इमानि सूत्राणि किमर्थानि = अणादि संज्ञार्थानि = अण् आदिर्यासांन्ताः अणादयः = अण् अक् अच् अल् हल् आदि प्रत्याहाराः, ता एव संज्ञा अणादिसंज्ञा ता एव अर्थाः प्रयोजनानि येषां सूत्राणां तानि अणादिसंज्ञार्थानि अण् इत्यादि प्रत्याहारों का ज्ञान होना ही सूत्रों का प्रयोजन है।

भावार्थ—ये चौदह सूत्र भगवान् शंकर की कृपा से तपस्वी पाणिनि जी महाराज को मिले हैं। जब कठिन तपस्या पूर्ण हो रही थी, तब सर्वकालीन सनकादिगण की उपस्थिति में आनन्दविभोर होकर नृत्यकाल में डमरुध्वनि के अनुरुप ध्वनि वाला १४ सूत्र प्रगट हुए।

यथा—नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

अ इ उ ण् आदि सूत्रों के अन्त्यअक्षर अनुबन्ध हैं। उनको शिवजी ने पश्चात् जोड़कर पाणिनिजी को दिया। नृत्त के समय हाव-भाव प्रदर्शन में कुशल नट-सम्राट् ने ढक्कां = डमरु को नवपञ्चवारं = चौदह बार (ननाद) बजाया। सनकसनन्दनसनातनसनत्कुमार आदि सिद्धोंके उद्धार तथा मोक्ष की कामना से अक्षर शब्दब्रह्मराशि प्रकट किया। उन्हीं शिव सूत्रोंके जाल = समुदाय पर बिमर्श = विवेकपूर्ण विचार से पाणिनिजी ने ३९९६ सूत्रों का जाल बिछा दिया। यथा—

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

१४ सूत्रों का प्रयोजन प्रत्याहार सिद्धि है। 'प्रत्याहृयन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णाः यत्र' जहाँ अल्प = थोड़े वर्ण से 'अधिक वर्ण की शक्ति समझी जाय। जैसे— अ इ उ (से) ऐ औच् तक के वर्ण अच् समझे गये। जैसे—सुप से इक्कीस विभक्तियाँ, तिङ से १८ विभक्तियाँ समझी जाती हैं। अण् अच् अल् हल् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए बोले एषां = इन चौदह सूत्रों के अन्त्येभवाः अन्त्याः, अन्त में जुड़े हुए वर्ण ण् क् ङ् च् इत्यादि इत् संज्ञक हैं। प्रयोगमें उपयोग का विषय नहीं हैं। इत संज्ञकत्वम् इत् संज्ञायोग्यत्वम् वा अनुबन्धत्वम्। अनुपश्चात् बध्यते युज्यते इति अनुबन्धः। जो बाद में जोड़े जायँ वे अनुबन्ध हैं। इत् संज्ञा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ हलन्त्यम् १ । ३ । ३ । उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र । २ अदर्शनं लोपः १ । १ । ६० । प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

३ तस्य लोपः १ । ३ । ९ । तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

सदृश हैं । हकारादि = ह य व र आदि वर्णों में अकार का उच्चारण ही अर्थ=प्रयोजन है । हल् वर्णों के उच्चारण सुगम हों, क्योंकि "न पुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्य उच्चारणमपि सम्भवति । अच् के बिना व्यञ्जन का उच्चारण दुर्वच दुर्गम है । परन्तु लण् सूत्र के मध्य में अकार इत् संज्ञक है । ऊच्चारणार्थक नहीं । उसका फल 'र' प्रत्याहार सिद्धि है ।

(१) हल् प्रथमान्तम् अन्त्यं प्रथमान्तं पदद्वयं सूत्रम् । उपदेशे = पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि के प्रथम उच्चारण में अन्त्यम्=अन्तिम हल वर्ण की इत्संज्ञा हो । 'उप' का आदि अर्थ, 'दिश्' का उच्चारण अर्थ है, मिलकर उपदेश ही आद्योच्चारण है । मुनियोंका प्रथम उच्चारण दशासूत्र, वार्तिक भाष्यमें है । सूत्रेषु=सूत्रों में अदृष्टं न 'देखा गया' पद, अन्यं सूत्रं सूत्रान्तरं तस्मात् सूत्रान्तरात् = दूसरे सूत्रों से अनुवृत्ति आगमन करले । सर्वत्र यथा—उपदेशेऽजनुनासिक सूत्र से उपदेश पद की अनुवृत्ति हलन्त्यम् सूत्र में की गयी ।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥
अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

(२) दर्शनका अभाव ही लोप है । न दर्शनम् को अदर्शन कहने से शब्द की नित्यता निरस्त नहीं होती । प्रसक्तस्य = विद्यमान (उपस्थितवर्णका) अदर्शन = अभाव, अनुपस्थिति, बिनाश की लोप संज्ञा हो । अदर्शन तथा लोप अभिन्न हैं । (३) तस्य = इत् संज्ञकवर्णस्य लोपः = समाप्तिः । उस इत् संज्ञकवर्णका लोप, अदर्शन, अभाव हो । एति = गच्छति इति इत् । जो चला जाय वह इत् है । उसी का बोधक लोप है । णादयः = १४ सूत्रों के अन्तिमवर्ण णक्ङ्च् आदि अनुबन्ध का उद्देश्य अणाद्यर्थाः = अण् अच् अल् आदि अर्थ की सिद्धि ही णकारादि अनुबन्धों का फल है । (४) अन्त्येन = अन्तिम वर्णेन इता = इत्संज्ञासदृशेन वर्णेन सह = साथ आदिः = आरम्भवर्णः बोधको भवति । अन्त में रहने वाला वर्ण इत्संज्ञक हो तो उसके सहित आदि वर्ण मिलकर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४ आदिरन्त्येन सहेता १ । १ । ७१ । अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथाऽणिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा । एवमक् अच् अल् हलित्यादयः । ५ ऊकालोऽज् ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः । १ । २ । २७ । उश्च ऊश्च उ३श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घ-प्लुतसंज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा । ६ उच्चैरुदात्तः १ । २ । २९ ।

मध्यगानां = मध्य में रहने वाले वर्णो का तथा स्वस्य च अपना भी बोध कराता है यथा—अच् प्रत्याहार के अन्त में इत्संज्ञक च् है। इसके साथ आदिवर्ण अ है। 'अ' से 'च' तक अच् संज्ञा हुई। वह मध्यवर्ण इऊ ऋलृ ए ओ ऐ औ का ज्ञान कराता है। जो बोध्य = ज्ञान का विषय है। वह अपना भी बोध कराता है। सूत्र में प्रथमान्त आदिशब्द प्रधान अकार को कहता है। अन्त्य शब्द के तृतीयान्त होने से अन्त्य शब्द से ग्राह्य च्कार, अप्रधान तथा प्रयोग के अयोग्य है। स्वशब्द प्रधान है। प्रधान का परामर्श ही प्रयोग में उपयोगी है । अ च् की तरह सभी संज्ञाओं को समझे। यथा —अण् कहने से अ इ उ इन तीन वर्णों का बोध है। इसी प्रकार अच्, अल्, हल्, इत्यादि संज्ञाओं को समझें।

(१४) सूत्रों को वर्ण समाम्नाय (वेद) कहते हैं। उसमें अच् = स्वर और हल् = व्यंञ्जन वर्ण पढ़े गये, अच् के गुणों धर्मों का निर्णय अवसरसंगत है। ह्रस्व दीर्घ प्लुत उदात्त अनुदात्त स्वरित तथा अनुनासिक आदि गुण अच् अक्षर के धर्म हैं। उनका परिचय क्रम से देते हैं। (५) उकाल = उकार के उच्चारणकाल के सदृश = समान उच्चारण काल है जिस अच् का उसको ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञा क्रम से हो। जैसे—कुक्कुट (मुर्गा की ध्वनि) कु १ कु १ हू २ कूँ ३ में एकमात्रिक (ह्रस्व) दोमात्रिक (दीर्घ) तीनमात्रिक अकार (प्लुत) प्रसिद्ध है। 'एक मातृको भवेद्ध्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं' चार्धमात्रिकम्। इसी प्रकार सभी अचों में एकमात्रा ह्रस्व, २ दीर्घ, ३ मात्राप्लुत क्रम से समझे। इसीलिए समास किया। उश्च ऊश्च उ३श्च वः तीन उकार में ऊत्व जाति का समानरूप मानकर एक शेष, जस् विभक्ति में 'वः' तेषां कालो वांकालः। उकार के उच्चारण काल के सदृश (समान) उच्चारणकाल सभी अच् में हो। स = वह (ह्रस्व दीर्घ प्लुत) प्रत्येकम् = एक-एक को उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से त्रिधा = तीन-तीन भेद वाले हों। ६ भेद। अब उदात्त अनुदात्त आदि भेद से परिचित होना अवसर संगत हुआ। आकांक्षा पूर्ति केलिये बोले। (६) उच्चैः = अव्यय पदम्, उदात्तः प्रथमान्तम्। वर्णों के उच्चारण का कारण स्थान ताल्वादि हैं। कण्ठतालु-मूर्धादन्तओष्ठ स्थानी के ऊर्ध्वभाग = कुछ ऊपरी अंश से उच्चरित अच्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७ नीचैरनुदात्तः १ । २ ३० । ८ समाहारः स्वरितः १ । २ । ३१ । स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा । ९ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १ । १ । ८ । मुखसहित-नासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम्-अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । ऌवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात् ।

(वर्ण , उदात्त कहाते हैं । सभी स्थानों के तीन भाग हैं, उच्च भाग, निच्च भाग, तथा मध्य भाग (६) **नीचैः** = निच्च भाग से उच्चरित अच् अनुदात्त संज्ञक हो । कण्ठ तालु आदि वर्ण व्यंञ्जक स्थानों के निचले सूक्ष्म भाग से निष्पन्न (सिद्ध) अच् अनुदात्त गुणवाला हो । (८) **समाहारः = समाहरणं = मिलित्वा दुग्धजलवत्एकीभवनं समाहारः** अथवा समः (तुल्य) एक होकर, उदात्त अनुदात्त मिलकर अर्धनारीश्वर की तरह होना समाहार है, वही स्वरित है । तालु आदि स्थान के उच्चभाग निच्च भाग के मध्य सम्मिलित भाग जहाँ उदात्त तथा अनुदात्तगुण वर्ण के धर्म समाहृत = सम्मिलित होते हैं । उसवर्ण की **स्वरित** संज्ञा हो । इस प्रकार ह्रस्व के तीन भेद, दीर्घ तथा प्लुतके भी ' **उदात्तत्वानुदातत्वे वर्ण धर्मो समाह्रियेते सोऽच् स्वरितः** । **स** = वह (अच्) **नवविधोपि** = नव प्रकार का हो करके भी, **प्रत्येक** = एक-एक को अनुनासिक अननुनासिकभेदसे दो-दो भेद हो । यहाँ अनुनासिक से परिचय की स्वाभाविकी जिज्ञासा जागर्त्ति । (९) **मुखम्** = आस्यं, **नासिका** = घ्राणेन्द्रियः **वचनः** उच्चार्यमाणोवर्णः, **अनुनासिकः** = नासिकाम् अनुगतोगुणः, मुखसहित नासिका से उच्चारण किया गया वर्ण अनुनासिक संज्ञक हो, यथा— **ञमङणन** इनके उच्चारण में मुख तथा नासिक । दोनों का सहयोग अनुनासिक सिद्ध करता है । **तदित्थम्** १८ भेद इस प्रकार हैं कि अ इ उ ऋ इन वर्णों के एक-एक को १८ भेद होते हैं । जो सवर्णी समानजाति समझे जाते हैं । अत्वजाति अष्टादश अकार में एवम् इत्व उत्व भी सभी इकार उकार में । **ऌवर्णस्य** = ऌ अक्षर के १२ भेद हैं उसमें दीर्घ अंश नहीं होता । **एचामपि** = एच्=ए ओ ऐ औ के भी बारह-२ भेद हैं । उनमें ह्रस्व अंश नहीं होते । इति अच्-गुणाः धर्माश्च ।

अच् अक्षरों के सभी गुणों का ज्ञान कराने के पश्चात् कुछ वर्णों के आपस में एकता, जातीयता, समानता सिद्ध है । उसका ज्ञान कराने के लिए सवर्ण संज्ञा का प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हैं । (१०) **तुल्य** = समान, एक धर्म, एक गुण, एकता **आस्ये** = मुख में (वर्ण) उच्चारण के कारणीभूत तालु आदि स्थान, **प्रयत्न** = चेष्टा, क्रिया वर्ण, व्यञ्जक वायु का स्थानों में टकराव, इति शब्दार्थः । तुल्यश्च तुल्यश्च तुल्यौ, आस्यश्च प्रयत्नश्च आस्यप्रयत्नौ तुल्यौ आस्यप्रयत्नौ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१० तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् (ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्)। अ कु ह विसर्जनीयानां कण्ठः। इ चु य शानां तालु। ऋ टु र षाणां मूर्धा। ऌ तु ल सानां दन्ताः। उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ञ म ङ ण नानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। वकारस्य दन्तोष्ठम्। जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। नासिकाऽनुस्वारस्य।

ययोः वर्णयोः, तत्तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णं = समानजातीयकम्। आस्ये = मुखे भवम् = उत्पन्नम् = आस्यं = कण्ठतालुमूर्धादन्तौष्ठनासिकास्थानम्। प्रकृष्टः = विशेषफलजनकः यत्नः = चेष्टा क्रिया, संयोग, वायु का कण्ठादिस्थानों से टकराव, स्पर्श। जिस क्रिया से वर्ण उच्चारित हो उसे प्रयत्न कहते हैं। ताल्वादि = तालुन आदिः = तालु के आदि में जो हो उसे ताल्वादि (कण्ठ) कहते हैं। (देहली दीपकवत्) पूर्व (कण्ठ) पर का भी स्मारक है। कण्ठतालुमूर्धा दन्तोष्ठ तथा नासिका स्थानवाले आभ्यन्तर प्रयत्न = मुख के भीतर के स्थानों पर वायु के स्पर्श से उच्चारित हुए वर्णो का आभ्यन्तर प्रयत्न होता है। अर्थः–जिस वर्ण का स्थान और प्रयत्न जिस वर्ण के साथ मिलते हो, उनके मिथः=परस्पर में सवर्णसंज्ञा (समान जाति) हो, समानस्वरूप समानवर्ण होना सवर्ण का स्वभाव है, जो व्यवहार में अनुभूत हैं। ऋ ऌ-ऋ और ऌ अक्षरों के आपस में सावर्ण्य = सवर्ण का भाव = समान वर्ण जाति बोधित है।

किस स्थान का कौन वर्ण है, या किन वर्णो का कौन कौन स्थान है, उसके निर्णय में बोले अकुह अ = अकार कु=कवर्ग क ख ग घ ङ् तथा विसर्जनीय=विसर्जने = अन्ते = भवः विसर्जनीयः। इनका कण्ठ स्थान है। इचु = इकार चवर्ग च छ ज झ ञ य तथा श इनका तालुस्थान है। काकुदं तालु काकु जिह्वा, सा उद्येत अस्मिन जीभ स्पर्श करे जिसमें। ऋ टु = ऋकार टवर्ग ट ठ ड ढ ण, र और षका मूर्धा-स्थान है। ऌतु = ऌकार तवर्ग, त थ द ध न, ल और स इनका दन्त स्थान है। उपू = उकार पवर्ग प फ ब भ म, उपध्मानीय ᳵप, इनका ओष्ठ स्थान। ञ म ङ ण न का नासिका स्थान है। चकार पद से अपने वर्ग के अनुकूल तालु ओष्ठ कण्ठमूर्धा दन्त स्थान भी है। एदैतोः = ए, ऐ का कण्ठतालु स्थान है। क्योंकि ये संयुक्त अक्षर हैं। कण्ठ तालु स्थान वाले अ तथा इ के स्थान में होते हैं। गुण या वृद्धि होने से बने हैं। ओदौतोः = ओकार औकार का कण्ठ और ओष्ठ स्थान है। ये भी संयुक्ताक्षर हैं। कण्ठ ओष्ठ स्थानी 'अ उ' से संयुक्त होकर सांध्याक्षर हो गये हैं। वकार का दन्त और ओष्ठ स्थान है। जिह्वामूलीयका = जिह्वा के मूल भाग से उत्पन्न वर्ण का जिह्वामूल स्थान है। यथा—ᳵक। अनुस्वार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यत्नो द्विधा–आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृत-विवृत-संवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव। बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा–विवारः संवारः श्वासो नादोऽघोषो घोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।

का केवल नासिका स्थान है। यहाँ तक वर्णोच्चारण के स्थान चर्चित हुए। किन वर्णों का कौन प्रयत्न है इसका निर्णय प्रस्तुत करते है।

सवर्णसंज्ञा में उपयोगी आभ्यन्तरप्रयत्न का परिचय प्रस्तुत करते हैं कि **यत्नो-द्विधा** = यत्न (चेष्टा, क्रिया, वायु स्पर्श, संयोग) दो प्रकार के हैं। **आभ्यन्तर** और **बाह्य**। मुख के भीतर कण्ठतालु आदि स्थानों में वायु के संयोग टकराव से वर्ण की उत्पत्ति की चेष्टा क्रिया को **आभ्यन्तरप्रयत्न** कहते हैं। दूसरा बाह्य प्रयत्न है, जो **काकलक** = कण्ठ के नीचे वायु के द्वारा गलछिद्र का संकोच विकाशरूप चेष्टा (क्रिया) है। जैसे—विवार श्वास घोष, अघोष इत्यादि **काकलक** = कण्ठ के नीचे गलछिद्र की क्रियारूप है। **आद्यः** = आभ्यन्तर-प्रयत्नः पाँच प्रकार का है। **स्पृष्टप्रयत्न** = वायु का स्थानों से स्पर्श होना। **ईषत्पृष्ट** थोड़ा स्पर्श। **ईषद्विवृत** = थोड़ा खुला, विकसित 'बाया' हुआ। **विवृत** = विकसित खुला **सम्वृत** = पूर्ण विकसित या ढका हुआ। **तत्र** = किन वर्णों का कौन सा प्रयत्न है इसका निर्देश करते हैं। **तत्र** = क से म तक स्पर्श संज्ञक वर्णों का **स्पृष्टप्रयत्न** है। **ईषत्** = अन्तस्थ (यण्) संज्ञक वर्णों का **ईषत्स्पृष्ट** (थोड़ा स्पर्श) प्रयत्न (चेष्टा) है। **उष्मा** संज्ञक वर्णों का **ईषत् विवृत** = थोड़ा विकसित प्रयत्न=चेष्टा है। **स्वर** संज्ञक वर्णों का विवृतप्रयत्न है। **ह्रस्व** अकार के प्रयोग में **संवृत** प्रयत्न है। या ह्रस्व अकार को ही संवृत कहते है। **प्रक्रियादशायाम्** = प्रयोग साधने की स्थिति में वह संवृत = ह्रस्व अकार विवृत होता है। दोनों में अन्तर, जहाँ अकार से अट्ठारह भेद का बोध हो, वह विवृत अकार है। जहाँ केवल ह्रस्व ही अकार ग्राह्य हो वहाँ संवृत समझे। क्योंकि विवृत अकार को संवृत संज्ञक अकार बनानेवाला 'अ अ' सूत्र सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के प्रति असिद्ध है।

कण्ठ के नीचे (गलमध्ये) वायुकी क्रियाओं को **बाह्यप्रयत्न** कहते हैं। वह **एकादशधा**=११ प्रकार का है। जैसे—**विवार** विकसित, गलछिद्र पूर्ण विकसित गले की क्रिया। **श्वास**=प्राणवायु, **नाद** = व्यक्तध्वनि। **घोष** = अव्यक्त ध्वनि। **अघोष** = मूक ध्वनि। **अल्पप्राण** = शिथिलवायु, **महाप्राण** (अधिक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। शल उष्माणः। अचः स्वराः। अ⌒कः, अ⌒खः इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। अ⌒पः, अ⌒फः, इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः।

वायु) उदात्त तालु आदि के उर्ध्व भाग से उच्चरित वर्ण धर्म, अनुदात, अधो भाग से उच्चरित वर्णधर्म। स्वरित — मध्यभाग से व्यक्त मिलित वर्णधर्म, ये ११ यत्न कण्ठ के भीतर मुख के वाह्यभाग में होने से वाह्यप्रयत्न समझे गये। किन वर्णो का कौन सा वाह्यप्रयत्न है उसका निर्णय करते हैं कि खरो = खर प्रत्याहार के अक्षर (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) का विवार श्वास अघोष प्रयत्न है। हश् — 'ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ़ ध ज ब ग ड द', इन वर्णो का संवार, नाद, घोष प्रयत्न है। वर्गाणां=कवर्ग चवर्ग इत्यादि वर्ग के प्रथम तृतीय पञ्चम वर्ण (क च ट त प) प्रथम वर्ण (ग ज ट द ब) तृतीय (ङ ञ णं न म्) ये पञ्चम वर्ण हैं। यण् = य व र ल/चकार से उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों का संग्रह इन सबका अल्पप्राण = ईषत् स्पृष्ट प्राणवायु का शिथिलस्पर्श प्रयत्न है। वर्गो के द्वितीय — ख छ ठ थ फ, चतुर्थ = घ झ ढ़ ध भ, और शल् (श ष स ह) इनका महाप्राण प्रयत्न है। चकारः समुच्चयबोधकः। अधिक प्राणवायु से स्पर्श।

किन वर्णो का क्या नाम है। इसका निर्देश देते हैं। कादयः — लोक में प्रसिद्ध क ख ग इत्यादि से लेकर मावसानाः = बभम अवसान = अन्त तक के वर्णों की स्पर्शसंज्ञा होती है। जो स्पृष्टप्रयत्न है। यण् = य र ल व इनका 'अन्तस्थ' नाम है। तथा ईषत् स्पृष्टप्रयत्न है। शल् (श ष स ह) को उष्मा कहते हैं। इषद् विवृत प्रयत्न। अ⌒क = क ख के पहले आधे विसर्ग के सदृश वर्ण का जिह्वा—मूलीय प्रयत्न है। जो जीभ के मूल भाग से उत्पन्न है। अ̐ प — अ̐ फ के पहले आधे विसर्ग के समान वर्ण को उपध्मानीय कहते हैं। अं अः = अ च् के ऊपर बिन्दु अं को अनुस्वार है। अ च् से परे (दो विन्दु) को बिसर्ग कहते हैं।

(११) इस सूत्र में दो अंश है। अण् प्रत्याहार के वर्ण और ऊदित ये अपने सवर्णीयो स्वजाति वाली (जिनके आपस में सवर्ण संज्ञा हुई हो) का बोधक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अं, अः, इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ । ११ अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः १ । १ । ६९ । प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः तदेवम्—'अ' इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ ऋकारस्त्रिंशतः । एवं ऌकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् । अनुनासिकाननुनासिकभेदेन य व ला द्विधा । तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोःसंज्ञा । १२ परः सन्निकर्षः संहिता

परिचायक हो यह **विधि** अंश है । दूसरा **निषेध** अंश । **'अप्रत्ययः'**—यह निषेध अंश है । न प्रत्ययो अप्रत्ययः प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । जिसका विधान किया जाय उसे प्रत्यय कहते हैं । किन्तु अविधीयमान अण् ही सवर्णियों का ग्राहक होगा । विधीयमान अण् जैसे—"त्यदादीनामः" से विधान कियागया अकार सवर्णीका बोधक नहीं होगा । किन्तु यह नियम केवल अण् के लिए है । उदित के लिए नहीं वहाँ विधीयमान उदितसंज्ञक सवर्णी के (स्वजातियों) ग्राहक होंगे । यथा 'चोःकु'=कु चु टु तु पु इनकी उदित संज्ञा है । **अत्रैवाण्**=इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार परणकार **लण्** सूत्र के ण् तक मान्य है । अन्य स्थानों में अण् पूर्वणकार तक स्वीकृत हैं । यथा—

पूर्वेणैवाण्ग्रहाः सर्वे, परेणैवेण्ग्रहामता ।
ऋते अणुदित् सवर्णस्य, अत्रैवाण् परेण तु ॥

तदेवम्—सर्वणियों के ग्राहकवर्ण इस प्रकार हैं । अकार अपने अट्ठारह अत्व जातिवालों का बोधक है । इकार उकार भी इत्व उत्व जातिवाले अट्ठारहों का संग्राहक है । ऋकार ३० प्रकार का है । अट्ठारह ऋ, १२ ऌ दोनों की सवर्ण-संज्ञाके आधार पर तीसका ग्राहक है । इसी प्रकार ऌको भी सवर्णीका ग्राहक मानें एच्—ए ओ ऐ औ ये १२-१२ भेदके ग्राहक हैं, इनके ह्रस्व नहीं होते । अनुनासिक अननुनासिक भेदसे 'य व ल' दो-दो के ग्राहक हैं ।

१२ । शब्दार्थ—**परः**=अन्यः।तस्य **सन्निकर्षः**=साक्षात्कारः **सन्निधिः**=पूर्वेण सह समीपता, **संहिता**=अर्धमात्राकालिकव्यवधान । एक वर्णके उच्चारण पर दूसरे वर्णका स्वाभाविक अन्तर संहिता है । किसी अक्षर का अन्तर नहीं होना चाहिए । अर्थ—वर्णोंकी अतिशय=अत्यधिक शब्द अर्थ सम्बन्धात्मना सन्निधि=बिना व्यवधानकी उपस्थितिको संहितासंज्ञा हो । यह संज्ञा वहीं होगी जहाँ वर्णों अथवा पदोंके आपसमें **आकाङ्क्षा**=परस्पर सम्बन्ध जोड़नेकी अपेक्षा योग्यता=बोध कराने की स्वाभाविक शक्ति हो (जैसे—इन्द्रियोंमें विषय-ग्रहणकी-स्वाभाविकशक्ति है) **सन्निधि**—अव्यवधान और तात्पर्य भी निकलता हो ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ । ४ । १०९ । वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् । १३ हलोऽनन्तरा संयोगः १ । १ । ७ । अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः । १४ सुप्तिङन्तं पदम् १ । १ । १४ । सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ।

इति संज्ञाप्रकरणम्

यह अर्थ वृत्तिमें अतिशयसन्निधिके अतिशय विशेषणसे निकलता है । संनिपूर्वक 'धा' धातुका अव्यवहित अर्थधारण के अनुकूल क्रिया अर्थ है 'कि' प्रत्ययका कर्ता अर्थ है । एवम् अव्यवहित उपस्थिति (अर्थ) सन्निधि शब्द से ही सम्भव है, अतिशय विशेषणका तात्पर्य अर्थ सम्बन्ध सहित शब्दों वर्णोंके परस्पर आकांक्षा योग्यता, सन्निधि तात्पर्य अवश्य हो । यह भट्टोदीक्षितके अतिशयविशेषण का अभिप्राय है । संहितासंज्ञाके 'महतीसंज्ञा' होनेसे, जहाँ संहिता शब्दार्थ घटेगा वहीं सन्धिका विषय होगा । सन्धीयन्ते सम्बद्धयन्ते, संयुज्यन्ते वर्णाः पदानि वा यत्र सा 'संहिता' । सम्पूर्वक धाधातुका सब प्रकार से जोडना पदवाक्यगतशक्तिको प्रकाशित करना अर्थ है । कर्मणि क्त । यह संज्ञा, अर्थ सम्बन्धको प्रकाशित करती है । उनका विषय भी बनाती है । अतः संहिता, सन्धि; सन्निधि, सन्निकर्ष, जोड़, संयोग, मेल, एकार्थीभाव, अतिसमीप, ये शब्द यथाशक्ति समानार्थक हैं । बहुत से सूत्र बिना अर्थके सन्धि नहीं करते । जैसे—क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे इत्यादि । सूत्रकारमते । भाष्यकारमतमे अर्थकी अपेक्षा सन्धिमें नहीं भी है । अतः उनके मतमें पूर्ववर्णोंकी उत्तरवर्ण के साथ अतिशय सन्निधि, अतिसमीप, बिना अन्तरका, एकवर्णके बाद दूसरेवर्णके उच्चारणमें, अर्धमात्राकालिका स्वाभाविक व्यवधान हो, किन्तु किसी वर्णका या अर्धमात्रासे अधिककालका अन्तर न हो तब संहिता-संज्ञा हो । १३ । हलौच हलश्च हल्, न अन्तरम् इति अनन्तरा व्यवधानशून्या हलः । दो या अनेक हलवर्ण की संज्ञा । अज्भिः = अच् प्रत्याहारके अक्षरोंसे अव्यवहिताः = व्यवधान अन्तर न हो उसकों संयोगसंज्ञा हो । दो हल् या अनेक हल् होना चाहिए । एक हलको संयोगसंज्ञा नहीं होती । १४ । सुप्च तिङ्च सुप्तिङौ तौ अन्तेयस्य तत्, सुप्तिङन्तं पदं-प्रथमान्तम्, सुप्विभक्ति अन्तमें हो यथा—रामः । तिङ् विभक्ति अन्तमें हो यथा—पठति दोनोंको पदसंज्ञा हो । व्यापकसंज्ञाओंका प्रकरण समाप्त ।

। इति प्राभाकरीटीकायां संज्ञाप्रकरणम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सन्धिप्रकरणे

॥ अच्सन्धिः ॥

सन्धि — व्यञ्जनाशक्ति या योग्यताशक्ति है। उससे व्यङ्ग्य या प्रभावित अर्थ ही सन्ध्यर्थ है। जैसे-निपात और स्वर प्रभावित शब्दके अर्थका बोधक, द्योतक (प्रकाशक) हैं। किसीके मतमें बाचक भी हैं। एवं सन्धि भी पदवाक्यकी शक्तिका प्रकाशक है, वाचक भी, कहीं वाचक यथा —क्षय्यम्, क्रय्यम्, पुत्रादिनी, प्रौढ़वान्, आदि उदाहरणों से सिद्ध है। इसलिए सन्दधाति — सामीप्यसम्बन्धेन वर्णौ, वाच्यवाचकभावसम्बन्धेन वा शब्दार्थौं संयोजयति शब्दशक्ति वा प्रकाशयति इति सन्धिः। अचाम्-अक्षु वा सन्धि अच्सन्धिः। दो अक्षरों को जोड़े, पदवाक्य की शक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से प्रकाशित करे उसे सन्धि कहते हैं। अचो के स्थान में या अच् परे रहते संयोजना शक्ति ही अच्सन्धि हैं। संज्ञाप्रकरण के पश्चात् स्वर-व्यञ्जन भेद से प्रथम अच् प्रत्याहार के अक्षरों की सन्धि का प्रारम्भ अवसर सङ्गत है। यह शक्ति शब्दार्थों के परस्पर अर्थ सम्बन्ध का प्रकाशन करती है। इसके बिना सन्धि सम्भव नहीं है। किन्तु संहिता का विषय अवश्य होना चाहिए। अर्ध मात्राकाल के व्यवधान (अन्तर) को संहिता कहते हैं। एकमात्रा या अक्षर का अन्तर असह्य है। वर्णो का सशक्तिक अतिनिकट होना आवश्यक है। वह निरर्थक में :असम्भव है। साधुत्व सार्थक में ही है। सन्धि भी साधुत्व का कारण है। व्याकरण, पदवाक्य के अर्थ सम्बन्ध का निर्णायक है। साधुत्व का द्योतक । 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' शब्द अर्थ सम्बन्ध तीनों का संस्कार विशेष व्युत्पत्ति का साधन व्याकरण है। आकाङ्क्षा, योग्यता, संन्निधि ये तीनों सन्धि में कारण हैं, तभी शब्द से ज्ञान होगा।

१५ इको — यह यण् सन्धि का विधिसूत्र है। इकः = इ, उ, ऋ, ऌ के स्थान में क्रम से यण् — य, व, र, ल हो। अच् प्रत्याहार के अक्षर परे हो तथा संहितायां विषये — अर्धमात्राकाल के स्वाभाविक व्यवधान (अन्तर) का विषय हो। अथवा समासपद, एकपद, धातु उपसर्ग, का विषय हो तो नित्य सन्धि हो।

आकाङ्क्षा, योग्यता, सन्निधि, इनके मिलकर अर्थ कहने की शक्ति की सूचिका संहितासंज्ञा हुई हो। एकवर्ण से अव्यवहित दूसरे वर्ण के उच्चारण में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१५ इको यणचि ६ । १ । ७७ । इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी + उपास्य इति स्थिते । १६ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१। ६६। सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् । १७ स्थानेऽन्तरतमः १ । १ ५० । प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध्य् + उपास्य इति जाते । १८ अनचि च ८ । ४ । ४७ । अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् । १९ झलां जश

संहिता = अर्धमात्रा का अन्तर स्वभाव सिद्ध है । जैसे — सुधी + उपास्यः । परः सन्निकर्षः इति संहितासंज्ञा । इको यणचि सूत्रेण सुधीधकारं के उत्तरवर्ती ईकार के स्थान में 'य' यण् हुआ, अच् परे उपास्यः का उकार । सुधय् इति जाते । न कहिए इक् तो तीन है, सु में 'उ' धी में 'ई' उपास्यः का 'उ' । क्या सबको यण् होना चाहिए ? तब निर्णायक परिभाषा सूत्र बोले । १६ । तस्मिन्—यह सप्तमी विभक्त्यन्तका सूचक शब्द है । निर्दिष्टे = निर = निरन्तर, विना व्यवधान के । दिष्टे = उच्चारण होने पर, पूर्वस्य = पूर्व के स्थान में कार्य हो । सप्तमी विभक्ति जिसमें उच्चारित हो उससे बोध्य वर्ण परे रहते । विधीयमान = विधान किया गया यणादिकार्य वर्णान्तरेण = अन्यवर्ण के अव्यवहितस्य = विना व्यवधान के पूर्व के स्थान मे होना चाहिए । जैसे—इकोयणचि सूत्र के अचि पद में सप्तमी उच्चारण करके विधीयमान कार्य यण् है । अच् उपास्यः का उ, उससे अव्यवहित पूर्व में ई स्थानी है, उसीको यण् हुआ । अन्य में व्यवधान है, यण् नहीं हुआ । न कहिए ई के स्थान में (य्) ही यण् क्यों हो 'व, र, ल,' क्यों न हों । तब निर्णायक परिभाषा सूत्र बोले । १६ । स्थाने = स्थानदर्शने, अन्तरतमः = अतिशयेन, अत्यधिकेन अन्तरः, सदृशः, एकजातीयः, निकटस्थः, । प्रसङ्गे = प्राप्यमाण यण् आदि आदेशों का प्रसङ्गः = प्राप्त होने पर, सदृशतमः = अति समीपस्थः आदेश हो । इससे अतिसदृश आदेश प्राप्त हुआ । परन्तु सादृश्यं चतुर्विधं स्थानार्थगुणप्रमाणकृतम् । सादृश्य, समानता, तुल्यता, एकजातीयता चार प्रकार से परखी जाती है । स्थान की समानता । अर्थ की तुल्यता । गुण की योग्यता । प्रमाण = मात्रा का सादृश्य । कौन प्रमाण माना जाय । तब (यत्रानेक विधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः) जहाँ सादृश्य के अनेक कारण हों । वहाँ स्थान कृत सादृश्य लिया जाय । स्थान कृत समानता का निर्णायक 'इचुयशाना तालु' इ तथा च् के सादृश्य = समानता का उपस्थापक तालु स्थान है । अन्य 'व र ल' भिन्न स्थानक हैं, सुध य् + उपास्य इति जाते । (१८) अनचि = न अचि अच्परे नेत्यर्थः च = अच्, यर्, द्वे वा इति अनुवर्तन्ते । अच् से परे 'यर्' प्रत्याहार के अक्षर को द्वित्व हो विकल्प से । यह विधि अंश है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

झशि ८।४।५३ स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः। २० संयोगान्तस्य लोपः ८।२३। संयोगान्तं यत्पदं तस्य लोपः स्यात्। २१ अलोऽन्त्यस्य १।१ ५२।

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्यादेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते (यणःप्रतिषेधो वाच्यः) सुद्ध्युपास्यः, सुध्युपास्यः। मद्ध्वरिः, मध्वरिः। धात्त्रंशः,

---

नत्वचि = अच्परे न हो तो। इति निषेधांशः। सुधय् के सु का 'उ' अच् है। उससे परे यर् 'ध्' को द्वित्व = दो बार उच्चारण हुआ, अच् परे नहीं है। किन्तु उससे परे हल (य्) है सुध् ध् य्। (१९) झल् = झ भ ञ से हल् तक वर्णों को जश् = जब गडदश् हो। झरि = झ भ ञ से गडदश तक अक्षर परे हो। इससे पहले ध को द हुआ, स्थानकृत सादृश्य मानकर (२०) संयोगसंज्ञकः अन्ते यस्य स संयोगान्तः। द्ध्य् को संयोग संज्ञा है। संयोगान्त पद 'सुद्ध् य्' उसका लोप = अदर्शन हो (२१) अन्त्यस्य = अन्त्येविद्यमानस्य अलः अल्-वर्णकात्। षष्ठीविभक्ति से निर्दिष्ट = निरन्तर उच्चारित जो अन्त्य अल् अ ई उ ण् से हल् तक वर्ण, उसी के स्थान में लोप आदेश हो। संयोगान्तस्य में षष्ठी विभक्ति है। उसका अन्त्य अल् केवल 'य्' है। उसका लोप प्राप्त हुआ। (वा०) यण् के लोप का प्रतिषेध निषेध कहना चाहिए। (अज्झीनं परेण संयोज्यं बाच्यम) अच् से हीन (रहित) वर्ण परके साथ जुड़ जाय। सुद्ध्युपास्यः सुध्युपास्यः। सुधिभि = विद्वानों से, उपास्य = पूज्य। इस समास शक्ति का प्रकाशन ही सन्ध्यर्थ है। अर्च्य अर्चकभावसम्बन्ध को सन्धि पुष्ट करती है। मध्वरिः— मधुःदैत्यः, तस्य अरिः (शत्रुः) विष्णुभगवान्। बध्यबधकभावसम्बन्ध बोध के लिए मधु + अरिः, संहिता संज्ञा। 'इको यणचि' सूत्रेण स्थानेन्तर तमः सहकारेण ओष्ठ स्थानी उकारस्थाने दन्तोष्ठ स्थानी 'व्' यण्। यद्यपि 'व' का दन्तोष्ठ स्थान है, 'उ' का केवल ओष्ठ, तथापि यत् किंचित् स्थानसमानता भी ग्राह्य हुआ। द्वित्व जश्त्व आदि कार्य पूर्ववत्। द् ध् व् अरिः इत्यत्र वर्ण सम्मेलने रूपम्। यहाँ यण् से मधु का अरि के साथ शत्रुतासम्बन्ध सुनिश्चित है। धात्त्रंशः। धातुः ब्रह्मणोंऽशः नारदादिः धातृ + अंशः संहितासंज्ञा 'इकोयण्'— ऋ के स्थान में ऋटु रषाणां मूर्धा स्थान समान होने से 'र्' यण् हुआ। ब्रह्मा का अंश, समासार्थ की व्यञ्जना ही सन्ध्यर्थः। जन्यजनकभाव सम्बन्धः। लाकृतिः ऌचासौ आकृतिश्च = टेढ़ी आकृति अर्थ में ऌ + आकृतिः। यहाँ इक् ऌ को यण् 'ल' हुआ। ऌतुलसानां दन्ताः ऌ 'तथा' ल का स्थान तुल्य होने से। अथवा ऌकार देवजाति की माता है उसकी आकृति लाकृति है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

धात्रंशः। लाकृतिः। २२ एचोऽयवायावः ६। १। ७८। एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि। २३ २३ यथासंख्यमनुदेशः समानाम्। १। ३। १० समसंबन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

सन्धि से शब्द शक्ति प्रकाशित होती है। यहाँ यण् से सुधी=सुन्दर ध्यान, चिन्तन, मनन, कर्त्ताओं से उपास्य=पूजा का विषय विष्णु भगवान् प्रभु कैसे हैं? कि मध्वरिः" मधु नामकस्य दैत्यस्य अरिः शत्रुः। धात्यघातकभावसम्बन्ध विशिष्ट भगवान कैसे हैं? धाता (ब्रह्मा) अंशो यस्य स धात्रंशः, नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा, भगवान् के अंश हैं, पुनः कैसे हैं? लाकृतिः लः वक्रा, आकृतिः त्रिभङ्गीलाल नटवरवपुः भगवान् हैं।

(२२) ए=च्, ए, ओ, ऐ, औ के स्थान में क्रम से अय् अव् आय् आव् ये चार आदेश हो। परन्तु किसके स्थान में कौन आदेश हो, यह व्याख्यान निर्मूल प्रतीत हो रहा है। ऐसी स्थित में चार स्थानी तथा चार आदेश के प्रसङ्ग में क्रम सङ्ख्या की अपेक्षा होने से परिभाषा सूत्र उतरता है। (२३) यथा सङ्ख्येति = समानां = तुल्यानां समसङ्ख्यावताम् अनुदेशः - (आदेशः) विधिः कार्यंम्वा यथासङ्ख्यं - सङ्ख्यामनतिक्रम्य = अनुल्लङ्घ्य गणनाक्रमेण भवति। समसम्बन्धी विधिः = समानसङ्ख्यावाला कार्य या आदेश क्रमसङ्ख्या = गणना के अनुसार हो। प्रथम = 'ए' के स्थान में अय्। (२) 'ओ' को अव्। (३) 'ऐ' को आय्। (४) 'औ' को आव्। यथा—हरे + ए। यहाँ एच्=ए, ओ, ऐ, औ इस क्रम के अनुशार हरे में 'ए' प्रथमं स्थानी है। वहाँ प्रथम आदेश, सङ्ख्या क्रम से 'अय्' हुआ, अच् परे 'ए' है। वर्ण सम्मेलने हरये (नमः) हरि को उद्देश्य करके नमस्कार विधान। विष्णु के लिए अर्थ में, विष्णो + ए इति दशायां एच् का द्वितीय स्थानी "ओ' के स्थान में द्वितीयादेश 'अव्', यथासङ्ख्य = गणना क्रम से हुआ, अच् परे ए है। वर्णसम्मेलने विष्णवे, (नम इति)। नै + अकः = अत्र एच् दल का तृतीय स्थानी 'नै' में 'ऐ', के स्थान में आदेश दल का तृतीय प्रत्याणी आय् आदेश सङ्ख्या क्रम के अनुरोध से हुआ, अच् परे अकः का 'अ' है। न् आय् अकः। वर्ण सम्मेलने, नायकः = नेता, सञ्चालकः समाज को अभ्युदय की ओर ले जानेवाला। प्रकृति प्रत्यय का मिलित अर्थ प्रापणकर्त्ता सन्ध्यर्थ है। सुधार्य, सुधारकभावसम्बन्ध। पौ + अकः। यहाँ एच् प्रत्याहार का चतुर्थ स्थानी 'औ' के स्थान में चतुर्थ आदेश 'आव्' हुआ, सङ्ख्या क्रम के बल से। अच् परे अक् का अकार है। प् + आव + अकः वर्णसम्मेलने पावकः = अग्निः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२४ वान्तो यि प्रत्यये । ६ । १ । ७९ ।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम् । नाव्यम् (अध्वपरिमाणे च) गव्यूतिः । २५ अदेङ् गुणः १ । १ । २ । अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् । २६ तपरस्तत्कालस्य १ । १ । ७० । तः परो यस्मातस च

स्वस्मिन् पतितानि द्रव्याणि पुनाति स्वस्वरुपेण प्रवर्तयति । पवित्र कर्त्ता । शोध्यशोधकभाव सम्बन्ध । विशेषार्थः—हरये = पापहारकाय नमः । कथं भूताय, विष्णवे = ब्रह्माण्डव्यापकाय । पुनः कथं भूतः सः नायकः = विश्व विराट् ब्रह्मसंचालन कर्त्ता । अनुग्रहेण जगतः पावकश्च = स्वस्मिन् पतितान् जीवान् स्वस्वरुपेण प्रवर्तयति । पावको भगवान् पापहारकः, ब्रह्माण्डव्यापकः, सन् जगन्नियन्ता अपने शरणागत को अपने स्वरूप में ढाल देते हैं ।

(२४) अन्त एव आन्तः, व् आन्तो = अन्तावयवो यस्य 'असौ' वान्तः 'व्' है अन्त अवयव जिसका (अव्-आव्) वान्त है । यि = सप्तम्यन्तम् । यकारादि प्रत्यय परे । यतः, यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहे, इति न्यायात्—जिस अल् (एक वर्ण) प्रत्यय (य्) में सप्तमी विभक्ति हो, वहाँ तदादि = (यकारादि) की उपस्थिति हो । अर्थ—यकार हो आदि में जिसके ऐसे प्रत्यय के परे स्थानी = ओ, औ के स्थान में गणना क्रम से अव् आव् ये दोनों वान्त आदेश हो, यथा–गो + यम्-अत्र यकारादि प्रत्ययः यम् । यकारपरे, गोगत 'ओ' तस्य स्थाने वान्त 'अव्' आदेशे, वर्णसम्मेलने । गव्यम् (गोर्विकारः) गोः = गायका विकार = दूध-दही, घी, गोबर, मूत्र मिलकर गव्य हैं । 'गोसम्बन्धिनः पञ्चविकाराः' इस तद्धित वृत्तिका प्रकाशक अय् सन्धि है । गवे हितं गव्यम् (घास आदि) । नाव्यम्—नावा = नौकया तार्यं—तर्तुं (पूर्वतटात्परतटं गन्तुं) योग्यं, जलम् । नौ + यम् अत्र औ स्थाने 'वान्तोयि प्रत्यये इति आव् आदेशे । नौका से पार होने योग्य जल, अर्थ आय् से प्रभावित है । अध्वनः = मार्गस्य परिमाणं = (मात्रा) गम्यमाने सति, च पदेन ओकारस्थाने अवादेशो भवतीति लभ्यते, यूति शब्दे परे । दो कोस परिमाण अर्थ का वाचक गो + यूतिः इतिदशायाम् यूतिशब्दे परे गोगत ओकारस्थाने अवादेशो जातः । वर्ण सम्मेलने गव्यूतिः (स्त्री क्रोशयुगम्) स्त्रीलिङ्ग तथा दो कोस के मापदण्ड को गव्यूति कहते हैं । मम ग्रामः गव्यूतिरस्ति ।

(२५) अत् = ह्रस्व अकारः, एङ् = ए, ओ, च् = विशिष्टगुण अर् अल् ये भी गुण संज्ञक हैं । अर्थात् ह्रस्व अकार, एकार, ओकार की गुण संज्ञा हो, यहाँ अकार ह्रस्व ही क्यों लिया जाय, इसका निर्णायक संज्ञा सूत्र बोले ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तात्परश्चोच्चार्यमाण-समकालस्यैव संज्ञा स्यात्। २७ आद्गुणः ६।१।८७। अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्। २८ उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२।

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञाऽनुनासिक्याः पाणिनीयाः।

---

(२६) तपर इति–'त' हो परे जिससे और तात्परः = तकार से परे उच्चार्यमाण वर्ण अपने **समकालस्य** – समान मात्राकाल का ही **बोधक** हों। तकार एक मात्रा या दो मात्रा के साथ उच्चरित हो, तो उसी मात्रा का बोधक होगा। तथा ह्रस्व के साथ ह्रस्व का, दीर्घ के साथ दीर्घ का, प्लुत के प्लुत का बोधक है। यथा—'अदेङ्गुणः' सूत्र में अत् का तकार 'अ' से परे है। यहाँ अकार का समकाल एकमात्रा है, वही अकार गुण संज्ञक होगा। तथा 'त' से परे एङ् = ए, ओ दोनों दो मात्रा काल वाले हैं उनकी दो मात्रा ही, संज्ञा होगी। यह तपर का प्रभाव हैं। उससे अधिक या न्यून काल (मात्रा) का बोध नहीं होगा।

(२७) आत् पञ्चम्यन्तं **गुणः** = प्रथमान्तम्। **अवर्णात्** – अवर्ण से **अचि** – अच् प्रत्याहार के अक्षर परे रहते **पूर्वपरयोः** = पूर्ववर्ण तथा पर वर्ण के मिलित स्थान में एक ही गुण आदेश हो। जिसका निर्णायक **स्थानकृत्सादृश्य** होगा। यथा—उप + इन्द्रः इति दशायाम् अवर्णः 'उप' = पकारे अकारः, अच् परे इन्द्रः का 'इ', पूर्व 'अ', पर 'इ' के स्थान में एक ही गुण आदेश हो। परन्तु गुण है, (अदेङ्गुणः) अ, ए, ओ। कौन सा गुण हो। जहाँ अनेक आदेश हो वहाँ स्थान दर्शननिर्णायक होगा। 'अ' का कण्ठ 'इ' का तालु स्थान है 'ऐदेतोः कण्ठ-तालुस्थानक एकारो गुणो जातः। **उपेन्द्रः** (इन्द्रस्य = अवरजो वामनः) वलिं वसुधान् याचते। वामनभगवान् (इन्द्र का छोटा भाई) अर्थिकाशक्ति को गुण सन्धि व्यक्त करती है। **गङ्गायाः उदकम्** – देवनद्याः जलम् अर्थ का प्रकाशक गङ्गा + उदकम्, यहाँ अवर्ण से अचि परे 'उ' है, पूर्व में 'आ' तथा पर में उकार दोनों के स्थान में कण्ठोष्ठ स्थानी ओकार गुणो जातः। प्रातः **गङ्गोदकम्** पेयम्। गङ्गा सम्बन्धी पानी अर्थ का प्रकाशक गुणसन्धि।

(२८) **उपदेशे** = पाणिनिकात्यायनपतञ्जलि के प्रथमोच्चारणदशायाम् अनुनासिक अच् इत् हो। **उपदेश = आद्य उच्चारण** अवस्था में जो अच् है वह कार्य के अनुरोध से प्रतिज्ञानुसारी अनुनासिक मान्य हो। या नासिका के सहारे मुखोच्चारित अच् हो, किन्तु उपदेश हो, उसकी इत् (अदर्शन)। नासिकामनुगतः मुखसहित नासिकयोच्चारितोऽच् (स्वर) इत् = गच्छति। यद्यपि सभी अनुनासिक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

लृण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा। २९ उरण् रपरः १।१।५१ ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्। तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव

नहीं होते, तथापि कौन अच् कहाँ कैसे अनुनासिक समझा जाय, निर्णायक वचन बोले—'प्रतिज्ञा' इति। पाणिनीयाः=पाणिनिकात्यायन पतञ्जलि से प्रोक्त उच्चारित वर्ण पाणिनीयाः कहाते हैं। वे प्रतिज्ञा से अनुनासिक समझे जाते हैं। प्रतिज्ञा कुत्र तिष्ठति कथं ज्ञायते ? तत्र सूत्र निर्देशः प्रमाणम्, यथा प्रयोग की सिद्धि के अनुरोध से अच् में अनुनासिक की प्रतिज्ञा समझें। यथा 'र' प्रत्याहार सिद्धि के अनुरोध से लण् सूत्रका अकार अनुनासिक माना गया। ताकि र से र् ल् का बोध हो। वह इत् हुआ। यथा—अन्त्य इत् 'अ' तत्सहित आदि 'र्' वह मध्यवर्ण 'ल्' तथा अपने का भी बोधक हुआ। इसी आशय से बोले "लण्सूत्रस्था—इति=लण् सूत्र में स्थित अकार के साथ उच्चारण किया गया रेफ र् और ल् का बोधक हो। 'अ' के इत् होने से उसका हल में ग्रहण नहीं हुआ।

(२९) उः षष्ठ्यन्तम् (ऋ स्थाने) अण्-रपरो भवति, ऋ तीस प्रकार का संज्ञा प्रकरण में कहा गया। तत्स्थाने=ऋ के स्थान में जायमान (उत्पन्न) अण् रपरः सन्नेव=होकर ही प्रवृत्त हो। यहाँ 'र' प्रत्याहार मान्य है। ताकि 'र' से ल का भी बोध हो। ऋ तथा ऌ के स्थान में जायमान अण् क्रम से रपर् तथा लपर हो। यथा—कृष्णस्य ऋद्धिः=कृष्णसम्बन्धी सम्पत्ति ऐश्वर्य, अर्थ का प्रकाशक कृष्ण+ऋद्धिः अत्र पूर्व में अकार तथा पर में ऋकार इन्ही दोनों के (पूर्व पर) स्थान में एक ही गुण आदेश अकार हुआ। यद्यपि अ और ऋ के स्थान दर्शन में एकता, समान स्थान नहीं है। स्थानकृत सादृश्य नहीं मिलता, कण्ठ स्थानी अकार का मूर्धा स्थानी ऋ के साथ स्थान समान नहीं है, एवं मूर्धा स्थानी ऋ का अ के साथ सादृश्य नहीं मिलता तथापि 'नष्टाश्वरथन्यायेन' एक का रथ टूटा घोड़ा है। दूसरे का घोड़ा मरा रथ है। घोड़ा रथ दोनों के संयोजन से ही यात्रा कार्य सम्भव है। दोनों में अभाव की बराबरी ही तुल्यता है। ऐसे ही 'अ' का कण्ठ स्थान है तो मूर्धा नहीं। ऋ का मूर्धा है तो कण्ठ नहीं। अभाव का सादृश्य है जैसे—अवसर संगति के अनुसार रथ घोड़े का सामञ्जस्य जुड़ता है, वैसे ही अ तथा ऋ अवसरवाही प्रवृत्ति से जुड़ गये। तो दोनों कण्ठ मूर्धा बन गये। (अरारावेति वाच्यम्) के अनुसार अर् गुण हुआ। रेफ का उर्ध्वगमन जैसे—तुम्बिकातृणकाष्ठञ्च तैलं जलं समागमे। उर्ध्वस्थाने सम्प्रयन्ति रेफाणामीदृशगतिः जल में तैल, तृण, काष्ट, जैसे उपर हो जाते हैं। एवं आधा रेफ सिर पर सवार होता है, वर्ण सम्मेलने कृष्णर्द्धिः। स्वरं दृष्ट्वा अधोयाति हलं उपरि गच्छति। खर्यवसाने विसर्गः स्यात् त्रिधा रेफस्य वै गतिः। तवल्कारः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः । तवल्कारः । ३० लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९ । अवर्ण-पूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे । ३१ पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१ ।

सपाद-सप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । हर इह । हरयिह । विष्ण इह । विष्णविह । ३२ वृद्धिरा-

---

तव + लृकारः (तुम्हारी टेढ़मेढ़ कूबड़) समासार्थमें "आद्गुणः," पूर्व में अकार, पर में लृकार, दोनों के स्थान में उरणरपरः सूत्र सहयोग से लपरविशिष्ट अल् गुण हुआ । तवल्कारः । तुम्हारी ल्ट की तरह टेढ़ आकृति (३०) लोपः = अदर्शनं, शाकल्यस्य = शाकल्य नामक आचार्य के मत में । अवर्णपूर्व में हो ऐसा पदान्त यकार वकार उसका लोप हो । अश् प्रत्याहार के अक्षर परे । अन्य आचार्य के मत में लोप नहीं होता । इससे विकल्प सिद्ध है ।

(३१) पूर्वस्मिन्निति पूर्वत्र, पूर्व से परका आक्षेप, दोनों दिशा-वाची शब्द हैं, पूर्व की अपेक्षा परं असिद्धम् = जहाँ दिशा वाची पूर्व या पर शब्द हो, वहाँ अवधिबोधक पर या पूर्वपदका आध्याहार अपेक्षित है । पूर्व की कर्तव्यता में परशास्त्र असिद्ध हो । ८ । २ । १ । का सूत्र 'पूर्वत्रासिद्धम् है । उसके पूर्व सवा सात अध्याय्—जिसका वाचक सपादसप्ताध्यायी शब्द है । उसके प्रति पश्चात् (पर) में शेष तीन पादका वाचक त्रिपादीशास्त्र । अतः अर्थ निकलाकि सपादसप्ताध्यायीके प्रति त्रिपादीशास्त्र असिद्ध हो । इस विधानसे विधिसूत्र हुआ । अधिकारसूत्र होनेके लिये उत्तरोत्तर सभी त्रिपादीसूत्रोंमें जाकर पूर्वके प्रति परको असिद्ध करता है, इसलिये कहाकि—'त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम" । पादेन सहिता सपादा, सप्तानाम् अध्यायानां समाहारः सप्ताध्यायी (त्रिलोकी इव) सपादा चासौ सप्ताध्यायी च सपाद-सप्ताध्यायी तां प्रति त्रयाणां पादानां समाहारः त्रिपादी (त्रिलोकी) असिद्धा असिद्धवत् भवतीत्यर्थः यथा— हरे + इह । अत्र एकारस्थाने एचोऽय इति अय् आदेशे अचि परे । पदान्तयकारस्य शाकल्याचार्यमते लोपे अशि परे 'इह' इकारः । हर इह अत्र अकारेकारयोः स्थाने गुणे प्राप्ते, जो सपादसप्ताध्यायी है, उसकी दृष्टिमें त्रिपादी लोप के असिद्ध होने से गुण नहीं हुआ । हर इह । अन्य के मत में य लोप नहीं होता तो 'हरयिह' बनता है । हे हरे इह = संसारे मां पातु = रक्षतु । विष्णो + इह ओकारस्थाने अव् आदेशे अच्परे इकारः । शाकल्याचार्यस्य मते वकारस्य लोपे, विष्ण इह । अत्र गुणो न प्राप्नोति गुणदृष्टचा यलोपस्य असिद्धत्वात् । अन्यमते वकारस्य लोपो न भवति विष्णविह । हे विष्णविह मह्यं धनं ज्ञानञ्च देहि ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दैच् १।१।१। आदैचच वृद्धिसंज्ञः स्यात्। ३३ वृद्धिरेचि ६।१।८८। आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः। कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठचम्। ३४ एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९। अवर्णा-

---

३२. वृद्धिः आत्, ऐच् त्रिपदं सूत्रम्। आत्=आकारः, ऐच्=ऐ, औ। चकारात्=आर् आल्को भी वृद्धिसंज्ञा हो। आत्का तपर अपने पूर्व आ तथा पर ऐ, औ, के समान मात्राकाल का बोधक है। यह वृद्धि द्विमात्रिक ही है।

३३. वृद्धिरेचि=वृद्धिः एचि, द्विपदं सूत्रम्। **अवर्ण १८ अकार से एचि= ए ऐ, ओ औ परे रहते, पूर्व तथा पर के स्थान में एक ही वृद्धि** आदेश हो। यह वृद्धि गुण का अपवाद – बाधक है 'निरवकाशो विधिरपवादः' अपवदति= दूरीकरोति प्रतिपक्षिणम्। अपोद्यत इति अपवादः। जो निरवकाश है कहीं प्रवृत्ति नहीं है। वही अपवाद है यन्नैवं। तन्नैवं। **कृष्णैकत्वम्** – यथा—कृष्ण+एक-त्वम् **'वृद्धिरेचि'** से कृष्ण का अकार तथ। पर में 'ए' दोनों के स्थान में प्राप्त गुण को बाध करके वृद्धि एकादेश हुआ, एच् परे एकारः। यद्यपि वृद्धि 'आ, ऐ, औ', तीन है' तथापि स्थान दर्शन करने पर **अन्तरतमः**=अधिक सन्निकट। अत्यन्त सदृश आदेश हो। कण्ठतालुस्थानी अकार एकार के स्थान में कण्ठतालु स्थानी 'ऐ' वृद्धि हुई। **कृष्णैकत्वम्**। कृष्ण की एकता अखण्डता (ब्रह्म-शक्ति) का ज्ञान करानेवाली वृद्धि सन्धि है। गंगा+ओघः सं-सं, अत्र अवर्णः गङ्गायाः आकारः एचि=ओकार परे, पूर्व पर स्थाने आद्गुण इति प्राप्तं गुणं बाधित्वा 'वृद्धिः एकादेशो जातः। **गङ्गौघः**। कण्ठोष्ठ स्थानी औकारः किञ्चित् स्थान समानता अस्ति। अस्मिन्वर्षे महान् गङ्गौघः (बाढ़) समागत्। गङ्गा की तेज धारा इस संयुक्त अर्थ की प्रकाशिका वृद्धि है।

सकलगुणविशेषता च ऐश्वर्यम्। देवानामैश्वर्यम् (सर्वस्वम्) समास के अर्थ में संहितासंज्ञा के नित्य होने से देव+ऐश्वर्यम्। यहाँ भी पूर्व अकार पर ऐकार दोनों के स्थान में प्राप्त गुण को बाँधकर वृद्धिरेचिसूत्र से कण्ठतालु स्थानी ऐकार वृद्धि हुई। **देवैश्वर्यम्**। उत्कण्ठायाः=उत्सुकतायाः भावः **औत्कण्ठ्यम्**। कृष्णस्य औत्कण्ठ्यम्। उत्सुकता अर्थ में कृष्ण+औत्कठ्यम्। यहाँ पूर्व अकार पर में औकार के साथ मिलित स्थान में कण्ठोष्ठस्थानी औ वृद्धि हुई। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। कृष्ण भगवान् की एकता=संगठन, अखण्डशक्ति, राधाजी गङ्गा की धारा के तुल्य हैं और देवताओं का ऐश्वर्य (सर्वस्व) है उन्हींके विषय में कृष्ण की उत्कण्ठा, लालसा, चाह, अभिलाषा (अधिक है)।

(३४) एतिश्च एधतिश्च ऊठ्च इति एत्येधत्युठः तेषु एत्येधत्युठ्सु। इस सूत्र में एचि, आत् अनुवर्तते। एच् का अन्वय एति एधति के साथ है। ऊठ् के

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

देजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। पररूपगुणापवादः। उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्—उपेतः। मा भवान् प्रेदिधत्। (अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्) अक्षौहिणी सेना। (प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु)

साथ नहीं। क्योंकि एजादि उठ् कहीं नहीं मिलता। अतः वृत्ति में **अवर्ण से एजादि एति, एधति परे हो या अवर्ण से उठ् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में एक ही वृद्धि आदेश हो।** यह वृद्धि पररुप (एङिपररुपम्) तथा गुण (आद्गुणः) दोनों का अपवाद=बाधक है। यथा=उप+एति। यहाँ अवर्ण उप 'प' में 'अ' एजादि 'एति' परे अकार एकार दोनों के स्थान में प्राप्त गुण को बाँधकर 'वृद्धिरेचि' से वृद्धि प्राप्त है, तं प्रवाध्य पररुपं प्राप्नोति। पररूप को बाँधकर उक्त सूत्र से विशेष वृद्धि हुई। **उपैति।** शिष्यः गुरुमुपैति भार्या वा। उप=समीपे एधते=वर्धते अर्थ में उप+एधते। यहाँ भी अकार एकार के स्थान में प्राप्त गुण, वृद्धि, पररूप का क्रमशः बाधन होता हुआ उक्त सूत्र से वृद्धि एकादेश हुआ। दिलीपः लताप्रवानमुपैद्यते। प्रष्ठ+उह् इति दशायाम् अकार-उकारयोः स्थाने वृद्धिरेकादेशे प्रष्ठौहः प्रष्ठं (जूआ)॥

उहः=नद्धः नाधा गया 'पाटा' क्षेत्र समीकरणकाष्ठ जोतारवेतको समतल करनेवाला इत्यर्थः। एजाद्यौः किम् सूत्रमें एति, एधति, का विशेषण एजादि क्यों माना? इसलिए कि उप+इतः में वृद्धि न हो। (समीपं प्राप्नोति) यह सत्य अर्थ वृद्धि होनेपर न होता। शब्दका स्वारस्य (निजीअर्थं) नष्ट हो जाता। अतः एजादि शब्द रखा।

एवं मा भवान् प्र+ईदिधत् आप न बढ़ें, इस अर्थमें गुणसन्धि ही समर्थ है। वृद्धि होनेपर उक्त सन्ध्यर्थ असम्भव हो जायेगा। इसी लाभ के लिए एजादि विशेषण दिया।

सूत्रकारस्य न्यूनतां दृष्ट्वा वार्तिककारः प्रपूरयेत्। केवल एति, एधति उठ्परे ही नहीं अपितु अन्यत्रापि गुणापवाद वृद्धि आवश्यक है। अतः बोले अक्षादिति- **अक्षशब्दका अवयव अकारसे, उहनी शब्दका अवयव अच् परे रहते पूर्व परके स्थान में वृद्धि हो।** सेना का परिमाण विशेष अक्षौहिणी है। अक्ष+उहिनी यहाँ अवर्णसे उकारपरे प्राप्त गुण को बाधकर (वा०) से वृद्धि हुई। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' से णत्व अक्षौहिणी। **अयुतञ्च नागा त्रिगुणी रक्षानां लक्षैक योधा दशलक्षवाजिनाम्। पदातिसङ्ख्या षट्कोटित्रिशतः अक्षौहिणी तां मुनयो बदन्ति॥**

प्रादु इति=**प्रशब्दावयव अकारसे ऊहः उढः उढिः एषः एष्यः इन शब्दोंके अवयव अच् परे रहते पूर्व पर वर्णोंके स्थानमें वृद्धि (एकादेश)**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः। (ऋते च तृतीयासमासे) सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किम्--परमर्त्तः।

(प्र-वत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानामृणे) प्रार्णम् वत्सतरार्णम् इत्यादि।

३५ उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५९। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः

हो। श्रेष्ठ तर्क अर्थमें प्र+ऊहः प्राप्त गुण बाधकर वार्तिकसे वृद्धि हुई प्रौहः। प्रकर्षस्तार्किको वाक्कीलः आगच्छति। अधिकभारवहन शक्तिशाली अर्थका प्रकाशक प्र+ऊढः में अकार उकार के स्थान में गुणापवाद वृद्धि वार्तिक से हुई। प्रौढः। अयम् विद्वान् धनवान्=वा प्रौढो वर्तते। अधिक शक्ति (मजबूत) अर्थ की प्रकाशिका प्र+ऊढिः में पूर्व पर अ् उ् के स्थान में गुणापवाद वृद्धि सन्धि हुई। मम् प्रौढिः (अतुलनीयाः)। प्रेरणा अर्थका प्रकाशक प्र+एषः इस पद विच्छेद में अ, ए, के स्थान में प्राप्त गुण, वृद्धि; पररुप, एक दूसरे को बाधते हुए अन्त में उक्त वार्तिक से वृद्धि हुई।

ईश्वरस्य प्रैषः (प्रेरणा) प्रचलति सर्वत्र। प्रेषितुं योग्यः प्रैष्यः (सेवकः) प्र+एष्यः में पूर्ववत् वृद्धि। (वा०) अवर्ण से ऋत शब्द का अवयव अच् परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि हो। तृतीया समास का अर्थ हो तो। सुख हेतु से ऋतः (प्राप्तः युक्त) सुख से पूर्ण सुखी अर्थ तृतीया समासार्थ है। तब सुखेनऋतः सुख+ऋ इति दशायां गुण को बाँध कर वार्तिक से वृद्धि हुई। सुखार्तः। तृतीयेति किम्? तृतीया ग्रहण न होता तो किसी भी समास का अर्थ रहते ऋत के साथ वृद्धि होती। परमश्चासौ ऋतश्च इस कर्मधारय समास के "श्रेष्ठसुख प्राप्ति अर्थ रहने पर वृद्धि हो जाती। वह (न) हो, यही तृतीया पद देने का फल है। परमा (अत्यधिका) लक्ष्मी यस्य असौ परमः। सचासौ ऋतश्च परमर्तः। लक्ष्मीवान् धनवान्, नम्रः। (वा) प्रवत्सतर कम्बल वसन (वस्त्र) ऋण, दशन शब्दों का अवयव अकार से ऋण शब्द का अवयव अच् परे पूर्व परके स्थान में वृद्धि हो। प्रकर्षम् (अधिकं) ऋणम्। बहुत अधिक (कर्जा उधार) अर्थ का बोधक प्र+ऋण यहाँ वार्तिक से प्र' का अ और ऋण का 'ऋ' मिलकर आर् वृद्धि। प्रार्णम्=बहुत ऋण। वत्सतराय ऋणं, बछड़े के लिये उधार अर्थ का वाचक वत्सतर+ऋण, अत्र पूर्व अकारः, पर ऋकारः तयोः स्थाने वृद्धौ वर्णसम्मेलने वत्सतरार्णं सिद्धम्। एवं कम्बलाय ऋणं, वसनाय ऋणम्, ऋणाय ऋणम्। अर्थमें कम्बल+ऋणम्। पूर्व पर अं, ऋ के स्थान में वृद्धिः। कम्बलार्णं। वसनार्णम्। ऋणार्णम्=एक ऋण उतारने के लिये दूसरा ऋण लेना ही ऋणार्ण है। दशभ्यो ऋणं दशार्णम्। दश व्यक्ति के लिये ऋण।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्युः। प्र परा अप सम् अनु अव् निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप एते प्रादयः। ३६ भूवादयो धातवः १।३।१। क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः। ३७ उपसर्गादृति धातौ ६।१।९१। अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति।

---

(३५) (धात्वर्थफल जनिकायाः) क्रियायाः योगेः सम्बन्धे उपसर्गो = उप = समीपे सृज्यन्ते, समीपस्थशब्दस्य विशेषार्थाः प्रकाश्यन्ते यैस्ते उपसर्गाः। प्रादयः = प्रपरा अपसम् इत्यादयः क्रिया से जुड़े हों तो उपसर्ग संज्ञावाले होते हैं। समीपस्थ पद के विशेष अर्थ को प्रकाशित करते है। यथा = हरणार्थक हृधातु से हार बनता है। जिसका हरणक्रिया अर्थ है। प्र के जुड़जाने से प्रहार (कठिन चोट) विशेषार्थ हुआ। वि उपसर्ग से विहार, संहार आहार परिहार, ये विशेषार्थ उपसर्ग से प्रकाशित होते हैं। मूल में सभी प्रादि परिगणित है।

(३६) भूश्च वाश्च भूवौ, आदिश्च आदिश्च आदी, एक आदि का इत्यादि अर्थ है दूसरे आदि का सदृश (समान, तुल्य) अर्थ है। भू० इत्यादि धातु यदि 'वा' धातु के सदृश (तुल्य) हो तो धातु संज्ञा हो। वा (गतिगन्धनयोः) धातु के गमन, गन्ध अर्थ से क्रियावाची अर्थ स्पष्ट है। उसी की समानता (सादृश्य) क्रियावाची 'भू' से है। अतः वृत्ति से "क्रियावाची भ्वादि को धातुसंज्ञा हो"। ऐसा कहा। (३७) उपसर्गात् = उपसर्गसंज्ञक (समीपस्थ पद के अर्थ बोधक) शब्दसे ऋति = ऋकार आदि में हो ऐसा धातु परे अवर्णान्त उपसर्ग से 'ऋ' अक्षर आदि में हो तो ऐसे धातु परे रहते पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो। यथा—प्र + ऋच्छति। यहाँ ऋच्छति क्रिया है अतः धातु संज्ञा हुई। उसके योग में प्रकर्ष गमन अर्थ व्यक्त करने के लिये प्र को उपसर्ग संज्ञा हुई। अवर्णान्त उपसर्ग 'प्र' का 'अ' ऋकारादि धातु ऋच्छति पूर्व अ, पर ऋकार के स्थान में गुणापवाद वृद्धि हुई प्रार्च्छति (शीघ्र गच्छति) इन्द्रियों को वश में करना। मूर्तिभाव।

(३८) एङि = ऐ, ओ, परे पररूपं – पूर्व वर्ण का पर वर्ण के रूप में होना। अकारान्त उपसर्ग से परे एङ् प्रत्याहार के अक्षर आदि में हो जिस धातु के उसके परे रहते पूर्व अकार पर के रूप में एक आदेश हो। यह पररूप उपसर्ग और धातु के सम्बन्ध का प्रकाशक है। यथा प्र + एजते अवर्णान्त उपसर्ग प्र' प्रकर्ष कम्पन अर्थ प्रकाशक 'प्र' का अ एङादि धातु एजते (जो कम्पन अर्थवाला है। अकार एकारका रूप पा गया, प्रेजते। समीप में चलने या जलने अर्थ में। उप + ओषति यहाँ पूर्व का 'अ' ओषति के ओकार में मिलकर पररूप एकादेश हुआ। उपोषति। पास में चलता या जलता है या उपवास करता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३८ एङि पररूपम् ६ । १ । ९ । आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेजते । उपोषति । ३९ अचोऽन्त्यादि टि १ । १ । ६४ । अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् (शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्) तच्च टेः । शकन्धुः । कर्कन्धुः । मनीषा । आकृतिगणोऽयम्—मार्तण्डः । ४० ओमाङोश्च ६ । १ । ९५ । ओमि आङि चाऽऽत् परे

है । (३९) अचः = अच् का, अन्ते-भवः अन्त्यः । अच् आदि = इत्यादि टि = संज्ञा । अचो के मध्य में जो अन्तिम अच् है वह अच् आदि में हो जिस समुदाय के तट्टिसंज्ञा = उस (समुदाय को) टि संज्ञा हो । शकन्ध्वादि गण में जो पढ़े गये है उसको पररूप या शकन्ध्वादि गण पठित शब्दस्वरूप को तत्सिध्यनुगुण पररूपं कहना चाहिये वह पररूप किसको हो, तब बोले "तच्चटेः" तत्पररूपं टेर्भवति । वह पररूप टि को हो । यथा—एक देश विशेष का अन्धुः=कूपः । इस शब्दशक्ति का प्रकाशक पररूप है । शक + अन्धुः यह शकन्ध्वादि गण में पठित होने से पररूप हो वह पररूप टिको हो । टि क्या है ? तब बोले—अचोऽन्त्यादिटि अचो श में अ, क में अ, के मध्य में अन्त्य अच् 'क' का 'अ' वह किसके आदि में है तो व्यपदेशिवद्भावेन अपने ही आदि में है, उसी 'अ' को टि संज्ञा और पर का रूप मिला । शकन्धु । ऐसे ही कर्क + अन्धुः (बेरका फल) अर्थ प्रकाशक पररुप पूर्ववत्, समझें । मनसः + ईषा मनका प्रेरयिता बुद्धि, अर्थ में मनस् + ईषा यहाँ शकन्ध्वादिषु से पररुप का विषय, अचोऽन्त्यादिटि से टिसंज्ञक अस् है उसी को ईषा के ई रूप में होना पड़ा । **मनीषा । आकृतिं दृष्ट्वा स्वरुपं परिचाय्यगणो अनुसन्धेयः ।** यथा—मृत + अण्डः (मिट्टी का पिण्ड) अर्थ बोधक पररुप समझे । मृतण्डः तस्मादागतः मार्तण्डः = सूर्यः ।

(४०) ओम् च आङ् च ओमाङौ तयोः ओमाङोः । च = अत् पररुपञ्च अनुवर्तते । ओम् और आङ् परे हो तो अवर्ण से पररुप एकादेश हो । यथा—शिवाय + ओम् य के अ को ओ के रूप में पररुप होना पड़ा । उक्त सूत्र से । शिवायों नमः । अपने में न्यूनता शिव में माङ्गलिक गुण विशेषता का अनुभव पूर्ण नमस्कार अर्थ है । शिव + आं, + इह, अत्र 'व' में 'अ' तथा आ के साथ सवर्णदीर्घ प्राप्त है, जो बहिरङ्ग है । आ इह के स्थान में मिल कर गुण प्राप्त है, जो अन्तरङ्ग । क्योंकि 'धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम् । तद्भिन्नं बहिरङ्गम् धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग ('खास) है । वही बलवान् है, अतः गुण हुआ । शिव + एहि इति दशायां ओमाङोश्च से प्राप्त पररूप किसको हो, यहाँ आङ् दृष्ट नहीं है । तब निर्णायक नियमसूत्र बोले (४१) अन्तश्च,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवायों नमः। शिव+एहि। ४१ अन्तादिवच्च ६।१।८५। योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत् परस्यादिवत्। शिवेहि। ४२ अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१। अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतॄकारः। ४३ एङः पदान्तादति ६।१।१०९। पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्।

आदिश्च अन्तादी ताभ्यां तुल्यम् अन्तादिवत्। जो यह एकादेश है वह पूर्व पद का अन्तवत् = अन्तवर्ण के सदृश समझा जाय, परपद का आदि माना जाय एहि में जो गुण ए है वह पूर्व पद (आ) का अन्त समझा जाय। 'इह' का आदि जाना जाय। इससे उसी गुण में आङ् का धर्म झलकने लगा तब आङ् समझ कर पररुप हो गया। शिवेहि "हे शिवेहि मम कष्टं निवारय्। हे शिव आइये मेरा दुःख दूर करिये।

(४२) अकः = अ इ उ, ऋ ऌ, से सवर्णे—जिनकी आपस में सवर्णसंज्ञा हो ऐसा अच् परे दीर्घ = द्विमात्रिकः। अक् से सवर्णी = ताल्वादिस्थान और आभ्यातर प्रयत्न जिनके मिलते हों ऐसे अच् परे रहते पूर्वपर के स्थान में दीर्घ एकादेश हो। यथा—दैत्यानां दैत्यधर्मसम्बन्धिनाम् अरिः = शत्रुः विनाशकः अर्थ का प्रकाशक दीर्घ सन्धिः। दैत्य + अरिः। अत्र अक, दैत्य का 'अ' सवर्णी अच् अरिः का 'अ'। क्योंकि दोनों 'अ' के परस्पर सवर्ण संज्ञा सिद्ध है, तब पूर्व पर अकारों के स्थाने अकः सवर्णे दीर्घः। द्विमात्रिक एक आदेश 'आ' हुआ। दैत्यारिः। विष्णुः धर्मात्मा। श्रियः = लक्ष्म्याः ईशः = स्वामी, लक्ष्मी का अधिकृत मालिक। अर्थ में श्री + ईशः। अत्र अपि पूर्व ई का पर ई के साथ सवर्णसंज्ञा होने से प्राप्तयण् को बाधकर सवर्णी दीर्घ-एकादेशे 'ई'। श्रीशः लक्ष्मीपतिः भगवान्। विष्णूदयः। विष्णोः = विष्णुसम्बन्धिनः, उदयः = उन्नतिः विकाशः व्यापकत्वम्। विष्णु + उदयः अत्रापि दोनों दलों के सवर्णसंज्ञक अकारों के स्थान में सवर्णी दीर्घ एकादेशः। होतृ + ऋकारः यहाँ भी द्वयोः ऋकारयोः स्थाने सवर्णदीर्घे। होतॄकारः। होता = हवन कर्ता का ऋकार = चिह्न परिचय। इस दीर्घविधि में ऌकार का उदाहरण न होना उचित ही है। क्योंकि ऌ को दीर्घ नहीं होता। (४३) एङ् = ए, ओ, पदस्यान्त, पदान्तः तस्मात्, अति = ह्रस्व अकार पर। पदान्त ऐङ् से अत् = अकार परे रहते उसी अकार को पूर्ववर्ण के रूप में पूर्वरूप एकादेश हो। यथा—हे हरे मां अव = अव रक्ष इस वाक्यार्थ में हरे + अव अत्र प्राप्तस्य अय् आदेशस्य बाधनं कृत्वा पदान्त एङ् हरे में 'ए' उससे परे अव के अकार को पूर्व वर्ण 'ए' के रूप में एकार एकादेशो जातः। उसे पूर्वरूप एकादेश कहते है। एवं विष्णो + अव अत्रापि एङ् (ओ) से परे अकारं दृष्ट्वा तम् एङः पदान्तादति सूत्रं पूर्वरूपमकरोत्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हरेऽव। विष्णोऽव। ४४ सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।१२२। लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते। गोअग्रम् गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम्—चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम्–गोः।

४५ अनेकाल् शित् सर्वस्य १।१।५५। इति प्राप्ते। ४६ ङिच्च १।१।५३। ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्। ४७ अवङ् स्फोटायनस्य

विष्णोऽव। हे विष्णो त्वं सर्वं रक्ष।

(४४) सर्वस्मिन्निति सर्वत्र = सब जगह विभाषा = विकल्पसे लोक और वेद में एङन्त – ए, ओ, हो अन्त में जिसके ऐसे गोशब्द को अति परे रहते प्रकृति भाव हो पदान्त में। यहाँ प्रकृतिभाव का अपना स्वरूप रह जाना अर्थ है। उसी भाव में रहना। अन्य सन्धि (विकार) न होना। गवाम् अग्रम् (गायका अग्रभाग) अर्थ का संयोजिकाशक्तिप्रकाशक प्रकृतिभाव। गो + अग्रम्—यहाँ प्राप्त पूर्वरूप को बाधकर लोक और वेद में प्रसिद्ध एङन्त गोशब्द को पदान्त समझ कर अकार परे रहते प्रकृतिभाव (अपने स्वरूप में स्थिर) कर दिया सन्धि का अभाव ही प्रकृतिभाव है। पक्ष में पूर्वरूप होकर गोऽग्रम् सिद्धम्। एङन्तस्य किम् ? सूत्र में एङन्त गोशब्द न कहते, तब चित्रा गावो यस्य पुरुषस्य सः चित्रगु + अग्रम् अत्रापि प्रकृतिभावः स्यात्। तब विचित्रगाय वाला (स्वामी) अर्थ न होता। यण् सन्धि करने पर वह अर्थ सुतरां सिद्ध है। पदान्ते किम् ? पदान्त गो शब्द न कहते तब गो + अस् (गाय सम्बन्धी) यहाँ षष्ठी का एकवचन 'अस' के अकार परे रहते गो के ओ को प्रकृतिभाव हो जाता। गो अस् गाय सम्बन्धि अर्थ न सिद्ध होता। पदान्त शब्द के रहते केवल गो, न सुबन्त है, न पदान्त है, न प्रकृति भाव होगा।

(४५) अनेकाल् न एको अल् = अइउण् से हल् तक वर्ण अल् है। वे एक न हों तब अनेकाल् है। अनेकवर्णक आदेश और (श् इत्, यस्य स शित्) श हो इत्सञ्ज्ञक जिसका उसे शित् कहते हैं। सर्वस्य = ये दोनों आदेश सम्पूर्ण के स्थान में होते हैं। इन्हें सर्वादेश भी कहते है।

(४६) 'ङ्' इत् यस्य स ङित्, च = अनेकाल् भी। अनेकाल् आदेश ङित् होने पर अन्त्यअल् (अक्षर) के स्थान में ही हो (४७) स्फोटायनस्य = स्फुटति = प्रकाशते अर्थों अनेन स्फोटः, स आयनं गृहं (आधारो) यस्य सः स्फोटायनः। स्फोटः के प्रवर्तक आचार्य स्फोटायन के मत में पदान्त में एङन्त गो शब्द के अन्त्य अल् के स्थान में 'अवङ्' आदेश विकल्प से हो, अचि परे। यथा—गो + अग्रम् यहाँ 'गो' में ओ को अवङ् आदेश प्राप्त हुआ। क्योंकि अनेक अल् (वर्ण वाला)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६ । १ । १२३ । पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि । गवाग्रम् । गोऽग्रम् । पदान्ते किम् गवि । ४८ इन्द्रे च ६ । १ । १२४ । गोरवङ् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः । ४९ दूराद्धूते च ८ । २ । ८४ । दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा । ५० प्लुत-प्रगृह्या अचि नित्यम् ६ । १ । १२५ । एतेऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति । ५१ ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्

आदेश सम्पूर्ण के स्थान में होने का नियम है। किन्तु अवङ् के ङित् होने से 'ङिच्च' सूत्र से अन्त अल् 'ओ' के स्थान में अवङ् आदेश हुआ। "अकः सवर्णे दीर्घः" **गवाग्रम्**। अवङ् अभाव पक्ष में पूर्वरूप। **गोऽग्रम्**। **पदान्ते किम्?** यह अवङ् पदान्त गो में ओ को होता है। गो + ई यहाँ गो पदान्त नहीं है अवङ् न होकर अय् आदेश हुआ **गवि** (गाय में) गव्यमस्तु।

(४८) **गवाम् इन्द्र** = गायों का स्वामी, "श्रीकृष्णः वृषभो (साँड़) वा। गो शब्द को अवङ् आदेश हो, इन्द्र परे। गो + इन्द्रः यहाँ अवङ्। अनुबन्धलोप तथा गुण होने से गवेन्द्रः। तगड़ा अनड्वान् (बैल)।

(४९) **दूरात् हूते** = विप्रकृष्टात् = दूर से सम्बोधन, आवाहन, ध्यानाकर्षण, अर्थ वाच्य हो तो वाक्य के टि की प्लुतसंज्ञा हो विकल्प से।

(५०) **प्लुतः** = प्लुतसंज्ञक, **प्रगृह्य** = प्रगृह्यसंज्ञक **अचि** परे **नित्यम्** = अविकल्प। प्लुत और प्रगृह्य को अच् परे रहते नित्य ही प्रकृतिभाव हो। हे कृष्ण अत्र आगच्छ गौश्चरति। यहाँ सम्बोधन पद श्री कृष्ण है, दूर से उन्हीं का बुलावा है। वाक्य का टि 'ण' में अ हैं, उसको प्लुत संज्ञा हुई। वहाँ प्राप्त सवर्ण दीर्घ को बाधकर प्रकृतिभाव हो गया। दीर्घ सन्धि नहीं हुई। अन्यथा उक्त अर्थ का अबोध होता।

(५१) ईदन्त ऊदन्त एदन्त जो द्विवचन उसको प्रगृह्य संज्ञा हो। यथा— **हरी एतौ** (ये दोनों हरि या सिंह है) इस अर्थ में समर्थ वाक्य है, यदि यण् होता तो उक्त अर्थ दब जाता। अतः व्यपदेशिवद्भाव से या परादिवद्भाव से हरी को द्विवचनान्त ईदन्त मानकर प्रगृह्यसंज्ञा तथा प्रकृतिभाव = जैसा था, वही समर्थ है। ये दोनों विष्णु है, इस अर्थ का बोधक **विष्णू इमौ**। यहाँ प्राप्त यण् का निवारण प्रगृह्य संज्ञा तथा प्रकृतिभाव से करते है। यण् होता तो उक्त अर्थ दब, जाता। ये दोनों गङ्गा है। इस वाक्यार्थ में समर्थ, **गङ्गे + अमू** यहाँ भी ए' के स्थान में प्राप्त अय् आदेश को रोकने के लिये प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभावः। यदि अय् होता, उक्त अर्थ अस्पष्ट होता। (५२ . **अदस् शब्द सम्बन्धी मात्** = **मकार से परे ईदूतौ** = **ईकार और ऊकार को प्रगृह्य संज्ञा हो**। यथा ये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१।१।११। ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू। ५२ अदसो मात् १।१।१२। अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। मात्किम्—अमुकेऽत्र।

५३ चादयोऽसत्त्वे १।४।५७। अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः। ५४ प्रादयः १।४।५८। एतेऽपि तथा। ५५ निपात एकाजनाङ् १।१।१४। एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्। इ इन्द्रः। उ उमेशः। (वाक्यस्मरणयोरङित्) आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्।

सभी स्वामी हैं यह अर्थ बोधक वाक्य **अमी + ईशाः** यहाँ प्राप्तसवर्णदीर्घ को बाँध कर अदस् सम्बन्धिमकार अमी का 'म' उससे परे ईकार को प्रगृह्य संज्ञा, जिसका फल प्रकृतिभाव है। एवम् **अमू आसाते**। ऊकार को प्राप्त यण् बाधकर प्रगृह्यसंज्ञा, प्रकृतिभाव हुआ। बलराम, श्रीकृष्ण बैठे हैं। यह अर्थ प्रकृतिभाव से असन्दिग्ध है। **मात्किम्?** यदि अदस् शब्द का मकार ऐसा अर्थ न होता, तो **'एकारोऽप्यनुवर्तेत'** एकार की भी अनुवृत्ति हो जाती। तब **अमुके+अत्र** यहाँ एदन्त मानकर प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभाव से पूर्वरूप सन्धि न हो पाती। 'वे यहाँ हैं' यह अर्थ स्पष्ट न होता। अतः यहाँ **मात्** ग्रहण किया।

(५३) **चादयः**=चवाह इत्यादयः **असत्त्वे**=सत्त्वं द्रव्यम् **लिङ्ग-संख्यान्वयि तद्भिन्नमसत्वम्** लिङ्गसंख्यान्वयरहितम्। **अद्रव्यार्थक**=लिङ्ग-संख्यान्वयशून्यः **चादि** 'निपात' संज्ञक होते है। निपतन्ति अनेकेषु अर्थेषु ये ते निपाताः। जो जिस प्रसंग में रहे उसके अनुकूल अर्थ कहने को विवश हों, वे निपात् हैं। (५४) **प्रादयः**=प्रपराअप्सम् आदि ये भी निपात संज्ञक है। अनेक अर्थ वाले है। समीप शब्द का विशेष अर्थ प्रकाशक है। (५५) **एक अच् अनाङ् निपात्ः**। एक अच् रूपवाला चाहे चादि का ही या प्रादि का आङ् रूप निपात को छोड़ कर प्रगृह्यसंज्ञक हों। **इ + इन्द्रः** यहाँ इ को चादिगण जानकर **निपात** संज्ञक माना। दूसरे इकार के साथ प्राप्त सवर्ण दीर्घ, वारण के लिये एक अच् आङ् वर्जित निपात 'इ' है, उसे प्रगृह्य संज्ञा प्रकृतिभाव हो गया, "आश्चर्य है कि ये इन्द्र" हैं। **इ विस्मये** एवम् उमेशः को समझे। **उ**=**वितर्के** (मेरा तर्क है कि निश्चित उमा=पार्वती के ईश—स्वामी महादेव हैं। इस वाक्यार्थ में प्रकृति भाव सिद्ध है। **आङ् शब्द बाक्य** अर्थ में और स्मरण अर्थ में ङित् नहीं होता। अन्यत्र ङित् होता है। यथा—

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः।
एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित्॥

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अन्यत्र ङित् । ईषदुष्णम् ओष्णम् । ५६ ओत् १ । १ । १५ । ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः । अहो ईशाः । ५७ संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १ । १ । १६ । सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे । विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति । ५८ मय उञो वो वा ८ । ३ । ३३ । मयः परस्य उञो वो वा अचि । किम्वुक्तम्, किमु उक्तम् ।

५९ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६ । १ । १२७ । पदान्ता इको

वाक्य का उदाहरण—आ एवं नु मन्यसे । ठीक तुम ऐसा मानते हो । निपात 'आ' 'ए' के स्थान में प्राप्त वृद्धि बाधन के लिये प्रगृह्यसंज्ञा प्रकृतिभावो भवति । स्मरण का, आ एवं किल् तत् (हाँ भाई निश्चित् ऐसा ही था) । यह स्मरण हुआ । यहाँ भी आ ए के बीच प्राप्त वृद्धि बाधक प्रगृह्यसंज्ञादिकार्य निपात मानकर हुआ । अन्यत्र ङित् । ईषदुष्णम् थोड़ा गरम (चाय) अर्थ में आ+उष्णम् 'आ' को ङित् मानकर प्रगृह्य संज्ञादि नहीं हुई किन्तु गुण हो गया ।

(५६) ओकारान्त निपात् की प्रगृह्यसंज्ञा हो यथा—अहो+इति यह ओकारन्त निपात है उसे प्रगृह्य संज्ञा होनेपर प्रकृति भाव से अव् आदेश नहीं हुआ । आश्चर्य है, समर्थ है । (५७) सम्बुद्धौ शाकल्यस्य इतौ अनार्षे = ऋषिः= (वेदः मन्त्रद्रष्टा च) । तस्मात् जातः आर्षः न आर्षो अनार्षः = अवैदिकः । सम्बुद्धिसंज्ञक को निमित्त = कारण मानकर यदि ओकार हुआ हो तो, उसे प्रगृह्यसंज्ञा हो अवैदिकः = लोकप्रसिद्ध इति शब्द परे रहते । अनार्ष शब्द का अवैदिक अर्थ है यथा—विष्णो + इति शाकल्यस्य = आचार्य के मत में सम्बुद्धि को कारण मानकर प्रकट हुआ ओकार विष्णो में 'ओ' । लौकिक 'इति' स्पष्ट हैं । यहाँ प्राप्त अवादेश को बाँधकर प्रगृह्य संज्ञा तथा प्रकृति भाव हुआ । विष्णो इति । यह आप का है । प्रगृह्यसंज्ञा के अभाव पक्ष में अव् आदेश के व्' का लोप, विष्ण इति । लोप के अभाव में विष्णविति ।

(५८) मय् प्रत्याहार के अक्षर से परे उँञ् हो तो उसके स्थान में 'व्' विकल्प से हो अच् परे । किमु + उक्तम् । यहाँ मय् प्रत्याहार का अक्षर 'म' है उससे परे, उ को 'व्' हुआ । अचि परे·उक्तं का 'ऊ' किम्वुक्तम् । 'व' के अभाव में किमु उक्तम् । क्या कहा, इस अर्थ में दोनों समर्थ है । (५९) इकः = इक् प्रत्याहारस्थाः वर्णाः असवर्णे = इक् प्रत्याहारयोः वर्णयोः सवर्ण भिन्ने, समान जातिरहिते, ह्रस्व = एक मात्रिक । पद के अन्त में इक् = ई, ऊ, ॠ, ॡ हो तो उसको ह्रस्व हो । असवर्ण अच् परे रहते । यहाँ इक्त्वावच्छिन्न इक् जाति से भिन्न सवर्ण का अभाव लेते है । सामान्याभाव समझे । इक् प्रत्याहारनिष्ठ सवर्णत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता का अभाव है । या कार्यमनुभवन् कार्यी निमितत्त या

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ह्रस्वो वा स्युरसवर्णेऽचि । ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्रयत्र। पदान्ता इति किम्—। ६० अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६। अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ। (न समासे) वाप्यश्वः। ६१ ऋत्यकः ६।१।१२८। ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः। ब्रह्मर्षिः। पदान्ताः किम्—आर्च्छत्।

इत्यच्सन्धिः

नाश्रीयते। इक् प्रत्याहार स्थानी है ह्रस्व रूप कार्य का अनुभवकर रहा है। वह निमित्त (इक् परे) ह्रस्व का निमित्त नहीं बन सकता। इक् के अतिरिक्त वर्ण ही निमित्त बन सकते है। अतः "देवी उवाच" में ह्रस्व नहीं हुआ। उकार इक् में आता है वह निमित्त नहीं होगा। इक् का "असवर्णों" अच् अकार तथा एच् ही होगा। **चकार** के पढ़ने से **प्रगृह्यसंज्ञाप्रकृतिभाव** भी सूचित है। परन्तु ह्रस्व कहना ही पर्याप्त है क्योकि ह्रस्व **विधान के सामर्थ्य** से स्वर सन्धि (यणादि) नहीं होगे। **चक्री**=(चक्रधारी) अत्र=(यहाँ है) इस वाक्यार्थ में समर्थ **चक्री**+अत्र पदान्त इक् 'इ' है उसको ह्रस्व हुआ (प्रकृति भाव) यण् की निवृति हुई। शाकल्याचार्य के मत में अन्यमत में। यण् हुआ **चक्र्यत्र। पदान्ताः किम्?** सूत्र में पदान्त इक् क्यो कहा इसीलिये कि **गौरी+औ**। दो गौरी=देवी अर्थ में समर्थ पद में ईकार को ह्रस्व न हो किन्तु यण् हो। गौर्यो गोरीका ईकार पदान्त नहीं है। (६०) **अचः**=अच् प्रत्याहार सें **रहाभ्याम्** रकार हकार से, **द्वे**=द्वित्व। **अच्** से परे रेफ तथा हकार हो उससे परे यर्=य व र से शषसर्, तक अक्षर को द्वित्व विकल्प से हो। वहाँ अच् गौ का 'औ' उससे परे 'र्' उससे परे यर् =य् को द्वित्वम् गौर्य्यौ ।**पदान्त ग्रहण न** होता तब गौर्य्यौ। प्रयोग न बनता। (वा) **समासे**=समासार्थदशायां पदान्त इक् को ह्रस्वसहित प्रकृतिभाव न हो। यथा—वाप्याम् अश्वः। यहाँ सप्तमी समासार्थ (वावली में विद्यमान घोड़ा अर्थ) में वापी+अश्वः। पदान्त 'इक्' वापी में 'ई' उसको प्राप्त ह्रस्वसहितप्रकृतिभाव विधान (न समासे) वार्तिक से निषिद्ध हुआ, यण् **वाप्यश्वः**। (६१) **ऋत्यकः**। ऋति=ऋकारः परे पदान्त अ क् को ह्रस्व सहित—प्रकृति भाव हो। यथा—ब्रह्मा+ऋषिः—यहाँ ऋ परे ब्रह्मा के 'आ' को ह्रस्व सहितप्रकृतिभाव होने से गुण नहीं हुआ। पक्षे गुणः ब्रह्मर्षिः। वशिष्ठादिः। सूत्र में पदान्त न होता तो आ+ऋच्छत् यहाँ भी ह्रस्व सहितप्रकृति भाव हो जाता। पदान्त कहने से आ पदान्त नहीं है। आटश्चेति वृद्धिः आर्च्छत्। अनद्यतन भूतकालिकगमन, मूर्तिभाव के अनुकूल क्रिया। इत्यचसन्धि (अल्पाच्तर-मिति निर्देशात् न कुत्वम्।

॥ इति प्राभाकरीटीकायां सन्धिप्रकरणे अच्सन्धिः पूर्णः॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सन्धिप्रकरणे

हल्सन्धिप्रकरणम्

६२ स्तोः श्चुना श्चुः ८। ४। ४०। सकार-तवर्गयोः शकार चवर्गाभ्यां योगे शकार-चवर्गौस्तः। रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गि-

---

॥ हल्सन्धिः ॥

अच्सन्धिके पश्चात् हलोंकी सन्धि अवसरङ्गत है। हलां हल्सु वा सन्धिः हलोंके स्थानमें या हल्परे सन्धि। (संयोजनाशक्ति) ही हल् सन्धि है। जो पद-वाक्यका शक्तिप्रकाशन करती है। इस प्रकरणमें सभी सन्धियां हलंवर्ण से सम्बन्ध रखती हैं। जिनका कहीं क्रियाकारकारकभाव विशेषणविशेष्य, अभेद आदि सम्बन्ध अर्थ है। वाक्यमें विना सन्धिके भी शक्ति प्रकट है (६२) स्तोः सकार और तवर्ग (त थ, द, ध, न,) के स्थानमें श्चुना – शकार और चवर्ग – (च छ ज झ ञ) के योग (सम्वन्ध) में श्चुः = शकार चवर्ग हों। यहाँ स्थानी स और तवर्ग है। क्रमसे श और चवर्ग आदेश हो। इसमें यथासङ्ख्य (गणना क्रमसे, समझे "श्चुनाका योग पूर्व से हो या परसे। दोनों दशामें=शकार चवर्ग हो। यथा—रामस् + शेते। सकार है 'रामस्' का स् शेतेके श के योग (सम्वन्धमें) दन्त सको तालव्य 'श' हुआ, रामश्शेते। रामसोते हैं। रामकर्तृक वर्तमानकालिकशयन अर्थं तथा क्रियाकारकभावसम्बन्ध है। वाक्य में सन्धि के विवक्षाधीन होनेसे असन्धि भी रह सकती है। रामकर्तृक पुष्पचयन क्रिया अर्थंका वाचक वाक्य रामस् + चिनोति (पुष्पम्)

'स्तोः श्चुना श्चुः से यहाँ भी स्को 'च' के योगमें 'श्' हो गया। रामश्चिनोति। रामपुष्प चुनते हैं। क्रियाकारकभावसम्बन्ध है। सच्चित् – सदा-विद्यमानं चित् = ज्ञानस्वरूपं चैतन्यं ब्रह्मअर्थंका प्रकाशक सत् + चित् (चेतन सम्बन्धिनःसत्ता) इति दशायां 'स्तोःश्चुना'—सूत्रेण सतः तकारस्थाने अव्यवहित चकारयोगे श्चुत्वेन चकारे कृते सच्चित् इति। सदा विद्यमानं नित्यचेतनं ज्ञान स्वरूपं ब्रह्मका नित्यसम्बन्ध ही सन्ध्यर्थं है। विशेषणविशेष्य भावसम्बन्ध। हे शार्ङ्गिन् (शार्ङ्गधनुर्धारिन्) तव जयोऽस्तु इत्यर्थक शार्ङ्गिन् + जयः अत्र तवर्गः – नकारः तस्य स्थाने चवर्गः ञकारो जातः, चवर्गो जकारः (योगे) परे अस्ति।

६३ शात् = शकारसे परे तवर्गको श्चुत्व न हो। विश् + नः इत्यव-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ञ्जयः] ६३ शात् ८ । ४ । ४४ । शात् परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् । विश्नः । प्रश्नः । ६४ ष्टुना ष्टुः ८ । ४ । ४१ । स्तो ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे । ६५ न पदान्ताट्टोरनाम् ८ । ४ । ४२ । पदान्ताट्टवर्गात् परस्याऽनामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् ।

स्थायाम् 'श' के योग (सम्बन्ध) मे परे नकारस्य प्राप्तस्य श्चुत्वस्य शात् सूत्रेण निषेधो जातः । क्योंकि 'श' से परे न है । विश्नः = भाषणं, वीप्सा वा दो वार बोलना । तथैव प्रश् + नः । अत्रापि प्राप्ततस्य नस्थाने ञकारस्य (श्चुत्वस्य) शात्'' सूत्रेण निषेधो जातः प्रश्नः । पृच्छा (पूछनेकी इच्छा) श्चुत्व होने पर शब्दकी नित्यता और उक्तार्थकी शक्ति न होती ।

६४ ष्टुना—स्तोः की अनुवृत्तिः । अर्थः पूर्ववत् । स्तोः = सकार तवर्गके स्थानमें ष्टुना – षकारटवर्गके पूर्व या पर के योग में क्रमसे ष्टुः = षकार टवर्ग हो । सको ष, तवर्गको टवर्ग । षण्णां पूरणः षष्ठः । छठी सङ्ख्याकी पूर्ति करने वाले राम हैं इत्यर्थक, रामस् + षष्ठः सकार के स्थानमें ष्टुना ष्टुः से ष्टुत्व ष हुआ, 'ष' का योग है ही । रामष्षष्ठः । यहाँ रामका संख्याके साथ अभेदसम्बन्ध है (छठाँ राम) । रामका टीका करना या गमन अर्थमें रामस् + टीकते । यहाँ 'स' को टके योगमें ष्टुत्वेन ष् जातः रामष्षष्ठः । क्रियाकारकभावसम्बन्धः । सन्धिका विषय है, (पिष्लृ पेषणे) पेष्टा – पेषणकर्ता (पीसनेवाला) । पेष् + ता । अत्र 'ता' के 'त' को षके योगमें ष्टुत्व ट हुआ । पेष्टा = पिषति । चूर्णकरोति (चूर्णकारकः) । चक्रिन् + ढौकसे यहाँ न्को ष्टुत्वेन ण हुआ । हे चक्रधरिन् । हरे दुष्टान् (दमयितुं) गच्छसि ।

६५ 'न' इतिनिषेधवाचकः, पदान्तात् = पदके अन्तमें टोः = टवर्गसे, अनामः = नामशब्दको छोड़कर । पदान्तटवर्गसे परे सकारतवर्गके स्थानमें ष्टुत्व – षकार टवर्ग न हो । अनाम = यदि नामपरे हो तो ष्टुत्वका निषेध न हो । अर्थात् ष्टुत्व हो जाय । षट् + सन्तः । यहाँ पदान्त टवर्ग 'षट्' के टके योग में सन्त के 'स' को ष्टुनाष्टुः से प्राप्त ष्टुत्वका 'न पदान्त'–से निषेधो जातः । छ महात्मा अर्थकी शक्ति है । यदि ष्टुत्व होता, षट्षन्त ऐसा अनिष्ट, अशक्त रूप होता । षट्ते = वे छ हैं । इस अर्थका बोधक वाक्य षट् + ते । यहाँ भी प्राप्त ष्टुत्वका निषेध उक्तसूत्रसे हुआ अन्यथा षट्टे बननेपर उक्त अर्थकी शक्ति न रहती । पदान्तात्किम्: सूत्रमें पदान्त टवर्ग ऐसा न कहते तो अपदान्त टवर्गको भी ष्टुत्व निषेध होने लगता ।

ईट + ते को ष्टुत्वनिषेध होनेसे ईट्टे की सिद्धि न होती । (ईड् स्तुतौ) स्तुतिके अनकूल क्रिया अर्थ न होता । यहाँ ईट्का 'ट' पदान्त नहीं है । अतः निषेधो न भवति । ईट्टे = स्तुतिं करोतीत्यर्थः टोःकिम्—सूत्रमें टवर्गसे परे अर्थ क्यों किया ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

षट्सन्तः। षट्ते। पदान्तात् किम्—ईट्टे। टोः किम्—सर्पिष्टमम्। (अनाम्-नवति-नगरीणामिति वाच्यम्) षण्णाम्। षण्णवति। षण्णगर्यः। ६६ तोः षि ८।४।४३। न ष्टुत्वम्। सन्षष्ठः। ६७ झलां जशोऽन्ते

यदि वैसा न करते तो पदान्तसे परे सभीको (ष्टुत्व षकारःवर्ग) का निषेध होने लगता, और (पदान्तसे परे ष्टुत्व न हो) ऐसा अर्थ होता। तब अतिशयेन – अत्यधिकेन सर्पिः = घृतम् घीं की अधिकता इस अर्थमें सर्पिष्+तमम् यहाँ षकार से परे तमम्' के त को ष्टुत्वका निषेध हो जाता। तब सर्पिष् तमम् शब्द के अर्थ की बोधकता शक्ति नष्ट होती। अतः 'टोः' ग्रहण आवश्यक है। अतः पदान्त टवर्ग से परे ही ष्टुत्वका निषेध उचित है। ष्टुत्वे सर्पिष्टमम्। यदि पूर्व सूत्र से 'टु' की अनुवृत्ति तथा पञ्चम्यन्त विपरिणाम करके उक्त अर्थका लाभ करेंगे (तब एक योग (सूत्र) निर्दिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्तिश्च। टुके साथ षकी अनुवृत्तिका दोष होता। "सूत्रकारस्य न्यूनतां दृष्टवा वार्तिककारः प्रपूरयेत्"—सूत्रकारकी न्यूनता 'अनाम्' अंशमें देखकर वार्तिककार वार्तिक द्वारा पूरा करते हैं कि (वा) अनाम = नाम के साथ नवति, नगरी, को भी जोड़ना चाहिये, जिससे उनमें भी ष्टुत्वका निषेध न हो। षण्णां (गृहम् छ पुरुषोंका घर) अर्थमें षष्+नाम यहाँ ष्के योग में नामके न् को ष्टुत्वके निषेधका निषेध वार्तिक से होता है। फलतः विधि ष्टुत्व हुआ षष्+णाम्। झलांजशोऽन्ते, से षष् के 'ष्' को जश् 'ड' हुआ। उसको यरोऽनुनासिके'—सूत्र से परसवर्णे अनुनासिके ण् षण्णाम्। छ संख्याका, अभेद सम्बन्ध सन्ध्यर्थं। एवं षडधिका नवतिः (९६) संख्या अर्थका प्रकाशक षष्+नवतिः। में पूर्ववत् ष्टुत्व सन्धि हुई। एवं षडधिका नगर्य्यः की भी पूर्ववत् सिद्धि समझे। पक्ष में षड्णाम्, षड्णवतिः, षड्णगर्यः भी होता है।

(६६) तोः = तवर्ग को षि = षकार परे रहते ष्टुत्व नहीं होता। ६ सं० का पूरक (छठाँ सज्जन है) इस अर्थ का वाचक सन्+षष्ठः, यहाँ तवर्ग 'न्' को प्राप्त ष्टुत्व का षकार परे जानकर 'तो' 'षि' सूत्रसे निषेध हुआ (६७) झलां = 'झल्' प्रत्याहारस्थवर्णानाम् जश् = जबगडदश्। अन्ते = अन्तावयवे। पदान्तमें 'झल्' प्रत्याहार के अक्षरों को जश् हो। वाचां = वाणीनाम् ईशः = वृहस्पतिः, स्वामी, अर्थे वाक्+ईशः। अत्र पदान्त झल् 'क्' इति। तस्य 'झलांजशोऽन्ते' सूत्रेण जश्त्वेन गकारे, वर्णसम्मेलने वागीशः। अधिकृतवक्ता, सरस्वतिस्वामी।

(६८) यरः = यर् प्रत्याहारस्य वर्णाः। अनुनासिके = नासिका के सहित मुख से उच्चारित वर्ण परे। पदान्त का अवयव 'यर्' प्रत्याहार के अक्षर को अनुनासिक परे रहते परसवर्णअनुनासिक विकल्प से हो। यथा—एतद्+मुरारिः, पदान्त यर् 'द' अनुनासिक परे मुरारिः का 'म' द् को अनुनासिक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८।२।३९। पदान्ते झलां जशः स्युः। वागीशः। ६८ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५। यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्। एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः। (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) तन्मात्रम्। चिन्मयम्। ६९ तोर्लि ८।४।६०। तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः। तल्लयः। विद्वाँल्लिखति। नस्यानुनासिको लः।

७० उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१। उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः। ७१ तस्मादित्युत्तरस्य १।१।६७। पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं

पर (म) का सवर्णी (समानजातिवाला) 'न' हुआ एतन्मुरारिः। यह मुर् नामक दैत्य का हन्ता = भगवान् हैं। अनुनासिक के अभावपक्ष में एतद्मुरारिः दोनों पक्ष समान अर्थ वाले हैं। (वा) प्रत्यये = यदि पदान्त 'यर्' से परे अनुनासिक गुण, प्रत्यय में मिलता हो तो भाषायां = भाषा (लोक व्यवहार में) नित्य अनुनासिक हो। यथा—तत्परिमाणम् अस्य तन्मात्रं—तत् + मात्रम्, (उतनी मात्रा) यहाँ मात्रच् = परिमाण अर्थ का बोधक प्रत्यय है, परिमाण का वाचक है। अत्र पदान्ततकारस्य स्थाने 'यरोऽनुनासिके परे नित्यम् अनुनासिको नकारो वार्तिकेन जातः। एवम् अधिकचेतना (ज्ञानरूप) अर्थ में चित् + मयम्, अत्रापि पदान्त 'यर्' 'त' के स्थान में 'यरोऽनुनासिक' सूत्रेण न् हुआ। नित्य का भाव यह है कि सवर्ण अनुनासिक, उक्त अर्थबोध में समर्थ है। (नित्यासमासे) अनुनासिक का अभाव असामर्थ्य है।

(६९) तोः = तवर्ग के स्थान में, लि = लकार परे रहते परसवर्ण हो (पर् में जो वर्ण है, उसके समान वर्ण (जाति) होना परसवर्ण है) यथा—तल्लयः तद् + लयः तवर्ग (द्) को ल् परे 'तोर्लिः' सूत्रेण परसबर्णे। लकारो जातः। तल्लयः। तस्य = जगतः, लयः = विनाशः या तस्मिन ब्रह्मणि लयः लीनः (संसारः) विद्वान् + लिखति। यहाँ 'न' को 'ल' परे रहते परसवर्ण अनुनासिक लँकार हुआ। क्योंकि (य् व् ल्) तीनों अनुनासिक अननुनासिक भेदवाले हैं। विद्वाँल्लिखति (न मूर्खः) अनुनासिक, अननुनासिकभेदेन यवलाः द्विधा (इति संज्ञाप्रकरणे कथितम्।

(७०) स्था च स्तम्भश्च स्थास्तम्भौ तयोः। उद् से परे स्था और स्तम्भ को पूर्णसवर्ण = पूर्ववर्णके समान् जातिवाला वर्ण हो। (७१) तस्मात् = अत्र पञ्चमीविभक्ति निर्देशः = उच्चारणं, इति = यह उत्तरस्य = परभागस्य। सूत्र में पंचमी (निर्देशेन) उच्चारण करके क्रियमाणं कार्यं = किया जानेवालाकार्यं वर्णान्तरेण = पूर्ववर्ण से बिना व्यवधान के परवर्ण के स्थान में जानना चाहिये। (७२) परस्य=परे स्थितस्य, आदेः=आदि वर्णस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्। ७२ आदेः परस्य १।१।५४। परस्य यद् विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम्। इति सस्य थः। ७३ झरो झरि सवर्णे ८।४।६५। हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि। ७४ खरि च ८।४।५५। खरि झलां चरः स्युः। इत्युदो दस्य तः। उत्थानम्।

स्थाने। परदल को जो पूर्वसवर्ण आदि कार्यं विहितं—विधान किया गया, तत्तस्य=वह कार्य परके आदि वर्ण के स्थान में हो।

(७३) हल से परे झर् प्रत्याहार के वर्ण का लोप हो। सवर्णसंज्ञक झर् परे विकल्प से (७४) खरि=खर् प्रत्याहार के वर्ण परे हों तो झल् अक्षरों को चर् प्रत्याहार के अक्षर हों। यथा—उद्+स्थानम् 'उदः स्था'—आदि सूत्रेण, पूर्वसवर्णे। प्रश्न ? क्या पूरे 'स्था' के स्थान में हो ! तब निर्णायक सूत्र—'तस्मादित्युत्तरस्य' पञ्चमी निर्देश करके ('उदः' में पञ्चमी का उच्चारण है उसका) विधान किया गया कार्य पूर्व का सवर्णी हो। पूर्वं उद् से अव्यवहित पर 'स्था' के स्थान में हों। क्या पूरे स्था को पूर्वसवर्ण हो, तब व्यवस्थापिका परिभाषा सूत्र बोले कि—'आदेः परस्य' पर के स्थान में कहा गया कार्य पर (स्था) के आदि अक्षर 'स्' के स्थान में पूर्वसवर्णी 'थ' हुआ। परन्तु द का सवर्णी ५ है। (तथदधन) थ ही क्यों ? सत्य निर्णय के लिये स्थान देखते हैं, तो (लृतुलसानां दन्ता) यहाँ भी 'स' का स्थानी पाँचों है। आभ्यन्तर प्रयत्न में भेद है। 'स' का ईषद्विवृत प्रयत्न, तवर्ग का स्पृष्ट प्रयत्न है। अतः निर्णय के लिये वाह्य प्रयत्न ही एकमात्र शरण है। विवार श्वास अघोष प्रयत्नवाला 'खर्' प्रत्याहार में स् का साथी (तथ) दो निर्णीत हुये। वर्ग का द्वितीय चतुर्थ शल्, स, ष, श, ह अक्षरों का महाप्राण प्रयत्न दर्शन में द्वितीय अक्षर 'थ' ही 'स' का साथ दिया, अतः 'स्' के स्थान में 'थ' ही हुआ। अन्यवर्ण निवृत्त हो गये। उद्+थथानम् इति जाते।

७३ सू० हल् से परे झर् का लोप हो, सवर्णी झरि परे। यहाँ हल्, उद् का द उसमे परे थ का लोप हुआ। सवर्णीझरि थानम् का 'थ' खरि च—खरि परे 'थानम्' का थ है उद् के 'द' को चर्त्वं 'त' हुआ, उत्थानम्। लोप के अभाव में द और थ दोनों को चर्त्वेन 'त्त' उत्त्थानम्=उत्थितिः उन्नतिर्वा। दोनो पदों का मिलित सन्ध्यर्थः। एवम्—उद्+स्तम्भनम्। पूर्व प्रक्रिया के अनुसार सटीक समझे। 'ऊपर उठाना' संयुक्तार्थः। अवरोधः, सन्ध्यर्थः। सन्धि के बिना उक्तर्थं सम्भव ही नहीं। क्योंकि उपसर्ग-समीपस्थ शब्द के विशेष अर्थ का प्रकाशक हैं स्वतन्त्र अर्थ द्योतक नहीं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम्भनम्। ७५ झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२। झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः। नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः। वाग्घरिः, वाग्हरिः।

७६ शश्छोऽटि ८।४।६३। झयः परस्य शस्य छो वाऽटि। तद् शिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि चे'ति जकारस्य चकारः। तच्छिवः, तच्शिवः (छत्वममीतिवाच्यम्) तच्छ्लोकेन। ७७ मोऽनुस्वारः

---

(७५) झयः = झय् प्रत्याहार के अक्षर से, हः = 'ह' के स्थान में, अन्यतरस्याम् = अन्य के मत में (वि० से)। झय् प्रत्याहार के अक्षरों से परे 'ह' के स्थान में विकल्प से पूर्वसवर्णः—पूर्ववर्ण का सवर्णी (समान जाति वाला) अक्षर हो। नाद, घोष, सँवार प्रयत्न वाला हश् प्रत्याहार तथा महाप्राण प्रयत्न दर्शन से 'ह' के स्थान में तादृशः = पूर्ववर्ण का सवर्णी वर्ण = कवर्ग टवर्ग चवर्ग तवर्ग पवर्ग का चतुर्थ वर्ण हो—यथा—वाचां वाक्षु वा हरिः = सिंहः (बोलने में सिंह है)। इस अर्थ का प्रकाशक वाक्+हरि, इति स्थितौ।

६७ झल् प्रत्याहार के अक्षर को जश् हो, पद के अन्त में सूत्र से 'क्' स्थाने 'ग्' कृते, यहाँ झय् 'ग' उससे परे हरिः के ह को पूर्ववर्ण 'ग' का सवर्णी = एक जाति वाला होना चाहिये। परन्तु स्थान देखने पर "अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः" 'ह' का सजातीय पूरा कवर्ग है। आभ्यन्तर प्रयत्न भी भिन्न हैं। अतः अगत्या वाह्यप्रयत्न का शरण लेना पड़ा। संवार, नाद, घोष प्रयत्नवाला हश् प्रत्याहार में 'ह' के साथ ग, घ दो वर्ण उपस्थित हुये। महाप्राण प्रयत्नवाला द्वितीय, चतुर्थ ख घ, उपस्थित हुये। परन्तु घ के सब जगह साथ देने से ह के स्थान में 'घ' ही हुआ, वाग्घरिः। पूर्वसवर्ण के अभाव में क को जश्त्व। वाग्हरिः। सन्धि के अभाव में उक्त अर्थ अस्पष्ट होता। एवं "अज्झीनम् अच् से हीन, षड्ढलानि, छ हल। तद्धविः, उसका हवि आदि।

(७६) शः = 'श' स्थाने, छः भवति, झय् प्रत्याहारवर्ण से परे 'श' के स्थान में 'छ' हो, विकल्प से, अटिपरे। यथा—तद्+शिवः, यहाँ 'द' के स्थान में श्चुत्वेन ज होने पर 'खरि च' सूत्र से ज के स्थान में चर्त्व = चकार, तथा शिवः के श को 'शश्छोऽटि' से 'छ' हुआ। क्योंकि वह झय् से परे है। उससे परे अट् 'इ' है। तच्छिवः। छत्व के विकल्प से तच्शिवः। सचासौ शिवः। वह शिव हैं। (वा) छत्व झय् से परे 'श' को छ हो। अम् परे रहते। यथा—तस्य श्लोकेन (कीर्त्या) (उसकी कीर्ति से) इस अर्थ का प्रकाशक तद्+श्लोकेन। यहाँ भी जश्त्व चर्त्व वार्तिक से छत्व होकर, तच्छलोकेन विश्वं पाल्यते।

(७७) मः = मकारस्य स्थाने अनुस्वारः। मान्तपद को अनुस्वार हो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८।३।२३। मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि। हरिं वन्दे। ७८ नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४। नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः यशांसि। आक्रंस्यते। झलि किम्—मन्यसे।

७९ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८। शान्तः। ८० वा पदान्तस्य ८।४।५९। त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। ८१ मो राजि समः क्वौ ८।३।२५। क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्।

हल् परे। हरि को वन्दे, प्रसन्नता के अनुकूल दण्डवत् प्रणामादि क्रिया—हरिम्+वन्दे। अत्र मान्तपदं "हरिम्" यहाँ 'अलोऽन्त्यस्य' इस परिभाषासूत्र से अन्त्यअल् म्' स्थाने अनुस्वारो, जातः। हरिं वन्दे।

(७८) अपदान्तस्य=पदान्तभिन्नस्य नः=नकारस्य स्थाने, च=मकार स्थाने, झलि=झल् वर्ण परे। अपदान्त नकार और मकार के स्थान में अनुस्वार हो, झलि परे हो तो। यथा—'बहुत से यश' अर्थवाला एकपद—यशान्+सि इति दशायाम् अपदान्त न को 'नश्चा' सूत्रसे अनुस्वार हुआ। यशांसि। एवं आक्रमण करेगा—आक्रम्+स्यते। यहाँ भी 'म्' पदान्त नहीं उसको नश्चा से अनुस्वार हुआ। आक्रंस्यते। झलि किम्=झलि परे अनुस्वार हो ऐसा अर्थ क्यों किया। (तुम) मानते हो, इस अर्थ में समर्थ—मन्+यसे यहाँ न को अनुस्वार न हो। अन्यथा उक्तार्थ में बाधा होगी। झलि परे न रहने पर अनुस्वार अप्राप्त है।

(७९) अनुस्वारस्य=अपदान्त अनुस्वार के स्थान में ययि=य से य् तक के अक्षर परे हो तो नित्यपरसवर्ण हो। शान्त पुरुष अर्थ में समर्थ शाम्+तः ७८। सूत्र से अपदान्त शाम् के म को यय् 'त' परे परसवर्ण (त का सवर्णी) न हुआ। यदि परसवर्ण न होता तो उक्तार्थ में शब्द अशक्त हो जाता। शान्तः में बोधकता शक्ति है।

(८०) पदके अन्तमें विद्यमान अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण हो। 'तुम करते हो' अर्थ में—त्वम्+करोषि। "। से 'म्' को अनुस्वार। अनुस्वारस्य यय् परे परसवर्ण ङ् हुआ। त्वङ्करोषि। पक्ष में त्वं करोषि। दोनों समर्थ हैं। क्रिया कारक भाव।

(८१) क्विबन्ते मो=म् स्थाने, राजि=क्विबन्त राजशब्द परे समः=मकारस्य। क्विप् प्रत्ययान्त राज्शब्दपरे सम् के 'म्' को 'म' ही हो। तभी वह साधु मान्य है। सम्यक् राजते=शोभते इति अर्थे सम्+राट्ः क्विप्प्रत्ययान्त राट्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सम्राट्। ८२ हे मपरे वा ८।३।२६। मपरे हकारे मस्य मो वा। किँम्ह्मलयति, किं ह्मलयति (यवलपरे यवला वा) किँय्ह्यः, किंह्यः। किँव्ह्वलयति, किंह्वलयति। किँल्ह्लादयति, किंह्लादयति। ८३ नपरे नः ८।३।२७। नपरे हकारे मस्य नो वा। किँन्ह्नुतः, किंह्नुतः। ८४ डः सि धुट् ८।३।२९। डात्परस्य सस्य धुड् वा। ८५ आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६। टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः। षट्त्सन्तः,

---

है, समके मकार को मोनुस्वारः से प्राप्त अनुस्वार बाँधकर 'म' ही विधान किया। सम्राट् = चक्रवर्ती नरेन्द्र।

(८२) हे = हकारे परे। मपरक हकार परे रहते मके स्थान में अनुस्वार को बाधकर म ही वि० से हो। क्या जाता है? अर्थ में किम् ह्मलयति। यहाँ प्राप्त अनुस्वार को बाधकर विकल्प से म के स्थान में 'म' का विधान किया गया। पक्षे अनुस्वारः किंह्मलयति। दोनों साधु हैं—(वा०) यवलपरक हकार हो तो म्' के स्थान में अनुनासिक 'यवल' क्रम से वि० से हो। यथा (कल क्या था) अर्थ का प्रकाशक किम् + ह्यः यहाँ हकार परे रहते म् के स्थान में अनुनासिक य' हुआ। क्योंकि यहाँ 'य' परक हकार है किँयँ ह्यः पक्षे अनुस्वारः।किंह्यः। क्या जाता है।? इस अर्थ का प्रतिपादक किम् + ह्वलयति, यहाँ म को सानुनासिक वँ हुआ, वकार परक ह् है। पक्ष में अनुस्वार ही रह गया। क्या पसन्द करता है, अर्थ में किम् + ह्लादयति। यहाँ ल परक हकार परे 'म' को अनुनासिक लँ कार हुआ। पक्ष में अनुस्वारः।

(८३) न परक हकार परे रहते म को न विकल्प से हो। (क्या छिपाता या हटाता है) अर्थ में किम् + ह्नुते। यहाँ उक्त सूत्र से म को न हुआ। पक्ष में अनुस्वारः।

(८४) डः ङकार से परे सि – सकार को धुट्, (उट् की इतसंज्ञा) 'ध्' शेष। विकल्प से हो।

(८५) आदिश्च अन्तश्च आद्यन्तौ, टश्च कश्च टकौ, टकौ इतौ ययोस्तौ टकितौ। जहाँ ट् इत् हो, वह टित् है। जहाँ क् इति हो कित है। ये दोनों जिसको कहे गये हो, वे क्रम से आदि अन्त के अवयव (अङ्ग) हो। टित् आदि अवयव, कित् अन्त अवयव। यथा—छ (महात्मा) हैं षड् + सन्तः 'ङःसि'— से 'ड' से परे सन्त के 'स' को धुट् – ध् हुआ। टित होने से 'स' के आदि में हुआ 'खरि च' से 'ध' को चर्त्वेन त् और 'ड' को 'ट्' षटत्सन्तः। पक्ष में केवल 'ड' को ट् षट् सन्तः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

षट्सन्तः । ८६ ङ्णोः कुक् टुक् शरि ८ । ३ । २८ । वा स्तः (चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्) प्राङ्ख्षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ्षष्ठः । सुगण्ठ्षष्ठः, सुगण्ट्षष्ठः, सुगण्षष्ठः । ८७ नश्च ८ । ३ । ३० । नान्तात्परस्य सस्य धुड्वा । सन्त्सः, सन्सः ।

८८ शि तुक् ८ । ३ । ३१ । पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा । सञ्च्छम्भुः, सञ्छम्भुः सञ्चशम्भुः सञ्शम्भुः । ८९ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८ । ३ । ३२ । ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्

---

(८६) ङ तथा ण् को क्रम से कुक् (क्) टुक (ट्) आगम शरि (श, ष, स) परे रहते, विकल्प से हो । पौष्कर्साचार्य के मत में (वा) चय् प्रत्याहारके वर्ण द्वितीय अक्षर हों शरि परे हो तो । यथा—प्रकर्षेण अञ्चति =सुप्रतिष्ठतो भवति इति प्राङ् । प्राङ्क्षु=प्रतिष्ठतेषु षष्ठः (षण्णां पूरणः) (माननीयों में छठाँ) अर्थ का प्रकाशक प्राङ+षष्ठः इति दशा में 'ङ्' को कुक् =क् हुआ पौष्कर्साचार्य के मत में । कित् अन्त में होता है । उस 'क' के स्थान में द्वितीय अक्षर ख हुआ । तो प्राङ्ख् षष्ठः । चयो द्वितीया से जब द्वितीय अक्षर नहीं हुआ, तब क, ष, संयोग क्ष तव प्राङ्क्षष्ठः । कुक् नहीं हुआ, तव प्राङ्षष्ठः । सुष्ठु=सुन्दरं सुस्पष्टं असन्दिग्धं, गणयन्तीति सुगणः । तेषु षष्ठः । बहुत अच्छी गणित जानने वालों (गणको) में छठाँ । सुगण्+षष्ठः यहाँ ण् का टुक=ट् । उसके स्थान में विकल्प से द्वितीय अक्षर ठ, सुगण्ठ्षष्ठः पक्ष में 'ट्' सुगणट्षष्ठः । टुक् अभाव में सुगण्षष्ठः । यथावत् तीनों रूप ।

(८७) नः=न अन्त हो तो, उससे परे म का अवयव धुट्=ध वि० से, हो । सन्+सः अत्र-नान्तः 'सन्' उससे परे 'स' को धुट्=ध् (टित्) आदि में हुआ । उसको चर्त्व 'त्' सन्त्सः । पक्षेसन्सः । वह सत्पुरुष है ।

(८८) शि=शकार परे हो तो पदान्त न् को तुक्=त् हो विकल्प से । शम्भु भगवान सत्=सदा विद्यमान ब्रह्म अर्थ बोधक सन्+शम्भुः अत्र पदान्त न' को तुक=त् (कित्) होने से अन्ते हुआ । सकार परे अस्ति । 'श' को 'छ' न' 'त' को श्चुत्वेन ञ, च, सञ्चछम्भुः । छत्व अभाव में सञ्चशम्भुः झरो झरि से चकार लोपे सञ्शम्भुः । तुक अभाव पक्ष में 'न' को श्चुत्वे, शको छत्वे सञ्छम्भुः । ञछौ, ञचछा, ञचशा, ञशाविति चतुष्टयम् । रूपाणामिह तुक् छत्व लोपानाञ्च विकल्पनात् ।

(८९) ङमः=ङम् प्रत्याहारात् ह्रस्वात्=अचि ङमुट् (ङुट, णुट, नुट) ह्रस्व से परे जो 'ङम्' तदन्त (ङमन्त) जो पद, उससे परे अच् को

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

परस्याचो नित्यं ङमुट्। प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीशः। सन्नच्युतः। ९० समः सुटि ८।३।५। समो रुः सुटि।

९१ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८।३।२। अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा। ९२ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ८।३।४ अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः। ९३ खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५। खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः (संपुंकानां सो वक्तव्यः) सँस्कर्ता, संस्स्कर्ता। ९४ पुमः खय्यम्परे ८।३।६। अम्परे खयि पुमो रुः। पुंस्कोकिलः, पुँस्कोकिलः।

नित्य ङमुट् हो। यथा--संज्ञया कृतंटित्वं संज्ञाभिः सह सम्बध्यते। तेन ङुट, णुट, नुट इति त्रयः आगमाः जीवात्मा अन्तरात्मा या अन्तर्यामी वाचक प्रत्यङ् + आत्मा ह्रस्व से परे ङम् = ङ, तदन्त पद 'प्रत्यङ्' उससे परे अच् 'आ' उसको नित्य ङुट = ङ्। वर्ण सम्मेलने प्रत्यङ्ङात्मा। सन्धि न होती तो उक्त (संयुक्त) अर्थ भी न होता। यह नित्य सन्धि का प्रभाव है। सुष्ठु गणयन्तीति सुगणः तेषामीशाः = अधिपतिः। अच्छे गणकों का स्वामी वाचक सुगण् + ईशः, ह्रस्व से परे जो ङम् तदन्त पद सुगण्, अचि परे 'ई', उसे नित्य णुट्। टित्वात् आदि में हुआ। सुगण्णीशः। सत्य स्वरुप अच्युत (विष्णु) अर्थ प्रकाशक सन् + अच्युतः यहाँ भी पूर्ववत् नुट् समझे सन्नच्युतः। उपस्थितो अच्युतः (भगवान्)।

(९०) समः = समके मकारको 'रु' हो। प्रशंसा, अलंकरण, भूषण, बोधक सुट = (स्) परे रहते। (९१) अत्र = अस्मिन् रु प्रकारणे पूर्वस्य = रु के पूर्व वर्ण को अनुनासिक विकल्प से हो। (९२) अनुनासिकात् = अनुनासिकपक्षं त्यक्त्वा = परपक्षे अनुस्वारः। अनुनासिक पक्ष् को छोड़कर 'रु' के पूर्व वर्ण को पर = उपर अनुस्वार आगम हो। (९३) खरि च अवसानं च खरवसाने, तयोः खरवसानयोः, विसर्जनीयः = विसर्गः। खर्प्रत्याहार के वर्ण परे हों, या अवसान संज्ञा हो, तो पदान्त रेफ को विसर्ग हो (वा)। सम्पुम्--सम्, पुम्, कान्, सम्बन्धी विसर्ग को 'स' कहना चाहिये। यथा सम्यक् अलंकरण भूषण से सुशोभित कर्ता अर्थ का प्रकाशक सम् + स्कर्ता इति दशायाम्, सम-मकारस्य रुत्वे, अलंकरणार्थक सुट् परे अस्त्येव। रोः पूर्वस्य स के अ को अनुनासिक, पक्ष में अनुस्वार उक्त सूत्र से हुआ। 'उ' की इति संज्ञा लोप सँर् स्कर्ता। खरवसानयोः खर परे रहते पदान्त रेफ 'र्' को विसर्ग हुआ। उस विसर्ग को सम् सम्बन्धी होने से सम्पु से 'स्' हो गया। सँस्कर्ता, संस्कर्ता। सब प्रकार से अलङ्कर्ता। (९४) पुमः = 'पुम्' मकारस्य स्थाने, अम् परे खजि = अम् प्रत्याहार वर्ण परक खय् परे रहते पुम् के मकार को रु हो। नर कोकिल

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

९५ नश्छव्यप्रशान् ८ । ३ । ७ । अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यान्नतु प्रशान्शब्दस्य । ९६ विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ । खरि चक्रिंस्त्रायस्व, अप्रशान् किम्-प्रशान्तनोति पदान्तस्येति किम्—हन्ति । ९७ नॄन् पे चक्रिंस्त्रायस्व । ८ । ३ । १० । नॄनित्यस्य रुर्वा पे । ९८ कुप्वो ≍क ≍पौ च ८ । ३ । ३७ । कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ≍क ≍पौ स्तः, चाद्विसर्गः । नॄँ ≍पाहि, नॄं ≍पाहि, नॄँः पाहि: नॄन्पाहि ।

९९ तस्य परमाम्रेडितम् ८ । १ । २ द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं स्यात् । १०० कानाम्रेडिते ८ । ३ । १२ । कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते ।

अर्थ में पुम् कोकिलः । अम् परक खभि 'को' (किल) परे 'म्' को रु हुआ । यहाँ भी पूर्ववत् अनुनासिक, विकल्प अनुस्वार, विसर्ग, पुम् के विसर्ग को सत्व करके विधि पूरी करनी चाहिये ।

(९५) नः = न के स्थान में छवि = छव्, छ, ठ, त, च, ट, त, परे । अप्रशान् — प्रशान् शब्दं वर्जयित्वा । अम् परक छव् प्रत्याहार वर्ण परे नान्त पद के नकार को रु हो । प्रशान्, शब्द के नकार को रु न हो । (९६) खरि परे विसर्जनीयः = विसर्ग के स्थान में स हो । (हे चक्रधारी भगवान् रक्षा करो) वाक्यार्थबोधक चक्रिन् + त्रायस्व । अम्परक 'छव्' परे नान्त पद चक्रिन् के न को रु हुआ । तब अनुनासिक अनुस्वार — विसर्ग पूर्ववत् । (९६) सूत्र से विसर्ग को स् हुआ । खर् परे । सूत्र में अप्रशान् ग्रहण क्यों किया, प्रशान् के न को 'रु' न हो जाय इसलिये । यदि रु हो जाता तो, प्रशान् — शान्त पुरुषं तनोति=विस्तारयति अर्थ का प्रतिपादक प्रशान्तनोति न बनता । पदान्त ग्रहण क्यों किया । हन्ति का नकार अपदान्त है उसको रु न हो । अतः पदान्त पढ़ा ।

(९७) 'नॄन्' के नकार को रु हो, विकल्प से पकारे परे । (९८) कुश्च पुश्च कु पू, तयोः कुप्वोः । कवर्ग और पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान में क्रम से ≍क ≍प आदेश हो । चकार से विसर्ग भी । नॄन्=नरान् पाहि — रक्ष, अर्थ में नॄन् + पाहि । नॄन् नकार को पकार परे रु हुआ । उ इत 'र्' को विसर्ग उसको यहाँ पवर्ग परे ≍प (उपध्मानीय) हुआ, पक्ष में विसर्ग रह गया । दोनों पक्ष में अनुनासिक तथा अनुस्वार रु होने पर समझे । रु नहीं हुआ तब नॄन् पाहि । अर्थ समान है । (९९) तस्य — दो बार उक्त का परम — आगे का भाग आम्रेडितम् दो बार उक्त के दूसरे भाग को आम्रेडित संज्ञा हो ।

(१००) कान् के नकार को रु' हो आम्रेडित परे । यथा—कौन-२ का बाचक — कान् + कान् । दो होने से द्विरुक्त हुआ । तस्य परमाम्रेडितम् से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

काँस्कान् । १०१ छे च ६ । १ । ७३ । ह्रस्वस्य छे तुक् । शिवच्छाया । १०२ पदान्ताद्वा ६ । १ । ७६ । दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग् वा । लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया ।

इति हल्सन्धिप्रकरणम् ।

अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम्

१०३ विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ । खरि । विष्णुस्त्राता । १०४ वा शरि ८ । ३ । ३६ । शरि विसर्गस्य विसर्गो वा हरिःशेते, हरिश्शेते । १०५ स-सजुषो रुः ८ । २ । ६६ । पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ।

कान् को आम्रेडित संज्ञा । उसके परे पूर्व कान् के नकार को 'रु' अनुस्वार, अनुनासिक, विसर्ग संम्पुंकानाम् से विसर्ग को स काँस्कान् । कांस्कान् । (१०१) छे=छकारे परे च=ह्रस्वस्य, तुगागमः 'त्' भवति । शिवस्य छाया शिव + छाया । यहाँ छ परे ह्रस्व 'व' का अ, उसको तुक्=त् उसको श्चुत्व हो गया । शिवच्छाया । (१०२) दीर्घात्पदान्ताद्=दीर्घ पदान्त से छकार परे तुक=त् विकल्प से हो । लक्ष्मी + छाया, पदान्त दीर्घ 'ई' छ परे तुक त् श्चुत्व हुआ । लक्ष्मी की छाया ।

इति हल्सन्धिप्रकरणम् ।

अथ विसर्गसन्धिः

विसर्गाणां विसर्ग निमित्तानां वा सन्धिः (जोड़) विसर्ग सन्धिः । जहाँ विसर्ग की प्रक्रिया ही वाक्य की शक्ति को प्रकाशित करे । प्रत्येक सन्धि शब्द की शक्ति को प्रभावित करती है । तस्य प्रकरणम्=अध्यायः ।

(१०३) खर् प्रत्याहार का वर्ण परे हो तो विसर्ग के स्थान में स हो । यथा—विष्णु भगवान् रक्षक हैं इस वाक्यार्थ का वाचक विष्णुः + त्राताः खरिपरे 'त्र' को देखकर विसर्ग के स्थाने 'स' हो गया । रक्ष्य रक्षकभाव सम्बन्ध ही सन्ध्यर्थ है । परस्तत्र हरिस्त्राता । (१०४) शर्=श, ष, स परे रहते विसर्ग को विसर्ग विकल्प से रहे । यथा—हरिकर्त्तृकशयनानुकूला क्रिया अर्थ में हरिः + शेते । यहाँ विसर्ग के स्थान में प्राप्तसकार विकल्प से हुआ । हरिः शेते । पक्ष में स् को श्चुत्व 'श्' हरिश्शेते बना । क्रियाकारकसम्बन्ध है । (१०५) स च, सजुषश्च ससजुषौ तयोः=ससजुषोः, पदान्त सकारः तथा सजुष् शब्द सकार के स्थान में रु हो ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१०६ अतो रोरप्लुतादप्लुते ६ । १ । ११३ । अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । शिवोऽर्च्यः । १०७ हशि च ६ । १ । ११४ । तथा । शिवो वन्द्यः । १०८ भो-भगो-अघो-अ-पूर्वस्य योऽशि ८ । ३ । १७ । एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः तेषां, रोर्यत्वे कृते ।

१०९ हलि सर्वेषाम् ८ । ३ । २२ । भो-भगो-अघो-अ-पूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि । ११० रोऽसुपि

---

(१०६) अतः = अकार से अप्लुतात् — जिस अच् को प्लुतसंज्ञा 'न' हुई हो, उसे अप्लुत कहते हैं) । उससे अप्लुतेः = प्लुतभिन्नस्य अप्लुतस्य अप्लुत = अकार से परे रुके स्थान में 'उ' हो, अप्लुत अकार परे । यथा—शिवकर्मिका अर्चना = पूजाविषय अर्थ में शिवस् + अर्च्यः । यहाँ पदान्त स् को 'ससजुषोः' सूत्र से रु हुआ, तब अप्लुत अकार से परे 'अ' उससे 'रु' के स्थान में 'उ' अप्लुत अकार परे, अर्च्यः का अ शिव + उ + अर्च्यः । गुणे, एङः पदान्तादति खण्डाकार पूर्वरुपे शिवोऽर्च्यः । एवं शुद्धोऽयं छात्रोऽयम् । शिष्योऽयम् । हशि च, च = अप्लुत अकार से परे रु को 'उ' हो हश् प्रत्याहार वर्ण परे । यथा—शिवकर्मक वन्दना विषय अर्थ बोधक शिवस् + वन्द्यः यहाँ भी पदान्त 'स्' को 'रु' तत् स्थाने हशि च से 'उ' तथा गुणे शिवोबन्द्यः । (१०८) भो भागो अघो तथा अ यदि पूर्व में हो तो रु के स्थान में य आदेश हो, अशि परे । यथा—देवास् + इह । यहाँ पदान्त 'स' को रु तथा, भो, भगो, सूत्र से (अ) पूर्वक 'रु' के स्थान में य आदेश हुआ । ३० । से य का विकल्प लोप, देवा इह । पक्ष में देवायिह । ये दोनों देवताओं के आगमन या उपस्थित अर्थ में साधु हैं । भोस्, भगोस्, अघोस् इन तीनों शब्दों को सकारान्तनिपात माना गया है । तेषां = उनके सकारों को रुः । भो भगो आदि सूत्र से 'रु' के स्थान में 'य्' करने पर ।

(१०९) हलि सर्वेषाम् = भो, भगो, अघो, अ, पूर्वक यकार का लोप हो । सम्बोधनात्मक देवता अर्थ में भोस् + देवा । यहाँ 'स' को रू, रू को य् । य का हलिपरक लोप है । भो देवाः हे देवतागण तथा हे अघवन्, पाप परायण नमस्ते । दूरं गच्छेत्यर्थः भगोस् + नमस्ते । यहाँ भी पूर्ववत् रुत्व, यत्व, यलोप, भगो नमस्ते । अघोस् + याहि । यहाँ भी पूर्ववत् (११०) अहन् के नकार को रेफ आदेश हो, सुप् विभक्तिपरे न हो तो । अहन् + अहः (अहरहः) प्रतिदिन अर्थवाचक वाक्य में सूत्र से अहन् के 'न' को रेफ हो गया । अहरहः । अह्नानां = दिनानां गणः = समुदायः (सम्वत्सरः) अर्थ में अहन् + गणः अत्रापि नकारस्थाने रेफादेशे । अहर्गणः रुत्वाभावान्न उत्वम् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८।२।६९। अह्नो रेफादेशो नतु सुपि। अहरहः। अहर्गणः। १११ रो रि ८।३।१४। रेफस्य रेफे परे लोपः। ११२ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११। ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः। पुना रमते। हरी रम्यः शम्भू राजते। अणः किम्–तृढः। वृढः। मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे, रोरीति लोपे च प्राप्ते—

११३ विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२। तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात्। इति लोपे प्राप्ते। पूर्वत्रासिद्धमिति 'रो रि' इत्यस्यासिद्धत्वा-

---

(१११) रोः=रेफस्थाने, रि=रेफ परे। र का र परे लोप् हो। (११२) ढ्रलोपे—ढश्च रश्च ढ्रौ तयोर्लोपः, ढ्रलोपः तस्मिन्। ढ्रलोप रेफ लोप का निमित्त (कारण 'ढ्' वा रेफ परे पूर्व अण् को दीर्घ हो। यथा—अनेक वार रमण करने वाला, अर्थ में पुनर्+रमते, यहाँ पहले 'र' का दूसरे र परे रहते 'रोरि' से लोप हुआ। रेफ् लोप के पूर्व में विद्यमान स्थानी अण्=अकार को दीर्घ हुआ। 'र' लोप निमित्तक र परे है। पुनारमते। हरिर्+रम्य:—अत्र पूर्व रेफस्य पररेफे परे लोपे सति। लुप्तरेफ के पूर्व अण् इ को दीर्घ हुआ। हरी रम्यः। हरिकर्मकरमणाश्रयः। शिवभगवान् शोभते है। सभुर् राजते। यहाँ भी रेफ परे पूर्व रेफ का लोप, उसके पूर्व अण् को दीर्घ शंभू राजते। शम्भु भगवान् प्रकाशमान है। अणः किम्, 'ढ्रलोपः' सूत्र में अण् ग्रहण का फल है कि अण् को ही दीर्घ हो, इतर को नहीं। हिंसार्थक हिंसितः अर्थ में (वृह् हिंसायाम्) तृढ़, ओर उद्यत अर्थ में (वृहू उद्यमन) वृढः। तृढ+ढ़। दशा में 'ढ़ोढ़े लोपः' होने पर, यहाँ पूर्व अण् ऋ है उसे दीर्घ न हो। यही अण् ग्रहण का फल है। इच्छा आकांक्षा, स्पृहा, ईहा, पृच्छा, वाञ्छा लिप्सा, मनोरथ इन अर्थोंवाला मनस्+रथः 'सराजुष्–' सूत्रेण यहाँ स को रु पदान्त सकार मानकर किया। मनर्+रथः। तब सूत्र लगा 'रो रि' रेफ है, रथः का 'र' परे पूर्व रको रोरिसे लोपे प्राप्ते, हशि 'च' से उत्व भी प्राप्त है। तब निर्णायक सूत्र बोले—

११३ विप्रतिषेधे=तुल्य बलविरोधे=समान बल के विरोध होने से परम् =अष्टाध्यायी-क्रम में जो पर है उसीका कार्य हो। अन्यत्र, अन्यत्र लब्धा-वकाशयोः एकत्र समावेशः तुल्यबलविरोधः। हरी रम्यः में 'रोरि' कृतार्थं है। शिवो वन्द्यः में 'हशिच' सफल है। मनोरथ में (मनस+रथ अत्र तु 'ससजुषोः' इतिः 'रुः' उकार इत् लोपे 'च' कृते) दोनों उपस्थित हैं, तब निर्णय हुआ कि विप्रतिषेधे परं कार्यं हो। परत्वात् रोरि लोप कार्य हो। इससे रेफ का लोप प्राप्त हुआ। तब 'पूर्वत्रासिद्धम्' सूत्र से सपादसप्ताध्यायी 'हशिच' की दृष्टि में त्रिपादी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दुत्वमेव। मनोरथः। ११४ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२। अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्-समासे। एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्-एषको रुद्रः। अनञ्समासे किम्-असः शिवः। हलि किम्-एषोऽत्र। ११५ सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम्। ६।१।१३४। स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत॥ सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

इति विसर्गसन्धिप्रकरणम्।

'रोरि' के असिद्ध होनेसे उत्व ही हुआ उके स्थान में गुण। मनोरथः। वस्तुतः यहाँ तुल्यबलविरोध भी अस्वीकृत है, क्योंकि वह सपादसप्ताध्यायी में ही सम्भव है।

११४ एतद् तथा तद् शब्दके (सुलोपः)=सुका लोप। अकोः=ककार रहित, अनञ्=नञ् समासभिन्ने। अककारयोः=जिसको ककार (अकच्) न हुआ हो, ऐसा एतद् और तद् से सिद्ध शब्द उसके सु=सका लोप हो। हलि परे रहते, नञ् समास न हो तो। एषस्+विष्णुः 'एतत्तदोः---' सूत्रेण हलि परे एषस् शब्द के 'सु'=स्का लोप हुआ। रुत्वको बाधकर। ऐसे ही सस्+शम्भुः। यहाँ तद को अत्व, सत्व करके बना 'स' उससे परे 'सु' के सका 'एतत्तदोः' सूत्र से लोप हुआ हलि परे है। स शम्भुः। अकोः किम्? अककारः एतद् तद् शब्द, ऐसा क्यों कहा। एषकस्+रुद्रः। यहाँ एतद् में कं (अकच्) हुआ हैं। उसके सुका लोप न होकर, उत्व गुण हो इसलिये अकः पढ़ा। अनञ् समास न कहते तो, असः शिवः। न सः इति असः। यहाँ नञ् समासमें तद्से परे सुका लोप हो जाता (वह शिव नहीं है)। हल् परे न कहते तो एषस्+अत्र यहाँ अच् परे भी सुका लोप होने लगता। सको रुत्व उत्व तथा पूर्व रूप होनेसे एषोऽत्र सिद्ध होता है।

११५ सोऽचि=तत् शब्दके 'सु' का लोप हो अचि परे रहते। लोपे चेत्पाद पूरणम्=लोप होने पर यदि पाद (चरण) की पूर्ति हो तो। यदि पाद की पूर्ति न हो रही हो तब लोप न हो।

यथा—सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्, यहाँ सुलोप नही हुआ। किन्तु यथा—सस्+इमामविड्ढि प्रभृतिम्। यहाँ सुका लोप इसलिये हुआ कि, तभी पादपूर्ति सम्भव है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सैंष दाशरथीरामः, सैष राजायुधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महावल ॥

सस्+एष है। यहाँ सुका लोप होने पर ही पाद पूर्ति सम्भव है। अतः सुका लोप तथा वृद्धि। वह यह महराजा दशरथ पुत्रराम है। वह यही महाराज युधिष्ठिर है। महादानी कर्ण, महावली भीम हैं। इति विसर्ग सन्धि।

पञ्चसन्धि का निर्णय

पञ्चजातीयानां वर्णानां सन्धिरित्येव प्रसिद्धम्। तत्र अक् (अच्त्व) हल्, (हलत्व) विसर्ग (त्व) सन्धयः सुस्पष्टाः। स्वादिसन्धिश्चतुर्थः। यद्यपि शिवोऽर्च्यः, शिवो वन्द्य इत्यादि हल सन्धि के अन्तर्गत स्पष्ट जान पड़ते हैं तथापि स्वादि में विभक्तित्व जाति अधिक होने से स्वादि सन्धि भी माना। प्रकृतिभाव में इसी प्रकार का सन्धान, संयोजन, मेलापक न होने से उसे सन्ध्यभावरूप में भी सन्धि के साथ जुड़नेसे वह भी सन्धि है। यथा—अभाव भी पदार्थ माना गया। अथवा अनुस्वार के स्थान में, परसवर्ण सन्धि ही पञ्चमसन्धि है। अच हल से विलक्षण म न आदि हल वर्णों के स्थानमें अनुस्वार होने पर या अनुनासिक परसवर्ण भी देखा गया है। वर्णान्तर सन्धान 'पञ्चमी' सन्धि सुस्पष्ट है।

इति विसर्गसंधिप्रकरणम्।

अथषड्लिङ्गेषु अजन्तपुंलिङ्गप्रकरणम्

प्रश्न—लिङ्ग क्या है, षड्लिङ्ग किसे कहते हैं, प्रथम अजन्त नाम क्यों? मुख्य विषय क्या है। पञ्चसन्धि वाक्यसंस्कारपक्षप्रधान रहा। वाक्य पदका समुदाय है। सुबन्ततिङन्त भेद से पद दो हैं। 'सुप्तिङन्तं-पदम् से स्पष्ट है। सुबन्त पद छ प्रकार के हैं। अजन्त-शब्द के तीन भेद, पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, हलन्त पद में भी पुं, स्त्री, नप्। ये मिल कर षड् लिङ्ग हैं (लीनं शरीरे व्याप्तम्, अर्थं गमयति बोधयति) इति लिङ्गम्। सत्त्व गुण, मूंछ, देहव्यापी रोम पुरुष चिह्न का प्राधान्य पुलिङ्ग है। रजोगुण, स्तन, केश, (भग) प्रधान लक्षण स्त्री लिङ्ग। दोनों गुणों की समदशा नपुंसकलिङ्ग। अ इ उ ण् आदि वर्ण समाम्नाय

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ षड्लिङ्गेषु-अजन्तपुंल्लिङ्गाः

११६ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १। २। ४५। धातुं प्रत्ययं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्। ११७ कृत्तद्धित-

---

में प्रथम अच् पश्चात् हल् वर्ण पढ़े हैं। अतः अच् हल् वर्ण क्रमानुसार अजन्त पदका प्रथम प्रारम्भ अक्षर क्रम से करते हैं। दोनों में प्रातिपदिक-संज्ञाका महत्त्व है। अतः प्रातिपदिक संज्ञा विधायक सूत्र से प्रकरणारम्भः। अर्थवदिति प्रातिपदिक के प्रत्येक पद में रहनेवाला अर्थ पाँच हैं जाति, व्यक्ति लिङ्ग सङ्ख्या कारक ये प्रत्येक शब्द में किसी न किसी सम्बन्ध से स्थित हैं। सत्त्वगुण प्रधान पुलिङ्ग लक्षण शास्त्रीय है। लौकिक लिङ्ग स्तनकेशवतीनारी लोमशः पुरुषः स्मृतः। ये अर्थ प्रातिपदिक संज्ञा में कारण हैं उसके लिए सूत्र का अवतरण अर्थवदिति—

(११६) शब्दार्थ—अर्थोऽस्यास्तीति अर्थवत् (नित्यसम्बन्धे मतुप्) जिस शब्द में जाति व्यक्ति, लिङ्ग सङ्ख्याकारक रूप अर्थ भरा हो वह अर्थवान् है। षड्लिङ्ग में कहीं सम्पूर्ण कहीं आंशिक रूप से अर्थ मिलेंगे। निरर्थक को संज्ञा का निवारक अर्थवत् पद है। अतः राम शब्द के र, आ, म, अ, प्रत्येक अक्षर को संज्ञा नहीं होती। 'सु' भी नहीं आता। ऐसे अर्थवान् शब्द स्वरूप को प्रातिपदिक संज्ञा हो। परन्तु वह शब्द स्वरूप धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्तरूप न हो। दधाति क्रियारूपम् अर्थम् इति धातुः न धातुः अधातुः धातुरूप अर्थवान् न हो। यथा—अहन्। प्रत्ययायति बोधयति अर्थम् इति प्रत्ययः। जो किसी अर्थ का ज्ञान करावे। न प्रत्ययः अप्रत्ययः प्रत्यय रूप अर्थवान् न हो, यथा—सु। जो प्रकृति के साथ स्वार्थ का बोध कराता है। प्रत्ययान्त रूप भी न हो यथा—रामेषु।

अर्थ :—अर्थवान् शब्दस्वरूप को प्रातिपदिकसंज्ञा हो किन्तु धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्त तदादि अर्थवान् शब्दस्वरूप को प्रातिपदिक संज्ञा न हो। पदं - पदं प्रतिपदम् प्रतिपदे भवम् (जातो अर्थः) प्रातिपदिकम् यह शब्दार्थ भी घटते। प्रत्येक पदमें अर्थवान् को संज्ञा। छ पदवाला यह सूत्र मन्त्र रूप है। षट्पदी भौंरीका विष झाड़ने मे उपयोगी। इति केचित्। सुभाषितेनापि सम्बद्धम्—विद्वान् कीदृग् वचो ब्रूते, को रोगी कश्चनास्तिकः कीदृक् चन्द्रं न पश्यन्ति, तत् सूत्रं पाणिनेर्वद। समाधान—विद्वान् अर्थवान् वचन बोलते हैं। रोगी कौन ? जो अधातु—शुक्र, रक्त, मज्जा, मांस अस्थि आदि से क्षीण हो। निष्क्रिय हो। नास्तिक कौन ? अप्रत्ययः—विश्वासरहितः। प्रतिपत्तिथौ जनाः चन्द्रं न पश्यन्ति। एतादृशं सूत्रम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

समासाश्च । १ । २ । ४६ । कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः । ८ स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्-ङेभ्यांभ्यस्-ङसिभ्यांभ्यस्-ङसोसाम् ङ्योस्सुप् ४ । १ । २ । सु औ जस् इति प्रथमा । अम् औट् शस् इति द्वितीया । टा

---

(७) कृत् = कृदन्त, तद्धित = तद्धितान्त, समास च = निपात, इन अर्थवान् शब्दस्वरूप को प्रातिपदिक संज्ञा हो। (प्रत्ययग्रहणे तदन्त-ग्रहणम्)। पूर्वसूत्र में प्रत्ययान्त को संज्ञा निषेध से कृत्तद्धित ग्रहण सफल है। परन्तु समास में 'अर्थवत्' सूत्र से प्रातिपादिक संज्ञा सिद्ध है। समास ग्रहणं किमर्थम् 'पूर्वसूत्रेण सिद्धे आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्पते। समास— ग्रहण नियमार्थक है, जहाँ अर्थवान् शब्दसमुदाय के पूर्व भाग में पद हो और उत्तरभागमें भी स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हं (प्रयोग करने योग्य) पद हो, वहाँ प्राति पदिक संज्ञा हो तो समास होनेपर ही हो। इसलिए वाक्य की प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होती। यहाँ प्रातिपदिकसंज्ञाविधायक दो सूत्र होने से आचार्य पाणिनि अर्थवान् शब्दों में दो पक्ष स्पष्ट सिद्ध करते हैं, कि एक व्युत्पन्नपक्षः दूसरा अव्युत्पन्नपक्ष। जहाँ प्रकृति तथा प्रत्ययका अर्थ मिलकर एक अर्थ हो जाय वहाँ व्युत्पन्न पक्ष है। प्रकृतिप्रत्ययार्थयुक्तत्वम् व्युत्पन्नत्वम्। तद्भिन्नमव्युत्पन्नम्। प्रकृति प्रत्यय से युक्त कृत्तद्धित हैं। उन्हीं को व्युत्पन्नपक्ष में कृत्तद्धितसमासाश्च-सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा समझे। जहाँ प्रकृतिका तथा प्रत्ययका अर्थ विभागपूर्वक न समझे जाँय, उसेअव्युत्पन्नपक्ष कहते हैं। जैसे—मणिनूपुरादि यहाँ अर्थवत्से संज्ञा। सुबन्तपद सिद्धि के लिए प्रातिपदिकसंज्ञाके पश्चात् खले कपोतन्यायेन, खलिहान में दाना देखकर कबूतर की तरह इक्कीस विभक्तियाँ, (जो 'सु' से 'प' पर्यन्त (सुप्) प्रत्याहार अर्थ में प्रसिद्ध है। उपस्थित होती है। उन विभक्तियों में तीन-तीन त्रिक निश्चित किये गये हैं।

(८) स्वौ=सूत्र को सात त्रिकों में प्रथमा द्वितीया आदि क्रम से विभक्त करते हैं। (सम्बोधन को लेकर ८ कारक भी हैं) वह त्रिक ६ कारकों में तथा सम्बन्ध बोधक षष्ठी में हैं। ये कारक के रूप में तथा कारकों के अर्थ बोधक के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिनकी स्पष्ट गणना सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट शस् इति द्वितीया, इत्यादिके रूप में की गई है। विवेकार्थं निर्णयः— प्रथमा जहाँ प्राति पदिक का अर्थ जाति व्यक्ति आदि अर्थ यथायोग्य प्रधान होंगे, वहाँ प्रथमा (कर्ता) कारक जिसमें क्रिया रहती है। ने चिह्न। किसी क्रिया का कोई न कोई फल होगा जैसे पढ़ना क्रिया का उच्चारण या ज्ञान फल है। भोजन का फल तृप्ति, सेवा का फल स्वामिप्रसन्नता। भजन का हरि अनुग्रह। नेतृत्व समाज कल्याण। फल जिसमें होगा उसकी कर्म संज्ञा होगी वही द्वितीया विभक्ति

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस सुप् इति सप्तमी। ९ ङ्याप्-प्रातिपदिकात्। ४।१।१। १२० प्रत्ययः ३।१।१। १ परश्च ३।१।२। इत्यधिकृत्य। ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः। २ सुपः १।४।१०३। सुपस्त्रीणि त्रीणि

का अर्थ है यथा—हरिं भजति। भजन क्रिया का फल प्रीति (प्रसन्नता) है वह हरि में है, वह कर्म है। जहाँ प्रातिपदिकसंज्ञक शब्द में कर्म और संख्या की प्रतीति हो वहाँ (अम् औट् शस्) द्वितीयाकारक जाने ! (को चिह्न)। टा भ्यां-भिस्। तृतीया कारक का करण (क्रिया की सफलता में साक्षात् सहायक) (साधन) तथा संङ्ख्या अर्थ है (ने, से द्वारा चिन्ह)। ङे भ्यां, भ्यस्। चतुर्थीका उद्देश्य अर्थ है। क्रिया के फल का आश्रय (कर्म) का (उद्देश्य) लाभ जिसको हो उसका चिन्ह है 'के लिए'। ङसि, भ्याम्, भ्यस्,। इस पञ्चमी विभक्ति का (जहाँ से क्रिया का आरम्भ होता है वह सीमा) अवधि अर्थ है। वृक्षात् पर्णं पतति,। पतन क्रिया वृक्ष से आरम्भ होती है। इसलिए कूपात् जलमानयति वृक्ष कूप ही अवधि पञ्चमी का अर्थ है। ङस्-ओस् आम्। ये षष्ठी विभक्तियां हैं। जिनका सम्बन्ध अर्थ--है (का के की चिन्ह) कारक संज्ञा पक्ष में ये भी कारक हैं। क्रिया में अन्वयवालाकारक नहीं। ङि, ओस् सुप्। ये सप्तमी अधिकरण कारक, इसका चिन्ह आधार वाचक में, पै, पर, हैं। क्रिया का संचालक स्वतन्त्रः कर्ता है। प्रधान कारक है। अन्य कारक क्रियान्वयी हैं, स्वतन्त्र नहीं। इन इक्कीस विभक्तियों की उपस्थित कहाँ पर हो तब निर्णायक अधिकार सूत्र बोले। ६। ङ्याप्=ङीप्, ङीष्, ङीन्का 'ई'। आप,=टाप्, डाप्, चाप् का 'आ' से और प्रातिपदिकात्=जिसको प्रातिपदिकसंज्ञा हुई हो, उनसे स्वादि प्रत्यय हों। १२०। प्रत्ययः=होने वाले सभी प्रत्यय संज्ञक हों। वे पूर्व में 'हों' कि पर में, तब बोले। १२१। परश्च=सभी प्रत्यय पर में हों। ये तीनों अधिकार सूत्र हैं। स्वादिविधान का निर्णायक भी हैं। स्वादि प्रत्यय विधेय हैं, उनका विधान किससे हो ऐसी जिज्ञासा में (ङि, आप में तदन्त, विधि करके) बोले कि – ङ्यन्त आवन्त=स्त्रीलिङ्ग—बोधक (आप्) हो अन्त में जिसके) तथा प्रातिपदिक संज्ञावाले शब्द से परे सु औ जस्-आदि—प्रत्यय हों।

(२) सभी विभक्तियों में जो तीन-२ त्रिक बनाये गये हैं। उनमें प्रत्येक त्रिकों का नाम करण है। जो कारक रूप हैं। सुपः=सुसेलेकर प् पर्यन्त जो तीन—२ त्रिक (सु और जस् इत्यादि) उसमें तीन वचन हैं। क्रम से सु, औ, जस् को एकवचन, द्विबचन, वहुवचन, कहते हैं एका संङ्ख्या यत्र उच्यते,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वचनान्येकश एकवचन-बहुवचनसंज्ञानि स्युः। १२३. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२। द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः। १२४ विरामोऽवसानम् १।४।११०। वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ। रामः। १२५ सरूपाणा-

---

तत्र एकवचनम्। द्वेसङ्ख्ये यत्रोच्येते तत्र द्विवचनम् बहु (अधिक) सङ्ख्याः यत्र उच्यन्ते तत्र बहुवचनं ज्ञेयम्। एक, दो, या अधिक सङ्ख्या की विवक्षा में एकवचन द्विवचन बहुवचन हो। यथाः सु इत्येकवचनम्। औ इति द्विवचनम्। जस् इति बहुवचनं, सर्वत्र एवं ज्ञेयम्। ये तीनो वचन कुत्र भविष्यन्ति, निर्णायक सूत्र बोले।

(३) द्विश्च एकश्चेति द्वेकौ, तयोः द्वेकयोः, विवक्षायां क्रमेण द्विवचनम् एकवचनञ्च भवतः। द्वित्वैकत्वयोः—जहाँ द्वित्व –दो सङ्ख्या कहनी अपेक्षित हो वहाँ द्विवचन, जहाँ एक ही वचन अपेक्षित हो वहाँ एक वचन हो।

(४) विरामः = विगतः अदृष्टः रामः—वर्णसत्ता यत्र। जहाँ अक्षर का रमण (उपस्थिति) न हो उसे विराम कहते हैं। वर्णो के अभाव को अवसान संज्ञा हो। जिस अन्तिम वर्ण उच्चारण के अव्यवहित पश्चात्किसी वर्ण का उच्चारण नहीं किया गया हो तो अन्तिम उच्चारित वर्ण ही अवसान संज्ञक हो।

अवसीयन्ते = समाप्यन्ते वर्णाः, यत्र तत्, अवसानम्। विरमणं वर्णानां रमणाभावो विरामः। **रामः – रमन्ते आनन्दमनुभवन्ति योगिनः यस्मिन् सच्चिदानन्दे भगवति स रामः** अच्छे योगियों के चित्त में जो रमण करे अथवा जिस भगवान में ध्यानी, ज्ञानी, आनन्द अनुभव करें उन्हें राम कहते हैं। यह व्युत्पन्न पक्ष है तथा 'कृत्तद्धित' सूत्र से कृदन्त मानकर प्रातिपदिक संज्ञा। जिसमें दशरथपुत्र परमात्मा राम अर्थ भरा है। अव्युत्पन्नपक्ष (जिसमें न तो रम् धातु हो न घञ् प्रत्यय ही प्रतीत हो, उसमें "शशकः सलभो रामः।

यहाँ शशक् सलभ = शृंगाल आदि अर्थ से अर्थवान् रामशब्द (धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्त भिन्न है) स्वरूप को 'अर्थवत् सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हुई। **खलेकपोतन्यायेन** खलिहान में विकीर्ण अन्न आदि अर्थ को देखकर जैसे कबूतर मँडराते हुए फाट पड़ते हैं। ऐसे ही अर्थवान्शब्दराम को प्रातिपदिकसंज्ञक समझकर :सु, से' 'प्' तक इक्कीसविभक्तियाँ उपस्थित हुई। ये राम के पूर्व पर नीचे या ऊपर कहाँ हो? तब अधिकार सूत्र बोले कि प्रत्ययः परश्च सभी **विभक्तियां प्रातिपदिकसंज्ञक** राम से परे (आगे) हों। कारक की विवक्षा में प्रथमा के एकवचन सुविभक्ति उपस्थित हुई। राम सु। उपदेश (प्रथम

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

मेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४। एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते।

६. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२। अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वं सवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते। ७. नादिचि ६। १।१०४। आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि। रामौ।

उच्चारण अवस्था का अनुनासिक अच् 'सु' में 'उ' इत् संज्ञक हुआ। एति = गच्छति' जो चला जाय उसे इत् कहते हैं। उसी को लोप या अदर्शन कहते हैं। अब स के स्थान में।१०५। से रु हो गया। पुनः उकारः इत्। शेष बचा 'र्' से परे अवसान संज्ञा हुई। क्योंकि वर्ण का अभाव है। अवसान परे रहते खरवसानयोः विसर्जनीयः से र् को विसर्ग हुआ। रामः। यहाँ दशरथ पुत्र अर्थ उक्त = व्यक्त, प्रधान होने से प्रथमा विभक्ति हुई। जहाँ प्रातिपदिक का अर्थ प्रत्यय द्वारा प्रधान रूप से प्रकाशित हो रहा हो, वहीं प्रथमा विभक्ति होती है। जिस अर्थवान् शब्द मे दो संख्या कहने की अपेक्षा हो वहाँ राम राम को प्रातिपादिक संज्ञा होने से द्विवचन और विभक्ति आई, राम, राम, औ ततः।

(१२५) समानं, तुल्यं, एकसदृशं, रुपं येषां शब्दानाम् तानि सरुपाणि तेषां तेषु वा एकः शिष्यते इति एकशेषः। एकविभक्तौ = समानविभक्तौ। यथा—उक्त दोनों शब्द सदृश, समानरूप तुल्य हैं। उनकी सभी २१ विभक्तियों में समानरूपता दृष्ट है। अतः समान विभक्ति में यानि सरुपाणि = जिनमें ही समान रूप देखे गये हैं, उनमें एक ही शिष्यते = शेष रहे अन्य का लोप होगा। यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी भवति। जो शेष रहता है लोप हुए के अर्थ को भी कहता है। शिष्यते इति शेषः एकश्चासौ शेषश्च एकशेषः सजातीय विभक्तियों का समान रूप से देखा जाना। एक राम शेष रह गये अन्य लुप्त हुए। राम औ। ततः। (६) प्रथमाच, प्रथमाच प्रथमे, तयोः प्रथमयोः = प्रथमाद्वितीययोः, विभक्त्योः। एक प्रथमा शब्द सु, औ जस् को कहता है। दूसरी प्रथमा अम् औट् शस्' इति द्वितीया का स्मारक है। इसलिए प्रथमयोः में द्विवचन दिया। पूर्वसवर्णः = पूर्व में विद्यमान वर्ण के समान वर्णवाला। अकः = इ, उ, ऋ, ऌ से प्रथमा या द्वितीया सम्बन्धी अच् परे हो उसको पूर्व वर्ण के समान वर्ण वाला पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादश हो। इससे औ विभक्ति के पूर्व में (राम के अ) का सवर्णी 'आ' दीर्घ प्राप्त हुआ। (७) न् आत् इचि। अवर्ण से इच् प्रत्याहार वर्ण परे रहते पूर्व को सवर्णी कोई दीर्घ न हो। तब वृद्धिरेचि से अ, औ के स्थान में औ वृद्धिः रामौ इति सिद्धम्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८. बहुषु बहुवचनम् १ । ४ । २१ । बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् । ९. चुटू १ । ३ । ७ । प्रत्ययाद्यौ चुटू इतो स्तः । १३०. विभक्तिश्च १ । ४ । १०४ । सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः । १. न विभक्तौ तुस्माः १ । ३ । ४ । विभक्तिस्थास्तवर्ग-सकार-मकाराः नेतः । इति सस्य नेत्त्वम् । रामाः । २. एकवनं सम्बुद्धिः २ । ३ । ४९ । सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ।

३. यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् । १ । ४ । १३ । यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादिशब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात् । ४. एङ्-ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६ । १ । ६९ । एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते

---

(८) बहुषु = अनेकसंख्यकात् समानशब्दात् बहुवचनम् = बहुसंख्याबोधक-विभक्तिकथनम् । बहुत्व=अनेक संख्या की विवक्षा में बहुबचन विभक्ति का प्रयोग हो । (९) चु = चवर्ग = च, छ, ज, झ, ञ । टु = टवर्ग = ट, ठ, ड, ढ, ण, ये अक्षर यदि प्रत्यादौ = प्रत्यय के आदि में हो तो इत् संज्ञक हो । (१३०) च=सुप्तिङौ=सुप् और तिङ् प्रत्याहार के अक्षरों को विभक्ति संज्ञा हो । (१) विभक्तिस्थ = जिनकी विभक्ति संज्ञा हुई उनमें रहनेवाले तुस्माः = तवर्ग, सकार मकार ये इत् संज्ञक नहीं होते । इससे 'स्' की हलन्त्यम् से इत् संज्ञा नहीं हुई, रामाः रामान्, रामम् इत्यादि उदाहरण स्पष्ट है । रामाः, रामश्च, रामश्च, रामश्च, इस विग्रह में देखे गये राम राम राम समान शब्द के बीच एक राम का एकशेष हो गया । शेष बचा हुआ एक राम शब्द में सभी राम शब्द के अर्थ की शक्ति आ गई । अतः बहुवचन की विवक्षा स्वाभाविक होने से अर्थवत् रामशब्दात्, अर्थवत्सूत्रेण, प्रातिपदिकसंज्ञकात् बहुवचन का बाचक जस् विभक्ति हुई । जस् प्रत्यय है, क्योंकि बहुबचन संख्या का प्रत्यायक (बोधक) है । उसके आदि में चवर्ग 'ज्' को चुटू से इत् संज्ञा । अस् के स् को 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा प्राप्त है । तब अस् को विभक्ति संज्ञा हुई, जिसका फल विभक्ति में विद्यमान स् की इत् संज्ञा का निषेध होना । पूर्वसवर्णदीर्घ रुत्व विसर्गौ च रामाः ।

(२) एकवचनम् = एकसङ्ख्या उच्यते यत्र सा सम्बुद्धिः = हृदयाकर्षक-बुद्धिः, सम्बोधन (आह्वाहन) 'हे' के प्रसंग में प्रथमा के एकबचन को संबुद्धिसंज्ञा हो । (३) यस्मात् = जिस प्रकृति (प्रातिपदिक) से प्रत्ययविधि= प्रत्यय 'स्' आदि का विधान हो तो तदादि=(सा प्रकृतिः आदिर्यस्य स तदादिः) । प्रकृति या प्रकृतिसहितसमुदायः । जो प्रत्यय जिस प्रकृति से विधान किया जाय तदादिशब्दस्वरूप को तस्मिन्=उसी प्रत्यय परे रहते अङ्गसंज्ञा हो उसका फल । (४) एङ्च ह्रस्वश्च अनयोः समाहारः एङ्ह्रस्वम् तस्मात् सम्बुद्धेः=

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम ! हे रामौ ! हे रामा ! १३५. अमि पूर्वः ६।१।१०७ । अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः । रामम् । रामौ । ६. लशक्वतद्धिते ।१।३।८। तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या ल-श-कवर्गा इतः स्युः । ७. तस्माच्छसो नः पुंसि ६ । १ । १०३ । पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात् पुंसि । ८. अट्-कु-प्वाङ्-नुम्-व्यवायेऽपि ८ । ४ २ । अट् कवर्ग-पवर्ग-आङ्नुम् । एतैर्व्यस्तैर्यथासंभवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समानपदे । इति प्राप्ते—

सम्बुद्धिसंज्ञक का । एङन्त अङ्ग हो या ह्रस्वान्त अङ्ग उससे परे हल् (स्) लुप्यते लुप्त हो । वह हल् सम्बुद्धिसंज्ञक हो तो । यथा—हे राम, यहाँ प्रातिपदिकात् हे राम शब्दात् सु उसको (एकवचनं सम्बुद्धिः से) सम्बुद्धिसंज्ञा राम को सु प्रत्यय परे रहते 'यस्मात्प्रत्य' सूत्रेण अङ्गसंज्ञा । तथा ह्रस्वान्त-अङ्ग राम से परे सम्बुद्धि हल् 'स्' का लोप हुआ । हे राम । इसी तरह अबे 'रावण, रे मूर्ख ? धिक् मूर्ख ? यथा 'रे रे रावण दीयताम् जनकजा", है हे यशोदे तव बालकोऽसौ' यह सम्बोधन चिह्न कहीं अन्त में भी दृष्ट है यथा— राम हे प्रसीदत्वम् राम हे त्वां भजाम्यहम् ।

(१३५) अक् = अ, इ, उ, ऋ, लृ से परे 'अम्' विभक्ति का अवयव (सम्बन्धी) अच् परे हो तो पूर्वरुप = उस अकार को पूर्ववर्ण के रूप में एकादेशः = एक होकर आदेश हो । यथा - प्रातिपदिकसंज्ञकात् रामशब्दात् 'कर्म' अर्थवाचक अम् विभक्ति आई । यहाँ प्राप्त पूर्वसवर्ण दीर्घ को बाधकर अभिपूर्वः अक् है राम में अ, उससे परे अम् सम्बन्धी अकार को पूर्व वर्ण के रूप में पूर्वरूप हो गया । रामम् क्रिया के फल का आश्रय "निषादः रामं स्तौति", स्तौति क्रिया का फल (प्रसन्नता) का आश्रय राम कर्म है । एवं प्रातिपदिक संज्ञक राम शब्द से फल का आश्रय वाचक द्विवचन औ रामौ पूर्ववत् ।

(६) ल श् कु=लकार, शकार, कवर्ग, अतद्धिते=तद्धित प्रत्यय को छोड़कर । तद्धितवर्ज्य=तद्धित प्रत्यय को त्यागकर अन्य प्रत्ययों के आदि में ल श कवर्ग, हो तों इत् संज्ञक हों । (७) तस्मात् = पूर्वसवर्णदीर्घात् शसः = शस्विभक्ति का सकार । पूर्वसवर्णदीर्घसे परे जो शस् विभक्ति का स्, उसको न हो पुंसि पुलिङ्ग में । (८) अट् प्रत्याहार वर्ण, कु = क ख ग घ ङ, पु = पवर्ग प, फ, ब, भ, म, आङ् = आ, नुम (न) का अनुस्वार । एतैः=ये सभी वर्ण व्यस्तैः = अस्त व्यस्त क्रम से या विना क्रम के यथा सम्भव एक, दो, या तीन, आदि जितने का व्यवधान, मिलितैः = मिलें थोड़ा बहुत भी उक्त वर्णों का व्यवधान रहने पर र,' तथा 'ष,' से परे 'न' को ण (णत्व) हो।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१. पदान्तस्य ८।४।३७। नस्य णो न। रामान्। १४०. टा-ङसि-ङसामिनात्स्याः ७।१।१२। अदन्तात्टादीनामिनादयः स्युः। णत्वम्। रामेण। सुपि च ७।३।१०२। यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः। रामाभ्याम्।
२. अतो भिस ऐस्। ७।१।१३। "अनेकाल् शित्सर्वस्य"। रामैः।
३. ङेर्यः ७।१।९। अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः। ४. स्थानिवदादेशोऽ

समानपदे = एकपद (अखण्डपद) में। जहाँ पद खण्ड में प्रतीत हो वहाँ णत्व नहीं होता। यथा रघुनाथ रमानाथ, इत्यादि। (१) पदान्तस्य-पद के अन्त में न् को णत्व न हो। यथा—वहुसंख्यक दशरथ पुत्र या अन्यार्थवाची एक शेष, सम्पन्न अर्थवान् राम को प्रातिपदिकसंज्ञा कर्मसङ्ख्या अर्थ बोधक वहुवचन शस् विभक्ति। प्रत्यय के आदि में होने से श् की (१३६) से इत् संज्ञा (१२६) से पूर्वसवर्णदीर्घ उससे परे अस् के सकार को तस्माच्छसो नः से न हुआ। पुलिङ्ग समझकर। रामान्। यहाँ 'र' से परे 'आमा' के व्यवधान में न् को णत्वप्राप्ति का निषेध 'पदान्तस्य' से हुआ। अम् औट् शस् विभक्तियां वहाँ होती हैं जहाँ कि क्रिया के फल का आश्रय हो। यथा—रामः रामेश्वरं भजते। भजति का प्रसन्न करना अर्थ है। प्रसन्नता रुपफल का आश्रय रामेश्वर के होने से उससे द्वितीया।

(१४०) अदन्तात् = ह्रस्व अकारान्त अङ्गसे टादीनां = टाङसि ङस् के स्थान में इनादयः = क्रम से इन, आत्, स्य आदेश हों। यथा—प्रातिपदिक संज्ञकात् अदन्तरामशब्दात् एकबचन की विवक्षा में साधन अर्थ में तृतीया एकवचन टाविभक्ति के स्थान में उक्त सूत्रेण इन हुआ। राम + इन गुण तथा णत्व रामेण पदान्त में अ है न नहीं णत्वनिषेध नहीं, हुआ। (१) सुपि च = सुप् प्रत्याहार परे। च = से यञादि अङ्ग। यञ् प्रत्याहार के अक्षर आदि में हो ऐसा सुप् + वर्ण परे रहते अकारान्त अङ्गको दीर्घ हो। यथा—राम + भ्याम्, यञादि सुप् भ्यां, परे अङ्ग संज्ञक राम के 'अ' को दीर्घ रामभ्याम्।

(२) अतः = अदन्त अङ्ग से परे भिस्के स्थान में ऐस् हो। अनेकाल् आदेश सम्पूर्ण के स्थान में होते हैं। राम शब्द से प्रातिपदिकसंज्ञा के अनन्तर तृतीया का वहुबचन भिस् उसके स्थान में 'अतोभिस्' ऐस् से सम्पूर्ण ऐस् आदेश हुआ। वृद्धिः तथा रुत्वविसर्ग, रामैः। टा भ्याम् भिस् तृतीया विभक्ति का 'करण' साधन अर्थ है। यथा—वायुयानेन विदेशं गच्छति। यान के परदेश गमन का साधन होने से तृतीया। (३) ङेः = ङि स्थाने। अदन्त अङ्गसे परे ङे विभक्ति के स्थान में 'य' आदेश हो।

(४) स्थानिना तुल्यं स्थानिवत् स्थानी ङे का जो सुप् धर्म है उसके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नल्विधौ। १।५६। आदेशः स्थानिवत् स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ। इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः। रामाय रामाभ्याम्।

१४५. बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३। झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः। रामेभ्यः। सुपि किम्-पचध्वम्। ६. वाऽवसाने ८।४।५६। अवसाने झलां चरो वा। रामात्, रामाद्। रामाभ्याम् रामेभ्यः। रामस्य।

तुल्य आदेश हो। अनल्विधौ = न अलां विधिः, तस्मिन् अनल्विधौ। अल् के स्थान में विधान हो तब अल्विधौ न स्थानिवत्। अइउण् से लेकर हल् के 'ल्' पर्यन्त वर्ण अल् कहाते हैं। उसको आश्रय या निमित्त मानकर हुए विधान को अल्विधि कहते हैं। केवल एक वर्ण (वह चाहे अच् हो या हल्) यहाँ अल् स्थानी ङे का अवयव 'ए' लिया जायेगा। स्थानी के धर्म को आदेश में आरोपित करना ही स्थानिवद्भाव है। अतः आदेश स्थानी के तुल्य हो, न तु स्थान्यलाश्रयविधौ = जब स्थानी के अल् को आश्रय मानकर विधान हो तब स्थानिद्भाव न हो, स्थानिसम्बन्धीयोऽल् तान्निमित्तकेविधौ न स्थानिवत्।

इससूत्रसे स्थानिवद्भाव होकर, यञादि सुप् मानकर, 'सुपि च' सूत्रसे दीर्घ हुआ। यथा–प्रतिपदिकसंज्ञकराम शब्दात् चतुर्थी का एकबचन 'ङे' उसके स्थान में 'ङेर्यः' से 'य' आदेश। ङे + सुप् है। उसका धर्म, सुप्त्व या उद्येश्यत्व है उसको स्थानिवद्भावेन 'य्' में आरोपित करके, यञादि सुपिपरे अदन्त अङ्ग को दीर्घ हुआ। रामाय। रामाभ्यां पूर्ववत् (१४५) बहुबचने झलि एत्वं भवति। झलादौ= झल् प्रत्याहारवर्ण आदि में हो ऐसा बहुवचन परे हो तो अदन्तअङ्गको एत्व हो यथा—राम + भ्यस् इति दशायाम् झलादि बहुवचन सुप् (भ्यस्) है। अकारान्त अङ्ग रामके 'अ' को एकार हुआ। रामेभ्यः। सुप्किम् = यदि सूत्र में सुप् न कहते, तब झलादि तिङ्परे भी एत्व हो जाता। तव पचध्वम् में भी एत्व होता, अनिष्ट करता। ङेभ्याम् भ्यस् चतुर्थीका अर्थ है उद्देश्य। जिसको क्रियाके फल का आश्रय कर्म प्राप्त हो, यथा–वानराय फलंरोचते, यहाँ रुचधातु का स्वाद फल जनक क्रिया अर्थ है—स्वाद फल में है वह वानर को प्राप्त हो रहा है। अतः वानराय में चतुर्थी।

(६) अवसाने = अन्ते वर्णानामभावे झलां। झल्के स्थान में चर्, हो वा–विकल्प से। राम शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायाम्, अवधि (सीमा जहाँ से क्रिया शुरु हो) वाचक पञ्चमी की ङस्विभक्ति आई। उसके स्थान में टा ङसि से आत् हुआ। त् को जश्त्वेन 'द्' द को वावसाने विकल्प से चर्त्वं त। रामात् रामाद्। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी का अर्थ अवधि, सीमा, जहाँ से फलाश्रय अलग हो यथा—अध्यापकादधीते। अध्ययन क्रिया का फल ज्ञान विवेक है श्रोता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७. ओसि च ७ । ३ । १०४ । अतोऽङ्गस्यैकारः । रामयोः । ८. ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४ । ह्रस्वन्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागमः । ९. नामि ६ । ४ । ३ । अजन्ताङ्गस्य दीर्घः । रामाणाम् । रामे रामयोः । एत्वे कृते ।

१५०. आदेश प्रत्यययोः ८ । ३ । ५९ । इण्कुभ्यां परस्य पदान्तस्य आदेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः । ईषद्विवृतस्य सस्य

में उनकी उपलब्धि अध्यापक से होती है । जो ज्ञान की अवधि है अतः पञ्चमी । जहाँ षष्ठी विभक्ति का सम्बन्ध अर्थ है, उसका सूचक का, के, की है । प्रातिपदिकात् रामशब्दात् सम्बन्ध अर्थ का सूचक 'ङस्' तत् स्थाने 'टाङसि' सूत्रेण 'स्य' आदेशे रामस्य । रामव्यक्ति सम्बन्धी शत्रुः रावणः ।

(७) **ओसिः—विभक्ति परे रहते ह्रस्व अकारान्त अङ्ग को एकार हो ।** यथा—**राम + ओस्** यहाँ षष्ठी का द्विवचन ओस् परे देखकर राम में अ को एकार और एचोऽयवायावः से अय् आदेश हुआ, रुत्वविसर्गौ **रामयोः** । (८) **ह्रस्व** = एकमात्रिक, नदी = नदीसंज्ञक, आप् = स्त्रीलिङ्ग का बोधक आकारान्त । **ह्रस्वान्त नद्यन्त आवन्त जो अङ्ग उससे परे आम को नुट् = न आगम हो ।** उट = इत् । (९) **नाम् परे हो तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो,** यथा— राम शब्द से सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी का बहुवचन आम् ह्रस्वान्त अङ्ग से परे आम को नुट् हुआ । राम + नाम् यहाँ, नामिसूत्रेण दीर्घणत्वे **रामाणाम्** । सप्तमीविभक्ति आधार अर्थ में होती है उसका संकेतिक चिह्न (में, पे, पर) कर्ता कर्म के द्वारा क्रिया के आधार अर्थ की स्थिति में, प्रातिपदिक संज्ञकात् राम शब्दात् ङि विभक्तिः अनुबन्धलोपे, गुणे **रामे । रामयोः** पूर्ववत् । आधारभूत अनेक राम, शब्द को प्रा० सं० सुप् । झलादिबहुवचन परे एत्व हुआ । रामेषु ततः । १५० । आदेशश्च प्रत्ययश्च आदेशप्रत्ययौ । तयोः । **आदेशरूपसकार तथा प्रत्यय का अवयवसकार ।** इण्-प्रत्याहार वर्ण । कु – कवर्ग से परे । अपदान्त – **पदान्तभिन्न आदेशरूप सकार तथा प्रत्यय का** अवयव भूत **सकार उसके स्थान में मूर्धन्य (ष) आदेश हो ।** यद्यपि 'स' तथा 'ष' का स्थान भिन्न है । तथापि दोनों के ऊष्मा संज्ञकवर्ण होने से 'शल् ऊष्माणः', **ऊष्मणामीषद्विवृत—प्रयत्नं** श, स और ष का ईषद्विवृत्त प्रयत्न एक होने से **तादृशएव षः** स के स्थान में ईषद्विवृत प्रयत्नवाला 'ष' हुआ । **रामेषु** यथा—

रामोराजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे ।
रामेणाभिहता निशाचरचमू, रामाय तस्मै नमः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तादृश एव षः। रामेषु। एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः। १ सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७। सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायाम-

---

रामान्नास्ति परायणं परतरं, रामस्य दासोऽस्म्यहम्।
रामे चित्तलयः सदाभवतु मे हे राम मां पालय ॥

इसमें सभी कारक या विभक्तियां अपने अर्थ को वाक्य में बोल रही हैं। अनुभूयताम्। राम—व्यक्ति, राजाओं का मणि होना (व्यक्तित्व) ही प्रातिपदिकार्थ है। राम के कर्ता एकसङ्ख्याका सूचक 'सु'। उनके व्यक्तित्व का सदा उत्कर्ष हो। रमेशं रामं भजे। उसी प्रकार जितने अकारान्त पुलिङ्ग शब्द हैं, सबका रूप रामकी तरह समझे। कृष्ण घट गोप क्षत्रिय, आदि, यथा—कृष्णः कृष्णौ

(१) सर्वः = सर्वशब्दः आदिः (पूर्वं) येषां = सर्वादिगणपठितशब्दानां तानि सर्वादीनि, सर्वनामानि = सर्वस्य, सर्वेषाम् वा नाम सर्वनाम प्रधान परामर्शक। पूर्व या बुद्धि के अर्थ का बोधक। अथवा सर्वेषु वस्तुषु प्रयोगयोग्यः शब्दः सर्वनाम। सर्वशब्द हो आदि में, ऐसे सर्वादिगण पठितशब्द को सर्वनाम संज्ञा हो। वे सर्वादिशब्द कौन हैं? उनका परिचय देते हैं। सर्व = (सम्पूर्ण) विश्व, (सारा जगत्) सम्पूर्ण। उभ = दो सङ्ख्या, उभय = दो का समुदाय। डतर, दो में एक का निश्चायक प्रत्यय। डतम् (अनेक में एक, का निश्चायक) अन्य = भिन्न, अन्यतर = अनेक में एक इतर = भिन्न, त्वत्त्व = अन्यार्थक। नेम = आधा, सम = सर्ववाची, सिम = सम्पूर्ण, पूर्व = प्रथम, पर = अन्य, अवर छोटा = अधम, दक्षिणा = दक्षिण दिशा। उत्तरा = उत्तरदिशा। अपर = ऊपर भिन्न, अधर = नीचे। व्यवस्थायाम्। स्व = आत्मा, स्वयम् = आत्मीय (अपने लोग अर्थ वाला स्वशब्द सर्वादिगण में हैं) जातिधन, अर्थवाला स्वशब्द गण से वहिर्भूत है। 'अन्तर' शब्द वहिर्योग = (वाहरीभाग) तथा उपसंव्यान (परिधान) अर्थवाला गण में पठित है। त्यद् = स्यः तद् = सः (वह) यद् (जो) एतद् = एषः, इदम् = अदस् (यह) अर्थ होगा। एक, द्वि = संख्यावाची। युष्मद् = त्वम्, युवाम् यूयम्। अस्मद् = अहम्, आवाम् वयम्। भवतु = आप, श्रीमान्। किम् = प्रश्नवाचक क्या। यद्यपि संज्ञानाम मात्र का बोध कराती है। तथापि अनेक वर्ण की बड़ी संज्ञा में अन्वर्थ = अर्थ के अनकूल होती हैं। जो सभी वस्तुओं में प्रयुक्त हों। सभी नाम में उपयोगी हों, उन्हें सर्वनाम कहते हैं। उक्त। ३५। शब्द सभी अर्थ में प्रयोग के योग्य होने के कारण सर्वनाम कहलाये। यदि यही सर्वनाम किसी वस्तु में सीमित हो जाय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

संज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्। (इति सर्वादयः)। २ जसः शी ७।१।१७। अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः। सर्वे। ३ सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४। अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै। सर्वस्मै। ४ ङसि-ङसोः स्मात्-स्मिनौ ७।१।१५। अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः। सर्वस्मात्।

तब वे सर्वनाम संज्ञक नहीं हो सकते यथा—सर्वोनाम कश्चित् तस्मै सर्वाय यहाँ सर्व शब्द किसी नाम विशेष में रूढ़ है। अतः सर्वनाम संज्ञा का फलभूतकार्य जशः (शी) ङे (स्मै) स्मात्स्मिन्, सुट् आदि नहीं हुए। इसी प्रकार से 'सर्वमतिक्रान्तोऽतिसर्वः' जो सबका अतिक्रमण करे वह व्यक्ति 'अतिसर्व' हुआ। वहाँ भी वैसे ही समझें। क्योंकि "संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः" जो संज्ञा नाम उपसर्जन = विशेषण हो गये हों, वे सर्वादि में मान्य नहीं होंगे।

(२) जशः = जस् स्थाने शी-आदेशः। **ह्रस्व अकारान्त सर्वनामसंज्ञक से परे जस् के स्थान में 'शी' हो।** सर्वः सर्वौ, सर्वे। सम्पूर्ण अर्थ से अर्थवान् सर्व शब्दस्य प्रातिपदिक,संज्ञायाम् प्रातिपदिक के अर्थ में प्रथमा का बहुवचन जस विभक्ति हुई, सर्व+जस् सर्व को सर्वनामसंज्ञा हुई, क्योंकि सर्वादिगण पठित है। फल यह हुआ कि अकारान्त सर्वनाम सर्व, उससे परे जसः शी से 'जस्' के स्थान में शी। इस शी में श और ई दो अल्वर्ण होने से **अनेक अल्, सम्पूर्ण स्थानी (जस्) के स्थान में आदेश शी हुआ।** यदि शित्वात् = सर्वादेश कहें तो, सम्भव ही नहीं। सम्पूर्ण के स्थान में आदेश हुए बिना शी प्रत्यय नहीं होगा। प्रत्यय के आदि में इत्संज्ञा करता है। वह स्थानिवद्भाव होने पर ही सम्भव है अतः कहा 'अनेकालत्वात् सर्वादेशः'। अनुबन्धलोपे, गुणे कृते, सर्वे। यह सर्व शब्द अकारान्त तथा पुलिङ्ग है। रामशब्द की तरह सभी विभक्तियों को जोड़े। केवल जस्, ङे, ङसि, ङस्, ङि, तथा आम्, विभक्ति में अन्तर पड़ता है। यथा—

(३) अतः = ह्रस्व अकारान्त। सर्वनाम्नः = **सर्वनामसंज्ञक से परे 'ङे' के स्थान में स्मै।** जहाँ अकारान्त सर्वनाम होगा वहाँ 'ङे' को 'स्मै'। ङसि को स्मात्। ङि को स्मिन्। यथा—उद्येश्य अर्थ में सर्व शब्दात् ङे विभक्तिः। तस्य स्थाने स्मै "सर्वस्मै"।

(४) **अकारान्त सर्वनाम से ङसि तथा ङि के स्थान में क्रम से 'स्मात्, स्मिन्' आदेश हों।** यथा—अवधि की विवक्षा में सर्वशब्दात् अवधि अर्थ बोधिका पञ्चमी विभक्ति का एकवचन ङसि। तस्य स्थाने स्मात्। सर्वस्मात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१५५ आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२। अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः। ऐत्व-षत्वे। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्, शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः। उभशब्दो द्विवचनान्तः। उभौ २। उभाभ्याम् ३। उभयोः २। तस्येह पाठोऽकजर्थः। उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति।

---

(१५५) **सर्वेषाम्। आमि** = आम् विभक्ति परे। **अवर्णान्त अङ्ग से परे तथा** सर्वनामसंज्ञक से विधान किये गये आम् को सुट् = स् आगम हो। जो मित्रवत् (मिलकर) रहे। सम्बन्ध की विवक्षा में प्रातिपदिकसंज्ञक तथा सर्वनाम संज्ञक सर्व शब्द से आम् विभक्ति। अवर्णान्त सर्वनाम होने से उससे विधान किये गये आम् को सुट् (स) हुआ, एत्व तथा षत्व **सर्वेषाम्**। आधार अर्थ की विवक्षा में सर्वशब्दस्य प्रातिपदिकसर्वनामसंज्ञेच, अधिकरण अर्थ बोधक ङि विभक्तिः। तत् स्थाने।

१५४ सूत्रेण स्मिन्नादेशे, शेषं रामवत्। **सर्वस्मिन् एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः** = सर्वशब्द की तरह विश्वादयः = विश्व, उभ, उभय, सभी अकारान्त को समझें। शब्द में **सर्वनामसंज्ञाका फल शी; स्मै, स्मात्, स्मिन् तथा सुट्पूर्ववत्।** अन्य शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते हैं। दो सङ्ख्या का वाचक उभ-शब्द सदाद्विवचनान्त ही रहता है। अतः द्विवचनान्तरुपमूल में दिये गये हैं। उन्हें सर्वशब्द के द्विवचनान्त की तरह जानें। **द्विवचनान्त उभशब्दका गण में पाठ व्यर्थ है,** क्योंकि द्विवचन में सर्वनाम संज्ञा का कोई फल नहीं मिलता। एकवचन में स्मै, स्मात्, स्मिन् होना फल है। बहुवचन में शी तथा सुट् फल है। द्विबचन में कोई फल नहीं। अतः बोले—'**तस्येह** – उभशब्द का इह – सर्वादिगण में **पाठः** = पढ़ा जाना 'अकच्' प्रत्यय होने के लिए है। **'अव्ययसर्वनाम्नामकच्'** **अव्यय तथा सर्वनामको टिके पहले अकच् हो।** उभशब्द को अकच् हो। उभकौ वने। इस हेतु उभ को सर्वनाम संज्ञा आवश्यक है। गण में पाठ सार्थक हुआ। **उभयशब्द के द्विवचन नहीं होता इतिकैयटः। अस्तीतिहरदत्तः।** क्योकि 'उभौ अवयवौ यस्य सः उभयः दोसङ्ख्यकोंका समुदाय। यहाँ भी उभयः उभयौ, उभये। उभयस्मै, उभयेषामित्यादि, विशेष फल। डतर, डतम्, ये दोनों प्रत्यय हैं। **अनेकसंदिग्ध में एक का निश्चायक है। जैसे :—अनयोः अन्यः अन्यतरः।** नेतृषु अन्यतमा, इन्दिरा, ये भी सर्वनाम संज्ञक हैं। स्वतन्त्रप्रत्यय का प्रयोग असम्भव तथा निषिद्ध है। क्योंकि (न केवलाः प्रकृतिः प्रयोक्तव्याः, नाऽपिकेवल प्रत्ययः) अतः बोले **प्रत्ययग्रहणमें तदन्तग्रहणम्।** जहाँ प्रत्यय (डतरादि) का ग्रहण हो वहाँ तदन्त डतरन्त, डतमन्तका ग्रहण हो। यथा—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

डतर-डतमौ प्रत्ययौ। प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्या। नेम इत्यर्धे। समः सर्वपर्यायः। तुल्यपर्यायस्तु न यथासंख्यमनुदेशः समानाम्" इति ज्ञापकात्। ६ पूर्वापरावर-दक्षिणोत्तराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४। एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्

अनयोः एषु व्यक्तिषु, कः ? इति कतरः कतमः। ययोः येषु वा अन्यः यतरः यतमः। तयोः तेषु अन्यः ततरः, ततमः। अन्ययोः अन्येषु एकः एकतरः एकतमः, इत्यादि प्रयोग हैं। अर्ध अर्थ में नेम शब्द सर्वनाम संज्ञक हैं नेमे वाणाः शिखाण्डिनः आधेवाणशिखण्डी के हैं।

सम सब्द यदि सर्वशब्दका अर्थ बोलता हो तभी गण में ग्राह्य है। यदि तुल्य = समान अर्थ का पर्याय हो तो गण में ग्राह्य न हो। प्रमाण '(यथा-सङ्ख्यमनुदेशः) सूत्र में 'समानाम्' पढ़ा वहाँ समशब्द का तुल्य (समान) अर्थ होने से न सर्वनाम संज्ञा हुई, न सुट् हुआ, न समेषाम् बना। इसी ज्ञापन = प्रमाण से सिद्ध है कि सर्वपर्यायवाची सम् शब्द ही सर्वनाम संज्ञा का फललाभ करें। (६) पूर्व, पर, अवर, अधर दक्षिणा, उत्तर अपर, ये शब्द व्यवस्थायाम्= व्यवस्था अर्थ में हो, तथा असंज्ञा (किसी का नाम) के रूप में न हों। तब गणसूत्रात् = सर्वादीनि सूत्र से, प्राप्तसर्वनामसंज्ञा जस् विभक्ति परे विकल्प हो। अन्य विभक्तियों में नित्य संज्ञा है। यथा—पूर्वः, पूर्वौ, पूर्वे, पूर्वाः। यहाँ व्यवस्थावाची प्रातिपदिकसंज्ञक पूर्व शब्द से प्रथमा बहुवचनः जस् विभक्ति आई। तब दिशा, देश, या काल अर्थ में प्रयुक्त पूर्व शब्द को सर्वनामसंज्ञा तथा जस् स्थाने शी, अनुबन्ध लोपे, गुणे कृते पूर्वे पक्ष में रामाः की तरह पूर्वाः। संज्ञायां किम् ? उक्त सात-२ शब्द किसी की संज्ञा (नाम) न हों तभी सर्व-नाम संज्ञा हो। ऐसा क्यों ? उत्तराः कुरवः, शब्द में उत्तर शब्द कुरुवंशियों की संज्ञा है। अतः उसे न सर्वनाम संज्ञा, न जसः शी हुआ। व्यवस्था का अर्थ तथा लक्षण स्वाभिधेय, स्वानां = पूर्वादि शब्दानां, यः अभिधेयः = वाच्योऽर्थः दिग्देशकालरुपः तं दिग्देशकालं अपेक्ष्यते यस्मात् तदेव अवधिः एतादृशो नियमः व्यवस्था। स्वशब्द से पूर्व, पर; अवर आदि सात शब्दों का अभिधेय = वाच्यार्थ को दिशा या देश ग्राम या काल = भूत, भविष्य, वर्तमान रूप अर्थ उससे अपेक्ष्य-माण = निर्धारण की गई अवधि = सीमा कि किस देश, ग्राम, नगर या समय के पूर्व, पर, किससे पूर्व, किससे पर, इस सीमा का नियमन (निश्चित विभाज) को व्यवस्था कहते हैं। तभी उक्त सात को सर्वनाम संज्ञा। जसादि विभक्ति में विकल्प सम्भावित हैं। जहाँ पूर्वादिशब्द दिशा, स्थान, समय, का पूर्व या पर निश्चायक न हों। वहाँ सर्वनाम संज्ञा नहीं होगी। व्यवस्थायां किम् ? दक्षिणाः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात् । पूर्वे, पूर्वाः । असंज्ञायां किम् उत्तराः कुरवः । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था । व्यवस्थायां किम्—दक्षिणा गाथकाः कुशला इत्यर्थः ।

७ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १ । १ । ३५ । ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । स्वे, स्वाः = आत्मीयाः आत्मान इति वा । ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः = ज्ञातयोऽर्था वा । ८ अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १ । १ । ३६ । बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । अन्तरे अन्तरा वा गृहाः बाह्या इत्यर्थः । अन्तरे अन्तरा

गाथकाः, यहाँ दक्षिणा शब्द का सरल, उदार, चतुर, अर्थ है कि सभी गायक कुशल, सरल, होते हैं । यहाँ दक्षिण शब्द किसी दिशा 'स्थान' काल की आकाङ्क्षा नहीं रखता है । इसलिये सर्वनाम संज्ञा" जसः शी" आदि नहीं हुए । "दक्षिणः सरलोदारः परच्छन्दानुवर्तिषु । एवम् अधरे ताम्बूलरागः । उत्तरे प्रत्युत्तरे शक्तः अधरो दन्तवसने अनूर्ध्वे हीने अधरो अन्यवत् । उत्तरं प्रतिवाक्ये च उध्र्वौदीच्योत्तरेऽन्यवत्, यहाँ अधर या उत्तर शब्द किसी दिशा, देश काल की अवधि से आकाङ्क्षित नहीं है । अतः सर्वनाम संज्ञा न होने से ङि को (स्मिन्) आदेश नहीं हुआ ।

७ एवं—आत्मा आत्मीय अज्ञातिधनाख्यायाम् = जाति, धन, अर्थ प्रसिद्ध न हो । स्वशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः आत्मा = स्वयम् आत्मीय = अपने, धन = सम्पत्ति, जाति । इनमेंसे आत्मा तथा आत्मीय अर्थका वाचक स्वशब्दको सर्वनामसंज्ञा जस् परे विकल्प से हो । जाति तथा धनवाची स्वशब्द को सर्वनामसंज्ञा न हो । अतः वृत्तिमें ज्ञाति, धन से अन्य अर्थवाची स्वशब्द कहा" स्वमज्ञातावात्मधनयोरात्मीये च प्रचक्षते इति विश्वः" अपना या अपने लोग अर्थ में प्राप्त स्वशब्दात् जस् विभक्तिपरे पाक्षिकसर्वनामसंज्ञा तथा जसः शी = ई गुणे स्वे । पक्षे स्वाः । रामाः की तरह । जिसका आत्मा, आत्मीय अर्थ है । जाति धन अर्थका वाचक केवल स्वाः है । सर्वनाम संज्ञा नही होती ।

८ अन्तरं = अन्तर शब्द, वहिर्योग = वाहरका सम्बन्ध उपसंव्यानं वस्त्रादि परिधान वाह्य—बाहर तथा परिधानीय—साड़ी वगैरह अर्थको बोलनेवाला अन्तर शब्द को प्राप्तसर्वनामसंज्ञा जस परे विकल्प से हो । यथा—अन्तरे अन्तराः वा गृहाः । यहाँ गृहाः गृहके बाहर अर्थ में प्रयुक्त अन्तरशब्द जस परे उक्तासंज्ञामें प्राप्त किया । अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः 'यहाँ परिधान वस्त्रादि अर्थ में अन्तर शब्द सर्वनाम संज्ञकात् जसः शी, गुण का लाभ । ९ पूर्वादिभ्यः पूर्वे ५२ ६

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वा शाटकाः, परिधानीया इत्यर्थः। ९ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६। एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात्। पूर्वस्मिन्, पूर्वे। एवं परादीनाम्। शेषं सर्ववत्। १६० प्रथम चरम-तयाल्पार्ध-कतिपय-नेमाश्च १।१।३३। एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः प्रथमे, प्रथमाः। तयः प्रत्ययः। द्वितये, द्वितयाः। शेषं रामवत्। नेमे, नेमाः, शेषं सर्ववत्। (तीयस्य ङित्सु वा) द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि। एवं तृतीयः। निर्जरः।

आदि सात तथा स्व और आन्तरशब्द मिलकर ९ शब्दोंसे परे पञ्चमी ङसि तथा ङिविभक्तिको क्रम से स्मात्-स्मिन् विकल्पसे हो। इस सूत्र का विकल्प प्राप्त विभाषा है। जहाँ पूर्व सूत्र से प्राप्त संज्ञा या कार्य को विकल्प विधान हो, उसे प्राप्त विभाषा कहते हैं। प्रसङ्ग में नित्यसंज्ञा विकल्प हुई। अतः पञ्चमी में पूर्व शब्दके पूर्वात् पूर्वस्मात् तथा सप्तमी ङि में पूर्वस्मिन्-पूर्वे दोनों रूप होगा। पूर्वादि शब्दकी तरह पर, अवर, आदि को भी समझें। यथा—परे परा परस्मात्, परात् परस्मिन् परे इत्यादि। अवशिष्ट शब्द सर्ववत् समझें।

१६० प्रथम, चरम (अन्तिम) तथा तय् प्रत्ययान्त। अल्प = थोड़ा, अर्द्ध = आधा, कतिपय = कुछसङ्ख्यावाले। तथा नेम = आधा, ये शब्द जस् विभक्ति-परेसर्वनामसंज्ञा के विकल्प होने से जस् को 'शी' भाव में प्रथमे प्रथमाः एवं चरमे चरमाः यहाँ तयशब्द तय प्रत्यय का सूचक है। कोई भी प्रत्यय अपनी प्रकृति के बिना उपयोगी नहीं होता, तयप् (समुदाय) अर्थ बोलता है। दो का समुदाय द्वितीय। तीनका त्रितय। चारका चतुष्टय। पञ्चतय, षट्तय, आदि। क्योंकि प्रत्ययग्रहणे तदन्त ग्रहण का नियम है। केवलप्रत्ययको सर्वनाम कार्य विफल है। अतः दो समुदाय अर्थ वाला द्वितय शब्दको जस् परे सर्वनाम संज्ञा, जशः शी, आदि हुए। एवं अल्पे अल्पाः। अर्धे अर्धाः। कतिपये, कतिपयाः। नेमे नेमाः आदि, शेषरूप सर्ववत् समझे। सर्वनाम संज्ञा तथा तत्फलभूतकार्यका स्मरण करे। यदि तीय् प्रत्ययान्त हो। यथा—द्वेस्तीयः, द्वितीयः तृतीयः, यहाँ ङित् सु = ङे, ङस्, ङसि, ङि परे वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा तथा फल स्मैं आदि। द्वितीयस्मै द्वितीयाय, सिद्ध हुए। इसी तरह ङित्विभक्ति में सर्वनामसंज्ञा होने से तृतीयस्मै तृतीयाय आदि। निर्गतो जरायाः। (वृद्धावस्थासे जो बँचजाय उसे निर्जर कहते हैं) अमराः निर्जराः देवाः, इत्यमरः, रामशब्द की तरह देव अर्थ से अर्थवान्। निजर शब्द प्रातिपदिक संज्ञा रामकी तरह स्वादिकार्य। इस सूत्रमें वा शब्द उभयत्र विभाषा है। अर्थात् प्रथम चरम, तय, अल्प, अर्द्धशब्दों में किसी सूत्र से संज्ञा प्राप्त नहीं हैं यह अप्राप्त विभाषा है। नेम शब्द में संज्ञा प्राप्त है। उसको विकल्प विधान प्राप्त विभाषा है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१। अजादौ विभक्तौ। 'पदाङ्गाधिकारे तस्य (च) तदन्तस्यच। निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति !' एकदेशविकृतमनन्यवदिति जरशब्दस्य जरस्। निर्जरसौ निर्जरसः। इत्यादि। पक्षे हलादौ च रामवत्। विश्वपाः। २ दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५।

---

(१) जरायाः जरा शब्द के स्थान में जरस् आदेश हो अजादि विभक्ति परे अन्यतरस्याम् मतो (अन्य किसी के मत में)। अर्थात् विकल्प' से। निर्जरश्च (२) एक शेप औ विभक्ति निर्जर + औ इस स्थिति में। 'जरायाः,जरस्-सूत्र से अजादि विभक्ति औ परे जरा जो जरस् हुआ। यहाँ तो निर्जर शब्द है जरा नहीं, तब जरस् कैसे ? अतः बोले--पद के अधिकार में या अङ्ग के अधिकार में जिसको आदेश (विधान) किया जाय, तस्य = उसके स्थान में तदन्तस्य वह हो अन्त में उसके स्थान में जरस् हो। जैसे—जराशब्द निर्जर के अन्त में ह्रस्व होकर निर्जर हुआ है। यहाँ अङ्ग का अधिकार है। अतः अङ्गाधिकारीकार्य जरस् हुआ। वह निर्जर के स्थान में हो। क्या सम्पूर्ण के स्थान में जरस् हो जाय ? तब बोले निर्दिश्यमानस्येति। विधिसूत्र में जो निर्दिश्यमान = उच्चारण किया गया है उसी को ही आदेश हो। अथवा षष्ठी विभक्ति जिससे हो उसकी प्रथम उपस्थिति ही निर्दिश्यमान कहलाती है। जराया में षष्ठी, उसके लिऐ जराशब्द उपस्थित। उसी को जरस् आदेश हो। परन्तु जराशब्द दृष्ट नहीं है किन्तु निर्जरशब्द है, जरस् कैसे ? तब बोले एकदेशविकृतमिति। एकअंश में यदि विकार आ जाय तो वह अनन्यवत् = अन्य नहीं होता, किन्तु वह वही रहता नहि छिन्ने पुच्छे अश्वो गर्दभो भवति। घोड़ की पूँछ कट गई एक अंशका विकार हुआ तो वह गदहा नहीं होता। अतः जराशब्दका ह्रस्वविकार होने से भी वहीं (जर) शब्दमानकर जरस् हुआ। वर्णसम्मेलने निर्जरसौ, पक्षमें निर्जरौ। एवं निर्जर + जस् अनुबन्ध लोपे, जरस् आदेश रुत्व विसर्गौ निर्जरसः। अजादि, विभक्ति में सर्वत्र पाक्षिक जरस् आदेश। पक्ष में तथा हलादि विभक्ति में रामकी तरह रूप रहेगा। अम् औट् शस् टा ङे ङसि ङस् ङि ओस् आम् आदि में दो-दो रूप होते हैं। विश्वपाः। विश्वं = सकललोकं पाति = रक्षति अर्थमें क्विप् उसका पूर्ण लोप होकर विश्वका पालक अर्थसे अर्थवान विश्वपाशब्दस्य प्रातिपदिक संज्ञायां सु रुत्वविसर्गौ विश्वपाः इति सिद्धम्।

(२) दीर्घात् = दीर्घ से जस् विभक्ति पर और च = इच् प्रत्याहार वर्ण परे हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता। जहाँ विश्व के पालक दो हों वहाँ विश्वपा + औ। यहाँ विभक्ति 'औ' को 'आ' में आके रूप में पूर्वसवर्णदीर्घ की सम्भावना से नियम

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिः। विश्वपौ। विश्वपाः। हे विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ। ३ सुडनपुंसकस्य १।१।४३। स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य। ४ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १।४।१७। कप्प्रत्ययावधिषु च स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात्।

१६५ यचि भम् १।४।१८। यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्। ६ आकडारादेका संज्ञा १।४।

सूत्र। २। यहाँ दीर्घ 'आ' से इच्=औ परे देखकर पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध हुआ। वृद्धिः विश्वपौ। विश्वपा+जस् ज् इत्। पूर्वसवर्णदीर्घ रूत्वविसर्गौ विश्वपाः। हे विश्वपाः में 'सु' का रूत्व विसर्ग। विश्वपां विश्वपौ। ३। सुट्='सु' से औट् टकारपर्यन्त प्रत्याहार सु औ जस्, अम् औट् ये स्वादि पांचवचन हैं। उसी को सर्वनामस्थानसंज्ञा हो अक्लीबस्य=अनुपुंसकस्य नपुसकलिङ्ग न हो तो। (४) असर्वनामस्थाने=सर्वनामसंज्ञक सु, औ, जस्, अम्, औट् को छोड़कर अन्य। (स्वादिषु) शस्प्रत्यय से लेकर चौथा तथा पंचम अध्याओं में पढ़े गये प्रत्यय कप्प्रत्ययावधिषु=उरः प्रभृतिभ्यः कपः। ५। ४। १५१। सूत्र पर्यन्तप्रत्यय की अन्तिम अवधि (सीमा) पर्यन्त प्रत्ययपरे रहते पूर्व को पद संज्ञा हो। (१६५) ईच्, अच् च, यच् तस्मिन् यचि= यकारादि तथा अजादि प्रत्यय, सर्वनामस्थानभिन्न शस् प्रत्यय से लेकर कप्प्रत्यय पर्यन्त यदि यकारादि तथा अजादि प्रत्यय परे हों तो पूर्वको 'भ' संज्ञा हो। यकारादि, अजादि प्रत्यय परे भसंज्ञा, तद्भिन्न स्थान में पदसंज्ञा। कहीं अजादि में भी (शितिच) से पदसंज्ञा होती है।

नपुंसक लिङ्ग में प्रथमा द्वितिया के द्विवचन में भी 'भ' संज्ञा हो। अत् एव 'सुपथी' में टिलोपो भवति। तथा सुपुंसी में असुङ् आदेशो न भवति।

(६) आकडारात्=कडाराकर्मधारय। २। २। ३८। पर्यन्त। इत उर्ध्व=पहले अध्याय से लेकर 'कडाराकर्मधारय' सूत्रतक एकस्य=एक के स्थान में एकैव=एक संज्ञा हो। परन्तु विश्वा+शस् (अस्) इस लक्ष्य में अजादि-मानकर भसंज्ञा का भी विषय बना। दोनो संज्ञाओं की प्राप्ति है। एक ही संज्ञा का नियम भी है, परन्तु 'भ' तथा पद दोनों संज्ञाओं का विषय होने से भ संज्ञा क्यों होगी ? पद संज्ञा क्यों नहीं। इस शङ्का पर बोले — "या पराऽनवकाशा च" पर शब्द से विप्रतिषेध सूत्र स्मृत है। अन्यत्र २ लब्धावकाशयोः विरुद्धसंज्ञयोः यत्र तुल्यबलविरोधः तत्रैव विप्रतिषेधः। परन्तु दोनों संज्ञाओं के मध्य में जो निरवकाश हो, वही शास्त्र प्रबल हो, निरवकाशत्वं उत्सर्गप्राप्ति-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१। इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारय' इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च। ७ आतो धातोः ३।४।१०४। आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः। विश्वपा। विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः। धातोः किम्—हाहान्। हाहै। हाहाः २ हाहौः २ : हाहाम्। हाहे। हरिः। हरी।

८ जसि च ७।३।१०९। ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः। हरयः। ९

स्थले चारितार्थ्याभावरूपम्। उत्सर्गश्च = असतिप्रतिबन्धके वर्तमानः। उत्सृज्यते = बाधक सद्भावे त्यज्यते। सामान्य सूत्र की प्राप्तिस्थल से भिन्न न हो। प्रसङ्ग में 'भ' संज्ञा पर भी है, निरवकाश भी। अजादि में भसंज्ञा, शेष (हलादि में) पद्संज्ञा।

(७) आतो – आकारान्त जो (पा) धातु, तदन्तस्य = वह हो अन्त में जिसके ऐसे भसंज्ञक अङ्ग के अन्त्य अल् आ का लोप हो। विश्वपा को पद संज्ञा बाधकर भसंज्ञा पर तथा अनवकाश होने से हुई। क्विबन्त विडन्त विजन्त शब्द धातुत्व का त्याग नहीं करते। क्विबन्त में धातुत्व बना है। भसंज्ञक अङ्ग विश्वपा, अत्र पा का आ, अन्तअल् होने से लुप्त हुआ। विभक्ति के सकार को रुत्व विसर्ग। विश्वपालन साधन की विवक्षा में विश्वपा शब्द से 'टा' विभक्ति परे भसंज्ञा आ लोप, विश्वपा, अजादि विभक्ति ङसिँ, ङस, ङि, ओस्, आम् आदि में ' आ का लोप होगा। विश्वपः विश्वपोः विश्वपामिति षष्ठी। विश्वपि, विश्वपोः विश्वपासु। एवं शङ्खं ध्मायते, ध्वनयति इति शङ्खध्मा (शङ्ख बजानेवाला) का रूप भी विश्वपावत् चलेगा। धातोः किम्? सूत्र में धातु ग्रहण नहीं करते तो प्रातिपदिक 'भ' संज्ञक अकार का लोप हो जाता। "हा हा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम्" यहाँ हा हा शब्द धातु नहीं है अतः उसके आकार का लोप नहीं हुआ! हाहाः हाहौ, हाहाः शस् विभक्ति में पूर्वसवर्ण दीर्घ तथा शस् के सकार को तस्मात् शसो नः पुंसि से नत्व हाहान्। हा हा से टा के 'आ' को सवर्णदीर्घ हुआ। हाहाभ्यां हाहाभिः। हाहै में ङे' के 'ए' को वृद्धिः। हाहै। हाहाः ओस् विभक्ति परे भी वृद्धि हाहौः। आमिपरे सवर्णदीर्घे हाहाम्। ङि में गुण। हाहे। हाहासु।

'हरति पापानि' इति हरिः। पाप हरण की शक्ति से सम्पन्न हरिशब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां सु रुत्वे विसर्गे। हरिः। पाप हरण क्रिया में स्वतन्त्र ? द्विवचन (दो कर्ता स्वतन्त्रता की विवक्षा में हरि+औ। औ को पूर्वसवर्णदीर्घा हरी।

(८) जसि = जस् विभक्ति परे रहते च=ह्रस्वान्त अङ्ग की अन्त्य अल्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ह्रस्वस्य गुणः ७ । ३ । १०८ । सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् । १७० शेषो घ्यऽसखि १ । ४ । ७ । शेष इति स्पष्टार्थम् । ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञम् । १ आङो नाऽस्त्रियाम् ७ । ३ । १२० । घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टोसंज्ञा हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः । २ घेर्ङिति ७ । ३ । १११ । घिसंज्ञस्य ङिति सुपि गुणः ।

के स्थान में गुण हो । हरि शब्द के चौदह अर्थ हैं । यम, अनिल, इन्द्र, चन्द्र, अर्क विष्णु, अंशु, बाजि सुक्, अहि (सर्प), कपि, भेक (मेढक) ना, कपिल, इन अर्थों के किसी भी अर्थ से अर्थवान् हरिशब्द प्रातिपदिक संज्ञक होता है। बहुबचने हरि + जस् जकार इत् । ह्रस्वान्त अङ्ग का अन्तअल् (इ) को गुण, अय्; आदेश रुत्वविसर्गौ हरयः ।

(९) सम्बुद्धि (आवाहन, आकर्षण सूचक) हे, अरे, अवे) संज्ञक सु (सु) परे हो तो ह्रस्व अङ्ग के अन्त्य अल् को गुण हो । इति सूत्रेणइ-स्थाने गुणो जातः । हे हरे ! । क्रिया के फल का आश्रय (कर्म) उसकी विवक्षा में हरिशब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां द्वितीयैकवचने अम् । अम् सम्बन्धी अच् को पूर्वरूप होने से हरिम् इति । औ को पूर्णसवर्णदीर्घ हरी । हरिशब्दात् अनेक कर्म की विवक्षा मे बहुबचने शस्, शकार इत् पूर्वसवर्णदीर्घ हरीस् स को नत्व हरीन् ।

(१७०) शेषः = उक्तादन्य ईकार ऊकार उक्त हैं, उससे अन्य = भिन्न ह्रस्व इकार उकार शेष है ।

अर्थ स्पष्ट है, अनदीसंज्ञौ = जिसकी नदी संज्ञा न हुई हो । ऐसे ह्रस्व इकार उकार और तदन्त इकारान्त उकारान्त को घिसंज्ञा हो, अ सखि = सखि शब्द को छोड़कर । यद्यपि सखिशब्द भी अनदीसंज्ञक ह्रस्व इकारान्त है तथापि नदीसंज्ञा घिसंज्ञा को बाधती है । अतः ह्रस्व इकार उकार ही शेष है, उन्हीं को घिसंज्ञा विशेष विधान है ।

(१) घि संज्ञक शब्द से परे आङ् = टा को 'ना' हो । अस्त्रियाम् = स्त्रीलिङ्ग में टाको 'ना' न हो । पापहारक, साधन, प्रातिपदिकसंज्ञकहरि शब्दात् 'टा' ह्रस्व इकारान्त की घिसंज्ञा, टाको आङो ना आदेशः णत्वं हरिणा क्रिया का साधन द्विवचन हरिभ्याम् । हरिभिः ।

(२) घेः=घिसंज्ञक के स्थान में ङिति ङे, ङस्, ङसि, ङि परे गुण हो । क्रियाफल का आश्रय कर्म जिसके लिए हो उस उद्येश्य, अर्थ से अर्थवान् हरिशब्द को प्रा० संज्ञा (के लिए) अर्थ बोलनेवाली चतुर्थेकबचने ङे विभक्ति । ङ् इत् । घि संज्ञायां ङित्='ए' परे घिसंज्ञक इकारस्य गुणेभयादेशे । हरये । हरि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हरये। ३ ङसि–ङसोश्च ६।१।११०। एङो ङसिङसोरति पूर्वरूप-मेकादेशः। हरेः। हर्योः। हरीणाम्। ४ अच्च घेः ७।३।११९। इदुद्भ्यामुत्तरस्यङेरौत् घेरत्। हरौ। हर्योः। हरिषु। एवं कव्यादयः। १७५ अनङ् सौ ७।१।९३। सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसंबुद्धौ सौ।

६ अलोऽन्त्यात् पूर्वं उपधा १।१।६५। अन्त्यादलः पूर्वो वर्णो उपधासंज्ञः स्यात्। ७ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८। नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। ८ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १।२।४१। एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्। ९ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सु-ति-

---

के लिए (पूजा)। यह गुण अन्त्य अल् के स्थान में जानें। अवधि अर्थवाले हरि शब्द से सीमा, क्रिया का आरम्भ अर्थ में पञ्चमी का एकवचन ङसि। ङ् इत्। घि संज्ञा। गुणः हरे+अस्।

(३) एङ् से ङसि ङस् सम्बन्धी अकार परे दोनों के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो। 'स्' का रूत्व विसर्ग। हरेः। षष्ठी द्विवचने हरि+ओस् इति दशायाम् यणि रूत्व विसर्गौ। हर्योः। हरि+आम् ह्रस्वनद्यापो नुट् उट् इत् 'न्' नामि परे अजन्ताङ्गस्य दीर्घे, णत्वे हरीणाम्।

(४) च = ह्रस्व इकार उकार से उत्तरस्य = परे ङि विभक्ति के स्थान में औत् = दो मात्रिक औ घेः अत् = घि संज्ञक के अन्त्य अल् को अत् = एक मात्रिक अकार हो, आधार अर्थ में हरि+ङि, । ङ् इत्। घि संज्ञा, इकार से परे ङि के स्थान में औत्। तथा घि संज्ञक 'इ' को अ, औ, वृद्धिः हरौ। हरि+सु आदेशप्रत्यययोः से 'स' स्थाने ईषद्विवृत—सम्बन्धवाला मूर्धन्य 'ष' हुआ। हरिषु। एवं = हरिशब्द की तरह कव्यादयः = अग्नि, गिरि, रवि, निधि, कवि आदि ह्रस्व इकारान्त पुलिङ्ग का रूप सति सम्भवे। असति सम्भवे। भिन्न रूप भी हैं। जैसे सखि, पति, कति, आदि।

(१७५) अनङ् = आदेश है, सौ = सु परे। सख्युरङ्गस्य = सखि शब्द से अङ्ग के अन्त्य अल् अक्षर को अनङ् आदेश हो। यदि सम्बुद्धि संज्ञक सु परे न हो तब।

(६) अन्त्यादि अल् = अन्तिम वर्ण (चाहे अच् हो या हल्) रूप अल् के पूर्व में विद्यमान वर्ण को उपधा संज्ञा हो। ७। नान्त शब्द की उपधा अन्त अक्षर के पूर्व वर्ण के स्थान में दीर्घ हो। असम्बुद्धौ = सम्बुद्धि सु को छोड़कर। सर्वनाम स्थान संज्ञक सु, औ, जस्, अम् औ, परे रहते।

(८) एकाल् = एक ही अल् (वर्ण) रूप प्रत्यय को अपृक्त संज्ञा हो।

(९) हल् च ङि च, आप् च, हल्ङ्यापः तेभ्यः हल्ङ्याभ्यः। हलन्त से परे तथा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यपृक्तं हल् ६।१।६८। हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते। १८० नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७। प्रातिपदिकसंज्ञकं यत् पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्। सखा। १ सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२। सख्युरङ्गात् परं संबुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात्। २ अचो ञ्णिति ७।२।११५। अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च परे। सखायौ। सखायः। हे सखे। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सख्या। सख्ये। ३ ख्यत्यात् परस्य ६।१।११२। खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृत-

---

दीर्घ ङ्यन्त आबन्त (ङीप् टाप्) से परे सु ति सि का अपृक्तसंज्ञकहल् = 'स, त् स्' उसका लोप हो। (हलन्त का उदाहरण सखान् स्,। अहन् त्, अहन् स्) ङीवन्त = दण्डिनी गौरी। आबन्त-रमा, कृष्णा।

(१८०) प्रातिपदिकान्तस्य = प्रातिपदिकसंज्ञकपद के अन्त्य के नकार का लोप हो। साथी अर्थवाला सखिशब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायाम् सु विभक्तिः अङ्गसंज्ञायाम्। अङ्गसंज्ञक सखिशब्द के 'इ' को 'अनङ्सौ' अनङ्-आदेश, परे सम्बुद्धि सु नास्ति। सखन्+स् इति दशायाम् अन्त्य अल् सखन् का 'न' उसके पूर्ववर्ण 'ख' में 'अ' को उपधा संज्ञा उसी नान्त उपधा अकार को दीर्घ उससे परे एक अल्-रूप प्रत्यय सु का स्, उसको अपृक्त संज्ञा। हलन्त शब्द से परे अपृक्त संज्ञक स का हलङ्यादि लोप। प्रातिपदिक के अन्त में न का भी न लोपः (प्रातिपदिकान्तस्य से) सखा।

(१) सख्युः = अङ्गसंज्ञकसखिशब्द से परे सम्बुद्धि को छोडकर सभी सर्वनामसंज्ञक (सु औ जस-अम् औ) को णिद्वत् = ण्इत की तरह कार्य हो अजन्त अङ्ग के स्थान में वृद्धिः। (२) अचः = अजन्त अङ्ग के स्थान में वृद्धि हो। ञित् या णित् परे हो तो। यथा—सखि + औ अत्र 'औ' को णिद्वद भाव हुआ। वह णित् माना गया। जिसका फल अजन्त अङ्ग के अन्त्य अल् इके स्थान में वृद्धि 'ऐ' है। ऐस्थाने आयादेशे वर्णसम्मेलने सखायौ एवम् प्रथमायाः बहुवचने सखि + जस्। ज इत्। णिद्वत्। भावे वृद्धिः आयादेशे सखायः। सम्बुद्धि में "ह्रस्वस्य गुणः सूत्र से इ को गुण ए। हे सखे। सखि शब्दात् क्रियाफल आश्रय कर्मविवक्षायाम् 'अम्' (कर्म) को णिद्वत् भाव 'ऐ' वृद्धि आय्आदेश सखायम्, सखायौ। सखि + शस्। श इत्। पूर्वसवर्णदीर्घे, सकारस्य नकारे सखीन्। सखि+साधनविवक्षामें टा 'सखि + आ' अत्र यण्। सख्या सखिभ्यः) सख्ये।

(३) ख्यायात् = खि खी च ति ती च एतेषां समाहारः, ख्यत्यम्। तस्मात् ख्यत्यात् = खितिशब्दसे तथा खीती शब्दसे (यदि वे कृतयणादेश = ई क

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः। ४ औत् ७।३।११८। इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत्। सख्यौ। शेषं हरिवत्।

१८५ पतिः समास एव १।४।८। घिसंज्ञः। पत्या। पत्ये। पत्युः २। पत्यौ। शेषं हरिवत्। समासे तु भूपतये। कतिशब्दो बहुवचनान्तः। ६ बहु-गुण-वतु-डति संख्या १।१।२३। ७ डति च १।१।२५।

स्थान मे य यण् हो चुका हो) परे ङसि ङस् सम्बन्धी अको 'उ' हो। यथा अवधि की विवक्षा में। सखि + ङस् अनुबन्धलोपे इ स्थाने य् यणिकृते सख्यस्। यहाँ यण् किया हुआ खिती से परे ङस् के 'अ' को उ हो गया। सकारस्य रुत्व-विसर्गौ सख्युः (पठामि, मित्र से पढ़ता हूँ) सख्योः सखीनाम् (यज्ञोपवीतानि अभवनन्) ओस् परे यणि। आम् परे नुट् दीर्घ इति विशेषः। दीर्घ उदाहरणं, सुखी = सुख्युः। सुती सुत्युः समझे।

(४) ह्रस्व इकार या उकारसे परे ङिविभक्ति के स्थान में औत् दो मात्रिक औकार हो। यथा—सखि + ङि औत् ङिको औ यण् सख्यौ, सख्योः सखिषु। अवशिष्ट रूप हरिकी तरह जाने। पूर्वेण सिद्धे आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्पते। पतिशब्द को पूर्वसूत्र शेषोघ्यसखिसे घिसंज्ञा सिद्ध थी ही, पुनः घिसंज्ञाका विधान नियमार्थक होगा कि (१८५) पति शब्द को यदि घिसंज्ञा हो तो किसी के साथ समास होनेपर ही हो। पाति = रक्षति पुष्यति। पतिः, पती पतयः। पतिं पती पतीन्। साधनविवक्षामें पति + टा, यहाँ प्राप्त—घिसंज्ञा उक्तनियमसे बाधित हो गई। क्योंकि समास नहीं हैं। अतः यण् पत्या। के लिए अर्थ में पत्ये (शेते) पति + ङसि अवधि या सम्बन्ध अर्थ में ङस् अनुबन्धलोपे यण् 'प्रत्यस्' 'ख्यात्यात्परस्य "अ" को 'उ' सकारस्य रुत्वविसर्गौ पत्युः। अधिकरण विवक्षामें पति + ङि तत्स्थाने 'औत्' सूत्र से औ यणि पत्यौ। शिष्टं हरिवत्। नियम सूत्र में समासग्रहण का फल देते हैं कि भुवः पतिः भूपतिः, तस्मै भूपतये यहाँ समास होने से घिसंज्ञा तन्निमित्तकगुण, अय् आदेश सम्भव हुआ। किम् शब्द से सङ्ख्या अर्थमें डति प्रत्ययसे बना, कतिशब्द नित्य बहुबचनान्त है। उसके एकबचन, द्विबचन नहीं हैं।

(६) बहुशब्द; गणशब्द, वतुप्रत्यय, जिसके अन्त में हो तथा डतिप्रत्यान्त को सङ्ख्या संज्ञा हो। बहु = अधिक गणन (समूह)। वतु–यथा–यावत्–तावत्। डतिप्रत्ययान्त कतिशब्द (कितना अर्थकी अर्थवत्ता से) प्रातिपदिकसंज्ञक से प्रथमा याः बहुबचने जस् संख्यासंज्ञाका फल है कि (७) डतिच। च = षान्त नान्त की तरह डति = अति प्रत्ययान्त सङ्ख्यावाची (कति) शब्दको षट् सञ्ज्ञा हो।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् । ८ षड्भ्यो लुक् ७ । १ । २२ । जश्शसोः । ९ प्रत्ययस्य लुक्-श्लु-लुपः । १ । १ । ६१ । लुक् श्लु-लुप्-शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं स्यात् । १९० प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १ । १ । ६२ । प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात् । इति जसि चेति गुणे प्राप्ते— । १ न लुमताऽङ्गस्य १ । १ । ६३ । लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कति २ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कतीनाम् । कतिषु । युष्मदस्मद्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ । २ त्रेस्त्रयः ७ । १ । ५३ । त्रिशब्दस्य त्रयादेशः

जिसका फल है। (८) षड्भ्योलुक्—षट्संज्ञक (कति) शब्दसे परे जस् तथा शस्का लुक हो। बहुगण आदिशब्द लोकप्रसिद्ध सङ्ख्यावाची नहीं है अतः सङ्ख्या संज्ञाका विधान किया। न च—(९) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः—लुक् श्लु तथा लुप्शब्द से कृतं = किया गया प्रत्ययस्य=प्रत्ययका अदर्शन—(लोप) उसको क्रम से लुक् श्लु लुप संज्ञा हो। (१९०) प्रत्ययलक्षणम्—प्रत्यय है लक्षण कारण जिस कार्यका उसको प्रत्ययलक्षण कहते हैं। प्रत्ययलोपे—जहाँ प्रत्ययका लोप हुआ हो, वहाँ तदाश्रितं = प्रत्यय के आश्रित (आधारित निमित्तक) कार्य हो लुप्त जस्को सूत्रसे प्रत्ययलक्षणमानकर जसि च सूत्र से 'कति' में इको गुण प्राप्त हुआ। प्रत्ययलक्षणका निषेध सूत्र। (१). लु अस्ति अस्य इति लुमान् । तेन लुमाता (लुक्, श्लु, लुप्) तीनों में लु शब्द हैं, इनको निमित्त (कारण) मानकर अङ्गकार्य नहीं होते। प्रसङ्ग में कति शब्दों से लुप्त जस् विभक्ति मानकर प्राप्त अङ्ग कार्य को गुण नहीं हुआ, कति—कितनोंको। कतिभिः कितनों के द्वारा। कतिभ्यः=कितने के लिए या कितनी अवधि। कतीनाम्=कितनी सङ्ख्यका। कतिषु=कितनों में।

तीनों लिङ्ग में एकरस रहनेवाले शब्द की सूचना। युष्मद्, अस्मद् तथा षट् संज्ञा वाले शब्द त्रिषु=तीनों लिङ्ग में सरुपा (समानं रुपं येषान्ते) समान रूप वाले। यथा—त्वं स्त्री अहं स्त्री। कति पुरुषाः, कति स्त्रियः, कति फलानि। तीनों लिङ्ग में कतिशब्द एक रूप है। ऐसे ही त्वं युवां युयम्। अहम् आवां, वयम्। ये तीनों लिङ्गों में एक रस रहते हैं। त्रिशब्द का तीन सङ्ख्या अर्थ है, अतः नित्यबहुबचनान्त माना गया। यथा—त्रिशब्दस्य प्रातिपदिक संज्ञायां जस् (जइत्) ह्रस्वस्यगुणे अयादेशे सस्य रुत्वादिः त्रयः (पुरुषाः)। त्रि + शस् 'श्' इत्। पूर्वसवर्णदीर्घे सस्थाने (तस्मेच्छसो नः) नकारे त्रीन् इत्यर्थः। अन्वितक्रियाके फलका आश्रय कर्म है। यदि साधन अर्थ में त्रिशब्द हो तो, उससे भिस् आदि स्वादिकार्य हुए। त्रिभिः। उद्देश्य या अवधि अर्थ में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यादाभि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि—प्रियत्रयाणाम् ।

३ त्यदादीनामः ७ । २ । १०२ । एषामकारो विभक्तौ । (द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः) द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयोः २ । पाति लोकमिति पपीः = सूर्यः । दीर्घाज्जसि च । पप्यौ २ । पप्यः । हे पपीः । पपीम् । पप्या ।

त्रिशब्दात् भ्यस् त्रिभ्यः (२) त्रिशब्द से सम्बन्ध अर्थ में आम् । (२) त्रेः = त्रिशब्दस्य स्थानें त्रेस्त्रयः इति त्रय आदेशः आम् परे त्रय+आम् नुट्, दीर्घे त्रयाणाम् । त्रिषु । आधारभूत 'त्रि' शब्दस्य प्रा० संज्ञायाम् सुप् षत्वादिकार्ये । गौणत्वेऽपि = विशेषणत्वेऽपि । यदि त्रि शब्द विशेषण, गौंण, अप्रधान भी हो जाय । जैसे—प्रियः त्रयो (प्रियास्तिस्रः) यस्यस प्रियत्रिः । तीन व्यक्ति प्रिय हो । जिसे प्रियत्रिः । पुरुषः । यहाँ त्रिशब्द उपसर्जन (विशेषण) गौंण है । यहाँ भी आम् विभक्ति परे त्रिशब्द को त्रय आदेश हुआ । नुट् दीर्घे रूपं हरिवत् । त्यद् तद् यद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि इतने सर्वनाम को अत्व अकारान्त विधान का सूत्र ।

(३) त्यदादीनाम् = त्यद् तद् इत्यादि । एषां = इन सबों को अकार अन्त में हो । विभक्ति परे । अलोऽन्त्यस्य से अन्त्य अल्को अ हुआ । इससे अदन्त मानकर अङ्गसंज्ञा हुई । यह अकार विधान क्या सम्पूर्ण त्यदादि के लिए है ? तब बोले—द्विपर्यन्तानां = त्यद से लेकर एकद्विपर्यन्त को ही अकार विधान इष्टिः = इष्ट है । यथा—इकारान्त प्रसङ्गानुकूल उदाहरण द्विशब्दस्य द्विवचने औ त्यदादिः 'द्वि' इति उसका अन्त्यअल् 'इ' उसको 'अ' हुआ । वृद्धौ । द्वौ । द्वि+भ्याम् अत्वदीर्घौ द्वाभ्याम् । रूपं सर्ववत् । सभी विभक्तियों का कारक के अनकूल अर्थ जानें । इति ह्रस्व इकारान्ताः ।

पाति = रक्षति लोकम् = जगत्, संसार पालक इति पपीः । रक्षणार्थक या धातु से "यापोः कित् द्वे च" से ई प्रत्यय पा को द्वित्व कित् का फल आ का लोप । पपीः । सूर्य अर्थ से अर्थवान् पपी को प्रातिपदिक संज्ञा सु रुत्वदिसर्गौ । उक्ते = प्रातिपदिकार्थे प्रथमा भवति । पपी औ—यहाँ प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ का दीर्घाञ्जसि च से दीर्घ 'ई' से परे इच् = औ देखकर निषेध हुआ, यण् पप्यौ । सूर्यौ । पपी - जस् = अस् यण् । पप्यः । रक्षकाः, सम्बोधन = आवाहन अर्थ में । हे पपीः । सु रुत्वे विसर्गे । पपी + अम् अकारका पूर्वरुप । पपीं नमस्कुरु । पपी + शस्, (अस्) पूर्वसवर्णदीर्घ सकारस्य नत्वे । पपीन् । रक्षक अनेक कर्म ये जिस क्रिया में अन्वित हों उस क्रिया के फलाश्रय होनेसे सभी कर्मसंज्ञक होते हैं । साधन अर्थवाला पपीशब्द प्रा० संज्ञक से टा' = आ । यण्, पप्या । पपीभ्याम् । उद्देश्य, था अवधिभूत सूर्य । पपी ए यण् पप्ये । पपि + ङस् अस् यण् पप्यः । पपि + ओस् यणि रुत्वेविसर्गे पप्योः । पपिशब्द से षष्ठीबहुवचने आमि । यहां दीर्घ से परे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पपीभ्याम् ३। पपीभिः। पप्ये। पपीभ्यः २। पप्यः। पप्योः। दीर्घत्वान्न नुट्, पप्याम्। ङौ तु सवर्णदीर्घः। पपी पप्योः। पपीषु। एवं वातप्रम्यादयः। बह्वयः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी। ४ यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३। ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः। (प्रथमलिङ्गग्रहणं च) = पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः। १९५ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः

आम् को नुट नहीं हुआ। ह्रस्व से ही नुट् होता है। दीर्घत्वान्न नुट्। पुलिङ्गत्वात् न नदीसंज्ञा। यण् पप्याम्। ङि विभक्ति में सवर्णदीर्घ होता है। पपि+ङि = इ पपी। पपीषु—सप्तमी बहुवचन षत्व, रक्षकों में। एवम् = पपी शब्द की तरह वातप्रम्यादयः = वातं प्रभिमीते, वायुं तोलयति, जो तेज हवा को तौले बराबरी करे, या तेज चले, उसे वातप्रमी (मृग) कहते हैं (क्विप्) वातप्रमी को भी समझें। यथा—वातप्रमीः, वातप्रम्यौ वातप्रम्यः। षष्ठी—वातप्रम्यः वातप्रम्योः, वातप्रम्याम्, इत्यादि।

बह्वयः = बहुसङ्ख्याकाः, श्रेयस्यः = कल्याण्यः स्त्रियः यस्य (पुरुषस्य) स (पुरुषः) बहुश्रेयसी। अधिक भाग्यशालिनी स्त्रीवाला पुरुष अर्थ से अर्थवान् प्रा० संज्ञक बहुश्रेयसी शब्दात् प्रातिपदिकार्थे प्रथमायाः सु। 'सु' का हल्ङ्यादिलोप। बहुश्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः। पुण्यात्मा पुरुष। सम्बोधन सूचक है (शब्द) प्रयोगे हे बहुश्रेयसी 'सु' इति दशायाम्। (४) यू = ईश्च ऊश्च इति यू = ईकार उकारौ। स्त्राख्यौ = स्त्री आख्या = प्रसिद्धिः ययोस्तौ स्त्र्याख्यौ (इकारोकारौ) अथवा स्त्रियमाचक्षाते = स्त्रित्वं प्रकाशयतः इति स्त्र्याख्यौ = स्त्रीलिङ्गबोधकौ ईकारोकारौ। ईकारान्त उकारान्तशब्द यदि नित्यस्त्रीलिङ्गबोधकहों तो नदी संज्ञक हों। शंका—बहुश्रेयसीशब्द, ईकारान्त है, पर नित्य या वैकल्पिक स्त्रीलिङ्ग का बोधक नहीं हैं, नदी संज्ञा कैसे? तब बोले—'प्रथमलिङ्गग्रहञ्च प्रथमं = समासकी पूर्व दशा में जो लिङ्ग रहता है उसको नित्य मानकर भी नदी संज्ञा निर्विघ्न हो। यह शब्दः समासात्पूर्वं स्त्रिलिङ्गमाह—समासे कृते उपसर्जनदशायां लिङ्गव्यत्ययेऽपि, नदी संज्ञा भवतीत्यर्थः। अत आह पूर्वमिति = पूर्वकाल में स्त्रीलिङ्ग की प्रसिद्धि या प्रधानता के उपसर्जनत्वेऽपि = गौड़ (अप्रधान, विशेषण) हो जाने पर भी नदीसंज्ञा स्वीकृत है। नित्यस्त्रीलिङ्ग उसे कहते हैं जो लिंगान्तर (अन्य लिंग) का स्पर्श न करे। (१९५) अम्बायाः अर्थः अम्बार्थः। स च नदी च अम्बार्थनद्यौ तयोः। माता—अर्थ वाचक तथा नदीसंज्ञक अङ्गको ह्रस्व हो सम्बुद्धि परे। सम्बुद्धि सूचक—हे पूर्वक बहुश्रेयसी से 'सु' प्रथमलिङ्गग्रहणं मत्वा नदीसंज्ञा। तन्निमित्तक अम्बार्थनद्योः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७।३।१०७। सम्बुद्धौ। हे बहुश्रेयसि। ६ आण्नद्याः ७।३।११२। नद्यन्तात् परेषां ङितामाडागमः।

७ आटश्च ६।१।९०। आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः २। नद्यन्तत्वान्नुट्। बहुश्रेयसीनाम्। ८ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६। नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम्। बहुश्रेयस्याम्।

ह्रस्वः। ह्रस्वे, ह्रस्वात् सम्बुद्धिलोपे। हे बहुश्रेयसि। (६) नद्याः = नद्यन्त = नदीसंज्ञकशब्द अन्त में हो, उससे परे ङितां = ङे ङसि, ङस् ङिको आट् हो। (७) आटः = आट् (आगम) (आ) से च = अचि परे रहते पूर्व, परके स्थान में वृद्धि एकादेश हो। यथा— बहुश्रेयसी शब्दात् क्रियाफलप्रापकार्थे चतुर्थ्येकवचने ङे (ङ इत्) 'ए' ईदन्तस्य प्रथमलिङ्ग ग्रहणञ्चेति सहकारेण नदी संज्ञा, नद्यन्तस्य आट् बहुश्रेयसी + आ + ए 'आटश्चेति' वृद्धौ यणि बहुश्रेयस्यै इति। बहुश्रेयसीभ्याम् बहुश्रेयसीभ्यः। बहुश्रेयसी + ङस् = अस् नदीसंज्ञा, आट् आगम वृद्धिः, यण् रुत्वविसर्गे, बहुश्रेयस्याः, बहुश्रेयसीभ्याम्, बहुश्रेयसीभ्यः। बहुश्रेयसींशब्दात् बहुवचने आमि, नदी संज्ञा, नद्यन्त होने से नुट् = न। बहुश्रेयसीनाम्। (८) ङेः (स्थाने) आम्, नदी, आम् नीशब्देभ्यः। नद्यन्त हो या आबन्त तथा नी शब्द से परे ङिविभक्ति को आम् हो। बहुश्रेयसी + ङि नदीसंज्ञा 'ङेरामि' यणि बहु श्रेयस्याम्। बहुकल्याणी स्त्रीवाले में। शेष = नदीसंज्ञा तथा उसके कार्य से सिद्ध शब्द समझाये गये। अब अवशिष्ट विभक्तियों के रूप 'पपी' शब्द की तरह समझें। लक्ष्मीमतिक्रान्तः अतिलक्ष्मीः (पुरुषः)। लक्ष्मी को भी अतिक्रमण करने वाला। लक्ष्येर्मुट् च, लक्षः = सिद्धिः अस्ति अस्यां अर्थ में लक्ष शब्द से मुट् = म् तथा ई प्रत्यय होता है। सुविभक्ति का (स्त्रीलिङ्ग बोधक ङीप्, ङीष्, ङीन् का 'ई' नहीं है तो ङ्यन्त न होने से) लोप नहीं हुआ। अङ्यन्तत्वात् न सुलोपः। रुत्वे विसर्गे अतिलक्ष्मीः। अन्य सभी रूप बहुश्रेयसीवत् चलेंगे। क्योंकि 'लक्ष्मीमतिक्रान्तः' इस दशा में लक्ष्मीशब्द स्त्रीलिङ्ग है, उससे बना अतिलक्ष्मीशब्द में प्रथम लिङ्ग नित्य स्त्रीलिङ्ग मानकर नदीसंज्ञा निश्चित है। उसके कार्य ह्रस्व, आट्, ङेराम् नुट्, ये अवश्य होंगे। अतिलक्ष्म्यौ, अतिलक्ष्म्यः अतिलक्ष्मीम् अतिलक्ष्म्यौ, अतिलक्ष्मीन्। अतिलक्ष्म्या, अतिलक्ष्मीभ्याम्, अतिलक्ष्मीभिः। अतिलक्ष्म्याम् अतिलक्ष्म्योः अतिलक्ष्मीषु। प्रकर्षेण ध्यायति, पूर्णरूपेण चिन्तनं करोति। ध्यैचिन्तायाम् चिन्तन-मनन् कर्ता अर्थ से अर्थवान् प्रधीशब्दस्य प्रा० सं० सु रुत्व विसर्गौ प्रधीः। चिन्तकः सूक्ष्मध्यान कर्ता। नाऽयं स्त्रीलिङ्गः। यदि प्रकृष्टाधीः बुद्धिर्यस्य अर्थ करें तो प्रथम लिङ्ग धी शब्द के नित्य स्त्रीलिङ्ग होने से नदी संज्ञा उसके कार्य होंगे।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शेषं पपीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः—अतिलक्ष्मीः, शेषं बहुश्रेयसीवत्। प्रधीः। ९ अचि श्नु-धातु-भ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६। ४। ७७। श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते—

२०० एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६। ४। ८२। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये। प्रध्यौ। प्रध्यम्। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत्। एवं ग्रामणीः।

परन्तु यहाँ तथा नास्ति। यहाँ भी ङ्यन्त न होने से सुलोपो नास्ति। यद्यपि कुछ शब्दों में सुलोप नहीं होता यथा—

अवी तन्त्रीतरी लक्ष्मी धी, ह्री श्रीणामुणादितः।
अपि स्त्रीलिङ्गवृत्तीनां सोर्लोपो न कदाचनः॥

उणादि से सिद्ध 'ई' प्रत्ययान्त से सुलोप नहीं होता। प्रधी+औ इति दशायाम्—

(९) अचि=अच् परे, श्नु=श्नुप्रत्यय हो अन्त में जिसके, धातुः=इकारान्त उकारान्त धातु के, भ्रूः=भ्रू शब्द के अङ्ग के स्थान में युवोः=इकारोकारयोः स्थाने क्रम से इयङ् उवङ् हो अजादि प्रत्ययपरे। इवर्णान्त धातु 'धी' का अङ्गभूत ई को इयङ् प्राप्त हुआ। यद्यपि प्रथमप्राप्त यण् को बाधकर प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ का "दीर्घाज्जसि च" से निषेधः। पुनः यण् को बाधकर इयङ् की प्राप्ति है।

(२००) एः=धातु का अवयव संयुक्त अक्षर पूर्व में न हो ऐसा इवर्ण हो अन्त में जिसके, ऐसा धातु तदन्त=वह धातु हो अन्त में जिसके ऐसे अनेकाच् अङ्ग के स्थान में यण् हो अजादि प्रत्यय परे। प्रसङ्ग में धातु ईवर्णान्त धी है, उसके पूर्व में संयुक्त वर्ण नहीं है, वह अन्त में प्रधी के है वही अनेकाच् अङ्ग भी है। 'अलोऽन्त्य' सूत्रसे अन्त्य अल् (ई) को यण् हुआ। प्रध्यौ, तन्मयध्यानकर्तारौ। तथैव कर्म की विवक्षा में प्रधी + अम् अत्रापि इयङ् प्रबाध्य यण्, पूर्ववत् बोध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ, प्रध्यः। प्रध्या, प्रधीभ्याम्, प्रधीभिः। प्रध्ये, प्रधीभ्याम्, प्रधीभ्यः। प्रध्यः, प्रध्योः प्रध्याम्। ङौ, यणि, प्रध्यि। शेषं पपीवत्। एवम्=प्रधीशब्द कीतरह ग्रामं नयतीति ग्रामणीः। गाँव का नेता, मुखिया या प्रधान व्यक्ति अर्थ में प्रातिपदिकसंज्ञा 'सु' रुत्वे विसर्गे, णत्वे ग्रामणीः। केवल सप्तमी विभक्ति में ङेराम्नद्याम्नीभ्यः, से 'ङि' को आम् यण् होकर ग्रामण्याम् ग्राम प्रधान का शेषं=प्रधीवत् रूप जाने। अनेकाचः किम्? सूत्र में अनेकाच् अङ्ग को यण् का विधान क्यों? इसलिए कि एकाच् अङ्ग के इकार को यण् न हो जाय। यथा—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्–नीः नियौ नियः। अमि शसि च परत्वादियङ्। नियम्। नियः। ङेराम्, नियाम्। असंयोगपूर्वस्य किम्—सुश्रियौ। यवक्रियौ। १ गतिश्च १।४।६०। प्रादयः क्रियायोगे गति-संज्ञाः स्युः (गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते)। शुद्धधियौ। २ न भूसुधियोः ६।४।८५। एतयोरचि सुपि यण् न। सुधियौ। सुधियः,

---

नयतीति नीः नयन=संचालन या प्रापणकर्ता नेता अर्थ में प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्ये नी+औ, यहाँ एकाच् अङ्ग होने से यण् बाधक नहीं बना। इयङ् हुआ। नियौ, नियः नी+अम् इति दशायाम् अमि पूर्वरुपं प्राप्तं परत्वात् इयङ् आदेशे। नियम्, नियौ, नियः। पूर्णसवर्णदीर्घ बाधित्वा च इयङादेशे नियः, नियोः, नियाम्, इति। ङिस्थाने आम्, इयङ्, नियाम्, नियोः, नीषु। असंयोगपूर्वस्य किम्? सूत्र में संयुक्त (हल्) वर्ण धातु के पूर्व में न हो तभी यण्का विधान क्यों? इसलिऐ कि शोभनं श्रयति=सेवते इति सुश्रीः सुसेवकः अर्थवाला प्रातिपदिकसंज्ञक "सुश्री" शब्दसे स्वादिकार्य हो, यण् न हो। यदि शोभना श्री सुश्री उच्यते तर्हिनित्य स्त्रीलिङ्ग होनेसे नदीसंज्ञा तदनुकूलकार्यं होने लगेगा। सुश्री+औ। यहाँ धातुसंयोगपूर्वक है। अतः यण् न होकर इयङ हुआ सुश्रियौ। इसीप्रकार यवं क्रिणातीति यवक्रीः। जब खरीदनेवाला, यवक्रियम् यवक्रियौ, यवक्रियः। यवक्रिये, यवक्रीभ्याम्, यवकीभ्यः। यवक्रियि, यवक्रियोः, यवक्रीषु।

(१) प्रादयः=प्र, परा, अप, सम, आदि क्रियायोगे=क्रियासे जुड़ हो तो गति संज्ञा भी हो। गतिसंज्ञक तथा कारक इन दोनों में से कोई एक पूर्व पद हो, तब यण् नहीं होता। यह नियम है। शुद्धं=दोषरहितं निर्विकारं ध्यायति=साक्षात् करोति इति—शुद्धधीः। सफलचिन्तक अर्थ को प्रातिपदिक संज्ञा स्वादिः। शुद्धधी+औ, यहाँ शुद्धशब्द कर्मकारक उपपद रहनेपर धीमें ईको २०० सूत्र से यण् प्राप्त होता है। उसका निषेध (कारक पूर्वपद होने से) 'यण् नेष्यते' से हुआ। तब इयङ् हो गया। शुद्धधियौ (२) भू और सुधी शब्द को अचिसुपि=अजादि सुप्विभक्तिपरे यण् न हो। सुष्ठु ध्यायति सुधीः। सुधी+औ। यहाँ प्राप्त एरनेकाच् यण्का न भूसुधियोःसे निषेध तब इयङ्। सुधियौ। सुखमिच्छति सुखीः सुखकी इच्छा करनेवाला अर्थ मेंसुखी शब्द को प्रातिपदिक आदि कार्य हुए। इसी प्रकार सुतं=पुत्रमिच्छति अर्थ में। सुतीः भी प्रसिद्ध है। दोनों में अजादि विभक्ति परे रहते यण् हुआ। सुख्यौ, सुत्यौ, ङसि ङस विभक्ति में भी यण् तथा 'ख्यत्यात्परस्य' उत्वविधानकर सुख्यु, सुत्युः सुखीभ्यः। सुत्युः सुत्योः, सुत्याम्। शेष प्रधीवत्। उकारान्त, पुलिङ्गशब्द

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि। सुखमिच्छतीति सुखीः। सुतमिच्छतीति सुतीः। सुख्यौ, सुत्यौ। सुख्युः, सुत्युः। शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः। ३ तृज्वत् क्रोष्टुः ७।१।९५। असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः। ४ ऋतो ङि-सर्वनामस्थानयोः ७।३।११०। ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च। इति प्राप्ते— । २०५ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७।१।९४। ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ। ६ अप्तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षत्तृ होतृ-पोतृ-प्रशा-

---

हरिशब्दकी तरह होते हैं। यथा—शम्भुः शम्भू शम्भवः। शम्भुम् शम्भू शम्भुन्। शम्भुना शम्भुभ्यां शम्भुभिः। शम्भवे, शम्भुभ्याम्, शम्भुभ्यः। शम्भोः शम्भुभ्याम्, शम्भुभ्यः। शम्भोः शम्भवोः शम्भूनाम्, शम्भौ शम्भवोः, शम्भुषु। हे शम्भो इत्यादि। एवं=उकारान्त पुलिङ्ग भानु आदि को समझें।

शृगाल, वंचक, क्रोष्टु, फेरु, जम्बुका (गीदड़) ऋषि, अर्थ से अर्थवान् शब्दस्वरूप क्रोष्टु शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायाम् 'सु'। (३) सम्बुद्धिसंज्ञक से भिन्न-सर्वनाम स्थान=(सु, औ, जस् अम्, औ, विभक्ति) परे हों तो क्रोष्टुः=क्रोष्टु शब्दके स्थान में तृज्वत्=तृच्प्रत्ययेन तुल्यं क्रोष्टृ आदेशो भवति। ऋकारान्त क्रोष्टृ शब्दका प्रयोग करना चाहिए। केवल सर्वनामस्थानमें क्रोष्टृ + सु। ४) ऋतः=ऋकारान्तअङ्गकेस्थान में गुण हो सर्वनामस्थानयोः=ङि विभक्ति तथा सर्वनामस्थानसंज्ञकविभक्तिपरे हो तो। इससे ऋदन्त अङ्ग को गुण प्राप्त हुआ (२०५) ऋत्=ऋदन्तानाम् उशनस् (शुक्राचार्य) (पुरुदंस्=माजीरी (बिल्ली) उशनन् (शुक्राचार्य) (पुरुदस्)=माजीरी (बिल्ली) अनेहस (समय) शब्द को अनङ्आदेश हो च=सम्बुद्धिभिन्न सुपरे। ऋदन्त अङ्गक्रोष्टृ के ऋको अनङ्=अन् हुआ। सम्बुद्धिभिन्न 'सु' समझकर। क्रोष्टन् सु। (६) अप् (जल) तृन्-तृच् (प्रत्ययान्त) स्वसृ=(बहन) नप्तृ=(पुत्रिपुत्रः नाती) नेष्टृ=दाता, त्वष्टृ (असुर पुरोधा) क्षत्रि=(द्वारपाल, रक्षक संचालक) होतृ=होता। पोतृ=पवित्रकर्ता, प्रशास्तृ=प्रशंसनीय शासक, ये सभी अबादि हैं। उनके उपधाके स्थान में दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थान परे। क्रोष्टन् में अन्त्य अल् 'न' के पूर्व वर्ण 'अ' को उपधासंज्ञा, उसीको दीर्घ हुआ। एकदेश विकृत न्याय से क्रोष्टन् को तृजन्तमानकर। क्रोष्टान् + सु हलङ्यदिलोपे, प्रातिपदिकान्त नलोप। कोष्टा (शृंगालः, ऋषिर्वा कश्चित्) कोष्टु + औ प्रातिपदिक-संज्ञा विभक्तिकी उत्पत्ति पूर्ववत्, समझें। तृज्वद भाव भी। ऋदन्त अङ्गमानकर गुण 'अर्' उसके उपधा (पूर्ववर्ण) को ६ से दीर्घ वर्णसंम्मेलने। अनेक शृंगाल बोधके बहुवचने क्रोष्टु जस् तृज्वत्, गुणे, रपरे उपधादीर्घ, रुत्वविसर्गे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्तृणाम् ६। ४। ११। अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। क्रोष्टा। क्रौष्टारौ २। क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रोष्टून्। ७ विभाषा तृतीयादिष्वचि ७। १। ९१। अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्ट्रे। ८ ऋत उत् ६। १। १११। ऋतो ङसिङसोरत उदेकादेशः। रपरः।

९ रात् सस्य ८। २। २४। रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य। रेफस्य विसर्गः। क्रोष्टुः। क्रोष्टोः। (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्ववि-

---

क्रोष्टारः। अम् विभक्तिपरे भी वही प्रक्रिया। शस्‌विभक्ति में तृज्वत् नहीं होता, सर्वनाम परे न होने से। क्रोष्टुशब्द में पूर्वसवर्ण दीर्घ शस् के सकार को पुंसि नकार हे क्रोष्टो। शम्भुवत्। हे क्रोष्टारौ, हे क्रोष्टारः। सुसे भिन्न सम्बोधनमें तृज्वद्। (७) अचि - अजादि विभक्ति हो तथा तृतीयादिषु=तृतीया, चतुर्थी आदि। (टा ङे, ङसि, ओस्, आम, ङि) ये अजादि विभक्ति हैं) इनके परे रहते क्रोष्टु शब्द विकल्प से तृज्वत् = क्रोष्टृरूप धारण करता है। क्रोष्टु शब्दस्य तृतीयैक वचने साधने अर्थे टा आको अजादिविभक्तिमानकर क्रोष्टृभाव तथा ऋको यण् क्रोष्ट्रा। पक्ष में क्रोष्टुना १६४ टा को 'ना' क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभिः। ङे=ए विभक्ति में तृज्वभाव यण् क्रोष्ट्रे, पक्षे घिसंज्ञा गुणावादेशे क्रोष्टवे। क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टूभ्यः। सम्बन्धित अर्थकी विवक्षायां क्रोष्टु + ङस् = अस् विकल्पेन तृज्वद्भावे क्रोष्टृ + अस्। (८) ऋतः = ऋकारान्तशब्दस्य ङसि ङस्‌सम्बन्धी अकारपरे पूर्वपर (ऋ तथा अ) के स्थान में उत् = 'उ' एकादेश हो। यहाँ तपर तत्काल का बोधक है। ऋ के स्थान में 'उ' विधान से र पर हुआ, क्रोष्टुर स् (९) रात् = रेफ से परे यदि संयोगान्त वर्णका लोप हो तो सस्यैव = सकार का ही लोप हो। अन्यवर्ण का नहीं। यह नियमसूत्र है। 'स' का संयोगान्त लोपः। रेफस्य विसर्गः क्रोष्टुः। पक्षे, क्रष्टोः (भानोः जैसा) ओस् विभक्ति में भी क्रोष्टवोः क्रोष्टोः। क्रोष्टु + आम्। यहाँ (इकोऽचि विभक्तौ) से प्राप्त नुम्। अचिरऋत से रभाव,। तृन्वत्क्रोष्टुः से तृजन्तभाव। इन तीनों को पूर्वविप्रतिषेध से बाधकर ह्रस्वान्त मानकर नुट् हुआ। नामि दीर्घः क्रोष्टूनाम्। तुल्यबलका विरोध होने पर व्यवस्थापक 'विप्रतिषधे परं कार्यम्' में परशब्दका इष्टं कार्यम् अर्थ है। पूर्वसूत्र इष्ट हो या परसूत्र प्रयोगसिद्धि के अनुकूल समझें। यहाँ नुट् अभीष्ट है। इसीलिए पूर्वं कार्यम् मान्य है। सप्तमी ङिविभक्ति में २०७ से तृज्वौ २०४ से गुण क्रोष्टरि क्रोष्टत्, क्रोष्टुषु। हलादिविभक्ति में शम्भुवत् रुपम्। गन्धर्व अर्थसे अर्थवान् हू हू शब्द को प्रा० स्वादिकार्य। हूहूः।

हूहू औ यण् हूह्वौ। सवर्णदीर्घ का 'दीर्घाज्जसिच' से निषेध हुआ। शस्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिषेधेन) क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि । पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहूः । हूह्वौ । हूह्वः । हूहून् । इत्यादि । अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः । हे अतिचमु ! । अतिचम्वै । अतिचमूनाम् । खलपूः । २१० ओः सुपि ६।४।८६। धात्ववयव-संयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण्

विभक्ति में पूर्वसवर्णदीर्घ 'स' को 'न' हूहून् । चमूशब्द स्त्रीलिंग है । चमूं = सेनामतिक्रान्तोऽतिचमू शब्द अर्थवान् है । जो (जत्था) सेना को मात करदे । प्रथम स्थिति का लिंग नित्यस्त्री मानकर नदीसंज्ञा तथा उसका कार्य = ह्रस्व, आट्, ङेराम् आदि विशेष होते हैं । अतः हे अतिचमू + सु ऊ को नदीसंज्ञा अम्बार्थनद्यो ह्रस्व इति ह्रस्वे सुलोपे । अतिचमुम् अतिचमू = अतिचमून् । ङे विभक्ति में आट् नदीकार्य, वृद्धि, यण्, अतिचम्वै । अतिचमूभ्याम् अतिचमूभ्यः । ङसि और ङस् विभक्तिमें नदीसंज्ञा, आट्, वृद्धि, यण् । आम् परे नदीसंज्ञा नुट् अतिचमू + ङि = इ 'यू' सूत्र से नदीसंज्ञा (ङेराम) 'ङि' को आम्, यण् अतिचम्वाम् अतिचम्वोः, अतिचमूषु । सेना को भी मात करने वाली जनता) । (खलं (खलिहान) पुनाति (मार्ष्टि, मृजू शुद्धौ) खलिहान शुद्धकर्ता) स्वच्छं करोति' अर्थं में खलपूशब्द से स्वादिकार्य खलपूः । (२१०) ओः – धातु का अवयव (अङ्ग) संयुक्तवर्ण पूर्व में न हो जिसके, ऐसा उकार हो अन्त में ऐसा धातु, वह हो अन्त में जिसके ऐसे अनेकाच् अङ्ग को यण् हो, अजादिसुप्परे । खलपू में पूधातु का पूर्ववर्ण संयुक्त नहीं है । वह उकारान्त भी है, वह (पू) खलपू के अन्त में भी है । अनेकाच् अङ्ग होने से अन्त्य अल् पूके 'उ' को यण् हुआ । खलप्वौ । (खलिहान) पवित्रकर्तारौ । एवं खलप्वः । अजादिविभक्तियों में यण् होगा । हलादि में साधारण रहेगा । गृहं पुनाति गृहपूः । राष्ट्रपूः, समाजपूः, वस्त्रपूः, क्षेत्रपूः । एवं सुष्ठु (स्वच्छं शोभनं) लुनातीति सुलूः । छेदन् लवन कर्ता अर्थ में उकारान्त शब्दों की तरह समझें ।

स्वभूः = स्वेन (आत्मना) भवति (उत्पद्यते) इति स्वभूः = ब्रह्मा स्वयं प्रकट होते हैं । (स्वभूर्नाब्रह्मणि हरौ इति मेदिनी) अर्थ से अर्थवान् स्वभूशब्दस्य प्रा० संज्ञा 'सु' रुत्वे विसर्गे स्वभूः । स्वयं पैदा होनेवाले जीव । प्रातिपदिकार्थ विवक्षायां । स्वभू + औ अच्परे उकार के स्थान में अचिश्नु उवङ् स्वभुवौ स्वभुवः । विशेषः—प्रथम यण् प्राप्तिः, उसे बाधकर पूर्व सवर्णदीर्घ, उसका निषेध 'दीर्घाज्जसिच' से पुनः प्राप्तयण् को बाधकर उवङ् समझें । यदि 'एरनेकाच् यण् प्राप्त हो तो 'नभूसुधियोः'से उसका निषेध जाने । स्वभुवं, स्वभुवौ, स्वभुवः । स्वभुवे, स्वभूभ्याम्, स्वभूभ्यः । प० स्वभुवः स्वभुवोः स्वभुवाम् । हे स्वभूः हे स्वभुवौ हे स्वभुवः । वर्षासु = वृष्टिकालेषु भवति (उत्पद्यते) इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यादचि सुपि। खलप्वौ। खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षाभूः। १ वर्षाभ्वश्च ६।४।८४। अस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः। (दृन्-कर-पुनः पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः) दृन्भ्वौ। एवं करभूः। धाता। हे धातः!। धातारौ। धातारः। (ऋवर्णा-

---

वर्षाभूः। मेढ़क, केचुआ, कीड़े वर्षाकाल के जन्तु आदि। (भेक्यां पुनर्नवायां स्त्री वर्षाभूः दर्दुरे पुमान् इत्यमरः। इस अर्थ से अर्थवान् को प्रा० सु रुत्व विसर्गो = वर्षाभूः (मेढ़क)। वर्षाभू + औ। द्विवचन की विवक्षा में औपरे प्राप्त यण् को बाधकर पूर्वसबर्णदीर्घ उसका निषेध, पुनः यण् बाधकर उवङ् उसे बाधकर एरनेकाच् यण्, उसको 'न भूसुधियोः' से निषेध (१) वर्षाभू शब्द के अङ्ग के उकार को यण् हो। अजादिविभक्तिपरे। 'औ' अजादि है अतः उकारको यण् वर्षाभ्वौ अन्यरुप स्वभूवत्!

दृन् सर्पः वज्रम्वा भवतीति दृन्भूः। जो सांप् वज्र, तृप्, या सूर्य बन जाय, इस अर्थ में दृन्भूः पन्नगबज्रयोः इतिविश्वः। स्वादिकार्ये: दृन्भू + औ, यहाँ बाध्यबाधक भाव पूर्ववत्। दृन्कर तथा पुनः शब्द पूर्व में हो, भूशब्द को यण् कहना चाहिए। दृन्भभ्वः। कराद्भवतीति करभूः = हस्तकलाकी वस्तु। पूर्ववत् औविभक्ति में 'दृन्कर', वार्तिक से करपूर्वकभूको यण् हुआ। दधाति धारयति पुष्यति वा लोकान् धाता = जगत का धारणपोषणकर्ता अर्थ से अर्थवान् धातृशब्दस्य प्रा० संज्ञायां प्रथमैकवचने 'सु' विभक्तौ 'ऋ' स्थाने ऋदुशनस् अनङ् = अन् उपधादीर्घे, सुलोपनलोपौ धाता। धातृ + औ ऋस्थाने ऋतोङि अर्-गुणे उपधायाः दीर्घे, धातारौ। एवं धातारः। हे धातः = धातृ + सु "ऋतोङि,, सूत्रेण अर्गुणे सम्बुद्धिलोपे रेफस्य विसर्गे। धातारम्, धातारौ, धातृन्। पूर्वसवर्णे-दीर्घे नत्वं, विशेषः। धात्रा, धातृभ्याम् धातृभिः। धात्रे = ब्रह्माके लिए धातृ + ए यण्,। धातुः धातृभ्याम् धातृभ्यः। धातुः धात्रोः धातृणाम्। धातरि धात्रोः, धातृषु। (वा०) ऋवर्ण से परे 'न' को णत्व हो। ऋशब्द अट् प्रत्याहार में नहीं आता। इसीलिए अलग णत्वविधायक वार्तिक पढ़ा! नप्त्रादिग्रहणमिति—अप्तृन् तृच्-सूत्र में तृन् तृच् के ग्रहण से नप्तृ, नेष्टृ आदि शब्द गृहीत होते, उपधा दीर्घ के भागी बनते। तब नप्त्रादि को अलग से क्यों पढ़ा? अतः सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय कल्प्यते। तृन् तृच् से ही सिद्ध दीर्घविधि है। नप्त्रादि ग्रहणव्यर्थ होकर नियम करते हैं कि उणादिनिष्पन्नानां तृन् तृच्प्रत्ययान्तानां संज्ञाशब्दाना-मुपधादीर्घश्चेत् तर्हि नप्त्रादीनामेव। उणादिप्रकरण के विषय में दोपक्ष हैं अव्युत्पन्न तथा व्युत्पन्न। जिसमें प्रकृति अर्थ प्रत्यय अर्थ का विभाग न हो उसे अव्युत्पन्न कहते हैं। व्युत्पत्तिपक्ष में प्रकृति प्रत्यय का अर्थ विभाग

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

न्नस्य णत्वं वाच्यम्) धातॄणाम् । एवं नप्त्रादयः । नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेनेह न—पिता, पितरौ पितरः । पितरम् । शेषं धातृवत् । एवं जामात्रादयः । ना । नरौ । २ नृ च ६ । ४ । ६ । अस्य नामि वा दीर्घः नृणाम्, नॄणाम् ।

३ गोतो णित् ७ । १ । ९० । ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् । गौः । गावौ । गावः । ४ औतोऽम् शसोः ६ । १ । ९३ । ओतोऽम् शसोरचि आकार एकादेशः । गाम् । गावौ । गाः । गवा । गवे । गोः २ । इत्यादि ।

होने से नप्तृ नेष्टृ-होतृ-पोतृ आदि को तृन्नन्त तथा तृजन्त मानकर दीर्घ सिद्ध है । नियम = उणादि से सिद्धतृन् तृच् प्रत्ययान्त तथा संज्ञाशब्द की उपधा को दीर्घ हो तो नप्तृ, नेष्टृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ, शब्दों को ही हो । इसलिए पितृ, मातृ शब्द तृन्नन्त होते हुए दीर्घ नहीं होता । उक्त नियम से मुक्त हैं । अतः पितरौ, पितरः । मातरः मातरौ में उपधादीर्घ नहीं हुआ । अव्युत्पत्ति पक्ष में प्रकृति प्रत्यय विभाग न होने से सूत्र में गृहीत शब्द ही दीर्घ के भागी होंगे । इससे भी पित्रादि में दीर्घः न प्राप्नोति । पितरं, पितरौ, पितॄन् । ना=मनुष्य अर्थ से अर्थवान् 'नृ' शब्दस्य प्रा० संज्ञा 'सु' ऋृ, अनङ्, नान्त उपधा दीर्घ, सु लोपनलोपौ ना इति । नृ+औ, इतिदशायां ऋकारन्त अङ्ग के अन्त्य अल् के स्थान में अर् गुण २०४ से नरौ, नरः । नरं, नरौ नॄन्, न्रा:, नृभ्यां:२ नृभ्यः२ । नुः२ न्रो, नृणां, नॄणां । अत्र (२) सूत्र से आमिपरे नृको विकल्प से दीर्घ हुआ । नामि से प्राप्त दीर्घ को बाध कर ।

(३) गोतः = ओकार से विधान किया गया सर्वनामस्थानसंज्ञक (सुऔ जस्, अम्, औट्) को णिद्वत् = णित् मानकर कार्य हो । यथा— गच्छतीति गौः (गमेर्डोसि्) गाय अर्थ में योगरूढशब्द प्रसिद्ध है । ओतो णिदिति वाच्यम् इस वार्तिक के अनुरोध से सूत्र की वृत्ति में ओकार बढ़ गया । गो+सु, ओकार से विधान किया गया सु को णित् हुआ । जिसके कारण १८२ से अच् (ओ) के स्थान में वृद्धि हुई, गौः । गो+औ, णिद्वत्, वृद्धि आव् । गावौ, गावः । गो+अम् ।

(४) औतो = आ, ओत्, इति पदच्छेदः । ओकार से अम् शस् सम्बन्धी अच् परे पूर्व के स्थान में आकार एकादेश हो । (ओ तथा अ) मिलकर आ । गां, गावौ, गाः । गो+शस् = अस् पूर्व पर ओ तथा अ मिलकर आ आदेश रूत्व विसर्गौ । गो+टा = आ, अव् आदेश, । गवा, गोभ्यां गोभिः । गवे, गोभ्यः, गोः गवोः, गवाम् । गवि, गवो : गोषु । हे गौः हे गावौ हे गावः । धनवाची प्रा० संज्ञक रैशब्द से सु ।

 CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२१५ रायो हलि ७ । २ । ८५ । अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । राः रायौ । रायः । राभ्यामित्यादि । ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः ग्लौभ्यामित्यादि ।

इत्यजन्ताः पुंल्लिङ्गाः

---

(१५) रैशब्द का आकार अन्तादेश हो । हलादिविभक्ति परे रहते । रैशब्द को 'रा' हो गया रुत्व विसर्गः । राः, रायौ, रायः । रायं रायौ रायः । राया । रैभ्यां में रायो हलि से हलि परे रैशब्द को आत्व राभ्यां राभिः । राये, राभ्यः, रायः रायोः रायां । रायि रायोः रासु । (आसज्यते) ग्लायति कृष्णपक्षे क्षिणी भवति इति ग्लौः = चन्द्रमा । सु रुवि । ग्लावौ, ग्लावः । ग्लावं ग्लावौ ग्लावः । ग्लावा ग्लौभ्यां ग्लौभ्यः । ग्लावः ग्लावोः ग्लावाम् । ग्लावि ग्लावोः ग्लौषु ।

इस प्रकरण में अ, इ, उ, ऋ ए ओ ऐ औ वर्ण समाम्नाय के क्रम से रूप विधि बताई गई है । यथा—अ = राम, इ = हरिः, उ = भानु, ए = शे, औ=गौः, ऐ रै = औ ग्लौः ।

इति प्रभाकरीटीकायां अजन्तपुलिङ्गाः ।

अथषाड्लिङ्गेषु अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

रजोगुण प्रधान धर्म स्त्रीलिङ्ग है वह शब्द में लीन हो तथा अजन्त= अच् प्रत्याहार के अक्षर अन्त में हों, ऐसे शब्द का कारकानुसारी प्रकरण अजन्तस्त्रीलिङ्ग है। स्त्रीधर्म का उद्बोधक (प्रकाशक) ङीप् टाप् आदि प्रत्यय है । टाप् = आ (रमा) ङीप् = ई, (गौरी) ऊङ् (कमण्डलूः) इत्यादि । प्रकरण का प्रारम्भिक उदाहरण रमा = रमते विष्णुना साकं या, सा । जो विष्णु के साथ रमण करे या रमते जगत् यस्यां सा (रमा) । सारा संसार जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का लाभ कर मगन हो । (रम-क्रीडायां) धातु से कर्ता आदि अर्थ में अच्, प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा स्त्रीलिङ्ग का टाप् = आ । अकारान्तस्त्रीलिङ्ग, एकलक्ष्मीरूप कर्त्री अर्थ से अर्थवान् रमाशब्द से ङ्याप्प्राति-पदिकात् सूत्र से आवन्त मानकर परमें प्रथमा का एकवचन 'सु' विभक्तिः । रमा + सु-(उकार इत्) स् (रमा स्) स् को अपृक्त संज्ञा उसी का 'हल्ङ्यादि' लोपे सति रमा सिध्यति । सत्य यह है कि प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि-ग्रहणम् । जहाँ प्रातिपदिकसंज्ञा होने से जो कार्य हो वहाँ स्त्रीलिङ्गपरिचायक टाप् आदि प्रत्यय से विशिष्ट (युक्त) का भी ग्रहण हो । ङीप् आप् ग्रहण का फल आर्यिका आदि । परिभाषा द्वारा प्रातिपदिक जानकर 'सु' समझे । प्रत्यय लोप होने पर प्रत्ययलक्षण से पद संज्ञा भी जाने ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथाजन्त-स्त्रीलिङ्गाः

रमा । ६ औङ आपः ७।१।१८। आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात्। औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा। रमे। रमा ।७ सम्बुद्धौ च ७।३।१०६। आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ। एङ् ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः। हे रमे!,

---

दो लक्ष्मी रूप अर्थ से अर्थवान **रमा, रमा,** को एक शेष करके एक रमाशब्द दो रमाशब्द को बोले, तव द्वितीया का द्विबचन औ। रमा + औ।

(६) औङ् = औ विभक्ति के 'स्थान में आपः = आकारान्त अङ्ग से। आबन्तादङ्गात् = आबन्त अङ्ग (रमा) से परे औ विभक्ति के स्थान में 'शी' = ई आदेश हो। सूत्र में औङ् शब्द औ विभक्ति का बोधक है। शी में 'श' की लशकु-अतद्धिते से इत् स्थानिवद्भावेन शकार को प्रत्यय मानकर उसके आदि का अक्षर (इत् लोप) औ का प्रत्यय धर्म स्थानिवद्भाव से 'शी' में लायेंगे। **रमा+ई**। आ, ई मिलकर गुण एकादेशे। **रमे**। सुबन्त बनाने का प्रयोजन पद संज्ञा द्विवचन का बोध। अन्तादिवद्भाव = इस गुण एकादेश 'ए' के पूर्वभाग, (रमा) का अन्त 'आ' पर के औ का आदि मानकर पदं सिद्धम्। बहुत लक्ष्मी की विवाक्षा में रमा + जस् = अस्। अत्र प्राप्तस्य पूर्वसवर्णदीर्घस्य-दीर्घाज्जसि चेति सूत्रेण निषेधे सति। सवर्णदीर्घे रूत्वे विसर्गे च रमाः।

(७) सम्बुद्धौ च = सन्मुख उपस्थिति विषय होने पर। च = आकार को एकार। **आकारान्त अङ्ग को एकार हो। सम्बुद्धि का विषय होने पर**। एङन्त, ह्रस्वान्त, अंग से परे सम्बुद्धि के 'स्' का लोप हो, स्त्रीलिंग बोधक 'रमा' शब्द को सन्मुख करने (आह्वाहन — बुलाने) अर्थ का सूचक 'हे' शब्द पूर्वक या परक रमा को आकारान्तस्त्रीलिंग मानकर सम्बोधन अर्थ में 'सु' विभक्ति, उसको सम्बुद्धिसंज्ञापरे मानकर रमा में अलोन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् 'आ को एकार हुआ। एङ्ह्रस्वात् एङन्त से परे 'सु' के 'स्' का लोप। हे रमे। एवम् हे रमाशब्दात् द्विबचनविवक्षायाम् औ विभक्तिः (औङ् आपः) **आकारान्त अंग से परे औ विभक्ति को शी आदेश**। प्रत्ययत्वधर्म का स्थानिवद्भाव करके शी के श को इत् (अदर्शन) हुआ। आ और 'इ' के स्थान में गुण। **हे रमे**। एवं **हे रमाः** पूर्ववत्। **रमाम्** — क्रिया से उत्पन्नफल जिसको मिले या जिसमें रहे उसे कर्मकारक कहते हैं। जिसका बाचक अम् विभक्ति है। जब रमा शब्द फल का आश्रय बना तब रमा + अम्, अमिपरे हो तो पूर्व पर दोनों को पूर्वरूप हो। **रमे, रमाः**। शस् विभक्ति परे 'श' इत् पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्वादि हो। पुलिंग नहीं है स को न नहीं हुआ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हे रमे !, हे रमाः ! । रमाम् । रमे । रमाः । ८ आङि चापः ७ । ३ । १०५ । आङि ओसि चाप एकारः । रमया । रमाभ्याम् । रमाभिः । ९ याडापः ७ । ३ । ११३ । आपो ङितो याट् । वृद्धिः । रमायै । रमाभ्याम् ३ ।

जहाँ दो (रमा) या अनेक (रमा) सम्बन्धित क्रिया-जनक फल का आधार बनेगें। यथा—रमां पाठयति, यहाँ उच्चारण या ज्ञान की उत्पत्ति फल है उसका आश्रय रमा है। **जहां प्रातिपदिकार्थ (व्यक्ति) साधन हों** उसे तृतीयाकारक कहते हैं। साधने अर्थे प्रयुक्त 'रमा' शब्द से तृतीया का एक बचन (ट्) का लोप 'आ' (८) **आङि**=आ विभक्तिपरे। च=**ओसि** परे। **आपः**= **आकारान्त अङ्ग को एकार हो।** इति सूत्रेण आकारस्य एकारे रमे+आ, अयादेशे **रमया।** यहाँ दो रमाशब्द क्रिया में (उत्कृष्ट उपकारक) सहायक हों, वहाँ द्विबचन 'भ्याम्' रमाभ्याम्। अनेकाः रमाः यत्र क्रियायाः साहाय्यं कुर्वन्ति तत्र 'भिस्' रमाभिः।

(९) **याट्**=आदेश हैं। **आपः**=आकारान्त अंग से। स्त्रीलिंग बोधक आकारान्त अंग से परे ङित्=ङे, ङसि, ङस् ङिको याट् हो। टित् होने से ङित् विभक्तिके आदि में हो। **क्रिया के फल के आश्रय (कर्म) जिसे समर्पण किया जाय वह चतुर्थीकारक है।** उद्देश्य अर्थ में विद्यमान रमा शब्द को आवन्त मानकर ङे, विभक्ति आई, ङ् इत्। **रमा+ए**=आकारान्त रमा से ङिद्-बचन ए। उसे **याडाप** से याट् आगम होने पर आ+ए स्थाने वृद्धि-एकादेश रमायै। एवं द्विबचन या बहुबचने विवक्षायां फलाश्रय (कर्म) की उपलब्धि वाले शब्द में भ्यां भ्यस् विभक्ति। **रमाभ्याम्, रमाभ्यः।** जहाँ से क्रिया की शुरुआत् हो उसे अवधि सीमा **अपादान** (पञ्चमी कारक) कहते है। अवधिअर्थमें वर्तमान रमाशब्द से ङसि, अनुवन्धलोपे 'अस् इति ङितं मत्वा याटि, सवर्णदीर्घे रुत्वविसर्गौ रमायाः : जहाँ दो या अनेक रमा से क्रिया का आरम्भ हो, तत्र भ्याम् भ्यस्। रमाभ्यां **रमाभ्यः।** यत्र सम्बन्ध, रिस्ता, नाता, मात्र अर्थ व्यक्त हो, तत्र षष्ठी-कारकं संज्ञामात्रम्। रमाशब्द को किसी के सम्बन्धमात्र अर्थ में प्रयोग हो तो एकवचन की विवक्षा में ङस् **रमा+अस्**, याट् सवर्णदीर्घे रुत्वादिः **रमायाः।** द्विबचन के विवक्षा में रमा+ओस्। (**आङि चापः**) सूत्र से 'आ' को एकार, उसको अय् आदेश रुत्वे विसर्गे च **रमयोः** इति। अनेक 'रमा' का सम्बन्ध हो तो आम् विभक्ति, आबन्तमानकर नुट्, णत्व **रमाणाम्।** कर्ताकर्म द्वारा क्रिया के आधार को अधिकरणकारक कहते हैं। कर्ता या कर्म के माध्यम से क्रिया का आधार कोई बनता ही है। आधार अर्थ में प्रयुक्तरमाशब्द से ङिविभक्तिः। 'ङे राम्' से आबन्त, **नद्यन्त या नी** शब्दसे परे ङिविभक्ति को आम् आदेश होता ही

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रमाभ्यः २। रमायाः २। रमयोः २। रमाणाम्। रमायाम्। रमासु। एवं दुर्गाम्बिकादयः। २२० सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७।३।११४। आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः। सर्वस्यै। सर्वस्याः २। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। शेषं रमावत्। एवं विश्वादयः आबन्ताः।

१ विभाषा दिक् समासे बहुव्रीहौ १।१।२८। सर्वनामता वा। उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै। तीयस्येति वा संज्ञा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै।

है। आवन्त मानकर ङिको आम् स्थानिबद्भाव से आम में ङिद्धर्म लाकर याट् आगम अनुबन्ध लोप) सवर्णदीर्घे। **रमायाम् रमयोः रमासु**। एवं = रमाशब्द की तरह दुर्गा, अम्बिका, अवस्था अङ्गना, उमा, कथा, यथा दशा नर्मदा आदि के अर्थानुकूलरुप समझे।

(२२०) सर्वनाम्नः = सर्वनामसंज्ञकशव्दसे स्त्रीलिंगबोधक (टाप्) प्रत्यय विशिष्टसर्वा आदिशब्द से स्याट् हो ह्रस्वश्च, आप् के आ को हृस्व हो **आकारान्त सर्वनाम से परे ङित्विभक्ति को स्याट् का** आगम् हो। टित् होने से ङित्विभक्ति के आदि में हुआ। सम्पूर्ण अर्थ का बाचक स्त्रीधर्म का प्रकाशक प्रत्यय टाप् = आ से विशिष्ट सर्वाशब्द का रमावत् रूप। **सर्वा, सर्वे, सर्वाः। सर्वाम्, सर्वे, सर्वाः। सर्वया, सर्वाभ्याम्** सर्वाभिः। सर्वस्यै। सर्वा + ङे। या चतुर्थी का अर्थ पूर्ववत् जाने। आबन्तसर्वनाम् सर्वाशब्द से परे प्राप्त याट् को बाँधकर 'सर्वनाम्नः' सूत्र से स्याट्। आकार को ह्रस्व भी। सर्वस्या + ए वृद्धिः सर्वस्यै। ङसि तथा ङस् दोनों विभक्तियों में याट् को बाधकर स्याड् आगम्। आपश्च=आकारस्य ह्रस्वे सवर्णदीर्घे रुत्वेविसर्गेच। सर्वस्याः। सम्बन्ध व्यक्त करने अर्थ में षष्ठी का द्विबचन 'ओस्' परे आङिचापः इति एत्वे, अय् आदेशे। सर्वयो.। बहुबचने सर्वा + आम्। सर्वनाम से आमिपरे सुट् अनुबन्धलोपें सर्वासाम्। सर्व-स्याम्—सर्वाशब्दात् आधार, अर्थविवक्षायां (सप्तमी) एकबचने ङि तत्स्थाने 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः'। इति आम् आदेशे स्याडागमें आकार ह्रस्वेदीर्घे च। सर्वस्याम् सर्वयोः, सर्वासु।

इसी प्रकार विश्वा आदि आकारान्त शब्दों का भी रुप समझें (१) **विभाषा** = भेददर्शिका, पक्ष पातिनी भाषा। विकल्प इति अर्थाः। **दिक्समासे**= दिशावाचीशब्द के साथ उत्तरपूर्वा को **बहुव्रीहौ** = बहुव्रीहिसमास में सर्वनामसंज्ञा विकल्प से हो। यथा—उत्तरस्याः पूर्वस्याः चान्तरालं दिक् सा उत्तरपूर्वयोः अन्तरालं दिक्। उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य की दिशा (ईशानकोण) को **उत्तरपूर्वा** कहते हैं। उससे आगत 'ङे' विभक्ति परे बहुव्रीहिसमास उत्तरपूर्वा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एवं तृतीया। (१९५) अम्बार्थेति ह्रस्वः। हे अम्ब! हे अक्क!। हे अल्ल! जरा। जरसौ, इत्यादि। पक्षे हलादौ च रमावत्। गोपा विश्वपावत्। मतीः। मत्या।

को सर्वनाम संज्ञा हुई। जिसका फल स्याट् आगम आबन्त को ह्रस्व वृद्धिः उत्तरपूर्वस्यै। संज्ञा के अभाव पक्ष में केवल याट् तथा वृद्धिः। उत्तरपूर्वायै। तीयप्रत्ययान्त शब्द की भी सर्वनामसंज्ञा विकल्प से हो। यह स्त्रीलिंग प्रधान प्रकरण है। यथा द्वयोः पूरणा द्वियीया दूसरी संख्या को जो पूरी करे उसे द्वितीया कहते हैं। स्त्रीलिङ्ग में द्वितीयाशब्द से उद्येश्य अर्थवाचक 'ङे' विभक्तिः। अत्र तीयप्रत्ययान्तस्य सर्वनामसंज्ञा भवति, ङिद्वचनपरे। संज्ञायाः फलं स्याडागम इति। आकारस्य ह्रस्वे। द्वितीयस्यै। संज्ञायाः अभावपक्षे याडागमः। वृद्धिश्च, द्वितीयायै। एवं तृतीया। त्रयाणां पूरणा तृतीया। तीनसंख्या का पूरक तृतीया शब्द को सर्वनामसंज्ञा स्याट् आदि से, युक्तरूपं पूर्ववत्। तृतीयस्यै तृतीयायै। अम्बा, अक्का, अल्ला को भी मातृबाचक होने से सम्बुद्धि के विषय में ह्रस्व होता है। यथा—अम्बयति लोकान् जीवयति पालयति वा अम्बा। सम्बोधन अर्थ में हे अम्बा सु। माताअर्थमें अम्बाशब्द को अम्बार्थनद्योः से ह्रस्व हुआ। ह्रस्वान्तमानकर 'सु' का एङ ह्रस्वात् से लोप। हे अम्बा। अक्कयति प्राणिनः प्रबोधयति अक्का (सरस्बती) अत्र सम्बोधने ह्रस्वः हे अक्क। सुलोपश्च पूर्ववत्। अल्लयति लोकान् प्रलयं गमयति इति अल्ला। सम्बोधने ह्रस्वादिकार्यें। हे अल्ल। शेष रूप को रमावत् बोध्यम्। जीर्यते इति जरः=वृद्धः। तज्जातीया स्त्री जरा (वृद्धा)। आबन्तात् 'सु' विभक्तिः तल्लोपे। अजादि विभक्तिपरे जराशब्द से वृद्ध अर्थ होकर जब क्रिया में अन्वय हो (उस स्थिति का) द्विवचन औ विभक्तिः। "जरायाः जरसन्यतरस्याम्" से अजादि विभक्ति 'औ' परे जरा के स्थान में जरस् आदेश हो गया। इस प्रकार सभी अजादि विभक्ति में जरस् का विधान होने से हलादि विभक्ति परे रमावत् रूप समझें। यथा—जरा, जरसौ, जरे। जरसः जराः। जरसः जराः। तृतीया में। जरसा, जरया, जराभ्याम्, जराभिः, जरसे, जरायै। जरसः, जरायाः। जरसोः (जरयोः) जरसाम्, जराणाम्। जरसि जरायाम्। जरसोः (जरयोः) जरासु। गाम्—पालयतीति गोपा। स्त्री अर्थ का बोधक विच् प्रत्ययान्त है। जिसका पूर्ण अपहरण हो गया। यहाँ गोप जाति की स्त्री। परन्तु विश्वपा की तरह रूप चलता है। बुद्धि अर्थ में मतिशब्द को साधारणतः हरि की तरह रूप जाने। मतिः मती, मतयः। मतिं मती मतीः। द्वितीया बहुवचने शस् मति+अस् पूर्णसवर्णदीर्घे रूत्वेविसर्गे च। अत्र पूर्णसवर्णदीर्घ से परे शस् के सकार को नकार नहीं हुआ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२ ङिति ह्रस्वश्च १।४।६। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णो-वर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै, मतये। मत्याः २, मतेः। ३ इदुद्भ्याम् ७।३।११७। इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम्। मत्याम्, मतौ। हरिवत्। एवं बुद्ध्यादयः। ४ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९।

क्योंकि वह पुलिङ्ग नहीं है। मति + टा। यण्। मत्या, मतिभ्याम्, मतिभिः। स्त्री प्रधान इकारान्त शब्द होने से टाको ना नहीं हुआ। चतुर्थी के एकवचन मति + ए इतिदशायाम्।

(२) ङिति = ङिति विभक्ति परे रहते ह्रस्व = एकमात्रिकः। च = इकार उकारको नदीसंज्ञा। **यदि इकार तथा उकार इयङ् उवङ् आदेशों का स्थानी (विषय 'या' आधार) हो और वे नित्य स्त्रीलिङ्गबोधक शब्द हो, किन्तु स्त्रीशब्द से भिन्न हो तब स्त्रीलिङ्गविवक्षा में नदीसंज्ञा विकल्प से हो।** ङित्=ङकार इत् विभक्ति परे रहते। मति + ए, अत्र अजादि प्रत्यय 'ए' परक मति का इकार इयङ् का स्थानी बना रहा। नित्यस्त्रीलिङ्ग मतिशब्द में है। किन्तु स्त्रीरूप नहीं है। अतः ङिति-से नदीसंज्ञा हुई। यस्याः फलम् आडागमः आटश्चेति वृद्धिः। यण् कृते **मत्यै**। नदीसंज्ञायाः अभावपक्षे घिसंज्ञा 'घेर्ङिति' गुणे अयादेशे च **मतये मतिभ्याम्, मतिभ्यः**। एवं बुद्धि पर्यायभूतमतिशब्दात् अवधि अर्थबोधक पञ्चम्यैकवचने ङसि विभक्तौ। मति + अस्। अत्र 'यदा' नदीसंज्ञा, तदा आण्नद्याः इति। आडागमः। वृद्धिः। यणि **मत्यैः**। पक्षे घिसंज्ञा, गुणे, ङसिङसोश्चेति पूर्वरूपे। सकारस्य रुत्वे विसर्गे च **मतेः मत्योः मतीनाम्।**

(३) ह्रस्व इकार ह्रस्व उकार (नदीसंज्ञक) से = **नदीसंज्ञावाले ह्रस्व इकार उकार से परे ङि विभक्ति को आम् हो।** आधार अर्थ में मति + ङि। तस्याः फलम्, नदीसंज्ञकशब्दात् ङिविभक्ति स्थाने आम् विधानम्। यण् कृते **मत्याम्**। नदी संज्ञायाः अभाव पक्षे घिसंज्ञा **'अच्चघेः'** सूत्रेण ङि स्थाने 'औ' आदेशे इकारस्य अकारे। वृद्धिः। **मतौ, मत्योः मतिषु**। एवं यानि कतिपयानि रूपाणि न पठितानि सन्ति। तानि नदी संज्ञायाः अभावपक्षे हरिशब्दवत् ज्ञेयानि। इसीप्रकार श्रुतिः, स्मृतिः, गतिः, बुद्धिः, कान्तिः धृतिः आदि शब्दों का रूप समझना चाहिए।

(४) त्रि = तीन सङ्ख्यावाचकशब्द, **चतुर = चार** सङ्ख्यावाचकशब्द, यदि **स्त्रियाम् = स्त्रीलिङ्ग** अर्थ प्रधान हो तब **एतयोः = त्रि और चतुर के स्थान**

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ।

२२५ अचि र ऋतः ७।२।१००। तिसृचतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि। गुण-दीर्घोत्वानामपवादः। तिस्रः, तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः। आमि नुट्। ६ न तिसृचतसृ ६।४।४। एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु। द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्।

में एतौ = तिसृ तथा चतसृ आदेश क्रम से हो, विभक्ति परे रहते (२२५) ऋतः=तिसृ चतसृशब्द के ऋकार के स्थान में र=रेफ आदेश हो, अच् प्रत्याहार के वर्ण परे रहते। ऋतोङि से प्राप्त गुण, प्रथमयोः पूर्णसवर्ण से प्राप्त दीर्घ, ङसि ङस् विभक्ति में 'ऋत्-उत्' से प्राप्त उत्व का बाधक यह रेफादेश है। एवं यण् का भी बाधक है। त्रिचतुरशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। तीन व्यक्ति का समुदाय अर्थ से या तीन सङ्ख्या अर्थ से अर्थवान् त्रिशब्द को प्रातिपदिकसंज्ञा बहुवचने 'जस्' विभक्तिः। ज् इत्। स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान त्रिशब्दस्य स्थाने तिसृ आदेशे, सर्वनाम परे— ऋतोङि' से प्राप्त गुण, पूर्वसवर्ण-दीर्घ, ऋत् उत् से प्राप्त उत्व, तथा सर्वं बाधित्वा अच् परे ऋ स्थाने 'र' आदेशे सकारस्य रूत्वे विसर्गे तिस्रः। एवं क्रियाजन्य फलाश्रयः कर्म की विवक्षामें, तेन अर्थवत्वात् त्रिशब्दात् बहुवचने शसि। शकार इत्। त्रिस्थाने तिसृ' आदेशे, अत्र पूर्वसवर्णदीर्घं यणं च बाधित्वा ऋस्थाने 'अचिर ऋतः' सूत्रेण रेफ आदेशे रूत्वे विसर्गे। तिस्रः। एवं क्रियासिद्धौ साधन-दशायाम् त्रिशब्दस्य प्रा० संज्ञायां भिस्। तिस्रादेशे रूत्वे विसर्गे च त्रिभिः। एवम् उद्देश्य अर्थ में (के लिए) भ्यस् आदिकार्ये। तिसृभ्यः। सम्बन्धमात्रबोधदशायां त्रिशब्दात् प्रातिपदिकात् आमि। तिसृ आदेशे तिसृ + आम्। अत्र ऋस्थाने रेफादेशः परत्वात् प्राप्तः तं "नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट्पूर्वविप्रतिषेधेन" इति बचनेन नुट् प्रबलो जातः। ततः रभावो न भवति, यतः अजादि नं तिष्ठति :

(६) तिसृ तथा चतसृ शब्दों को नामि परे दीर्घ नहीं होता। अतएव-निषेधादेव—नामिसूत्रेण न दीर्घः। ऋवर्णान्नस्य णत्वंवाच्यम् इति नस्य स्थाने णत्वे तिसृणाम्। एवम् आधारस्य विवक्षायां त्रिशब्दात् प्रातिपदिकात् सप्तमी बहुवचने सुप्। तिसृ आदेशे, अवयवसकारस्य आदेशप्रत्यययोः सूत्रेण षकारे तिसृषु। त्रिशब्द की तरह चतुरशब्द की विधि (साधनिका) समझें। चतस्रः २ चतसृभिः। चतसृभ्यः। चतसृणाम्। चतसृषु। 'दो सङ्ख्याका समुदाय' अर्थेन अर्थवतः द्विशब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां, (दो संख्याका अनुवादक) औविभक्तिः। द्वि + औ इति दशायां त्यदादिगण में द्विशब्द के पढ़े जाने से अत्व='इ' के स्थान में 'अ' हो गया। द्व + औ स्त्रीलिंग की इच्छा में टाप्=आ सवर्ण दीर्घे द्वा + औ

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

द्वयोः । द्वयोः । गौरी । गौर्यौ । गौर्यः । हे गौरि ! । गौर्यै । इत्यादि । एवं नद्यादयः । लक्ष्मीः । शेषं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादय । स्त्री । रे स्त्रि !।

आकारान्त से परे 'औ' के स्थान में "औङ आपः" से (शी) आदेश, श इत् गुणादिकार्यें । द्वे । (दो संख्या वालों का विशेषण ; एवं दो व्यक्ति या वस्तु यदि कर्म (क्रियाफल का आधार) बने, तब द्वितीया के द्विवचन में भी (द्वे) पूर्ववत् समझें । यत्र द्विशब्दः क्रियाकी सिद्धि में साधन हो, तत्र भ्याम्, त्यदादि मत्वा अत्वे, टापि सवर्ण दीर्घे द्वाभ्याम् (३) द्वि+ओस् । अत्र अत्वे, टाप् सवर्णदीर्घे 'आ' स्थाने 'आङिचापः' एत्वे अय्, आदेशे रुत्वे विसर्गे द्वयोः । **गृणाति=पृथवीं धारयति गौरः** (गौरवर्णः) (हिमालयः) **तस्यापत्यं स्त्री' गौरी** (पार्वती) शब्दात् ङ्यन्तात् प्रथमायाः एकबचने सु । 'उ' इत् । सकारस्य अपृक्तसंज्ञा, हलङ्यादिलोपश्च । गौरी । एवं गौरी+औ अत्रपूर्वसवर्णदीर्घः प्राप्तः स **दीर्घाज्जसि च**" सूत्रेण अर्धचन्द्रीकृतः । ततो यणि **अचोरहाभ्याम्** गौर्य्यौः । बहुवचने 'जस् । गौरी+अस् । सधनिका पूर्ववत् । सन्मुखीकरण अर्थ में हे गौरी+सु नित्य स्त्रीलिङ्ग होने से नदीसंज्ञा जिसका फल अम्बार्थनद्योः ह्रस्वः से ह्रस्व । ह्रस्वान्त कारपेन से सम्बुद्धिसकारस्य लोपे हे गौरि गौरीम् गौर्य्यौ गौरीः । गौर्या गौरीभ्याम् गौरीभिः । गौरी+ए । अत्र नदीसंज्ञा आडागमः आटश्चेति, वृद्धिः यण् गौर्य्यै, गौरीभ्यां, गौरीभ्यः ।

गौर्य्याः गौर्योः गौरीणाम् । गौर्य्याम् इत्यादि । एवम्=इसी प्रकार नद्यादयः= नदी, नारी, कुमारी, ब्राह्मणी, सारंगी, सरस्वती इत्यादि । दीर्घइकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्गशब्दोंके रुप चलायें । लक्ष्मीः **लक्षयति पुरुषार्थचतुष्टयं (धर्मार्थकाममोक्षाणि) साधयति इति लक्ष्मीः** । 'लक्षेर्मुट्च' यह दीर्घ ईकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग है । मनोरथपूरक अर्थसे अर्थवान् लक्ष्मीको प्रातिपदिक संज्ञा 'सु' रुत्वे वि० । **लक्ष्मीः** । यहाँ ङीप् अन्तमेन होने से सुलोप नहीं हुआ । लक्ष्मीका अन्य सभी रुप शेष हैं । उनकी सिद्धि या ज्ञान, गौरी की तरह गम्य है । एवं=यथा लक्ष्मी शब्द ङीवन्त नहीं है, नित्यस्त्रीलिङ्ग है । इसी प्रकार अङ्यन्त स्त्रीलिङ्गका उदाहरण—तरी (नौकायां तरणिस्तरीः । (जलयानं) तन्त्रीः (वीणा) धीः ह्रीः अवीः को भी जाने इनमें 'सु' का लोप न होकर विसर्ग ही होता है ।

स्त्री = स्त्यायति रजो धर्मफलं प्रदर्शयन्ति इत्यर्थेन अर्थवान् स्त्री शब्दः प्रातिपदिकसंज्ञां लभते । तत्फलम् अर्थवोधिकायाः प्रथमायाः एकवचनं 'सु' विभक्तिः ! ('उ' इत्) सकारस्य अपृक्तसंज्ञा । ङ्यन्तात् सुलोपः स्त्री । सन्मुखीकरण अर्थमें स्त्री+सु 'यूस्त्र्याख्यौ' नदीसंज्ञा, नद्यन्तस्य ह्रस्वः, ह्रस्वान्तअङ्गसे सम्बुद्धिसकारस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७ स्त्रियाः ६।४।७९। अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ। स्त्रियः।

८ वाम्शसोः ६।४।८०। अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्। स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः, स्त्रीः। स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः। परत्वान्नुट्, स्त्रीणाम्। स्त्रीषु। श्रीः। श्रियौ। श्रियः। ९ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १।४।४। इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु

लोपः हे स्त्रि। ('गृहिणी' अर्थेन अर्थवतः स्त्रीशब्दात् द्विवचने औविभक्ति। (७) स्त्रीशब्दके अन्त्य (वर्ण) को इयङ्=इय आदेश हो, अच् अक्षर आदिमें हो ऐसा प्रत्यय परे। अत्र अजादिः 'औ' विभक्तिःतां दृष्ट्वा 'ई' स्थाने इयङ्=इय् जातः वर्णसम्मेलने स्त्रियौ। प्रथमायाः बहुवचने 'जस्' स्त्री+अस् इयङ्रुत्वे वि० स्त्रियः।

(८) अम् च शश्च अम्शसौ तयोः। अम् परे तथा शस् परे हो ऐसे स्त्रीशब्द को इयङ् विकल्प से (पाक्षिक) हो। स्त्री+अम्। अत्र अम् विभक्ति परे इकारस्थाने प्राप्तं नित्यं इयङादेशं वाधित्वा "वाऽम् शसोः" इति पाक्षिक इयङादेशे स्त्रियम्। पक्षे अमि पूर्वरुपं स्त्रीम्। स्त्रियौ। शसिविभक्तौ तु सवर्णदीर्घं नित्यमियङ्आदेशं च वाधित्वा विकल्पेन इयङ्आदिकार्ये स्त्रियः। पक्षे-पूर्वसवर्णदीर्घे रुत्वे विसर्गे स्त्रीः। तृतीयायाः एकवचने स्त्री+आ इति दशायाम् इयङ्आदेशे वर्णसम्मेलने स्त्रियाः स्त्रीभ्यां स्त्रीभिः। चतुर्थ्याः एकवचने ङे स्त्री+ए। अत्र नित्यस्त्रीलिङ्गत्वात् नदीसंज्ञा आडागमः आटश्चेति वृद्धिः 'स्त्रियाः' से इयङादेशः। स्त्रियै, स्त्रीभ्याम् स्त्रीभ्यः। स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणाम्—स्त्री+आम्। अत्र इयङ्आदेशं परत्वात्=(विप्रतिषेधे=तुल्यवल्यविरोधे परम्=यत् इष्टम् तत् कार्यम्) नुट=न् (अट्कुप्वाङ्णत्वे रुपं) स्त्रीणाम्। स्त्रियाम् स्त्रीषु।

श्रयति शरणं गच्छति गमयति वा हरिं पत्नीत्वेन सेवते इति श्रीः (लक्ष्मीः) सेवते लोकान् 'वा' श्रीः। हरिका शरणागता या विश्वसेविकाको श्रीः कहते हैं। यह क्विप्प्रत्ययान्त जिसका सर्वापहारी लोप है। तथा दीर्घ 'ई' होने पर भी ङीबन्त नहीं हैं। अतः हलङ्यादिलोप न होकर सुके स् को रु० वि श्रीः। औविभक्ति में। (१९९) सूत्रसे इयङादेश श्रियौ। जस् विभक्ति में श्री इयङ आदि कार्य होते हैं श्रियः। (९) इयङुवङ्स्थानौ—इयङ् उवङ् की स्थिति हो जिसपर ऐसे ईकारान्त ऊकारान्त शब्द को न=नदीसंज्ञा नहीं होती। अस्त्री—स्त्री शब्द को छोड़कर। लक्ष्मीबाचक श्री शब्द का सम्बोधन अर्थ हो तब

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हे श्रीः। श्रियै। श्रियाः २, श्रियः २। २३० वामि १।४।५। इयङ्वङ्-स्थानी स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। श्रीणाम्, श्रियाम्। श्रियि, श्रियाम्। धेनुर्मतिवत्।

१ स्त्रियां च। १।९६। स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते।
२ ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५। ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप्।

प्रातिपदिकसंज्ञक से सु। विभक्ति परे, 'श्री' को प्राप्त नदी संज्ञा का। (६) सूत्र से निषेध हुआ। ह्रस्वादि नहीं हुए। सम्बुद्धि लोप भी न भवति। रु० वि० हे श्रीः। श्रियम्। चतुर्थी कारक के एकवचन ङे ङकार इत् श्री=ए "ङितिह्रश्च" सूत्रेण पक्षे नदीसंज्ञा भवति। यस्याः फलम्, आडागमः, वृद्धिः। ततः 'अचिश्नु' सूत्रेण इयङ् श्रियै। नदीसंज्ञाया अभाव पक्षे केवलम् इयङ् आदेशः। श्रिये। एवं ङसि ङस् विभक्तौ। पक्षे नदीसंज्ञा आट् आदिः श्रियाः पक्षे इयङ् आदेशे रु० वि श्रियः। नेयङुवङ् से नदीसंज्ञाका निषेध, 'हे श्रीः' में चरितार्थ है। अतः ङितिह्रस्वश्च' का बाध नहीं हुआ।

(२३०) इयङ् उवङ् आदेश की स्थिति सिद्ध हो या स्त्रीलिङ्ग प्रधान हो तथा नित्य हो ऐसे यू – ईकार ऊकार को आमि परे नदीसंज्ञा विकल्प से हो, स्त्री शब्द को छोड़कर। यथा—षष्ठ्याः बहुवचने श्री + आम् इतिदशायाम् इयङ् आदेशस्य स्थितिः वर्तते। आम् विभक्ति परे विकल्पेन नदी संज्ञा जाता। यस्याः फलं ह्रस्वनद्यापोः नुट्। अनुबन्ध लोपे णत्वे। श्रीणाम्। पक्षे १९९ सूत्रेण इयङ् आदेशे श्रियामिति। सप्तम्याः एकवचनेङि। श्री + इ इति स्थितौ नदीसंज्ञायाः यत्फलम् ङेराम्नद्यामनीभ्यः इत्यनेन ङिस्थाने आम् आदेशे, आडागम वृद्धौ च इयङ् आदेशे च श्रियामिति। पक्षे इयङ्आदेशमात्रं श्रियि। धेनुशब्दस्य मतिशब्दसदृशं रुपं ज्ञेयम्। उकारान्तस्त्रीलिङ्गशब्दः। धेनुः, धेनू, धेनवः। हे धेनो! धेनुम्, धेनू, धेनूः। धेन्वा, धेनुभ्याम् धेनुभिः। धेन्वै, धेनवे, धेनुभ्याम् धेनुभ्यः। धेन्वाः धेन्वोः धेनूनाम्। धेन्वाम् धेनौ धेन्वोः धेनुषु।

(१) स्त्रियां=स्त्रीलिङ्गवाचो क्रोष्टुशब्द को च=तृजन्तवत्=तृच् अन्त में हो, ऐसा क्रोष्टृ शब्द की तरह रुप होता है। (२) ऋन्नेभ्यः=ऋ अन्त में हो या नान्तेभ्यः=न अन्त में हो, किन्तु स्त्रीलिङ्ग शब्द अवश्य हो तब ङीप् हो। शृगाल या ऋषि वाचक को स्त्री, स्त्रीलिङ्ग अर्थसे अर्थवान् क्रोष्टुशब्दस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

क्रोष्ट्री गौरीवत्। भ्रूः श्रीवत्। स्वयंभूः पुंवत्। ३ न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१०। ङीप्टापौ न स्तः।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः।

प्रातिपदिक संज्ञा। ततः सु। अत्र स्त्रीलिङ्गे वर्तमानक्रोष्टुशब्दः 'स्त्रियामिति' तृच् भावे क्रोष्टृ+सु इति लभते। ततः ऋदन्तं मत्वा ऋन्नेभ्यो स्त्रियां ङीप् अनुबन्ध लोपे यणिसुलोपे। क्रोष्ट्रीशब्दः गौरीशब्दस्य समानं रुपं लभते। अत्र ङीप् अन्ते सन् गौरी दृष्टान्तः। एवं बधूः करभोरूः आदिशब्दाः 'सु' भिन्नविभक्तौ गौरीवत् ज्ञेयाः। नेत्रयोः ऊर्ध्वरोमराजिः (भौंह) अर्थ वाचक भ्रू शब्द के श्रीवत्=श्री शब्द के समाव रूप होते हैं। यहाँ भी इयङ्आदेश, नदीसंज्ञा का निषेध, ङित् विभक्ति में विकल्प से समझे। भ्रूः भ्रूवौ भ्रूवः हे भ्रूः। भ्रुवं भ्रुवौ भ्रुवः। भ्रुवा भ्रुभ्याम् भ्रूभिः। भ्रुवै भ्रुवे भ्रूभ्याम् भ्रूभ्यः। भ्रुवाः भ्रुवः भ्रुवोः भ्रूवाम् भ्रूणाम्। भ्रुवाम् भ्रुवाम् भ्रूवि भ्रूषु। स्वयं भवतीति स्वयम्भूः (मूल प्रकृतिः) जो स्वयं प्रकट हो। इसी अर्थ से अर्थवान् मानकर स्वादिकार्य स्वयंभूः। शब्दको पुंलिग की तरह जानें। नित्य स्त्रीलिंग न होने से नदी संज्ञा तत्सम्बन्धी कार्य विधि, निषेध विकल्प आदि नहीं होते।

(३) (ष्णान्ताः षट्) से षट्संज्ञक जैसे षष् (६) तथा पञ्चन् आदि शब्द तथा स्वस्रादि इनको नान्त या ऋकारान्त मानकर ऋन्नेभ्यो ङीप् से ङीप् नहीं होता। तथा अजन्त मानकर टाप् भी। कार्य कारण में स्वस्रादिकी स्पष्ट गणना कर रहे हैं। स्वसा=भगिनी तिसृ=तीन स्त्रियाँ, चतसृ=चार नारियाँ, ननान्दा पति की बहन। ननद (पत्युर्भगिनी) दुहिता=पुत्री। याता=पति की पत्नी उसकी कनिष्ठ भ्रातृपत्नी आपस में 'याता' हैं। माता ये सात शब्द हैं, जिनको ङीप्, टाप्, नहीं होते। भगिनी अर्थ से अर्थवतः प्रातिपदिकात् प्रथमायाः एक बचने सु। स्वसृ+स्। २०५ से अनङ् २०६। सूत्रेण उपधाया अकारस्य दीर्घे हलङ्यादिना अपृक्तसंज्ञकसकारस्य नलोपः प्रातिपदिकान्त नकारस्य च लोपे स्वसा। औवि-भक्तिपरे। (२०४) इतिगुणे उपधा दीर्घे स्वसारौ, स्वसारः। हेस्वसः। स्वसारं स्वसारौ स्वसॄः। स्वस्रा स्वसृभ्याम् स्वसृभिः इत्यादि। पालनअर्थमें सिद्ध माता-शब्दका पिताशब्दकी तरह रूप चलायें। केवल शस्विभक्ति में मातृः बनेगा। क्योंकि पुलिङ्ग में ही शस् के स् को न होता है। ननान्दवत्=दुहिता आदि शब्दों के रुप भी जानें। केवल पितृ मातृ शब्द के उपधा को दीर्घ नहीं होते। आकाशबाची द्यौः शब्द की तरह रुप होता है। यथा द्यो+सु (ओतो ऋणिदिति वाच्यम्) से

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्वसा। स्वसारौ। माता पितृवत्, मातृः। द्यौर्गोवत्। राः पुंवत्। नौग्लौवत्।

इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

णिद्, अचोणित् से वृद्धि रु० वि० द्यौः। धनवाची राशब्दः पुलिङ्गवत् जानें। नौक वाची नौशब्द को ग्लौः ग्लावौ ग्लावः की तरह समझें।

॥ इति प्राभाकर्याम् अजन्तस्त्रीलिङ्गाः ॥

अथाजन्त-नपुंसकलिङ्गः

४ अतोऽम् ७।१।२४। अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्। अमि पूर्वः। ज्ञानम्। एङ्ह्रस्वादिति हल्लोपः, हे ज्ञान। २३५ नपुंसकाच्च ७।१।१९। क्लीबादौङः शी स्यात्। भसंज्ञायाम्। ६ यस्येति च ६।४।१४८।

। अथ अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था सत्त्वतमरजोगुण जब समदशा समान अवस्था में रहें वह नपुंसकलिङ्ग है। यह अजन्तनपुंसकशब्दरूपसधनिकाका प्रकरण है। (२३४) अतः = ह्रस्व अकारान्त हो नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान हो, तथा अङ्गसंज्ञक शब्द से परे 'सु' और अम्विभक्ति को 'अम्' आदेश हो, क्लीबात्= नपुंसकलिङ्गात् विशुद्धनपुंसककारक अर्थ से अर्थवान् ज्ञानशब्दः। तस्य प्रातिपदिक संज्ञा। तस्माद् 'सु' विभक्तिः। ततः 'अतोऽम्' सूत्रेण अकारान्तात् अङ्गात् ज्ञान शब्दात् 'सु' तत् स्थाने 'अम्' आदेशे। अमिपरे पूर्व रूपे। ज्ञानम्। सम्बोधन अर्थ में हे ज्ञान + सु तस्य अमादेशे। अत्र एङ् ह्रस्वात् सूत्रेण ह्रस्वान्तज्ञानशब्दात् परस्य सम्बुद्धि सुस्थाने अमः मकारस्य लोपे। हे ज्ञान। (२३५) नपुंसकात्=क्लीबात्। नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान प्रातिपदिक से परे औविभक्ति के स्थान में 'शी' आदेश हो। जिसको भसंज्ञायां = सुडनपुंसकस्य सूत्र से सु औ जस् अम् औट् इन पाँच, विभक्ति को ही सर्वनामसंज्ञा होती है। अनपुंसकस्य = नपुंसकलिङ्ग में उक्तसंज्ञा का निषेध है। अतएव नपुंसक में भसंज्ञा सिद्ध हुई। स्थानिवद्भाव से प्रत्ययधर्म मानकर लशक्वतद्धिते से शकार इत्। ज्ञान + ई। इति स्थितौ।

(२३६) यस्येति --इश्च अश्च अनयोः समाहारः यम् तस्य इकारस्य अकारस्य च। ईकार या तद्धित प्रत्ययपरे हो तो भसंज्ञक इकार या अकारका

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः इत्यलोपे प्राप्ते (औङः श्यां प्रतिषेधः) ज्ञाने। ७ जश्शसोः शिः। ७।१।२।२०। क्लीबादनयोः शिः स्यात्। ८ शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२। शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात्। ९ नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२। झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने। २४० मिदचोऽन्त्यात् परः १।१।४७। अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्ताव यवो मित् स्यात्। उपधा-दीर्घः। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। एव धन-वन फलादयः। १ अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।१।२५। एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमो-

---

लोप हो। सूत्र में इति = ईकार परे, च = तद्धित प्रत्यय परे अर्थ है। इति सूत्रेण अलोपे (अकारस्य अदर्शने) प्राप्ते। निषेधवार्तिकम्। औङ के स्थान मे आदेश 'शी' यदि हुआ हो तो उसके परे रहते अकारलोप का निषेध होता है। अनेन अलोपस्य निषेधे पूर्वपरयोः गुण-एकादेशे ज्ञाने। (७) 'जश्शसोः' क्लीबात् = नपुंसकलिङ्ग अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से परे जस् तथा शस् को 'शि' हो। ज्ञानशब्दात् प्रातिपदिकात् प्रथमायाः बहुवचने जस् तस्य स्थाने जश्शसोः शि आदेशे 'श' इत् ज्ञान + इ। इति दशायाम्।

(८) शि यह उक्तसंज्ञं = सर्वनामस्थानसंज्ञक हो अनेन 'शि' इत्यस्य सर्वनामस्थानसंज्ञा सिद्धा (९) झलचः = झल् प्रत्याहार के वर्ण तथा अजन्तस्य = अच् प्रत्याहार के अक्षर अन्त में हो तब नपुंसकलिङ्गः अर्थ में वर्तमान शब्द को नुम = 'न्' हो! सर्वनामस्थान परे 'इ' को सर्वनामस्थानसंज्ञक परे मानकर अजन्तनपुंसकलिङ्गज्ञानशब्द को नुम् (न्) हुआ। वह (न्) कहाँ हो, किसका अंग बने ? तब निर्णायक परिभाषा सूत्र बोले।

(२४०) अन्त्यात् अचः परो मित् = मकार इत्। अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् है उससे परे उसीसमुदाय को नुम्का विधान हो। उसी का ही अन्त अवयव अंग मित् हो। अत्र ज्ञान शब्दस्य अन्त्यस्य अवयवस्य अकारस्य अंगभूतो नकारः तस्यनुट् = न्, ज्ञानन्। इ, नान्तस्य उपधायाः दीर्घे। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत् = द्वितीया विभक्ति में भी उसी प्रकार ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि का ज्ञान करे। अवशिष्ट सभी रूप पुंलिंगवत्, संचालन करे। एवं = ज्ञान शब्द की तरह नपुंसक अर्थ में वर्तमान धन, बन, फल, मूल, पत्र, पुष्प, अन्न, जल, आदि शब्दों का रूप संचालन करे।

(१) डतरादिभ्यः = कतर, कतम, अन्य, अन्यतर एषु अन्यतमेभ्यः पञ्चभ्यः = इन पाँचों के क्लीबेभ्यः — नपुंसकलिङ्ग में विद्मान होने पर, इनसे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रदडादेश स्यात् ।

२ टेः । ६ । ४ । १४३ । डिति भस्य टेर्लोपः । कतरत्, कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंवत् । एवं कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमस्य त्वन्यतममित्येव । (एकतरात् प्रतिषेधो वक्तव्यः) एकतरम् । ३ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १ । २ । ४७ । अजन्तस्येत्येव ।

परे सु तथा अम् के स्थान में 'अदड्' आदेश हो । (२) 'ड' इत् हो तो उसी के सामर्थ्य से 'भ' संज्ञकअङ्ग की 'टि' का लोप हो । 'दोनों में कौन हो' (अनयोः कः कतरः) इस अर्थ में प्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञक डतरप्रत्ययान्त "कतर" शब्द से सु तथा अम् दोनों को अदड् आदेश हुआ । अन्त्यहल् 'ड्' की इत्संज्ञा तथा अदर्शन । भसंज्ञा, उसकेटि संज्ञक अकारका लोप 'वाऽवसाने' से विकल्पेन चर्त्वे तकारे कृते कतरत् । पक्षे कतरद् इति दकारःतिष्ठति । द्विवचन में 'औ' तत्स्थाने नपुंसकात् च, इति 'शी' आदेशे 'औङः श्याम्' वार्तिक से अकारलोपप्रतिषेधे गुणे कतरे । (खादतः) । वहुवचने जस् तत्स्थाने 'शि' तस्य (शि सर्वनाम) से सर्वनामस्थानसंज्ञा, नुमागम उपधादीर्घे, णत्वेच कृते कतराणि (पठन्ति) हे- कतरत् पूर्ववत् । अत्रविशेषः सम्बुद्धिहलः तकारस्य लोपो न भवति । यतोहि जो अङ्ग है, वह ह्रस्वान्त नहीं । जो ह्रस्वान्त है वह अङ्ग नहीं । अदड् के मिल जाने से रूप बना । शेषं पुंवत् = अनुच्चारित रूप पुलिङ्ग की तरह जाने जाय एवं = कतरशब्द की तरह कतमः, एषु किं कतमत् । एतस्मात् इति इतरत् एतयोः अन्यः अन्यतरत् । इन शब्दों से परे सु, अम् के स्थान में अदड् आदेश का विधान होता है । इन पाँचों के अतिरिक्त उक्त विधान नहीं होता । अतः बोले कि अन्यतमस्य = अन्यतम शब्द के स्थान में अन्यतमम् यही रूप बनता है । अदड् नहीं होता । क्योंकि यह अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है । अनयोः एकः = प्रधान इति, एकतरम् । यहाँ भी डतरप्रत्यान्त जानकर अदड् प्राप्त है, परन्तु निषेधवार्तिक एकतर शब्द से अदड़का प्रतिषेध कहता है । रूपं ज्ञानवत् ।

(३) नपुंसके = नपुंसक अर्थ में वर्तमान अजन्तस्य = अच्अक्षर अन्त में हो, ऐसे प्रातिपदिक को ह्रस्व (एकमात्रिक) हो । यथा—श्रियम्पाति (लक्ष्मीं ज्ञानं वा रक्षति) इति श्रीपा । लक्ष्मीरक्षक अर्थ से अर्थवतः श्रीपाशब्दस्य प्राति पदि कात् सुविभक्तिः अजन्तं नपुंसकलिंगे वर्तमानं प्रातिपदिकं 'श्रीपा' इतिदृष्ट्वा, अन्त्यअल् आकारस्थाने ह्रस्वे । 'अतोऽम्' सूत्रेण 'सु' स्थाने अम् आदेशे । श्रीपं, श्रीपे, श्रीपाणि । अत्र णत्वं विशेषः । अत्रसमानपदस्य अभावात्, 'अट्कुप्वाङ्' सूत्रेण णत्वं न भवति । किन्तु एकाजुत्तरपदे ण इति णत्वम् । अस्मिन् प्रकरणे (दीर्घः) आकारो न तिष्ठति । एवम् (ए ओ ऐ औ) एतेऽपि एकशः (एक-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीपम्। ज्ञानवत्। द्वे २। त्रीणि २। ४ स्वमोर्नपुंसकात् ७। १। २३। लुक्स्यात्। वारि। २४५ इकोऽचि विभक्तौ ७। १। ७३। इगन्तस्य नुमचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। (१९१) न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षेमम्बुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे!, हे वारि!। आङो ना, वारिणा।

(एक करके) ह्रस्वो भूत्वा तिष्ठन्ति।

(४) नपुंसकात्—नपुंसकप्रधान अर्थ में वर्तमान शब्द से परे 'सु' तथा अम् का लुक् (अदर्शन) हो। यथा—वृणुते प्राणिनं जीवयति, इति वारि = जलम्। प्राणदान अर्थं से अर्थवान् प्रातिपदिकसंज्ञक 'वारि' शब्दात् सु। नपुंसक से परे स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लोपः सञ्जातः। वारि। द्विवचनस्य इच्छायाम् वारि + औ नपुंसकाच्च, औस्थाने 'शी' आदेशे 'श' इत्। (२४५) इकः—इक् अक्षर अन्त में हो ऐसा शब्द उसे नुम् = न् आगमो भवति अजादिविभक्ति परे। मित् होने से 'न्' अन्त्य अच् का अवयव होगा। 'अट्कुप्वाङ्' णत्वे। वारिणी बहुवचने जस् शस् स्थाने जश्शसोः शि, आदेशे शि सर्वनामस्थानम्। अङ्गस्य नुमागमः, नान्तस्य उपधायाः दीर्घे। १३८ से णत्वे वारीणि। हे वारे। हे वारि + सु इति दशायां स्वमोर्नपुंसकात् से सु का लुक्। उस लोप (सु) को प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणं से ह्रस्वस्य गुणः से गुण। हे वारे। न च नलुमताङ्गस्य-लुमता (लुक्) शब्द से जिसका अदर्शन हुआ हो, वहाँ प्रत्ययलक्षण कार्य नहीं होता। तब गुण नहीं होगा हे वारि। 'नलुमताङ्गस्य' सूत्र के अनित्य पक्ष में सम्बुद्धि को निमित्त मानकर गुण, अनित्यता में प्रमाण, इकोऽचि नुम् विभक्तौ' सूत्रे 'अचि' ग्रहणं किमर्थम्? उत्तर—हलादिविभक्ति परे नुम् 'मा' भवतु एतदर्थम्। न च हलादिविभक्तिपरे नुम् यदि अभविष्यत् तदा न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य इति नकारलोपो अभविष्यत्। इस प्रकार हलादि पक्षेऽपि नुम् होने पर भी न दोषः तदा अच् ग्रहणं व्यर्थीभूय बोधयति, यत् नलुमताङ्गस्य इतिनिषेधो 'अनित्यः' पाक्षिक इत्यर्थः।

जलवाचक वारिशब्दात् साधने अर्थे टा। अत्र 'टा' स्थाने आङो 'ना' अस्त्रियां इति नादेशे, णत्वे। वारिणा, (जलेन)। जीवन दानार्थक जलवाचक वारिशब्दात् चतुर्थी के एकवचन (के लिए) उद्देश्य अर्थ में ङे। वारि+ए इति दशायां (घेर्ङिति) सूत्र से ङिति सुप् 'ए' परे घिसंज्ञक वारि के इ को गुणे प्राप्ते, इकोऽचि से इगन्तस्य नुम्आगमे प्राप्ते, तत्र निर्णायकं वार्तिकम् = वृद्धिः, औत्व, त्रिज्वद्भाव, तथा गुण इनकी अपेक्षा 'नुम्' पूर्वविप्रतिषेध से प्रबल होता है। विप्रतिषेध = तुल्यबल विरोध होने पर परम् = इष्टं कार्यम्। पूर्वं इष्ट हो

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते । (वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन) वारिणे । वारिणः २ । वारिणोः २ । नुमचिरेति नुट् वारीणाम् । वारिणि । हलादौ हरिवत् ।

६ अस्थि-दधि-सक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७ । १ । ७५ । एषामनङ् स्यात् टादावचि । ७ अल्लोपोऽनः ६ । ४ । १३४ । अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थान-यजादि-स्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः । दध्ना । दध्ने । दध्नः ।

या पर । अत्र नुमेव इष्टः । वह नकार वारिका अङ्ग है वारि + ए (न तो इकारान्त रहा न घि संज्ञा हुई) णत्वे सति । वारिणे । वारिभ्यां, वारिभिः । एवं वृद्धि का उदाहरण—प्रियः सखा यस्य कुलस्य तत्कुलम् । प्रियसखि । जिस कुल में मित्र प्यारा हो । अत्र प्राप्तणिद्वत् भाव तथा वृद्धि को बाँधकर नुम् । प्रियसखीनि औत्व का उदाहरण—वारिणि । सप्तमीएकवचने ङौ विभक्तौ (अच्चघेः) इति प्राप्तम् औत्वं वाधित्वा नुम् । तृज्वद्भावस्य उदाहरणं—प्रियः क्रोष्टा यस्मिनकुले, अत्रापि तृज्वद्भावं वाधित्वा नुम् भवति । एवं प्रिय-क्रोष्टूनि । वारिणः । वारिणोः इत्यादावपि पूर्वविप्रतिषेधेन नुम् प्रबलो भवति । वारीणाम् । वारि + आम् षष्ठी बहुवचने ह्रस्वनद्यापोनुट् इति नुट् प्राप्ते 'इकोचि' इति 'नुम्' प्राप्ते तत्र नुम् अचिरतृज्वद्भावेभ्यो पूर्वविप्रतिषेधेन इति नुम् भवति । ततः 'नामि' सूत्रेण दीर्घे णत्वे च । यद्यपि नुम् कृतेऽपि नकारः तिष्ठति तथाऽपि नुट् कृते 'नामि' इति दीर्घो न भविष्यति । नकारस्य अङ्गावयवे सति अजन्तत्वं न स्यात् । ह्रस्वान्तत्वं क्षीयते । अतो नुम् एव श्रेयान् । वारिशब्द से हलादि (भ्यामादि) विभक्ति में हरिशब्दवत् रूपाणि सुलभन्ताम् ।

(६) अस्थि = हड्डी, दधि = दही, सक्थि = (उरु जङ्घा शकटावयव = गाड़ी की धुरा, अक्षि = नेत्र । इन शब्दों के अन्त्य अल् के स्थानमें अनङ् आदेशो भवति । स च उदात्तो भवति । टादौ अचि = टा, ङे, ङसि, ङस्, आदि अजादि विभक्तिपरे । (७) अनः = अङ्गसंज्ञकका अवयव = अंश हो, तथा सर्वनाम स्थानसंज्ञा न हुई । ऐसा यजादि = य और अच् अर्थात् यकारादि या अजादि प्रत्यय और स्वादि = सु, औ, जस् आदि परे हो ऐसे अन्के अकारका लोप हो । दधिशब्दः—प्रथमासम्बोधनद्वितीयाविभक्तौ च वारिशब्दसदृशं रूपं लभते । किन्तु । टादौ अचि । अनङ् प्रत्ययो भवतीति विशेषः । यथा—दधि + टा इतिदशायाम् (अस्थिदधि) सूत्रेण, अन्त्य 'अल्' दधितगस्य इकारस्य अनङ् आदेशे, सर्वनाम स्थानभिन्न यजादि स्वादि प्रत्यय टा का आपरे अंगावयव 'अनः' अकारस्य लोपे, वर्ण सम्मेलने दध्ना । एवं चतुर्थ्यैकवचने पूर्वप्रक्रियावत् रुपम् । तथैव अन्यत्राऽपि ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दध्नः । दध्नोः । दध्नोः । ८ विभाषा ङिश्योः ६ । ४ । १३६ । अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः । दध्नि, दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थि-सक्थ्यक्षि । सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे !, हे सुधि ! । ९ तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य ७।१।७४ । प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा टादावचि ।

अर्थवाचकात् प्रातिपदिकात् दधिशब्दात् अधिकरणे अर्थे सप्तम्यैकवचने 'ङि' । दधि + इ इति स्थिते 'अस्थिदधि' सूत्रेण अनङ्, अनुबन्धलोपे । अत्र अल्लोपोऽनः नित्यम् अकारलोपे प्राप्ते । (८) विभाषा=पक्षपातिनीभाषा, अङ्ग (जिससे प्रत्यय हुआ हो) का अवयव=अंश । **सर्वनामस्थानसे भिन्न विभक्ति परे रहते अङ्गका अवयव जो 'अन्' उसके अकारका लोपविकल्पसे हो ।** ङि और शीपरे । अत्र ङित् परकस्य अनः अकारस्य लोपेकृते । **दध्नि** । अभाव पक्षे **दधनि** । शेषं=अनुच्चारितं रुपं **वारिवत्** । वारिशब्दसदृशरुपं लभताम् । एवं दधिशब्दकी तरह अस्थि, सक्थि अक्षि शब्दों को समझें । यथा—अक्षि, अक्षिणी, अक्षीणि । हे अक्षि हे अक्षे । अक्ष्णा, अक्षिभ्याम् अक्षिभिः । अक्ष्णे अक्षिभ्याम् अक्षिभ्यः । अक्ष्णः अक्ष्णोः अक्ष्णाम् । अक्ष्णि अक्षणि, अक्ष्णोः अक्षिषु । इति इकारान्तः ।

(२४९) **तृतीयादिषु**=टा, ङे, ङस् इत्यादि विभक्तिपरे **भाषितपुस्कं**=भाषितः, पुमान् + पुलिंगलक्षणं यस्य शब्दस्य तत् ।

जिस स्त्रीलिङ्ग शब्द में पुलिङ्गधर्म प्रतीत हो उसे **पुंवद**=पुलिङ्ग के सदृशकार्य हो । **गालवस्य**-गालव नामकआचार्य के मत में । पाणिनिमते पुम्वद् न हो । इससे दो पक्ष सिद्ध हैं । **प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये**-शब्द की **प्रवृत्ति**=प्रयोग में निमित्त, कारण (हेतु), एक ही अर्थ (जाति) है । **वस्तु या व्यक्तिमें जाति गुण क्रिया को प्रवृत्ति-निमित्त कहते हैं । शब्दः अर्थस्य कारणम् स हि तेनोपजन्यते । शब्द के प्रयोग में अर्थ ही कारण है । पुलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग में समान अर्थ होता हो, उसी को भाषिस्तपुंस्क कहते हैं ।**

यन्निमित्तमादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते ।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यात् भाषित् पुंस्कंत-दुच्यते ।
पीलुर्वृक्षः फलं पीलु पीलुने न तु पील्वे ।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं, तज्ज्ञत्वं तत्फले पुनः ॥

जिस नपुंसकलिङ्गक शब्द में पुलिङ्ग की स्वच्छप्रतीति हो, ऐसा इकारान्त नपुंसकलिङ्ग, उसको पुंवद्भाव हो । टादिविभक्ति परे । यथा—सुष्ठुध्यायति इति सुधी सुन्दर ध्यानकर्त्ता अर्थ से अर्थवान् प्रातिपदिकसंज्ञक सुधीशब्द से

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सुधिया, सुध्रिनेत्यादि। मधु। मधुनी। मधूनि। हे मधो! हे मधु! सुलु सुलुनी। सुलूनि। सुल्वा सुलुनेत्यादि। धातृ। धातृणी। धातॄणि। हे धातः!, हे धातृ! धात्रा, धातृणा, धातॄणाम्। एवं ज्ञात्रादयः।

२५० एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८। आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये

प्रथमा का एकवचन 'सु' 'ह्रस्वो नपुंसके' से ह्रस्व, स्वमोर्नपुंसकात् इति सुलोपः। सुधि, सुधिनी सुधीनि। पुनस्तद्वत्। तृतीया-एकवचने सुधी+टा नपुंसकह्रस्वे सुधि+आ। गालवाचार्यमते तु, सुन्दरध्यानकर्ता अर्थः पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसके च तिष्ठति। अतः सुधीशब्दः भाषितपुंस्कः। तेन तस्य (सुधी शब्दस्य) पुंवद्भावो अभवत्। यस्य फलम् (अचिश्नु) इतिइयङ्आदिः। सुधिया। पाणिनि मते इकोचिनुम् = न्। सुधिना, सुधिने, सुधिये, सुधिभ्यां सुधिभ्यः। सुधियः सुधिनः, सुधियोः सुधिनोः सुधीनाम्। सुधियि सुधिनि सुधिषु। एवं प्रधी शब्दः नपुंसके बोध्यः। नपुंसकलिङ्ग में सभी ईकारान्त ऊकारान्त शब्द ह्रस्वान्त हो जाते हैं। मधुशब्द का रूप भी तथैव मधु मधुनी मधूनि। शेषरूप भानुसदृश समझें। सुष्ठु लुनाति इति सुन्दर छेदन या लवनकर्ता अर्थ से अर्थवान् प्रातिपदिकसंज्ञक सुलू+सु। नपुंसकह्रस्वे सोर्लुक्। सुलु, सुलुनी = ह्रस्वे औ के स्थान में 'शी' नुम्। अत्राऽपि सुलु+टा इति दशायाम्।

अच्छा छेदनकर्ता अर्थ पुलिङ्ग में भी है नपुंसक में भी। अतः भासितपुंस्क होने से पुम्वद्भाव, पुलिङ्गवत् रूप। 'ओः सुपि' से यण्। सुल्वा। यण् अभाव पक्ष में 'नुम्' सुलुना इत्यादि। चतुर्थी में सुल्वे सुलुने। सुल्वः सुलुनः। सुल्वोः सुलुनोः इत्यादि। दधाति = धारयति पोषयति लोकान्। जो जगत का धारण या पोषण करे उसे 'धाता' कहते हैं। धारणकर्तृत्व या पोषणकर्तृत्व सभी लिङ्ग में हैं। धातृ+सु, नपुंसके, सुलोपः। धातृ, धातृणी (औ स्थाने शी, नुम्) धातॄणि। जश्शसोः शि नुम् दीर्घः। हे धातृ सु, तस्य नपुंसकलुक्। ह्रस्वस्य गुणः (अर्) रेफस्य विसर्गे। हे धातः। पक्षे हे धातृ। टादिविभक्ति में धारण या पोषण अर्थ तीनों लिङ्ग में होने से भाषितपुंस्के पुंवद्भावे, यणि। धात्रा। पक्षे नुमि धातृणा णत्वे। धातृ+आम्। अत्र नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् से नुम् को बाँधकर 'नुट्' दीर्घ, णत्व, धातॄणाम्। धात्रे धातृणे। धातृभ्याम् धातृभ्यः। धातुः धातृणः। धात्रोः धातृणोः इत्यादि। एवं ज्ञातृ, कर्तृ, हन्तृ इत्यादि। जो भाषितपुंस्क है, उन्हें समझें।

(२५०) एच् = ए ओ ऐ औ। इक् = इ उ को ह्रस्वादेशे = ह्रस्व आदेश होने पर। आदिश्यमानेषु = आदेश होनेवाले ह्रस्वों के मध्य में एच् के स्थान

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एच् इगेव स्यात् । प्रद्यु । प्रद्युनी । प्रद्यूनि । प्रद्युनेत्यादि । प्ररि । प्ररिणी । प्ररीणि । प्ररिणा । एकदेशविकृतमनन्यवत् । प्रराभ्याम् । सुनु । सुनुनी । सुनूनि । सुनुनेत्यादि ।

इत्यजन्ताः नपुंसकलिङ्गाः

मे इक् ही आदेश हो । प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन्दिने = स्वच्छ, आकर्षक प्रकाशमान् आकाश हो जिस दिन, वह प्रद्यु है । 'प्रद्यो' शब्द प्रा० सं० से 'सु' विभक्ति नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान प्रातिपदिक प्रद्यो ह्रस्वो जातः । परञ्च कौन सा ह्रस्व हो, तत्र निर्णायक सूत्र "एच् इक् ह्रस्वादेशे" एच् के स्थान में ह्रस्व आदेश इक् ही होना चाहिए । अकार नहीं । ए ऐ के स्थान में 'इ' ह्रस्व हो । ओ औ के स्थान में ह्रस्व 'उ' हो । इसका रूप मधुशब्द की तरह संचालित करें । स्वमोर्लुक् । प्रद्यु । प्रद्युनी । प्रद्यो + औ अत्र नपुंसकह्रस्वे शी आदेशे, नुमागमे प्रद्यूनि । अत्र ह्रस्वे, 'जश्शसोः शि' नान्त-उपधा दीर्घः । प्रद्युना प्रद्यवा-तृतीया । एकवचने 'टा' नुम् । अत्र पुंवद्भावो न भवति । इति केचित् । निर्मलदिन अर्थ प्रवृत्तिनिमित्त, दोनों लिङ्गो में एक होने से यद्यपि भाषितपुंस्क है । जो इगन्त होनेपर पुंवद्भाव करता है । परन्तु 'प्रद्यो' शब्दः भाषितपुंस्कः स इगन्तो नास्ति, य इगन्तः प्रद्युशब्दः स भाषितपुंस्को नास्ति । अतो न पुंवद्भावः । भाषितः पुमान् येन । तथापि एकदेश विकृतन्यायेन प्रद्यो या प्रद्युमें कोई अन्तर नहीं है । हे प्रद्यु, हे प्रद्यो । प्रद्युना, प्रद्यवा, प्रद्युभ्याम् प्रद्युभिः । प्रद्युने प्रद्यवे प्रद्युभ्याम् प्रद्युभ्यः । प्रद्युनः प्रद्यवः, प्रद्युनोः प्रद्यवोः प्रद्युनाम् । प्रद्युनि प्रद्यवि इत्यादि । प्रकृष्टाः रायः धनं यस्य तत्कुलं प्ररि । प्ररै . शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां 'सु' नपुंसके वर्तमानस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वं एच् स्थाने इ भवति । सुलोपे प्ररि । प्ररीणि । प्ररै + औ ह्रस्वे, औ स्थाने शीभावे नुम् णत्वे, दीर्घे । प्ररिणी । अत्रापि ह्रस्वे प्ररै जस् जश्शसोः 'शि' नुम्, दीर्घे, णत्वे च । प्ररिणा । प्ररै + टा ह्रस्वे, नुम् णत्वे । अत्रापि प्रद्यू इव रुपं पुंवद्भावश्च बोध्यः । हे प्ररे । प्ररि । 'एकदेशविकृतम्' प्रराभ्याम् । किसी एक अंश में विकार या त्रुटि आ जाने से अनन्यवत् = अन्य अर्थ वाला नहीं होता । जैसे—छिन्ने-पुच्छे श्वा गर्धभो न भवति । कुत्ते की पूंछ कटी तो वह गदहा नहीं होता । वैसे ही प्ररि + भ्याम् । यहाँ रै के स्थान में ह्रस्व 'रि' होने पर भी जो अर्थ 'प्ररै' का था, वही अर्थ प्ररि में भी है । अतः रायोहलि सूत्र से आकारान्त होकर सिद्धम् । हलादि विभक्ति परे सर्वत्र आत्वं भवति । शोभना = दर्शनीया नौः (तरिणिः) यस्य तत् कुलम् । सुनु । सुनौ + सु, अत्र औ स्थाने 'उ' ह्रस्वादेशे, स्वमोर्लुकि सुनु सुनुनी इत्यादि । मधु शब्दवत् रुपं संचालनीयम् ।

इति प्राभाकरीटीकायामजन्तनपुंसकलिङ्गाः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ हलन्ताः पुंल्लिङ्गाः

२५१ हो ढः ८।२।३१ । हस्य ढः स्याद् झलि पदान्ते च । लिट्, लिड् । लिहौ । लिहः । लिड्भ्याम् । लिट्त्सु, लिट्सु । २ दादेर्धातोर्घः ८।२।३२ ।

। अथ हलन्तपुंलिङ्गप्रकरणम् ।

अजन्तपुलिङ्गसमाप्ति के अनन्तर हलन्त शब्दों में सत्वगुण प्रधानशब्द (पुलिङ्ग) का प्रकरण प्रस्तुत करते हैं। जिस प्रकार अजन्त में अच् प्रत्याहार के वर्ण अकारान्त इकारान्त उकारान्त आदि क्रमानुसारीशब्द उपस्थित किये गये। इसी प्रकार हल् प्रत्याहार के वर्णों का शब्दविन्यास हलन्तप्रकरण में हलवर्ण हकारान्त वकारान्त हयवरट् आदि क्रमानुरोध से प्रस्तुत करते हैं। यकारान्त शब्द नहीं होते, अतः हकारान्त शब्द से प्रकरण **प्रारम्भ करते हैं।**

(२५१) हः=हकार के स्थान में, ढ़ः (ढ़कार) हो, झलि = झलप्रत्यहार के अक्षर परे हो, या पदान्त हो। यथा—**लेढ़ि** = आस्वादयति इति **लिट्** (चाटनेवाला) आस्वादग्रहणकर्ता अर्थ से अर्थवान् प्रातिपदिकसंज्ञक लिह् शब्दात् आस्वादनकर्ता अर्थे सुविभक्तिः। उ इत्। सकारस्य अपृक्तसंज्ञा, हल्ङ्यादिलोपश्च प्रथमं भवति,सपादसप्ताध्यायिस्थकार्यं होने से। ततः 'होढ़ः' 'ह' स्थाने 'ढ़' कृते। 'झलां जश्' इति जश्त्वे, अवसानसंज्ञायां 'वाऽवसाने' इति चर्त्वे विकल्पेन, **लिट्, लिड्। स्वादकः।** दो आस्वादक अर्थ रहने पर द्विवचने **लिह + औ।** सम्मेलने **लिहौ लिहः।** यह रूप जस्, ङसि, ङस् में समान होगा। लिहा, लिड्भ्याम्, लिड्भिः। हस्थाने ढ़त्वं जश्वं सर्वत्र समानम्। लिहे, लिड्भ्याम् लिड्भ्यः। लिहः, लिहोः, लिहाम्। लिहि, लिहोः। सप्तमी बहुवचने लिह् + सु इति दशायाम् होढ़ः इति 'ह' स्थाने ढकृते, ढ़कारस्य जशत्वेन ड कृते, 'ङःसि धुट्' आगमे अनुबन्धलोपे 'खरि' चर्त्वे धस्थाने त्। डस्थाने ट् कृते **लिट्त्सु।** धुट् अभावे चर्त्वे **लिट्सु।** इस प्रकरण में अजादिविभक्ति परे विशेष कार्य नहीं होता। हलादि में सामान्य विशेष दोनों कार्य, यथायोग्य होते हैं। लिह के समान ही प्रायः सभी हकारान्त होंगे।

(२) दादेः = द अक्षर आदि में हो उसे दादि कहते हैं। **उपदेशे** = मुनियों के प्रथम उच्चारण में **दादिधातु** के 'ह' को 'घ' हो। झलि प्रत्याहार के अक्षर परे हो या पदान्त हो। यहाँ दादिपद उपदेश **अवस्था का होना अनिवार्य है।**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः। ३ एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७। धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष्, से ध्वे पदान्ते च धुक्, धुग् दुहौ। दुहः। धुग्भ्याम्। धुक्षु। ४ वा द्रुह-मुह-ष्णुह-ष्णिहाम् ८।२।३३। एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च। ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्, द्रुहौ। द्रुहः। ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्। ध्रुक्षु, ध्रुट्सु, ध्रुट्त्सु। एवं मुह।

---

(३) एकाचः=एक अच् हो, जिस धातु में या धातु का अवयव एक अच् हो, झषन्तस्य=झष् (झ, भ; घ, ढ, ध) ये अक्षर अन्त में हो तब वश (ब, ग, द ड) के स्थान में भष् (भ घ ढ ध) हो, से=सकारे परे, ध्वे=ध्वं प्रत्यय परे, पदान्ते=पद के अन्त में हो। यथा—दोग्धि इति धुक् (दूहनेवाला) अर्थ से अर्थवान् प्रातिपदिकसंज्ञकः दुहशब्दः तस्मात् सु=स्, तस्य, अपृक्तसंज्ञा, हल्ङ्यादिलोपः। दकारादि धातुः दुह इति। तस्य हकारस्य स्थाने दादेर्धातोर्घः कृते दुध्। अयं धकारान्तः दादिधातुश्च। व्यपदेशिवद्भावेन (अमुख्ये मुख्य व्यवहारेण) एकाचोऽपि=इस धातु के बश् (दकार) को भष् धकार हुआ। वाह्य प्रयत्न के परीक्षण से। अत्र झलो जश्त्वे, 'वावसाने चर्त्वे धुक् धुग्' दुहौ दुहः। दुहम् दुहौ, दुहः दुहा दुह्+भ्याम्। अत्रापि घत्वे भष्भावेन 'द' स्थाने घकारे जश्त्वेन 'ग'। धुग्भ्याम्। दुहः दुहोः दुहाम। सप्तमीबहुवचने दुह+सु इत्यवस्थायां दादेर्धातोर्घः भष्भावेन घ्। जस्त्वेन घस्य 'ग्' चर्त्वेन क् धुक्+सु। आदेश प्रत्ययोः षत्वे क प संयोगो क्षकृते धुक्षु। यहाँ झषन्त सिद्ध करने के लिए भष्भाव प्रथम होता है।

(४) द्रुह (द्रोह करना) मुह (मुग्ध) स्नुह (वमनकर्ता) स्णिह (स्नेहकर्ता) इन शब्दों के 'ह' को विकल्प से 'घ' हो, झलिपरे, या पदान्त में। ईर्ष्या द्वेष, (द्रोह) करने अर्थ में प्रसिद्धः द्रुहशब्दः, प्रातिपदिकसंज्ञकः तस्मात् 'सु' तस्य हल्ङ्यादिलोपः। अत्र 'होढः' 'ढत्वे प्राप्ते तं प्रवाध्य, दादिमत्वा घत्वे प्राप्ते, तं प्रवाध्य 'वाद्रुह्' सूत्रेण पाक्षिके, घत्वे, भषभावे, जश्त्वे, चर्त्वे, ध्रुक् ध्रुग् पक्षेढत्वे, जश्त्वे, चर्त्वे। द्रुह्यति, ध्रुट् ध्रुड्, द्रुहौ, द्रुहः। विकल्प घत्व तथा ढत्व, जश्त्व, चर्त्व से ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम्, सप्तमी बहुवचने द्रुह+सु। घत्व, पक्षे भष्भावे चर्त्वे, ककारे षत्वे क ष संयोगे ध्रुक्षु। पक्षे ढत्वे भष्भावे जश्त्वे, ध्रुडागमे चर्त्वे ध्रुटत्सु। धुट्अभावे, ध्रुट्सु। द्रुहौ ध्रुग्भ्याम् ध्रुड्भ्याम् ध्रुड्भिः ध्रुड्भिः। विभक्ति का अर्थ पहले ही समझाया गया है। एवम्=इसी प्रकार मोह अज्ञान में पड़ा व्यक्ति अर्थवत् प्रा० सं० करके मुह शब्द से भी रूप बनेंगे। मुह्यति, मुक्, मुग्, मुट्, मुड् मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२५५ धात्वादेः षः सः ६।१।६४। स्नुक्, स्नुग्, स्नुट्, स्नुड्। एवं स्निह्। ६ इग्यणः संप्रसारणम् १।१।४५। यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स संप्रसारणसंज्ञः स्यात्।

७ वाह ऊठ् ६।४।१३२। भस्य वाहः संप्रसारणमूठ्। ८ संप्रसारणाच्च ६।१।१०८। संप्रसारणदचि पूर्वरूपमेकादेशः। वृद्धिः। विश्वौहः। इत्यादि। ९ चतुरनडुहोरामुदात्तः ७।१।९८। अनयोराम्

---

(२५५) धातु के आदि में यदि ष हो तो उसके स्थान में 'स' हो। स्नुह्यति=वमनकर्ता अर्थ में विद्यमान ष्णुहको प्रातिपदिकसंज्ञा 'सु'। धातु के आदि षकार को सकार हुआ। अत्र णत्वस्य निमित्तं षकारः (निमित्ताऽपाये नैमित्तकस्यापि अपायः। निमित्त=कारण (ष) के हट् जाने से (कार्य) णत्वभी हट गया। स्नुह+सु 'वाद्रुह' सूत्रेण हस्थाने घकृते 'सु' का प्रथम ही हल्ङ्यादिलोप—होगा। जश्त्व चर्त्वे स्नुक् स्नुग्। पक्षे ढत्वे जश्त्वे विकल्पेन चर्त्वें। स्नुट् स्नुड्। इसी प्रकार ष्णिह (प्रेम करनेवाला) स्नेही अर्थ से अर्थवान् को धात्वादेः षः सः कारणाभावे, कार्याभावः, स्निहशब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिः सुलोपः धत्वढ़त्वजस्त्वचर्त्वेषु स्निक् स्निग्। पक्षेढत्व जश्त्व, चर्त्वं। स्निट् स्निड्। स्निक्षु, स्निट्सु। स्निट्त्सु। (६) यणः=य व र ल के स्थान में प्रयुज्यमानः=प्रयोगकिया जानेवाला जो इक् है वह सम्प्रसारणसंज्ञक हो। (७) भसंज्ञक वाहशब्द के आदि 'व' को सम्प्रसारण ऊठ=ऊ हो।

(८) सम्प्रसारणात्=जिसको सम्प्रसारणसंज्ञा हुई हो। उससे परे अच् को पूर्वरूप एकादेश हो। यथा—विश्वंवहति इति विश्ववाट्. ब्रह्माण्डका नेता। विश्व का पालन पोषणरूप भारवोढा परमात्मा। विश्ववाह् सु यहाँ भी ढत्व जश्त्व चर्त्व वकास्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे विश्ववाट्, विश्ववाड्, बिश्ववाहौ, विश्ववाहः। विश्ववाहं विश्वनाहौ विश्वौहः। विश्ववाह् शब्दात् कर्मकारकस्य बहुबचने शस्=अस्। भसंज्ञा अत्र (इग्यणः सम्प्रसारणम्) यण्=वाह, इत्यत्र वकारः तस्य स्थाने प्रयुज्यमान इक् सम्प्रसारणसंज्ञक ऊठ् ऊकारः। सम्प्रसारणाच्च पूर्वरूपे 'ऊठिपरे पूर्व रस्थाने वृद्धौ रुपम्। विश्वौहा विश्ववाड्भ्यामित्यादि। एवं भारं वहतीति भारवाट् भारवाहौ भारवाहः। शसादौ भारौहः भरवाड्भ्याम् भारवाड्भिः। भारौहे भारवाड्भ्याम् भारवाड्भ्यः। भारौहः भारौहोः भारौहाम्। भारौहि भारवाट्सु भारवाटत्सु।

(९) अनयोः=चतुर्शब्द तथा अनडुह् शब्द इन दोनों को आम् हो, सर्वनामस्थानसंज्ञकपरे। (२६०) अनडुहः=अनडुह्शब्द को नुम्का

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात् सर्वनामस्थाने परे। २६० सावनडुहः ७।१।८२। अस्य नुम् स्यात् सौ परे। अनड्वान्। १ अम् संबुद्धौ ७।१।९९। हे अनड्वन्! अनड्वाहौ। अनड्वाहः। अनडुहः। अनडुहा। २ वसु-स्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८।२।७२। सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात् पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। सान्तेति किम्-विद्वान्। पदान्ते किम्-स्रस्तम् ध्वस्तम्। ३ सहेः साडः सः ८।३।५६। साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः। तुराषाट्। तुरासाहौ। तुरासाहः। तुराषाड्भ्यामितित्यादि। ४ दिव औत् ७।१।८४। दिविति प्रातिपदिकस्यौत् स्यात् सौ। सुद्यौः। सुदिवौ।

आगम हो, सुपरे। यथा—गाड़ी खींचने वाला, तगड़ा वैल, अर्थ में अनडुह् + सु। अत्र अनडुहोः आम् = आगामे सर्वनामस्थानपरे सु अस्ति। अनडुआह् उकारस्य यण्। अनड्वाह् + स् सावनडुहः इति सुपरेनुम् ~ नकारोऽपि। अनड्वान्ह्स् ततः सुलोपः संयोगान्तहकारलोपश्च, तस्य (संयोगान्त लोपस्य) असिद्धिसम्भवात् नलोपो न भवति। दत्वमपि न, नुम् विधानात्।

(१) सम्बुद्धौ = सम्बुद्धिसंज्ञक 'सु' परे रहते आम्को बाधकर अम् हो जाय। हे अनडुह् सु आम् का बाधक अम्। सावनडुह इति नुम्। यण् सुलोपादिः हे अनड्वन्। अत्र एङः इति पूर्वरूपं न भवति। हे है प्रयोगे हैहयोः इति प्रगृह्य संज्ञाप्रकृतिभावात्। हे अनडुह् + औ, अत्र आम् यण्। अनडुहः। अनडुहा—अत्र किमपि कार्यं न भवति। अनडुद्भ्याम्। (२) वसु अन्ते यस्य स वस्वन्तः वस् अन्तमें हो सान्तः स अन्तमें हो और संस्रादेः = स्रंसु, ध्वंसु, तथा अनुडुह इनके अन्त्य अल्वर्णको 'द' ही पदान्तमें। अनडुह् + भ्याम्। अत्र 'ह' स्थाने 'वसुस्रंसु-सूत्रेण दकृते अनडुद्भ्यामित्यादि। सूत्रमें वस्वन्तशब्द सान्त ही हो। ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि विद्वान्शब्द वस्वन्त है वहाँ नको 'द' न हो। इसलिए सान्त कहा। साम्प्रतं नायं सान्तः। सूत्रे पदान्तग्रहणं किमर्थम्। स्रस्तम् = खिसका हुआ। ध्वस्तम् = नष्ट भ्रष्ट हुआ। यहाँ सकारको दत्व न हो। इसलिए पदान्त-ग्रहण किया। द होता तो शब्दशक्ति नष्ट होती।

(३) साडः = सहशब्द यदि साड् रूप में हो गया हो तो उसके सकारको मूर्धन्य = षकार हो। तुरां वज्रं साहयति प्रहरति इति तुराषाडिन्द्रः अर्थंसे अर्थवात् तुरासाह् + सु 'होढ़ः' ढत्वे सहेः साडः मूर्धन्ययादेशे षकारे। तुरासाहौ, तुरासाहः। तुराषाड्भ्याम्। अत्र ढत्वे, जश्त्वे च। (४) दिव्शब्दः यदि प्रातिपदिक हो तो उसके अन्त्य अल् (व) के स्थानमें औत् = औ हो, सुपरे। सोभना द्यौः सुन्दरस्वच्छ आकाश अर्थमें सुदिव् + सु। यहाँ दिव् प्रातिपदिकका अन्त्यअल् व' है उसको 'औ' हुआ। दिमें 'इ' को यण् रुत्वेविसर्गे सुद्यौः। सुदिव् + औ=

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२६५ दिव उत् ५ । १ । १३१ । दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते । सुद्युभ्याम् । इत्यादि । चत्वारः चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ । ६ षट्-चतुर्भ्यश्च ७ । १ । ५५ । एभ्य आमो नुडागमः । ७ रषाभ्यां नो णः समानपदे ८ । ४ । १ । "अचो रहाभ्यां द्वे" । चतुर्ण्णाम् । चतुर्णाम् । ८ रोः सुपि ८ । ३ । १६ । रोरेव विसर्गः सुपि । षत्वम् । षस्य द्वित्वे प्राप्ते । ९ शरोऽचि ८ । ४ । ४९ । अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु ।

२७० मो नो धातोः ८ । २ । ६४ । धातोर्मस्य नः स्यात् पदान्ते । प्रशान् । १ किमः कः ७ । २ । १०३ । किमः कः स्याद् विभक्तौ । कः । कौ ।

सुदिवौ सुदिवः । टादि में । सुदिवा, सुदिव्+भ्याम् । स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इति पदसंज्ञायाम् । (२६५) दिव्शब्दके अन्त्य अल् (व) के स्थानमें उकार हो । यहाँ व को 'उ' 'इ' को य । सुद्युभ्यातिमयादि । सुदिवः, सुदिवोः । सुदिवि, सुदिवोः सुदिव्सु । चतुर्+जस् । चतुरनडुहोः, से आम्, अनुबन्ध लोपः यण्, रुत्वे, विसर्गे, चत्वारः । चतुरः । शसिविभक्तौ 'आम्' नभवति । भिस् । चतुर्भिः । चतुर्णाम् ।

(६) षट्संज्ञकशब्द तथा चतुर्शब्दसे परे 'आम्' को नुट्का आगम हो, चतुर् शब्दात् सम्बन्धेअर्थे+आम् इत्यवस्थायां चतुर्शब्द । तपरः आमः उक्तसूत्रेण नुडागमे । नकारः सञ्जातः । चतुर्+नाम् । (७) रेफ तथा षसे परे नको 'ण' हो । समानपदे=एकपदमें । अचोरहाभ्यां 'द्वे' इति विकल्पेन द्वित्वे चतुर्ण्णाम् द्वित्व अभाव पक्षे चतुर्णाम् । (८) सप्तमीबहुवचनपरे रहते रु के रको ही विसर्ग हो, अन्यरेफको नहीं । चतुर्शब्दात् प्रातिपदिकात् सुप्-विभक्तिः । रेफस्य इणप्रत्याहारे सम्भवात् आदेशप्रत्यययोः इत्यनेन षत्वम् । चतुर्षु अत्र रेफस्य विसर्गे प्राप्ते, तत्र नियमसूत्रम् रोः सुपि । रोरेव, रेफस्य, विसर्गः न तु अन्यस्य । ततः षकारस्य अचोरहाभ्यामिति द्वित्वे प्राप्ते । (९) अच् परे रहते शरः=शषसको द्वित्व नहीं होता । यहाँ अच् परे सुमें 'उ' अतः षको द्वित्व नहीं होगा । (२७०) धातुके मको 'न' हो पदान्तमें प्रकर्षेण शाम्यति प्रशान् (शान्तपुरुष) प्रशाम् शब्दात् सु तस्य हल्ङ्यादिलोपे धातोः मस्थाने न कृते सति प्रशान् । प्रशामौ प्रशामः । अत्र न लोपो न भवति नकारस्य असिद्धत्वात् । सप्तमीबहुवचने प्रशान्सु । नश्च इति विकल्पेन धुट् आगमे प्रशान्त्सु इत्यपि रूपं भविष्यति ।

(१) किमः=किम्शब्दके स्थानमें 'क' आदश हो, विभक्तिपरे । प्रश्न-वाचक सर्वनाम किम् शब्दको प्रातिपदिकसंज्ञा 'सु' विभक्तिः । किमः क आदेशे रुत्वे विसर्गे । कः कौ (किम्+औ क आदेशे वृद्धिश्च) बहुवचने किम्+जस्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

के । इत्यादि । शेषं सर्ववत् । २ इदमो मः ७ । २ । १०८ । सौ । त्यदाद्यत्वापवादः । ३ इदोऽय् पुंसि ७ । २ । १११ । इदम् इदोऽय् सौ पुंसि । अयम् । त्यदाद्यत्वे । ४ अतो गुणे ६ । १ । ६७ । अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः । २७५ दश्च ७ । २ । १०९ । इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ । इमौ । इमे । त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः । ६ अनाप्यकः ७ । २ । ११२ । अककारस्येदम इदोऽनापि विभक्तौ । आबिति प्रत्याहारः । अनेन । ७ हलि लोपः

सर्वादिगणपठितः किम् शब्दः सर्वनामसंज्ञकः तस्य स्थाने किमः 'क' आदेशः । तस्य स्थानिवद्भावेन, जसः शी आदिसर्वनामकार्याणि भवन्ति 'क' आदेशः । के कम कौ, कान् । केन, काभ्याम्, कैः । कस्मै काभ्याम् केभ्यः । कस्मात् । कस्य कयोः केषाम् । कस्मिन् कयोः केषु (किन लोगोंमें) (२) इदमः = इदम् शब्दके अन्त्य अल् मको म ही रहता है सुपरे । त्यदाद्यत्वापवादः = त्यदादीनामः से प्राप्त अत्व को बाधकर । अतः अत्व न होकर (म) ही रहा ।

(३) इदम्शब्दके इद्भागको अय् हो पुंसि – पुलिङ्गमें सु परे । निश्चय- (जहाँ अङ्गुलि निर्देशसंभव हो उस) अर्थ से अर्थवान् सर्वनाम-प्रातिपदिकसंज्ञक इदम्शब्दात् सु, अत्र मकारस्थाने त्यदादीनामः इति अत्वं प्राप्तः, तं बाधित्वा इदमो म विधानम् इदोऽयपुंसि इद्भागस्य अय्आदेशे सुलोपे । अयम् । द्विवचने इदम् + औ इति स्थितौ त्यदात्वे त्यदादीनामः सूत्रेण अन्तिमवर्णस्य अत्वे । (४) अतः = पदान्तभिन्नह्रस्व अकारसे, गुणे = अ ए ओ परे हो तो पररुप एकादेश हो । इद् + औ । (२७५) इदम् शब्दसे 'द' को 'म' हो विभक्तिपरे इम + औ । वृद्धिरेचि इतिवृद्धिः । (इमौ इनदोनोंमे पूर्वसवर्णदीर्घस्य नादिचि इति निषेधो भवति । बहुवचने जसि विभक्तौ इदम् + अस् । अत्र अत्वे पररुपत्वे दश्चेति दकारस्य मकारे अदन्तसर्वनामपरस्य जसः शी आदेशे श इत् गुणे च इमे । (ये सब) त्यद्यद् इत्यादि सर्वनामको सम्बोधन नहीं होते । इत्युत्सर्गः = यह सामान्य नियम है । इनसे सम्बोधन सम्भव नहीं । इमम् इमौ, इमान् ।

(६) अन् अपि अकः = ककाररहित इदम्शब्द के इद्भाग को 'अन्' आदेश हो , 'अपि' विभक्तिपरे । अत्र 'आप्' इति प्रत्याहारः टासे लेकर सुप् के प्' तक । अनेन–इदम् + टा त्यदादीनामः अत्वे, अतो गुणे, पररुपत्वे दश्चेति दकारस्य मकारे प्राप्ते, तं बाधित्वा टा परे इद्भागस्य अन्आदेशे टाङसि सूत्रेण इन् आदेशे गुणे रुपम् । इदम् + भ्याम् अत्वे, पररुपत्वे, दश्चेति मकारःप्राप्तः तं बाधित्वा इद्भागस्य 'अन्' आदेशः प्राप्तः, तं बाधित्वा—

(७) ककाररहित इदम् शब्द के इद्भागका लोप हो आपि = टासे सुप् तक वर्णपरे । किन्तु हलादिविभक्ति परे अवश्य हो (पृ०) अभ्यास तथा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७ । २ । ११३ । अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ । नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे । ८ आद्यन्तवदेकस्मिन् १ । १ । २१ । एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव च स्यात् । सुपि चेति दीर्घः । आभ्याम् ३ । ९ नेदमदसोरकोः ७ । १ । ११ । अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न । एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अस्य । अनयोः २ । एषाम् । अस्मिन् । एषु ।

विकार को छोड़कर । अनर्थके=अर्थरहित में अलोन्त्यविधिः=अलोन्त्यस्य-सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती । अर्थात् अर्थवान स्थलमें आलोन्त्यस्य सूत्र लगता है निरर्थक में नहीं । (किन्तु पिपर्ति आदि में अभ्यास के स्थान में जहाँ विकार गुण आदि होना है । वहाँ निरर्थक में भी परिभाषा लगती है तभी अन्त्य ऋको इर् हुआ) इद+भ्याम् इति दशायाम् हलिपरे इद्भागस्य लोपे । इद अर्थवान् हैं इसलिए अलोन्त्यविधि अन्त्य अल्के स्थान में विधि हुई । यहाँ सुपि च से दीर्घ कैसे हो ? क्योंकि अदन्तः=अकारः अन्त्ये यस्य ऐसा अङ्ग नहीं है । अतः (८) एकस्मिन्=असहाये जहाँ एक ही वर्ण हो उसमें क्रियमाण दीर्घकार्य एकही में आदि तथा अन्त (आदिश्च अन्तश्च अद्यन्तौ तौ इव आद्यान्तवद् (आद्यन्तभाव से) ताभ्यां तुल्यं कार्यं हो । यह व्यपदेशिवद्भाव हैं । एक में अनेक का व्यवहारभाव लोकप्रसिद्ध है । यथा—देवदत्तस्य एकेव पुत्रः स एव जेष्ठः कनिष्ठः मध्यमश्च । यद्यपि अनेक के बिना एकमें ज्येष्ठ कनिष्ठ मध्यम व्यवहार लौकिक है ; तथापि आरोपित व्यवहार बनता है । जैसे गर्दभे मातुलव्यवहारवत् । अमुख्य में मुख्य का व्यवहार । इस न्याय से असहाय अकार में सहायका आरोप करके अदन्त मानकर सुपिचेति दीर्घः । अभ्याम् । एवम् इदम्+भिस् अत्रापि अत्वे, पररुपत्वे, हलादि भिस्परे इद्भागस्य लोपे, अकारस्य व्यपदेशिवद्भावेन अदन्तं मत्वा 'अतोभिस् ऐस्' प्राप्ते, निषेधसूत्रम् । (९) अकोः=अककारयोः (ककार से रहित) इदमदसोः=इदम् और अदस् शब्द से परे भिस् को ऐस् न हो, इति निषेधे । बहुवचने झलि एत्वे, रुत्वे, विसर्गे । एभिः । इदम् शब्दात् चतुर्थ्याः एकवचने ङे, इदम्+ए, त्यदाद्यत्वे पररुपे सर्वनाम्नः स्मै इति ङे स्थाने स्मै । स्थानिवद्भाव से ङे का विभक्ति धर्म स्मै में लाकर 'हलिलोप' इति इद्भागस्य लोपे । अस्मै । (देहि) आभ्याम् एभ्यः । इदम्+भ्यस् अत्वे, पररुपे, इद्भागस्य लोपे व्यपदेशिवद्भावेन एत्वे, रुत्वविसर्गौ । एभ्यः । अस्मात् । अत्रापि पूर्ववत् कार्यम् । ङसिस्थाने 'स्मात्' इति विशेषः । अस्य । अत्रापि ङस्स्थाने 'स्य' । अनयोः । इदम्+ओस् अत्र अत्वे पररुपे, अनाप्यकः इति 'अन्' आदेशे 'ओसि च' इति अकारस्य एकारे, अयादेशे । एषाम् । अत्वं पररुपत्वम् इद+आम् । सर्वनाम्नः सुट् आगमे इद्भागस्य लोपे अनुबन्धलोपे च । बहुवचने झलि एत्वे षत्वे । सप्तम्यां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२८० द्वितीयाटौस्स्वेनः २ । ४ । ३४ । इदमेतदोरन्वादेशे । किञ्चित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा—अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति । अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः । राजा । **१ न ङिसम्बुद्ध्योः ८ । २ । ८ ।** नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च । हे राजन् ! (ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः) ब्रह्मनिष्ठः । राजानौ । राजानः । राज्ञः ।

ङि स्थाने 'स्मिन्' आदेशे अस्मिन् अनयोः एषु । हलादिविभक्तिपरे इद्भागस्य लोपो निश्चितः । (२८०) द्वितीया (अम्, औट्, शस्) टा और ओस् विभक्तिपरे इदम् तथा अदस् शब्द के स्थान में एन आदेश हो । अन्वादेश की स्थिति में । किसी कार्य को विधातुम्=करने के लिए । उपात्तस्य=स्वीकारकिये गये का कार्यान्तरम् =अन्यकार्य करने के लिए पुनरुपादानम्=पुनः स्वीकारकराना ही अन्वादेश है । यथा—व्याकरण पढ़ लिया या पुनः पढ़ने चले । तब कहा इसने व्याकरण पढ़ लिया, इसको वेद पढ़ाइये, प्रथम व्याकरण पढ़ने का विधान हो । पुनः वेद पढ़ने पढ़ाने का विधान किया जाय, इस स्थितिमें अम् विभक्ति परे इदम् स्थाने एन आदेशे । एनम् । एनयोः पवित्रं कुलम् । यहाँ कुलकी पवित्रता के प्रसंग में धन की प्रचुरता का पुन' उपादान की स्थिति में अन्तादेश होने से एन आदेशः ।

राजते—शोभते य स राजा—राजन् शब्दात् प्रातिपदिकार्थे सु (उइत्) अपृक्तसंज्ञा, तस्य हल्ङ्यादिलोपे नान्तस्य उपधायाः दीर्घे प्रातिपदिकान्त नकारस्य लोपे । राजा । हे राजन् शब्दात् सम्बोधने अर्थे सु तस्य हल्ङ्यादिलोपे । नकारस्य लोपे प्राप्ते ।

(१) नकारका लोप न होः ङिपरे तथा सम्बुद्धिपरे । प्रत्ययलक्षणेन सु मानकर नलोपका उक्तसूत्र से निषेध हुआ (वा०) यदि उत्तर भाग में इसको कोई पद हो तो ङि परे नलोप का निषेध नहीं होता । अर्थात् न लोप हो ही जाता । (वार्तिक में उत्तरपद समास के अन्तिम पद में रूढ़ हैं । समासचरमावयवे रुढ़ः । उत्तरपदे यथा ब्रह्मणि निष्ठा यस्य स ब्रह्मनिष्ठः । भगवान में अटूट श्रद्धा रखने वाला । यहाँ समास का अवयव उत्तरपद 'निष्ठा' है, उसके परे ब्रह्मन्का न लोप होता है । परन्तु प्रत्ययलक्षण से विभक्ति परे । न लोप के निषेध का निषेधवार्तिक से हुआ । ब्रह्मनिष्ठः) राजानौ राजन्+औ नान्त उपधाया दीर्घे एवं राजानः जसि विभक्तौ तथा । राजानं राजानौ, राज्ञः—प्रातिपदिकात् राजन् शब्दात् कर्मबोधके द्वितियायाः बहुवचने शस् राजन्+अस् 'अल्लोपोऽनः' अकारस्य लोपे नकारस्य श्चुत्वेन ञ कृते जञोः स्थाने 'ज्ञ' कृते रुत्वेवि० राज्ञः । प्रातिपदिकात् राजन्शब्दात् 'भ्याम्' विभक्तिः, स्वादिषु इति पदसंज्ञायां प्रातिपदिकान्तनकारलोपे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२ नलोपः सुप्-स्वर-संज्ञा-तुग्विधिषु कृति ८ । २ । २ । सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धः । नान्यत्र राजाश्व इत्यादौ । इत्यसिद्धादात्वमेत्वमैस्त्वं च न । राजभ्याम् । राजभिः । राजभ्यः । राजभ्यः । राजनि, राज्ञि । राजसु । यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ।

३ न संयोगाद् वमन्तात् ६ । ४ । १३७ । वमन्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न । यज्वनः । यज्वना । यज्वभ्याम् । ब्रह्मणः । ब्रह्मणा । ४ इन्-हन्-पूषार्यम्णां शौ ६ । ४ । १२ । एषां शावेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र । इति

राजभ्याम् + अत्र सुपि च इतिदीर्घे प्राप्ते ।

(२) सुप्विधि में, स्वरविधि, संज्ञाविधि, कृदन्त में तुक्विधि के विषय में नलोप असिद्ध हो । दीर्घ सुप्विधि है । अतः नकार असिद्ध होने से दीर्घ नहीं हुआ । नान्यत्र = अन्यस्थल में नकार असिद्ध नहीं होता । यद्यपि पूर्वत्रा सिद्धं से नलोप असिद्ध हो जाता तथापि यह सूत्र करने का प्रयोजन यह है कि (पूर्वेण सिद्धे सति आरभ्यमाणोविधिः नियमाय कल्पते) यदि किसी पूर्व सूत्र से कार्य सिद्ध होता हो उसी कार्य के लिए दूसरा सूत्र व्यर्थ होकर नियम बनाता है। कि नलोपो यदि असिद्धो भवेत् तर्हि सुपिस्वरसंज्ञा कृतितुग्-विधिषु एव नलोपो असिद्धः । अन्यस्थले असिद्धो न भवति । (यथा राज्ञः अश्वो राजाश्वः । राजन् + अश्व नकारलोपे सति अकः सवर्णे दीर्घो भवति । तत्र नकारलोपोऽसिद्धो न भवति । यह दीर्घ सुप्आदि परे रहते कोई विधान नहीं करता । इत्यसिद्धत्वात् = इस सूत्र से नलोप के असिद्ध होने से 'सुपिच' से आत्व । बहुवचने झल्येत् । अतो भिस्ऐस् नहीं होते । यह सुप्निमित्तकदीर्घं में नलोप असिद्ध करता है । राजभ्याम्, राजभिः । राज्ञे, राजभ्याम्, राजभ्यः राज्ञः राज्ञोः राज्ञाम् । राज्ञि-राजन् + ङि । विभाषाङिश्योः" इति विकल्पेन अकारलोपे श्चुत्वे जञोर्ज्ञः । राज्ञि अभावपक्षे राजनि । यज्वा (विधिना इष्टवान्) विधिपूर्वक यज्ञकर चुका यजमान । इत्यर्थेन अर्थवान्-यज्वन्शब्दात् प्रातिपदिकार्थे सु नान्त उपधायाः दीर्घे सुलोपनलोपौ । यज्वानौ यज्वानः । राजन्शब्दवत् सर्वं रूपं ज्ञेयम् । केवलम् 'अनः' अकारस्य लोपो न भवति । यतोहि—

(३) वमन्तसंयोगात् = 'व' या 'म' अन्त में हो तथा संयुक्त हो उससे परे अन के अकारका लोप न हो । अतः यज्वनः । यज्वना । यज्वने आदि । रूप बनते हैं । यह 'व' अन्तका उदाहरण था । म अन्त का उदाहरण सृष्टिकर्ता अर्थ में प्रसिद्ध ब्रह्मन् शब्द को भी यज्वन् की तरह जाने । ब्रह्मा ब्रह्माणौ ब्रह्माणः । ब्रह्माणं ब्रह्माणौ ब्रह्मणः । शसिविभक्तौ प्राप्तस्य अनः अकारलोपस्य निषेध इति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

निषेधे प्राप्ते। २८५ सौ ६।४।१३। इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ। वृत्रहा। हे वृत्रहन्!। ६ एकाजुत्तरपदे णः ८।४।१२। एकाजुत्तर-पदं तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्त-नुम्-विभक्तिस्थस्य नस्य णः। वृत्रहणौ। ७ हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७।३।५४। ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वम्। वृत्रघ्नः। इत्यादि।

विशेषः। ब्रह्मणा ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभि.। ब्रह्मणे ब्रह्मभ्यां ब्रह्मभ्यः। ब्रह्मणि। वृत्रं=(वृत्रासुरं) हतवान्, इति वृत्रहा, (इन्द्रः) वासवो वृत्रहा वृषा, इत्यमरः। प्रातिपदिकात् वृत्रहन् शब्दात् वृत्रकर्मकहननकर्ता अर्थे एकवचने सु सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ" इति नान्त उपधायाः दीर्घे प्राप्ते, तं बाधित्वा। (४) इन्=इन् प्रत्ययान्तशब्द, दण्डिन्, हन् अन्तमें हो यथा वृत्रहन्, पूषन् (सूर्यः अर्यमन् शब्दोंके उपधाको दीर्घ हो। तो 'शी' परे ही हो। अन्यत्र दीर्घ न हो, इतिदीर्घस्य निषेधेप्राप्ते। क्योंकि यहाँ सु-परे हैं 'शि' परे नहीं हैं। (२८५) इन्नादीनां=इन् हन्, पूषन् अर्यमन्, शब्दके उपधा=अन्त्य अल्के पूर्ववर्णको दीर्घ हो तो सम्बुद्धि भिन्न सुपरे। इतिदीर्घे सुलोपनसुलोपौ वृत्रहा। यद्यपि 'शि' को सर्वनामसंज्ञा कर ' 'सर्वनामस्थानेसे' उपधादीर्घ सिद्ध है। अतः सूत्रमें नियम कियाकि, शि के अतिरिक्त स्थलमें कहीं भी दीर्घ न हो। इसलिए वृत्रहणौ वृत्रहणः इत्यादौ न दीर्घः। हे वृत्रहन्। यहाँ सम्बुद्धि सु है। अतः दीर्घ नहीं हुआ। न लोप भी प्राप्त है उसका निषेध नङिसम्बुद्धयोः से। वृत्रहन्+औ इतिदशायाम् प्रथमायाः द्विवचने औ उपधायाः दीर्घनिषेधे। णत्व विधायकं सूत्रम्।

(६) जिससमासमें एक अच्वाला उत्तरपद हो उससमामें पूर्वपदस्थात्=पूर्वपदमें स्थिति णत्वका निमित्त रेफ या षकार उससे परे प्रातिपदिकके अन्तका नकार हो या नुम् का या विभक्ति का नकार हो। उसे 'ण' हो। प्रसङ्ग में एकाच् उत्तरपद 'हन्' है उसके साथ समासमें पूर्वपद 'वृत्र' में 'र' णत्वका निमित्त रूप है। अतः प्रातिपदिकवृत्रहन् के अन्त्य नकारको ण हुआ। वृत्रहणौ। (श्रीपाणिमें नुम्के नकारको णत्व, श्रीपेणका ण विभक्तिस्थ नकारस्थानक है) वृत्रहणं, वृत्रहणौ, वृत्रघ्नः। (वृत्रासुरवधकर्तॄन्।) अर्थवतः प्रातिपदिकसंज्ञक वृत्रहन् शब्दात् द्वितीयाबहुवचने शस्विभक्तिः। अनुबन्धलोपे अनः अकारस्य लोपे (७) हन्ते=हन् धातुके ह=हकार के स्थान में कुत्व=कवर्ग हो ञित् प्रत्ययपरे हो, या नकारपरे हो। इससे हस्थाने क, ख, ग, घ, ङ एते प्राप्ताः। परन्तु नाद, अघोष तथा महाप्राणप्रयत्न के संशोधनसे 'घ' ही हुआ। रुत्व विसर्गो। वृत्रघ्नः। वृत्रघ्ना, वृत्रहभ्याम् वृत्रहभिः। वृत्रघ्ने, वृत्रहभ्याम् वृत्रहभ्यः। वृत्रघ्नः वृत्रघ्नोः वृत्रघ्नां वृत्रहसु। एवं=वृत्रहन् शब्दकी तरह शार्ङ्गिन् (विष्णुः) यशस्विन्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एवं शार्ङ्गिन्, यशस्विन्, अर्यमन्, पूषन् । ८ मघवा बहुलम् ६ । ४ । १२८ । मघवन्शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः । ऋ इत् । ९ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७ । १ । ७० । अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे । मघवान् । मघवन्तौ । मघवन्तः । हे मघवन् ! । मघवद्भ्याम् । तृत्वाभावे—मघवा । सुटि राजवत् ।

२९० श्व-युव-मघोनामतद्धिते ६ । ४ । १३३ । अन्नन्तानां भानामेषा-

---

अर्यमन् पूषन्, आदि शब्दोंके भी रुपबनेंगे । यशस्वी यशस्विनौ यशस्विनः । शार्ङ्गी शार्ङ्गिणौ शार्ङ्गिणः इत्यादि ।

(८) मघवन् शब्दके अन्त्य अल्के स्थानमें तृ आदेश बहुलं—विकल्प से हो ऋ इत् । तृमें ऋके रहनेसे वह अनेकाल् नहीं होता । क्योंकि नानुबन्धकृतमनेकालत्वम् । अनुबन्धको लेकर अनेकाल होनेका नियम नहीं है । (९) उक्—उ ऋ ऌ इत् येषान्ते उगितः । ते च अच्च उगिदचः धातुसे भिन्न उगित तथा च नलोपिनो=नकारका लोप हुआ हो जिसके ऐसे अञ्च धातुको नुम् हो । सर्वनामस्थानसंज्ञकविभक्तिपरे । महः धनं, तेजः, ऐश्वर्यं वा अस्ति अस्य इति मघवान् धन, तेज शक्तिसे परिपूर्ण मघवन्-शब्दस्य प्रतिपदिकसंज्ञायां 'सु' विभक्तिः । 'मघवाबहुलम्' सूत्रेण अन्त नकारस्य तृ आदेशे । ऋकार-इत् । उगित् होनेसे 'उगिद्चाम्, सूत्रेण 'नुम्' अनुबन्धलोपे सकारस्थ अपृक्तसंज्ञा हल्ङ्यादिलोपे । ततः संयोगसंज्ञा अन्त्य तकारलोपे । नान्तस्य उपधायः दीर्घे मघवा । मघवन्तौ, मघवन्तः । मघवन्तं मघवन्तौ, मघवतः मघवता, मघवद्भ्यां मघवद्भिः । मघवतः, मघवतोः मघवताम् मघवति । मघवत्सु । बहुलग्रहणात् तृत्वाभावे='तृ' अन्तादेशस्य अभावे । पक्षे मघवन्+सु नान्त-उपधायाः दीर्घे सुलोपनलोपौ । मघवा मघवानौ मघवानः । सुटि् सु औ जस्, अम्, औ, विभक्तियों में राजाकी तरह ।

(२९०) श्वन् (कुत्ता) युवन् (युवा) मघवन्=(इन्द्रः) इन शब्दों के अन्तमें अन् हो, ऐसे भानाम्=भसंज्ञक अङ्ग को सम्प्रसारण (वके स्थान में उ), हो, अतद्धिते=तद्धितभिन्न प्रत्ययपरे । (इन्द्र कुत्ता तथा युवकको साथ में जोड़नेका उद्येश्य लोभ, पदलोलुपता है) इस सम्बन्धमें एक रोचक 'सूक्ति प्रसिद्ध है। यथा—काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नासिबाले किमिदं विचित्रम् । विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाहुः । हे बाले शीशामणि सोनाको एकसूत्रमें क्यों गुंथ रही हो । वह बोली, विवेकी पाणिनिने तीनोंको जैसे गुंथा है । मघोनः-प्रातिपदिकात् मघवन् शब्दात् द्वितीयाबहुबचने शस् । भसंज्ञायां मघवन्+अस् श्वयुव सूत्रेण वस्थाने उ-सम्प्रसारणे सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे गुणे रुत्वे विसर्गे रूपम् । मघोना मघवभ्याम् मघवभिः । मघोने मघवभ्याम् मघवभ्यः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

मतद्धिते संप्रसारणम्। मघोनः मघोना मघवभ्याम्। एवं श्वन्, युवन्। १ न संप्रसारणे संप्रसारणम्। ६। १। ३७। संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणे न स्यात्। इति यकारस्य नेत्वम्। अत एव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं संप्रसारणम्। यूनः। यूना। युवभ्याम्। इत्यादि। अर्वा। हे अर्वन्!। २ अर्वणस्त्रसावनञः ६। ४। १२७। नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्यामित्यादि। ३ पथिमथ्यृभुक्षामात् ७। १। ८५। एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ परे। ४ इतोऽत् सर्वनामस्थाने ७। १। ८६। पथ्यादेरिकारस्याकारः सर्वनाम-

---

मघोनः मघोनोः मघोनाम्। एवं = मघवनशब्दकी तरह श्वा श्वानौ, श्वानः। श्वानम्, श्वानौः शूनः शुना शुने, इत्यादि। युवन्शब्दात् प्रतिवदिकात् द्वितीया बहुवचने शसि, युवन् + अस् श्वयुवमघोनाम् सूत्रेण वस्थाने 'उ' सम्प्रसारणं सवर्ण दीर्घे रुत्वे वि० यूनः। न च 'व' की तरह 'य' को सम्प्रसारण क्यों नहीं होता। निषेध सूत्र।

(१) सम्प्रसारणपरे हो तब पूर्व यण् को सम्प्रसारण नहीं होता। इस सूत्र से निषेध होनेपर य के स्थान में 'इ' सम्प्रसारण नहीं हुआ। पहले 'य' को ही सम्प्रसारण क्यों नहीं होता ? इसलिये कि न सम्प्रसारणे सूत्र व्यर्थ होगा। क्योंकि इसकी प्रवृत्ति का कोई स्थल नहीं रहेगा। वह ज्ञापन करता है कि पूर्वयण् को सम्प्रसारण नहीं होता। या अन्त्य यण् को सम्प्रसारण प्रथम हो। अतएव सूत्रं चरितार्थं भवति। यूना = टा सम्प्रसारणे सवर्णदीर्घे। यूने, युनः, यूनामित्यादि।

अर्वन् (घोड़ा) शब्दात्सु नान्त उपधादीर्घ सुलोपः-अर्वन् + औ। (२) अर्वणः, तृ असौ। अनञः नञ्रहितस्य। अर्वा-नञ् से रहित, अङ्ग-संज्ञक अर्वन् शब्द के अन्त्य अल् न को तृ अन्त्यादेश हो। 'सु' परे न हो तो। ऋकार इत् से उगित् है। अर्वत् + अ 'उगिदचाम्' सुत्रेण नुम् = न आगमे, वर्णसम्मेलने अनुस्वारपरसवर्णे च अर्वन्तौ। (पर्यन्यवल्लक्षण प्रवृत्तिस्थल की तरह जल में भी बादल बरसते हैं) अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वतः। अर्वद्भिः। अर्वते अर्वद्भ्याम् अर्वद्भ्यः। अर्वतः अर्वतोः अर्वताम्। अर्वति अर्वतोः अर्वत्सु। (३) पथि (रास्ता) मथिन् (मथानी) ऋभुक्षिन् (इन्द्रः आखण्डलः सहस्राक्षः ऋभुक्षा इत्यमरः)। इन शब्दों को आकार अन्तादेश सु परे हो। पथिन् + सु। न स्थाने आकारे। तकार उच्चारणार्थः। (४) पथ्यादेः = पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् शब्द के इतः = इकार के स्थान में अत् = अकार हो। सर्वनामस्थाने =

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्थाने परे। २९१ थो न्थः ७। १। ८७। पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने। पन्थाः। पन्थानौ। पन्थानः। ६ भस्य टेर्लोपः ७। १। ८८। भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः। पथः। पथा। पथिभ्याम्। एवं मथिन् ऋभुक्षिन्।

७ ष्णान्ता षट् १। १। २४। षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात्। पञ्चन्शब्दो नित्यं बहुवचनान्त। पञ्च। पञ्च। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। पञ्चभ्यः नुट्। ८ नोपधायाः ६। ४। ७। नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि। पञ्चनाम्। पञ्चसु। ९ अष्टन आ विभक्तौ ७। २। ८४। हलादौ वा स्यात्। ३०० अष्टाभ्य औश् ७। १। २१। कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश्। अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति। अष्टौ।

सु औ जस् अम् औट् परे रहते। इति इकारस्य अकारे। (२९५) पथि तथा मथिशब्दके थको न्थ आदेश हो। सर्वनामस्थानपरे। पन्थ + आ + स्। सवर्णदीर्घे रुत्वे वि० पन्थाः। अनेन प्रकारेण औपरे पन्थानौ। पन्थानः। पन्थानं, पन्थानौ, पथः। प्रातिपदिकसंज्ञकात् पथिन्शब्दात् द्वितीयाबहुवचने शसि। भसंज्ञायाम्। (६) भसंज्ञकपथ्यादि के टिका लोप हो। अचोन्त्यादिटि से 'इन्' को टिसंज्ञा तस्य पररुपे रुत्वे वि० पथः। एवं पथा पथिभ्याम् इत्यादि। पथिन् की तरह ऋभुक्षिन् को भी जाने। ऋभुक्षिन् में थोन्थः नहीं लगेगा। ऋभुक्षा ऋभुक्षाणौ। ऋभुक्षाणम् ऋभुक्षाणौ ऋभुक्षः। इत्यादि, मथा मथिभ्याम् मथिभिः। मथे मथिभ्याम् मथिभ्यः। मथः मथोः मथाम्। मथि मथोः मथिषु।

(७) ष्णान्ता = ष अन्त में या न अन्त में हो ऐसे सङ्ख्यावाची शब्द को षट्संज्ञा हो। पञ्चन् शब्द बहुत्वसङ्ख्याका वाचक होने से नित्य बहुवचन है। नान्तपञ्चन्शब्दात् जस् या शस्। ष्णान्ताःषट्संज्ञा 'षड्भ्यो परयोः जश्शसोर्लुक्' न लोपः। पञ्च। केवल 'स्वादिषु' पदसंज्ञायां नकारलोपे पञ्चभिः पञ्चभ्यः। षष्ठीवहुवचने पञ्चन् + आम् इतिदशायाम् षट्संज्ञा 'षट्चतुर्भ्यश्च' इति नुट्। अनुबन्धलोपे। पदसंज्ञा नलोपे। (८) नकारान्तशब्द को दीर्घ हो, नाम्परे। इतिदीर्घे। पञ्चानाम्।

(९) 'रायोहलि' सूत्र से हलिपद की अनुवृत्ति करके अष्टन् शब्द के अङ्ग के अन्त्य अल् को आत्व हो। हलादिविभक्तिपरे हो तो विकल्प से। विकल्प में प्रमाण 'अष्टनोदीर्घात्' सूत्र में दीर्घ ग्रहण है। (३००) कृताकारात् = कृत-किया गया है आकार जिसमें ऐसे अष्टन् शब्दसे परे जस् तथा शस् के स्थान में औश् आदेश हो। 'श' इत् का प्रयोजन शित् मानकर सर्वादेश। अनेकाल् और शित् सम्पूर्ण को आदेश हों जस् शस् विभक्ति से जकार शकार की इत् संज्ञा, लोप

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अष्टौ। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टासु। आत्वाभावे—अष्ट। पञ्चवत्। १ ऋत्विग्-दधृक्-स्रग्-दिगुष्णि-गञ्चु-युजि-क्रुञ्चां च ३।२।५९। एभ्यः क्विन्। अञ्चेः सुप्युपपदे। युजि क्रुञ्चोः केवलयोः। क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते। कनावितौ। २ कृदतिङ् ३।१।९३। अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्। ३ वेरपृक्तस्य ६।१।६७। अपृक्तस्य वस्य लोपः।

४ क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२। क्विन् प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽ-

---

होने पर हलादि न होने से, किया हुआ आकार ऐसा अष्टन् शब्द दुर्लभ है। औश् आदेश कैसे ? तब अष्टाभ्यः औश् सूत्र व्यर्थ होकर नियम बनाता है कि अष्टभ्यः इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो = सूत्र में अष्टाभ्यः न कहकर अष्टभ्यः यही कहना था, किन्तु किया हुआ आत्वनिर्देश (उच्चारण) ज्ञापन करता है। इस नियमसे आत्व का अनुमान स्पष्ट है। अष्टौ अष्टन् शब्दात्+जसि आत्वे सवर्णदीर्घे अस् स्थाने औशादेशे। वृद्धौ अष्टौ २। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टन् आविभक्तौ आत्वे दीर्घे च अष्टानाम्। एवम् अष्टन् शब्दात् आमि ष्णान्ताः षडिति षट्संज्ञायां षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् आगमे आत्वे। आत्वाभावे अष्ट २ अष्टभिः, अष्टानाम् अष्टसु। ये नकारान्तशब्द समाप्त हुए।

(१) ऋत्विग्, दधृक्, स्रग्, दिग्, उष्णिग्, अञ्च, युजि कुञ्च इन धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो। अञ्चधातु से सुबन्तपद उपपदरहनेपर क्विन् हो। युज क्रुञ्च से बिना उपपदके क्विन् हो। क्रुञ्चशब्द के नकारलोप का अभाव भी निपातन से हो। बिना (सूत्र निर्देश के आधार पर जो कार्य हो उसे निपातन कहते हैं।) यहाँ नकारलोप का निषेध बिना विधायक सूत्र के होनेसे कनावितौ क्विन् प्रत्यय के 'क' का लशक्वतद्धितेसे। 'न' का हलन्त्यम् से। (२) कृत् यहाँ धातु के अधिकार में अतिङः = तिङ्भिन्नप्रत्यय कृत्संज्ञक हो। जिसका फल कृदन्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा होना है। (३) ककार इकार की इत् संज्ञा, केवल 'व' शेष रहता है। वह एक अल् रुप प्रत्यय होने से अपृक्तसंज्ञक है। ऐसे अपृक्त व् का लोप 'वेरपृक्तस्य' से हुआ। क्विन् प्रत्यय का सर्वापहार लोप समझे। क्विन् विट् आदि की तरह। (४) क्विन् प्रत्यय जिससे हुआ हो ऐसे धातु के अन्त्य अल् के स्थान में कवर्ग अन्त्यादेश हो, पदान्त में। अस्यासिद्धत्वात् क्विन् प्रत्ययस्य कुः सूत्र के असिद्ध होने से 'चोः कुः' से कुत्व हुआ। दोनों कुत्व में यह अन्तर है कि 'चोः कुः' केवल चवर्ग को ही कवर्ग करता है। दूसरा क्विन्परे सभी के स्थान में कुत्व करता है। ऋतुषु यजते इति ऋत्विक् ऋतु के अनकूल यज्ञ करनेवाला। ऋत्विज् शब्दात् 'ऋत्विग् दधृक् आदि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

न्तादेशः पदान्ते । अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम् । ऋत्विक्, ऋत्विग् । ऋत्विजौ । ऋत्विग्भ्याम् । ३०५ युजेरसमासे ७ । १ । ७१ । युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोपः, संयोगान्तलोपः, कुत्वेन नस्य ङ । युङ् । अनुस्वारपरसवर्णौ । युञ्जौ । युञ्जः । युग्भ्याम् । ६ चोः कुः ८ । २ । ३० । चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च । सुयुक्, सुयुग् । सुयुजौ । सुयुग्भ्याम् ।

सूत्रेण क्विन् । 'क, न, इ' लोपे वेरपृक्तस्य वलोप । कृदतिङ् कृत्संज्ञा । ततः प्रातिपदिकसंज्ञा सुविभक्तिः सुलोपे । पदान्ते 'क्विन् प्रत्यय' इति कुत्वे प्राप्ते तस्य त्रिपादित्वेन असिद्धत्वात् 'चोः कुः' कुत्वे 'वावसाने' चर्त्वे ऋत्विग्, ऋत्विजौ, ऋत्विजः, ऋत्विग्भ्याम् । अत्र स्वादिषु पदसंज्ञा, ततः कुत्वम् । ऋत्विक्षु ।

(३०५) युजेः=(युजिर् योगे) जोड़ने अर्थ में प्रसिद्ध युज्धातु को नुम् हो । सर्वनामस्थानसंज्ञक विभक्तिपरे ; असमासे=समास नहुआ हो तो । दो हल्वर्ण को संयोगसंज्ञा कही गयी है । उसके अन्त का लोप, संयोगान्त लोप है । कुत्व होकर न' को 'ङ' हुआ । युनक्ति आत्मानं परमात्मनि जो आत्मा को परमात्मा में जोड़ दे, उसे युङ् (योगी) कहते हैं । या किसी समाज या वस्तु के मेल कराने वाला युङ् है । युज् धातु से "ऋत्विग् 'दधृक्' सूत्र से क्विन्, तस्य सर्वापहारिलोपे प्रातिपदिकसंज्ञायाम् । प्रथमायाः एकवचने सु=सर्वनामस्थानसंज्ञा, 'युजेरसमासे' इति नुमि अनुबन्धलोपे, मित्वात् अचांमध्ये अन्त्यअच् (व्यवहारभावेन) युज् का उकारः ; तस्मात्=उससे परे उसीका अवयव नुम् । युनज्+स् अपृक्तसंज्ञा, सकारस्य हल्ङ्यादिलोपः । जकारस्य संयोगान्तलोपे 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति कुत्वे नकारस्य ङकारे युङ् । अत्र नलोपो न भवति, संयोगान्तलोपस्य असिद्धत्वात् । युञ्जौ—युज् धातोः क्विन्, सर्वापहारि लोपः प्रा० सर्वनामस्थानसंज्ञायाम् औ विभक्तिः । नुमि । नश्चापदान्तस्य' इत्यनुस्वारे । अनुस्वारस्य परसवर्णे युञ्जौ अत्र श्चुत्वम् न भवति । अनुस्वारे कर्तव्ये श्चुत्वस्य असिद्धत्वात् युञ्जः । हे युङ् । युञ्जम् युञ्जौ युजः । युजा युग्भ्यां युग्भिः । 'चोः कुः' इतिकुत्वम् । युजे युग्भ्याम् युग्भ्यः । युजः, युजोः, युजाम् । युजि, युजोः, युक्षु ।

(६) चोः—चवर्गस्थान में कु—कवर्ग हो, झलिपरे, पदान्तविषय में सुष्ठु युनक्ति संयोजयति । जो ठीक से जोड़े वह सुयुक् हैं । प्रातिपदिकात् सुयुज्शब्दात् सुविभक्तिः अनुबन्धलोपे अपृक्तसंज्ञा, हल्ङ्यादिलोपे समास होने से युजेरसमासे नुम् इति न भवति । पदान्त 'ज' को (चोः कुः) इति 'ग' कृते अवसाने विकल्पेन चर्त्वे । सुयुक्, सुयुग्, सुयुजौ सुयुजः । सुयुजि सुयुजोः सुयुक्षु । पङ्गू (लङ्ड़ा) अर्थ में प्रसिद्ध खञ्ज्शब्दात् सु विभक्तिः । सुलोपे च जस्य संयोगान्तलोपे सति । जकारो न तिष्ठति । कारणस्य अभावे कार्यस्य अभावात् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

खन् । खञ्जौ । खन्भ्याम् । ७ व्रश्च-भ्रस्ज-सृज-मृज-यज-राज-भ्राज-च्छशां षः ८ । २ । ३६ । झलि पदान्ते च । जश्त्व-चर्त्वे । राट्, राड् । राजौ । राजः । राड्भ्याम् । एवं विभ्राट् । देवेट् । विश्वसृट् (परौ व्रजेः षः पदान्ते) परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च, पदान्ते षत्वमपि । परिव्राट् । परिव्राजौ ।

८ विश्वस्य वसुराटोः ६ । ३ । १२८ । विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः

खन्, खञ्जौ, खञ्जः । खञ्जा, । खन्भ्याम्, खन्भिः । खञ्जः, खञ्जोः, खञ्जाम् । खञ्जि, खञ्जोः खन्सु, अत्र 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इति पदसंज्ञा ततः संयोगान्तलोप ।

(७) व्रश्च् = छेदने (काटना) भ्रश्ज् = पाके (भूंजना) सृज् = सृष्टि करना । मृज् - शुद्धि । यज् (सङ्गति पूजा दान) राज् = (प्रकाशार्थक) (भ्राज् = दीप्त्यर्थकः इन् धातुओं के अन्त्यअल् छान्त और शान्त धातु का अन्त्यअल् कोभी षकार अन्त आदेश हो । झल् प्रत्याहार परे या पदान्त में । जश्त्व तथा चर्त्व होने पर राट् राड्, राजते, शोभते क्विपः सर्वापहारिलोपे इति कृदन्त-प्रातिपदिकसंज्ञकात् राज् शब्दात् सु = स् अपृक्तसंज्ञा हल्ङ्यादिलोपे, व्रश्चभ्रश्च इति जस्थाने षकृते राष्, तस्य झलां जश् इते मूर्धास्थानसादृश्येन डकारः विकल्पेन चर्त्वे टकारे कृते राट् राड् । अजादि विभक्तौ केवलं वर्णसम्मेलनम् । राजौ, राजः । राजा राड्भ्याम्, राड्भिः । राजे, राड्भ्याम्, राड्भ्यः । राजः राजोः राट्त्सु राट्सु । एवम् = राज शब्द की तरह विशेषेण भ्राजते (प्रकाशते, शोभतेवा) विभ्राट् (सूर्यः) देवान् यजति देवयाजकः । देवेट् क्विप् । देवपूर्वक यज् शब्दात् वचिस्वपियजादीनांकित् सम्प्रसारणे देवइज स्थितिः कर्मणिषष्ठी उपपद मतिङ् समासे गुणे । सलोपे देवेट् । षत्व जत्व चर्त्व । सृट् ब्रह्मा । संसार का स्रष्टा विश्वं सृजति विश्वसृट् परमात्मा ।

(वा०) परि उपसर्गक व्रज् धातु से क्विप् । उपधा के अकार को दीर्घ । पदान्त में षत्व अन्तादेश भी हो । सर्वपरित्यज्य परिव्रजति (सर्वत्र विचरति) परिव्राट्, विरक्त, सन्यासी, परिपूर्वक् व्रज् धातु से वार्तिक द्वारा क्विप् सर्वापहारि लोपे कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा सु इत्यादि । दीर्घे, षत्वे, जश्त्वे, चर्त्वे ।

(८) विश्व शब्द के दीर्घ अन्तादेश हो । वसु शब्द या राट्शब्द परे । विश्वावसुः विश्वानि सम्पूर्णानि वसूनि धनानि यस्य सः (विश्व है सबधन (जिसके) विश्वस्मिन् राजते (संसारं व्याप्य तिष्ठति) इति विश्वाराट् ब्रह्म, परमात्मा । विश्वराज् + सु, सुलोपे व्रश्चेति जस्थाने षः 'विश्वस्य वसु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्याद्धसौ राट्शब्दे च परे। विश्वाराट्, विश्वाराड्। विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्याम्। ९ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च। ८। २। २९। पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्योः स्कोर्लोपः। भृट्। सस्य श्चुत्वेन शः। 'झलां-जश् झशि' इति शस्य जः। भृज्जौ। भृड्भ्याम्। त्यदाद्यत्वम् पररूपत्वम्। ३१० तदोः सः सावनन्त्ययोः ७। २। १०६। त्यदादीनां तकार-दकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ। स्यः। त्यौ। त्ये। सः। तौ। ते। यः। यौ। ये। एषः। एतौ। एते। एतम्। अन्वादेशे—एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः।

राटोः' इति दीर्घे षकारस्य जस्त्वे चर्त्वे। अजादि विभक्ति परे न दीर्घः। विश्वराजौ विश्वराजः। विश्वाराड्भ्याम्। विश्वराजि विश्वराजोः विश्वराजाम्। विश्वाराट्सु, विश्वा राटत्सु।

(९) स्कोः=सकार और ककारका संयोगाद्योः=संयोगसंज्ञक आदि में हो, तब लोप हो, पदान्त में झलिपरे। भृज्जति पाकं करोति इति भृट्—भड़भूजा। भ्रस्ज्—सु इति दशायाम् अपृक्त-सकारस्य हल्ङ्यादि लोपे संयोगान्त पदस्य अन्त्यजकारस्य लोपे प्राप्ते, तं बाधित्वा स्कोरिति संयोगादिसकारस्य लोपे। व्रश्चेति षत्वे, जश्त्वे, चर्त्वे ग्रहिज्येतिसम्प्रसारणे भृड्। भ्रस्ज+औ इति दशायां ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे सकारस्य स्थाने श्चुत्वेन शः, तस्य स्थाने जश्त्वेन जकारे (तालु स्थानदर्शनेन) भृज्जौ, भृज्जः। भृज्जम्, भृज्जौ, भृज्जः। भृज्जे, भृड्भ्याम्। भृज्जः भृज्जोः, भृज्जाम्, इत्यादि। त्यद्यत्वम्, पररुपत्वम् त्यदादीनामः सूत्र से अकार। अतोगुणे से पररूप।

(३१०) तदोः=तकारदकारयोः अनन्त्योः आदिमध्य के 'त, द' के स्थान में 'स' हो, सुपरे। त्यद्, तद्, यद्, एतद् ये त्यदादि हैं। इनके त या द को स होता है। यथा—तद्+सु। त्यदादीनामः से दस्थाने अत्वेकृते, 'अतो गुणे' पररुपे, तद्तकारस्य 'तदोः सः' सूत्रेण सकारे, रु० वि० सः। तद्+औ अत्वे, वृद्धौच। तौ। ते। तद्+जस् तस्य शी आदेशे अत्वे गुणे। तम् तौ तान्। तेन, ताभ्याम् तैः। तस्मै, ताभ्याम्, तेभ्यः। तस्मात् ताभ्यां, तेभ्यः। तस्य तयोः तेषाम्। तस्मिन् तयोः तेषु। त्यदादि के सम्बोधन नहीं होते। एतद् शब्द से सु विभक्ति परे अत्वे पररूपे च। अनन्त्य तकारस्य स्थाने स (स) को रु० वि०। एषः, एतौ एते इत्यादि। यत्र अन्वादेशः। तत्र द्वितीया विभक्तिः। टा ओस् परे एन आदेशो भवति। एनं एनौ एनान्, एनेन एनयोः :

युष्मद् (तुम) अस्मद् (मैं) शब्द की सभी प्रयोगों की सिद्धि करते हैं।

इसमें सर्वनामसंज्ञा का फल प्रायः नहीं है। अन्य कार्य स्पष्ट दिये जाते हैं। केवल अकच् ही सर्ववामसंज्ञा का फल है। इनके तीनों लिङ्गों में समान

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ ङेप्रथमयोरम् ७ । १ । २८ । युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः । २ त्वाहौ सौ ७ । २ । ९४ । अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः ।

३ शेषे लोपः ७ । २ । ९० । एतयोष्टिलोपः । त्वम् । अहम् । ४ युवावौ द्विवचने ७ । २ । ९२ । द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ । ३१५ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७ । २ । ८८ । औङि एतयोरात्वं लोके । युवाम् । आवाम् । ६ यूय-वयौ जसि ७ । २ । ९३ । अनयोर्म-

---

रूप होता है । युष्मदष्मदादेशाः त्रिषु लिङ्गेषुसरूपाः । (१) ङे-युष्मद् अस्मद् से परे ङे के स्थान में तथा प्रथमयोः=प्रथमा (सु औ जस्) । द्वितीया (अम् औट् शस्) के स्थान में अम् आदेश हो । प्रातिपदिकसंज्ञक युष्मद् शब्दात् सु एवम् अस्मद् + सु ङे प्रथमयोरम् इति सु स्थाने अम् आदेशे ।

(२) अनयो=युष्मद् तथा अस्मद् शब्द के मपर्न्यतस्य=युष्म तथा अस्म भाग को क्रम से 'त्व' तथा 'अह' आदेश सुपरे हो । इत्यनेन युष्मभागस्य 'त्व' आदेशे 'स्म' भागस्य अह आदेशे । त्व अद् + अम्, अह अद् + अम् इतिदशायां=अतोगुणे पररूपे (३) एतयोः = युष्मद् अस्मद् के शेषे=अवशिष्ट भाग त्व तथा अह आदेश से परे बचा हुआ अद् को टि मानकर शेषे लोप हुआ । यह टिलोप आत्व यत्व आदि स्थल में नहीं होगा । तीनों लिङ्गों में प्रयोग समान है । यथा—त्वं पुमान् त्वं स्त्री, त्वं दैवतम् अहं पुमान् अहं स्त्री अहं दैवतम् ।

(४) द्विवचने = युष्मद् अस्मद् शब्द (यदा) द्विवचन को कहें, या द्वित्व-सङ्ख्याविशिष्ठ अर्थ हो (तदा) द्वयोः = द्विवचनस्य उक्तौ = कथने अनयोः = युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य = युष्म के स्थान में 'युव' अस्म के स्थान में 'आव' आदेश हों, विभक्तिपरे । सर्वत्रद्विवचने एतौ आदेशौ भवतः । औ, भ्यामि, ओसि विभक्तिषु, युव-आवौ भवतः । (३१५) प्रथमाविभक्ति के द्विवचन औङि = औपरे रहते, एतयोः = युष्मद् अस्मद् शब्द के अन्त्यवर्ण को आत्वम् = आकार हो । भाषायां=संस्कृत भाषा के लोकव्यवहार में । युवाम्—आवाम् युष्मद् + औ, अस्मद् + औ इति दशायाम् द्विवचने युष्मभागस्य 'युव' आदेशे 'अस्म' भागस्य 'आव' आदेशे । ङेप्रथमयोः इति औकारस्य अम् आदेशे । 'प्रथमायाश्च' द्विवचने अन्त्यदकारस्य आत्वे दीर्घेच आत्वनिमित्ते सति न टिलोपः । प्रथमायाः बहुवचने जसि । युष्मद् + अस् अस्मद् + अस् । (६) अनयोः=इनके मपर्यन्तभाग युष्म के स्थान में 'यूय' तथा अस्म के स्थान में 'वय' आदेशे कृते । अतोगुणे पररुपे "ङे प्रथमयोः' अम् आदेशे । 'शेषे टिलोपः। यूयम् वयम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पन्तस्य। यूयम्। वयम्। ७ त्वमावेकवचने ७।२।९७। एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ। ८ द्वितीयायां च ७।२।८७। अनयोरात् स्यात्। त्वाम्। माम्। ९ शसो नः ७।१।२९। आभ्यां शसो न स्यादमोऽपवादः (७२) आदेः परस्य। (२०) संयोगान्तलोपः। युष्मान्। अस्मान्। ३२० योऽचि ७।२।८९। अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः। त्वया। मया। १ युष्मदस्मदोरनादेशे ७।२।८६। अनयोरात् स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ। युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभिः। अस्माभिः। २ तुभ्य-मह्यौ ङयि ७।२।९५। अनयोर्मपयन्तस्य। टिलोपः। तुभ्यम्। मह्यम्—

३ भ्यसोऽभ्यम् ७।१।३०। आभ्यां परस्य। युष्मभ्यम् अस्मभ्यम्।

प्रातिपदिकसंज्ञकयुष्मद्शब्दात् द्वितीयैकवचने अम् युष्मद्+अम्। अस्मद्+अम् इतिदशायाम्। (७) एकवचने = एकसंख्या के उक्तौ = कहने पर अनयोः = युष्मद् अस्मद्शब्दयोः मपर्यन्तस्य = युष्मस्थाने 'त्व' अस्मस्थाने 'म' (त्वमौ) आदेशौ भवतः विभक्तिपरे। ततः टिलोपे प्राप्ते, तं बाधित्वा। (८) द्वितीयायां (अम् औट् शस्) विभक्तिपरे अनयोः = युष्मद् अस्मद् शब्द को आत् = आकारअन्तादेश हो। सवर्णदीर्घे। त्वाम् माम्। (९) शसो नः आभ्याम् = युष्मद् अस्मद् शब्द से परे शस्विभक्ति के स्थान में नकार आदेश हो। 'ङे प्रथमयोरम्' से प्राप्त अम् आदेश को बाधकर। यह सूत्र परके स्थान में नकार विधान किया। 'अत आदेः' परस्य = पर (शस्) के स्थान में विधान किया गया कार्य परके आदि के स्थान में हो।

(३२०) अनादेशे = यदि कोई आदेश न हुआ। ऐसे अचि = अजादि विभक्ति परे। तृतीयैकवचने युष्मद्+आ, अस्मद्+आ, इत्यवस्थायां 'त्वमावेकवचने' इति त्व-'म' आदेशे 'अतोगुणे' पररुपे 'योऽचि' यकारादेशे त्वया मया। (१) युष्मद् अस्मदोः = युष्मद् और अस्मद् शब्द के अङ्ग के अन्त्यअल् के स्थान में आत्व हो। अनादेश = जिसको कोई आदेश न हुआ। ऐसी हलादिविभक्तिपरे तृतीयाद्विवचने भ्यामि (द्विवचने) मपर्यन्तभागस्य 'युव आव' आदेशे पररुपे, युष्मद् अस्मदोः इति आत्वे सवर्णदीर्घे युवाभ्याम्। एवं बहुवचनेभिस्, हलादिविभक्तिपरे युस्मद्—अस्मदोः आत्वे सवर्णदीर्घे रु० वि०। युष्माभिः। चतुर्थीविभक्तौ एकवचने। युस्मद्+ङे, अस्मद्+ङे। ङेप्रथमयोः, अम्आदेशे। (२) युष्म के स्थान में तुभ्य, अस्म को मह्यआदेश। टिलोपे तुभ्यं मह्यम्। (३) आभ्याम् = युष्मद्, अस्मद्से परे भ्यस् को अभ्यम् आदेशे अतोगुणे पररुपे। 'शेषे लोप' इति टिलोपे (अत्रमकारस्य लोपो न भवति। (न विभक्तौ) इति

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४ एकवचनस्य च ७।१।३२। आभ्यां ङसेरत्। त्वत्। मत्। ३२५ पञ्चम्या अत् ७।१।३१। आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत् स्यात्। युष्मत्। अस्मत्। ६ तव-ममौ ङसि ७।२।९६। अनयोर्मपर्यन्तस्य तव-ममौ स्तो ङसि। ७ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७।२।९७। तव। मम। युवयोः। आवयोः। ८ साम आकम् ७।१।३३। आभ्यां परस्य साम आकं स्यात्। युष्माकम्। अस्माकम्। त्वयि। मयि। युवयोः। आवयोः। युष्मासु।

निषेधात्। (४) युष्मद् अस्मद शब्द से परे पञ्चमी के एकवचनङस्-विभक्ति को 'अत्' आदेश हो। त्वत्, मत्। पञ्चम्यैकवचने युष्मद्+ङसि अस्मद्+ङसि इति दशायाम् एकवचने मपर्यन्तस्य 'त्व' 'म' आदेशे। अतोगुणे पररुपे 'एकवचनस्य च' ङसिस्थाने अत् आदेशे, टिलोपे, अत्र योऽचि इति न, यकार-आदेशः, अनादेशाभावात्। त्वत्, मत्। (३२५) युष्मद् अस्मद्शब्द से परे पञ्चमी के भ्यस् विभक्ति के स्थान में अत् आदेश हो। युष्मत् अस्मत्। पञ्चमीबहुवचने युष्मत्+भ्यस् अस्मद्+भ्यस्। अत्र पञ्चम्याः अत्। टिलोपे, अत्र अनादेशविभक्तिर्नास्ति, अतो न यत्वम्।

(६) युष्मद् तथा अस्मद् इन दोनों के मपर्यन्त युष्म के स्थान में 'तव' अस्म के स्थान में 'मम' आदेश हो। ङस् विभक्ति परे। (७) युष्मद् अस्मद् शब्द से परे ङस् विभक्ति के स्थान में अश् आदेश हो। तव। मम। षष्ठयाः एकवचने ङस्विभक्तौ, युष्मभागस्य 'तव' आदेशे अस्मभागस्य च 'मम' आदेशे कृते सति, युष्मदस्मद्भ्याम् ङस्स्थाने अश्-अ कृते टिलोपे। षष्ठी-द्विवचने ओस् विभक्तिपरे युवावौ द्विवचने सुत्रेण 'युव' 'आव' आदेशेअतोगुणे पररुपे, अनादेशविभक्ति परे 'योऽचि' इति यकारादेशे रुत्वे विसर्गे युवयोः आवयोः। (८) आभ्यां परस्य = युष्मद् अस्मद् शब्द से परे साम के स्थान में आकम् आदेश हो। यद्यपि षष्ठी बहुवचने आम् विभक्ति के आने पर युष्मद् = आम् अस्मद्+आम् में सुट्सहित आम् न होने से आकम् कैसे? सामपढना व्यर्थ है। वही सुट्सहित सामशब्द व्यर्थ होकर कहता है कि 'शेषेलोपः' सूत्र से अन्यलोप भी होता है। इस पक्ष में अकारान्त अङ्ग से सुट्सम्भव है। उसकी निवृति के लिये साम शब्द पढ़ा। भाविनः सुटोनिवृत्यर्थं ससुट्क निर्देशः। अत्र आम् स्थाने साम बुद्धि कृत्वा 'साम आकम्' सूत्रेण आकम् आदेशे। टिलोपपक्षे-रुपम्। अन्त्यलोपपक्षे सवर्णदीर्घे युष्माकम् अस्माकम्। त्वयि। मयि। सप्तम्येकवचने ङिविभक्तौ युष्मद्+ङि। अस्मद्+ङि एकवचने 'त्व' 'म' आदेशे। अतोगुणे, पररुपे, योऽचि इति यकारे। युष्मासु अस्मासु। अत्र केवलम् युष्मदस्मदोरनोदेशे इत्यात्वम् भवति।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मासु । ९ युष्मदस्मदोः षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीयास्थयोर्वां - नावौ ८।१।२० । पदात् परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वां नौ इत्यादेशौ स्तः ।

३३० बहुवचनस्य वस्-नसौ ८ । १ । २१ । उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादि-बहुवचनान्तयोर्वस्-नसौ स्तः । १ तेमयावेकवचनस्य ८ । १ । २२ । उक्त-विधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः । २ त्वामौ द्वितीयायाः ८ । १ । २३ द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा, इत्यादेशौ स्तः ।

"श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः" ॥

१ (एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः) । २ (एकतिङ् वाक्यम्)

---

(९) पदात्परयोः—किसी पद से परे हो, अपादादौ=किसी पाद चरण या श्लोक के आदि में न हो तथा षष्ठीचतुर्थीद्वितीया के किसी विभक्ति से जुड़े हुए युष्मद् अस्मद् शब्द के स्थान में क्रम से वां तथा नौ आदेश हो । युष्मद् को 'वाम्' अस्मद् को 'नौ' । यह नियम सामान्य है तीनों विभक्तियों में लगता है । इसको बाधकर अन्यकार्य वस् नस् आदि भी होते हैं ।

(३३०)उक्तविधयोः=पद से परे हो किसी पाद (चरण) मन्त्र के आदि में स्थित न हो । षष्ठ्यादि=षष्ठी, चतुर्थी द्वितीया के बहुवचनान्त में अनयोः= युष्मद् तथा अस्मद् के स्थान में वस् तथा नस् आदेश हो । ये वाम् नौ के बाधक हैं ।

(१) तेमयौ=ते, मे, एकवचनस्य । उक्तविधयोः—पद से परे अपा-दादिस्थ हो, षष्ठी चतुर्थी के एकवचनविशिष्ट युष्मद् अस्मद् शब्दों के स्थान में क्रम से 'ते, मे' ये दोनों आदेश हो ।

(२) त्वामौ=द्वितीया विभक्ति के एकवचन से विशिष्ट युष्मद् को 'त्वा' अस्मद् को 'मा' आदेश हो प्रत्येक का क्रमशः श्लोकबद्ध उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । यथा—श्रीश इति । इह=संसारे श्रीशः=लक्ष्मीपतिः (भगवान् विष्णुः) त्वा (त्वाम्) तुम्हारी अवतु=रक्षा करें, मां=मामऽपि (मेरी भी) रक्षतु (रक्षा करें ।) यहाँ द्वितीयाविभक्तिविशिष्ट त्वाम् माम् के स्थान में त्वा मा आदेश हुआ । वां नौ को बाधकर । श्रीशः विष्णुः, ते=तुभ्यम् । मे—मह्यम्, शर्म=सुखम्, दत्तात् (भगवान् तेरे मेरे लिए सुख दें) अत्र चतुर्थ्याः एकवचनस्य तुभ्यं शब्दस्य मह्यं शब्दस्य च, स्थाने क्रमशः 'ते' 'मे' आदेश

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तेनेह न—ओदनं पच तव भविष्यति। इह तु स्यादेव—शालीनां ते ओदनं

होते हैं। हरिः ते (तव) में (मम) अपि स्वामी अस्ति। भगवान् तुम्हारे और मेरे भी स्वामी हैं। यहाँ षष्ठीविभक्ति के एकवचन **तव, मम** के स्थान में 'ते' 'मे' आदेश क्रम से हुए। द्विवचन का उदाहरण—**विभुः**=समर्थः सर्वशक्तिमान् भगवान् **वां**=युवाम्, **नौ**=आवां, **पातु**=रक्षतु। (ईश्वर तुम दोनों की, हम दोनों की भी रक्षा करें।) अत्र द्वितीयाद्विवचने **युवां** स्थाने **वाम्**, **आवां** स्थाने **नौ** आदेशौ। चतुर्थीद्विवचने **ईशः** (हरिः) **वाम्**=युवाभ्यां; **नौ**=आवाभ्याम्, **सुखम्**=आनन्दं ददातु। षष्ठीद्विवनस्य उदाहरणम्—हरिः भगवान् **वाम्**=युवयोः **नौ**=आवयोः पतिः स्वामी अस्ति। अत्र **युवयोः आवयोः** स्थाने क्रमेण **वः नौ** आदेशौ भवतः। स (हरिः) **वः** (युष्मान्) **नः** (अस्मान्) **अव्यात्**=पायात् (भगवान् तुम लोगों, हम लोगों की रक्षा करें।) बहुवचन उदाहरण में **युष्मान् अष्मान्** को क्रम से **नस् वस्** आदेश हुए। एवं **अस्मभ्यम् युष्मभ्यम्** इति चतुर्थी बहुवचनस्थाने **वस्, नम्** आदेशे। एवं **युष्माकं** स्थाने **वः**। **अस्माकं** स्थाने '**नः**' आदेशे। भगवान् तुम सबके लिए हम सबके लिए भी कल्याण करें। वही हम लोगों के तुम लोगों के भी **सेव्य**=सेवा के योग्य हैं।

(वा०) **एकवाक्ये**-युष्मद् अस्मद् शब्द के स्थान में जो आदेश कहे गये हैं वे एक ही वाक्य में सम्भव हैं। यदि दो वाक्य हों तो नहीं होते। जिसमें **एकतिङ्** हो उसे **वाक्य** कहते हैं। जिसमें तिङन्तपद आवश्यक है। **तेनेह**=उक्त नियम से यहाँ नहीं हुआ। **ओदनं**=भात को, **पच्**=पकाओ। (वह) **तव** (तुम्हारा) **भविष्यति** होगा। यहाँ दो तिङन्तपद अलग-अलग वाक्य में होने से एकवाक्य नहीं रहा। अतः **तव** के स्थान में 'ते' आदेश नहीं हुआ। **पश्य मृगो धावति'** यहाँ दो क्रिया होने पर भी एक ही वाक्य है। **इहतु**=जहाँ एक वाक्य है। वहाँ तो **स्यादेव**=होता ही है। **यथा—शालीनां**=तण्डुलानाम् **ओदनम्**=भक्तम् 'ते' तुभ्यं दास्यामि—तुझे चावल का भात दूँगा। यहाँ एक वाक्य है। एकतिङन्त पद होने से। शालीनां पद से परे तुभ्यम् के स्थान में 'ते' आदेश हो गया।

(वा०) **एते इति**: ये (वां नौ) इत्यादि आदेश **अनन्वादेशे**=अन्वादेश के अभाव स्थल में विकल्प से हों। जहाँ अन्वादेश है, वहाँ उक्त आदेश नित्य होते हैं। अनन्वादेश का उदाहरण—**धाता ते भक्तोऽस्ति**। ब्रह्मा तुम्हारे भक्त हैं। यहाँ **तव** के स्थान में विकल्प से 'ते' आदेश हुआ। इसलिए धाता 'तव भक्तोऽस्ति' यह भी बनता है। अन्वादेश का उदाहरण—**कार्यान्तरविधान ही अन्वादेश**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दास्यामि । ३ (एते वां नावादयोऽनन्वादेशे वा वक्तव्याः) अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते भक्तोऽस्ति धाता तव भक्तोऽस्ति वा । तस्मै ते नम इत्येव । सुपात् सुपाद् । सुपादौ ।

३ पादः पत् ६ । ४ । १३० । पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः । सुपदः । सुपदा । सुपाद्भ्याम् । अग्निमत्, अग्निमद् । अग्निमथौ । अग्मिथः ।

है । वहाँ नित्य आदेश होने से (तस्मै ते नमः इस वाक्य में तुभ्यम् के स्थान में 'ते' आदेश नित्य है । अत्र 'तस्मै तुभ्यं नमः' इति कथनम् अशुद्धं भविष्यति ।

शोभनौ पादौ यस्य स, सुपात् । सुन्दर पैरोंवाला अर्थ से अर्थवान् सुपाद्शब्दात् प्रथमायाः एकबचने सु=स् अपृक्तसकारस्य हल्ङ्यादिलोपः अवसानेपरे दकारस्य विकल्पेन चर्त्वे सुपात् सुपाद् । औविभक्तौ वर्णसम्मेलने सुपादौ । सुपादः । सुपादं सुपादौ सुपदः ।

(३) पाच्छब्दान्तं=पाद्शब्द हो अन्ते में जिसके ऐसा भसंज्ञकअङ्ग उसके अवयव पादशब्द को पद् आदेश हो । प्रातिपदिकात् सुपाद्शब्दात् द्वितीया बहुवचने शसि अनुबन्धलोपे । अजादिविभक्तिपरे भसंज्ञा भवति । भसंज्ञको अङ्गः पादः पत् सूत्रेण पद् आदेशे सस्य रुत्वे वि० सुपदः । एवं सुपदा । अजादि विभक्ति परे ही पद् आदेश होता है । अन्यत्र नहीं । सुपाद्भ्याम् सुपाद्भिः । सुपद् सुपाद्भ्यां सुपाद्भ्यः । सुपदः सुपदोः सुपदाम् । सुपदि सुपदोः सुपात्सु । अग्निं मथ्नाति (शमी आदिकाष्ठघर्षणेन वह्निमुत्पादयति स अग्निमत् । जो मन्थन से अग्नि पैदा करे वह अग्निमद् है । अत्र सु विभक्तिः तस्य लोपे । अवसाने थकारस्य वा चर्त्वे रुपद्वयम् । अजादिविभक्तिपरे जश्त्वचर्त्वविशेष है । अग्निमथः अग्निमथोः अग्निथाम् । अग्निमथि, अग्निमथोः, अग्निमत्सु ।

(४) अनिदितां हलन्तानां=हलन्तशब्द हो, अनिदिताम्=इकारइत् न हुआ हो, ऐसे अङ्गसंज्ञक शब्द की उपधा (अन्त्यवर्ण के पूर्व के (न) का लोप हो क्किति ङिति परे । नुम्=उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः इति नुम् । संयोग के अन्त का लोप हो । न स्थाने कुत्व होने से 'ङ्' भवति । प्राङ्=प्रकर्षेण अञ्चति (पूजयति) प्रशस्तो भवति । पूर्वदिशा, देश, काल, प्रशस्त हैं । प्र पूर्वकअञ्च्धातोः 'ऋत्विग्'—सूत्रेण क्विन् । सर्वापहारिलोपे कृदन्तं मत्वा प्रातिपदिकसंज्ञा, सुविभक्तिः 'अनिदितामिति' नलोपे प्र अच् + स् उगिद्चामिति नुम्=न् आगमे कृते, प्र+अ=आ दीर्घे । प्रान् च स् इति स्थिते सस्य हल्ङ्यादिलोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे नकारस्य क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वे, प्राङ् । एवं प्राञ्चौ प्राञ्चः । प्राञ्चं प्राञ्चौ ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३३४ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ६ । ४ । २४ । हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति । नुम् । संयोगान्तस्य लोपः । नस्य कुत्वेन ङः । प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः । ३३५ अचः ६।४।१३८ । लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याऽकारस्य लोपः । ६ चौ ६ । ३ । १३८ । लुप्तकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः । प्राचः । प्राचा । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ् । उदञ्चौ । ७ उद ईत् ६ । ४ । १३९ । उच्छब्दात् परस्य लुप्तनकाराञ्चतेर्भस्याकारस्य

---

(३३५) अचः=लुप्तनकारस्य = लुप्त हो नकार जिसका ऐसे भसंज्ञक अञ्च के अकार का लोप हो ।

(६) लुप्त हो अकार और नकार ऐसे अञ्चकेपरे रहते पूर्वअण् को दीर्घ हो । प्राचः = प्रपूर्वक अञ्चधातोः क्विन् सर्वापहारिलोपे प्रा० सं० शस् अङ्गसंज्ञा भसंज्ञा च । अनिदितमिति नकारलोपे भसंज्ञकस्य अकारस्य 'अचः' इतिसूत्रेण लोपे, 'चौ' इतिपूर्व-अणः दीर्घे रू० वि० । एवं प्राचा प्राग्भ्याम् । अत्र नकारलोपे सवर्णदीर्घ इति विशेषः । प्राग्भिः । प्राचे प्राग्भ्यां प्राग्भ्यः । प्राचः प्राचोः प्राचाम् । प्राचि प्राचोः प्राक्षु । दिग्देशकाले पूर्वादौ प्रागुदक्प्रत्यङ्ङादयः । प्राञ्चशब्द पूर्वदिशादेश या काल अर्थ में प्रयुक्त है । प्राङ् प्राचीनश्च । एवं पश्चिम दिग्देशकाले भवः प्रत्यक्प्रतीचीनश्च, प्रत्यक् तथा पराक्शब्द क्रम से अन्दर और बाहर के वाचक हैं । पश्चिमदिशा, देशकाल, अर्थ में प्रसिद्ध प्रतिपूर्वक अञ्च्धातोः 'ऋत्विग्' से क्विन् सर्वापहारिलोपे । प्रातिपदिकसंज्ञा सु 'अनिदितां' न लोपे) उगिदचाम् इति नुम्=न् । सस्य हल्ङ्यादिलोपे, चकारस्य संयोगान्तलोपे क्विन्प्रत्ययस्य नकारस्य कुत्वेनङ् यणि, प्रत्यङ् । प्रतीचः = प्रति अञ्च्धातोः क्विन् सर्वापहारिलोपे 'भ' संज्ञायाम् अचः' इसि अकारलोपे, ततो नकारलोपे, चौ इतिदीर्घे अकृतव्यूहपरिभाषया यण् न भवति । प्रत्यग्भ्याम् । अत्र भसंज्ञा भवति, अतो अकारस्य लोपो न भवति । चकारस्य जश्त्वे चर्त्वे । उत्तरदिशादेशकाल अर्थ में उदङ् उदीचीनश्च । प्राङ् की तरह, उदङ् उदञ्चौ उदञ्चः उदञ्चम् उदञ्चौ उदीचः । उद्पूर्वक अञ्चधातोः क्विन्, सर्वापहारिलोपे । अनिदितामिति नकारलोपे भसंयाम् ।

(७) उद शब्द से परे लुप्त नकारक भसंज्ञक अङ्ग अञ्चके अकारको ईत्व हो । इत्यनेन अकारस्य ईकारे रू० वि० । भसंज्ञास्थल में ईत्व अवश्य होता है । उदीचा उदग्भ्याम् उदग्भिः । नलोप जस्त्वं विशेषः उदीचः उदीचोः दीउचाम् । उदीचि उदीचोः उदक्षु ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ईत्। उदीचः। उदीचा। उदग्भ्याम्। ८ समः समिः ६।३।९३। वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ। सम्यङ्। सम्यञ्चौ। समीचः। सम्यग्भ्याम्। ९ सहस्य सध्रिः ६।३।९५। तथा। सध्र्यङ्। सध्रीचः।

३४० तिरसस्तिर्यलोपे ६।३।९४। अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्त-तिरसस्तिर्यादेशः। तिर्यङ्। तिर्यञ्चौ। तिरश्चः। तिर्यग्भ्याम्। १ नाञ्चेः पूजायाम् ६।४।३०। पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न। प्राङ्।

---

(८) व (क्विन्) प्रत्यय हो अन्त में जिसके ऐसे अञ्चपरे समशब्दको समिआदेश हो। समपूर्वक अञ्च्से क्विन् आदि नलोपे, नुमि, सुलोप, संयोगान्त-लोपे। सम स्थाने समि आदेशे यणि कुत्वे। सम्यङ् सम्यञ्चौ। सम्यञ्चः। सम अञ्चशब्दात् द्वितीयाबहुवचने शसि=असि नकारलोपे ईत्वे, समः समि आदेशे दीर्घे समीचः। अचः।

(९) वप्रत्यान्त अच्परे सहशब्द के स्थान में संध्रि आदेश हो। सह अञ्चति गच्छति इति सध्र्यङ्—सहगामी। सहपूर्वक अञ्चधातोः क्विन्। सम्पूर्णलोपे प्रातिपदिकसंज्ञा 'सु'। सहस्य सध्रि आदेशे, यणि, नकारलोपे, नुमिकृते संयोगान्तलोपे रूपम्। सध्र्याञ्चौ, सध्र्याञ्चः। सध्रीचः। सध्रीचा, सध्र्यग्भ्याम्, सध्र्याग्भिः। सध्रीचः, सध्रीचोः सध्रीचाम्।

(३४०) तिरसः तिरि, अलोपे। अलुप्त=न लुप्त हुआ हो अकार जिसका ऐसे क्विन्प्रत्ययान्त अञ्च्धातु परे रहते। वप्रत्ययान्ते वचासौ प्रत्ययश्च क्विपप्रत्ययः अन्ते यस्य स। तस्मिन्परे तिरस्शब्द के स्थान में तिरिआदेश हो। तिर्यङ्=तिरोअञ्चति=कुटिलं गच्छति। सर्पः पक्षी, पशुर्वा। तिरस्पूर्वक-अञ्च्धातु से क्विन्, सर्वापहारिलोपे, तिरसःस्थाने तिरिआदेशे, यणि अत्र सर्वनामस्थानपरत्वेन भसंज्ञा न भवति, अतः अकारलोपोऽपि नभवति। हलादिविभक्तावपि अकारलोपो न भवति। सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे वकारस्य-संयोगान्तलोपे च। कुत्वेन ङ्। तिर्यङ्। तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः। हेतिर्यङ्। तिर्यञ्चं, तिर्यञ्चौ तिरश्चः—तिरस्पूर्वक अञ्चधातोः क्विन् प्रत्यये सम्पूर्णलोपे, प्रातिपदिक संज्ञायां शस्। श इत्। अनदितामिति नलोपे भसंज्ञायाम् 'अच' इति अकारलोपे, सस्य श्चुत्वेन शः, विभक्तिसकारस्य रुत्वे वि० रूपम। तिरश्चा तिर्यग्भ्याम्=अत्र तिरस्स्थाने तिरि आदेशे 'अनिदितां' नलोपे, हलादिविभक्तौ भसंज्ञा न भवति। अतः अकार लोपोऽपि न भवति। यणि कुत्वे जश्त्वे। तिर्यग्भिः। तिरश्चे, तिर्यग्भ्याम, तिर्यग्भ्यः। तिरश्चः तिरश्चोः तिरश्चाम्। तिरश्चि तिरश्चोः तिर्यक्षु। अत्र तिरिआदेशे तकारलोपे कुत्वे षत्वे क, ष संयोगे क्षकृते यणि।

(१) अञ्चेः पूजायां न। पूजा अर्थ मे अञ्च्धातुके उपधा नकार का

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्राञ्चौ। नलोपाभावादलोपो न। प्राञ्चः। प्राङ्भ्याम्। प्राङ्क्षु। एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुङ्भ्याम्। पयोमुक्। पयोमुग्।

लोप नहीं होता। अञ्चधातु के दो अर्थ हैं गति (अर्थ) पूजा अर्थ। गति अर्थ में न लोप होता है, पूजा अर्थ में नहीं। प्रकर्षेण अञ्चति (पूजयति) इति प्राङ् (विधि से पूजा करनेवाला) प्रपूर्वकअञ्चधातोः 'ऋत्विग्' आदि सूत्रेण क्विन् सर्वापहारिलोपे अनिदितां सूत्रेण नस्य लोपेप्राप्ते अञ्चेः पूजायां। पक्षे न लोपो न भवति (अञ्चेः पूजायां न) दीर्घप्राञ्च्शब्दात् प्रातिपदिकात् सु=स्। तस्य हल्ङ्यादिलोपे, पदसंज्ञायां चकारस्य संयोगान्तलोपे। कार्यस्य अभावे कारणस्य अभावः। चकारस्यलोपे अनुस्वारपरसवर्णौनिवर्तेते। नकारो दृश्यते। क्विन् प्रत्ययस्य सूत्रेण नकारस्य कुत्वेन ङकारे प्राङ्। एवं प्राञ्चौ प्राञ्चः। अत्र नलोपस्य अभावात्=नाञ्चेः पूजायाम् इति नकारलोपस्य निषेधेसति। अचः इतिसूत्रेण अलोपो नभवति। प्राञ्चं, प्राञ्चौ, प्राञ्चः। प्राञ्चा प्राङ्भ्याम्=अत्र हलादिविभक्ति 'भ्यां' परे स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इतिपद संज्ञा चकारस्य संयोगान्तलोपे। नकारस्य कुत्वेन ङकारे प्राङ्भिः। प्राञ्चे, प्राङ्भ्याम्, प्राङ्भ्यः। प्राञ्चः प्राञ्चोः प्राञ्चाम्। प्राञ्चि प्राङ्खषु प्राङ्क्षु प्राङ्सु प्राञ्च=शब्दात् प्रातिपदिकात् सप्तमीबहुवचनेसुप्। पदसंज्ञायां चकारस्य संयोगान्तलोपे, नकारस्य कुत्वेन ङकारे, ततः ङणोकुक्टुक् शरि इति कुक्=क् आगमें, विकल्पेन कस्थाने चयोद्वितीया इति इति वार्तिकेन द्वितीयोऽक्षरः 'ख' कृते, एकरूपम्। 'क्' स्थिते द्वितीयं रूपम्। कुक् अभावे तृतीयं रूपम्। एवम्=अनेनप्रकारेण प्रत्यङ्ङादयः=पूजाअर्थ में प्रत्यञ्च, उदञ्च, सम्यञ्च, सध्र्यञ्च, तिर्यञ्च आदि के रूप भी 'पूजार्थक प्राङ्की तरह चलेगा। अर्थ में अन्तर होगा। प्रत्यङ्का सर्वपूजकः। उर्ध्वं गमनाय अञ्चति उदङ्। सविध्यञ्चति इतिसम्यङ्। साथ में मिलकर पूजक सध्र्यङ्। वक्रपूजकः तिर्यङ्। वकजातीय पक्षि विशेष क्रुङ् (क्रौंचपक्षी) क्रुञ्चधातोः 'ऋत्विग्' आदि सूत्रेण क्विन्प्रत्ययान्तः निपात्यते। नकोरलोपस्य अभावेऽपि निपात्यते। कृदन्तं मत्वा प्रातिपदिकसंज्ञा सुविभक्तिः सोर्लोपे, पदसंज्ञायां संयोगान्तलोपे कुत्वेन ङकारे रूपम्। क्रुङ्कुञ्चौ क्रुञ्चः। क्रुञ्चा क्रुङ्भ्याम् कुङ्भिः। कुञ्चे कुङ्भ्याम् क्रुङ्भ्यः क्रुञ्चः क्रुञ्चोः क्रुञ्चाम्। क्रुञ्चि क्रुञ्चोः क्रुङ्खुषु क्रुङ्क्षु क्रुङ्षु। पयांसि मुञ्चति इति पयोमुक् (जल वर्षानेवालाबादल) क्विन्प्रत्यान्तात् पयोमुच्शब्दात् सु=स्तस्य हल्ङ्यादिलोपे, चकारस्य जश्त्वेन जकारे कृते, 'चोः कुः' कुत्वे 'वाऽवसाने' विकल्प चर्त्वे। पयोमुक् पयोमुग्। पयोमुचौ पयोमुचः। अजादिविभक्तौवर्णसम्मेलने पयोमुचम् पयोमुचः। पयोमुचा पयोमुग्भ्याम्, हलादिविभक्तौ जश्त्वे कुत्वे च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पयोमुचौ। पयोमुग्भ्याम्। उगित्वान्नुम्। २ सान्त-महतः संयोगस्य। ६।४।१०। सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महन्! महद्भ्याम्। ३ अत्वसन्तस्य चाधातोः ६।४।१४। अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे। धीमान् धीमन्तौ। धीमन्तः। हे धीमन्!।

पयोमुग्भिः। पयोमुचः पयोमुचोः पयोमुचां पयोमुक्षु।

उगित्वात्=उक्=उ ऋ ऌके इत् होने उगित् अचां सर्वनामस्थाने सूत्र से नुम्=न्। (२) सान्त (लुप्तषष्ठीक है) संयोगस्य=सकार हो अन्त में जिसके ऐसा संयोग विद्वस् इत्यादि, महतश्च=महत्शब्द का जो नकार, तस्योपाधायाः=उसकी उपधा=अन्त्य अक्षर के पूर्ववर्ण को दीर्घ हो। सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थानविभक्तिपरे। महान्=दिव्य या श्रेष्ठ, अर्थसे अर्थवान् प्रातिपदिकसंज्ञकमहत् शब्द से सु। यहाँ उगित् मानकर उगिद्चाम से नुम्=न् शतृवद्भावसे उगितधर्म महत्शब्दमें आया। प्रमाण। वर्तमाने, त्रिशंत्, महत्, बृहत्, जगत्, शतृवच्च। सान्तमहत्संयोगस्य इति नकारस्य उपधायाः दीर्घे, सुलोपे, संयोगान्तलोपे च महान्। महान्तौ=अत्र नुम् उपधादीर्घश्च अनुस्वारपरसवर्णौ तथैव महान्तः हे महन्। अत्र न सम्बुद्धिपरे दीर्घः। महान्तम् महान्तौ महतः। महता महद्भ्याम् महद्भिः। महतः महतोः महत्सु।

(३) अत्वन्तस्य=अतुप्रत्यय अन्त में हो, उसके उपधा को दीर्घ हो। असन्तस्य=धातु से भिन्न जो असन्त उसके अन्त उपधा को भी दीर्घ हो, सम्बुद्धिभिन्नसुपरे। उत्सृष्टानुबन्धग्रहणे। यहाँ अतु सानुबन्धग्रहणम् मतुप्, वतुप्, आदिप्रत्यय जाने। यथा—धीः=(प्रशस्ताबुद्धिः) अस्तिअस्य। प्रशंसामें मतुप् धीमत्शब्दात् प्रातिपदिकात् 'सु' उगित्वात् 'उगिद्चाम्' सूत्रेण नुम्, अनुबन्धलोपे अपृक्तसञ्ज्ञकसकारस्य लोपे। संयोगान्तलोपे च। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणेन अत्वसन्तस्य इति उपधायाः दीर्घे। धीमान्, धीमन्तौ, धीमन्तः। हे धीमन् शसादौ=शस् टा इत्यादि विभक्तियों में महद्वत्='महत्' शब्द की तरह रूप समझे। भातेर्डवतुः=दीप्ति, प्रकाश अर्थ में भा धातु से डवतु। डकारस्य चुटूसूत्रेण उकारस्य उपदेश अजनुनासिक इत्संज्ञा। लोपश्च। भा+अवत्। यहाँ भसंज्ञा यचिभम् से नहीं होती क्योंकि उसकी सीमा चतुर्थ, पञ्चम अध्याय के कप् प्रत्यय पर्यन्त तक है तब टि लोप कैसे हो, डित्वसामर्थ्यात्। ड पढने के सामर्थ्य से अभस्यापि=बिना भ संज्ञा के भी—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शसादौ महद्वत्। भातेर्डवतुः। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भवान्। भवन्तौ। भवन्तः। शत्रन्तस्य-भवन्। ४ उभे अभ्यस्तम्। ६।१।५। षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः।

३४५ नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८। अभ्यस्तात् परस्य शतुर्नुम् न। ददत् ददतौ। ददतः। ६ जक्षित्यादयः षट् ६।१।६। षट् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः। जक्षत्, जक्षद्। जक्षतौ। जक्षतः। एवं जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्। गुप्, गुव्। गुपौ। गुपः।

टिका लोप होता है। अन्यथा डित्करण व्यर्थ होगा। 'भा' में आका लोप हुआ। भवत्शब्दात् प्रथमायाः एकवचने 'सु' नुम्। सुलोपे। संयोगान्त लोपे। अत्वसन्तस्य इति उपधायाः दीर्घे। भवान्। तथैव भवन्तौ भवन्तः। भवन्तं भवन्तौ भवतः। भवता भवद्भ्याम् भवद्भिः। भवति भवतोः भवत्सु। शत्रन्तस्य = शतृप्रत्यय अन्त में हो ऐसे भवेत् शब्द को नुम् आदि करके भवन् रूप बनता है। अतु अन्त में न होने से दीर्घ नहीं होता। संयोगान्त लोप के असिद्धि के भय से नान्तउवधा को दीर्घ नहीं हुआ।

(३४४) उभे षाष्ठ = अष्टाध्यायी में 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' छठे अध्याय के इस सूत्र से किये गये द्वित्व। प्रसङ्ग में जो दो कहे गये हैं, वे समुदिते = दोनों मिलकर अभ्यस्तसंज्ञक हो। अलग-अलग नहीं। (३४५) अभ्यस्तात् = अभ्यस्तसंज्ञक से परे शतृ = अत् को नुम् नहीं होता। निरन्तरदान करता हुआ अर्थ में ददत् = (शतृप्रत्ययान्तप्रातिपदिकसंज्ञक) से सु उगिदचाम् से प्राप्तनुम् का निषेध हुआ। क्योंकि अभ्यस्तसंज्ञक से नुम् प्राप्त था। अभ्यस्तसंज्ञा 'उभेऽभ्यस्तम्' से हुई। हल्ङ्यादिलोपे। ददता दददभ्याम् दद्भिः। ददतः ददतोः ददताम्। ददति ददतोः ददत्सु।

(६) जक्षित्यादयः = जक्षि, जागृ, दरिद्रा, शास्, देधीङ्, वेवीङ्, चकासृ, अभ्यस्तसंज्ञं विज्ञेयं (मुन्युक्तं धातुशप्तकम्) छ धातु, अन्य जक्ष मिलकर सात धातु की अभ्यस्तसंज्ञा है। यक्षधातु भक्षण और हसने अर्थ में है, उसकी निरन्तर क्रिया से जक्षत् को अभ्यस्तसंज्ञा 'नाभ्यस्तात् से' नुम्का निषेध। रुप साधारण है। इसी प्रकार जागरणं कुर्वन्। जागरण की निरन्तर क्रिया अर्थ में जाग्रत् शब्द को अभ्यस्तसंज्ञा, नुम् निषेध। दुर्गति दयनीयं वा प्राप्नुवन् दरिद्रत् = दुर्गति की निरन्तर क्रिया। शासनं कुर्वन्। शासत् भगवान्, चकासत् = निरन्तर प्रकाशन क्रिया। इन सभी को अभ्यस्तसंज्ञा नुम्निषेध। गोपायति इति गुप् (रक्षकः) प्रथमायाः एकवचने सु = स् अपृक्तसकारस्य लोपे, जश्त्वे विकल्पेन चर्त्वे गुप् गुव्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गुब्भ्याम् । ७ त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च ३ । २ । ६० । त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद् दृशेः कञ् चात् क्विन् । ८ आ सर्वनाम्नः ६ । ३ । ९१ । सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्-दृश् वतुषु । तादृक्, तादृग् । तादृशौ । तादृशः । तादृग्भ्याम् । व्रश्चेति षः । जश्त्वचर्त्वे । विट्, विड् । विशौ । विशः । विड्भ्याम् । ९ नशेर्वा ८ । २ । ६३ । नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते । नक्, नग्, नट्, नड् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् नड्भ्याम् ।

३५० स्पृशोऽनुदके क्विन् ३ । २ । ५८ । अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् । घृतस्पृक्, घृतस्पृग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । दधृक्, दधृग् । दधृषौ ।

इति । भ्यामादिहलादिविभक्तौ पदान्ते झलां जश्त्वे गुब्भ्याम् इत्यादि ।

(७) त्यदादिषु=त्यद्, तद्, यद्, ये उपपद हों तो अनालोचने चाक्षुषज्ञानभिन्ने । अज्ञानार्थात् चाक्षुष् ज्ञान अर्थ से रहित दृश् धातुसे कञ् तथा क्विन् प्रत्यय हो । (८) सर्वनाम्नः—सर्वनामशब्द के अन्त्य अल्वर्ण को आकार हो । दृग्, दृश्, वतु, शब्द परे रहते । तदपूर्वक दृश्धातु से कञ् सर्वापहारि लोपः । आसर्वनाम्नः इति दकारस्य आकारे । दीर्घे । प्रातिपदिकत्वात् सु — स् तस्य लोपे 'व्रश्चेति' शकारस्य षत्वे षस्थाने झलांजशोऽन्त इति ड कृते । क्विन् प्रत्ययस्य कुत्वेन गकारे । विकल्पेन चर्त्वे । तादृक् । स इव पश्यति ज्ञानविषयो भवति । अचाक्षुष् ज्ञानवाला (तैसा) तादृग् । इस प्रसङ्ग में ष, ड, ग, क की प्रक्रिया श के स्थान में समझे । तादृशा, तादृग्भ्याम् । अयम् इव पश्यति ईदृक्ाय इव पश्यति यादृक् । तादृग्भिः । तादृशि तादृशोः तादृक्षु । वैश्य अर्थ में प्रसिद्ध विश्शब्दात् सु — स् । तस्य लोपे 'व्रश्चभ्रस्ज' सूत्रेण शस्थाने षे कृते तस्य जश्त्वे चर्त्वे विकल्पे विट् विड्, विशौ, विशः । विशम्, विशौ, विशः । विशा विड्भ्यां विड्भिः । विशे, विड्भ्यां, विड्भ्यः । विशि, विशोः, विट्त्सु-विट्सु । (९) नश्-धातु के कवर्ग अन्तादेश विकल्प से हो, पदान्त में । नश्यतीति नग् नक् नश्वर अर्थ में नश् शब्द से सु, स् लोपे नशेर्वा सूत्रसे श के स्थान में ग् हुआ विकल्प चर्त्वे नक्, नग् । पक्ष में व्रश्चेति षः तस्य जश्त्वे चर्त्वे विकल्पे नट्, नड् नशौ नशः । नशा नग्भ्याम्, नड्भ्याम् नग्भिः नड्भिः । नशि नशोः नक्षु नटत्सु नट्सु ।

(३५०) अनुदके=उदक=जल अर्थ न हो, ऐसे सुबन्तशब्द उपपद रहते स्पृश्धातुसे क्विन्प्रत्यय हो । घृतं स्पृशति घृतस्पृक् — घी का स्पर्शकरनेवाला । यहाँ घृत उदक् नहीं है । अतः स्पृश् से क्विन् सर्वापहारिलोपे । प्रातिपदिक आदि कार्ये । शस्थाने ष, ड, ग, क कृते घृतस्पृक् घृतस्पृग् । घृतस्पृशा घृतस्पृग्भ्याम् घृतस्पृग्भिः । घृतस्पृशः घृतस्पृशोः, घृतस्पृशाम् । घृतस्पृक्षु । तिरस्कर्ता अर्थ में

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दधृग्भ्याम् । रत्नमुट्, रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुड्भ्याम् । षट्, षड् । षड्भिः । षड्भ्यः । २ । षण्णाम् । षट्सु, षट्त्सु । रुत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात् ससजुषोरुरिति रुत्वम् । १ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६ । रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते । पिपठीः । पिपठिषौ । पिपठीर्भ्याम् । २ नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८ । ३ । ५८ । एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः । पिपठीष्षु, पिपठीः

प्रसिद्ध दध्रिष्, 'ऋत्विग्दधृष्' इति क्विन्, सर्वापहारिलोपे निपातनाद्द्वित्वादिः प्रथमायाः एकवचने 'सु' पूर्वं षस्थाने जश्त्वेन ड् तस्य कुत्वे चर्त्वविकल्पे दधृक् ग् रत्नं मुष्णाति रत्नमुट् रत्न चुराने वाला । यहाँ षको जश्त्व चर्त्वविकल्प, रत्नमुषि, रत्नमुषोः रत्नमुट्सु, रत्नमुट्त्सु । क्विप्प्रत्ययान्त शब्द है, अतः कुत्व नहीं हुआ । षट्शब्द नित्य–बहुबनान्त है । छ सङ्ख्या-अर्थवाचकात् षष्शब्दात् जसि शसि च 'ष्णान्ताः षट्' इति षट्संज्ञा । षड्भ्यः परयोः जश्शसोर्लुक् कृते षकारस्य जश्त्वे चर्त्वविकल्पे षट् षड् । भिस् भ्यस् विभक्ति में जश्त्वेन डकारे । षड्भिः षड्भ्यः । आमि विभक्तौ षट्चतुर्भ्यश्च इति नुट् (न्) षष् + नाम षस्थाने झलां जश्त्वे, नुट् नकारस्य ष्टुत्वेन णकारे षड्णाम् । "प्रत्ययेभाषायां नित्यम्" । नित्यम् अनुनासिके परसवर्णे । षण्णाम् । षट्सु षटत्सु । डःसि धुट् ।

पिपठीः—पठितुम् इच्छति पिपठिषति इति पिपठीः । पिपठिष् शब्द से सु=स् हल्ङ्यादिलोपे । यहाँ दन्त्य स नहीं है । रु० वि० कैसे ? तब बोले 'रुत्वं प्रति ससजुषोरुः रूत्व की दृष्टि में आदेशप्रत्ययोः से कृतः षकारः असिद्ध । इसलिए बोले कि षत्वस्यासिद्धत्वाद्=षत्वके असिद्ध होने पर 'स' दिखाई पड़ा, इसलिए रुत्व हुआ तब (१) र्वो=रेफ तथा व अन्तमें हो उसकी उपधा के इक् को दीर्घ हो पदान्त में । इति दीर्घे खरवसानयोः विसर्जनीयः' इति विसर्गे पिपठीः, पिपठिषौ पिपठिषः । पिपठिषा पिपठीर्भ्याम् पिपठीर्भिः । पिपठिषः पिपठिषोः पिपठिषाम् । पिपठिषि पिपठिषोः पिपठीःषु । अत्र पिपठिष्शब्दात् सप्तमी बहुवचने सुपि अनुबन्धलोपे । स्वादिष्वसर्वनामस्थाने पदसंज्ञायाम् 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति षत्वस्य असिद्धत्वात् सकारस्य ससजुषोरुः, इति रुत्वे (र्वो) र्वोरुपधायाः दीर्घे । 'रोः सुपि' इति रोरेव विसर्गः इति नियमेन रेफस्य विसर्गे । 'वाशरि' इति विकल्प सकारादेशः पिपठीःसु । (२) नुम्, विसर्ग, शर्=शषसर्, व्यवायेऽपि= इनके व्यवधान में भी । इण्कवर्ग से परे स को 'ष' मूर्धन्यादेश हो । पूर्व स को ष्टुत्व होने से ष हुआ । पिपठीष्षु । चिकीः=कर्तुमिच्छति चिकीर्षति । चिकीर्षशब्दात् सु स् लोपादिकार्यें । अत्र न संयोगान्तलोपः । रेफात् परस्य सकारस्यैव लोपात् । इति सकारस्य संयोगान्तलोपे, रेफस्य विसर्गे । चिकीः चिकीर्षौ चिकीर्षः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

षु। चिकीः। चिकीर्षौ। चिकीर्भ्याम्। चिकीर्षु। विद्वान्। विद्वांसौ। हे विद्वन्!। ३ वसोः संप्रसारणम् ६।४।१३१। वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात्। विदुषः। (२६२) वसुस्रंस्विति दः। विद्वद्भ्याम्।

४ पुंसोऽसुङ् ७।१।८९। सर्वनामस्थाने विवक्षितेऽसुङ् स्यात्। "पुमान्। हे पुमन्!। पुमांसौ। पुंसः। पुंभ्याम्। पुंसु। (२०४) ऋदुशने-

---

चिकीर्ष् = भ्याम् षत्वस्य असिद्धत्वात् सकारस्य संयोगान्तलोपे रेफस्य विसर्गे प्राप्ते 'रोः सुपि' इति नियमात् निषेधे। चिकीर्षु। अवशिष्टाः शब्दाः पूर्ववत्। ज्ञानार्जन की निरन्तर क्रिया का कर्ता विद्वान् विद्धातु से शतृ। उसके स्थान में वसु। विद्वस्=शब्दात् प्रातिपदिकात् सु हल्ङ्यादिलोपे 'उगिदचाम्' नुमि 'सान्त महतः' इति दीर्घे। सकारस्य संयोगान्तलोपे। विद्वान्। अत्र संयोगान्त लोपस्य असिद्धत्वात् नान्तस्य उपधायाः दीर्घो न भवति। इस प्रकार औ विभक्ति परे 'नुम्' 'नश्चापदान्तस्य' झलि इति अनुस्वारे। विद्वांसौ विद्वांसः। हे विद्वन् अत्र सान्तमहत् इति दीर्घो न। विद्वांसम्, विद्वांसौ विदुषः (३) वसोः = वस्प्रत्ययाना ऐसे भसंकशब्द को सम्प्रसारण हो। शसि विभक्ति से लेकर अजादिविभक्तिपरे। भसंज्ञा भवति। तत्रैव सम्प्रसारणम्। विद्वस् शब्दात् प्रातिपदिकात् द्वितीयाबहुवचने शस्=अस्, भसंज्ञायां वशोः सम्प्रसारणे व स्थाने उकृते पररूपे विदुस्+अस्, सकारस्य रु० वि०। आदेशप्रत्ययोः इति-षत्वे विदुषः। विदुषा–विद्वस्+भ्याम्, "वसुस्रंसु" इति सस्थाने दकृते। विद्वद्भ्यां, विद्वद्भिः। विदुषे विद्वद्भ्यां विद्वद्भ्यः। विदुषः विदुषोः विदुषाम्। विदुषि विदुषोः विद्वत्सु।

(४) पुंसः सर्वनामस्थानकी विवक्षामें पुंसशब्द के अन्त्य अल् सको असुङ् हो। ङित्वात् अन्त्यस्य अलः सस्य स्थाने आदेशः। पुरुष अर्थवाचक पुंस शब्दात् सु 'पुंसोऽसुङ्' सूत्रेण सस्थाने असुङ्आदेशे अनुबन्ध लोपे निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः। कारणके हटजानेसे कार्य भी हट जाता है। स् के हटनेसे अनुस्वार हट गया। म् के रूपमें हो गया। पुमस् स् 'उगिदचाम' नुम् अपृक्त-सकारस्य लोपे, सान्त महत् इति दीर्घे पुमान्। पुमांसौ पुमांसः। हे पुमन्। अत्र सम्बुद्धिपरे दीर्घनिषेधः। शसि विभक्तौ पुंसः पुंसा पुम्भ्याम् संयोगान्तलोपमात्रम्। मकारस्य पुनः अनुस्वारे परसवर्णे च) पुंसु (सुप् - विभक्तिपरे) सकारस्य संयोगान्तलोपे मकारस्य अनुस्वारे।

शुक्राचार्य अर्थमें प्रसिद्ध उसनस् शब्दात् सु 'ऋदुशनस् पुरुदंशो अनेहसाञ्च' सूत्र से अनङ् आदेश के ङित् होने से 'ङिच्च' सूत्रसे अन्त्य स् के स्थान में हुआ। अनुबन्धलोपे। नान्त-उपधायाः दीर्घे, हल्ङ्यादिलोपे, प्रातिपदिकान्तनकारस्य

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

त्यनङ्। उशना। उशनसौ। (अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः) हे उशन !, हे उशनन् !, हे उशनः ! हे उशनसौ। उशनोभ्याम्। उशनस्सु। अनेहा। अनेहसौ। हे अनेहः !। वेधाः। वेधसौ। हे वेधः। वेधोभ्याम्।

३५५ अदस औ सुलोपश्च ७। २। १०७। अदस औत् स्यात् सौ परे सुलोपश्च। (३१०) तदोरिति सः। असौ। त्यदाद्यत्वम्। पररूपत्वम्। वृद्धिः। ६ अदसोऽसेर्दादुदो मः ८। २। ८०। अदसोऽसान्तस्य दात् परस्य

लोपे। उशना (भार्गवः कविः) उशनस् + औ = उशनसौ, अशनसः। सम्बोधनमें तीनरूप (वा.) अस्य—उशनस् शब्द के सम्बुद्धिपरे रहते अनङ् आदेश विकल्पसे हो। नकारका लोप भी विकल्प से। हे। उशनस् + सु अत्रसम्बुद्धि-संज्ञा, वार्तिकसे अनङ् होने से उशनन्। न लोप विकल्प से हे उशन। अनङ् नहीं हुआ सकारस्य रु० वि०। हे उशनः। उशनसम् उशनसौ उशनसः। उशनसा उशनोभ्याम् उशनोभिः। उशनसः उशनसोः उशनसाम्। उशनसि उशनसोः उशनःसु उशनस्सु। काल (समय) अर्थ मे अनेहस् शब्दात् सु ऋदुशनस् इति अनङ् अनुबन्धलोपे। नान्त उपधायाः दीर्घे पुनः सवर्णदीर्घे। सुलोपे न लोपे च कृते। अनेहाः अनेहसौ पूर्ववत्। ब्रह्मा अर्थ में वेधस् शब्दात् सु। यह धातु भिन्न असन्त है, अतः 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' इति दीर्घे, सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे रु० वि० वेधाः। सम्बुद्धिमें दीर्घ न होने से हे वेधः। वेधसौ वेधसः। वेधसा, वेधोभ्यां, वेधोभिः। वेधसे वेधोभ्याम्, वेधोभ्यः। वेधसः वेधसोः वेधमाम्, वेधसि वेधसोः। वेधस्सु। इसी प्रकार दिवौकस्, वनौकस् (बन्दर) चन्द्रमस् सुमनस् आदि शब्द का रूप समझें।

(३५५) अदस् शब्द के अन्त्य अल् (वर्ण) के स्थान में औ हो। सु परे, और सुका लोप भी। तदोः सः सावनन्त्योः से दको स होता है। असौ। अदस् शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञायां ततः सुविभक्तिः। सकारस्य 'त्यदादीनाम' अकारे प्राप्ते तं बाधित्वा 'अदस् औ सुलोपश्च' सूत्रेण सकारस्य औकारे। सुलोपे च कृते, 'वृद्धिरेचि सूत्रेण' अ, औ स्थाने औ वृद्धिः। 'तदोः सः' सूत्रेण अनन्त्यदकारस्य सकारे। असौ। अदस् + औ इतिदशयां 'त्यदादीनामः' सकारस्य अत्वे (इसी को त्यदादत्वम् कहा) पररूपत्वम्, अतोगुणे इति पररूपे अद + औ 'वृद्धिरेचि' 'इतिप्राप्तां वृद्धिं बाधित्वा प्रथमयोः पूर्वसवर्णः प्राप्तः, तस्य नादिचि' निषेधे। पुनः वृद्धिः अदौ इति स्थिते। (६) असेः—असन्तस्यः अदसः। अदस् शब्द यदि सान्त न हो तो द से परे अ आ औ कोई भी वर्ण हो ह्रस्व के स्थान में उ हो तथा द को 'म' हो जाय। आन्तरतम्यात् = वाह्यप्रयत्न देखनेपर ह्रस्वके स्थान में 'उ' दीर्घ के स्थानमें 'ऊ' होता है। प्रसङ्ग में द को म औ को बड़ा ऊ,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

उद्तौ, दस्य मश्च। आन्तरतम्याद् ह्रस्वस्य–उः, दीर्घस्य–ऊः। अमू। (१५२) जसः शी। गुणः।

३५७ एत ईद् बहुवचने ८।२।८१। अदसो दात् परस्यैत ईद् दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ। अमी। (३१) पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे। अमुम्। अमू। अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां 'ना''–भावः। ८ न मु ने ८।२।३। "ना"–भावे कर्तव्ये कृते च 'मु'–भावोनासिद्धः।

इसीसूत्र से हुआ। 'अमू' प्रातिपदिकसंज्ञक अदसशब्दात् बहुवचने जस् तस्य स्थाने शी अनुबन्ध लोपे, गुणे 'अदे' इतिस्थितम्।

(७) अदस् शब्द के द से परे एत्=एके स्थान में ईकार हो। द स्थाने म' भवति। बहुवचन अर्थ हो। 'एत ऐ' इत्यनेन अदे इत्यत्र एकारस्य ईकारे। दकारस्यच मकारे अमी। एवम् अन्यत्रापि एत्वे कृते उकारमकारौ भवतः। पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रत्रिपादी (उत्वमत्व) को असिद्धकरके पहले विभक्तिकार्य पश्चात् उत्व मत्व कार्य हो। अदस्+अम् अत्वे पररूपे अद्=अम् अत्र उत्वे मत्वे प्राप्ते च पूर्वत्रासिद्धम् इति कृत्वा विभक्तिकार्यम् 'अमि' पूर्वरूपं कृत्वा तत् उत्वमत्वे क्रियेते। अमुम् अमू, अमून् यहाँ प्रथम पूर्वसवर्णदीर्घ, नत्व, पश्चात् उत्वमत्व। तृतीया एकवचने अदस्+टा अत्वे पररूपे उत्वे मत्वे च कृते अमु+आ। शेषोध्यसखि' घिसंज्ञायाम्, 'आङोना' इति न आदेशे अमुना न च 'ना' आदेशः सपादसप्ताध्यायी, तद्दृष्ट्या त्रिपादी उत्वे मत्वे असिद्धे भवतः। कथं घिसंज्ञा कथं ना आदेशः। इति शङ्कानिवारणाय।

(८) जहाँ ना आदेश कर्तव्ये=करना हो, कृते च=या ना आदेश हो गया हो, मुभावः=उत्व मत्व आदेश असिद्ध नहीं होता। इति निषेधे। अमूभ्याम्= अदस्+भ्याम् अत्वे पररूपे सुपिचेति दीर्घे। ततः उत्वे मत्वे दीर्घस्थाने दीर्घं रु० वि०। अमीभिः=अदस्+भिस् अत्वे पररुपे अङ्गसंज्ञायां बहुवचने झलि एकारे एत ईद्बहुवचने इति ईत्वे दस्थाने मकारे रुत्वविसर्गौ अमीभिः। अत्र अतोभिस् ऐस् न भवति। 'नेदमदसोरकोः' इति निषेधात्। अमुष्मै= अदस्+ङे अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञायाम् सर्वनाम्नः 'ङे' स्थाने स्मै आदेशे 'अदसोः' इति प्रत्ययसकारस्य 'आदेशप्रत्यययोः' इति षत्वे। अमूभ्याम् अमीभ्यः। अमुष्मात्= ङसि स्थाने 'स्मात्' आदेशे। विशेषः। अन्यत् सर्वं पूर्ववत्। अमुष्य=अदस्+ङस् अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञायां 'टाङसि' सूत्रेण ङस् स्थाने 'स्य' आदेशे मुत्वे प्रत्ययसकारस्य षत्वे। अमुयोः=अद+ओस् इति स्थिते 'ओसिच' इति एकारे तस्य स्थाने अय् आदेशे उत्वे मत्वे। अमीषाम्=अदस्+आम् अत्वे पररूपे अङ्गसंज्ञायां आमि सर्वनाम्नः सुट् अनुबन्धलोपे, बहुवचने झलि, एकारे। अदेसाम्। ततः एत

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अमुना । अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयोः २ । अमीषाम् ।

इति हलन्ताः पुंलिङ्गाः

ईद्बहुवचने ईत्वे मत्वे च, षत्वे रूपम् । **अमुष्मिन्** अत्र ङिस्थाने स्मिन् इति विशेषः । अन्यत् सर्वं पूर्ववत् **अमीषु**=अत्वादि कार्यम् पूर्ववत् । अदेसु इति जाते एत **'ईद्बहुवचने'** ईत्वेमत्वेमूर्धन्यादेशे च । इति प्राभाकरी टीकायाँ हलन्तपुलिङ्गाः ।

अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः

३५९ नहो धः ८ । २ । ३४ । नहो हस्य धः स्यात् झलि पदान्ते च । ३६० नहि वृति-वृषि-व्यधि-रुचि-सहि-तनिषु क्वौ ६ । ३ । ११४ । क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः । उपानद् । उपानहौ । उपानत्सु । क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गाः

(३५९) नहधातु के ह को ध हो झलि परे या पदान्त में । (३६०) नहवृत्, वृष, व्यध् रुच् सह, तथा तनधातु क्विप् प्रत्ययान्त हो । इनके पूर्वपद को दीर्घ हो उपसमीपे चरणयोः नह्यति–धत्ते वध्यते इति उपानत् चरणत्राणकर्त्री । उपपूर्वक नह धातोः क्विप् तस्य सर्वापहारलोपे 'नहि वृति' पूर्वपदस्य दीर्घे 'नहोधः' हकारस्य धकारे, धकारस्य जश्त्वेन दकारे तस्य अवसानसंज्ञायां, विकल्पेन चर्त्वे ; उपानद् उपानद, उपानहौं, उपानहः । उपानहि उपानहोः उपनत्सु । अन्य उदाहरण नी+वृत्=नीवृत् (देश, प्रान्त, ग्राम) प्रावृट् (वर्षाऋतु) मर्मावित्—(हृदयविदारक) नीरुक (निस्तेज) । अभिरुक् (चतुर्दिक्) प्रकाशक । दुःखासह = कष्ट सहनेवाला । परीतत्= फैलनेवाला । उष्णिह् (वेद में उपलब्ध छन्द विशेष का नाम 'उ' उपसर्गक स्निहधातुः । 'ऋत्विक्' सूत्र से क्विन् सर्वापहारलोपे । क्विन् प्रत्ययस्य इति कुत्वेन घकारे (महाप्राण सम्बारादि प्रयत्नदर्शनात्) चर्त्वे । प्रातिपदिकसंज्ञा सु=स् तस्य हल्ङ्यादिलोपे उष्णिक् ग् उष्णिहौ उष्णिह । अजादि विभक्तिपरे साधारणं । हलादिविभक्तौ उष्णिह+भ्याम् हकारस्य कुत्वेन घकारे कृते तस्य जश्त्वेन गकारे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

घः । उष्णिक् । उष्णिहौ । उष्णिग्भ्याम् । द्यौः । दिवौ । दिवः । द्युभ्याम् । 'गीः । गिरौ । गिरः । एवं पूः । चतस्रः चतसृणाम् । का । के । काः । सर्वावत् । १ यः सौ ७ । २ । ११० । इदमो दस्य यः । इयम् । त्यदाद्यत्वम् । पररूपत्वम् । टाप् । दश्चेति मः । इमे । इमाः । इमाम् । अनया । (२७७) हलि लोपः, आभ्याम् । आभिः । अस्यै । अस्याः । अनयोः । आसाम् ।

उष्णिग्भ्याम् । उष्णिहि, उष्णिहोः उष्णिक्षु । विभक्तिसकारस्य षत्वे क ष संयोगे क्ष कृते । द्यौः = (आकाशः) दिव्शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञा सु = स् 'दिवः औत्' इति सूत्रेण वस्थाने औकार—अन्तादेशे यणि रु० वि० । औ जस् विभक्तौ सरलं रूपम् । दिवौ दिवः । दिव् + भ्याम् दिवउत् वस्थाने 'उ' आदेशे यणि द्युभ्याम् । अन्यत् सर्वं पुंलिङ्गवत् । गिर् (वाणी) शब्दस्य प्रातिपदिकसंज्ञा सु = स् 'र्वोरुप-धायाः दीर्घः' हल्ङ्यादिलोपे रेफस्य विसर्गे । गीः गिरौ गिरः । गिरं गिरौ गिरः । गिरा गीर्भ्याम् गीर्भिः । गिरः गिरोः गिराम् । गिरि गिरोः गीर्षु । इसी प्रकार पूः पुरौ पुरः पूर्भ्याम् । ग्राम, नगर अर्थ है । त्रिचतुरशब्दयोः 'त्रिचरोः' स्त्रियां तिसृ चतसृ आदेशे जसि शसि विभक्तिपरे । 'अचिरऋतः' इति रेफादेशे रुत्वविसर्गौ । चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृणाम् । अत्र नामि इतिदीर्घो न भवति 'न तिसृचतसृ इति निषेधात् । प्रश्नवाचक किं शब्दात् सु 'किमः क' अजाद्यतः टाप्कृते सवर्णदीर्घे हल्ङ्यादिलोपे । का के = किम् + औ किमः कः टाप् 'औङ् आप.' शी आदेशे गुणे । के, काः । कां, के काः । कया काभ्याम् काभिः । कस्यै काभ्याम् काभ्यः । कस्याः काभ्याम् काभ्यः । कस्याः, कयोः, कासाम् । कस्यां, कयोः कासु ।

(२६१) इदम्शब्द के द् को य हो, स्त्रीलिङ्गमें, सुपरे । इयम् = प्राति-पदिकसंज्ञकात् इदम् शब्दात् सु अत्र अत्वे प्राप्ते ! 'इदमोमः' इति निषेधे । 'यः सौ' दस्थाने य आदेशे । इदम् औ अत्र त्यदादीनामः अकारे । अकारस्य पूर्वेण सह पररूपे । 'दश्च' द स्थाने म कृते स्त्रीलक्षण टाप् अनुबन्धलोपे, सवर्णदीर्घे औ स्थाने 'शी' आदेशे गुणे । इमे । इमाः । इदम् + जस् अत्वे पररूपे दकारस्य मकारे टाप् पूर्ववत् 'प्रथमयोः' पूर्वसवर्णदीर्घे रु० वि० । इमाम् इमे इमाः । इदा + टा अनाप्यकः इद्भागस्य अन् आदेशे, 'आङिचापः' इति एकारे अय्आदेशे । अनया । हलादिविभक्तौ भ्याम् । आदौ 'हलिलोपः' इति इद्भागस्यलोपे । आभ्याम्, आभिः । अस्यै इदा + ङे सर्वनाम्नः स्याट् आगमे आकारस्य ह्रस्वे-वृद्धौ । आभ्याम् आभ्यः । अस्याः = अत्र स्याट् आगम इतिविशेषः आभ्याम् आभ्यः । अनयोः = इदा + औस = अन आदेशः एकत्वे अयादेशश्च विशेषः । आसाम् = इदा + आम् आमि सर्वनाम्नः सुट्कृते 'हलिलोपः इद्भागस्य लोपे । इदा + ङि ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अस्याम्। आसु। त्यदाद्यत्वम् टाप्। स्या। त्ये। स्याः। एवं तद् एतद्। वाक्। वाग्। वाचौ। वाग्भ्याम्। वाक्षु। षष् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। (२०६) 'अप्तृन्निति' दीर्घः। आपः। अपः।

२ अपो भिः ७।४।४८। अपस्तकारो भादौ प्रत्यये। अद्भिः। अद्भ्यः २। अपाम्। अप्सु। दिक्, दिग्। दिशः। दिग्भ्याम् (३४७)

ङेराम्नद्याम्नीभ्यः इति ङिस्थाने आम् आदेशे। स्याट् आगमे इङ्गागस्य लोपे अकारस्य ह्रस्वे। **अस्याम्,** अनयोः आसु। त्यद्+सु दकारस्य अत्वे पररूपे। स्त्री धर्मं विवक्षायां टापि, दीर्घे 'तदो सः' इति तस्थाने 'स' आदेशे सुलोपे। **स्या**। औस्थाने शी आदेशे, गुणे। **त्ये, त्याः**। एवम्=अनेन प्रकारेण तद्=शब्दात् विभक्तिपरे त्यदादि-अकारः। पररूपं। टापि, दीर्घे, 'तदोः' सकृते, सुलोपेच सा। तद्+औ (शी) ते ताः। ताम् ते ताः। तया ताभ्यां, ताभिः। तस्यै, ताभ्यां, ताभ्यः। तस्याः, तयोः, तासाम् तस्यां तयोः तासु। एवम्। एषा एते, एताः। इत्यादि। **वाणी अर्थं वाचक वाच्+सु** तस्य हल्ङयादिलोपे पदान्तचकारस्य कुत्वे, जश्त्वेन गकारे **वाऽवसाने** इति वैकल्पिकचर्त्वे **वाक् वाग्** इति रूपद्वयं सिद्धम्। **वाचौ वाचः**। वाचा, वाग्भ्याम् अत्र कुत्वं जश्त्वमिति विशेषः। हलादि विभक्तौ सर्वत्र तथैव **वाग्भिः**। वाचः वाचोः वचाम्। वाचि, वाचोः वाक्षु। वाच्+सु जश्त्वे 'खरि चेति' चर्त्वेन ककारे 'आदेशप्रत्यययोः इति षत्वे क ख संयोगे क्षकृते रूपम्। (आपः स्त्री, भूम्नि, वार् वारि, सलिलं कमलं जलम्) इति अमरकोषात्। जलवाचक अप्शब्द सदा बहुवचनान्तः **अप्+जस्** 'अप, तृन, तृच् इत्यादिसूत्रेण उपाधायाः अकारस्य दीर्घे सकारस्य रुत्वे विसर्गे, **आपः**, । **अपः**=अत्रदीर्घो न भवति परे सर्वनामस्थानस्य अभावात्।

(१६२) **अप्शब्दस्य तकार-अन्तादेशो भवति।** अप्+शस् अत्र पकारस्य तकार आदेशे **भादिप्रत्ययः भिस्** जश्त्वे। **अद्भिः**। **अद्भ्यः**। **अपाम्** **अप्सु**। अत्र चयो इति द्वितीयाक्षरो न प्रवर्तते पकारस्य जश्त्वेन बकारे कृते तस्य चर्त्वेन पकारः तस्य असिद्धत्वात्। **नेत्रवाचक दिश्ब्दात्** 'ऋत्विग् दधृक्' सूत्रेण क्विन् प्रत्यये सर्वापहारलोपे। ततः सु=स् तस्य लोपे। व्रश्चे षः जश्त्वे **क्विन्प्रत्ययस्य कुत्वे**। अवसाने। पक्षे चर्त्वे **दिक् दिग्** (शब्द, नेत्रपर्याय) **दिक्** शब्दस्तु दिशावाच्यादि-अर्थे रुढ़ः। दिक्, दिग् दिशौ, दिशः। दिशा दिग्भ्याम्। सर्वत्र षत्वं जश्त्वं कुत्वं भवति। अजादिविभक्तौ किमपिकार्यं न भवति। **त्यदादिषु =त्यद् तद् आदि के पूर्व रहते दृश् धातु (तादृश्) से क्विन् तथा कञ् विधान हो।** अन्यत्रापि=**त्यद् आदिके उपपद न रहने पर भी कुत्व हो। क्विन् प्रत्ययो यस्माद दृष्टः तस्यापि कुत्वम्।** यह अर्थ स्वीकार

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि । 'कुत्वम् । दृक्, दृग् । दृशौ । दृग्भ्याम् । त्विट् । त्विड् । त्विषौ । त्विड्भ्याम् (१०५) ससजुषो रुरिति रुत्वम् । सजूः । सजुषौ । सजूर्भ्याम् । आशीः । आशिषौ । आशीर्भ्याम् । असौ । उत्व-मत्वे । अमू । अमूः । अमुया । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः । अमूषाम् । अमुष्याम् । अमूषु ।

इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

किया गया है । तादृक् में क्विन्प्रत्यय दृष्ट हैं, तब केवल दृश्से भी क्विन् तथा कुत्व होगा प्रत्यय-ग्रहण-साार्थ्य से दृक् दृग् अजादिमें कोई कार्य नहीं । दृशौ, दृशः । दृशं, दृशौ, दृशः । हलादि में ष ड ग अवश्य होगा । दृग्भ्याम् दृग्भिः । दृशः दृशोः दृशाम् । दृशि दृशोः दृक्षु । कान्ति=चमक अर्थ में त्विष्+सु षकारस्य जश्त्वेन डकारे सुलोपे । अवसाने चर्त्वे टकार - विकल्पः । त्विट् त्विड् त्विषौ त्विषः । रत्नमुष् शब्दवत् रूपं ज्ञेयम । समानं जुषते सेवते इति सजूः=मित्रम्, साथी अर्थवाचक सजुष+सु हल्ङ्यादि लोपे ससजुषोः रुत्वे अनुबन्धलोपे 'र्वोरुपधायाः' । इति दीर्घे रेफस्य विसर्गे सजूः । सजुषौ सजुषः । सजूषा सजूर्भ्याम् =अत्र रुत्वमुपधादीर्घश्च सजुषः सजुषो, सजुषाम् । सजुषि सजुषोः सजूष्षु सजुष+सुप् रुत्वे उपधायाः दीर्घे विसर्गे 'विसर्जनीयस्य सः' इति विसर्गस्य सकारे प्राप्ते वाशरि वैकल्पिक सकारे । सकारपक्षे (नुम् विसर्जनीय) इति षत्वे, ष्टुत्वेन रूपद्वयं सिद्धम् । आशीर्वादार्थक आशिष्+सु षकारस्य असिद्धत्वात् ससजुषोः इतिरुत्वादिकार्ये उपधाया दीर्घे आशीः आशिषौ आशिषः । आशिषम् । आशिषा अशीर्भ्याम्=अत्र रुत्वे उपधायाः दीर्घे । आशीर्भिः । अशिषे, आशीर्भ्याम् आशीर्भ्यः । आशिषः, आशिषोः आशिषाम् । आशिषि आशिषोः आशीःषु-ष्षु । असौ अदस्+सु पुलिङ्गवत्‌रूपम् 'अदस् औ सुलोपश्च' तदोसः इति एकारस्य सकारे वृद्धिः । अदा पूर्ववत् । औ विभक्तिपरे, वृद्धौ, उत्वे, मत्वे अमू । अदस् +जस् अदा इति कृते पूर्वसवर्णदीर्घे रु० वि० अदाः । उत्वमत्वे । अमूः । अमुम् अमू असः । अदा+आ 'आङिचापः' इति आकारस्य एकारे तत्स्थाने अय् आदेशे उत्वे मत्वे अमुया । अमूभ्याम् अमूभिः अमुष्यै=अदा+ए सर्वनाम्नः स्याट् ह्रस्वश्चकृते वृद्धिः, उत्वे, मत्वे, षत्वे । अमूभ्याम् अमूभ्यः अमुष्याः=अदा+अस् स्याट्, ह्रस्व, सवर्णदीर्घे मुत्वे षत्वे च रूपम् । अमूयोः=अदा+ओस् 'आङिचापः' इति एकारे अय् आदेशे मुत्वे । अमूषाम् अदा+आम् आमि 'सर्वनाम्नः सुट्' आगमे मुत्वे षत्वे अमूषाम् अमुष्याम् अमुयोः अमूषु ।

॥ इति प्राभाकर्याम् हलन्तस्त्रीलिङ्गाः ॥

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

स्वमोर्लुक् । दत्वम् । स्वनडुत्, स्वनडुद् । स्वनडुही । (२५९) चतुरनडुहोरित्याम् । स्वनड्वांहि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । वाः । वारी । वारि । वार्भ्याम् । चत्वारि । किम् । के । कानि । इदम् । इमे । इमानि । (अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः) एनत्, एनद् । एने । एनानि । एनेन । एनयोः २ ।

अनः (शकटं) वहतीति अनड्वान् । शोभनाः अनड्वाहो यस्मिन् कुले तत् स्वनडुद्=सुन्दरगाड़ीबैलवाला कुल । स्वनडुद्+सु 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्रेण सुलोपे 'वसुस्रंसु' इति, हकारस्य दकारे, अवसाने चर्त्वविकल्पे स्वनडुत् स्वनडुद् । स्वनडुह् +औ नपुंसकाच्च इति औ स्थाने 'शी' आदेशे । स्वनडुही स्वदड्वांहि । स्वनडुह् + जस् या शस् तयोःस्थाने शि आदेशे । 'शिसर्वनामस्थानसंज्ञायाम् । चतुरनडुहोः इति अन्त्य अचः उकारस्य आम् आगमे म् इत्, यण्कृते 'नपुंसकस्य झलचः' इति नुमि=न् 'नश्चापदान्तस्य झलि' इति अनुस्वारे । पुनस्तद्वत्=प्रथमाकी तरह द्वितीया विभक्ति का रूप जाने । शेषं पुंववत्=अवशिष्ट रूप पुलिङ्गके समान समझें । जलवाचक वार्+सु स्वमोर्लुक् रेफस्य विसर्गे । वाः । वारी= अत्र औस्थाने शी आदेशे । जस् स्थाने शि । वारि । वारा वार्भ्यां वार्भिः । वारे । वारः । वारि वारोः । वार्षु । चत्वारि = चतुर् शब्दात् जश्शसोः स्थाने शि आदेशे ही चतुरनडुहोः' आम् उकारस्य यणि चत्वारि । शेषं पुलिङ्गवत् । किम् शब्दात् सु तस्य अम् स्वमोर्लुक् । किम् अत्र किमः कः इति न भवति, विभक्तेः अभावात् प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं च न भवति । नलुमताङ्गस्य इति निषेधात् । किम्+औ किमः क आदेशे औस्थाने 'शी' गुणे । के । कानि । जस् शस् विभक्ति स्थाने शि आदेशे किमः क आदेशे कृते, नुमि उपधायाः दीर्घे, शेषं पुलिङ्गवत् रूपम् । इदम् + सु नपुंसक सोर्लुक् । त्यदादीनामः अकारो न भवति । विभक्तिपरे नास्ति । न लुमता निषेधेन प्रत्ययलक्षणमपि न भवति । इदम् + औ, अत्वे पररूपे शी आदेशे गुणे दश्चेति मकारे इमौ, इमानि = अत्रापि अत्वंपररूपं 'जस् शसोः शि' सर्वनामस्थानसंज्ञा, उपधादीर्घे, दकारस्य मकारे, शेषं पुंलिङ्गवत् । (वा) अन्वादेश के प्रसङ्ग में इदम् और एतद् शब्दको एनद् आदेश हो । एनद् इति नपुंसकैकवचने अन्यत्र एन आदेश हो । दिन अर्थ में प्रसिद्ध अहन् शब्द से सु तस्य लुक् 'रोः असुपि' नकारस्य रेफ-आदेशे तस्य विसर्गे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अहः । (२४८) विभाषा ङिश्योः । अह्नी, अहनी । अहानि । ३ अहन् । ८ । २ । ६८ । अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि । (सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः) हे दण्डिन् ! हे दण्डि । दण्डिनी । दण्डीनि । दण्डिना । दण्डिभ्याम् ॥ सुपथि । टेर्लोपः । सुपथी । सुपन्थानि । ऊर्क्,

---

अहः । अहन्+औ तस्य शी आदेशे 'विभाषाङिश्योः' सूत्रेण अन् अकारस्य लोप विकल्पे अह्नी, अहनी । जसि शसिविभक्तौ शि आदेशे नान्तस्य उपधायाः दीर्घे अहानि । अहन्+टा अल्लोपोऽनः' अकारस्य लोपे । अह्ना अहोभ्याम्, अहोभिः ।

(६३) अहन् के नकार को रु हो पदान्त में । अहन्+भ्याम् । स्वादिषु इति पद संज्ञा अहन् नकारस्य रुः, हशि च । उः । अकारस्य उकारस्य च गुणैकादेशे, एवं सर्वत्र हलादि विभक्तौ बोध्यम् । अह्ने अहोभ्याम् अहोभ्यः । अह्नः, अह्नोः, अह्नाम् । अह्नि अहनि, अह्नोः, अहसुः । दण्डो अस्ति अस्मिन् कुले इति दण्डि (कुलं) दण्डिन्+सु सोर्लुक न लोपे (वा) सम्बुद्धि में नपुंसक लिङ्ग शब्दोंके न का लोप हो विकल्प से । हे दण्डिन्+सु का लोप । विकल्प से नकार लोप । हे दण्डि । औ विभक्ति को शी आदेश । दण्डिनी । दण्डीनि = जश्शसोःशि सर्वनामस्थानसंज्ञा उपधादीर्घे । दण्डिना दण्डिभ्याम्, दण्डिभिः इत्यादि । शोभनः पन्थाः मार्गम् अस्ति अस्य । सुपथि । नगरम्, वनम् । सुपथिन्+सु+सोर्लुक् नकारलोपे । सुपथि । सुपथिन्+औ शी आदेशे भसंज्ञा टेः (इन् भागस्य) लोपे । सुपथि । सुपन्थानि जश्शसोः स्थाने शि आदेशे सर्वनाम संज्ञा 'इतोऽत् सर्वनाम' स्थाने इकारस्य अकारे, अतोगुणे पररूपे, थोन्थः आदेशे, उपधादीर्घे । सम्बुद्धौ नकारलोपविकल्पे । हे सुपथि । हे सुपथिन् । अत्वादिकं न भवति सोर्लुक्त्वात् । तेज और बल अर्थ में प्रसिद्ध उर्ज+सु, सोर्लुक्, चोः कुः, इति कुत्वेन गकारे, चर्त्वविकल्पे उर्क् उर्ग् ऊर्जी, उर्न्जि । उर्ज+जस् या शस् तयोः स्थाने शि आदेशे, नपुंसकस्य झलचः' नुम्=न् आगमे । उकारात् परो नुम् अत्र न् र् ज् इति क्रमेण संयोगः । अतः तवर्गस्य अकारेण सह संयोगो नास्ति । श्चुत्वं न भवति । रेफव्यवधानात् । ऊर्जा उर्क्भ्याम् उर्ग्भिः इत्यादि । तत्, यत्, एतत इन शब्दों से स्वमोर्लुक् भवति । द्विवचने । ते, ये, एते । औपरे त्यादीनाम अकारे पररूपे शी आदेशे । गुणे च कृते सिध्यन्ति । बहुवचने जश् शसोः शी सर्वनामस्थानम् । अत्वं, पररूपं नुम् उपधादीर्घश्च, तानि, यानि, एतानि च सिध्यन्ति । शेषरूपाणि पुलिङ्गवत् बोध्यानि । गोपूर्वक अञ्च धातु का गति पूजा अर्थ भेद से रूप बहुत होते हैं । गत्यर्थक रूप दिये जाते हैं क्विन् प्रत्ययान्त, गोअञ्च+सु 'अनिदितां हल' सूत्रेण नकार लोपे, सोर्लुक्, अवङ्स्फोटायनस्येति ओकारस्थाने अवङ्आदेशे ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ऊर्ग् । ऊर्जी । ऊर्न्जि । नरजानां संयोगः । तत् । ते । तानि । यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतानि । गवाक् । गोची । गवाञ्चि । पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाग्भ्याम् । शकृत् । शकृती । शकृन्ति । ददत् । ददती ।

४ वा नपुंसकस्य ७ । १ । ७९ । अभ्यस्तात् परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति । तुदत् । ३६५ आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० । अवर्णान्तादङ्गात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य

सवर्णदीर्घे गवाच् इति स्थिते (झलांजश् झशि) चकारस्य जकारे क्विन् प्रत्ययस्य कुत्वे अवसाने चर्त्वविकल्पे गवाक् गवाग् अवङ विकल्पे सर्वत्रविभाषा गोः प्रकृतिभावविकल्पे गोअक, गोअग् । पक्षे 'एङः पदान्तादति' पूर्वरूपे गोऽक् गोऽग् । पूजापक्ष में (नाञ्चेः पूजायां) नकार लोपस्य निषेधे । गवाङ् गोअङ् गोऽङ् । (५२७) रूप सब मिलकर होते हैं । गो अञ्च+औ तत्स्थाने शी आदेशे भसंज्ञा 'अचः इति अकारस्य लोपे गोचि गवाञ्चि । जश्शसोः शि सर्वनामस्थानम्, ओकारस्य अवङ्, सवर्णदीर्घे अनिदितां नलोपे झलन्तलक्षण नुम्= नकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे पुनस्तद्वत् । द्वितीया कारक में भी वैसा ही रूप । टाविभक्तौ भसंज्ञा अनिदितामिति न लोपे । अचः इति अकारलोपे गोचा, गवाभ्याम्, भ्यामादिहलादि विभक्तौ भसंज्ञा न भवति । अतः स्वादिषु इति पदसंज्ञा । अवङ् आदेशे, सवर्णदीर्घे, कुत्वं जश्त्वं गवाग्भिः । अजादि विभक्तौ नुम् लोपे अकारलोपे च कृते । गोचे, गवाग्भ्याम् गवाग्भ्यः । गोचः गोचोः गोचाम् । गोचि गोचोः गवाक्षु । गोअच्+सु न लोपे कुत्वे चर्त्वे, सकारस्य षत्वे, क ष संयोगे क्ष गवाक्षु । शकृत्=पुरीषपर्यायः, मल इत्यर्थः । शकृत्+सु तस्य लुक्, जश्त्वे, चर्त्वविकल्पे, औस्थाने शी, शकृती । शकृन्ति । जस् शस् स्थाने शि सर्वनामस्थाने झलन्त लक्षणनुम्=न, अनुस्वारपरसवर्णे द्वितीया का रूप प्रथमा के तुल्य । शकृता, शकृद्भ्याम् शकृद्भिः दान की निरन्तर क्रिया कर्ता अर्थ में ददत्+सु स्वमोर्लुक् औस्थाने शी आदेशे । ददती ।

(४) अभ्यस्तसंज्ञकशब्द से परे जो शतृ=अत्प्रत्यय वह हो अन्त में ऐसे नपुंसकलिंग शब्द को नुम् विकल्प । सर्वनामस्थानपरे । ददत् जस् तत्स्थाने शि 'वा नपुंसकस्य' विकल्प नुम् ददन्ति, ददति । ददता, ददद्भ्याम् इत्यादि । निरन्तर व्यथित पीड़ावान् कर्ता अर्थ में तुदत्+सु सोर्लुक् ।

(३६५) अवर्णान्त अङ्गसे शतृप्रत्ययका अवयव अत् तदन्तशब्द, अङ्गसंज्ञकको नुम् विकल्प से हो, शी और नदीसंज्ञकपरे । आत्, शी, नद्योः, नुम् । तुदत्+औ नपुंसकात् च औस्थाने शी आच्छिन्नद्योर्नुम्, अवर्णान्त अङ्ग तुद

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नुम् वा शीनद्योः तुदन्ती तुदती। तुदन्ति। ६ शप्-श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१। शप्श्यनोरात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः। पचन्ती। पचन्ति। दीव्यत्। दीव्यन्ती। दीव्यन्ति। धनुः। धनुषी। (३४२) सान्तेति दीर्घः। (३५२) नुम्विसर्जनीयेति षः। धनूंषि। धनुषा। धनुर्भ्याम्। एवं चक्षुर्हविरादयः। पयः। पयसी। पयांसि। पयसा। पयोभ्याम्। सुपुम्।

इति, तस्मात् परः शतृ अवयवः तकारः, शीपरे नुम्विकल्पः। तुदन्ती पक्षे तुदती, तुदन्ति। जश्शसोः शि झलन्तलक्षणनुम्। तुदता तुदद्भ्याम् तुदद्भिः। तुदति, तुदतोः, तुदत्सु।

(६) शप् तथा श्यन्के आत्=अकारसे परे शतुरवयवः=शतृप्रत्ययका अंश तकार; हो अन्तमें उसे नित्य नुम् हो। निरन्तर पाकक्रियावाला अर्थ पच पचन्ती= पचत्+औ तत् स्थाने 'शी'। शपो अकारः पच इत्यत्र अ, तस्मात् परः शतृप्रत्यस्य अवयवस्य पचत् इत्यस्य नित्यं नुम् पचन्ती पचन्ति। तुदन्तिवत् रूपम्। विजयकी इच्छा, क्रीडा, स्तुति। हर्ष, तेज, गति की निरन्तर क्रियावाला दीव्यत्। दिव्यत्+ औ तत्स्थाने शी शप्श्यनोः नित्यं नुम्। दीव्यती दिव्यन्ति। नपुंसकस्य झलचः इति नुम्। धनुष्+सु स्वमोर्लुक् रुत्व प्रति षत्वस्य असिद्धत्वात् सकारस्य रुत्वे विसर्गे धनुः धनुषी। औस्थाने शी आदेशः। धनुष्+जस्। शि। शि सर्वनामस्थानम् झलन्तलक्षणनुम् 'सान्तमहत् संयोगस्य' इति उपधादीर्घे। नुम्विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि इति नुम्स्थानिक अनुस्वारस्य व्यवधानेऽपि मूर्धन्यादेशः, धनूंषि। धनुर्भ्याम्=अत्र षकारस्य असिद्धत्वात् सकारस्य रुत्वे हलादिविभक्तौ एवमेव रुत्वं बोध्यम्। धनुषि धनुषोः धनुःषु। इसी प्रकार नेत्रअर्थमें चक्षुः चक्षुषी चक्षूंषि। चक्षुषा चक्षूर्भ्याम् इत्यादि। घृत या हवनीय अर्थमें। हविः। हविषी हवींषि। हविषा हविर्भ्याम्। जन्मअर्थसे जनुः जनुषी जनूंषि। दुग्ध या जलअर्थमें पयस्+सु तस्य लुक् सकारस्य रुत्वे विसर्गे। पयः औस्थाने शी। पयसी। पयांसि जस्शसोःशि सर्वनामस्थाने 'नपुंसकस्य झलचः' इतिनुम् सान्तमहतः इतिदीर्घे नश्चापदान्तस्य झलि इत्यनुस्वारे। पयोभ्याम्=इत्यत्र भ्यांम्परे पूर्वस्य पदसंज्ञा- पदान्तसकारस्य रुत्वे उत्वे गुणे च। पयोभिः पयसः पयसोः पयसाम् पयसि पयसोः पयःसु। सकारस्य विसर्गे वाशरि इतिविकल्पेन विसर्गस्य सकारे पयस्सु। इसीप्रकार वयस, तेजस् यशस् मनस् ओजस् ओकस्, आदिशब्दों को समझे। सुपूज्याः पुमांसो यस्य कुलस्य, जनपदस्य वा तत्कुलं। सुपुम् सुपुंस्+सु सोर्लुकि सकारस्य संयोगान्तलोपे। अनुस्वारो असिद्धः। सुपुम्। औस्थाने शी। सुपुंसी। सुपुमांसि= सुपुंस्+जस् जस्शसोः शि आदिकार्ये। सुपुंसा, सुपुंभ्याम्। अदस्सु स्वमोर्लुक् सकारस्य रुत्वे वि० अदः। अत्र सान्तत्वात् मुनत्वम्। विभक्तिपरे अभावात्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सुपुंसी । सुपुमांसि । अदः । विभक्तिकार्यम् । उत्व-मत्वे । अमू । अमूनि । शेषं पुंवत् ।

इति हलन्ताः नपुंसकलिङ्गाः ।

इति षड्लिङ्गः

न त्यदाद्यत्वम् । **विभक्तिकार्यम्**=विभक्ति को मानकर प्राप्तकार्य पहले होता है । पश्चात् उत्व मत्व भी अदस्+औ=शी आदेशे, अत्वे पररूपे, गुणे । अदे इति दशायाम् उत्वे मत्वे अम् अमुमू **अमूनि**=जशसोः अत्वं पररूप अजन्तलक्षणनुम् । उपधादीर्घे, उत्वे मत्वे च शेषरूपं पुंलिङ्ग की तरह सिद्ध होते हैं ।

इति हलन्त- नपुंसकलिङ्गाः ।

अथाऽव्ययप्रकरणम्

३६७ स्वरादि-निपातमव्ययम् १ । १ । ३७ । स्वरादयो निपाताश्चाऽव्ययसंज्ञाः स्युः । १—स्वर । २—अन्तर । ३—प्रातस् । ४—पुनर् । ५—सनुतर् । ६—उच्चैस् । ७—नीचैस् । ८—शनैस् । ९—ऋधक् । १०—ऋते । ११—युगपत् ।

यन्नव्येति तदव्यम् । व्यय=विकार ह्रासवृद्धि जिसमें न हो उसे अव्यय कहते हैं । जिसशब्द पर तीनों लिङ्ग, सभी वचन सभी कारक का कोई प्रभावरूप विकार (वृद्धि या ह्रास) का असर न पड़े उसको प्रातिपदिकसंज्ञक अव्यय कहते हैं, लिङ्गसङ्ख्याकारकानन्वायत्वे सति प्रातिपदिकसंज्ञकत्वमव्ययत्वम् इसको पदमसंज्ञा भी होती है । विकारीपदपूर्व में दरशाये गये । जहाँ सुप्का और लिङ्गबोधन टाप् ङीप् आदिका लोपमात्र हो, लिङ्ग, सङ्ख्या, कारक की स्पष्ट प्रतीति प्रायः न हो उसे अव्यय कहते हैं ।

(७) स्वरादि=स्वरशब्दसे माङ्शब्दतक, निपात् और (चवा) से आकृतिगणतक, सभीशब्द अव्ययसंज्ञक हों । जिसका फल अव्ययसंज्ञकशब्दसे आप् और सुप्का लोप होना, स्वरादिके सभीशब्दोंकी गणना करते हैं, जिनका क्रमशः अर्थ दिया जा रहा है । १—स्वर्गे, परलोके वा स्वशब्दः प्रसिद्धः । २—मध्य 'या' भीतर ३—प्रत्यूषः=प्रातःकाल । ४=अप्रथमविशेष, द्वितीयबारप्रवृत्ति । ५—अन्तर्ध्यान=

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१२–आरात् । १३–पृथक् । १४–ह्यस् । १५–श्वस् । १६–दिवा । १७–रात्रौ । १८–सायम् । १९–चिरम् । २०–मनाक् । २१–ईषत् । २२–जोषम् । २३–तूष्णीम् । २४–बहिस् । २५–अवस् । २६–अधस् । २७–समया । २८–निकषा । २९–स्वयम् । ३०–वृथा । ३१–नक्तम् । ३२–न । ३३–नञ् । ३४–हेतौ । ३५–इद्धा । ३६–अद्धा । ३७–सामि । ३८–वत् । ३९–ब्राह्मणवत् । ४०–क्षत्रियवत् । ४१–सना । ४२–सनत् । ४३–सनात् । ४४–उपधा । ४५–तिरस् । ४६–अन्तरा । ४७–अन्तरेण । ४८–ज्योक् । ४९–कम् । ५०–शम् । ५१–सहसा । ५२–विना । ५३–नाना । ५४–स्वस्ति । ५५–स्वधा । ५६–अलम् । ५७–वषट् । ५८–श्रौषट् । ५९–वौषट् । ६०–अन्यत् । ६१–अस्ति । ६२–उपांशु । ६३–क्षमा । ६४–विहायसा । ६५–

छिपजाना । ६– ऊँचाविशाल । ७–अल्प या नीचा । ८–दीर्घसूत्री=मन्दता, धीरे । ९–शप्त । १०–वर्जनम्=विना ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः । ऋत के योगमें पञ्चमी विभक्ति देखी जाती है । ११–एकसाथ, एककाल में १२–आरात्=दूरसमीयोः । १३–विच्छेद भिन्न, अलग । १४–अतीते अह्नि अतीताह्नि । कल वीता हुआ १५–आगामीकाल द्वितीय दिन । १६–दिने । १७–निशि=रात्रिमें १८–निशामुखम् । सूर्यास्तकाल । १९–बहुकाल=विलम्ब । २०–२१–अल्पे=थोड़ा । २२–चुप-चाप=जोषम्सुखे, मौने च । २३–मौन । २४–वाह्य=वाहर । २५–आत्मना=अपने आप । ३०–व्यर्थे । ३१–रात्रौ, निषेधे । ३४–कारणम्; हेतौ, निमित्तेच । ३५–प्राकश्य स्पष्ट । ३६-स्फुट=अवधारण । ३७–सामि अर्धे जुगुप्सितेच आधा या घृणाअर्थं । ३८–वत्प्रत्यय तद्धित है तुल्य अर्थ में प्रसिद्ध है, जैसे ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत्=ब्राह्मणके तुल्य, क्षत्रियके तुल्य ४१–नित्यपर्यायः । ४४–भेदे । ४५–छिपना=अन्तर्धिः तिर्यक् परिभव, तिरस्कार । ४६–मध्य बिना अर्थ । ४७–वर्जने=विना । ४८–कालाधिक्ये, प्रश्ने, शीघ्रे सम्प्रत्यर्थे प्रश्न, सीखना, अल्प समय, या अधिक समय । ४९–वारिमूर्धनिन्दासुखेषु सुख, निन्दा, जल, मूर्धा । ५०–सुखे । ५१–अकस्मात् विचार, आकस्मिक-विमर्शयोः । ५२–वर्जने विना । ५३–अनेक तथा बिना । ५४–मङ्गल, कल्याण । ५५–पितृदान । ५६–निषेध भूषण, पर्याप्त, शक्यवारण । ५७–हविर्दाने, देवता उद्देश्यक दान । ६०–अन्यार्थ । ६१–है, सत्ता, उपस्थिति । ६२–एकान्त, अप्रकट, उच्चारण रहस्य । ६३–क्षमा, क्षान्ति ६४–आकाश अर्थे । ६५–रात । ६६–मिथ्या, वितथ, झूठ । ६८–व्यर्थे । ६९–प्रथम, चिरातीते प्राचीन काले भविष्य, आसन्ने । ७०–परस्पर, मिलकर, सहअर्थ, आपस में । ७२–बहुधा, बाहुल्यम्, अक्सर । ७३–पुनः अर्थ बारम्बार । ६४–समान काल, बिल्कुल, ऊर्ध्वं अर्थ ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दोषा। ६६–मृषा। ६७–मिथ्या। ६८–मुधा। ६९–पुरा। ७०–मिथो। ७१–मिथस्। ७२–प्रायस्। ७३–मुहुस्। ७४–प्रवाहुकम्। (७५–प्रवाहिका) ७६–आर्यहलम्। ७७–अभीक्ष्णम्। ७८–साकम्। ७९–सार्धम्। ८०–नमस्। ८१–हिरुक्। ८२–धिक्। ८३–अथ। ८४–अम्। ८५–आम्। ८६–प्रताम्। ८७–प्रशान्। ८८–मा। ८९–माङ्। (आकृतिगणोऽयम्) ९०–च। ९१–वा। ९२–ह। ९३–अह। ९४–एव। ९५–एवम्। ९६–नूनम्। ९७–शश्वत्। ९८–युगपत्। ९९–भूयस्। १००–कूपत्। १०१–सूपत्। १०२–कुवित्। १०३–नेत्। १०४–चेत्। १०५–चण्। १०६–यत्र। १०७–कच्चित्। १०८–

७६–बलात्कार अर्थ=प्रतिबन्ध। ७७–पुनः पुनः प्रवृत्ति, निरन्तर ७८–सहार्थे=साथ-साथ ८०–नमस्कार=नतिः। ८१–वर्जन=बिना। ८२–धिक्कार=निन्दा भर्त्सन। ८३–अथ, आरम्भ, 'अनन्तर, मङ्गल, प्रश्न, अधिकार प्रतिज्ञा, सम्पूर्ण। ८४–स्वीकृति, शीघ्रता, अल्प, हाँ, अङ्गीकार। ८४–ग्लानि। ८७–समान अर्थ, समान विस्तार। ८८–निषेध, आशंका, ऐश्वरादिः आकृति गण हैं। आकृति = स्वरूप को पहचानकर गण का अनुमान करे। इसलिए अन्य भी स्वरादि गण में जानें जाँय। यथा—कामम्, स्वच्छन्दता, यथेच्छ, प्रकामम्, अतिशय, अधिक। भूयः, पुनः फिर साम्प्रतम्, न्याय, उचित इस समय, परम किन्तु परन्तु, साक्षात, समक्ष, प्रत्यक्ष, दर्शन, साचि, तिर्यक् अर्थ सत्यम्, अर्ध स्वीकृत। मक्षु, आशु, शीघ्र, सम्वत्, वर्ष, अवश्यम्, निश्चय, ओम् स्वीकार, ब्रह्म, भूः पृथ्वी भुवः, अन्तरिक्ष, झटिति, झंगिति, तरषा। ये शीघ्र अर्थ में प्रसिद्ध हैं। सुष्ठु शोभन, प्रशंसा, दुष्ठु, निकृष्ठ, सु पूजा उ कुत्सित, निन्दित, इषद् अर्थ, अञ्जसा, सत्य ज्ञान शीघ्र अर्थ, मिथुन दो, अस्तम् विनाश, अदर्शन (स्थाने युक्ते) वरम् श्रेष्ठः इषत्, उत्कर्षः सुदि शुक्लपक्ष वदि कृष्णपक्ष। च आदि निपातोंका निर्देश किये जाते हैं, जिनकी अव्यय संज्ञा कही गयी है।

१–च शब्द का समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर योग, समाहर अर्थ है। २–विकल्प, उपमा, इव, समुच्चय अर्थ है। ३–प्रसिद्ध ४-५–पूजायाम् ६४–ही, अवधारण अनवक्लृप्ति, निश्चय। ६–उक्तपरामर्श (कही बातों पर विचार) ७–निश्चय तथ तर्क। ६७–निरन्तर पुनः पुनः नित्य सहार्थ। ६८–एककाल में। ६६–पुनः अर्थ आधिक्य। ११०–प्रश्न, प्रशंसा। १०१–अधिक प्रशंसा, भूरि अर्थ। १०२–शंका, प्रतिषेध, विचार, समुच्चय, अन्यथा=नहीं तो। १०३–यदि। १०४–चेत् अर्थ यदि क्वचित् इष्ट प्रश्न। १६अनवक्लृप्ति। अमर्ष गर्हा आश्चर्य। १७–अभीष्ट प्रश्न १८–निषेध पूर्वक आरम्भ। १६–हर्ष विषाद, अनुकम्पा वाक्यआरम्भ। २६–

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नह। १९-हन्त। २०-माकिः। २१-माकिम्। २२-नकिः। २३-नकिम्। २४-माङ्। २५-नञ्। २६-यावत्। २७-तावत्। २८-त्वै। (२९-न्वै)। ३०-द्वै। ३१-रै। ३२-श्रौषट्। ३३-वौषट्। ३४-स्वाहा। ३५-स्वधा। ३६-वषट्। ३७-तुम्। तथाहि। ३८-खलु। ३९-किल। ४०-अथो। १३२-अथ। ४२-सुष्ठु। ४३-स्म। ४४-आदह। (+ उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च १३६-अवदत्तम्। ४६-अहंयुः। ४७-अस्तीक्षीरा। ४८-अ। १४०-आ। ५०-इ। ५१-ई। ५२-उ। ५३-ऊ। ५४-ए। ५५-ऐ। ५६-ओ। ५७-औ। ५८-पशु। ५९-शुकम्। ६०-यथाकथाच। ६१-पाट्। १६२-

---

वर्जन। २४-निषेध। २६-जितना। २७-उतना, साकल्प, अवधिमान, अवधारण। २८-विशेष वितर्क। २९-तर्क। ३०-दान अनादर। ३२-देवतादान। ३५-पितृदान। ३७-तुम तुङ्कार। गुरुं हूँकृत्य तूँकृत्य। ३७-निदर्शन, तोभी। ३८-निषेध वाक्यालंकार, निश्चय। ३९-प्रसिद्धि, वार्ता, अलीक। ४०-मङ्गल, अनन्तर, आरम्भ सम्पूर्ण, अधिकार, प्रतिज्ञा, समुच्चय। ४२-प्रशंसा। ४३-भूतकाल पादपूर्ति। ४४-उपक्रम, हिंसा, कुत्सन, निन्दा, (ग० सू०) उपसर्ग, यदि सुबन्त-तिङन्त के सदृश हों या स्वरों के सदृश हों, वे भी चादिगण के अन्तर्गत होकर निपातसंज्ञक तथा अव्ययसंज्ञक होते हैं। इसके तीन उदाहरण १—अवदत्तम्। यहाँ अवशब्द का उपसर्ग के समान आकार होने पर भी वह साक्षात् उपसर्ग नहीं है, किन्तु उपसर्ग का प्रतिरूपक = समानरूप वाला है। उसकी अव्यय संज्ञा हुई। यदि साक्षात् उपसर्ग होता तब 'अच उपसर्गात्त' से तकार हो जाता। अवत्तम् बनता। तथा चोक्तम् अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि। सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते। ४६-अहम् शब्द युष्मद् शब्द से बना। प्रथमा के एकवचन (अहम्) यह विभक्ति के सदृश अहंकार अर्थ में प्रसिद्ध है। 'अह शुभमोर्युस्' से युस होकर अहंयुः (अहंकारी)। ४७-अस्ति, यह तिङन्तपद के सदृश शब्द है। इसे चादिमानकर निपातसंज्ञा अव्ययसंज्ञा हुई। यह इसका फल है। अस्तिका क्षीर के साथ समास। स्वरप्रतिरुपक (सदृश) उदाहरण। ४८ अ-सम्बोधन, तिरस्कार, निषेध अर्थ है। ४९-वाक्य तथा स्मरण अर्थ में अङित् होनेपर निपातसंज्ञा होती है। ५०-सम्बोधन जुगुप्सा आश्चर्य। इ, उ, ए, ऐ, ओ औ, का सम्बोधन अर्थ है। ५८-सम्यक्। ५९-शीघ्र। ६०-तिरस्कार = येनकेन प्रकारेण। ६१-सम्बोधन। ६८-हिंसा प्रतिकूलप दपूर्ति। ६९-नाना = विविध। ६०-अकस्मात्, युगपत् ६१-कुत्सा घृणा। ६२-इतऽपि = इसलिए। ये चादिगण भी आकृतिगण हैं। स्वरूप से गण का अनुमान — यथा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्याट्। ६३-अङ्ग। ६४-है। ६५-हे। ६६-भोः। ६७-अये। ६८-द्य। ६९-विषु। ७०-एकपदे। ७०-युत्। ७१-आतः। चादिराकृतिगणः।

३६८ तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः १।१।३८ स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात्। (परिगणनं कर्तव्यम्) तसिलादयः प्राक् पाशपः। शस् प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः। अम्। आम्। कृत्वोऽर्थाः तसि-वती। ना-नाञौ। एतदन्तमप्यव्ययम्। अतः, इत्यादि। ९ कृन्मेजन्तः १।१।३९। कृद् यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात्। स्मारं। जीवसे, पिबध्यै। ३७० क्त्वा तोसुन्-कसुनः

यत् तद् हेतौ, अहोस्वित्=विकल्प व समानता, सीमा, सर्वतोभावे। शुक, अतिशय, अनुक्=वितर्क। शक्त=अन्तःकरण, अभिमुख, च=पादपूर्ति इव, अर्थ दृष्टया आनन्द, पुण्य, चटु चाटु, प्रियवाक्य चापलूसी। हुं=भर्त्सन। इव =समानता, अद्यत्वे इदानीम् आजकल, असकृत=वारम्बार सकृत=एकबारम्, अमुत्र=परलोक, सत्वरं=शीघ्र अहो=आश्चर्ये उताहो, विकल्पे, किमुत प्रसह्य, हठात्, बलात्। किंच इतोऽधिकम् इति।

(८) असर्वविभक्तिः तद्धित=जिससे सभी विभक्तियां नहीं उत्पन्न होतीं वह तद्धितान्त, अव्ययसंज्ञक हो। ऐसे तद्धितान्त शब्दों की गणना=परिसङ्ख्या करनी चाहिए। तसिलादयः=पञ्चम्यास्तसिल् सूत्र से लेकर याप्ये पाशप् सूत्रतक। शस्प्रभृतयः='बह्वल्पार्थाच्छस्' सूत्र से लेकर 'समासान्ताः' सूत्र 'तक' कहे गये सभी प्रत्यय, जिसके अन्तमें हो उसकी अव्ययसंज्ञा हो। तथा अम्= अमुच्छन्दस्। आम्='किमेत्तिङ्' से विहित आम् प्रत्यय कृत्वोर्थाः=क्रिया की अभ्यावृत्ति। पुनः पुनः गणना अर्थ में कृत्वसुच् सुच् आदि प्रत्यय, तसिवती= 'तसिश्च सूत्र' से तस् प्रत्यय, तेन 'तुल्यं क्रिया चेद्वति तत्र तस्येव' सूत्र से कृत वतिप्रत्यय, तथा नानार्थतद्धितप्रत्यय जिनके अन्तमें हों वे शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं। जैसे—इत्थम्, अत्र, क्व, अल्पशः, पचतितराम् पञ्चकृत्वः इत्यादि अव्ययसंज्ञक माने जाते हैं। (९) कृदन्त के प्रत्ययों में जो मान्त तथा एजन्त, मकारान्त तथा एकारान्त प्रत्यय हों। स्मारं स्मारम्। यह मकारान्त कृदन्त होने से अव्ययसंज्ञक। बार-बार स्मरणकर्ता। एजन्तका जीवसे, जीवधातु से प्रत्यय तथा 'पा' धातु से शध्यै प्रत्यय पिबध्यै दोनों को एजन्त मानकर अव्यय संज्ञा। ये वैदिक प्रयोग हैं। (३७०) क्त्वाप्रत्यय तोसुन् तथा कसुन् प्रत्यय जिनके अन्त में हों, उनकी अव्ययसंज्ञा। वे प्रत्यय कृत् ही होने चाहिएँ। क्त्वाका उदाहरण कृत्वा, पित्वा, भुक्त्वा इत्यादि हैं। ईश्वरे तोसुन्कसुनौ सूत्र से

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१।१।४० एतदन्तमव्ययम् । क्त्वा । उदेतोः । विसृपः । १ अव्ययीभावश्च १।१।४१। अधिहरि। २ अव्ययादाप्सुपः २।२।८२। अव्ययाद् विहितस्यापः सुपश्चलुक्। तत्र शालायाम्।

(अव्ययलक्षणम्)

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥ इति॥
वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा॥

(उदाहरणम्)

वगाहः। अवगाहः। पिधानम्, अपिधानम्। इत्यव्ययानि।

इति पूर्वार्द्धम्

तोसुन्। उदेतोः कसुन् होने पर विसृपः। जिसका उदेतुम् = उदय होना। विसर्पितुम् = फैलना अर्थ है।

(१) अव्ययीभाव समास भी अव्ययसंज्ञक हो। अधिहरि में अव्ययीभाव समास होने से अव्ययसंज्ञा हुई (हरि में अर्थ है) प्रतिदिन, अनुरूप यथाशक्ति, आदि अनेक उदाहरण हैं। (२) अव्ययसंज्ञक से विधान किया गया, लिङ्गबोधक टाप्प्रत्यय और सङ्ख्या तथा कारकका बोधक सुप् प्रत्ययका लोप हो। यथा—(तत्रशालायां) यहाँ सप्तमी अर्थ में त्रल् प्रत्यय करके, तत्र बना उसकी 'तद्धितश्चासर्व विभक्तिः' इति अव्ययसंज्ञा, शलायाम् के योग में टाप् तत्रा। उस टाप् का लोप हो गया। सदृशं त्रिषुलिङ्गेषु - तीनोंलिङ्गों में सदृश = समान हो। सभी विभक्तियों में एकरूप हो, सभी बचनों में समान रूप रहे, यन्नव्येति जिसमें विकार न हो, बदले नहीं, जैसा का तैसा रहे, उसे अव्यय कहते हैं। यथानाम तथागुणः।

अव्यय के प्रसङ्ग में भागुरि आचार्य का मत है कि वे अवाप्योः = अव, अपि, उपसर्गयोः = उपसर्गों का अल्लोपम् = अकारलोप वष्टि - चाहते हैं। तथा हलन्त शब्दों से आपम् = स्त्रीलिङ्गबोधक टाप्प्रत्यय भी चाहते हैं। जैसे वाचा, निशा, दिशा। यहाँ वाच् निश् दिश् हलन्त शब्द है। पाणिनिशास्त्र में हलन्त शब्दों से टाप् विधान का नियम नहीं है। किन्तु भागुरिमत से टाप् होता है। वगाह—यह स्नानार्थक शब्द है, गोता लगाना। पिधान = ढकना। अकार लोप न होनेपर अवगाहः, अपिधानं भी बनता है। इत्यव्ययप्रकरणम्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

[अथोत्तरार्द्धम्]

अथ तिङन्ते भ्वादयः

लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् ।

अथ भ्वादिगणप्रकरणम्

प्रसङ्गसङ्गतिः—पूर्वप्रकरणसे परप्रकरणका सम्बन्ध क्या है ? साकाङ्क्षपदका समुदाय ही वाक्य है। पद क्या है ? इसपर सुप्तिङन्तंपदं सूत्र स्मरणका विषय बना। सुबन्तपद – जिसमें प्रातिपदिक का अर्थ स्वादिप्रत्ययका अर्थ तथा मिलित अर्थ प्रधान रहता है, वे सब कारक हैं। उसका प्रवचन हो गया। कारक की सफलता क्रिया में अन्वय (सम्बन्ध) से है, **क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्**। अतः क्रियापदबोधक प्रकरणका प्रारम्भ अवसरसङ्गत है। **कर्मप्रधानविश्व करि राखा।** सारा संसार क्रियाप्रधान है। यथा—पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, गच्छन्, अश्नन् स्वपन्, श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्नपि। ये क्रियारूप तिङन्त है। 'एकतिङ्प्रधानवाक्यम्' सिद्धान्त के अनुसार एकतिङन्त क्रियाप्रधानवाक्य होना आवश्यक है। इस प्रकार क्रियाबोधक तिङन्तपद का ज्ञान होना क्रम प्राप्त है। तिङन्तपद 'भवति', पचति आदिमें भू, पच धातु – प्रकृति है। (दधाति क्रिया-रूपम् अर्थम् इति धातुः) क्रिया का वाचक अर्थ कहने वाला धातु है **क्रिया-वाचिनो भ्वादयः धातुसंज्ञकाः**। उससे तिङ्प्रत्यय हो। जो कर्ता, कर्म, सङ्ख्या, काल, चार अर्थ कहता है, जिसका उपदेश (व्याख्यान) आगे किया जा रहा है। भू आदि धातुओं का क्रिया ही अर्थ है। **या-या क्रिया, सा-सा फलवती भवति।** जो-जो क्रियाएँ हैं, वे **सौभाग्यवती** स्त्री की तरह फलवाली हैं। जैसे – पठन् क्रिया का स्पष्ट उच्चारण फल है पच्धातु का पाक् (ओदन) विक्लित्ति भात फल है। भोजन-गलविलाधःसंयोग (तृप्ति) फल। यज् धातु का सत्सङ्ग, पूजा, दान, स्वर्गप्राप्ति फल है, एधन क्रिया का वृद्धिफल इत्यादि। ऐसे (फलजनक) क्रियावाचक धातु से तिङ्प्रत्यय होता है।

तिङ् आदेश है उसका आदेशी (स्थानी) कोई होना चाहिए। वह कौन है, तब बोले लट् लिट् इत्यादि ये १० लकार ही स्थानी हैं। इनके स्थानमें तिप्तस्झि आदि आदेश होते हैं। इन दसों लकारों का क्रमिक उच्चारण अच् (अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ) के क्रमानुसार है। इसी क्रम से अन्तिम चार ङित्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

३७३ लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः २ । ३ । ६९ । लकाराः

लकारों को जाने । **एषु पञ्चमः** = इन लकारों में पाँचवाँ लेट्लकार केवल **छन्दोमात्रगोचरः** = वेद में ही उपयोगी है, लोक में नहीं । लकार क्यों कहते हैं ल् अक्षर का सब में प्राधान्य होने से ये लकार कहलाये । इन लकारों से क्रिया, काल (वर्तमाने लट्) कर्ता, कर्म, सङ्ख्या, अर्थ का मुख्य, गौण रूप से या विशेष्य विशेषण सम्बन्ध से ज्ञान होता है ।, सभी लकार यथायोग्य वर्तमानकाल, भूत-परोक्ष, अनद्यतन, (बीते हुए अर्धरात्रि से पूर्वकाल) आगामी अर्धरात्रि से परे भविष्यत्काल । सामान्यभविष्यत् जो अद्यतन भविष्य या अनद्यतन भविष्य के बन्धन से मुक्त हो । आज्ञा, प्रेरणा, आशीर्वाद, अनद्यतन, भूतकाल, आज्ञा आशीर्वाद सामान्यभूत, कार्यकारणभाव इत्यादि क्रम से लकारों के अर्थ हैं । **जिनका विशेष विवरण** = लकार के कर्ता, कर्म, भाव अर्थ समझाने में **विधिसूत्र** ।

(३) **लः** = लकाराः सभी लकार, **सकर्मकेभ्यः** = सकर्मकधातुओं से कर्म अर्थ में या कर्ता अर्थ में हों । **अकर्मकेभ्यः** = अकर्मकधातुओं से भाव (क्रिया) तथा कर्ता अर्थ में हों । **अपेक्षितशब्दार्थ**—क्रिया अर्थवाचकधातु दो है । **सकर्मक और अकर्मक** । साधारण रूप से धातु का अर्थ फल है, उसका आश्रय कर्म की अलग अपेक्षा हो वह सकर्मक है । जैसे—भक्तः अनुमन्तं पश्यति, दर्शन के अनुकूल क्रिया पश्यति का अर्थ है । दर्शन फल है, जो दृश्धातु का अर्थ है । उस (दर्शन) का आश्रय हनुमान है । कं पश्यति ? हनुमन्तम् । यहाँ हनुमान् कर्म है । जो क्रिया का आश्रय कर्ता (भक्तः) से अलग है । धातु का अर्थ फल व्यापार अलग आधार में होना आवश्यक है । जहाँ कि आश्रय कर्ता से अलग कर्म न समझ में आवे, अकर्मक है । **पृथक्कर्म सहितः** सकर्मकः । धात्वर्थफलक्रिययोः एकाधारोऽकर्मकः । यत्र फलाश्रयो भिन्नः व्यापाराश्रयो भिन्नस्तत्र सकर्मको धातुः । **पृथक्कर्म रहितो** अकर्मकः, या फल और क्रिया अर्थ सभी धातु के हैं । फल, क्रिया अलग-अलग आधार में रहे वह सकर्मक हैं । जैसे—रोहिणी उपग्रह, जनान् समाचारं बोधयति । यहाँ बोधन क्रिया उपग्रह कर्ता में है, बोध या ज्ञान रूप फल 'जनान्' जनमें है । क्रिया और फल दोनों का आधार पृथक्-पृथक् है । फल और क्रिया दोनों एक ही जगह हों, उसे अकर्मक कहते हैं । यथा—रामश्शेते, वर्धते । यहाँ शयन फल है, उसकी जननी क्रिया । दोनो का एक ही आधार राम है । कर्तृगामी क्रिया फलेऽकर्मकः परगामिफले सकर्मकः । **कर्ता कर्म का लक्षण = धातु से उपस्थित क्रिया के आधार को कर्ता कहते हैं और धातु से उपस्थित फल के आधार को कर्म कहते हैं** (देवदत्तः तण्डुलं पचति) पच् का फल

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च। ४ वर्तमाने लट् ३।२।१२३। वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ।

भात-चावल का मुलायमपन, कठोरता का ढीला होना, यह फल तण्डुल में होने से फलाश्रय कर्म तण्डुल हुआ। पकाने अनुकूल क्रिया देवदत्त में है। उस क्रिया का स्वतंत्र आधार देवदत्त कर्ता बना। **भाव = धातु से उपस्थित फलजनक क्रिया को भाव कहते हैं।** इससे सिद्ध है कि लकार के कर्ता कर्म भाव तीन अर्थ हैं। लकार वाचक हैं, वे तीनों वाच्य हैं। वक्तुं योग्यः। वाच्य (अर्थ) ही समझने के योग्य है। जहाँ लकार कर्ता अर्थ का बोधक या प्रधान रूप से कहा जाय। उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। यथा—रामः रावणं हन्ति। यहाँ 'ति' कर्ता अर्थ में हुआ है, इसलिए कर्ता अर्थ होने से कर्तृवाच्य वाक्य हुआ। जहाँ तिङ् का कर्म अर्थ वाच्य (प्रधान) रूप से कहना हो, वह कर्म-वाच्य है। यथा—रामेण रावणः हन्यते। यहाँ लकार कर्म अर्थ में हुआ है, यह वाक्य कर्मवाच्य हुआ। जिस अर्थ में प्रत्यय हो वही अर्थ उक्त (प्रतिपादित) (प्रधान) माना जाता है। उसी में प्रथमा विभक्ति होती है। यहाँ कर्म रावण है कर्म अर्थ में लकार, रावण को मुख्य रूप से कह रहा है। मुख्ये (उक्ते) प्रथमा विभक्तिः। **यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः।** जिस अर्थ में प्रत्यय हो वह उक्त है— जहाँ क्रिया तिङ् से वाच्य हो उसे भावचाच्य कहते हैं, जिसका वाचक लकार है, परन्तु यह भाववाच्य अकर्मक धातु तक सीमित है। यथा—महाभारतं भूयते, त्वया उच्यते, मया शय्यते। तीनों का स्पष्ट ज्ञान। **प्रथमान्तो यदाकर्ता, द्वितीया कर्मणस्तदा। यदा कर्ता तृतीयान्तः, प्रथमा कर्मणस्तदा।**

(४) **वर्तमान क्रिया** = प्रचलित क्रिया जो फल उत्पन्न होने तक चल रही हो, उस क्रिया का **वृत्तेः** = (वाचकत्वं षष्ठ्यर्थः) वाचक धातु से लट्लकार हो। क्रिया ही काल है, (कालं क्रियात्मकमाहुः) क्रिया एव आत्मा यस्य स, क्रिया ही जिसका स्वरूप हो। सब काल में क्रिया चलती रहती है, काल ही चलता रहता है। संसरतीति संसारः। इसी काल के तीन भेद हैं (वर्तमान, भूत, भविष्यत्)। यद्यपि **काल एक है, अखण्ड है. उसमें खण्ड** = भेद कैसे ? **प्रचलित क्रिया को वर्तमानकाल।** समाप्त क्रिया को भूतकाल, होने वाली क्रिया को भविष्यकाल कहते हैं। ये ही काल भेद के कारण हैं। लट्लकार (फल की उत्पत्ति पर्यन्त प्रचलित क्रियात्मक काल को **वर्तमान काल कहते हैं**) का विधान वर्तमान क्रियावाचक धातु से किया जाता है। क्रिया तथा धातु का वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है। **अटावितौ** = लट् में उपदेशे अनुनासिक अच् के अकार की इत्संज्ञा हो गयी। ट् की हलन्त्यम् से, तस्यलोपः। ल् की इत्संज्ञा 'लशक्वतद्धिते' से क्यों

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम्। भू सत्तायाम्। कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते। ३७५ तिप्-तस्-झि सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-तातां-झ-थासाथां-

---

नहीं होती ? तब बोले उच्चारण इति—लकार का उच्चारण व्यर्थ न हो। या उच्चारण के सामर्थ्य से ल् की इत्संज्ञा नहीं होती। वह प्रधान है, वही शेष रहता है अन्य आदेश के लिए। भू धातु का सत्ता अस्तित्व, उत्पत्ति, आत्मधारण, प्रकट होना अर्थ है। यह अकर्मक धातु है। इसका परिचायक वाक्य—लज्जा, सत्ता, स्थिति जागरणं, वृद्धि, क्षय, भय, जीवित, मरणम् (शयन क्रीडा, रुचि दीप्त्यर्थकधातुगणं तमकर्मकमाहुः। उत्पत्ति सत्ता या आत्मधारणफल-जनक क्रिया का आधार एक ही व्यक्ति है। जैसे देवदत्तो भवति। यहाँ देवदत्त ही भवन् (उत्पत्ति—रूपधारणफल, उसका जनक क्रिया का आधार है। अतः भू धातु अकर्मक है। सकर्मक अकर्मक का विवेकपूर्ण निर्णय क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षम्। सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति, शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्। कर्ता के साथ क्रियापद में जहाँ किम् ? प्रश्न उठे वह धातु सकर्मक है, यथा—खादति पठति किं पठति इति जिज्ञासा। अतः खाद पठधातु सकर्मक हुए। शेते एधते में किम् प्रश्न उठता ही नहीं। बिना धातुसंज्ञा हुए भूको धातु कहना कैसे सङ्गत है ? समाधान-भाविनीसंज्ञा मानकर। यथा—कुलालस्य गृहेषु दोहिनी सा वै कथं दोहिनिकेति संज्ञा। तथैव सर्वे पठिता हि धातवः संज्ञां बिना धातुगणेषु पाठः। कुम्हार के घर दोहिनी (दूधहाड़ी) नाम कैसे ? जबकी उसमें दूध दुहा ही नहीं गया। उत्तर—भाविनीसंज्ञा। अस्य सूत्रस्य शाटकं वय इस सूत्र से साड़ी बुनो। अभी सूत्र है तो साड़ी कैसे कहा ? उत्तर—भाविनीसंज्ञा मानकर। भूधातोः भूवादयो धातवः इति धातुसंज्ञायां कर्तृविवक्षायां (भवनक्रिया का आधार कर्ता की इच्छा होने पर) 'लः कर्मणि' सूत्र से कर्तृवाच्य (कर्ता को मुख्य रूप से कहना हो तो) उस अर्थ में लकार हो, क्योंकि लकार के चार अर्थ हैं कर्ता, कर्म, भाव, काल। इनमें कर्ता अर्थ को ही लकार बोलेगा। यह लकार किस काल में हो ? क्रिया से कर्ता का सम्बन्ध है। जहाँ क्रिया है, वहाँ काल भी होना चाहिए। इसका बोधकसूत्र 'वर्तमानेलट्' भवन् (उत्पत्ति) क्रिया हो रही हो, उसका काल वर्तमानकाल है। धातुसे परे वर्तमानकालशक्तिबोधक लकार हुआ। तब भू ल् ऐसी स्थिति हुई।

(३७५) तिप् तस् झि। सिप् थस् थ। मिप् वस् मस्। त आताम्, झ। थास्, आथाम्, ध्वम्। इट्, वहिङ्, महिङ्। ये १८ आदेश खले कपोतन्यायेन ल् के स्थान में प्राप्त हुए। 'ति' से ङ तक के सभी आदेश तिङ् प्रत्याहार हैं। इन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ध्वमिङ्-वहि-महिङ् ३ । ४ । ७८ । एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः । ६ लः परस्मैपदम् १ । ४ । ९९ । लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः । ७ तङानावात्मनेपदम् १ । ४ । १०० । तङ् प्रत्याहारः शानच्-कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञाऽपवादः । ८ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १ । ४ । १२ । अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् । ९ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले

अट्ठारह भेदों में प्रथम ९ (नौ) आदेशों की परस्मैपदसंज्ञा । जिसका परिचायक (६) ल् के स्थान में सभी आदेश की परस्मैपदसंज्ञा हो । परन्तु अन्तिम (नव) ९ आदेश, त आताम् से महिङ् के ङ् तक तङ् प्रत्याहार है । यद्यपि ल् एक है आदेश १८ की सङ्गति कैसे होगी । (प्रतिप्रधानं गुणावृत्तिरिति न्यायेन) आदेश प्रधान होते हैं । उनके अनुरोध से एकही ल् अनेक प्रकार-का होगा । इसमें भी उच्चारण सामर्थ्य कारण है । (७) तङ् = प्रत्याहार आनौ = शानच् तथा कानच् प्रत्ययों की आत्मनेपदसंज्ञा हो । पूर्वसंज्ञा 'लः परस्मैपदम्' का अपवाद (बाधक) आत्मनेपद है । शानच् है । शानच् कानच् प्रत्यय कृदन्त में मिलेंगे ।

(८) अनुदात्तश्च ङश्च अनुदात्तङौ तौ इतौ यस्य । अनुदात्त और ङ् की इत्संज्ञा हो, जिस धातु के, उससे आत्मनेपद हो । जैसे एध् वृद्धौ, शीङ् स्वप्ने, यहाँ ध में अ अनुदात्त है । अनुनासिक अच् होने से इत्संज्ञक है । तथा ङ की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपद हुआ । अनुदात्तेत् धातु की गणना आगे की जायेगी ।

(९) स्वरितश्च ञश्च स्वरितञौ तौ इतौ यस्य स, स्वरितञित् तस्मात् । स्वरितेतो = उदात्त, अनुदात्त, मिलजाने पर स्वरित होते हैं । ऐसे अच् की इत्संज्ञकधातु तथा ञ् इत्संज्ञकधातु से आत्मनेपद हो । जब क्रिया-फले = धातु का अर्थ क्रिया उस क्रिया का फल, कर्त्रभिप्राये = कर्ता के अभिप्राय (उपलब्धि) के लिए हो । अर्थात् क्रिया का फल कर्ता को मिले । जैसे, पच्, भज्, यज् श्रि, इत्यादि धातु की क्रिया का फल कर्ता को लब्ध हो तो आत्मनेपद हो । वह फल दूसरे को मिले तब परस्मैपद हो । 'श्रयते' शब्द से सेवा का फल कर्तृगामी सिद्ध है । श्रयति कहने से सेवा का फल परगामी प्रसिद्ध है । प्रायः स्वरितेत् तथा ञित् धातु उभयपदी होते हैं, जिसका भेद क्रियाफल के कर्तृगामी या परगामी होने से स्पष्ट है । संध्याबन्दन में या समस्त संकल्प में क्रियाफल के कर्तृगामी होने से आत्मनेपद ही पढ़ा जाता है । यथा— नवग्रह पूजनमहं करिष्ये । प्रातः संध्यामहं करिष्ये । पाणिग्रहणं करिष्ये । फल

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१।३।७२। स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले।

३८० शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८। आत्मनेपदनिमित्त-हीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात्। १ तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथम मध्य-मोत्तमाः १।४।१०२। तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः। २ तान्येकवचन-द्विवचन-बहुवचनान्येकशः १।४।१०२। लब्ध-प्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि (वचनानि) प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः। ३ युस्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५।

जनकत्वं क्रियात्वम्। जिससे फल पैदा हो उसे क्रिया कहते हैं। यज्ञ क्रिया का स्वर्गफल है। जिसकी अभिलाषा से कर्म करने में रुचि बढ़े, उसे फल कहते हैं। बिना फलज्ञान क्रिया में रुचि नहीं होती, अतः नारद जी बोले कि फलं किं विधानं च कृतं केनैव तद्व्रतम्। शौनकजी ब्रतेन तपसा वा किं प्राप्यते वाञ्छितं फलम्) इस फलकी जननी धात्वर्थ क्रिया है, वृक्षादि नहीं।

(३८०) शेषात् = उक्तादन्यः शेषः। आतममनेपद के कारण उक्त है। जैसे तङ् प्रत्याहार, शानच् कानच् अनुदात्तेत् ञित (स्वरितेत् ङित् कर्तृगामी क्रिया फल हों तो) इन कारणों से आत्मने पद होते हैं, ये ही उसके निमित्त कारण हैं। उनसे हीनात् = रहितधातु को शेष कहते हैं। उन धातुओं से केवल कर्ता में ही परस्मैपद कहा गया है। अर्थात् परस्मैपद कर्तृवाच्य में चलता है आत्मनेपद कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य, तीनों में होता है। प्रसङ्ग में भूधातु से पर-स्मैपद हुए, क्योंकि आत्मनेपद का कोई निमित्त (लक्षण) नहीं मिलता (१) तिङ् = तिङ् प्रत्याहार में किये गये उभयोः पदयोः = दोनों पद (आत्मनेपद, परस्मैपद) त्रयस्त्रिकाः = तीन-तीन के त्रिक समुदाय को क्रम से एतत्संज्ञा = प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष नाम पड़ता है। यथा— परस्मैपद तिप् तस् झि। प्रथम पुरुष। सिप् थस् थ, म० पु०। मिप् वस् मस्, उ० पु०। आत्मनेपद = त, आंताम् झ, प्र० पु०। थास्, आथाम्, ध्वम्, म० पु०। इट् वहि, महि उ० पु०। (२) तानि = लब्ध है प्रथम मध्यम उत्तम पु० संज्ञा जिनको ऐसे तीन-तीन के समुदाय त्रिकों को एकशः = एक-एक को क्रम से एकवचन द्वि० व० ब० ब० की संज्ञा हो। एकसङ्ख्या यत्र उच्यते तत्र एकवचनम्। द्वे सङ्ख्ये यत्र उच्येते, तत्र द्विवचनम्। बहुत्वसङ्ख्याः यत्रोच्यन्ते तत्र बहुवचनम्।

(३) समानाधिकरणे = समान, एक अधिकरण (आधार) हो जिनका, समानम् एकम् अधिकरणम् ययोस्तत्। तिङ्वाच्य कारकवाचिनः = तिङ्-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तिङः वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः। ४ अस्मद्युत्तमः १।४।१०७। तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः।

३८५ शेषे प्रथमः ।१।४।१०८। मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्। भू ति, इति जाते। ६ तिङ् शित् सर्वधातुकम् ३।४।११३। तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः। ७ कर्तरि शप् ३।१।६८।

प्रत्यय का वाच्य (अर्थ) हो तथा कारक हो ऐसा युष्मद् शब्द (त्वम्, यूवां, यूयम्) उपपद विशेषण हो, तब स्थानिनः = अप्रयुज्यमाने अपि, प्रयुज्यमाने वा त्वंम् भवसि, 'यहाँ 'त्वम्' शब्द तिङ् के कर्ता अर्थ को कहता है। भवति क्रिया में अन्वय होने से त्वम् शब्द कारक भी है। इस प्रकार तिङ् वाच्य (अर्थ) कर्ता का आधार त्वम् है, कारक भी दोनों का समानाधिकरण होने से म० पु० हुआ। केवल भवसि में त्वम् प्रयोग के बिना भी म० पु० हुआ। स्थानिनिका 'अप्रयुज्यमाने' अर्थ कैसे? आदेश के आ जाने पर स्थानी अप्रयुज्यमान होता है या स्थानी के अपहृत होने से वह अप्रयुज्यमान हुआ।

(४) तथाभूते = तिङ्वाच्य कर्ता अर्थ का तथा क्रिया में अन्वयी कारक का एक ही आधार (अस्मद्शब्द) (अहम् आवाम् वयम्) हो तो उसके उपपदे प्रयुज्यमाने 'अहम्' का प्रयोग हुआ हो, या अप्रयुज्यमाने = प्रयोग न हुआ हो, वहाँ उत्तम पु० हो। यथा अहं भवामि। या केवल भवामि दोनों दशा में उ० पु०। मिप् वस् मस् आदि होते हैं। (३८५) शेषे = जो शेष = अवशिष्ट (बँचा हुआ) रहता है उसके विषय में प्र० पु० तिप् तस् झि होते हैं। मध्यमोत्तमयोः। मध्यम् पु० तथा उ० पु० का अविषय = विषय न हो कर्ताकारक का समानाधिकरण (अभिन्न) युष्मद या अस्मद् हो दोनों से भिन्न हो प्रथम पुरुषो भवति। भू + ल् इति स्थिते अत्र मध्यमोत्तमयोः विषयताक विवक्षा नास्ति। अतः प्रथमपुरुषस्य एकवचनस्य इच्छायाम् ल् स्थाने परस्मैपदसंज्ञक तिप्प्रत्यये। पकारस्य हलन्त्यम् इति इत्, तस्य लोपः। भू + ति।

(६) धात्वधिकारोक्ता = धातु के अधिकार में कहे गये। तिङ्प्रत्यय तथा शित् प्रत्यय की, एतत् संज्ञा (सर्वं धातौभवः) सार्वधातुकसंज्ञा हो। अनेन ति इत्यस्य सार्वधातुकसंज्ञायाम्।

(७) कर्त्रर्थे = कर्ता अर्थ में सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय परे रहते धातु से शप् प्रत्यय हो। शप् प्रत्यय विकरण है प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये यः तिष्ठति स विकरणः। प्रकृति (भू) प्रत्यय (ति) दोनों के मध्य में शकार इत्संज्ञक अ हुआ। भू अ ति इति जाते। 'यस्मात् प्रत्यय' सूत्रेण शप् परे भुइत्यस्य अङ्गसंज्ञा। इत्यङ्ग भू इति।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्। ८ सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४। अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः। अवादेशः। भवति। भवतः। ९ झोऽन्तः ७। १। ३। प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः। "२७४ अतो गुणे"। भवन्ति। भवसि। भवथः। भवथ।

३९० अतो दीर्घो यञि ७। ३। १०१। अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ

---

(८) सार्वधातुकञ्चआर्धधातुकञ्च सार्वधातुकार्धधातुके तयोः। **अनयोः परयोः**=सार्वधातुकसंज्ञक या आर्धधातुकसंज्ञक परे इगन्ताङ्गस्य=इक्—इ उ ऋ ऌ तथा इनके सवर्णी हो अन्त में जिसके ऐसे अङ्गसंज्ञक भू स्थाने गुणो भवति। अलोन्त्यस्य इति उकारस्य गुणे ओ इति। अव् आदेशे। **भवति**। उत्पत्तिफलजनकव्यापारः। संभवति अनुभवति उद्भवति, अन्तर्भवति, विभवति पराभवति उपसर्ग के प्रभाव से अनेकार्थ सिद्ध है। **भवतः**। भू इत्यस्य धातुसंज्ञायाम् द्विवचनविवक्षायां तस्। सार्वधातुकसंज्ञा, कर्तरिशप्=अ। अङ्गसंज्ञा गुणे, अवादेशः रू० वि० स्वरूपधारण फलके अनुकूल क्रियाजनक चेष्टावान् 'कृष्णः बलरामश्च। भवनार्थक भू धातोः प्र० पु० ब० वचने झि प्रत्यये सा० सं० शप् आदयः पूर्ववत् भव + झि।

(९) प्रत्यय का अवयव (अंश) एक भाग झ के स्थान में अन्त आदेश हो, (अतो गुणे) अकारस्य पररूपे। **भवन्ति** (रामाः) स्वरूपं धारयन्ति। **भवसि**। भव बनाने की विधि पूर्ववत् म० पु० एकवचन सिप्। भवसि द्विवचने थस्। **भवथः**। बहुवचने 'थ'। **भवथ**।

(३९०) **अतो**=अकारान्त अङ्ग को दीर्घ हो **यञादौ**=यञ् प्रत्याहार के अक्षर आदि में हो ऐसा सार्वधातुकप्रत्ययपरे रहते। **भवामि**। उत्तम पु० एकवचने मिप् भव + मि अकारान्त अङ्ग। (यहाँ मिप् परे रहते शप् सहित भू को अङ्ग संज्ञा होगी। शप् तिङ् निमित्तक है) भव के अन्त्य अकार को दीर्घ हुआ। यञादि सार्वधातुकपरे मिप् है। इसी प्रकार द्विवचने वस्परे बहुवचने मस्परे शप् गुणे पररूपे दीर्घे रु० वि०। **भवावः**। **भवामः**। सलोपो न नवि वित्तौ तुस्मा निषेधात्। **लट्लकार के रुपों का वाक्य में प्रयोग**। **सः भवति**। **वह उत्पन्न होता है**। वे दोनों रूप धारण करते हैं। वे होते हैं। तुम प्रगट होते हो, तुम दोनों की सत्ता है, तुस सब होते हो। मैं रूप धारण करता हूँ। हम दोनों पैदा होते हैं। हम सब उपस्थित हैं। जहाँ दो या तीन कर्ता हों वहाँ अन्तिम कर्ता के अनुसार पुरुष वचन होते हैं। सः त्वम्। वाक्य में दो कर्ता हैं। वहाँ भवथः। म० पु० द्विवचनान्त क्रिया होगी। जहाँ स त्वम् अहम्। तीन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सार्वधातुके। भवामि। भवावः। भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः। १ परोक्षे लिट् ३।२।११५। भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः। २ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२। लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः भू अ, इति स्थिते। ३ भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६।४।८८। भुवो वुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि। ४ लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८। लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु

कर्ता हैं। वहाँ भवामः। उ० पु० बहुवचनान्त क्रिया होगी। एवं त्वम् अहं भवावः क्रिया होगी, जो पर अन्तिम कर्ता होता है। उसी के अनुसार (तदनुसार) वचन भी होगा। क्वचित् विपरीत भी दृष्ट है अहम् त्वम् सः यहाँ भी भवन्ति का ही प्रयोग होगा। (१) परोक्षे=जहाँ क्रिया सहित कर्ता साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) का विषय न हो वह परोक्षकाल है। भविष्य का परोक्ष न लिया जाय, इसलिए भूतानद्यतना–भूत काल की (समाप्त क्रिया) का कालविशेषण दिया, किन्तु अनद्यतन = न अद्यतन आजका भूतकाल नहीं। बीते अर्ध रात्रि के पहले का भूतकाल हो। यहाँ काल क्रिया रूप ही है। वह भूत कालिक क्रिया परोक्ष हो, प्रयोग कर्ता को उस क्रिया का या क्रिया से विशिष्ट कर्ता का दर्शन न हुआ हो, ऐसे अर्थवृत्तेः=अर्थवाचक धातु से लिट् लकार हो। प्रयोक्ता उस क्रिया को न देखा हो, तभी परोक्षे लिट् माना जायेगा। साक्षात् करोमि एतादृशज्ञानाभावः परोक्षत्वम्। भू धातु का रूपधारण, सत्ता, या उत्पत्ति पैदा होने के अनुकूल, भवनक्रिया अर्थ है प्रयोगकर्ता उस क्रिया को न देखा हो। आज के भूत से भिन्न भूतकाल हो, भवनक्रिया समाप्त हो इस अर्थ का बोधक लिट् इटौ इत्संज्ञकौ। ल् स्थाने प्रथमपुरुषस्य एकवचने तिप् तस्यस्थाने। (२) परस्मैपदानाम् = लिट्के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक तिप् तस् झि। सिप्, थस्, थ। मिप् वस्, मस्। इन नौ विभक्तियों के स्थान में क्रम से णल्, अतुस्, उस्। थल्, अथुस्, अ। णल्, व, म। ये (नौ) आदेश होते हैं। तिप्=णल् 'चुटू' सूत्र से ण् की 'हलन्त्यम्' से 'ल्' की इत्संज्ञा, तयोर्लोपः। भू + अ इति दशायाम् (३) भूको वुक् आगम हो, लुङ् लिट् सम्बन्धी अच् परे रहते। आगम मित्रवत् होता है। वुक् में उक् इत्संज्ञक हैं। कित् होने से आद्यन्तौ टकितौ भूका अन्त अवयव हुआ। भूव् + अ। (४) लिटि – लिट् लकार परे रहते, अनभ्यासधातु = न अभ्यास इति अनभ्यासः। अभ्याससंज्ञा न हुई हो ऐसे धातु अवयव के प्रथम एकाचको द्वित्व हो, आदिभूतादचः=अजादिधातु के आदि अच् से परे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयस्य। भूव् भूव् अ, इति स्थिते।

३९५ पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४। अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्यास-संज्ञः स्यात्। ६ हलादिः शेषः ७।४।६०। अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः। ७ ह्रस्वः ७।४।५९। अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्। ८ भवतेरः ७।४।७३। भवतेरभ्यासोकारस्य अः

(द्वितीय) एकाच् संभव हो। उसी को द्वित्व हो, हलादिधातु में प्रथम एकाच् को द्वित्व हो। अजादि में द्वितीय एकाच् को हो। यदि संभव न हो तब प्रथम एकाचको द्वित्व हो, लिट्परे स्थानिवद् भाव से अ है। अभ्यास संज्ञा रहित धातु भू है, उसको वुक् हुआ। यदागभास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते। जिसको आगम हुआ हो, उसके ग्रहण से आगम सहित का ग्रहण होता है। वुक्=व् आगम है, वह भूको हुआ है। यहाँ भूके ग्रहण से भुव् का ग्रहण होगा। परन्तु भूव् में चार एकाच् हैं। भूव्, ऊव्, तथा ऊ। किस एकाच को द्वित्व हो वृक्ष प्रचलनन्यायेन। जैसे— जड़ हिलाने से सम्पूर्ण वृक्ष हिलता है। या एकाच् द्विर्बचनन्यायेन। यहाँ एकाच् समुदाय ही लिया जायेगा, अवयवों के साथ समुदाय को द्वित्व हुआ। भूव् भूव्+अ (३९५) इसप्रकरण में जो दोबार किये गये हैं। तयोः उनमें पूर्व को अभ्यास संज्ञा हो। अनेन प्रथम भूव् शब्दस्य अभ्याससंज्ञा (६) हलादिः-अभ्याससंज्ञक शब्दके आदि (हल्) शिष्यते आदि अक्षर शेष रहता है। चाहे अजादि धातु हो या हलादि, आदि के अच् या हल् से अतिरिक्त वर्णो में हल् का हसे ल् तक के वर्ण शेष रहते हैं। अन्य हल् का लोप होता है। यहाँ हल् शब्द उपलक्षण होने से अच् का भी स्मारक है, अभ्याससंज्ञक धातु का आदि अच् भी शेष रहता है। अन्य हल् का लोप होता है। अथवा 'अहल्' तथा आदिशेष.' ऐसा योग विभाग करेंगे, तब अभ्यास हल् रहित हो, यदि आदिमें हल् हो तो वह शेष रहे। प्रथम योगार्थ से अत्, अर्च् आदि धातु अभ्याससंज्ञक हल् रहित होंगे। तब 'अ' बचेगा, तकी चका लोप होगा। सभी अजादि धातु की ऐसी ही स्थिति होगी। यदि अलादि शेष कहेंगे तो भूमें उ (अच्) का लोप होगा। प्रसङ्ग में अभ्यास संज्ञक भूव्का भू शेष रहा 'व्' लुप्त हो गया। यत्र अभ्यासे आदि हल् तत्र हल एव शिष्यते। यत्र आदि हल न सम्भवेत् तत्र अन्य हलो निवृत्तिः। आदिशब्दः अन्त्यशब्दमाकांक्षते अन्य व्यावृत्तिः, स्वस्य उपस्थितिः शेषः:। इति व् लोपे भू भूव्+अ इति दशायाम् (७) अभ्यासंज्ञक शब्द के अच् (अ इ उ ए ऐ औच्) तक के अक्षर ह्रस्व (एकमात्रिक) हों। अनेन ऊकारस्य ह्रस्वे उकारे (८) भवतेः—भूधातु के अभ्याससंज्ञक उ को अ हो, लिट्परे। अनेन उ स्थाने अ कृतेसति भभूव्+अ इति जाते (९) अभ्याससंज्ञक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्याल्लिटि। ९ अभ्यासे चर्च ८।४।५४। अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च। झलां जशः खयां चर इति विवेकः। बभूव। बभूवतुः। बभूवुः। ४०० लिट् च ३।४।११५। लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः। १ आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।३५। बलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्। बभूविथ।

झल् के स्थान में चर् हो। जशश्च=जश् भी। यहाँ झल् झभञ् से हल् तक। इसके तीन खण्ड हैं। झश्, खय् शल्। झश्,-झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, श् इनके स्थान में जश्=जबगडदश् प्रयोग सिद्ध के अनुसार हो। २-खण्ड खय् = ख, फ, छ, से कपय् तक के स्थान में प्रयोग सिद्धि के अनुसार चर्=च, ट, त, क, प, श ष स होते हैं। ३-खण्ड शल्-श, ष, स, ह के स्थान में वही आदेश होंगे। च क ट आदि के स्थान में भी वही होंगे। इसी आशय से प्रकृतिजशां प्रकृतिजशः प्रकृतिचरां प्रकृतिचरः इति विवेक कहा गया। वर्ग के द्वितीयवर्ण को प्रथम वर्ण। चतुर्थवर्णको तृतीयवर्ण। प्रसङ्ग में झल् के भ को ब हुआ। तब बभूव। कर्ता में विद्यमान पूर्वदिन की परोक्ष भूतकालिक क्रिया अर्थ है। जहाँ दो कर्ता में परोक्ष पूर्वभूतकालिकभवन क्रिया अर्थ होगा, वहाँ तस् प्रत्यय, तस्य स्थाने अतुस्, बभूव बनाने की प्रक्रिया पूर्ववत् होगी। सकारस्य रुत्वे वि०। बभूवतुः। बहुवचनमें झि,। तस्य स्थाने परस्मैपदानां सूत्रेण उस् सकारस्य रु० विसर्गे बभूवुः। पूर्वदिन परोक्षभूत काल की समाप्त क्रिया जहाँ अनेक कर्ता हो।

(४००) लिट् के स्थान में आदेशरूपतिङ् को आर्धधातुकसंज्ञा हो। जो आधे या न्यून अंश में उपयोगी संज्ञा अर्धधातौ भवम् आर्धधातुकम् आर्धधातुक संज्ञा है। सर्वेषु लकारेषु प्रवृत्ता संज्ञाः सार्वधातुक संज्ञा है सर्वधातौ भवम् सार्वधातुकम्। जहाँ त्वम् कर्ता हो पूर्वदिन के परोक्ष भूतकालिक क्रिया की इच्छा हो। तब धातुसंज्ञक भूशब्दात् मध्यम पुरुषस्य एकवचने सिप् तस्य लिट्च सूत्रेण आर्धधातुकसंज्ञः क्योंकि लिट् स्थाने तिङ् है। तस्य स्थाने (परस्मैपदानाम्) सूत्रेण थलि आदेशे (१) बलादेः=वरट् से हल्तक वर्ण आदि में हो, ऐसे आर्धधातुकसंज्ञा वाले को इट्का आगम हो। यहाँ आर्धधातुक संज्ञक तिङ् के स्थान में स्थानिवद्भाव से थ आर्धधातुक है। अब लिट् सम्बन्धी अच्परे इथको मानकर भूवोवुक् हुआ, अनुबन्ध लोपे द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वे 'भवतेर' इति अ, आदेशे जश्त्वे बभूविथ। त्वदभिन्नमेककर्तृक-अनद्यतनपरोक्षभूतकालिकी क्रिया इत्यर्थः। इस प्रसङ्ग में इट् होने पर ही वुक् होता है। दो कर्ता हों तब द्विवचन थस् के स्थान में अथुस् बभूवथुः। यूयं कर्ता हो तब बहुवचन थ के स्थान में बभूवथुः। अहम् कर्ता हो उक्त क्रिया की विवक्षा में लिट्, तस्य स्थाने

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

बभूवथुः । बभूव : बभूव । बभूविव । बभूविम ।

४०२ अनद्यतने लुट् ३ । ३ । १५ । भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् । । ३ । स्यतासील्लृ-लुटोः ३ । १ । ३३ । धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तो ल्लुटोः परतः । शबाद्यपवादः । ल्ल इति ल्लृङ्ल्लृटोर्ग्रहणम् । ४ । आर्धधातुकं शेषः ३ । १ । १४४ । तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्ः । इट् । ५ । लुटः प्रथमस्य डा-रौ-रसः २ । ४ । ८५ ।

मिप् तस्य स्थाने उत्तम पु० एकवचने णल्=अ बभूव । 'आवाम्' कर्ता हो परोक्ष अनद्यतनभूतकालिक क्रिया की विवक्षा में उत्तम पु० द्विवचने वस्, तत्स्थाने 'व' आदेशे, आर्धधातुक संज्ञा, इट् आगमे वुक् द्वित्वादिकार्यं पूर्ववत् बभूविव । क्या हम दोनों पैदा हुए थे, वयम् इतिकर्ता स्यात्तदा उ० पु० ब० बभूविम । कि वयं हमलोग उत्पन्न हुए थे ।

(२) भविष्यति = होनेवाली भवनक्रिया (कल, परसों) अनद्यतन काल का बन्धन छोड़कर सामान्यविषय भविष्य अर्थवाचक धातु से ल्लुट्लकार हो । कालस्तु व्यापारे विशेषणम् । जब अनद्यतनभविष्यकाल की क्रिया में अन्वय हो, जैसे —कल होऊँगा, परसों, नरसों प्रकट होऊँगा । वह क्रिया आज की न होकर आगामी कल, परसों की किसी काल के शब्द से निर्देश अभीष्ट हो तभी लुटका प्रयोग हो । तब धातुसंज्ञक भूधातु से श्वः परश्वः अर्थे लुट्, उट्=इत्, भूल् इति स्थिते । (३) धातोः=किसी धातु से स्य,, तथा तास् प्रत्यय क्रम से हो । ल्लट्=(ल्लट् ल्लङ्) तथा लुट् परे होतो । यहाँ लुट् परे है, इसलिए तास्-प्रत्यय हुआ । शबाद्यपवादः शप् विकरण को बाधकर । आदिपद से अन्य-विकरण श्यन्, शः, श्ना, इत्यादिका भी बाधक है । स्य विकरण ल्लङ् तथा ल्लट् दो लकार में होता है । अतः ल्ल शब्द से ल्लङ् ल्लट् दोनों का ग्रहण जाने । क्योंकि निरनुबन्धकग्रहणे सामान्यग्रहणम् । अनुबन्धरहित का ग्रहण जहाँ हो वहाँ सामान्य=व्यापक का ग्रहण होता है । अतः ल्लङ् ल्लट् दोनों ग्राह्य हैं । (४) शेषः =उक्तादन्यः, किम् उक्तः ? तिङ् शित् उक्त हैं, उनसे अन्यः – भिन्नः किन्तु धातु से विहितः=विधान किया गया प्रत्यय एतत्संज्ञः (अर्धधातौ भवः) आर्धधातु संज्ञक हों । ये धातु के कुछ अंश में होते हैं । यहाँ तास्प्रत्यय न तिङ् है, न शित् किन्तु धातु से विधान किया है । उसको आर्धधातुकसंज्ञा हुई । जिसका फल है । इट्विधान । वलादि आर्धधातुकसंज्ञक तास् को इडागमे अनुबन्ध लोपे 'भू इ तास् ति; सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणे अव्आदेशे भवि' तास् ति इतिदशायाम् ।

(४०५) लुट्=लुट् के स्थान में प्रथम पु० तिप्, तस् झि । उनके स्थान में क्रम से डा, रौ, रस् हों । ति = डा तस्=रौ । झि=रस् हो अनेन ति स्थाने डा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भविता । ६ । तासस्त्योर्लोपः ७ । ३ । ५० । तासेरस्तेश्च लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये । ७ । रि च ७ । ४ । ५१ । रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः भवितास्मः । ८ । लृट् शेषे च ३ । ३ । १३ । भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां

आदेशे स्थानिवद्भावेन प्रत्यय मानकर 'चुटू' इति ड् इत् तस्य लोपः । 'आस्' डित् हो गया । यहाँ कप्प्रत्यय पर्यन्त के अन्दर स्वादिविभक्ति के न रहने से भ संज्ञा नहीं होगी । टिसंज्ञक तास् में आस् का लोप कैसे ? कथमस्य टेर्लोपः, तब बोले '**डित्वसामर्थ्यात्**—डा में 'ड' क्यों पढ़ा, उसकी इत्संज्ञा क्यों हुई ? इससे यह सिद्ध है जहाँ डित् हो वहाँ विना भसंज्ञाके भी टिका लोप होता है । अन्यथा डित् व्यर्थ होगा । इत्यनेन आस् भागस्य लोपे । वर्णसम्मेलने **भविता** । जहाँ दो कर्ता अनद्यतनभविष्यकालिक क्रिया करने वाले हों धातुसंज्ञक भू से लुट् तत्स्थाने प्रथमपुरुषस्य द्विवचनं तस् '**स्यतासी**' सूत्रेण **तास्** प्रत्ययः तस्य आर्धधातुकंशेषः इति आर्धधातुकसंज्ञायाम् **इट्**, **गुणः** अव् आदेशश्च । तस् स्थाने रौ आदेशे भवितास् + रौ इति दशायाम् । (६) **तास्**शब्द का तथा अस् धातु का लोप हो । **सादि** प्रत्यय परे रहते । इन दोनों का उदाहरण **भवितासि** तथा **असि** हैं । यहाँ सादिप्रत्यय परे नहीं हैं, किन्तु रादि हैं अतः । (७) **रि**=रकारादि प्रत्यय परे रहते **तथा**=तास् और अस् का लोप हो । यह लोप अन्त्य अल् के स्थान में होगा । रादि परे रहते तास् का अन्त्य अल् स् का लोप हुआ । **भवितारौ** । अनेक कर्ता, होनेवाली क्रिया का आधार तब बहुवचन झि तस्य स्थाने रस्, अन्य कार्यं पूर्ववत् **भवितारः** । 'त्वम्' कर्ता यदि कल, परसों (श्वः, परश्वः) होनेवाली क्रिया का आधार हो, तब म० पु० एकवचन सिप् भू + सि तास्, इट् आदि पूर्ववत् '**तासस्त्योः**' इति सादि (सिप्) प्रत्यय परे तास् सकारस्य लोपे । **भवितासि** । यत्र युवामिति कर्ता तत्र द्विवचने थस् रूपं, **भवितास्थः** । यत्र यूयमिति कर्ता तत्र बहुवचने **भवितास्थ** । यत्र अहं कर्ता, तत्र **भवितास्मि** आवां **भवितास्वः**, वयं **भवितास्मः** । अनेककर्तृक अनद्यतन भविष्यकालिक उत्पत्तिजनकव्यापारः । लृट्शेषे शेषपद की आवृत्ति करके प्रथम शेष का **उक्तादन्यः** शेष के अनुरोध से अद्यतन भविष्य सङ्गृहीत होता है । तथा द्वितीयार्थं शेषपदार्थं च से अनुवृत्त तुमुन्ण्वुलौ से क्रियार्था क्रिया के अध्याहार से असत्यां का अर्थ आया ।

(८) **शेषे**=सामान्य भविष्य हो अनद्यतन कल परसों श्वः, परश्वः के बन्धन से मुक्त (आज का भविष्य हो या कल का) उस काल का क्रियारूप अर्थ का वाचक (धातुसंज्ञक) धातु से **लृटलकार** हो । च शब्द से क्रियार्था क्रिया की

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

त्र। स्यः। इट्। भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः। ९ लोट् च ३। ३। १६२। विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्। ४१० आशिषि लिङ्लोटौ ३। ३। १७३।

अनुवृत्ति हो या न हो। किसी क्रिया से दूसरी क्रिया जुड़ी हो, या किसी क्रिया की सिद्धि के लिए दूसरी क्रिया करनी पड़े, या न पड़े। यथा—पठितुं गमिष्यति, यहाँ अध्ययन क्रिया की सिद्धि के लिए गमनक्रिया, क्रियार्था कहीं गयी। यही क्रिया सत्याम्=हो, या असत्याम्=न हो तो भी लृट्। पठिष्यति गमिष्यति इत्यादि भी होगा। कर्ता में सामान्यभविष्यकालिक उत्पत्तिजनकभवनक्रिया को कहना हो तब धातुसंज्ञक भू धातोः 'लृट्शेषे च' इति लृट्। अनुबन्ध लोपे, ल् स्थाने प्रथमपुरुषस्य एकवचनं तिप्, 'स्यतासी' सूत्रेण स्यप्रत्यये तस्य आर्धधातुकं शेषः इति आर्धधातुकसंज्ञायां तस्य वलादिः आर्धधातुकः इट् आगमे आर्धधातुकनिमित्तके गुणे अव् आदेशे। भविष्यति। जहाँ दो कर्ता सामान्य भविष्यकालिक होना क्रिया (रूप धारण) के आधार हों, वहाँ धातुसंज्ञक भू धातोः द्विवचने तस्, स्य, इट् गुणादिः; पूर्ववत्। सकारस्य रुत्वे वि० भविष्यतः। अनेककर्ता उक्तक्रिया फल का आधार हो, तब बहुवचनं झिप्रत्ययः 'झोऽन्तः' भविष्यन्ति 'त्वम्' युवां यूयं। उक्तक्रिया (फल) के आधार हों तब क्रम से म० पु० का सिप्; थस्, थ प्रत्यय होकर, भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ। यदि अहम्, आवां, वयम् कर्ता सामान्यभविष्यकालिक भवनक्रिया के आधार हों, तब उत्तम पु० मिप्, वस्, मस् क्रम से होकर भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः। यथा—रामो भविष्यति। यदि क्रिया में श्वः विशेषण होगा तब लृट् का प्रयोग अशुद्ध होगा, लुट् का प्रयोग शुद्ध। यदि अद्य विशेषण रहे तब लृट् शुद्ध होगा, यथा—अद्य पठिष्यामि सामान्यभविष्य में लृट् अनद्यतनभविष्य में लुट् का ध्यान आवश्यक है।

(९) च=विध्यादि अर्थेषु=विधिः प्रेरणा, आज्ञादेना, सेवकों (निकृष्ट) छोटे लोगों को कार्य के लिए प्रेरित करना। निमन्त्रण श्राद्ध भोजन आदि में प्रवृत्तकराना। आमन्त्रण = इच्छानुसार आज्ञादेना, अभीष्ट = स्वागतसत्कार इत्यादि अर्थ कहना हो तब उसी अर्थ वाचक धातु से लोट् लकार हो।

(४१०) आशिषि=आशीर्वादअर्थं कहना हो, तब लिङ् लोट् दोनों लकारो का प्रयोग हो। आशीः अप्राप्तस्य प्राप्तुम् इच्छा, शुभकामना, प्रदान, यथा—ते पुत्रं भवतु भूयात् वा। जिसे पुत्र न होता हो, वहाँ अप्राप्तपुत्र प्राप्तिकी शुभकामना, यही आशीर्वाद है। हे हनुमन् 'त्वयि भक्तिर्भवतु' इति सीतायाः शुभकामना।

 CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भविता । ६ । तासस्त्योर्लोपः ७ । ३ । ५० । तासेरस्तेश्च लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये । ७ । रि च ७ । ४ । ५१ । रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः भवितास्मः । ८ । लृट् शेषे च ३ । ३ । १३ । भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां

आदेशे स्थानिवद्भावेन प्रत्यय मानकर 'चुटू' इति ड् इत् तस्य लोपः । 'आस्' डित् हो गया । यहाँ कप्प्रत्यय पर्यन्त के अन्दर स्वादिविभक्ति के न रहने से भ संज्ञा नहीं होगी । टिसंज्ञक तास् में आस् का लोप कैसे ? कथमस्य टेर्लोपः, तब बोले '**डित्वसामर्थ्यात्**—डा में 'ड' क्यों पढ़ा, उसकी इत्संज्ञा क्यों हुई ? इससे यह सिद्ध है जहाँ डित् हो वहाँ विना भसंज्ञाके भी टिका लोप होता है । अन्यथा डित् व्यर्थं होगा । इत्यनेन आस् भागस्य लोपे । वर्णसम्मेलने **भविता** । जहाँ दो कर्ता अनद्यतनभविष्यकालिक क्रिया करने वाले हों धातुसंज्ञक भू से लुट् तत्स्थाने प्रथमपुरुषस्य द्विवचनं तस् **'स्यतासी'** सूत्रेण **तास्** प्रत्ययः तस्य आर्धधातुकंशेषः इति आर्धधातुकसंज्ञायाम् **इट्**, गुणः अव् आदेशश्च । तस् स्थाने रौ आदेशे भवितास् + रौ इति दशायाम् । (६) **तास्शब्द** का तथा अस् धातु का लोप हो । सादि प्रत्यय परे रहते । इन दोनों का उदाहरण **भवितासि** तथा **असि** हैं । यहाँ सादिप्रत्यय परे नहीं हैं, किन्तु रादि हैं अतः । (७) **रि**=रकारादि प्रत्यय परे रहते **तथा**=तास् और अस् का लोप हो । यह लोप अन्त्य अल् के स्थान में होगा । रादि परे रहते तास् का अन्त्य अल् स् का लोप हुआ । **भवितारौ** । अनेक कर्ता, होनेवाली क्रिया का आधार तब बहुवचन झि तस्य स्थाने रस्, अन्य कार्यं पूर्ववत् **भवितारः** । 'त्वम्' कर्ता यदि कल, परसों (श्वः, परश्वः) होनेवाली क्रिया का आधार हो, तब म० पु० एकवचन सिप् भू+सि तास्, इट् आदि पूर्ववत् **'तासस्त्योः'** इति सादि (सिप्) प्रत्यय परे तास् सकारस्य लोपे । **भवितासि** । यत्र युवामिति कर्ता तत्र द्विवचने थस् रूपं, **भवितास्थः** । यत्र यूयमिति कर्ता तत्र बहुवचने **भवितास्थ** । यत्र अहं कर्ता, तत्र **भवितास्मि** आवां **भवितास्वः**, वयं **भवितास्मः** । अनेककर्तृक अनद्यतन भविष्यकालिक उत्पत्तिजनकव्यापारः । लृट्शेषे शेषपद की आवृत्ति करके प्रथम शेष का **उक्तादन्यः** शेष के अनुरोध से अद्यतन भविष्य सङ्गृहीत होता है । तथा द्वितीयार्थं शेषपदार्थ च से अनुवृत्त तुमुन्ण्वुलौ से क्रियार्था क्रिया के अध्याहार से असत्यां का अर्थ आया ।

(८) **शेषे**=सामान्य भविष्य हो अनद्यतन कल परसों श्वः, परश्वः के बन्धन से मुक्त (आज का भविष्य हो या कल का) उस काल का क्रियारूप अर्थ का वाचक (धातुसंज्ञक) धातु से **लृट्लकार** हो । च शब्द से क्रियार्था क्रिया की

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

त्रा। स्यः। इट्। भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः। ९ लोट् च ३।३।१६२। विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्। ४१० आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३।

अनुवृत्ति हो या न हो। किसी क्रिया से दूसरी क्रिया जुड़ी हो, या किसी क्रिया की सिद्धि के लिए दूसरी क्रिया करनी पड़े, या न पड़े। यथा—पठितुं गमिष्यति, यहाँ अध्ययन क्रिया की सिद्धि के लिए गमनक्रिया, क्रियार्था कहीं गयी। यही क्रिया सत्याम्=हो, या असत्याम्=न हो तो भी लृट्। पठिष्यति गमिष्यति इत्यादि भी होगा। कर्ता में सामान्यभविष्यत्कालिक उत्पत्तिजनकभवनक्रिया को कहना हो तब धातुसंज्ञक भू धातोः 'लृट्शेषे च' इति लृट्। अनुबन्ध लोपे, ल् स्थाने प्रथमपुरुषस्य एकवचनं तिप्, 'स्यतासी' सूत्रेण स्यप्रत्यये तस्य आर्धधातुकं शेषः इति आर्धधातुकसंज्ञायां तस्य वलादिः आर्धधातुकः इट् आगमे आर्धधातुकनिमित्तके गुणे अव् आदेशे। भविष्यति। जहाँ दो कर्ता सामान्य भविष्यकालिक होना क्रिया (रूप धारण) के आधार हों, वहाँ धातुसंज्ञक भू धातोः द्विवचने तस्, स्य, इट् गुणादिः; पूर्ववत्। सकारस्य रुत्वे वि० भविष्यतः। अनेककर्ता उक्तक्रिया फल का आधार हो, तब बहुवचनं झिप्रत्ययः 'झोऽन्तः' भविष्यन्ति 'त्वम्' युवां यूयं। उक्तक्रिया (फल) के आधार हों तब क्रम से म० पु० का सिप्; थस्, थ प्रत्यय होकर, भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ। यदि अहम्, आवां, वयम् कर्ता सामान्यभविष्यकालिक भवनक्रिया के आधार हों, तब उत्तम पु० मिप्, वस्, मस् क्रम से होकर भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः। यथा—रामो भविष्यति। यदि क्रिया में श्वः विशेषण होगा तब लृट् का प्रयोग अशुद्ध होगा, लुट् का प्रयोग शुद्ध। यदि अद्य विशेषण रहे तब लृट् शुद्ध होगा, यथा—अद्य पठिष्यामि सामान्यभविष्य में लृट् अनद्यतनभविष्य में लुट् का ध्यान आवश्यक है।

(९) च=विध्यादि अर्थेषु=विधिः प्रेरणा, आज्ञादेना, सेवकों (निकृष्ट) छोटे लोगों को कार्य के लिए प्रेरित करना। निमन्त्रण श्राद्ध भोजन आदि में प्रवृत्तकराना। आमन्त्रण = इच्छानुसार आज्ञादेना, अधीष्ट = स्वागतसत्कार इत्यादि अर्थ कहना हो तब उसी अर्थ वाचक धातु से लोट् लकार हो।

(४१०) आशिषि=आशीर्वादअर्थ कहना हो, तब लिङ् लोट् दोनों लकारो का प्रयोग हो। आशीः अप्राप्तस्य प्राप्तुम् इच्छा, शुभकामना, प्रदान, यथा—ते पुत्रं भवतु भूयात् वा। जिसे पुत्र न होता हो, वहाँ अप्राप्तपुत्र प्राप्तिकी शुभकामना, यही आशीर्वाद है। हे हनुमन् 'त्वयि भक्तिर्भवतु' इति सीतायाः शुभकामना।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ एरुः ३ । ४ । ८६ । लोट इकारस्य उः । भवतु । २ तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५ । आशिषि तुह्योस्तातङ् वा । परत्वात् सर्वादेशः भवतात् । ३ लोटो लङ्वत् ३ । ४ । ८५ । लोटस्तामादयः

अलब्ध का लाभ हो ऐसी शुभकामना अर्थवाचक धातु भूसे आर्शीवाद या आज्ञा अर्थ में लोट् तत्स्थाने तिप्, तस्य सार्वधातुकसंज्ञायां कर्तरि शप् तस्य पुनः सार्वधातुकसंज्ञा- सार्वधातुकार्धधातुकयोः इतिगुणे, अव् आदेशे, शप् अनुबन्धलोपे भवति (लट्लकारकी तरह) ततः (१) एः उः = लोट्लकार सम्बन्धी 'इ' के स्थानमें 'उ' हो। लोटके स्थानमें आये हुए तिप्रत्ययके इको 'उ' हुआ, भवतु। यहाँ भू प्रकृति है, उसका अर्थ भवनक्रिया है, तुप्रत्यय है। उसका अर्थ प्रेरणा, आज्ञा, स्वागत, सत्कार, आशीर्वाद है। अन्य प्रक्रियायें इन्हीं अर्थों की पोषिका हैं। प्रायः आशीर्वाद अर्थमें लोट्लकार। प्र० पु० म० पु० के एकवचनमें विशेषविधिसूत्र जो आशीर्वाद अर्थमात्रका विधान करता है।

(२) तुह्यो = 'तु' तथा 'हि' के स्थानमें 'तातङ्' आदेश विकल्पसे हो **आशिषि** = शुभकामना प्रदान, अर्थमें **अन्यतरस्याम्** = एषु अन्या अन्यतरा तस्याम् अन्य किसी आचार्यके मतमें। यहाँ तातङ् आदेश ही विशेषरूपसे आशीर्वाद अर्थमें प्रयुक्त है। विकल्प पक्षमें तु शब्द पूर्वोक्त सभी अर्थको कहेगा। यथा—प्रीत्यै भूयात् वरश्चिरञ्जीवी भवतात्, कन्या सावित्री भूयात्। तुके स्थानमें तातङ् = तात् होनेसे भवतात्। परत्वात् = तातङ् में ङ के इत् होने से ङित् आदेश 'तातङ्' अन्त्य अल् तु में उ को प्राप्त हुआ, अनेकाल् शित् सर्वस्य। तातङ् अनेकाल् आदेश है सम्पूर्ण के स्थान में प्राप्त हुआ, तब **विप्रतिषेधे** = तुल्यबलविरोधे **परम्** = इष्टं कार्यम्। सम्पूर्ण आदेश हुआ, पर होने से यद्यपि निरवकाश विधि अपवाद बनता है, परन्तु अनङ् आदि स्थल में चरितार्थ ङित् अपवाद नहीं है।

(३) लङः तुल्यं लङ्वत् स्थानषष्ठ्यन्ताद्वति। लङ्स्थानिक कार्यस्य आदेशः न तु लङ् निमित्तकस्य कार्यस्य, लोट् के स्थान में लङ्वत् = लङ्लकार की तरह **तामादयः** = तस् थस् थ मिप् के स्थान में ताम्, तम्, त, अम्, क्रम से हों। स लोपश्च, सकार का लोप भी हो। सलोपसूत्र तामादि विधायकसूत्र आगे दिये गये हैं। यथा—(४) ङितश्चतुर्णां = ङित् लकार के चार आदेश **तस् थस् थ** मिप् के स्थान में ताम् तम्, त, अम् आदेश क्रम से हों। तस् को ताम्। थस को (तम्)। थ (त) मिप् (अम्)। भवनार्थक भू धातु से आज्ञा प्रेरणा, सत्कार आदि अर्थ में तथा द्विवचन की विवक्षा में **लोट्**। तस्य स्थाने तस्, लोटो-लङ् की तरह कार्य हों, लङ्वद्भावे, 'तस्थस्थ' सूत्रेण तस् स्थाने 'ताम्' आदेशे। शप्, गुणावादेशे पूर्ववत् भवताम्। बहुवचने 'झि' झोऽन्त आदेशे एरुः इकारस्य

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सलोपश्च। ४ तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ३।४।१०१। ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात् स्युः। भवताम्। भवन्तु।
४१५ सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७। लोटः सेर्हिः, सोऽपिच्च। ६ अतो हेः ६।४।१०५। अतः परस्य हेर्लुक्। भव, भवतात्। भवतम्। भवत।
७ मेर्निः ३।४।८९। लोटो मेर्निः स्यात्। ८ आडुत्तमस्य पिच्च। ३।४।९२। लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च। हिन्योरुत्वं न इकारोच्चारण-सामर्थ्यात्। ९ ते प्राग्धातोः १।४।८०। ते गत्युपसर्गसंज्ञा धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः।

उकारे भवन्तु=प्रेरणा, आज्ञा सत्कारविषयिणः, सन्तु इत्यर्थः। यत्र त्वं कर्ता को प्रेरणा, आज्ञा, सत्कार, आशीर्वाद जनकक्रिया का आधार बनाना हो, वहाँ भव-नार्थक (क्रियावाचक) भू धातु से लोट् अनुबन्धलोपे लस्थाने म० पुरुषस्य एकवचने सिप् पकार लोपे शप् गुणावादेशाः पूर्ववत्। भव सि इति दशायाम्।

(४१५) सेः=लोट् स्थाने यः सि तत्स्थाने 'हि' भवति। सोऽपिच्च=वह आदेश अपित् हो। जिसका फल ङिवत् से गुणनिषेध। यथा—स्तुहि। प्रसङ्ग में अपित् का फल नहीं है। सि के स्थान में 'हि' आदेश को तातङ् आदेश सम्पूर्ण के स्थान में हुआ। तातङ् के अभाव पक्ष में हि का लुक्, निम्न सूत्र से (६) अतः अदन्त अङ्ग से परे 'हि' का लुक् हो। यत्र अदन्तम् अङ्गं भविष्यति। तत्र-तत्र हि इत्यस्य लुक् अभविष्यत्। अन्य स्थल में हि रहता है, यथा—देहि। जहि। यहाँ अदन्त होने पर भी असिद्धवदत्राभात् ज असिद्ध है। विरोध नहीं, प्रसङ्ग में हि का लुक् भव। तातङ् पक्षे भवतात्। मध्यम पु० द्विव० थस्, तत्स्थाने तम् आदेशे भवतम्। बहुवचने थ स्थाने त आदेशे भवत। यत्र अहम् इति कर्ता तत्र सत्तार्थक या आत्मधारणार्थक भू धातोः आज्ञा, सत्कार, आशीर्वादार्थे लोट् तत्स्थाने उत्तमपुरुषस्य एकवचनं मिप्। यलोपे शप् गुणावादेशदि होने पर भवामि।

(७) मेः=लोट् स्थानक मि के स्थान में नि-आदेश हो। इति नि आदेशे कृते (८) उत्तमस्य=लोट् के स्थान में उत्तम पु० के प्रत्यय को आट् हो पिच्च=वह आट् पित् हो। ट् की इत्संज्ञा से टित् प्रत्यय का आदि अवयव होता है। पित् का फल है, गुण का निषेध न होना। सवर्णदीर्घे भवानि इति। हिन्योः इति हि आदेश तथा नि आदेश के इकार को 'एरुः' से उत्व नहीं होता, इकार के उच्चारण सामर्थ्य से। यदि उत्व करना होता तो हि, नि उच्चारण न करते, इकारोच्चारण व्यर्थ होकर नियम बनाता है। हि नि को उत्व नहीं होता। यदि प्र का प्रयोग किया जाय वह भवानि के किधर ठहरे, तब बोले। (९) ते= गतिसंज्ञावाले उपसर्गसंज्ञावाले प्रपरा इत्यादि धातु के प्रागेव=पहले ही प्रयोक्तव्याः=संयोग करना चाहिए। प्रभवानि इति दशायाम्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४२० आनि लोट् ८।४।१६। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य लोडादेशस्य आनीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि (दुरः षत्व-णत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः) दुःस्थितिः। दुर्भवानि। (अन्तःशब्दस्याङ्किविधि-णत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्) अन्तर्भवाणि। १ नित्यं ङितः ३।४।९९। सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। (२१) अलोऽन्त्यस्येति सलोपः। भवाव। भवाम। २ अनद्यतने लङ् ३।२।१११। अनद्यतनभूतार्थ-

(४२०) उपसर्गस्थात्=उपसर्गे तिस्ठतीति उपसर्गस्थः=उपसर्ग में रहनेवाले णत्व के **निमित्त**=कारण र, ष, उससे परे लोट् के स्थान में हुए आदेश **'आनि'** के न को ण हो। इतिणत्वे कृते **प्रभवाणि**। क्योंकि णत्व का निमित्त कारण र, प्र में है। अतः णत्व हुआ। यद्यपि अट्कुप्वाङ् सूत्र से णत्व की संभावना हो सकती है, परन्तु अखण्ड पद (समानपद) न होने से यह सूत्र बनाना पड़ा। अर्थ—जिसमें निमित्त हो निमित्तिमान पद न हो वह अखण्ड पद है जैसे रामेण में निमित्त र है निमित्तिमान् पद स्थायी नहीं हैं। वह अखण्ड है। रामनाम र निमित्त है पर नाम निमित्तिमान् पद से घटित है।

(वा) **दुर्शब्द** को षत्व 'या' णत्व के विषय में उपसर्गसंज्ञा का प्रतिषेध=निषेध कहना चाहिए। 'दुर्' सदा क्रिया योग में उपसर्ग बने। जब षत्वणत्व का प्रश्न उठे, तब उपसर्ग न रहे। जैसे—**'दुः स्थितिः'** यहाँ दुर् उपसर्ग से परे स्था के सकार को **'उपसर्गात् सुनोति'** सुवतिस्यति इत्यादिसूत्र से षत्व प्राप्त है। परन्तु उपसर्गत्व के निषेध से षत्व नहीं हुआ।

दुर्भवानि यहाँ दुर् उपसर्ग में र को निमित्त मानकर **'आनि' लोट्** सूत्रेण णत्वे प्राप्ते तब उपसर्गत्व के निषेध से णत्वं न भवति (वा) **अन्तः शब्द को अङ्विधान किविधान** तथा **णत्वविधान** हो रहा हो, तब **उपसर्ग** संज्ञा कहनी चाहिए। क्योंकि अन्त शब्द प्रादिगण में नहीं आता। क्रिया योग में उसकी उपसर्गसंज्ञा असम्भव है। **अन्तर्धा** में अन्तर शब्द को उपसर्ग संज्ञा होने पर ही धा धातु से अङ्प्रत्यय होता है। **अन्तर्धिः** में उपसर्गसंज्ञा होने पर ही **उपसर्गे घोः किः** सूत्र से किविधान होता है। प्रसङ्ग में अन्तर शब्द को उपसर्गसंज्ञा का फल अन्तर्भवाणि में आनि लोट् से णत्व होना है।

(१) ङितः=ङित् लकार, लङ् लिङ्, लुङ् लृङ् के **उत्तमस्य**—उत्तम पु० के **सकारान्तस्य**=सकार अन्त में हो ऐसे प्रत्यय के स् का नित्य लोप हो। लोटो लङ्वत् के अतिदेश से लोट् लकार में भी प्रवृत्ति होगी। **अन्त्यस्य अलः**=प्रत्यय के अन्त्य अल् वर्ण का लोप हो इससे स्लोप हुआ। **भवाव, भवाम**। भू लोट् वस् मस् शप्, गुण, अव्, आदेश, आट् आगम, सवर्णदीर्घ, सल्लोपे रुपम्। (२) **न अद्यतन इति अनद्यतनः** (आज का नहीं) सचासौ भूतश्च। अनद्यतन जो

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात् । ३ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६ । ४ । ७१ । एष्वङ्गस्याऽट् ४ इतश्च ३ । ४ । १०० । ङितोलस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ।

४२५ विधि-निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट-संप्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१ ।

भूतः समाप्तक्रिया तदेव अर्थः भूतकालिकी की क्रिया तद्वाचकात् **धातोर्लङ्** **अद्यतन**=पहले दिन की बीती क्रिया (भूतकाल) अर्थ को कहने वाली धातु से लङ् हो । इसका सूचक (ह्यः) पद है वही अनद्यतनभूतकाल को प्रगट करता है । ऐसी स्थिति में ही लङ् का प्रयोग शुद्ध है ।

(३) लुङ् लङ् लृङ् परे रहते अङ्गसंज्ञक को अट् का आगम हो, वह उदात्त हो । टित् होने से अङ्गसंज्ञा के आदि में **आद्यन्तौटकितौ** के नियम से हो । लावस्थायाम् अटि, जब लकार रहता है, तभी अट् होने का नियम है । तिप् आने पर नहीं । ङित् लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञकप्रत्यय इकारान्त हों, उसके अन्त इ' का लोप हो । **अभवत्**=पूर्व दिन तक की समाप्तक्रिया रुप भूतकाल (कर्त्ता में) निश्चित् हो तब भवनार्थक धातुसंज्ञक भू से अनद्यतने भूतार्थे लङ् परे अट् आगमः । टित् होने से भू के आदि में अ हुआ । लङ् स्थाने प्र० पु० एकवचनं तिप् । अनुबन्धलोपे शप् गुण अवादेशे । इतश्च ङित् लकारस्य परस्मैपद इकारान्त ति उसका अन्त इका लोपो जातः । **अभवताम्**—यत्र द्वौ कर्तारौ तत्र द्विवचने तस् तस्य स्थाने ताम् आदेशे अट् शप् गुणादिकार्यं पूर्ववत् । अनेककर्ता में अनद्यतन भूत कालिक क्रिया अर्थ कहना हो भू धातु से लङ् अट् झि, शप्, गुण, अव्, **अभवन्ति** इतश्च इकारलोपे तकारस्य संयोगान्तलोपे, **अभवन्** यत्र आज दिन के पहले पैदा होना क्रिया समाप्त हो । त्वं युवां यूयं कर्ता हो वहाँ भू से मध्यम पु० सिप् थस्, थ, क्रम से होते हैं । अन्य कार्य पहले की तरह जानें । सि के इकार का लोप स् को रुत्व विसर्ग । थस् थ के स्थान में क्रम से तम् त आदेश होते हैं । यत्र अहम् आवां वयं कर्ता हो, वहाँ उ० पु० मिप् तत्स्थाने 'अम्' **अभवम्** । वस, मस् परे नित्यं ङितः इति सलोपः । आवां **अभवाव** । **अभवाम** । हम लोग कलपरसों उपस्थितथे ।

(४२५) **शब्दार्थ**—विधिः=विपूर्वक धा धातु का प्रेरणा, सेवकों को आदेश देना भृत्य (नौकर) मजदूर आदि निकृष्ट (छोटों) को कार्य में प्रवृत्त कराना, स्वागत सम्मान करना । यथा—इह भुञ्जीत । ओचनं पच या पचेतम् । यहाँ चावल पकाओ भोजन करो । अहरहः सन्ध्याम् उपासीत् । प्रतिदिन सन्ध्याकरो । गुरु सुश्रूषां कुर्यात् । अन्यथा पापं भवेत् इत्यादि विधि के उदाहरण हैं । **निमन्त्रण**= आग्रहपूर्वक नियोगपूर्वक कार्ये प्रवर्तनम् । भाई बन्धुओं को, श्रेष्ठ लोगों को,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ।

सम्मान पूर्वक प्रेरणा करना, किसी कार्य में लगाना अर्थ है। इसलिए आवश्यक **श्राद्ध भोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् ।** श्राद्ध हो, भोजन हो दुहिता (लड़की) के लड़के की, पुरोहित जी को विवाहादि मङ्गल कार्य में सभी श्रेष्ठ जनों को आग्रह पूर्वक निमन्त्रण देना जैसे—**भो ! भागिनेय** (भाञ्जे) **भो आचार्य** (गुरु) **भो पुरोहित** मम श्वः (कल) भाविनि (उत्सवे) त्वम् आगच्छ, भवान् आगच्छतु । कल मेरे व्रत उत्सव में अवश्य पधारें । **आमान्त्रण**=काम चारानुज्ञा, इस प्रेरणा में प्रेर्यमाण व्यक्ति को स्वतन्त्रता रहती है। निमन्त्रण की अपेक्षा इस प्रेरणा में हलकापन है, कम दबाव, इच्छाधीन प्रेरणा, इसलिए आमन्त्रण को **कामचार**=यथेच्छ विचार की **अनुज्ञा**=आज्ञा पालन प्रेरणा, स्वीकार प्रेर्यव्यक्ति उस आज्ञा को माने या न माने उसकी इच्छा पर निर्भर । यथा **इह आसीत् भवान्**, आप यहां ठहरें, **मम विवाह महोत्सवे प्रीतिभोजने** भवान् आगच्छतु, **आगच्छेत्** वा । मेरे प्रीतिभोज में आप पधारें, इस प्रेरणा में आग्रह नहीं अपितु **अनुरोध** है। **अधीष्टः**=अधिपूर्वक इष् धातु का सत्कारपूर्वक व्यापार (व्यवहार) यह प्रेरणा, पूज्य लोगों के प्रति होती है। इसे **सत्कारपूर्वको व्यापारः** । सम्मान पूर्वक किसी कार्य में प्रेरित करना । पुत्रम् अध्यापयेद् भवान् । यहां पूज्यगुरु जन को भवान्, श्रीमान्, कहकर कि 'मेरे पुत्र को पढ़ाइये' इस सत्कार पूर्विका अध्यापना में लिङ् का प्रयोग है।

सारांश—१—अपने से छोटे या न्यून, सामर्थ्य वालों को प्रेरणा **विधि** है। २—विशेष आग्रह (अवश्य बुलाने) की प्रेरणा **निमन्त्रण** है। ३—उससे कम बल वाली प्रेरणा जिसमें इच्छा का अनुरोध हो वह **आमन्त्रण** है। ४—जिस प्रेरणा में स्वागत सत्कार की **चेष्टा हावभाव** समादर प्रदर्शित किया जाय उसे **अधीष्ट** कहते हैं। ५—**सम्प्रश्न**=सम्प्रधारण=उचित अनुचित निर्णय के मिए प्रेरणा या परामर्श लेना यथा—भो ! वेदमधीयीय उत्तर्कम् । मैं वेद पढ़ूँ या न्यायशास्त्र । इसके निश्चय के लिए परामर्श सलाह की प्रेरणा है। प्रार्थना= याचना । भो पुस्तकं लभेय भोजनं च । आप पुस्तक प्राप्त करें और भोजन भी । ये छ प्रेरणा क्रियायें मानी जाती हैं। ये अर्थ यदि कर्ता में लक्षित हों तब धातु से लिङ् का विधान है। (६) **परस्मैपदेषु**=लिङ के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय को यासुट् आगम हो, वह उदात्त हों । ङिच्च=ङित् भी माना जाय । ङित् का फल गुण निषेध, टित् का फल है यासुट् के यास का आदि अवयव होना । यद्यपि लिङ् के ङित् को स्थानिद्भाव से करके गुण का निषेध सम्भव था, तथापि ङित् ग्रहणव्यर्थीभूय ज्ञापयति **क्वचित् अनुबन्धकार्येपि अनल्विधौ इति**

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३ । ४ । १०३ । लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च । ७ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७ । २ । ७९ । सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते । ८ अतो येयः ७।२।८० । अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् । गुणः । ९ लोपो व्योर्वलि ६ । १ । ६५ । भवेत् । भवेताम् ।

४३० झेर्जुस् ३ । ४ । १०८ । लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः ।

निषेधः प्रवर्तते । कहीं अनुबन्ध मानकर कार्य होना हो वहाँ भी अनल्विधौ से स्थानिवद्भाव का निषेध ही । उसका फल वक्षमाणा में ङीप् का न होना । कर्ता में जब आज्ञा (जोर देकर प्रेरणा) या इच्छानुसारी प्रेरणा आदर सत्कार, निश्चय, निवेदन की प्रेरणा क्रिया में अनुभूत हों । भवेत् । तब धातुसंज्ञक भू से लिङः तस्य स्थाने तिप् शप, अनुबन्धलोपे, गुणे अवादेशश्च । भव + ति 'इतश्च' इकार लोपे, अत्र परस्मैपदसंज्ञक त् इति । तस्य यासुट् आगमे स्थानिवद्भावेन लिङ् स्थाने ति, तत्स्थाने तिप् आदि को यासुट् आगम । यत् आगमः = जिसको अगम हुआ है, तद्गुणीभूताः = उसी के गुण में लीन हो जाता है, उसके ग्रहण से उसका भी ग्रहण होता है तद्ग्रहणेन गृह्यते । त् को यासुट् हुआ है त् का धर्म परस्मैपद तथा ङित् से ओत-प्रोत हो गया । त् के ग्रहण से यासुट् का भी ग्रहण होगा । अतः 'यास्त्' इतना लिङ् हो गया ।

(६) लिङः — सार्वकातुकलिङ्के अनन्त्यस्य = अन्त में न हो किन्तु मध्य या आदि में हों ऐसे स् का लोप हो । इस सूत्र से यास् के स् का लोप प्राप्त हुआ । तं बाधित्वा । (८) अतो = अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक लकार आ अवयव (अंश) यास् के स्थान में इय् हो । प्रसङ्ग में यास् भी 'यदागम' परिभाषा से सार्वधातुक का अङ्ग हो गया । भव 'इय्' त् इति दशायाम् 'आद्गुणः' गुणे एकादेशे । (९) वलि — वल् प्रत्याहार के अक्षर परे हों तब व्योः = वकारयकारयोः । व या य का लोप हो । यहाँ वल् प्रत्याहार में त् को देखकर थकारस्य लोपो जातः भवेत् भवेताम् । जहाँ दो कर्ता में सम्भाविनी प्रेरणा समझ में आवे, वहाँ लिङ् के स्थान में तस् तत्स्थाने तस्थस्थमिपाम् इति ताम् आदेशे' शेषं कार्यं पूर्ववत् । बहुवचने झि प्रत्यये शप् गुणे, अवादेशे, यासुट्, इय्, आदेशे भवेय् + झि, । (४३०) लिङ् के स्थान में झिको जुस् हो । इत्यनेन झिस्थाने जुस्, जकार लोपे उस, सकारस्य रु० वि० । भवेयुः । प्रेरणा आदि अर्थवाचक भू धातु से लिङ् । त्वं युवां यूयं कर्ता हो, तब सिप् इकारलोपे । सकारस्य रु० वि० भवेः । थस् स्थाने तम् आदेशे भवेतम् । थस्थाने त कृतं भवेत । एवम् उत्तम पुरुषस्य मिप् स्थाने अम् आदेशे । वस् मस् घटक[illegible]कारस्य नित्यंङितः इति लोपे । भवेयम्,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम । १ लिङाशिषि ३ । ४ । ११६ । आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् । २ किदाशिषि ३ । ४ । १०४ । आशिषि लिङो यासुट् कित् (१०९) स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः । ३ क्ङिति च १ । १ । ५ । गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म । ४ लुङ् ३ । २ । ११० । भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ।

भवेव, भवेम । :(१) आशीर्वाद अर्थ में लिङ् के स्थान में तिङ् आदेश को आर्धधातुकसंज्ञा हो । (२) आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार को हुआ यासुट् आगम कित् हो । स्कोः = संयोग के आदि में स् तथा क का लोप हो । (६) ग क् ङ् जहाँ इत् हों उसे ग्क्ङित् कहते हैं । गित् कित् ङित् प्रत्यय को निमित्ति कारण मानकर इग्लक्षण = इक् को लक्षण (उद्देश्य) या स्थानी मानकर गुण तथा वृद्धि नहीं होती । इको गुणवृद्धी परिभाषा सूत्र से जहाँ इक् को गुण वृद्धि प्राप्त हो उसी को निषेध करता है । यदि कित् ङित् गित् परे हो तो, प्रायः सार्वधातुकार्धधातुकयोः, पुगन्तलघूपधस्य च । सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु । मिदेर्गुणः इत्यादिस्थल है । अन्यगुणवृद्धि को जहाँ इक् का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं हैं, निषेध नहीं होता । भवनार्थक भूधातोः आशीर्वादार्थे लिङ्, प्रथमपुरुषैकवचने 'ति' प्रत्ययः । यासुट् आगमे इतश्च इकारलोपे अनुबन्धलोपे भूया स्त् 'स्कोः' संयोगाद्योरन्ते च संयोग के आदि सकार का लोप । अत्र 'लिङाशिषि' सूत्रेण तिपः आर्धातुक संज्ञायाम् । तस्य फलं लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' इति सलोपो न । तेन कर्ता अर्थे शप् न भवति । इगन्ताङ्गस्य भू इत्यस्य गुणे प्राप्ते यासुट् 'किदाशिषि' सूत्रेण कित् 'ग्क्ङितिच' इति गुणनिषेधे भूयात् । एककर्तृक आशीर्वादभवनानुकूल व्यापारः । ते शुभं भूयात् । द्विवचने तस्, तस्य स्थाने ताम् आदेशे, आर्धधातुक संज्ञायां शप् न भवति । सलोपोऽपि न, भूयास्ताम् । अत्र 'स्कोः' इति सलोपो न, पदान्तस्य अभावात् । भूयात् में सपदान्त था । यहाँ 'त' में अ होने से पदान्त नहीं है । भूयास्ताम् बहुवचन भूयास् झि । झि स्थाने जुस्, रुत्वे विसर्गे भूयासुः । सिप् प्रत्यये अनुबन्ध लोपे । जहाँ आशीर्वाद की भवन क्रिया का आधार त्वम् युवां यूयम् हो, वहाँ म० पु० सिप् 'इतश्च' इकारलोपे यास् सकारस्य संयोगादिलोपे द्वितीयसकारस्य रुत्वविसर्गौ भूयाः । थस्, थ स्थाने तम् त आदेशे भूयास्तम्, भूयास्त । जहाँ आशीर्वादजनकक्रिया का आधार, अहम् आवां वयम् हो, वहाँ उत्तम पु० एकव० मिप्, तस्य अम् आदेशे भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म । नित्यं ङितः । इति अन्त्यसकारस्य लोपः । ये कित् के उदाहरण हुए । ङित् का उदाहरण इनः । गित का उदाहरण । जिष्णुः ।

(४) भूतकाल (क्रिया समाप्त) अर्थ में धातु से लुङ्लकार हो ।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४३५ माङि लुङ् ३ । ३ । १७५ । सर्वलकारापवादः । ६ स्मोत्तरे लङ् च ३ । ३ । १७६ । स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् । ७ च्लि लुङि ३ । १ । ४३ । शबाद्यपवादः । ८ च्लेः सिच् ३ । १ । ४४ । इचावितौ । ९ गाति-स्था घु-पा भूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २ । ४ । ७७ । एभ्यः सिचो लुक्स्यात् । गापाविहेणादेश-पिबती गृह्येते । ४४० भूसुबोस्तिङि ७ । ३ । ८८ । भूसू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न ।

---

(४३५) माङ्शब्द के योग (सम्बन्ध में) लुङ् हो, सभी लकारों को बाध कर । सभी लकारों के विषय में लुङ् समझे । यथा—क्लैब्यम् मास्मगमः पार्थः नैतत्त्वयि उपपद्यते । हे अर्जुन नपुंसक निष्क्रिय, कायर मत बनो । यहाँ भूतकाल नहीं है किन्तु मा के योग में एवं 'शोकं वृथा मा कृथा' । व्यर्थ शोक मत करो । माङ्प्रयोगे सर्वलकाराणां स्थाने लुङ् एव जायते । मा वद मा वदेत् । यहाँ यद्यपि लुङ् नहीं है यतोहि माङ शब्द से भिन्न माँ शब्द अव्यय है वह माङ् नहीं है, अतः लुङ् न भवति । (६) स्मशब्द माङ् शब्द के उत्तर में हो । तब लङ् लकार और लुङलकार भी हो ।

(७) लुङ्परे रहते शप् श्यन् आदि विकरण को बाधकर च्लि हो । (८) च्लि के स्थान में सिच्—इच् की इत्संज्ञा स् । (९) गा धातु, स्था, घुसंज्ञक, पा भू धातु से परे सिच् का लुक् हो परस्मैपदपरे रहते । इस सूत्र में गा, पा धातु कौन लिए जाँय, तब बोले—'इणादेशपिबती गृह्येते' इण्गतौ के स्थान में गा आदेश हुआ हो, उससे सिच् का लुक् समझे । जिस पा को पिप आदेश हुआ हो उसी का ग्रहण जाने । पा पाने न तु पा रक्षणे । (४४०) भू और सु धातु की सार्वधातुक तिङ्परे रहते गुण नहीं होता । अभूत् । सत्तार्थक भूधातोः 'समाप्त भवन क्रिया' अर्थे कर्तरि लुङ्, च्लि लुङि इति सूत्रेण शपं बाधित्वा च्लिप्रत्यय च्लिस्थाने 'च्लेः सिच्' इति सिचि अनुबन्धलोपे लुङ्स्थाने तिप् 'इतश्च' इकारलोपे 'गतिस्था' इति सिच्प्रत्ययस्य लुक्कृते अभूत् । भूतकाल में उत्पत्तिक्रिया समाप्त हो तब अभूत्का प्रयोग । अभूताम्—होना क्रिया अर्थ में दो व्यक्ति रूपधारण कर चुके हों तब भू धातोः भूतकाले अर्थे लुङ् शपं बाधित्वा च्लि, तत्स्थाने सिच् तस्य लुक् लुङ् स्थाने द्विवचने तस्, तस्य ताम् आदेशे । अनेककर्ता सत्तानुकूलसमाप्त क्रिया के आधार हों तब भू धातोः लुङ अट् आगमे च्लि, सिच् तस्य लुक्, लुङ्स्थाने झि, झकारस्य अन्त आदेशे , लुङ्सम्बन्धी अच्परे 'भुवोवुक्' आगमे अनुबन्धलोपे इकारलोते तकारस्य संयोगान्तलोपे अभूवन् । अनेक कर्तृक समाप्तभवनक्रियाका कर्ता त्वम्, यूवां, यूयम् हो वहाँ क्रम से म० पु० का 'सिप् थस्, थ इकारलोप सकारस्य रुत्वविसर्गौ, च्लि आदिकार्यं पूर्ववत् । अभूवम् समाप्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम । १ न माङ्योगे ६ । ४ । ७४ । अडाटौ न स्तः । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मा स्म भूत् । २ लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३ । ३ । ३ । हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्-निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् इत्यादि ज्ञेयम् । अत सातत्यगमने । २ । अतति ।

भवन क्रिया का आधार यदि अहम् आवां वयं हो । तब उत्तम पु० का मिप्, तस्य अम् आदेशे वुक् आगमे । द्विवचने वस् मस् सकारस्य लोपे (नित्यंङितः इति सूत्रेण) लकाराणां प्रयोगः । धर्मात् सुखं भवति । यथा—भक्तध्रुवस्य सुखं बभूव । तथैव श्वः तवापि सुखं भविता । सदा सुखं भविष्यति । धर्मे अनुरागो भवतु । शरणागतस्य सुखम् अभवत् । त्वयि सुखं भवेत् । भगवन् सदा सुखन्ते भूयात् । पुण्येन सुखं अभूत् । यदा अध्ययनम् अभविष्यत् तदा परीक्षा, उत्तीर्णा अभविष्यत् ।

(१) माङ्योगे=धातु से माङ्शब्द का सम्बन्ध हो, तब अट् और आट् नहीं होते । यथा—मां भवान् भूत्—यहां मा शब्द का भू धातु के साथ सम्बन्ध है । इसलिये भूत् में अट् नहीं हुआ । इसी प्रकार मा स्म भवत् । अत्र माँ शब्दस्य उत्तरभागे स्म शब्दो वर्तते । उसके योग में अट् आगम का निषेध । स्मोत्तरे लङ्च से हुआ । इसी प्रकार मा स्म भूत् में भी अट् नहीं हुआ ।

(२) लिङ् निमित्ते=हेतुहेतुमद्भाव जहाँ फललाभ के लिए क्रिया में कार्य-कारणभाव लिङ् का निमित्त (बीज) हो तथा उसमें भविष्यकालिकक्रिया होना हो तब धातु से (हेतुहेतुमंतोंलिङ्) सूत्र से हेतु (कारण) हेतुमद (कार्य) अर्थ प्रगट हो, तब लृङ्लकार हो । यथा—कृष्णं नमेत् चेत्, सुखं यायात् यदि कृष्ण को नमस्कार करे , तब सुख लाभ हो, यहाँ कृष्ण भगवान् को नमस्कार करना सुख लाभ मे कारण है । अतः कार्य को हेतुमद् कहते हैं, परन्तु क्रियायाः= क्रिया की अनिष्पत्तौ=असिद्धिः गम्यमानायाम्=ज्ञान हो रहा हो तो । यथा— सुभिक्षं तदा अभविष्यत् जब अच्छी वर्षा होगी । तब सुभिक्ष धनधान्य सम्पन्नता होगी । यहाँ धनधान्य सम्पन्नता में अच्छी वृष्टि कारण है । और सुभिक्ष कार्य हैं । यहाँ क्रिया भविष्य कालकी है । कार्यकारण दोनों अर्थ की क्रिया कहने वाला लृङ् लकार है । इस अर्थ में भू धाधोः लृङ् भ् इत्यस्य, अङ्ग संज्ञा अट् आगमें ल्स्थाने तिप् 'इतश्च' इति इकारलोपे शपं बाधित्वा 'स्यतासी' सूत्रेण स्यप्रत्यये, आर्ध-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३ अत आदेः ७ । ४ । ७० । अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् लिटि । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत । आतिव ।

धातु संज्ञायाम्, वलादेः इडागमे गुणे अव् आदेशे प्रत्यय-अवयवसकारस्य षत्वे । **अभविष्यत्** । द्विवचने तस् तस्य ताम्, आदेशे, अट् स्य इट् गुण अवादेश षत्वम् पूर्ववत् । बहुवचने झि इकारलोपे अन्त आदेशे तकारस्य संयोगान्तलोपे । मध्यम पुरुषस्य सिप् थस् थ । उत्तम पुरुषस्य मिप् स्थाने अम् आदेशे द्विवचने, बहुवचने च अतोदीर्घो यञि इति दीर्घे, नित्यंङितः' इति सलोपे । यहाँ भू धातु के सभी लकारों की क्रिया पूर्ण की गयी । काल अर्थ मुख्य है । भूत, वर्तमान भविष्य भेद से काल स्त्रिविधः । सभी भूतकाल में लुङ । अप्रत्यक्षभूतकाल में लिट् । अनद्यतनभूत में लङ । शुद्ध वर्तमानकाल प्रचलितक्रिया अर्थ में लट् । शुद्ध भविष्यकाल में लृट् अनद्यतन भविष्य में लुट् । क्रिया के कार्यकारण भाव में लृङ् । लट्, लोट्, लङ विधिलिङ् । इनके परे रहते शप् श्यन् श, ना आदि होते हैं । अन्य लकारों में आर्धधातुक कार्य की प्रधानता है । क्रिया के योग में प्र, परा, अनु, अव इत्यादि को उपसर्गसंज्ञा कही गयी है । भू धातु क्रिया का वाचक है जब उससे उपसर्ग जुड़ता तब अर्थ में भेद हो जाता है । यथा—**प्रभवति**=प्रभावशाली होता है । या प्रगट होता है । **पराभवति** । हारता है । या अपमानित, तिरस्कृत, पराजित, होता है । **सम्भवति** । ठीक से होता है या सम्भव है । **अनुभवति**—अनुभव करता है । **परिभवति** "परौ भूवोऽवज्ञाने" तिरस्कृत होता है । प्रादुर्भवति, आविर्भवति, अभिभवति, उद्भवति, उक्तञ्च-उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते प्रहाराहारसंहारविहारःपरिहारवत् ।

(२) अत्धातु निरन्तर गमन अर्थ में प्रसिद्ध । अत के त का अकार उदात्त एवं इत् संज्ञक है । उसका फल परस्मैपद होना है । यत्र-यत्र उदात्तो अकारः तत्र-तत्र **परस्मैपदम्** । यत्र अनुदात्तो अकारः तत्र-तत्र **आत्मनेपदम्** । अत्र प्रमाणम्—अनुदात्त ङित् आत्मनेपदम् इति । यथा—**एधते** । जहाँ स्वरित अकार है वहाँ दोनों पद, **यजति यजते** । अतधातु में उदात्त अकार इत् होने से परस्मैपद सिद्ध है । निरन्तरगमनार्थक **अतधातोः** वर्तमानकाले कर्तरि लट् तत्स्थाने प्रथम पुरुषस्य एकवचनं 'ति' कर्तरि शप् अनुबन्धलोपे **अतति** । 'एक कर्ता में निरन्तर गमन क्रिया हो । गङ्गा सदा बहती है । **अततः**=दो कर्ता में निरन्तर गमनक क्रिया । **अतन्ति**—अनेक कर्ता में वर्तमान कालिकनिरन्तर उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारः । वर्तमानकालिकनिरन्तरगमन क्रिया का आधार त्वम्, अहम्, आदि हो तब **अतसि** अतथः, अतथ । वह निरन्तरगमन क्रिया उ० पु० के कर्ता में हो **अतामि** **अतावः अतामः** । (३) अभ्याससंज्ञक 'आदेः अत'—आदि अकार को दीर्घ हो । निरन्तर गमनक्रिया अर्थ बोधक अत् धातु से परोक्ष समाप्तगमन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आतिम । अतिता । अतिष्यति । अततु । ४ आडजादीनाम् ६ । ४ । ७२ । अजादेरङ्गस्याऽट् लुङ्-लङ्-लृङ्क्षु । आतत् । अतेत् । अत्यात् । अत्यास्ताम् ।

क्रियाकाले अर्थे लिट्लकारे तस्य स्थाने परस्मैपदे प्र० पु० तिप् तस्य स्थाने णल्= **अत्+अ** इति स्थिते अत् इत्यस्य द्वित्वे, प्रथम अत् को अभ्याससंज्ञा 'पूर्वोऽभ्यासः' अजादिधातु के अभ्याससंज्ञक का आदि शेष रहे । अन्य हल् का लोप हो। हलादि शेषः । इति लोपे, अ अत् अ, अतो गुणे इति अकारस्य पररुपे प्राप्ते, तं बाधित्वा 'अत् आदेः' इति सूत्रेण अभ्यासस्य आदि-अकारस्य दीर्घे । ततः सवर्णदीर्घे **आत । आततुः** प्रयोग साधने की शैली वही है, केवल द्विवचन तस् तस्य स्थाने अतुस्, झिस्थाने उस् इति विशेषः । **आतिथ**=अत्र सिप् स्थाने थल् आर्धधातुक संज्ञा इट् आगम इति विशेषः । यहाँ निरन्तरगमनक्रिया काल परोक्ष भूतकाल है, णल्, व, म उत्तम पु० में होते हैं। **अतिता**=निरन्तर गमनकक्रिया अर्थवाचक अत् धातु से आगामी भविष्यकाल अर्थ में लुट् तिप् (डा=आ)तास् डित्वात् आसलोपः आर्धधातुकसंज्ञा इट् आगमः । **अतितारौ**=कल दो व्यक्ति निरन्तर गमन करेंगे । **अतितारः** = अनेकव्यक्ति का निरन्तरगमनक्रिया **अतितासि,** अतितास्थः, अतितास्थ, अतितास्मि अतितास्वः अतितास्मः । सामान्यभविष्य निरन्तरगमनकाल अर्थ में लृट् ति, स्य, इट्, इत्यादि **अतिष्यति** भविष्यति की तरह रुप चलेगा । जहाँ विधि, आज्ञा, प्रेरणा प्रवर्तना, निर्णय, सत्कार, आशीर्वाद, आदि अर्थ गमन क्रिया से प्रगट होते हों तब लोट् लकार हो। **अततु**=अत्, लट्, तिप्, शप्, एरुः=ति के इ को उः । तु को विकल्प से **तातङ्**=तात् । **अततात्, अतताम् अतन्तु ।** अत, अततात् अततम्, अतत । अतानि, अताव अताम ।

(४) **अजादीनाम्**=अच् प्रत्याहार के अक्षर आदि में हो ऐसे अङ्गसंज्ञक धातु को **आट्**=आ आगम हो, लुङ् लङ् लृङ् लकार परे। यह अट् आगम का बाधक है। अजादि धातु को आट् तथा हलादि धातु को अट् आगम का नियम निश्चित जाने । लङ् सर्वदा=गमन अर्थवाचक धातुसंज्ञक अत=धातोः पूर्वदिन की समाप्त निरन्तरगमनक्रिया (काल) अर्थ में 'अनद्यतने लङ्' तस्यस्थाने तिप् लावस्थायाम् अजादीनां धातूनाम् **आट्आगमें** आटश्चेति वृद्धि, । सार्वधातुक संज्ञा शप् अनुबन्धलोपे **आतत् ।** एककर्तृक अनद्यतभूतकालिक (समाप्त) निरन्तरगमनकक्रिया इति अर्थः । द्विवचने तस् तस्य 'ताम्' आदेशे **आतताम् ।** आत झि, तस्य स्थाने अन्ति, अनयोः लोपे । अनेक कर्ता में पूर्वदिन की समाप्त गमन क्रिया । यही अर्थ प्रत्येकरूप में होगा । म० पु० सिप्, थस्=तम् थ=त त्वम्, युवां, यूयम्, कर्ता में समाप्तगमनकक्रिया का रुप । **आतः, आततम् आतत ।** उ० पु० में **आतम्, आताव, आताम ।** **अतेत्**=निरन्तरगमनार्थक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

लुङि सिचि इडागमे कृते। ४७५ अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६। विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः। ६ इट ईटि ८।२।२८। इटः परस्यसस्य लोपः स्यादीटि परे। (सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः। आतीत्। आतिष्टाम्। ७ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४। १०९। सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्। आतिषुः

अत् धातु से आशीर्वाद आज्ञा, प्रेरणा, निश्चय, प्रार्थना, अर्थ में लिङ् तिप् शप् या सुट्, इय्, गुण, यलोप, इकारलोप। **अतेताम्**, अतेयुः। अतेः अतेतम् अतेत। अतेयम् अतेव अतेम। गमनाय शुद्धआशीर्वाद अर्थ में अत धातु से आशीर्लिङ्, तिप् याम्, इकारलोप, अत्यात्। एकवचने, 'स्कोःसंयोगाद्योः' इति सलोपः 'लिङः सलोप' इति सलोपो=न, आशीर्लिङ् इति आर्धधातुकसंभवात्। अत्यात्, अत्यास्ताम्, अत्यत्सुः। अत्याः अत्यास्तम् अत्यास्त। अत्यासम्, अत्यास्व, अत्यास्म। यदा-गमनार्थक अत्=धातोः सामान्यभूत (समाप्त क्रिया) काले अर्थे लुङ् च्लि तस्य सिच् आदेशः लुङ् स्थाने तिप्, अनुवन्धलोपे। सिच् सकारस्य आर्धधातुकशेषः सँज्ञा, वलादिः अस्ति एव। 'वलादेः 'आर्धधातुकस्य' सकारस्य इट् आगमे। आत् इस्त् इति दशायां तकारस्य अपृक्तसंज्ञा।

(४४५) **अस्ति**—विद्यमानवाचक अव्यय है, सिच्च और अस्च। उपस्थितसिच् तथा अस् धातु से परे अपृक्तसंज्ञक हल् 'त' को ईट् का आगम् हुआ लावस्था में ही आट्, टकारलोपे आटश्चेति वृद्धिः। आत् ईस्ईत् इति दशायाम्। (६) इट्से परे स का लोप हो, ईट परे रहते। इति सिच् सकारस्य लोपे सवर्णदीर्घे। न च सवर्णदीर्घस्य अपेक्षया इटः ईटि सूत्रेण सकारलोपः त्रिपादी, सो असिद्धः स्यात्, कथं दीर्घ इति। (वा) सिच्लोप होने पर एकादेशे= दीर्घ एकादेश सिद्ध ही रहता है। आतीत्। द्विवचने आट्, तस्=ताम्, सिच् आर्धधातुकसंज्ञा, इट, षत्व ष्टुत्व, आतिष्टाम्। अनेककर्ता सदागमनक्रिया समाप्त कर चुके हों तब बहुवचने आतिस्झि। (३६) सिच्, अभ्यस्तसंज्ञक (जागृ आदि) तथा विद् धातु से परे ङित् सम्बन्धी झि के स्थान में जुस् आदेश हो। प्रसङ्गे सिचः परः लुङ् लकार एव मिलति। झि स्थाने जुस्, जकारलोपे रुत्वे विसर्गे आतिषुः। आतीः—अत्र सिपः इकारलोपे सकारस्य रुत्वे विसर्गे। आतिष्टम् थस् स्थाने तम् षत्वे। आतिष्ट। थ स्थाने त। मिप स्थाने अम् आतिषम्। निरन्तरगमन क्रिया का कार्यकारणभाव देखा जाय, तब लृङ् अत् से लृङ् आट् ति, स्य, इट्, इकारलोप। आतिष्यत् आतिष्यताम् आतिष्यन्। आतिष्याव आतिष्याम।

सिध् धातु का गमन करना या सिद्ध होना या सीझना अर्थ है, क्योंकि

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आतीः। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। षिध गत्याम्। ३। ८ ह्रस्वं लघु १।४।१०। ९ संयोगे गुरु १।४।११। संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात्।

४५० दीर्घं च १।४।१२। गुरु स्यात्। १ पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६। पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। (२२५) धात्वादेरिति सः। सेधति। षत्वम् सिषेध। २ असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५। असंयोगात् परोऽपिल्लिट् कित् स्यात्। सिषिधतुः। सिषिधुः। सिषेधिथ सिषिधथुः। सिषिध। सिषेध। सिषिधिव। सिषिधिम। सेधिता। सेधिष्यति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्।

गच्छति अर्थ में निश्चित अनुभूत नहीं है। (८) ह्रस्वं=एकमात्रा को लघुसंज्ञा, सिध् का इ एक मात्रिक है। उसका लघुनाम पड़ा। धातु के आदि के ष को स हो जाता है। (९) संयोगे=संयुक्त अक्षर परे हो तो पूर्ववर्ण ह्रस्व को भी गुरुसंज्ञा हो। जो दो मात्रा मान्य है। (४५०) दीर्घं=दो मात्रिक अक्षर को भी गुरु संज्ञा हो। (१) पुगन्त=पुक्=प् आगम हो जिसके अन्त में तथा लघूपधस्य=लघुसंज्ञक अक्षर हो उपधा (अन्त्य अल् का पूर्ववर्ण) ऐसे अङ्गसंज्ञक के इक्=ई ऊ ऋ लृ को गुण हो, अव्यवधान में सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो। पुगन्त के गुण का उदाहरण अन्य प्रकरण के पुङ्णौ के प्रसङ्ग में मिलेगा। अर्पयति ह्रेपयति। लघूपध का उदाहरण गमनार्थक षिध् धातुः धात्वादेः षः सः षोपदेश का फल णत्वं अग्रे वक्ष्यते। वर्तमानकाले कर्तरि तिप् शप् अनुबन्ध लोपे, इकारस्य लघुसंज्ञा; उपधासंज्ञा च, (ह्रस्वं लघु, अलोन्त्यात् पूर्वोवर्णः उपधा)। लघूपधस्य इकारस्य गुणे सेधति। सेधतः सेधन्ति। इत्यादि गमनार्थक सिधधातोः परोक्ष भूतकालिक गमनक्रिया अर्थे लिट् तस्य स्थाने प्र० पु० एकवचनम् तिप् तस्य स्थाने परस्मैपदानां 'णलतुसुस्थल्' सूत्रेण णल् आदेशे अनुबन्धलोपे सिध् धातोः द्वित्वे सिध् सिध् अ। प्रथमस्य अभ्याससंज्ञा हलादिशेषे, द्वितीयशब्दस्द इकारस्य उपधासंज्ञा, लघुसंज्ञा, लघूपधगुणे अभ्यास इकार को इण् मानकर उससे परे उत्तर भाग में आदेश का सकार होंने से आदेश प्रत्ययोः इति षत्वे सिषेध। सीझने की क्रिया पूर्व दिन में समाप्त हो चुकी हो। दो कर्ता हो, तब द्विवचन, सिसिध अतुस् सिसिधतुः। अत्र लघूपधगुणे प्राप्ते। (२) असंयोगात्=संयोगसंज्ञा न हुई हो उससे परे अपित्=पित् भिन्न लिट् लकार कित् हो। तिप् सिप् मिप् ये पित् हैं, इनके स्थान में णल्, थल् णल् ये तीनों भी पित् हैं। अन्य सभी आदेश अपित् होने से कित् होते हैं। जिसका फल 'क्ङिति च' से गुणनिषेध है। सिषिधतुः, इसी प्रकार सिषिधुः थल् वस्, मस् में है। इट् (वलादिलक्षण) प्राप्त अत् धातु के समान

CC-0. Varanasi Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

असेधीत् । असेधिष्यत् । एवं चितीसंज्ञाने ।४। शुच शोके । ५ । गद व्यक्तायां वाचि । ६ । गदति । ३ नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च ८ । ४ । १७ । उपसर्गस्थान्निमितात् परस्य नेर्नस्यणो गदादिषु परेषु । प्रणिगदति । कुहोश्चुः ७ । ४ । ६२ । अभ्यासकवर्ग-हकारयोश्चवर्गादेशः ।

४५५ अत उपधायाः ७ । २ । ११६ । उपधायाः अतो वृद्धिः स्यात्

रूप । **सेधिता**, आगामी दिन की गमन, (सिद्धि) क्रिया अर्थ में लुट्, तिप् तास्, डा, इट् लघूपधगुणे, शेषरुप **भविता** की तरह । सामान्य भविष्यकालिक गमन क्रिया काल अर्थ में । **सेधिष्यति** सेधिष्यतः सेधिष्यन्ति । गमनसम्बन्धी आज्ञा प्रेरणा प्रार्थना आदि अर्थ बोधक लोट् लकार में । **सेधतु** **सेधतात्** सेधताम् सेधन्तु । सेध; सेधतात् सेधतम् सेधत । सेधानि सेधाव **सेधाम** । अनद्यतन गमन या सिद्ध होने की क्रिया समाप्त हो चुकी हो । तब लङ्, अट् तिप् इकार लोप शप्, गुण **असेधत्** । असेधताम् असेधन् । असेधः असेधतम् असेधत । असेधम् असेधाव **असेधाम** । विधि निमन्त्रण आमन्त्रण आदि गमनक्रिया से सम्बन्ध रखते हों सेधेत् सेधेताम् सेधेयुः । सेधेः सेधेतम् सेधेत । सेधेयम् सेधेव **सेधेम** । शुद्धआशीर्वाद अर्थवाचक लिङ् **सिध्यात्** सिध्यास्ताम् सिध्यासुः । गमन क्रिया समाप्त काल अर्थ में सिध + लुङ् अट् तिप् इकारलोप च्लि, सिच् वलादि इट ईट सलोप, दीर्घ, **असेधीत्** । असेधिष्टाम् असेधिषुः । असेधीः असेधिष्टम् असेधिष्ट । असेधिषम् असेधिष्व । **असेधिष्म** । क्रिया के भविष्यकालिक कार्यकारण भाव अर्थ में लृङ् असेधिष्यत् असेधिष्यताम् असेधिष्यन् इत्यादि । उपसर्ग से अर्थ बदलता है विप्रतिषेधे शब्द में प्रतिउपसर्ग से सिधधातु का तुल्यवलविरोध अर्थ हुआ । **प्रतिषेधति**, निषेधति, मना करता है निषेध करता है । एवं (४) चित् धातु संज्ञान = यथार्थ ज्ञान, सम्यक्ज्ञान, चेतना, होश में आना । ईकार इत्संज्ञक का फल **श्वीदितो निष्ठायां** सूत्र की प्राप्ति । सिध धातु की तरह सम्यक् ज्ञान अर्थ में चित् धातु का रुप सभी लकारों में होगा । अथार्थ ज्ञान या चेतना होने की क्रिया वर्तमान रहने पर । **चेतति** । परोक्ष भूतकाल होने पर । **चिचेत** । भविष्य काल की चेतना, या यथार्थ ज्ञान का विषय हो । तब **चेतिता** । सामान्यसत्य भावी हो तब **चेतिष्यति** । प्रेरणा में **चेततु** । पूर्व दिन की यथार्थ ज्ञान की समाप्ति क्रिया अर्थ में । **अचेतत्** । **चेतेत्** आशीर्वाद अर्थ में तुम्हें चेतना हो चित्यात् । सम्यक् ज्ञान होने की क्रिया कभी भी पूरी हो चुकी हो । तब अचेतीत् अचेतिष्टाम् । अचेतिष्यत् ।

(५) इसी प्रकार **शुच् शोके**=चिन्ता के अनुकूल क्रिया चिन्ता, दुख, ग्लानि, सोच, होने अर्थ में शुच धातु प्रसिद्ध है । शोक चिन्ता पैदा होने के अनुकूल क्रिया

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ञिति णिति च प्रत्यये परे। जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद। ६ णलुत्तमो वा ७।१।९१। उत्तमो णल् वा णित्स्यात्। जगाद, जगद। जगदिव। जगदिम। गदिता। गदिष्यति।

चलती रहे तब लट् शोचति। पूर्व दिनों में शोक चिन्ता की परोक्षकालिक समाप्ति क्रियाकाल अर्थ में लिट्। शुशोच। शुशुचतुः शुशुचुः। श्वः (कल) परश्वः (परसों) अपरश्वः (नरसों) शोकचिन्ता भावी हो तब लुट् शोचिता। किसी समय भावी हो, तब शोचिष्यति जहाँ शाप हो, दुःख के लिए आशीर्वाद हो तुम्हें अपार दुख हो, अर्थ में शोचतु शोचतात् शोचताम् शोचन्तु। अनद्यतन भूतकाल में शोकहोने की समाप्ति क्रिया अर्थ में अशोचत्। शोक की सम्भावना या प्रेरणा के लिए शोचेत् शोचेताम्, शोचेयुः शोक होने के लिए आशीर्वाद की सम्भावना हो तो शुच्यात्। किसी समय शोक हो चुका हो भूतकाल में अशोचीत्। शोक क्रिया के कार्यकारण भाव में अशोचिष्यत्। (६) गद्धातु का व्यक्त बोलना स्पष्ट उच्चारण के अनुकूल क्रिया अर्थ है। कर्ता में स्पष्ट बोलने की क्रिया या असंदिग्ध वर्ण का उच्चारण चल रहा हो तब लट् तिप् शप् इत्यादि। गदति। गदतः गदन्ति। यदि प्रनि उपसर्ग लग जाय तब बलात् अर्थ बदल जाता है। प्रनि गदति (३) उपसर्गस्थात् उपसर्ग (प्रप्ररा) आदि में स्थित निमित्त णत्वके कारण र ष उससे परे नि के न को णत्व हो। गद् आदि धातु परे रहते। गद स्पष्ट बोलने की क्रिया, नद मूकध्वनि, पत्=पतन (गिरना), पदगतौ-चलने अर्थ में घूसंज्ञक, दाधा आदि, मा (माप तौल, नापना) षो अन्तकर्मणि, नाश करना। हन्=हिंसा, या प्रापणे, वा=हवाका बहना। प्सा-भक्षण वप=बोना, वह=ढोना, शम = शान्त होना, चि = चुनना दिह=उपचय (लीपना वृद्धि) इति सूत्रेण णत्वे। प्रणिगदति। यहाँ समानपदत्व या अखण्डपद न होने से अट्कुप्वाङ् से णत्व नहीं सम्भव था। यहाँ उपसर्गस्थ प्र में णत्व का निमित्त र है प्रणिगदति की तरह प्रणिनदति, प्रणिददाति, प्रणिचिनोति आदि को समझे। वर्ण के स्पष्ट उच्चारण यदि बीते दिन के परोक्षकाल समाप्त क्रिया हो, तब गद् धातु से लिट्, तस्य स्थाने प्रथमपुरुषस्य तिप् णल् लिट् धातो' इति द्वित्वे, अभ्यास संज्ञा, हलादिशेष इति दकारलोपे, ग गद् अ।

(४) कुहोश्चुः—कुश्च हुश्च कुहू, तयोः, कवर्ग हकारयोः अभ्यास संज्ञक कवर्ग क, ख, ग, घ, ङ् तथा ह कारके स्थान में चवर्ग, च छ ज झ ञ् आदेश हो, कवर्ग को क्रम से चवर्ग हो। ह के स्थान में आन्तरतम्य (वाह्यप्रयत्न) देखकर झकार होकर, जश्त्व चर्त्व आदि हो। यहाँ अभ्याससंज्ञक कवर्ग 'ग' है उसको च वर्ग 'ज' हुआ अथवा [illegible] चर (क) उसको जश्त्वेन ज। जगद् अ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् । ७ अतो हलादेर्लघोः ७ । २ । ७ । हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत्; अगदीत् । अगदिष्यत् । णद अव्यक्ते शब्दे । ७ । ८ णो नः ६ । १ । ६५ । धात्वा-

---

इतिस्थिते (४५५) उपधा (अन्त्य अक्षर का पूर्ववर्ण अकार को वृद्धि (आ) हो, ञिति णिति प्रत्यय परे रहते । अन्त्य वर्ग 'द' उसके पूर्व ग में अ उसको वृद्धि हुई । णित् प्रत्यय अ है । जगाद दो कर्ता स्पष्ट वर्ण उच्चारणपरोक्षकालमें कर चुके हो । गदधातोः द्विवचने तस् तस्य स्थाने अतुस् । गद को द्वित्वादिः गद् गद् जगद् । अतुस् रुत्वे विसर्गे जगदतुः । अनेककर्ता परोक्षकालमें स्पष्ट वर्णोच्चारण कर चुके हों तब जगदुः । म० पु० के कर्ता हों तब म० पु० सिप् तस्य स्थाने थस् बलादि आर्धधातुक इट् जगदिथ । उत्तम पु० मिप् तस्थ स्थाने णल् अ आदेशे । (६) उ० पु० का णल् विकल्प से णित् हो । णित् पक्षे वृद्धिः जगाद अभाव पक्षे न वृद्धिः जगद । वस् मस् परे नास्ति । बलादि-आर्धधातुक इट् जगदिव । श्वः=आगामिदिन वर्णोच्चारण होनेवाला हो, तब लुट्, तास् ति, डा आस्लोप, इट् गदिता गदितारौ गदितारः । सामान्यभविष्य में स्पष्ट उच्चारण करनेवाला कर्ता हो तब गदिष्यति । आशीर्वाद आज्ञा, स्पष्ट उच्चारण के लिए हों, तब गदतु गदतात् गदताम् । गदन्तु । पूर्वदिनकी बीती हुई स्पष्ट उच्चारण क्रिया का कर्ता हो, तब अगदत् अगदताम् अगदन् । स्पष्ट उच्चारण की संभावना प्रेरणा प्रार्थना निश्चय हो, तब गदेत् गदेताम् गदेयुः उच्चारणके लिए शुद्ध आशीर्वाद देना हो तब गद्यात् गद्यास्तां गद्यासुः (७) हलादेः=हलादिधातुके लघु अकार को वृद्धि विकल्प से हो इडादौ=इट् आदिमें हो, ऐसे परस्मैपदका सिच् परे । अगादीत् । स्पष्ट वर्णोच्चारण अर्थवाला धातुसंज्ञक गद् से भूतकाल (समाप्त उच्चारण क्रिया) अर्थ में लुङ् अट् तिप् इकारलोपे च्लिसिच् तस्य बलादि आर्धधातुक इट्, अस्ति सिचो, इति सिचः सकारस्य अपृक्तस्य ईट् आगमे अनुबन्धलोपे, अगद इस् ईत् इति दशायाम् हलादिधातुः गद्, तस्य लघु-अकारस्य आकार वृद्धिः । इडादिसिच् परे अस्ति । इटः ईटि सकारलोपे अगादीत् । यदा न वृद्धि तदा अगदीत् अगादिष्टाम् अगदिष्टाम् अगादिषुः अगदिषुः । अगादीः अगदीः अगादिष्टम् अगदिष्टम् अगादिष्ट अगदिष्ट अगादिषम् अगदिषम् अगादिष्व अगदिष्व, अगादिष्म अगदिष्म । क्रिया के हेतु हेतुमद् भाव अर्थमें अगदिष्यत् । (६) णद धातु अव्यक्त (अस्फुट, अस्पष्ट) शब्द=उच्चारण अर्थ में है । नदी, बादल, सिंह, नगाड़ा आदि के आवाज में स्पष्ट वर्ण नहीं होते । (८) धात्वादेः=धातुके आदि में ण हो तो उसको न हो । इस प्रकार धातुके आदि में सभी ण 'न' बन जाते हैं । क्या यह स्थिति सभी णकारादि धातु की होगी ? तब बोले णोपदेशाः=आठ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

देर्णस्य नः। णोपदेशास्त्वनर्द्-नाटि-नाथ-नाध-नन्द-नक्क-नृ-नृतः । ९ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः । प्रणदति । प्रणिनदति । नदति । ननाद ।

४६० अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०। लिण्निमित्ता-देशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽसंयुक्तहल्मध्यस्थस्याऽत एत्व-

---

धातु को छोड़ कर सभी णोपदेश हैं। जिनका फल अग्रिम सूत्र में बोलेंगे। नर्दशब्दे, अस्फुट ध्वनि। नट् अवस्कन्दे=शरीर हिलाकर नाचना, नाधृ याञ्चा। उपताप ऐश्वर्य। आशीर्वाद मानना। क्लेश सहना प्रभुता आदि। नाधृ याञ्चा, टुनदि सम्वृद्धौ) सम्यक् वृद्धिः अधिक धन शक्ति होना। प्रसन्न करना। नक्क नाशने (विनाश) नक नकाना। नृ नये, ले जाना। नृती, गात्रविक्षेपे ; शरीर से भाव दिखाना, नाचना। ये णोपदेश नहीं हैं (९) उपसर्गात्=उपसर्ग प्रप्ररा आदि में स्थित णत्वका निमित्त (कारण) रेफसे परे णोपदेशस्य=उच्चारण दशा में ण हो, ऐसे धातु के न को ण हो। असमासेऽपि=समास न होने पर भी। क्योंकि समासमें एकार्थीभाव होने से अखण्डपद मानकर णत्व पूर्वसूत्र से ही सिद्ध है। प्र उपसर्ग का नदति के साथ समास न होने पर भी उपसर्ग में स्थित र से परे णत्व हुआ। प्रणदति प्रकर्ष ध्वनिकर्त्ता। एवम् प्रनिनदति में समास नहीं है। णत्व हुआ। प्रणिनदति। निरन्तर तेज ध्वनि, बलीवर्द जैसा। नेर्गद इति णत्वम्। नदति वर्तमानकालिक ध्वनिकरने वाला नद् लट् तिप् शप् नदति। परोक्षकालिक अस्पष्ट ध्वनिकर्ता अर्थ में नद् लिट् तिप् णल् द्वित्वे नद्-नद् अभ्यास-कार्ये हलादिशेषे, अत उपधायाः इति वृद्धिः । ननाद ।

(४६०) अनादेशादे=न आदेशः अनादेशः आदिः इत्यादिः। लिट् लकार को निमित्त मानकर कोई आदेशादि कार्य (जैसे—कुहोश्चुः अभ्यासे चर्चः आदि के कार्य) न हुए हों ऐसा जो अङ्ग उसका अवयव असंयुक्त=संयोग रहित हल् मध्यस्थ=मध्य में रहने वाला ह्रस्व अकार को एकार हो। अभ्यास का लोप हो कित् लिट् परे। यह सूत्र ह्रस्व अकार को एकार करता है। यदि संयोग न हो। तथा अङ्ग के आदि वर्ण को लिट् निमित्तक आदेशादि कार्य न हुआ हो कित् लिट् परे हो। अव्यक्त उच्चारण की क्रिया परोक्ष अनद्यतनभूतकाल में समाप्त हो उस अर्थ में नद् धातोः लिट्, प्रथम पुरुषस्य द्विवचने तस् स्थाने अतुस् द्वित्वे हलादिशेषे ननद् अतुस्। नद् इत्यत्र ह्रस्व अकारो अस्ति, संयोगो नास्ति, लिट् परे कश्चन् आदेशोऽपि नास्ति। कित् लिट् अतुस् परे अस्ति, अभ्यास नकारस्य लोपः, द्वितीय नकारस्य यो अकारः तस्य एकारे रुत्वे विसर्गे, नेदतुः। बहुवचने उसि नेदुः। मध्यमपुरुषस्य एकवचने नद् लिट् सिप् थल् पित् होने से पित् हुआ। जो पित् है

CC-0. Vashishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

मभ्यासलोपश्च किति लिटि । नेदतुः । नेदुः । १ थलि च सेटि ६।४।१२१। प्रागुक्तं स्यात् । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद, ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत् । अनदीत् । अनदिष्यत् । टुनदि समृद्धौ । ८ । २ आदिर्ञि-टु-डवः १ । ३ । ५ । उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः । ३ इदितो नुम् धातोः ७ । १ । ५८ । नन्दति ।

वह कित् नहीं । पूर्वसूत्रमे एत्व प्राप्त नहीं है । ननद थ इति दशायाम् वलादि आर्धधातुक इट् कृते ।

(१) सेटि थलि — इट् के साथ थल् परे हो तो, पूर्वोक्तदशा में एत्व तथा अभ्यास लोप हो । प्राग्-उक्तम् पहले कहा गया । नेदिथ । अथुस् परे । नेदथुः नेदुः । म० पु० का कर्ता परोक्षकालिकसमाप्त अव्यक्तहित उच्चारण क्रिया हो । उत्तम पु० का कर्ता णल् वस् मस् । अहं कदाचिन् ननद । आवां कदाचिन् नेदिव । वयं कदाचिन् नेदिम् । णलुत्वमो वा । उ० पुरुषस्य णल् विकल्पेन णित् भवति । आगामी दिनका अस्फुट उच्चारण क्रिया हो । नदिता । सामान्य भविष्य-कालिक अस्पष्ट उच्चारण कर्ता अर्थ में । नदिष्यति । आज्ञा आशीर्वाद अर्थ में । नदतु । बीते दिनों गर्जना किया हो । अनदत् । वीर पुरुष की गर्जनाके लिए प्रेरण प्रार्थना । नदेत् । नद्यात् । मेघाः अनादीत् । सामान्य नदनसमाप्तक्रिया अर्थ में नद् लुङ् अट् तिप् सिच् वलादि इट् अपृक्त ईट्, सिच् लोपः दीर्घः इटः ईटि सलोपः । अतो हलादेर्लघोः । इति विकल्पवृद्धिः अनादीत् यदा न वृद्धिः तदा अनदीत् । (८) टुनदि-टु, इ, इत् संज्ञक नद् धातु समृद्धिः अधिक धनधान्य वृद्धिः आनन्द होना अर्थ है ।

(२) उपदेशे — प्रथम उच्चारज दशा में धातु के आदिभूत ञि, टु, डु, की इत्संज्ञा हो । आदिशब्दमें एकवचन है । उसका सुपविभक्ति बहुवचन अर्थका प्रकाशक है । यतः ञिटु ड वः के बहुवचने से मिलाने के लिए विभक्तियाँ द्योतिका वाचिका भी होती हैं । (३) इदितः — इकार इत् हो जिस धातुका उसे इदित् कहते हैं । उसको नुम् का आगम हो । उम् इत्संज्ञक होने से नकार मित् है । है । वह अन्त्य अच् के आगे हो । बिना किसी निमत्त के नुम् होने से अन्तरङ्ग कार्य हुआ । जो सबसे पहले होगा नदि में इकार इत् होनेसे नुम् होकर नन्द धातु माना जायेगा । धन, सम्पत्ति, आनन्दवर्धकक्रियावाचक नन्द धातु से प्रचलित-समृद्धि क्रियायाः वर्तमानकाले अर्थे लट्, तिप् शवादिः नन्दति नन्दं कृष्णः । यदि वह सम्वृद्धि, आनन्दजनक क्रिया पूर्वदिन में अदृष्ट तथा समाप्ति क्रिया का काल हो तब नन्द लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, अभ्यासादिकार्य । ननन्द ननन्दतुस्तो । ननन्दुः । ननन्दिथ, ननन्दथुः यूयं ननन्द । अहं ननन्द आवां ननन्दिव । वयं कदा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ननन्द। नन्दिता। नन्दिष्यति। नन्दतु। अनन्दत्। नन्देत्। नन्द्यात्। अनन्दीत्। अनन्दिष्यत्। अर्च पूजायाम्। ९। अर्चति। ४ तस्मान्नुड् द्विहलः ७।४।७१। द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतादकारात् परस्य नुट् स्यात्। आनर्च। आनर्चतुः अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्च्यात्।

ननन्दिम। उपधा में अकार न होने से वृद्धि नहीं होती। श्वः नन्दिता (कल आनन्दित होंगे)। सदा नन्दिष्यति। हमेशा खुश रहेगा। विधि आज्ञा अर्थ में नन्दतु। ह्यः (कल) अनन्दत्। सम्वृद्धि काल समाप्ति। आनन्द की सम्भावनार्थं नन्देत्। आनन्दके लिए आशीर्वाद-नन्द्यात्। समृद्धि की क्रिया सामान्य रूप से समाप्त हो चुकी हो, तब अनन्दीत् नन्द लुङ् तिप् इकार लोप च्लि, सिच्, 'इट ईटि' सलोपे सवर्णदीर्घे अनन्दीत्। सम्मृद्धि क्रियामें कार्यकारणभाव हो तब अनन्दिष्यत्।

(९) अर्च् धातु पूजा, आह्वान, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पाञ्जलि आदि अनेक अर्थ एक क्रिया में मिलते हैं (पचति में अनेक अर्थ समुदायवत्) पूजार्थक अर्चधातोः वर्तमानकाले = प्रचलितपूजनक्रिया अर्थ में लट् जो कर्ता काल दोनों का स्मारक है। तिप् शप् अर्चति, अर्चतः, अर्चन्ति। (४) द्विहलः दो हल् या अनेक हल् हो जिस धातुमें उस धातुके दीर्घीभूतात् = दीर्घ हुए अकारसे परे नुट् हो अतआदेः से दीर्घ हुआ, अकार अभिप्रेत है। पूजार्थक अर्चधातोः पूर्वदिनकी समाप्तपूजन क्रिया के परोक्ष अर्थ में लिट् तिप् णल् द्वित्व अभ्यासहलादिशेषः। अतआदेः अ अर्च् अ इति दशायाम् अतआदेः सूत्रेण अभ्यासस्य अकारस्य 'दीर्घे' आ अर्च्' अ, अयं धातुः द्विहल् इति। र्च युक्तः। दीर्घीभूतः अभ्यासस्य आकारः, तस्मात् परस्य अकारस्य नुट् आगमे मित्वात् अर्च अकारस्य आदौ भवति 'आनर्च' द्विवचने अतुस् सर्वा क्रिया पूर्ववत्। आनर्चतुः आनर्चुः। त्वम् आनर्चिथ। युवाम् आनर्चथुः यूयं आनर्च। अहम्, आनर्च। आवां आनर्चिव। वयं आनर्चिम। श्वः अर्चिता। सदा शिवम् अर्चिष्यति। त्वं पितरम् अर्चतु। रावणः शिवम् आर्चत्। यदि गुरुम् अर्चेत्। अर्च्यात्। ब्राह्ममुहूर्ते देवं आर्चीत्। शिवश्चेत् आर्चिष्यतादः। जगत् आर्चिष्यत्। लङ् लुङ् लृङ् में आट् आगम आटश्चेति वृद्धि इतिविशेषः। (१०) व्रज धातु का गति=गमनजनकक्रिया अर्थ है। वह क्रिया वर्तमान रहे तब धातुसंज्ञक व्रज् से लट् तिप् शप्। व्रजति। यदि प्र या परि उपसर्ग लग जाय तब सन्यास लेना अर्थ होता है। परिव्रजति। प्रव्रजति। सन्यास ग्रहणकरता है। अनूपसर्ग से पीछे चलना अर्थ है। अनुव्रजति। अव व्रजति, नीचे गिरता है। वही व्रजन (गमन) आजदिन के पहले अदृष्ट क्रियासमाप्त हो, तब लिट् तिप् णल् द्वित्व अभ्यास, हलादि शेष, उपधा दीर्घ। वव्राज वव्रजतुः वव्रजुः। वव्रजिथ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आर्चीत्। आर्चिष्यत्। व्रज गतौ।१०। व्रजति। वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्।

४६५ वद-व्रज-हलन्तस्याचः ७।२।३। एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत्। कटे वर्षावरणयोः।११। कटति। चकाट। चकटतुः। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्। कट्यात्। ६ ह्म्यन्तक्षणश्वस्-जागृणि-श्व्येदिताम् ७।२।५। हमयान्तस्य

वव्रथुः वव्रज। वव्राज वव्रज, वव्रजिव वव्रजिम। व्रज के संयुक्त हल् होने से एत्व अभ्यासलोप नहीं होता। बजन् क्रिया आगामी दिनों में सम्भव हो तब लुट्। प्रव्रजिता। कल परसों का ही भविष्य न हो। तब सामान्य भविष्यत् काल में लृट् प्रव्रजिष्यति व्रजनक्रिया आज्ञा, प्रेरणा में, व्रजतु। अनद्यतन भूतकालिक गमन क्रिया, अव्रजत्। जाने की संभावना, स्वागत, सत्कार आदि में व्रजेत्। व्रजेतां व्रजेयुः आशीर्लिङ् व्रज्यात्।

(४६५) एषां=वद् व्रज तथा हलन्त धातुओं के अच् को वृद्धि हो सिच् परक परस्मैपद परे हो। हलन्तधातु में व्रज् वद्, यद्यपि हैं, तथापि वद् व्रज को 'अतो हलादेर्लघोः' से प्राप्त वृद्धि का निषेध नेटि सूत्र से होता है। इसलिए सूत्र में विशेष रूप से पढ़े गये गमनार्थक व्रजधातोः समाप्त गमन क्रियार्थकाले लुङ्, तिप्, अट्, च्ले, सिच्, इट् ईट, सलोप। वदव्रजहलन्तस्याच इति वृद्धिः। इकारलोपे। अव्राजीत्। क्रिया के कार्यकारणभावमें लृङ् भवान् अव्रजिष्यत् तदा अहम् अव्रजिष्यम्। आप जायें तब मैं जाऊँ। (११) एकार इत् संज्ञक कट् धातु का वर्षा, वृष्टिः (बरसना) तथा आवरण=आच्छादन ढँकलेना। यह वर्षा या आवरण की क्रिया वर्तमान रहे। तब कटति। बरसता या ढकता है। लिट् में कट-कट ककट कुहोश्चुः। वृद्धौ चकाट। अद्यतनके पहले समाप्तवर्षण या आच्छादन की अप्रत्यक्ष क्रिया अभ्यासमें चवर्ग आदेश होने से एत्वअभ्यासलोपौ न भवतः। चकटतुः कित् होनेसे न दीर्घः। श्वः परश्वो वा। कटिता मेघः कटिष्यति। सः दुग्धं कटतु। वह दूध को ढ़क दे। ह्यः अकटत् कल वर्षा हुई थी। कटेत् वर्षा होनी चाहिए। यदि आवरण करे। स ज्ञानं कट्यात्। वह ज्ञान की वर्षा करे।

(६) हमय अन्त में हो, क्षण्, श्वस्, जागृ, ये धातु ण्यन्त श्वी तथा एकार इत्, धातुओं के इड् आदि सिच् परे हो, तो वृद्धि न हो। ह अन्त—अग्रहीत्। ग्रहपूजायाम्। क्रम पादविक्षेपे। पग बढ़ाना अक्रमीत। हय्गतौ अहयीत्। क्षण हिंसायाम्। अक्षणीत्। श्वस प्राणने अश्वसीत्। जागृनिद्राक्षये। अजागरीत्। यद्यपि ण्यन्त से परे सिच् नहीं मिलता, उसे यह होता है। अतः वेद में ण्यन्त के

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि । अकटीत् । अकटिष्यत् । गुपू रक्षणे । १२ । ७ गुपू धूप-विच्छि-पणि-पनिभ्य आयः ३ । १ । २८ । एभ्य आयप्रत्ययः स्यात् स्वार्थे । ८ सनाद्यन्ता धातवः ३ । १ । ३२ । सनादयः कर्मेणिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति । ९ आयादय आर्धधातुके वा ३ । १ । ३१ । आर्धधातुक विवक्षायामायादयो वा स्युः । (कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि) ।

निषेध का महत्व है । एकार इत् का उदाहरणः—वर्षा या आवरणार्थक कट से लुङ् तिप् इट् ईट् सलोप, दीर्घ आदि । अकटीत् । 'बदव्रजहलन्त' सूत्रेण प्राप्त वृद्धेः निषेधः । यदि मेघः अकटिष्यत् तदा ग्रीष्मशातिः अकटिष्यत् । १२ ऊकार इत्संज्ञक गुपधातु, सुरक्षा के अनुकूल क्रिया अर्थः (७) गुपू रक्षणे धूप (तप्त करना) विच्छ, गमन । पण्, पन, व्यवहारे । तथा स्तुति करना । इन धातुओं से आय प्रत्यय स्वार्थ में हो, स्वं प्रकृतिः (गुप्) तस्य अर्थः (रक्षारूपः) स्वार्थः तत्र भवः स्वार्थिकः । जो प्रकृति (गुप) का अर्थ है, वही अर्थ आय प्रत्यय का भी जाने । क्योंकि अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति । जिस प्रत्ययका अर्थ अनिर्दिष्ट हो, कहा न गया हो, वह स्वार्थिक होता है । जो निर्निमित्तक होने से सर्वप्रथम होगा । वह आर्धधातुकं शेषः से आर्धधातुकसंज्ञक लघूपधा में हो ऐसा अङ्ग, गुप के इक् (उकार) को लघूपधा अङ्ग को गुण ओकार । तब गोपाय । अकारान्त, जिसको । (८) सन् आदि क्यच् इत्यादि हो । कम आदि धातु से (सन् से णिङ् प्रत्यय पर्यन्त) जितने प्रत्यय हैं वे अन्तमें हों उनको धातुसंज्ञा होती है । धातुत्वात्=धातुसंज्ञा का फल लट् आदि की उपस्थिति है । इति सूत्रेण धातुसंज्ञा । लट् तिप् शप् अतोगुणे पररुप-एकादेशे गोपायति गोपायतः गोपायन्ति । गोपायसि गोपायथः गोपायथ । गोपायामि गोपायावः गोपायामः । वर्तमानकालिका एककर्तृका अनेककर्तृका वा रक्षणकक्रिया ।

(९) आर्धधातुके=आर्धधातुकसंज्ञकप्रत्यय की विवक्षा (वक्ता की इच्छा) हो, तब आयादिप्रत्यय विकल्प से हों । सनादि १२ हैं । (सन् क्यच् काम्यच्, क्यङ् क्यषोऽथाचारक्विप् वणिज्यङौ तथा, यगाय इयङ्णिङ् चेति द्वादशामी सनादयः । (वा) काश् तथा अनेकाच् धातुओं से आम्प्रत्यय वक्तव्य=कहना चाहिए । आस् तथा काश् धातु से आम् शब्द में मकार विधान से म की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा नहीं होगी । अन्यथा म का विधान व्यर्थ होगा । रक्षणार्थक गुप्धातो आयादयः आर्धधातुके वा इति सूत्रेण आर्धधातुकविवक्षा अस्येव । अत विकल्पेन आयप्रत्यये । लिट्च सूत्रेण आर्धधातुकसंज्ञा आय् प्रत्ययः प्रथमं भवति । रक्षणानुकूलक्रियार्थक गुप् धातोः आय सनाद्यन्ता धातवः इति धातुसंज्ञायाम् । अयं धातुः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आस्कासोराम्विधानान् मस्य नेत्त्वम् ।

४७० अतो लोपः ६ । ४ । ४८ । अर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप अर्धधातुके । १ आमः २ । ४ । ८१ । आमः परस्य लुक् । २ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३ । १ । ४० । आमन्ताल्लिट्परा: कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते । तेषां द्वित्वादिः । ३ उरत् ७ । ४ । ६६ । अभ्यास ऋवर्णस्याऽत् स्यात् । रपरः वृद्धिः । गोपायाञ्चकार ; द्वित्वात् परत्वाद्यणि प्राप्ते । ४ द्विर्वचनेऽचि

अनेकाच् । अतः आम् वक्तव्यः । समाप्तरक्षणक्रिया अर्थेलिट् । गोपाय आम् लिट् । आम् प्रत्ययः । तिङ् शिद् भिन्नः धातोः विधानं कृतः अतः आर्धधातुकं शेषः इति आर्धधातुकसंज्ञा ततः ।

(४७०) अतः आर्धधातुकसंज्ञाके उपदेश – उच्चारणकालमें यदन्तम् = जो अदन्त अङ्ग हैं, उसके अवयव अकार का लोप हो । आर्धधातुकपरे गोपायके यका (अ) लुप्त हो गया । य् आम् में मिला । क्योंकि आर्धधातुकसंज्ञाकाल में गोपाय अदन्त है । (१) आम् से परे लिट्का लुक् (अदर्शन हो) । इति सूत्रेण आमः परस्य लिटो लुक् । गोपायाम् इति स्थिते । (२) कृञ् इति प्रत्याहारः । उसमें कृ, भु, अस् तीन धातु आते हैं । यदि आमन्तात् = आम् प्रत्यय अन्त में हो उससे लिट्परक (कृ भू अस्) ये अनुप्रयुज्यन्ते = अनुप्रयोग (पश्चात् जोड़े जाते हैं) इति सूत्रेण । गोपायाम् के आगे कृ लिट् ऐसा अनुप्रयोग हुआ । तेषां=अनुप्रयोग किये गये कृञ् आदि को द्वित्व आदि, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, चर्त्वं से चवर्ग किये जाते हैं । प्रथम कृ का उदाहरण गोपायाम् कृ लिट् । तस्य स्थाने तिप्, णल् अनुबन्धलोपे कृ इत्यस्य द्वित्वे प्रथमस्य अभ्याससंज्ञा ततः ।

(३) अभ्याससंज्ञकके ऋवर्णको अत् आदेश – ह्रस्वअकार हो । इति सूत्रेण प्रथम कृ इत्यस्य ऋस्थाने 'अ' उरण्रपरे, गोपायाम् कर कृ अ । ततो 'हलादिशेषः' इति रलोपः । पुगन्तलघूपधस्यच उत्तरखण्ड-ऋकारस्य गुणे, अतउपाध्यायाः इति वृद्धिः आर् । कुहोश्चु । अभ्यास कस्थाने च आदेशे । मकारस्य नश्चापदान्तस्य झलि इति अनुस्वारे तस्य= अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णे ञकारे । गोपायाञ्चकार । आजसे भिन्नभूतकालकी अदृष्टरक्षण क्रिया । गोपायां लिट् बनानेकी शैली पूर्ववत् । द्विवचनमें तस्स्थाने अतुस् आदेशे कृते सति द्वित्वात्=कृके स्थानमें प्राप्त द्वित्वको बाधकर परत्वात् – विप्रतिषेधे परकार्यके बलपर यण् प्राप्त हुआ । तुल्य विरोध हो । जैसे द्वित्व और यण् दोनों के सपादसप्ताध्यायी होनेसे विप्रतिषेधे – तुल्यबल विरोध हुआ । परमें होनेसे यण् प्रबल पड़ा । ततः । ४ । दोबार उच्चारण ही द्विवचन है यदि द्वित्व = दो बार उच्चारणका कारणभूत अच्परे हो, तब अच्के स्थानमें कोई आदेश नहीं होता । यदि द्वित्वकी कर्तव्यता हो । तब प्रसंग में लिट्-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१।१।५९। द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ययें। गोपायाञ्चक्रतुः।

४७५ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०। उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येण् न।

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शी-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

कान्तेषु—शक्लृ्कः। चान्तेषु—पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट्। छान्तेषु—प्रच्छेकः। जान्तेषु—त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर-स्वञ्ज्-सञ्ज् सृजः पञ्चदश। दान्तेषु—अद्-क्षुद्-खिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्यति-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य स्कन्दः - हदः

परे द्वित्वका निमित्त अजादिप्रत्यय अतुस् है। लिट् का धर्म स्थानिवद्भावसे (तस्मिन्) उसी अतुस्में आयेगा। उसके परे रहते कृके ऋमें कोई अच् आदेश यण् वगैरह नहीं होगा। यदि यण् हो जाता; तब एकाच् न रह जाता। अच्का अभाव होने से, तब द्वित्व सम्भव भी न होता! अभ्यासादिकार्य पूर्ववत्। रुत्वे विसर्गे। गोपायाञ्चक्रतुः=झि (उस्) गोपायाञ्चक्रुः। अनेककर्तृकपरोक्षभूतकालिक रक्षणक्रिया अर्थः। ४७५। उपदेशे=प्रथम उच्चारणकालमें जो धातु एकाच्=एक अच् वाला तथा अनुदात्त=अनुदात्तसंज्ञक अकारलोप हो उससे परे आर्धधातुकको इट्का आगमन हो।

अजन्तधातुओं में अनुदात्तकी गणना क्यों? धातुपाठमें उदात्त तथा अनुदात्तकी पहचान (संकेतचिन्ह) नहीं मिलता। इसलिए परिगणनकी आवश्यकता पड़ी ऊदृदन्तैः ऊकारान्त धातु (भू, यू)। ऋदन्त पृ=पालने पूरणेच। रु क्ष्णु, तेजने। शीङ् स्वप्ने। स्नु प्रश्रवणे। णु स्तुतौ। टुक्षुशब्दे। श्वी गति वृद्धयोः। श्रि सेवायां, डी, विहायसा गतौ। वृ वर्णे। ये १२ धातुको छोड़कर अन्य अजन्त धातु एकाच् है। ये धातु बिना एकाच्के अजन्तेषु=अजन्तधातुओंमें निहता=अनुदात्तरुपमें स्मृत हैं। हलन्तधातुओंके एक अच् तथा अनुदात्त धातुओंका संग्रह। पूर्वमें उक्तधातु अनिट है। कार्यकारणमें शेष है। हलन्तोंमें प्रथम ककारान्त शक्लृ सामर्थ्ये एक ही धातु है। च अन्तमें हो ऐसे ६ धातु हैं। पच् पाके=पकाना। मुच्मोक्षणे=मुक्तकरना। रिच्-विरेचने=पेचिस पड़ना। वच् परिभाषणे अपवाद फैलाना। विच् पृथग्भावे, अलग होना। सिच् क्षरणे=पसीझना सींचना। छान्तेषु=छ अन्तमें हो पृच्छ ज्ञीप्सायाम्=पूछना। ज अन्तमें हो ऐसे १५ धातु। त्यज हानौ=नुकसान होना। निजिर् शौच् पोषणयोः, शुद्ध होना, बढ़ाना। भज्सेवायां। भञ्जआमर्दने, भञ्जन करना, तोड़ना। भुज पालने व्यवहारे। पालन, भोजन, अर्थ। भ्रस्जपाके, भूंजना। मस्ज—शुद्धौ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

षोडश। धान्तेषु—क्रुध-क्षुध् बुध्-बन्ध्-युध् रुध्-राध्-व्यध् शुध्-साध्-सिध्य-एकादश। नान्तेषु—मन्य-हनौ द्वौ। पान्तेषु—आप्-क्षुप-क्षिप् तप् तिप्-तृप्य-दृप्य-लिप् लुप् वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदश। भान्तेषु—यभ्-रभ्-लभस्त्रयः। मान्तेषु—गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः। शान्तेषु—क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश। षान्तेषु—कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-

---

शुद्ध, होना, गोता लगाना। यज्—देवपूजा-सङ्गतिकरण-दान। युज्-योगे सम्बद्ध करना। रुज्भङ्गे, भञ्जन करना रोगी होना। रञ्ज रागे, रङ्ग चढ़ाना। आशक्त होना। विजिर पृथग्भावे। सञ्ज आलिङ्गने, हृदयसे लगाना। सञ्ज सङ्गे, मिलना सृज विसर्गे, त्यागना। दान्तेषु दकारान्त धातु १६ हैं। यथा—अद्भक्षणे, खाना क्षुद्, सम्पेषणे, अच्छी तरह पीसना। कूटना। खिद्दैन्ये। दुखी होना। छिद्—द्वैधीभावे=दो भाग या अनेक टुकड़े करना। तुद व्यथने, दुःखहोना, नुद् प्रेरणे—प्रवृत्त कराना, पद्य गतौ, गमन करना। छिदिर्विदारणे—फाड़ना, विद् सत्तायाम्=अस्तित्वके अनुकूल क्रिया विन्द विचारणे। विदि लाभे, शद् सातने नाश करना। सद् विसरण गत्यवसादनेषु=विखरना नष्ट होना, गमन करना, स्विद् गात्रप्रक्षारणें=पसीना पसीझना। स्कन्द गति शोषणयोः। गमन करना सुखाना। हद् पुरीषोत्सर्गे, मल-त्याग। धान्तेषु=क्रुद्ध, क्रोधे=क्रोधकरना। क्षुध, बुभुक्षायाम्=भूख लगना। बुध, अवगमने ज्ञान होना। बन्ध—बन्धने, बाधना। युध, सम्प्रहारे भयंकर प्रहार-करना। रुध, आवरणे, घेरना, रोकना। राध, संसिद्धौ, सिद्ध करना। व्यध, ताड़ने बेधना प्रहार करना। शुद्ध शौचे, पवित्र होना। राध साधसंसिद्धौ=सिद्ध करना। सिद्ध संराद्धौ। नकारान्तेषु मन्यज्ञाने=मानना, जानना। हन् हिंसागत्योः। पान्तेषु आप व्याप्तौ, प्राप्त करना। क्षुप् स्पर्शे=स्पर्शकरना। क्षिप् प्रेरणे, दूर फेंकना। तप् संतापे तपस्या करना। तिप् क्षरणार्थे, टपकना, चूना। तृप्य, प्रीणने। तृप्त प्रसन्न होना। दृप्य, दृप्तौ = घमंड करना या गर्व करना। लिप् लोपकरना, छिन्न-भिन्न करना। वप् बीज संताने, बोना। शप् उपालम्भे—शाप देना। कसमखाना। स्वप् शये सोना। सृप्गतौ, सरकना, चलना। भकारान्त-यभ्मैथुने, सङ्गम करना। रभ राभस्ये आरम्भ करना। लभ् प्राप्तौ। मान्तेषु—गम्गतौ। नम् प्रह्वत्वे शब्दे च। नम्रहोना। नमस्कार। ध्वनि लगाना। यम, उपरमे, बैराग्य होना। शान्त रहना। रम् क्रीडायाम्, रमण करना। खेलना। शान्तेषु—क्रुशआक्रोशे = रोष् प्रगट करना चिल्लाना। दश्दंशने = डँसना, एकाएक चुभोना, दिश्, अतिसर्जने, त्याग करना। दृश्, प्रेक्षणे, दर्शनकरना। मृश् आमर्शने, स्पर्शज्ञान करना। रिश्रुश् हिंसायाम्, असहनीयकष्ट देना। लिश—अल्पीभावे, अल्प होना। विश् प्रवेशने, प्रवेश करना। स्पृश संस्पर्शे १० हैं। षान्तेषु ११ हैं। कृषविलेखने, हल्कर्षणे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष् एकादश। सान्तेषु---घस्-वसती द्वौ। हान्तेषु --दह्-दिह् दुह् नह् मिह्-रुह् लिह्-वहोऽष्टौ अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम् (१०३)। गोपायाञ्चकर्थ। गोपायाञ्चक्रथुः। गोपायाञ्चक्र। गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकर। गोपायाञ्चकृव। गोपायाञ्चकृम। गोपायाम्बभूव। गोपायामास। जुगोप। जुगुपतुः। जुगुपुः।

६ स्वरति सूति-सूयति-धूञूदितो वा ७।२।४४। स्वरत्यादेरूदितश्च

खींचना। त्विष्कान्तौ, चमकना। तृष्तृप्तौ, द्विष्अप्रीतौ, दुश्मनी करना। दुष्, वैकृत्ये, विकृत दोष होना। पुष्पुष्टौ, मजबूत होना। पिष्चूर्णने चूर्णकरना, पसीना विष्सेचने। विष्विप्रयोगे पृथक् होना। वियोग। व्याप्त होना। शिष् असर्वोपयोगे, किसीके उपयोगका नहोना। शुष्शोषणे, सूखना। श्लिष् आलिङ्गने = आलिङ्गन-करना। सान्तेषु घस् अदने भोजने। वस् निवासे। हान्तेषु---ह अन्तमें हो ऐसे (८) धातु दुह् प्रपूरणे, दोहनी भरना। नह बन्धने बाधना। मिहसेचने, रुह बीज प्रादुर्भावे, बीजका अंकुरित होना। उगना। लिह आस्वादने = स्वाद लेना। चाटना वह प्रापणे = ले जाना। हलन्तेषु = हलन्त धातुओंमें अनुदात्तधातु त्र्यधिकम् = ३ अधिक सौ = १०३ हैं। ये अनुदात्त होनेपर इट्क नहीं होते। गोपायाञ्चकर्थ। यहाँ थल्को प्राप्त वलादि आर्धधातुक, इट्का निषेध होगा। यह अनुदात्त है, एकाच् उपदेशे = उपदेश अवस्थामें तथा अनुदात्त होनेसे इट्का निषेध होगा। गुण। द्विवचनविवक्षामें अथुस् गोपायाञ्चकृ + अथुस, असंयोग लिट् कित्संज्ञा, गुणनिषेधे यणि। उ० पु० एकवचने णल् णलुत्तमो वा सूत्रेण विकल्पेन कित्णित्। पक्षे वृद्धिः। पक्षे गुणः। वस् मस् प्रत्ययपरे इट्निषेधः। लिटः कित् गुणनिषेध इति विशेषः। पूर्वेदिने अदृष्टरक्षणक्रिया सभीकर्तामें हो उसके अनुकूलरूप का प्रयोग करें। गोपायाम्बभूव। गुप् आय् आम् लिट् लुक्, यहाँ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिट् सूत्रसे भू लिट्का अनुप्रयोग बभूव बनानेकी प्रक्रिया पहलेकी तरह। गोपायामास, यहाँ अस् लिट्का अनुप्रयोग, द्वित्व अस् अस् हलादिशेष, णल्, उपधावृद्धिः, गोपायामासिथ गोपायामासिम। ये सभी रुप आयप्रत्ययसे बने। आर्धधातुकमें विकल्प होनेसे आयके अभावपक्षमें जुगोप। रक्षणार्थकधातुसंज्ञक गुप्धातोः अनद्यतन अदृष्टरक्षणक्रिया कालार्थे लिट् तिप् णल् अनुबन्धलोपे द्वित्वे गुप्—गुप् अभ्यास हलादिशेषे जुगुप् 'लघूपधगुणे' जुगोप। अतुस् उस् प्रत्ययपरे संयोगो नास्ति। असंयोगात् लिट् कित् कृते, गुणनिषेधे जुगुपतुः जगुपुः।

(६) स्वरति स्वृ शब्दोपतापयोः (आवाज करना, उपताप=दुख देना) सूति षू, प्राणिगर्भविमोचने। किसी जीव को गर्भ से त्याग, पैदा करना। सूयति = षूं धातु भी प्राणी (जीव) के प्रसव अर्थ में। धूञ कम्पने = काँपना, हिलाना।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्। जुगोपिथ, जुगोप्थ। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात्, गुप्यात्। अगोपायीत्। ७ नेटि ७।२।४।

ऊदित = ऊ जिसका इत् हो। उन्हीं को स्वरत्यादि और ऊदित कहते हैं। इनसे परे वलादि-वल् अक्षर आदि में हों, ऐसे आर्धधातुको इट् विकल्पसे हो। अप्रत्यक्षरक्षण क्रियाका कर्ता त्वं यदा स्यात्, तदा म० पुरुषस्य एकवचने सिप्, थल, द्वित्वादिकार्यें। अयं ऊदित् धातुः। अतः 'स्वरतिसूति' सूत्रेण विकल्पेन इट् **जुगोपिथ**। इट् अभावे। **जुगोप्थ**। वस् मस् प्रत्यय परेऽपि इट् विकल्पः। जुगुपिव जुगुपिम। जुगुप्व, जुगुप्म। गोपायिता रक्षणार्थक गुप् इत्यस्य धातुसंज्ञायाम् (आयादयः आर्धधातुके वा) आय, लघूपधगुणे गोपाय इति अनेकाच्धातुः इट् अधिकारीति। आगामिदिने रक्षणक्रियाकालवाचक लुट् 'स्यतासीॡ लुटोः' इति तास् डा, अनुबन्धलोपे, टिलोपे विकल्प इट्। अतोलोपः आय प्रत्ययस्य अन्त्य अकार लोपे गोपयिता। यदा आय् प्रत्ययो न भवति, तदा सामान्य इट्। एकाजुपदेशे सूत्रेण निषेधे। तदा स्वरतिसूति सूत्रेण इट्। गोपिता। इट् अभावे गोप्ता। रक्षणक्रिया सामान्यरूप से भावी हो, तब आय इट्। इन दोनोंके विकल्पसे तीन-तीन रूप आर्धधातुकलकारों में बनेंगे। आय इट् होने पर **गोपायिष्यति** (आय् अभावे) **गोपिष्यति** (इट् अभावे, **गोप्स्यति**। गोपायातु सार्वधातुकलकारों में नित्य आय होने से एक ही रूप है। रक्षण अर्थ के विषय में आज्ञा, प्रेरणा, आशीर्वाद होनेवाला हो तब लोट्। यदि रक्षा करने की क्रिया समाप्त हो चुकी हो। अद्यतन न हो। तब गुप् आय लङ्, अट्, ति शप, इकार लोप, अतोलोपे। सुदर्शनः अम्बरीषम् अगोपायत्। रक्षणक्रिया की सम्भावना प्रकट हो या प्रवृत्ति कराना हो। तब विधिलिङ्। **अगोपायेत्**। प्रत्येक शब्दों में प्रकृति का अर्थ प्रत्यय के अर्थ की सही परख होनी चाहिए। रक्षणविषयक आशीर्वाद अर्थकी शक्ति, आयप्रत्यय सहित **गोपाय्यात्**। रहित **गुप्यात्**। में अनुभूत है। अत्र यासुडागमः। अतो न वलादिनिमित्तक इट्। आय पक्षे अतो लोपः इति आकार लोपे। द्वितीय पक्षे आशीर्लिङ इति यासुट् कित् तेन गुण निषेधः। सामान्य भूतकाले (समाप्त क्रिया) अर्थ में प्रसिद्ध लुङ् लकार रक्षणक्रिया के विषयमें तीन प्रकारसे अनभूत हैं (१) **अगोपायीत्**। गुप् आय लुङ् अट् तिप् इकार लोप सिच् इटः ईट् सलोप अकार लोप (२) आय के अभाव पक्ष में सिच् को विकल्पइट्। हलन्त मानकर, गुण के उकार को वृद्धिप्राप्त है। तब (७) इटि = इट् आदि में हो ऐसे सिच् परे हलन्त मानकर वृद्धि नहीं होती। लघूपधगुणे **अगोपीत्** अगोपिष्टाम् अगोपिषुः अगोपीः अगोपिष्टम् अगोपिष्ट। अगोपिषम् अगोपिष्व अगोपिष्म। सभी कर्ता समाप्त रक्षण

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न। अगोपीत्। अगौप्सीत्। ८ झलो झलि ८।२।२६। झलः परस्य सस्य लोपो झलि। अगौप्ताम्। अगौप्सुः। अगौप्सीः। अगौप्तम्। अगौप्त। अगौप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्। क्षि क्षये। १३। क्षयति। चिक्षाय! चिक्षियतुः चिक्षियुः। "(४७५) एकाच" इति निषेधे प्राप्ते—।

क्रियाकाल वाले होंगे। (३) अगौप्सीत्। यदा इट् न भवति तदा अगुप स ई त् इति स्थिते अत्र इटः ईटि इति न प्राप्नोति इटो अभावात्। नेटि इति वृद्धेः निषेधोऽपि न भवति। इडादिसिचो अभावात् अगुप्सताम्। अत्र हलन्तलक्षणवृद्धिः। सिच्सकारस्य। (८) इलः = झल् प्रत्याहार से परे स् का लोप हो झलि परे। इति सकारलोपे। अगौप्ताम् अगौप्सुः। अत्र सिच् अभ्यस्त विदिभ्यश्च इति झिस्थाने जुस् आदेशे कृते रूपं वनति। अगौप्सीः सिप् इकारलोपे। सकारस्य रु० वि० एवम् थस् स्थाने तम्, थ स्थाने त। सिज्लोप। मिप् स्थाने अम् कृते। अहम् अगौप्सम् = मैंने रक्षण क्रिया। वयम् अगौप्स्म। क्रियाके कार्यकारणभाव अर्थ का वाचक, लृङ् तीन रूप में अनुभूत है। दिलीपः यदि कामधेनुं अगोपायिष्यत् तदा सन्ततिम् अलप्स्यत्।

(१३) क्षि धातु का अर्थ, क्षय = क्षीण होना, नष्ट होना। यह अकर्मक धातु है, क्योंकि नाश, फल उसके अनुकूलक्रिया धातु का अर्थ है। नाश् और क्रिया दोनों एकमें है जैसे— पाण्डुः क्षयति = पाण्डुराजा क्षीण होते हैं। यहाँ क्रिया फल, दोनों का आधार पाण्डु है। गुप् धातु सकर्मक है। जुगोप गोरूपधरामियोर्वीम् दिलीपः गोरूपधराम् उर्वीम् इव जुगोप तां ररक्ष। यहाँ रक्षारुपफल पृथ्वीके सदृश नन्दनी में है उसके अनुकूल क्रिया दिलीप में है। फल और क्रिया का आधार अलग-अलग होने से सकर्मक सिद्ध है। क्षयति। क्षि धातुसे क्षीणता के अनुकूल क्रिया के वर्तमान रहने पर कर्ता अर्थ में लट्। तस्य स्थाने तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा कर्तरि शप् यहाँ शप् का भी कर्ता अर्थ सर्वत्र है। इकारस्य एकारगुणे, तस्य अयादेशे। द्विवचने यत्र द्वौ कर्तारौ तत्र तस्। क्षयतः क्षयन्ति। त्वं क्षयसि, यूवां क्षयथः यूयं क्षयथ। तुम सबका ह्रास (क्षय) होता है। अहं कुसङ्गात् क्षयामि। आवाम् अधिक घृतपानात् क्षयावः। वयं दुश्चरित्रात् क्षयामः। क्षीण होनेकी क्रिया जब अनद्यतन अदृष्टकालमें समाप्त हो चुकी हो। तब क्षयार्थक क्षिधातोः समाप्त अदृष्ट नाश् क्रिया अर्थे, लिट् तिप् णल्, क्षि क्षि कि क्षि चिक्षि, ·द्वित्व, हलादिशेष, कुहोश्चुः, अभ्यासस्य उत्तरवर्तिन इकारस्य 'अचोऽञ्णिति' सूत्रेण वृद्धिः, आय् आदेशे चिक्षाय चिक्षियतुः। चिक्षि + अतुस् [illegible], तेन गुणनिषेधः। "अचि श्नुधातुभ्रुवाम् [illegible] इयङ् आदेशे एवम् [illegible] चिक्षियुः [illegible] चि क्षिथ इति

CC-0. [illegible] Collection. Digitized by eGangotri

९ कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि ७।२।१३। क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात्।

४८० अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१। उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण् न। १ उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२। उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न स्यात्। २ ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३। तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेड् भरद्वाजस्य मते। तेन अन्यस्य स्यादेव। अयमत्र संग्रहः—

दशायां बलादिलक्षण इट् प्राप्नोति। उसको एकाच् उपदेशे अनुदात्तात् से निषेध प्राप्त है।

(९) कृ=करना; सृ=गमन, भृ=भरण, वृ=वरण, स्तु=प्रशंसा, द्रु=गतौ, स्रु=पसीझना श्रु=श्रवण करना। क्रादिभ्य एव=केवल उक्तधातुओं से ही परे लिट् को इट् न हो। यही बात नहीं, अपितु अन्यस्मात्=अन्य अनिट् धातुओं से इट् भी हो। सूत्र पठित धातुओं से इट् न हो। यद्यपि इट् निषेध एकाच् उपदेशे से सिद्ध है। सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिः नियमाय भवति। यह सूत्र नियम करता है कि क्रादिभ्यः एव लिट् इट् न स्यात्। कृ सृ भृ इत्यादि से ही लिट् को इट् न हो, अन्य धातु अनिट् भी हो, तो इट् हो जाय। क्षि धातु नियमके अनुसार क्रादि में न आने से अनिट होने पर भी इट् हुआ। यह इट् विषयक नियम सूत्र है।

(४८०) अचः=धातु उपदेशावस्था में अजन्त हो तथा तास् प्रत्ययपरे नित्य अनिट=इट् सम्भव न हो। उससे परे थल् इट् न हो। क्षि धातु उच्चारण काल में अजन्त है। तास् प्रत्यय (क्षेता) इत्यादि से अनिट् भी सिद्ध है। यथा— प्राप्त बलादिलक्षण इट् अचस्तास्वत्थल्य से इट् निषेध। (१) उपदेशे धातु के उच्चारण काल में अत्वतः=अकारवतः अकारवान धातु हो और तास् प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् हो (इट् सम्भव न हो) उससे परे थल को इट् न हो। क्षि धातु उपदेश में अकारवान् नहीं है पच् लभ् आदि धातु उपदेशावस्था में ही अकारवान् हैं। तास् में अनिट् भी है। अनुदात्त में गणना भी है। उपदेशावस्था का अकारवान् न कहते तो कृष आदि धातु गुणहोने पर कर्ष बनकर अकारवान् हो जाते हैं। उसकी निवृत्ति के लिए उपदेशका अकारवान् कहना आवश्यक है।

(२) भारद्वाजमुनिका अनुभव पाणिनि जी प्रगट करते हैं। भारद्वाज मुनि के मत में तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट (कभी न इट्) होने वाला धातु केवल ऋदन्त से ही थल को इट् न हो। तेन अन्यस्य स्यादेव=इससे सिद्ध है कि ऋदन्त से भिन्न जि न [illegible] अजन्त धातु सबको इट् होना है। उक्त चारों का सारांश अयमत्र संग्रहः। यहाँ संग्रह करते हैं अजन्त—इति। अजन्त धातु हो या

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

"अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यान्यो लिटि सेड् भवेत् ॥"

चिक्षयिथ, चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय, चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् । ३ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७ । ४ । २५ । अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् । ४ सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७ । २ । १ ।

अकारवान् जो तास् प्रत्यय परे अनिट् हो तो थल् आदेशमें विकल्प से इट् हो तास् प्रत्यय परे ईदृङ्--इस प्रकार ऋदन्त=ऋकारान्त धातु हो, थल में नित्य इट् का निषेध हो । क्राद्यन्यः=कृ सृ आदि से भिन्न धातु लिट् परे थलि, व म में इट् हो जाता है । साधारणतः थ व म में इट् सिद्ध है । केवल थलके लिए भारद्वाज के मत से विशेष नियम । ऋदन्त धातु को इट् का निषेध है । अन्य धातुओं को निषेध नहीं । पाणिनि मुनि के मत में अजन्त हलन्त अकारवान् सभी को निषेध अनुदात्त होने पर करते हैं । इसलिए थल परे इट् विकल्प फलित है । अनेकाच् सदा सेट् हैं । किसी रुप में अनेकाच् हो एकाच् धातु का संग्रह से निर्णय करें । प्रसङ्ग में क्षि धातु अजन्त है अनिट् भी । अतः भारद्वाजमते इट् हुआ । पाणिनिमते इट् नहीं हुआ । चिक्षियिथ चिक्षेथ क्षि इत्यस्य भूवादयो धातव धातुसंज्ञा । लिट्, सिप्, थल, द्वित्वे, अभ्यास हलादि शेषे कुहोश्चुः । इट्विकल्पे, गुण, सिप् पित् अस्ति । अतो न कित् । न गुणनिषेधः । इट् पक्षे एकारस्य अयादेशे । इति विवेकः । द्विवचने अथुस् चि क्षि + अथुस् । अपिल्लिट् किद्भवति । अतः गुण निषेधः इयङादेशे इ० वि० । चिक्षियथुः । यूयं चिक्षिय-तुम लोगों का पहले ही अदृष्ट विनाश हुआ । वस् मस् में भी गुणों न । किन्तु इयङ् भवति । तत्र नित्य इट् । क्षेता । परश्वः परतरश्वः विनाशो भविता । एकाच् उपदेशे इति इट् निषेधः, गुणे लुट् तिप्तास् पूर्ववत् । क्षेष्यति कस्मिँश्चित्काले नाशो भविष्यति । क्षयतु (रक्षसा नाशो भवतु) पापमक्षयत् ह्य यदि पुण्यं कुर्यात् तर्हि पापं क्षयेत् । संभावनायां लिङ् ।

(३) अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो यकारादि प्रत्ययपरे । वह यकारादिप्रत्यय अकृतसार्वधातुकयोः । कृत् प्रत्यय तथा सार्वधातुक प्रत्ययपरे न हो तो । क्षीयात् क्षयार्थक क्षिधातोः; आशीर्लिङ् तिपि यासुट् यास् इति यकारादिप्रत्ययपरे अजन्ताङ्गस्य इकारस्य दीर्घे । इतश्च इकारलोपे क्षीयात् तव अज्ञानम् । सञ्चित्य । कृत् का उदाहरण है । सम् पूर्वक चिधातु से क्त्वा को ल्यप् होनेपर दीर्घ होता तो ह्रस्वनिमित्तक तुक् न होता । अतो निषेध आवश्यकः । चिनुयात् में यासुट् यकारादि है । किन्तु सार्वधातुक होने से दीर्घ नहीं हुआ । (४) इगन्ताङ्गस्य- इक् हो अन्त में जिसके ऐसे अङ्ग को वृद्धि हो परस्मैपदसंज्ञक सिच् परे । इगन्ता-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि । अक्षैषीत् । अक्षैष्टाम् । अक्षैषुः । अक्षेष्यत् । तप सन्तापे । १४ । तपति । तताप । तेपतुः । तेपुः । तेपिथ । ततप्थ । तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अतप्स्यत् । क्रमु पादविक्षेपे । १५ ।

ङ्गस्य में षष्ठीविभक्ति देखकर अलोन्त्यपरिभाषा से अन्त्य अल् (वर्ण) इक्= इ उ ऋ लृ को वृद्धि हो। अक्षैषीत् क्षीण अर्थमें प्रसिद्ध क्षिधातोः भूतकाले (समाप्त क्षयक्रिया) अर्थे लुङ् अट् तिप् सिच् 'अस्ति सिचोऽपृक्ते' इति ईट् इकारलोपे अत्र 'क्षि' इत्यस्य अङ्गसंज्ञा, इगन्तो अङ्गः 'क्षि' इति, तस्य अन्त्य अल् 'इ' स्थाने वृद्धिः, परस्मैपदे सिच् परे अस्ति, षत्वे। द्विवचने तस ताम्। अक्षैष् ताम्। षत्वे ष्टुत्वे अक्षैष्टाम्। अक्षैषुः। अत्र सिच् अभ्यस्तविदिभ्यश्च झि स्थाने जुस्। अक्षैषीः अक्षैष्टम् अक्षैष्ट। क्षय क्रिया समाप्त हो, वह म० पु० के कर्ता में हो अक्षैषम्, अक्षैष्व, अक्षैष्म। उ० पु० कर्ता में समाप्त क्षयानुकूल क्रिया। लृङ् यदि यक्ष्मा अक्षेष्यत् तदा स्वास्थ्यम् अलप्स्यत्। (१४) तप् धातुका सन्ताप दुःख, क्लेश, कष्ट सहने के अनुकूल क्रिया अर्थ है। तपति-सन्ताप अर्थ वाला तप् धातु से तपन् जलन् क्लेश, क्रिया चल रही हो तो वर्तमाने कर्तरि लट् एकवचने तिप् शप् अनुबन्धलोपे। ततापं, सन्ताप, दुख कष्ट होने की क्रिया अनद्यतन अप्रत्यक्षरूपसे समाप्त हो तब लिट्। प्रथम पुरूषस्य एकवचने तिप्, णल्=अ, एकाच् तप् धातोः द्वित्वे, तप्-तप् अभ्यासादिकार्ये, ततप, उपधा वृद्धिः ततापं। तेपतुः ततप्-अतुस्, पित् भिन्न लिट् कित् भवति। अत एकहल्मध्ये अनादेशादेर्लिट् सूत्र से आदेश रहति तप् के अ को एकार अभ्यास लोप् रु० वि० तेपुः। थल्परे 'थलि च सेटि' सूत्रेण इट् पक्षे एत्वाभ्यासलोपौ भवतः तेपिथ। तप् धातुः नित्य अनिट् है अकारवान् भी, थल् में इट् विकल्प यदा न इट् तदा ततप्थ। तप्ता आगामिदिने दुःखसहनकर्ता। अत्र इट् न भवति एकाजुपदेश इति निषेधात्। तप्स्यति। स दुःख सहनं करिष्यति। तपतु सन्ताप सहन करो। विधि प्रेरणा अर्थे लोट्। अतपत्। 'पहले दिन ही सन्ताप सहन समाप्त क्रिया का काल। अतप्ताम् अतप्त। तपेत्—दुखं सहेत्। प्रेरणा, निश्चय, संभावना, अर्थे लिङ्। तप्यात्—तपस्याविषयके आशीर्वादे अर्थे लिङ्। पार्वती तप्यात् तदा शिवं प्राप्नुयात्। अताप्सीत् सन्तापार्थक तप् धातोः समाप्ततपन क्रिया अर्थे लुङ् अट् तिप् च्लि सिच् ईट् आगमे। वदव्रज हलन्तस्याच इति अङ्ग अकारस्य वृद्धिः। यदा अतप्स्यत् तदा फलम् अलप्स्यत् (१५) क्रमुपादविक्षेपे उकार इत्संज्ञकक्रमधातु-क्रम से पैर का आगे बढ़ाना क्रिया अर्थ। पादविक्षेपार्थक क्रमुधातोः प्रचलित क्रिया अर्थे वर्तमाने लट् तिप् शप् पक्षे श्यन, तत्र सूत्रम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४८५ वा भ्राश-भ्लाश-भ्रमु-क्रमु-क्लमु-त्रसि-त्रुटि-लषः ३ । १ । ७० । एभ्यः श्यन् वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् । ६ क्रमः परस्मैपदेषु ७ । ३ । ७६ । क्रमो दीर्घः परस्मैपदेऽशिति । क्राम्यति, क्रामति । चक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्राम्यतु, क्रामतु । अक्राम्यत्, अक्रामत् । क्रामेत्, क्राम्येत् । अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् । पा पाने । १६ । ७ पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्यर्ति-सर्ति-शदसदां पिव-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्यच्छे-धौ-शीय-सीदाः ७ । ३ । ७८ । पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे । पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः । पिबति । ८ आत औ णलः

---

(४८५) विकल्प से, भ्रास = प्रकाश, भ्लाश् = चमकना, भ्रम = भ्रमण करना, क्रम् = पैंर बढ़ाना, क्लम् = खिन्न होना, त्रस-उद्विग्न होना, डरना । त्रुट् = टूटना, लष् = अभिलाषा करना, इन धातुओं से श्यन् प्रत्यय हों कर्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय हो तो, अनुबन्ध लोपे । (६) क्रमधातु के अच् को दीर्घ हो परस्मैददेषु = परस्मैपदका शित् हो तो । इति क्रमः अकारस्य दीर्घः, क्राम्यति क्रामति । शप् श्यन् दोनों शित् हैं अतः दीर्घ दोनों को हुआ । आत्मनेपद में दीर्घ न हो, इसलिए परस्मैपद को कारण माना । अप्रत्यक्ष रूपसे समासपादविक्षेप क्रिया अर्थ में लिट् । चक्राम चक्रमतुः चक्रमुः । चक्रमिथ चक्रमथुः चक्रम इत्यादि धातु के बहुत अर्थ होते हैं उनमें से एक अर्थ प्रसिद्ध होता है । अन्य अर्थों का प्रकाशक उपसर्ग है शुरु करना, प्रारम्भ करना, अर्थ में प्र या उप उपसर्ग लगने से प्रक्रमते उपक्रमते में शक्ति आ जाती है । आ उपसर्ग-आक्रमण, सम-संक्रमणं, परा, वीरता आदि अर्थ के प्रकाशक हैं । श्वः क्रमिता । सदा क्रमिष्यति अग्रेसरो भविष्यति । क्राम्यतु-धर्म की तरफ चलो । अक्रामत्, अक्राम्यत् अन्धकार से प्रकाश की तरफ चल । क्राम्येत् (गच्छेत्) या गमनं कुर्यात् अक्रमीत पादविक्षेपम अकार्षीत् । क्रम इत्यत्र हलन्तलक्षण वृद्धिर्न 'ह्म्यन्तक्षण' इति निषेधात् । अक्रमिष्यत् तदा विजयोऽभविष्यत् । (१६) पाधातु का पाने रस जल दुग्ध आदि तरल पदार्थ पीने, गले के नीचे उतरनेके अनुकूलक्रिया अर्थ है । (७) पादीनां = पा, घ्रा इत्यादि को पिब जिघ्र इत्यादि आदेश हो । इत्संज्ञक शकार वाला प्रत्यय परे हो तो । जैसे शप् इत्यादि पा को पिब, घ्रा-जिघ्र, ध्मा-धम, स्था-तिष्ठ, म्ना को मन, दाण — यच्छ, दृश, पश्य । ऋ-ऋच्छ, सृ-धौ; शद्-शीय, सद्-सीद् आदेश हो शित् परे । 'पा' के स्थान में आदेश पिब अदन्त=अकारान्त है । तेन = इसलिए न लूघूपधगुणः । पिबन्ति । पिबसि पिबथः पिबथ । पिबामि पिबावः पिबामः । जहाँ शप् होगा वहाँ पिब के साथ अतोगुणे से पररूप एकादेश अवश्य होगा ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७।१।३४। आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्। पपौ। ९ आतो लोप इटि च ६।४।६४। अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः। पपतुः। पपुः। पपिथ, पपाथ। पपथुः। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्।

४९० एर्लिङि ६।४।११०। घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि। पेयात्। (४३९) गातिस्थेति सिचो लुक्।

---

(८) आत = आदन्तात् आकारान्तधातु से परे णल् के स्थान में औ आदेश हो। पपौ = पीने की क्रिया आज अर्धरात्रिसे पहले समाप्त हो तथा अदृष्ट हो ऐसे परोक्षकाल अर्थ में पानार्थक पा धातोः लिट् तिप् णल् अनुबन्धे लोपे, द्वित्वे = पा पा अभ्यास ह्रस्वकार्ये 'परा' 'आत् और णलः' इति णल् स्थाने औ। पपा + औ ततः एकादेशवृद्धिः। (९) अत्र आर्धधातुके अचि क्ङिति अनुवर्तते। अच् इति विशेषणम् तत्र तदादिविधिः तस्य फलम् अजाद्योः = आजादि हों, आर्ध धातुकसंज्ञक हों, ऐसा कित् ङित् प्रत्यय और इट् आगम भी परे हो, तब धातु का अवयव आ का लोप हो। पानार्थकपाधातोः द्विवचने लिट् तस्य तस् – अतुस् लिट च अत्र आर्धधातुकसंज्ञा, इट् आगमे (आगमः मित्रवत् तिष्ठति) यदागमाः तद् ग्रहणेन गृह्यन्ते। इट् सहितः अर्धधातुकसंज्ञकों का ग्रहण हुआ है। पपा + अतुस् यहाँ पर लिट् तिप् सिप् मिप् से भिन्न है। अतः अपित् लिट् कित् हुआ। संयोगपरे न हो तो। अतुस् अजादिः। अजादिकित् आर्धधातुको अस्ति। अतः पाधातोः आकारस्य लोपो भवति। रुत्वविसर्गौ पपतुः एवं बहुवचने उस्। म० पु० के थल् को इट् आगम होने से आकारलोप। अजन्त आकारवान् अनिट् धातु होने से थलि परे यदा इट् तदा आकारलोपः पपिथ। यदा न इट् तदा नहि आकारलोपः पपाथ। वस् मस, परेऽपि इट् आगमे आकारलोपे (पपौनिमेषालस् पक्ष्मपङ्क्ति) श्वः जलं पाता। सदा अमृतम् पास्यति। भवान् गङ्गोदकं पिबतु। पान क्रियार्थक पाधातुः भूतकाल (समाप्तपानक्रिया) अर्थे अनद्यतने लङ् अट् तिप् शप् पिब् आदेशे, अतोगुणे, पररुपे, अपिबत्। अपिबताम् अपिबन्। पान क्रिया के लिए सम्भावना, आज्ञा, प्रार्थना, सत्कार, आदि अर्थ में लिङ् 'पा, पिब, शप्, यास् त् इय गुणे पिबेत् पिबेताम् पिबेयुः।

(४९०) घुसंज्ञकानां = घुसंज्ञक दा धा धातु, मा, स्था, आदीनाम् = गा, पा, हा सन् इन धातुओं को एत्वं = एत्व हो आर्धधातुक कित् लिङ् परे। अन्त्य अल् के स्थान में (अलोन्त्यस्य) पेयात् पान क्रियाविषयकआशीर्वादार्थे लिङ् यास् त् किदाशिष, इति कित्। आर्धधातुके इति लिङ् परे अलोन्त्यपरिभाषया पा आकारस्य एकारे। पानक्रिया किसी समयसमाप्त हो, इस अर्थ में लुङ् तिप् = त्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अपात्। अपाताम्। १ आतः ३।४।११०। सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस्। २ उस्यपदान्तात् ६।१।९६। अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः। अपुः। अपास्यत्। ग्लै हर्षक्षये। १७। ग्लायति। ३ आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५। उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं न तु शिति। जग्लौ। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्। ४ वाऽन्यस्य

सिच्=स् अट् अपास्त्। गातिस्थाधूपाभूभ्यः सूत्रेण सिच् सकारस्य लुक्। आपात् अपाताम् अपुः। (१) आतः सिच् के लुक् होने पर ही आकारान्त धातु से झि को जुस् हो। यद्यपि पूर्वसूत्र (सिच् अभ्यस्तविदिभ्यश्चसे झि को जुस् सिद्ध था। तथापि आरभ्यमाण० 'आतः' सूत्र नियम क्रिया कि आकारान्तभिन्न धातुओं से झि को जुस न हो। अपा उस इति दशायाम् (२) अपदान्तात् = जो पदान्त न हो ऐसे अकार से 'उस्' परे पररूप एकादेश हो। इति पररुपे एकादेशे। अपुः। अपाः, अपातम् अपात। अपाम्, अपाव, अपाम।

(१६) ग्लै धातु का हर्षक्षय, धातुक्षय, प्रसन्नता का नाश, ग्लानि होने के अनुकूल क्रिया अर्थ है। (गरै ग्लानि कुटिल कैकेयी) यहाँ फल हर्ष का नाश या ग्लानि और उसको पैदा करने वाली क्रिया, दोनोंके कर्तामें होने से अकर्मक ग्लै धातु से प्रसन्नता नष्ट होनेकी क्रिया वर्तमान हो तब लट् तिप् शप् आय् आदेशे ग्लायति। दुःखे निमज्जति ग्लानि में डूबता है।

(३) उपदेशे = प्रथम उच्चारण दशा में एजन्तस्य=ए ओ ऐ औ अन्त में हो ऐसे धातु को आत्व हो शित् प्रत्यय परे न हो। किन्तु शित् का विषय हो। अन्त्य अल् को ही आत्व हो। जग्लौ। हर्ष (प्रसन्नतानाश के) अनुकूल क्रिया अर्थ में प्रसिद्ध ग्लै धातोः परोक्ष भूतकाले (अनद्यतन समाप्त क्रिया) अर्थे लिट् तिप् णल्, अत्र शित् परे नास्ति। प्रथम उच्चारणस्य अवस्थायाम् एजन्तग्लै, तस्य अन्त्य अल् ए तस्य स्थाने आत्वे। ग्ला अ द्वित्वे ग्ला-ग्ला ग ग्ला। कुहोश्चुः जग्लौ। 'आत् औ णलः' इति णलस्थाने 'औ' आदेशे, एकादेशवृद्धिः। यत्र शप् भवति तत्र शित् मिलति। अत एव तत्र आत्वं न भवति। ग्लाता (स्वः परश्वः वा ग्लानिर्भविता)। लुट् तिप् डा तास् आत्वम्। ग्लास्यति कष्टं दुःखं सहिष्यति। ग्लानिजनकक्रिया किसी समय होगी। ग्लायतु= तस्य हर्षक्षयो भवतु। लोट् ति शप् अत्र शप् भवति शित् परे अस्ति। आत्वं न भवति। अग्लायत् = पूर्वदिने दुःखम् अकरोत्। अद्यतनभिन्नसमाप्तग्लानि क्रिया भूतकाले अर्थे लङ्। ग्लायेत्=धातुक्षयार्थक ग्लैसे क्रिया की सम्भावना, विधि, प्रवर्तना निश्चय प्रार्थना की सम्भावना में लिङ् ति य स् इय् शप् आय् आदेशे गुणे यलोपे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

संयोगादेः ६।४।६८। घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धधातुके किति लिङि। ग्लेयात्, ग्लायात्।

४९५ यमरमनमातां सक् च ७।२।७६। एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु। अग्लासीत्। अग्लास्यत्। ह्वृ कौटिल्ये। १८। ह्वरति। ६ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०। ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि। उपधाया वृद्धिः। जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थ,

---

(४) अन्यस्य = घूमा, स्था इत्यादि धातुसे भिन्न संयोगादेः = संयोगके आदिवाला धातुके आतः = आकारको एकार विकल्पसे हो, आर्धधातुकसंज्ञककित् लिङ् परे हो तो। यथा—ग्लेयात् = पश्चात्तापं कुर्यात्। यहाँ ग्लै धातु घू मा स्था आदिसे भिन्न है तथा संयोगादि हैं आशीर्वादार्थकलिङ् आर्धधातुक कित् है विकल्पसे एत्वे ग्लेयात्। यदा न एत्वं तदा ग्लायात् अत्र न शप्, न शित् परे अस्ति। आत्वं न भवति।

(४९५) यम (इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना) रम् = रमणकरना, क्रीडा नम् = नमस्कार, नम्र होना। आताम् = आकारान्त धातुको सक् (स) आगम हो। एभ्य = इनधातुओंसे परे सिच्को इट् हो परस्मैपदके विषयमें सक्धातुको हो। इट् सिच् अग्लासीत् हर्षकक्षयम आकर्णीत्। प्रसन्नता नष्ट होनेके अनुकूलक्रियावाचक ग्लैधातोः लुङ् तिप् = त् 'आदेच् उपदेशे' इति आत्वम्, अट्, च्लि, सिच्, 'अस्ति-सिचो' ईट् यमरमनमाताम् इति सक् = स, इट् = इ अग्लास् इस्ईत् इति दशायाम् इट=ईटिपरे सलोप सवर्णदीर्घे अग्लासिष्टाम् अग्लासिषुः अग्लासीः। अग्लासिष्टम् अग्लासिष्ट। अग्लासिषम् अग्लासिष्व अग्लासिष्म। सक्का स शेष है। अपृक्त हल् परे रहते ही ईट् भवति। तब इटः ईटिसे सलोपे। जहाँ अपृक्त हल् नहीं है, वहाँ ईट् सिच् लोप नहीं। यदि अग्लास्यत् = पश्चात्तापम् अकरिष्यत् तदा अपराधक्षयो भविष्यत्। (१८) धातुका कौटिल्य = कुटिलताके अनकूलक्रिया अर्थ है। वक्रअ-गति अर्थवाचक ह्वृधातोः कुटिलक्रियावर्तमाने सति लट् तिप् शप् सार्वधातुकपरे गुणः = अर्। ह्वरति ह्वरतः ह्वरन्ति। ह्वरसि ह्वरथः ह्वरथ। ह्वरामि ह्वरावः ह्वरामः। सभी कर्तामें कुटिलचालकी क्रिया वर्तमाने सति रूपाणि।

(६) ऋदन्तस्य = ह्रस्वऋकार हो अन्तमें संयोगादेः = संयोगसंज्ञक (अच् रहित हल्) हो आदिमें उस धातुके अङ्गको गुण हो लिट् परे। अलोन्त्यस्यसे अन्त्य अल् ऋको गुण समझें। उपधाके स्थानमें वृद्धि हो। वक्रगतिके अनुकूल क्रिया वाचक ह्वृधातुसे परोक्षभूतानद्यतनकाल = अप्रत्यक्षसमास वक्र (कुटिल) क्रिया अर्थमें लिट्। ऋदन्तसंयोगादि धातु ह्वृ अन्त्य अल् ऋ, तस्य स्थानें अर् गुणं। प्र० पु० एक वचने तिप्, णल् = अ। द्वित्वादिकार्ये, अत्र णित् परे अचोऽञ्णितीति स्थाने

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार, जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्ता । ७ ऋद्धनोः स्ये ७ । २ । ७० । ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् स्यात् । ह्वरिष्यति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् । ८ गुणोऽर्ति-संयोगाद्योः ७ । ४ । २९ । अर्त्तेः संयोगादेॠदन्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादावार्धधातुके लिङि च ।

वृद्धिः, प्राप्नोति । तं बाधित्वा अर् गुणो भवति । उपधा अकारस्य वृद्धिः जह्वार । यद्यपि वृद्धि करनेसे भी रुपसिद्धि सुलभ थी, तथापि पर्यन्यवल्लक्षण प्रवृत्तिः । पर्यन्य = बादलवृष्टि जलमें थलमें भी है । जह्वतुः जह्व + अतुस । यहाँ तिप् भिन्नलिट्के कित् होनेसे आर्धधातुक गुणका निषेध होता है । अतः ऋतश्च संयोगादेर्गुणः । जह्वरुः । अनेककर्तांके वक्रगतिकी पूर्वकालिकअप्रत्यक्षसमाप्त क्रिया । जह्वर्थ—ह्व सिप् थल् । पित्, कित् न भवति । आर्धधातुकसंज्ञा, गुण सत्वेऽपि ऋतश्च संयोगादेर्गुणः, ऋदन्तधातुके नित्य अनिट् होनेसे थल् को इट् न हो । अजन्तधातु होनेसे थलिपरे नित्य अनिट् पाणिनिमते । भारद्वाजमते ऋदन्तस्य इट् न । वस् मस्के स्थानमें व म परे कृ सृ भृ आदि सूत्रनियमसे इट् होता है । यहाँ सभी कर्तामें वक्रचाल की अप्रत्यक्ष अनद्यतनक्रिया होनी चाहिए । ह्वर्ता (कल या परसों धोखा देंगे) लुट्तिप् डा तास् आदि । यह अजन्तधातु नित्य अनिट् होनेसे (क्योंकि अनुदात्त है) वलादि इट् नहीं होता । आर्धधातुकगुणे ।

(७) ऋत = ह्रस्व ऋकारान्त तथा हन्धातुसे परे स्य को इट् हो । ह्रस्व ऋकारान्त तथा हन् दोनों अनिट् हैं । इन दोनोंमें स्यको इट् का विशेषविधान है । ह्वरिष्यति = मायां करिष्यति, कुटिलं चलिष्यति । अत्र स्य इत्यस्य इट् आगमे । अदादिगणे हनिष्यति इति । ह्वरतु—कुटिलं गच्छतु, वक्रं चलतु । अह्वरत्—आजसे भिन्नवक्रचाल चलनेकी समाप्तक्रियाकाकर्ता । ह्वरेत् = वक्रं चलेत्, कुटिलं गच्छेत् ।

(८) अर्ति = ऋ (जाना) संयोगादि = संयोगसंज्ञक आदिमें हो । ऋद-न्तस्य = ह्रस्व ऋकारान्तको गुण हो यक्परे । यकारादि आर्धधातुकलिङ्परे हो । इससूत्रका प्रयोजन आशीर्वाद अर्थमें लिङ्के ङित् होनेसे या यक् के कित् होनेसे गुणनिषेध है । अतः इस सूत्रसे गुण करते हैं । जो अन्त्यअल् ऋके स्थानमें भवति । ह्वर्यात् = कपट चालके विषयमें आशीर्वाद अर्थका वाचक लिङ्तिप् उसीको यासुट् दोनोंको एक साथ लिङाशिषिसे आर्धधातुकसंज्ञा । यकारादि आर्धधातुक-यास्परे ऋदन्तह्वृके अन्त्यअल् ऋको गुण आदि । ह्वर्यात् = (केवल ऋका उदाहरण अर्यात्) है । अह्वार्षीत् कुटिलमायाके अनुकूलक्रियावाचक ह्वृधातोः भूतकाले (समाप्तक्रिया) अर्थे लुङ् अट् तिप् इलोप । सिच्, अपृक्त तकारस्य ईट् आगमे, धातुऋकारस्य सिचि वृद्धिः इति आर्वृद्धिः । इणःपरे सिच् प्रत्ययस्य अवयवस का-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्। श्रु श्रवणे ।१९। ९ श्रुवः शृ च ३।१।७४। श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च। शृणोति। ५०० सार्वधातुकमपित् १।२।४। अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्। शृणुतः।

१ हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७। हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्यो-वर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके। शृण्वन्ति। शृणोषि। शृणुथ। शृणोमि। २ लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७। असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययो-

---

रस्य 'आदेशप्रत्यययोः' इतिषत्वे। यदि अह्वरिष्यत्=कपटम् अकरिष्यत् तर्हि यातना अभविष्यत्। अत्र 'ऋद्धनोः' स्येइति इट्।

(१९) श्रुधातुका सुनने श्रवणेन्द्रियगोचर होनेके अनकूलक्रिया अर्थ है। (९) श्रुवः = श्रुधातुके स्थानमें शृ ऐसा आदेश हो। और श्नुप्रत्यय भी हो। शप्को बाधकर। श इत् शित् होनेसे सार्वधातुक है। शप्के विषयमें ही श्नु हो। शृणोति सुनना क्रिया चलती रहे (जबतक समाप्त न हो) तबतक श्रुधातोः लट् तिप् शपं बाधित्वा 'श्रुवः शृच' इति सूत्रेण श्नुप्रत्यये श्रुस्थाने शृ आदेशः, शृनुति इति स्थिते। तिप्परे शृनुको अङ्गसंज्ञा, इगन्त अङ्गके अन्त्य अल् उको गुण, नको ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम। ऋवर्णसे परे होनेसे नको ण हुआ। शृणोति। यहाँ अपित् सार्वधातुक श्नु है। उसे ङिद्वद्भावकरके शृको न गुणः।

(५००) अपित् = तिप् सिप् मिप् ये पित् हैं, इन्हें छोड़कर अपित् सार्वधातुको ङिद्वत् = ङित्का कार्य हो। 'शृ नु तस्' को सार्वधातुक मानकर नुको गुण प्राप्त है। किन्तु अपित = पिद्भिन्नसार्वधातुक तस्को ङिद्वद्भाव होता है। जिसका फल क्ङिति च्से गुण निषेध है। शृणुतः=दो कर्ता में वर्तमान कालिक सुननेके अनुकूल क्रिया। बहुवचने शृनुझि 'झोऽन्तः' इति झस्य अन्त आदेशे। (१) हुश्नुवो=हु धातु तथा श्नुप्रत्यान्त अनेकाच्वाला अङ्ग असंयोगपूर्वस्य= संयोगसंज्ञकवर्णपूर्वमें न हों, ऐसे उकारको यण् हो अजादिसार्वधातुक परे। इति उवङ् आदेशं बाधित्वा यण् भवति शृण्वन्ति। श्रवणके अनुकूल वर्तमान क्रिया। श्रवणं कुर्वन्ति। आप्नुवन्तिमें नु के पूर्वमें संयोग होनेसे यण् न होकर उवङ् होता है। अपित् सार्वधातुक होनेसे अन्ति को ङिद्वद्भाव तथा गुणनिषेध। म० पु० में श्रवणक्रियावर्तमान हो तब सिप् थस् थ श्नु, शृ आदेश। सिप्के पित् होनेसे गुण निषेध नहीं होगा शृणोसि। थस् थके ङित होनेसे गुणनिषेध है। यहाँ मिप् मकार परे लोपश्चास्यान्तरस्याम् उकारलोपः प्राप्नोति। तं बाधित्वा परत्वाद् गुणो भवति। वस् मस् प्रत्ययपरे श्नु तथा शृ आदेश णत्व, ऋणुव शृणुम परन्तु। (२) लोपश्च अस्य=संयोगसंज्ञक अक्षरपूर्व में न हो ऐसे प्रत्ययके उकारका विकल्प से लोप हो, म व परे रहते। इति सूत्रेण 'वस् मस्' परे उकारलोपे। पक्षमें शृण्व

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कारस्य लोपो वा म्वोः परयो। शृण्वः। शृणुवः। शृण्मः, शृणुमः। शुश्राव। शुश्रुवतुः। शुश्रुवुः। शुश्रोथ। शुश्रुवथुः। शुश्रुव। शुश्राव, शुश्रव। शुश्रुव। शुश्रुम। श्रोता। श्रोष्यति। शृणोतु। शृणुतात्। शृणुताम्। शृण्वन्तु। ३ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६।४।१०६। असंयोगपूर्वात् प्रत्ययादुतो हेर्लुक्। शृणु। शृणुतात्। शृणुतम्। शृणुत। गुणावादशौ। शृणवानि। शृणवाव। शृणवाम। अशृणोत्। अशृणुताम्। अशृण्वन्। अशृणोः। अशृणुतम्। अशृणुत। अशृणवम्। अशृण्व, अशृणुव। अशृण्म, अशृणुम।

शृण्म। आप्नुमः में संयोगपूर्व होनेसे उकारलोपो न भवति। यह सकर्मक धातु है, सुननाफल है; उसकी जननीक्रिया कर्ण इन्द्रियके साथ शब्दका संयोग है। देवदत्तः वेदं शृणोति। सुननाफल वेदमें हैं। उसके अनकूलक्रिया देवदत्तमें है। शुश्राव = श्रवणके अनुकूलक्रियावाचकपरोक्षे अर्थे लिट् तिप् णल्, द्वित्व, श्रु श्रु अ, अभ्यासकार्ये वृद्धिः आवादेशे। शुश्रु अतुस् उस्। यहाँ केवल उवङ् आदेशे शुश्रुवतुः। थल्के पित् होनेसे उसे आर्धधातुक मानकर गुण कृ सृ भृ आदिपाठमें श्रुके न होनेसे इट् न भवति। उ० पु० एकवचने 'णलुत्तमो वा' वस् मस्में भी क्रादि नियमसे इट् न। परश्वः पुराणं श्रोता। सदा श्रुतिं (वेदं) श्रोष्यति = श्रवणं करिष्यति। शृणोतु— श्रवणार्थकश्रुधातोः सुनना क्रियाके विषय में विधि, आज्ञा, प्रेरणा (सत्कार, निश्चय, अर्थ की सम्भावना हो, तथा आशीर्वाद अर्थ हो तब लोट् तिप्। यहाँ शप् प्राप्त है। उसे बाँधकर श्नु श्रु आदेशे उकारस्य गुणे। इकारस्य 'उ'। णत्वे। तुस्थाने विकल्पेन तातङ् शृणुतात्। तातङ् पक्षे गुणो न भवति। क्ङिति च इति गुणनिषेधात्। शृणुताम्। तस् स्थाने ताम्, अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्। तेन गुणनिषेधे। शृण्वन्तु— हुश्नुवोः इतियण्, मध्यमपुरुषस्य एकवचने सिप्। श्नुप्रत्यय शृआदेशश्च 'सि' स्थाने 'हि' आदेशे णत्वे। शृणुहि।

(३) असंयोगपूर्वात् = संयोगसंज्ञक पूर्वमें न हो ऐसे प्रत्ययके उकारसे परे हिका लुक् हो। इति हेर्लुक्। यदा हिस्थाने तातङ् आदेशः तदा शृणुतात्। शृणवानि—मिस्थाने नि आदेशे। आट्आगमे नु, इति उकारस्य गुणे अयादेशे च। एवं वस्, मस्परे आट्, गुणे अवादेशे। नित्यं ङितः इति सलोपे. ङित् भावात् न गुणः। अशृणोत्। अत्र पूर्वदिने अनद्यतने समभूत्श्रवणक्रिया (भूतकाले) अर्थे लङ् शृनु आदेशे शप्, गुण, णत्वे ह्यः श्रवणमकरोत्। द्विवचने गुणो न भवति अशृणुताम् बहुवचने हुश्नुवोः इति यण् अशृण्वन्। अशृणोः सि इकारलोपे, सकारस्य रु० वि०। अशृणुतम् अशृणुत उ० पु० में मिप्को अम् अशृणवम् वस् मस् परे 'लोपश्चास्यान्यतरस्याम्' विकल्पेन उकारलोपे। अशृण्व, अशृणुव। अशृण्म; अशृणुम। श्रवणक्रियाके विषयमें आशीर्वाद श्रु + लोट शृनुयासत् णत्वे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात् । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत् अश्रोष्यत् । गम्लृ गतौ । २० । ७ इषु-गमि-यमां छः ७ । १ । ७७ । एषां छः स्यात् शिति । गच्छति । जगाम ।

५०५ गम-हन-जन-खन-घसां-लोपः क्ङित्यनङि ६ । ४ । ९८ । एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतुः । जग्मुः जगमिथ, जगन्थ । जग्मथुः । जग्म । जगाम, जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता । ६ गमेरिट्

सकारलोपे शृणुयात् शृणुयुः शृणुयाः शृणुयातम् शृणुयात शृणुयां अर्थमें लिङ् यासुट् इत्यादि । श्रूयात् । अकृतसार्वधातुकयोः दीर्घः । श्रवणं क्रियात् । भूतकाले समाप्तश्रवणक्रिया अर्थे लुङ् आट तिप् सिच् वृद्धौ । अश्रौषीत् अश्रौष्टाम् अश्रौषुः । अश्रौषीः अश्रौष्टम् अश्रौष्ट । अश्रौषम् अश्रौष्व अश्रौष्म । सभी कर्तामें श्रवणक्रिया समाप्ति आवश्यक है । यदि कथामुश्रोष्यत् तदा पारम् अगमिष्यत् । उपसर्ग श्रुधातुके भी अर्थ बदलते हैं । यथा—संशृणोति (ठीकसे सुनता है) प्रतिशृणोति । प्रतिज्ञां करोति । उपसर्ग हठात् धातुका अर्थ बदल देते हैं । (२०) लृकार इत्संज्ञक गम् धातुका गति-गमन, ज्ञान, प्राप्ति, मोक्षजनक क्रिया अर्थ है सकर्मक है । परन्तु अनुदात्त अनिट् अकर्मक भी हैं । फल तथा क्रियाके आधार अलग-अलग होनेसे सकर्मक है । (४) इष् (इच्छा करना) गम् = गमन करना, यम् = निवृत्त होना, इन धातुओंके अन्त्य अल् (वर्ण) को 'छ' आदेश हो, शित् प्रत्ययपरे । गम्धातुमें जहाँ शप् वहाँ छ आदेश । गच्छति = गमनार्थक गम्धातोः वर्तमान-गमनक्रिया अर्थेलट्, तिप् शप् अनुबन्धलोपे गम्धातुके अन्त्यअल् म् को छ हुआ । छेच सूत्रेण छ परे तुक् = त् आगमे, तस्य श्चुत्वेन 'च' । गच्छतः गच्छन्ति । जगाम = भूतकालिकगमनक्रिया परोक्ष हो; लिट् तिप् णल् द्वित्व, गम, गम, अ हलादिशेष अतोपधायाः वृद्धिः । कुहोश्चुः । जग्मतुः=जगम + अतुस् ।

(५०५) गमनार्थक गम्, हिंसार्थकहन्, प्रादुर्भावार्थक जन, खननार्थकखन् भोजनार्थक घस् इन धातुओं की उपधाका लोप हो, अजादिकिति ङिति परे नत्वङि = अङ् परे न हो । इति उपधाया अकारस्य लोपे । जग्मतुः जग्मुः जग्मिथ । अत्र इट् विकल्पेन भवति । क्योंकि गम्धातु अकारवान् होते हुए तास्प्रत्ययमें नित्य अनिट् है । अतः थलिपरे विकल्पेन इट् जग्मिथ । इट् अभावपक्षे मकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे जगमिथ । वस् मस् परे इट् भवति । उपधालोपश्च । जग्मिव, जग्मिम । गन्ता—गमनक्रिया कल परसों भावी हो । अस्मिन् अर्थे लुट् तास् ति; डा आदि । अनुदात्तधातु है । एकाच् उपदेशे सूत्रेण इट् निषेधः । गन्तारौ गन्तारः अनुस्वार-परसवर्णे । (६) गम् धातुसे परे सादेः = स हो आदिमें ऐसे आर्धधातुकसंज्ञक

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

परस्मैपदेषु ७ । २ । ५८ । गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । ७ पुषादि-द्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ३ । १ । ५५ । श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु । अगमत् । अगमिष्यत् । इति परस्मैपदिनः । अथ आत्मनेपदिनः—एध वृद्धौ । १ । ८ टित आत्मनेपदानां टेरे ६।४।७९ ।

को इट् हो । परस्मैपद प्रत्ययपरे । गमनक्रियाका भविष्यकाल हो, तब गमिष्यति । स्यको आर्धधातुकसंज्ञा सकारादिः गमेरिट् इट् इण्से परे स्य के सको ष हुआ । गच्छतु । श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्, वेदके पीछे जैसे शास्त्र है । गम् + लङ्, अट्, ति, छ, तुक आदि गच्छेत् गमनक्रियाकी सम्भावना आशीर्वाद अर्थमें गम्यात् ।

(७) पुषादि—जहाँ शप्के स्थानमें श्यन् विकरण हो ऐसे पुषादि = पुष पुष्टौ आदि द्युतादि द्युत् दीप्तौ इत्यादि तथा ऌदित ऌकार इत् धातु इनसे परे च्लिके स्थानमें अङ् हो । परस्मैपद परे । यथा—गम् धातोः समाप्त-उत्तरदेशसंयोग जनक क्रिया अर्थे लुङ् तिप् इकारलोपे च्लि, तस्य सिच् प्राप्ते, पुषादि द्युतादि सूत्रेण च्लिस्थाने अङ् = अ आदेशे अडागमे । अगमत् अगमताम् अगमन् । क्लैब्यं मा स्मगमः पार्थ नैत्त्वय्युपपद्यते । यदा विद्यालयम् अगमिष्यत् तदा ज्ञानम् अभविष्यत् । गम् बहुतके अप्रसिद्ध अर्थ हैं । जो उपसर्ग लगनेसे प्रसिद्ध होते हैं । जैसे—आगच्छति आ उपसर्गसे 'आना' अर्थ प्रकाशित है । अवगच्छति, अधिगच्छति=अधिकार-पूर्वक जानता है । उद्गच्छति=ऊपर उठता है । निर्गच्छति=निकलता है, अभिगच्छति= सन्मुख आता है प्रतिगच्छति = विपरीत चलता है । इति परस्मैपदिनः ।

अथ आत्मनेपदिनः = परस्मैपदीके पश्चात् आत्मनेपदीधातुओंका प्रारम्भ । वृद्ध्यर्थक एध् धातुसे करते हैं । तङ् प्रत्याहार शानच् कानच्, अनुदात्तेत्, ङित्; धातुसे आत्मनेपद होता है । एध धातुमें अकारके अनुदात्त तथा इत्संज्ञक होनेसे आत्मनेपदसंज्ञक त, आतां, झ आदि आदेश हो ।

(८) टितोऌस्य=लट् लिट् लुट् ऌट् लेट् लेट् लोट् ये टिल्लकार हैं । इनके स्थानमें आत्मनेपद प्रत्ययके टिको एकार हो । एधते-माङ्गलिक अर्थमें वृद्धिके अनकूलक्रियावाचक एधधातोः वर्तमानकालिकवर्धनक्रिया अर्थे लट्, तस्य स्थाने आत्मनेपदे प्रथमपुरुषस्य त आदेशे, तिङ्, शित् सार्वधातुकौ भवति । कर्तरिशप्=अ । एधत 'अचोन्त्यादिति' अन्त्य अच्, तकारस्य अकारः तस्य टिसंज्ञा । ततः टित् आत्मनेपदानामटेरे इति सूत्रेण टिल्लकारस्य आत्मनेपदतकारस्य टिसंज्ञकस्य अकारस्य एकारे एधते (बढ़ता है) उपैधते (समीपमें पहुँचता है) समेधते । वर्धनार्थक एध् धातोः द्विवचने आताम् शप्=अ । अपित्सार्वधातुकम् (आताम्) ङिद्वत्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते। १ आतो ङितः ७।२।८०। अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्। एधेते। एधन्ते।

५१० थासः से ३।४।८०। टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। "२७४ अतो गुणे"। एधे। एधावहे। एधामहे। १ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६। इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि। २ आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३। आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। आम्प्रकृत्या तुल्यमनु-

---

भवति। तस्यफलम्। (१) आतोङित् अदन्त अङ्गसे परे ङित्प्रत्यय (जिसको ङिद्वत्भाव हुआ हो) के आको इय् हो। इतिसूत्रेण आताम् आकारस्य 'इय्' आदेशे। आद्गुणः इति गुण एकादेशे बलिपरे, यलोपे, टिसंज्ञकस्य आमः स्थाने एकारे आदेशे एधेते एधन्ते। अनेककर्तामें वृद्धिकी क्रिया वर्तमान हो, तब एध् धातोः वर्तमाने लट्, आत्मनेपदे बहुवचने झप्रत्यये तस्य अन्त आदेशे शप् टिसंज्ञकस्य एकारे शप अकारस्य अन्त्य अकारेण सह पररूपे एकादेशे। यदा वर्धन क्रिया म० पु० त्वम् इत्यत्र तिष्ठति। वर्तमाना भवति। तदा वर्तमाने लट् स्थाने थास् आदेशे, शप्। एधथास् अत्र टेरेत्वम् प्राप्नोति तं बाधित्वा।

(५१०) टित् = लकारके थास् स्थाने 'से' आदेश हो। इति सूत्रेण थासः 'से' आदेशे। एधसे। म० पु० आथाम् परे शप्, ङित्, आकारस्य इय् एकादेश गुणे टिसंज्ञक-आमः स्थाने एकारे एधेथे। तुम दोनों बढ़ते हो। यूयं एधध्वे। टेः (अम्) स्थाने एत्वे। अहं प्रतिदिनम् एधे। एध् धातोः वर्धनक्रिया त्वम्' इत्यत्र वर्तमाने भवसि, तदा उ० पु० एकवचनम् इट्=इ। टिको एकार। अतो गुणे, पररुप, एधे। आवां एधावहे। वयं एधामहे। हम लोग पूरा बढ़ रहे हैं। अतो दीर्घे एत्वे। (१) इजादेः=इच् इ उ लृ ऋ ए ओ ऐ औ ये अक्षर आदि में हों तथा गुरुमान् (दीर्घश्च गुरुसंज्ञः) ऋच्छधातु न हो, ऐसे धातुको आम् हो लिट् परे।

(२) आम्प्रत्ययवत्=आम्प्रत्यय हुआ हो जिस धातुसे, उस प्रकृतिभूत धातुके समान ही अनुप्रयोग किया हुआ कृञ् धातुसे भी आत्मनेपद हो। आम्प्रत्ययवत् पद में बहुव्रीहि समासका विचार करते हैं। वत् का इव सदृश अर्थ है, आम् प्रत्ययके सदृश कृञ्से (अर्थ नहीं बैठता) इसलिए बहुव्रीहि समास करते है कि आम्प्रत्ययो यस्मात् आम्प्रत्यय हुआ हो जिससे, वह धातु आम्प्रत्यय है। उसके सदृश परस्मैपदी कृधातु भी अनुप्रयोग दशामें आत्मनेपदी हो। गोपायश्चकारकी तरह परस्मैपदी न रहे। क्योंकि वहाँ गुप्धातुके परस्मैपदी होनेसे कृञ् भी परस्मैपदी है। परन्तु आत्मनेपदी एध के समान कृधातु भी हों। यहाँ बहुव्रीहि अतद्गुण है।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम्। ३ लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४।८१। लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेजेतौ स्तः। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चक्राते। एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे। ४ इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८। इणन्तादङ्गात् परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्। एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। एधाम्बभूव। एधामास। एधिता।

आम् और प्रत्यय ये (गुण) विशेषण हैं। इनसे धातुका बोध होगा, आम् और प्रत्ययका नहीं। जैसे दृष्टसागरम् आनय। यहाँ सागर रहित सागरदृष्टव्यक्ति लाया जाता है दृष्टः सागरो येन विशेषणसे प्रधानका अन्वय क्रियामें है। तस्य प्रधानस्य अन्यपदार्थस्य गुणाः विशेषणानि संविज्ञायन्ते क्रियादर्शनेन प्रतीयते यत्र तद्गुणसंविज्ञानम्। यहाँ विशेषण अन्यपदार्थमें देखे जाते हैं जैसे— लम्बोदरम् आनय लम्बं तुन्दिलम् उदरं यस्य तम् आनय। यहाँ लम्बीतोंद विशेषण सहित विशेष्यव्यक्ति आता है। एवं लम्बौ कर्णौ यस्य स लम्बकर्णः (खरगोश) पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बरः। विष्णुः विशेषण सहित विशेष्यका ज्ञान होता है। आम्प्रकृत्या = आम्प्रत्ययकी प्रकृति (एधधातु) के तुल्य = समान अनुप्रयोग किया गया। 'कृ' से भी आत्मनेपद हो। यह अन्वय आत्मनेपद होनेकी दिशामें विशेषण आम् तथा प्रत्यय नहीं मिलते।

(३) लिटः = लिट्के स्थानमें आदेश हुए तझयोः = तत था झ को क्रमसे एश् इरेच् हो। त के स्थान में शित्वात्सर्वादेश, झ के स्थानमें अनेकाल्त्वात् इरेच् भवति। एधाञ्चक्रे = बढ़नेकी समाप्तक्रिया परोक्ष हो। एध लिट् आम् इजादिः गुरुमान्धातुः। ततो लिट्, लुक्। कृञ्चानुप्रयुज्यते कृ लिट् इति अनुप्रयोगे लिट् स्थाने त, द्वित्वादिकार्ये कृ कृ कर् कृ क कृ च कृ त, स्थाने एश् सर्वादेशे। मकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे राम्। द्विवचने एधाञ्चकृ आताम् यण्। झ स्थाने इरेच्। एधाञ्चकृषे तुम परोक्षकालमें पहले ही बढ़ चुके हो। थास्को 'से' षत्व। कृ सृ भृ आदि से इट् निषेध। (४) इण् प्रत्याहारके अक्षर हो अन्तमें ऐसे अङ्ग से परे षीध्वं लुङ् लिट् सम्बन्धी ध को ढ़ हो। एधां कृ ध्वम्। कृ द्वित्वे उरत् इति अत्। हलादिशेषे श्चुत्वे यण्। मकारस्य अनुस्वारपरसवर्णौ। टिस्थाने एत्वे इणः षीध्वं सूत्रेण लिट् सम्बन्धी ध्वम् धकारस्य ढकारे। इणन्त अङ्ग कृ। एधाञ्चकृढ्वे एधाञ्चकृध्वे। अनेककर्तामें वृद्धिजनक क्रियाका समाप्त परोक्षकाल। अहं एधाञ्चक्रे। इट् प्रत्ययमें इको टित् मानकर एत्वे। मैं न जाने कब बढ़ा। वहि महि परे क्रादि नियम से इट् निषेध। टि को एत्व। हम लोग कब बढ़े थे। एधाम्बभूवे। कृ की जगह भू लिट् का अनुप्रयोग होनेसे सिद्ध हुआ। प्रक्रियापूर्ववत्। एधिता (कल बढ़नेवाले हैं) वृद्ध्यर्थक एधधातुसे अनद्यतन आगामी भविष्यकालमें भविताकी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे ।

५१५ धि च ८ । २ । २५ । धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः । एधिताध्वे । ६ ह एति ७ । ४ । ५२ । तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति । परे । एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे । एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । ७ आमेतः ३ । ४ । ९० । लोट एकारस्याम् स्यात् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् । ८ सवाभ्यां वामौ ३ । ४ । ९१ । सवाभ्यां परत लोडेतः क्रमाद् वामौ स्तः । एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् । ९ एत ऐ ३ । ४ । ९३ । लोडुत्तमस्य एत

तरह अनेककर्ता बढ़नेवाले हों तब एधितारः । एधितासे । तुम कल बढ़नेवाले हो । थासः से तासः (स्त्योः) सकारस्य लोपः । ऐधितास्+आथाम् । टेः (आम्भागस्य) एत्वे एधितासाथे । एधितास् ध्वम् ।

(५१५) धादौ धकार आदिमें हो ऐसाप्रत्ययपरे हो तो 'स' का लोप हो । इति सूत्रेण तास् सकारस्य लोपे धकारादिप्रत्ययः ध्वम् आदौ अस्ति । एधिताध्वे (तुमसब बढ़ोगे) । (तास् और असधातुके स को ह हो, एकारपरे । इट्को टित् एत्व करनेपर तास् के सको ह हुआ एधिताहे सामान्य भविष्यकालमें बढ़नेकी क्रियाका सूचक लृट् (वह बढ़ेगा) एधिष्यते (वे दोनों बढ़ेंगे) । एधिष्यन्ते = वे सब बढ़ेंगे । इसी प्रकार अन्यकर्तामें भी भविष्यकालिकवर्धनक्रियाका प्रयोग समझे । (७) एत आम् । लोट् सम्बन्धी एकारको आम् हो । वर्धन क्रियाकी प्रेरणा या आशीर्वादको कहना हो एध लोट् त शप् एत्वे एधते । आमेतः एकारस्य आम् कृते एधताम् । तुम सदा बढ़ो । आताम् इत्यस्य ङिद्वद्भावे कृते अतो ङितः इति आकारस्य इय आदेशे एकादेशगुणे एत्वे आम् आदेशे एधेताम् । वे दोनों सदा बढ़ें । सर्वे छात्रा एधन्ताम् ।

(८) सवाभ्याम् सकार वकारसे परे लोट् सम्बन्धी एकारको क्रम से 'व' 'अम्' हों । आमेतः को बाधकर । थासः से ।, एध से यहाँ स से परे एको व । एधस्व एधध्वम् । अत्र ध्वम् को एत्व करने पर (व) से परे एको अम् । आमेतः को बाधकर । उ० पु० में टिको एत्व होनेपर उस एकारको (९) लोट लकारके उ० पु० के ए को ऐ हो एधै एधावहै हम, सब सदा बढ़ें । आडुत्तमस्य पिच्च से आट् आगम शप् एध+आ+ए । सवर्णदीर्घे । टितात्मनेपदानाम् एत्वे (एकारको आमेतः से प्राप्त आम् को बाधकर) एतऐ से ऐ आदेशे । ऐधत = कल बढ़ा था । वृद्धिजनक क्रियावाचक एध् धातोः समाप्तअनद्यतनवर्धन क्रियाकाले लङ् आट्, अजादीनां सूत्रेण एध् इत्यस्य आट् टित् आदि को । आटश्चेतिवृद्धिः । लङ्स्थाने आत्मनेपदे त प्रत्यये शप् ऐधत ऐधेतां रामलक्ष्मणौ । छात्राः ऐधन्त । बढ़ने की समाप्त

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ऐ स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै । (१९७) आटश्च । ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधथाः । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ।

५२० लिङः सीयुट् ३ । ४ । १०२ । सलोपः । एधेत । एधेयाताम् । १ झस्य रन् ३ । ४ । १०५ । लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथाः । एधेध्वम् । २ इटोऽत् ३ । ४ । १०६ । लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात् । एधेय । एधेवहि । एधेमहि । ३ सुट् तिथोः ३ । ४ । १०७ । लिङस्तथोः सुट् । यलोपः । आर्धधातुकत्वात् सलोपो न । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् ।

क्रिया का कर्ता म० पु० । उ० पु० ऐधे एध लङ् आट् आटश्च वृद्धिः इट् प्रत्यये शप् गुणे । ऐधामहि अतोदीर्घो यञि । हम लोग बढ़े थे ।

(५२०) लिङ्के स्थान में आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययों को सीयुट् आगम हो । उट् इत् । सीय् अंशः शिष्यते । लिङः सलोपो अनन्त्यस्यसे सलोप । वृद्धिक्रिया के विषय में जहाँ आशा, अनुरोध, निवेदन, स्वागत, निश्चय, प्रार्थना की संभावना हो वहाँ लिङ् एध् लिङ् तस्य स्थाने आत्मनेपदे त शप् लिङः स्थाने आत्मनेपदस्य तकारस्य सीयुट् आगमः । सार्वधातुकसंज्ञकः । यदागमपरिभाषया अनन्त्य-सकारस्य लोपः । लोपोव्योर्वलि वल-परे यकारस्य लोपः । एध इत गुणे । एधेत । एधेयाताम्—एध अ सीय आताम् । सकारलोपे, गुणे, कृष्ण राम बढ़े । बहुवचने एध अ ईय् झ (१) लिङ् के स्थान में आदेश झ को रन् हो । गुणे यलोपे एधेरन् (धार्मिकस्य धनानि) अकर्मकधातु में फल, क्रिया दोनोंका आधार एक ही है । धन में ही वृद्धिरूप फल है । बढ़ना क्रिया भी । त्वम् एधेथाः युवाम् एधेथाम । यूयं एधेध्वम् । तुम सब बढ़ो । उ० पु० एक व० एध् अ इ य् इ (२) लिङ्के स्थान में हुए आदेश इट्के स्थान में अत् = अ हो । वर्णसम्मेलने हम बढ़े । तुम दोनों सदा बढ़े (३) लिङ्के स्थान में त या थ हो उसको सुट् हो, य लोप । अर्धधातुकसंज्ञा होने से लिङः सलोप नहीं होता । बढ़नेके लिए शुद्ध आशीर्वाद अर्थ के अनुकूल क्रिया उ० पु० का कर्ता हो, तब एध+इट्, सीयुट् सुट् (लिङ्) त अनुबन्ध लोपे लिङ्ः सीयुट् त परे सुट् लिङाशिषि आर्धधातुकसंज्ञा वलादिइट् । सकार लोपो न । सार्व । षत्वेष्टुत्वे एधिषीष्ट । द्विवचने आताम्, एधिषीयास्ताम्, तत्र तकारपरे सुट् । बहुवचने झस्यरन् यकारलोपः । एधिषीरन् । वे लोग सदा उन्नति करें । थास् को सुट् षत्व ष्टुत्व एधिषीष्ठाः । तुम सदा उन्नति करो । तव लोकपरलोको एधिषीयास्थाम् एधिषीध्वम् । ए ध इ षीयध्वम् । यहाँ इट् सीयुट होनेसे इणन्त अङ्ग नहीं है । इसलिए इणः षीध्वमसे ध को ढ नहीं हुआ । उ० पु० में इट्को अत्=‘अ’ होने से एधिषीय । हम सदा बढ़ें । यहाँ वर्धन क्रिया पूर्ण रूप से किसी समय समाप्त हुई हो उस भूतकाल में लुङ्, आत्मनेपते त, आट्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एधिषीरन् । एधीषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् । ४ आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५ । अनकारात् परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात् । ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ऐधिढ्वम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि । ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । कमु कान्तौ । २ ।

५२५ कमेर्णिङ् ३ । १ । ३० । स्वार्थे ङित्वात्तङ् कामयते । ६ अयामन्ताल्वाय्येत्निविष्णुषु ६ । ४ । ५५ । आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् । कामयाञ्चक्रे । (४६९) आयादय इति णिङ् वा ।

वृद्धिः । च्लि, सिच्, इट्, षत्वष्टुत्वे । ऐधिष्ट । रावणः । इदानीं देवनामुनी ऐधिषाताम् । (४) अनतः अनकारात् = अकाररहित वर्ण से परे आत्मनेपद झ को अत् आदेश हो । झोन्तः को बाधकरके । एध्, इट्, सिच्, झ अनुबन्ध लोपे 'आत्मनेपदेष्वनतः' अकार भिन्नएधि का इ, या सिच् का स् उससे परे झ स्थाने अत् (अ) आदेशे षत्वे ऐधिषत् धार्मिकाः । थास् परे सिच् सकारस्य षत्वे ष्टुत्वे ऐधिष्ठाः ऐधिढ्वम् । एध् लुङ् आट् वृद्धिः ध्वम् च्लि, सिच् इट्, सकारलोपे 'धिच' सूत्रेण । इणः षीध्वम् सूत्रेण ढत्वं प्रत्यय परे इणन्त अङ्ग एधि इत्यतःपरे धस्य ढ़कारे । क्योंकि सिच् प्रत्यय धातु से होता है सिच् को इट् । इट् सहित सिच्को तदादि मानकर अङ्गसंज्ञा । वर्धनक्रिया के कार्यकारणभाव में लृङ् । यदा पिता ऐधिष्यत, पितरौ ऐधिष्येताम् तदा पुत्राः ऐधिष्यन्त, यदा अहम् ऐधिष्ये (बढ़ेंगे) तदा वयम् ऐधिष्यामहि (२) उकार इत्संज्ञक कम् धातु का कान्ति=इच्छानुकूल क्रिया अर्थ है । यहाँ कामनारूप फल अलग रहता है, उसके अनकूल क्रिया अन्यत्र, होने से सकर्मक धातु है ।

(५२५) कम् धातु से णिङ्=इ प्रत्यय हो स्वार्थः वही अर्थ णिङ् का भी है । दोनों अभिन्न हैं णिङ् में ण 'इत्' का फल वृद्धि है । और ङ् इत् का फल भी कम् इ इति दशायां णितिपरे उपधायाः अकारस्य वृद्धिः कामि शब्दस्य सनाद्यन्ताः धातवः इति धातुसंज्ञा । ततः लकाराः उत्पद्यन्ते ङित् होने से तङ् आत्मनेपदे त, शप, इकारस्य गुणे अय् टित् आत्मने टेरे, एकारे कामयेत । इच्छा करता है बालकः मोदकं कामयेते, कामयन्ते । कामयेसे कामयेथे, कामयध्वे । अहं पुस्तकं कामये, आवां कामयावहे, वयं कामयावहे ।

(६) आम् अन्त् आलु आलु आय्यइत्नु, इष्णु, ये प्रत्यय एक भी परे हो तो णिको अय् आदेश हो भूतकालिक परोक्ष कामनाक्रिया अर्थमें कम् धातुसे लिट्, स्वार्थमें णिङ्, सनाद्यन्ता धातुसंज्ञा कासनेकाच् 'आम्' वक्तव्यः । आम् परे णि

CC-O. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

चकमे। चकमाते। चकमिरे। चकमिषे। चक्रमाथे। चकमिध्वे। चक्रमे। चकमिवहे। चक्रमिमहे। कामयिता, कमिता। कामयितासे। कामयिष्यते, कमिष्यते, कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट। ७ विभाषेटः ८।३।७९। इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः।

स्थाने अय् आदेशे, आम् अन्त आलु, सूत्रेण। कामयाम् लिट्। आमः इति लिट् लुक्। कृ लिट् इति अनुप्रयोगे लिट् स्थाने 'त' तस्य एश् आदेशे। द्वित्वादिकार्ये कामयाञ्चक्रे कामयाञ्चक्राते कामयाञ्चक्रिरे अत्र झ स्थाने इरेच् आदेशे लिटस्त-झयोरेशिरेचि। कामयाञ्चकृषे कामयाञ्चक्राथे कामयाञ्चकृढ्वे कामयाञ्चक्रे काम-याञ्चकृवहे, कामयाञ्चकृमहे। आयादयः इति। आयादयः आर्धधातुकेवा सूत्रसे वा का अधिकार आनेपर णिङ् विकल्पसे होता है। आय् आदि गण पठित है। अतः आय् नहीं होगा। तो कम् त, तस्य एश्, द्वित्वादिकार्ये कम-कम ककम् चकम् टित् लकारों में सर्वत्र टिको एत्व होता है। कदा चकमे (कवि इच्छा किया) चक्रमाते—आतां विभक्तिपरे। चकमिरे—उन लोगों ने काम किया। त्वम् चकमिषे। यूवां परीक्षां दातुं चकमाथे। चकमिढ्वे। चकमे, चकमिवह चकमिमहे। कामयिता—कामना, दीप्ति, प्रकाश, अर्थवाचक कम् धातोः आगामिदिनभविष्यकाले अर्थे लुट्। कर्णेणिङ् विकलपसे होनेपर, अय् तास, झ, आदि। पक्षे कमिता। दोनों रुपोंमें भविष्यकालिक कामना क्रियाकी शक्ति है। उसका प्रकाशक विकल्प है। सामान्य भविष्य कालमें कामना, दीप्ति, प्रकाशके अनकूल क्रिया हो. तब कामयिष्यते। उक्त अर्थ णिङ् के विना भी दृष्ट है कमिष्यते=कामना करेंगे। कामयताम्= कामना, कान्ति, इच्छाके अनुकूल क्रियामें, प्रेरणा आज्ञा, आशीर्वाद आदि की विवक्षामें, लोट् 'आमेतः' एकारस्य आम् ' आप कामना करें। कामयेतां कामयन्ताम्। कामयस्व कामयेथाम् पठनाय कामयध्वम्। पढ़नेके लिए पूरी कामना करो। कामयै, कामयावहै, कामयामहै। हम सब अध्ययन करना चाहते हैं। अकामयत्=पढ़नेकी इच्छाकी थी। गुरुशुश्रुषां कामयेत् कम् णिङ् (उपधा वृद्धिः) कामि सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञकाः। इच्छाकी सम्भावना अर्थमें लिङ्, तिप् सीयुट्, शप् अनुबन्धलोपे गुणे आयादेशे। पुनः गुणे। कामयेत्। कामयेयातां कामयेरन्। कामयेथाः कामयेयाथां कामयेध्वम्। कामयेय, कामयेवहि। कामयिषीष्ट। कामना विषयक आशीर्वाद अर्थमें लिङ्=मेरा आशीर्वाद है कि तुम सदा प्रगतिकी कामना करो। (७) इटः विभाषा। इण् प्रत्याहार अक्षरसे परे जो इट् उससे परे सीध्वम् और लुङ् लिट् सम्बन्धी 'ध' को ढ हो; विकल्पसे। कामि इट् सीयुट् ध्वम् अनुबन्धलोपे। यहां इण् कामिमें इ है उससे परे इट् है उससे भी परे सीध्वम् का ध उसको ढ़ हुआ। कामयिषीढ़्म्। णिङ् के अभाव पक्षमे कम् इट् सीयुट् सुट् त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कामयिषीढ्वम्; कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्। ८ णि-श्रि-द्रु-स्रु-भ्यः कर्तरि चङ् ३।१।४८। ण्यन्ताच्छ्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे। कामि अ त इति स्थिते। ९ णेरनिटि ६।४।५१। अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात्।

५३० णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१। चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्। १ चङि ६।१।११। चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य। २ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३। चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः

षत्वे ष्टुत्वे कमिषीयास्तां कमिषीरन् कमिषीष्ठाः कमिषीयास्थां कमिषीध्वम्। कमिषीय कमिषीवहि कमिषीमहि। इच्छार्थक कम् धातोः स्वार्थे णिङ् उपधावृद्धिः। भूतार्थे=प्रमाप्तकामनाजनकक्रिया अर्थे लुङ्। आत्मनेपदे 'त' अट् आगने च्लि इट्। अकाम इ च्लि त। सिच् प्राप्ते तं बाधित्वा। (८) णि=ण्यन्तधातु, श्रि सेवा, द्रु गति स्रु-प्रस्रवणे, इन धातुओंसे परे च्लि के स्थानमें चङ् हो कर्त्रर्थे=कर्तृवाच्य लुङ् परे। यदि कर्मवाच्य लुङ् हो तब च्लि को चङ् नहीं। चङ् च् ङ् इत् 'अ' शिष्यते। कामि अत इति दशायां चङ् आकारको आर्धधातुकसंज्ञा। (९) णेः=णिस्थाने, अनिट्–न इट्, अनिडादौ=इट् आदिमें हुआहो ऐसे आर्धधातुक परे णिलोप हो। अनिट् आर्धधातुकचङ् का अ है, उसके परे णि का लोप। अकाम अत इति स्थिते।

(५३०) णौ, चङि, उपधाया, चङ् परक णिपरे जो अङ्ग उसकी उपधाको ह्रस्व हो। अङ्गसंज्ञक काम् उसकी उपधा 'आ' को ह्रस्व। अकम् अत। (१) चङ् परे हो तब अनभ्यासस्य=जिसको अभ्याससंज्ञा न हुई हो, द्वित्व न हुआ हो, ऐसे धातुका अवयव प्रथम एकाच को द्वित्व हो। अजादि धातु हो तो, द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो। द्वित्वे, कम्-कम् ककम् चकम् अत्। (२) चङ्परे णौ यदङ्ग=चङ् परक णिपरे जो अङ्ग, उसका अवयव लघुनि–लघुपरक, लघु हो परे जिससे ऐसा अभ्याससंज्ञक, उसको सन्वद् (सन इव कार्यम्)। सन् परे रहते जो कार्य होना हो उसके समान कार्य यहाँ भी हो। अनग्लोपे=अक=इ, उ, ऋ लृ का लोप न हुआ हो तो। णौ=णि परे रहते। प्रसङ्ग में स्थानिवद्भाव से चङ् परक णि अ है उसके परे अङ्गसंज्ञक अच् का है, उसका अवयव अभ्यास च है च में अ लघु होनेसे अभ्यास अच्कथत् में णिच् होनेपर अकार लोप हुआ है वहाँ सन्वद्भाव इत्व नहीं होवे। च है, च में अ लघु होनेसे लघुपर भी है। आगे कम् का 'क' भी लघुसंज्ञक है। यहाँ सन्वद्भाव होनेसे आगे कार्य होगा। यहाँ अक् अकारका लोप णि परे मानकर नहीं हुआ है। इस सन्वद्भावके दोफल-अभ्यासको इकार, उसीको दीर्घ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति। ३ सन्यतः ६। ४। ७९। अभ्यास-स्यात् इत् स्यात् सनि। ४ दीर्घो लघोः ७। ४। ९४। लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये। अचीकमत। णिङभावपक्षे (कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः) अचकमत। अकामयिष्यत। अकमिष्यत। अय गतौ।३। अयते।

५३५ उपसर्गस्यायतौ ८। २। १९। अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् प्लायते। पलायते। ६ दयायासश्च ३। १। ३७। दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि। अयाञ्चक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट। (५२७) विभाषेटः अयिषीढ्वम्,

---

(३) सनि अतः। अभ्यासके अ को इ हो सनिपरे। इससे स में अ को 'इ' हुआ। (४) दीर्घोलघोः अभ्यासके लघुसंज्ञक को दीर्घ हो, सन्वद्भावके विषयमें। चङ् के अ को सन्वद्भाव हुआ। अभ्यासका लघु चि में इ को दीर्घ अचीकमत्। अचीकमेताम् अचीकमन्त। अचीकमथाः अचीकमेथाम अचीकमध्वम् अचीकमें अचीकमावहि अचीकमामहि। स्वार्थिक प्रत्यय णिङ्के अभाव पक्षमें, सन्वद्भाव इत्व दीर्घ नहीं होते। तब च्लि को चङ् करनेके लिए वार्तिक कामसे परे च्लि के स्थानमें चङ् बोलना चाहिए। अचकमत्। द्वित्वादिकार्यें रुपम्। कान्तिः इच्छा जनक भूतकालिक क्रिया अर्थ सभी कर्तामें है यदा अकामष्यत् तदा प्रयत्नेन फलमभविष्यत्। णिङ् अभावे अकमिष्यत्। ३ अय् धातुका गति जाना, उत्तर देशसंयोगके अनकूल क्रिया अर्थ है। गत्यर्थक अय् धातुसे गति क्रियाके वर्तमान रहनेपर, लट् त शप् एत्व अयते। यदि प्र या परा उपसर्ग जोड़ दिया जाय (जोड़ने वाली सन्धि सवर्णदीर्घ होगी।) प्रायते परायते इति दशायाम्।

(५३५) अयति परस्य = अय् धातु परे उपसर्गके रेफको 'ल्' हो। र को ल होनेसे प्लायते, पलायते। प्राण बचाकर तेज अनद्यतन भूतकाल, गत्यर्थक अय् धातोः लिट्। (६) दय् अय् आस् इन धातुओंसे आम् हो लिट् परे। इति आम्। दयाम् लिट्। लिट्, लुक्, लिट् परक कृ अनुप्रयोगे त, स्थाने लिटस्त झयो रेशिरेच् इति एश् आदेशे कृ इत्यस्य द्वित्वादिकार्यें अनुस्वारपरसवर्णौ। गतसम्वत्सरे स अयाञ्चक्रे आयाञ्चक्राते अयाञ्चक्रिरे (जग्मुः। अद्यभिन्न भविष्यकालिक क्रिया-वाच्ये लुट् अयिता = गन्ता। अयिष्यते (गमिष्यत) अयताम् (व्रजतु) आयत (अव्रजेत्) अयेत्=गच्छेत्। अय शप् सीयुट् त। अयिषीष्ट = अय् इट् सीयुट् सुट् षत्व ष्टुत्व। अयिषीयास्ताम् अयिषीरन्। अयिषीष्ठाः अयिषीयास्थाम्। अयिषीध्वम्। अत्र विभाषेटः सूत्रेण ढत्वविकल्पे। यहाँ इण् 'य' से परे इट् उससे भी परे इट् उससे भी परे षीध्वम्के ध को ढ़ हुआ। अयिषीढ्वम् गत्यर्थक क्रिया समाप्त हो भूतकालवाचक लुङ् आट् आत्मनेपदे 'त' सिच् आर्धधातुकसंज्ञा, इट्, वृद्धिः,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अयिषीढ्वम्। आयिष्ट। आयिढ्वम्, आयिढ्वम्। आयिष्यत। द्युत दीप्तौ। ४। द्योतते। ७ द्युति-स्वाप्योः संप्रसारणम् ७। ४। ६७। अभ्यासस्य। दिद्युते। ८ द्युद्भ्यो लुङि १। ३। ९१। द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं

षत्वे ष्टुत्वे। आयिष्ट। आयिषाताम् आयिषत। आयिष्ठाः, आयिषाथाम् आयिढ्वम्। आयिषि आयिष्वहि आयिष्महि। आयिष्यत आयिष्यन्त। आयिष्यथा आयिष्येथाम् आयिष्यध्वम् ढ्वम्। आयिष्ये आयिष्यावहि आयिष्यामहि।

(४) द्युत धातुका दीप्ति—चमकना, प्रकाश करनेके अनकूल क्रिया अर्थ। विशेषकर विद्युत् विद्योतते। (बिजली चमकने) अर्थमें प्रसिद्ध है। यह चमकना विद्योतनक्रिया वर्तमान रहे तब वर्तमाने लट् द्युत् + लट् आत्मनेपदे प्र० पु० एक वचने त शप् = अ, लघूपधगुणे ओकारे। टेरे = टि को एकार। द्योतते। द्योतेते द्योतन्ते। यदा विद्योतन क्रिया (अनद्यतन परोक्षकालमें) समाप्त हो उस अर्थमें लिट् आत्मनेपदे 'त' तस्य स्थाने एश् (लिटस्तझयोरिति सूत्रेण) द्वित्वे द्युत् द्युत् हलादिशेषे द्यु धुत् ए। (७) द्युत ओर स्वप् धातुके अभ्याससंज्ञकको सम्प्रसारण हो इति अभ्यास द्यु इत्यत्र यकारस्य सम्प्रसारणे इकारे। सम्प्रसारणाच्च पूर्वरुपे। दिद्युते दिद्युताते दिद्युतिरे। दिद्युतिषे। दिद्युताथे दिद्युतिध्वे। दिद्युते, दिद्युतिवहे दिद्युतिमहे। सभी पुरुषके कर्तामें अनद्यतनभूतकालिक चमकना क्रिया रहेगी। द्योतिता = श्वः विद्युत् प्रकाशयिता द्योतयिष्यते। प्रकाशं करिष्यति। द्योतताम् (चाक चिक्यमे वर्धतां) पहले ही दीप्तिक्रिया समाप्त हो। लङ् अद्योतत्। चमकनेके अनकूलक्रियाकी प्रेरणा हो विधिलिङ्। द्योतेत्। प्रकाशित होना चाहिए। प्रकाशित होनेके लिए आशीर्वाद कहना हो तो तब द्योतिषीष्ट। (८) द्युद्भ्यो=द्युतादिगण पठित धातुओंसे परे लुङ्के स्थानमें परस्मैपद तिप् तस् झि आदि विकल्पसे हों। बिजली चमकी। इस अर्थमें लुङ् अट् त च्लि। अद्युत्, च्लित्। लुङ् स्थाने विकल्पेन परस्मैपदप्रत्यये परे। पक्षमें पुषादिसूत्रसे च्लि के स्थानमें सिच् को बाधकर अङ् हुआ। ङित होनेसे क्ङितच गुणनिषधें।

अद्युतत्। परस्मैपदके अभाव में आत्मनेपद सिच् इट् गुण षत्वे ष्टुत्वे। अद्योतिष्ट, अद्योतिषाताम्, अद्योतिषत। अद्योतिष्ठाः अद्योतिषाथाम् अद्योतिढ्वम्। अद्योतिषि अद्योतिष्वहि अद्योतिष्महि। द्युत् धातुकी प्रक्रिया शैली की तरह श्विता, वर्णे इत्यादि १४ धातुओं को समझें। यथा—(५) आकार इत्संज्ञक श्वित् धातुका सफेद रङ्ग रङ्गने के अनुकूल क्रिया अर्थ। श्वेतते। रागकरणं प्रसादम् (महल) श्वेतते = शुभ्रादिभिः (चूना आदि से) श्वेतं करोति (सफेदी करता है) शिश्विते= न जाने कब रङ्ग दिया। श्वेतिता = कल या परसों रङ्ग करेगा। श्वेतिष्यते। (मैं भी मकान को सफेद करुँगा)। श्वेतताम् (वे भी स्वच्छ करें)। त्वमपि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वा स्यात्। (५०७) पुषादीत्यङ्। अद्युतत्। अद्योतिष्ट। अद्योतिष्यत। एवं श्विता वर्णे।५। ञिमिदा स्नेहने।६। ञिष्विदा स्नेहनमोचनयोः।७। मोहनयोरित्येके। ञिक्ष्विदा चेत्येके। रुच दीप्तावभिप्रीतौ च।८। घुट परिवर्तने।९। शुभ दीप्तौ।१०। क्षुभ संचलने।११। णभ तुभ हिंसा-

---

श्वेतस्व। अश्वितत। वह कल ही सफेदी कर लिया। श्वेतेत्। यदि चूना छूते तो बहुत अच्छा होता। श्वेतिषीष्ट। तुम सदा सफाई करते रहो। अश्वेतिष्ट। वे स्वच्छता कर चुके। यदि गृहम् अश्वेतिष्यत् तदा आकर्षणमभविष्यत्। (६) ञि इत् आकार इत्। मिद् धातुका स्नेहन, स्निग्धत्वकरणम्, चिकना होनेके अनुकूल क्रिया अर्थं। मेदते (उपानहौ) (जूता चिकना करता है) मिमिदे। पहले ही चिक्कन कर चुके। प्रत्येक लकारों में उपर्युक्त दृष्टि से अर्थ करना चाहिए। (७) स्विद् धातु का स्नेहन, गीला, पसीना, मोचनम्, त्यागः, होने की क्रिया अर्थ। स्वेदते गीला होता है या पसीजता है। शरीर पसीना छोड़ रहा है। शरीरं स्वेदं स्वेदते। सिस्विदे। पहले ही पसीना छोड़ चुका। स्वेदिता = कल छोड़नेवाला है। स्वेदताम् (पसीझते रहो) अस्वेदत् (चू चुका) स्वेदेत्। स्वेदिषीष्ट। अस्विदत् अस्वेदिष्ट। अस्वेदिष्यत् जब पसीना होगा तब आराम आवेगा। कोई कोई मोचनयोः की जगह मोहनयो (मोहित होना अर्थ) कहते हैं। कोई स्विद्का पाठ करते हैं।

(८) रुच् धातुका दीप्ति, प्रकाश, चमकना, अभिप्रीती, इच्छा का विषय होना पसन्द आना, रोचते बालकाय कन्दुकं, मोदकंवा। (रुचि अर्थ में चतुर्थी) रुरुचे। चमका या पसन्द आया। श्वः उत्सवः रोचिता। सदा स्वाध्यायः मह्यं रोचिष्यते तुभ्यमपि रोचताम् अरोचत। यदि छात्रान् रोचेत। तदा आशीर्वादे अरोचिषीष्ट। अतएव अरुचत्-अरोचिष्ट। यदि अरोचिष्यत् तदा कल्याणमभविष्यत् (९) घुट् परिवर्तने। घुट् धातुका परिवर्तन (एकस्यैव वस्तुनः सर्वप्रकारेण घर्षणं (घोटना) घोटते भङ्गं, जुघुटे। अनद्यतनपरोक्षकालिकसमाप्तसंघर्षण क्रिया। स श्वः घोटिता। सदा घोटिष्यते। भङ्गं घोटताम्। यथा स अघोटत। यथा ते घोटेरन्। घोटिषीष्ट। अघुटत् अघोटिष्ट (१०) शुभ धातु का भी दीप्ति प्रकाशक अर्थ है। शोभतेशुशुभे, शोभिष्यते अशोभत अशोभिष्ट (११) क्षुभ् धातुका संचलन स्वभावत्यागेन वर्तनम्। विचलित, व्याकुल, या क्षुब्ध होना। सभी लकारों का अर्थ अनुसंधान कर धातुरूपों को समझें। णभ् धातु हिंसा-प्राण वियोग के अनकूल क्रिया। किसी आत्मा को कष्ट की क्रिया अर्थ। नभते=भयानक भय पैदा करता है। नेभे (परोक्षहिंसा करचुका) नभिष्यते। हिंसा करेगा। अनभिष्यत् (१२) तुभ् धातु का भी हिंसा, प्राण वियोग, कष्ट प्रदानजनक

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

याम् । १३ । स्रंसु भ्रंसु ध्वंसु अवस्रंसने । १६ । ध्वंसु गतौ च । १७ । स्रम्भु विश्वासे । १८ । वृतु वर्तने । १९ । वर्तते ववृते । वर्तिता । ९ वृद्भ्यः स्यसनोः १ । ३ । ९२ । वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात् स्ये सनि च ।

५४० न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७ । २ । ५९ । वृतु-वृधु-शृधु-स्यन्दुभ्यः सकारा-

---

क्रिया अर्थः । तोभते (तोड़ाई करता है) हस्तपादौ तोभते । तोभिता = हाँथ पाँव तोड़ने वाला है । यथा—युद्धे अतोभत् । हिंसा की क्रिया समाप्त हो तो अतुभत् अतोभिष्ट (१४) स्रंस् भ्रंस् तथा ध्वंस् इन धातुओं का अवस्रंसन, स्खलन, लड़खड़ाना । खिसकना गिरना, नाश होना के अनुकूल क्रिया अर्थ । स्रंसते, बभ्रंसे, दध्वंसे, ध्वसिता । स्रंसिषीष्ट अस्रसत अभ्रंसीष्ट । अस्रंसीष्ट । एवं अध्वसत अध्वंसीष्ट ।

(१८) उकार इत् स्रम्भ धातुका विश्वासानुकूल क्रिया अर्थः । प्रायः वि उपसर्गक (विश्वास होता है) । स्रम्भते, सस्रम्भे = विश्वास क्रिया, स्रम्भिता= विश्वास करेगा । अस्रम्भत् विस्रम्भताम् । विस्रम्भेत् विस्रम्भिषीष्ट । अस्रभत अस्रम्भिष्ट । उकार इत् वृत् धातुका वर्तन, सत्ता, होना, उपस्थित रहना, विद्यमान, व्यवहारजनक क्रिया अर्थः । इस धातुमें फल और क्रिया इतने सूक्ष्म रुपसे रहते हैं कि उनको अलग-अलग समझना कठिन है । वर्तते त, शप्, गुण, टित् एत्वे । यहाँ कर्ता से क्रिया, क्रियासे फल अनुमित है । ववृते अत्र न गुणः अपित् लिट् कित् भवति । गुणनिषेधे, परोक्षे वर्तनव्यवहारे अर्थे लिट् द्वित्वे वृत् वृत्, ववृत् 'उरत्' वर्वृत् ववृत्त । एश् ववृते = न जाने कब उपस्थितथे । वर्तिता । आगामिदिनमें व्यवहार कर्ता अर्थे लुट् (६) वृतादिभ्यः = वृतुवर्तने, वृधु (वृद्धौ) शृधु (शब्द, कुत्सायाम्) अत्र कुत्सितशब्दः = अपानवायुः । स्यन्द प्रस्रवणे, कृप् सामर्थ्ये, इन पाँच धातुओंसे परस्मैपद हो विकल्पसे । स्य या सन्का विषय हो तब । वर्त्स्यति 'ठहरने वाला है । इस अर्थ में "वृत् स्यति" गुणे, वृद्भ्यः स्यसनोः' इस सूत्रसे स्य का विषय होने पर परस्मैपद 'ति' इट् प्राप्ते निषेध सूत्रम् ।

(५४०) वृत् वृध शृध स्यन्द इन धातुओंसे सकारादि आर्धधातुक "स्य' या 'सन्' को इट् न हो । तङ् = आत्मनेपदे आन = शानच् कानच्के अभावमें इट् निषेध नहीं होता । आत्मनेपदमें इट् हो जाता है । गुणे, वर्तिष्यते । वर्ताव करेगा । अवर्तत्, अवर्तेताम् अवर्तन्त । कल वर्ताव किया । वर्तेत वर्तेयाताम् वर्तेरन् । वे रहैं, व्यवहार करें । वर्तिषीष्ट, वर्तिषीयास्तां वर्तिषीरन् । आपको वर्ताव करना चाहिए । सो अवर्तिष्ट, उसने व्यवहार किया । अवर्तिषाताम् अवर्तिषत । अवर्त्स्यत् । यहाँ स्य परे विकल्पसे परस्मैपद पक्षमें इट् निषेध । अवर्ति-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

देरार्धधातुकस्येण्न स्यात् तङानयोरभावे। वत्स्यंति, वर्तिष्यते। वर्तताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवर्तिष्ट। अवत्स्र्यंत्, अवर्तिष्यत। दद दाने। २०। ददते। १ न शस-दद-वादि-गुणानाम् ६।४।१२६। शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य च एत्वाभ्यासलोपौ न। ददते। ददाते। ददिरे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत्।

ष्यत्। आत्मनेपद पक्षमें इट् निषेध नहीं होता। यह धातु उपसर्गोंसे बहुत प्रभावित है। अनेक अर्थोंमें दृष्ट है। प्रवर्तते = कार्यमें प्रवृत्त होता है। परावर्तते = लौटता आवर्तते=दुहराना। प्रत्यावर्तते = लौटता है। परिवर्तते=बदलना। अनुवर्तते= अनुगच्छति। निवर्तते=लौटना, निवृत्त होना। निर्वर्तते=सिद्ध करना या समाप्त करना। विवर्तते=फैलता है। वृधु=वृद्धि अर्थमें प्रसिद्ध है वर्धते। ववृधे = न जाने कब बढ़ा। परश्वः धनं वर्धिता = परसों बढ़ेगा। वत्स्र्यंति। अत्र परस्मैपदम्, इट् निषेधश्च। वर्धिष्यते = ज्ञान बढ़ेगा। वर्धतां तव गोत्रम्। यथा सूर्यवंशो अवर्धत=बढ़ा। तुम्हारी आयु (वर्धेत) बढ़े। तुम्हारे पुत्र वर्धिषीष्ट, यथा— रामो अवर्धिष्ट। लवकुशौ अवर्धिषाताम्। यदि मनुष्य बढ़ेंगे युद्ध भी बढ़ेगा। अवर्धिष्यत। शर्धते, शशृधे। स्यन्दते घृतं, सस्यन्दे तुषारः। स्यन्दिता स्यन्ता मधु। स्यन्दताम् = पिघल जाइये। यथा—सूर्यं दृष्ट्वा सूर्यकान्ता अस्यन्दत (पसीजी, पिघली)। कड़ी धूप हो तब वर्फ स्यन्येत (पिघले)। तुम्हारा हृदय स्यन्दिषीष्ट द्रवीभूत हो। स्यन्त्सीष्ट। पर्णकुटी अस्यन्दत्। परस्मैपदे इट् अभावः। अस्यन्दिष्ट आत्मनेपद इट्। स्वरतिसूति इति विकल्पेन इट्। इट् अभावे अस्यन्त। (२०) दद्धातुका दान-देयवस्तु पर अपना अधिकार समाप्तकर दूसरेका अधिकार होनेके अनुकूल क्रिया अर्थ है। यह दानक्रिया वर्तमान रहे तब 'ददते' सुखम्। फल अन्य में रहे, क्रिया अन्यमें। वह सकर्मक है। ददते ददन्ते। ददसे ददेथे, दद्ध्वे। तुम सब दान देते हो। ददे ददावहे ददामहे। हम लोग चार लड़कियोंको ज्ञान देते हैं। (१) हिंसार्थक शस् दानार्थक दद्, व, आदिमें हो ऐसे धातुओंको गुण शब्दसे विधान किये गये अकारको एकार और अभ्यासका लोप न हो। ददते=दानके अनुकूल क्रियावाचक दद् धातो दानक्रिया पहले हो अप्रत्यक्ष समाप्ति हो तब लिट् आत्मनेपद त स्थाने एश् द्वित्व, दद् दद् ददद् ए, इति दशायाम् 'अत् एक हल् मध्ये' सूत्रेण एत्व अभ्यास लोपे च प्राप्ते, 'न शस् दद्' सूत्रेण निषेधे। आत्मनेपदके सभी प्रत्यय अपित् होनेसे कित् होते हैं। ददाते ददिरे। परोक्षभूतकालिक दान क्रिया। श्वः गां ददिता। नित्यं ज्ञानं ददिष्यते। त्वं पुस्तकं ददताम्। यथा— कृष्णः गुरुवे पुत्रम् अददत् द्वापरे। ददेत्, गां दद्यात्, ददिषीष्ट। फलम् अददिष्ठ =दान किया। यदि अन्नम् अददिष्यत् तदा परलोकम् अप्राप्स्यत्। (२१) त्रपूष्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट । अददिष्यत । त्रपूष् लज्जायाम् । २१ । त्रपते । २ तॄ-फल-भजत्रपश्च ६।४।१२२। एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रपिता, त्रप्ता । त्रपिष्यते, त्रप्स्यते । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट, अत्रप्त । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत । इत्यात्मनेपदिनः ।

अथ उभयपदिनः ।

श्रिञ् सेवायाम् । १ । श्रयति । श्रयते । शिश्राय, शिश्रिये । श्रयिता । श्रयिष्यति, श्रयिष्यते । श्रयतु, श्रयताम् । अश्रयत्, अश्रयत । श्रयेत्, श्रयेत ।

ष ऊ इत् त्रप्धातुका लज्जाजनक क्रिया अर्थ है। ष् इत्का प्रयोजन षिद्भिदादिभ्यो अङ्से अङ् होना। ऊदितका फल इट् विकल्प अकर्मकधातुः। लज्जा फल, उसकी क्रिया एकमें रहनेसे। यथा—देवदत्तः त्रपते। लज्जितो भवति। यहाँ अलग कर्म नहीं है। (२) तैरने अर्थमें तॄ, फलने अर्थमें फल, सेवार्थक भज्। लज्जार्थक त्रप्धातुओंके अत् = ह्रस्व अकारको एत्व और अभ्यासलोप हो, कित् लिट् हो, और सेट् थलपरे हो। अनद्यतनपरोक्षभूतकालसमाप्तलज्जित क्रिया। तब त्रप् लिट्। तस्य स्थाने त तस्य एशकृते द्वित्वादिकार्ये, तत्रप् अत्र त्रिफलभजत्रपश्च सूत्रेण अकारस्य एत्वे अभ्यासस्य लोपे। असंयोगात् लिट् कित् परे अस्ति। त्रेपे त्रेपाते त्रेपिरे। त्रेपिषे त्रेपाथे त्रेपिध्वे ढ्वे। त्रेपे त्रेपिवहे त्रेपिमहे। ऊदित होनेसे स्वरति सूति इति इट् विकल्पे पक्षे त्रेप्वहे त्रेप्महे। श्वः न्यायालये त्रपिता। ऊदितको इट् विकल्प। त्रप्ता। त्रपिष्यते (लज्जित होंगे) त्रपताम् (लज्जित होना चाहिए। अत्रपत् (कल शर्मिन्दा हुआ) त्रपेत् = लज्जा आवे। त्रपिषीष्ट = भगवान् उसे लज्जित करें। अत्रपिष्ट। इत्यात्मनेपदिनः।

अथ उभय पदिनः—१ श्रिञ्-ञ् इत् सेवा के अनकूल क्रिया अर्थः। ञित् होने से स्वरितञित् कर्त्रभिप्राये क्रियाफले क्रिया और फल कर्ता में हो, अतः आत्मनेपदं, अकर्मकः। वह फल परगामी हो तब परस्मैपदं सकर्मकः एवं उभयपदी धातुः। श्रयति (सेवा, स्वामि प्रसन्नता फल दूसरे में है। श्रयते—सेवाफलं स्वयं कर्ता में हो। शिश्राय। कर्ता परोक्ष काल में सेवा क्रिया का फल पूर्वदिनों में, अन्यके लिए सिद्ध कर चुका हो। श्रि लिट्, परस्मैपदे 'ति' णल् द्वित्वे, अभ्यासहलादि शेषकार्ये णित्परे 'अचोञ्णिति' वृद्धिः। कर्ता में ही फल भी हो तब आत्मनेपदे त—एश् शिश्रिये शिश्रियाते। कषयः रामं शिश्रियिरे। शिश्रियिषे शिश्रियाथे शिश्रियिध्वे। परस्मैपदमें। शिश्रयिथ। उदृदन्तै इति कारिकायां 'श्रि' इति उदात्तः। इट् निषेधो न भवति। सिप् स्थाने थल् पिदस्ति न कित्। तेन गुणअयादेशौ। शिश्रियिव अत्र लिट् कित् गुण निषेधः। इयङ्। सेवा क्रिया पर दिनोंमे भावी हो।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। चङ्। अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्। अश्रयिष्यत॥ भृञ् भरणे। २। भरति, भरते। बभार। बभ्रतुः। बभ्रुः। बभर्थ। बभृव। बभ्रे। बभृषे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत्, भरेत। ३ रिङ् श-यग्-लिङ्क्षु ७।४।२८ शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात्। रीङि प्रकृते रिङ् विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न भ्रियात्। ४ उश्च

तब श्रयिता श्रयितारौ श्रयितारः। श्रयितासि श्रयितासे श्रयितासाथे। श्रयिताध्वे। श्रयिताहे श्रयितास्वहे श्रयितास्महे श्रयिष्यति = दूसरेके लाभके लिए सेवा करेगा। श्रयिष्यते अपने लाभके लिए। युधिष्ठिर इव श्रयतु, श्रयताम् = स्वार्थके लिए सेवा करो। यथा—दिलीपः अश्रयत्। श्रीयात्, आशीर्वादार्थे लिङ् अकृत सार्वधातुकयोः दीर्घः। श्रयिषीष्ट=सदा सेवा करें। सेवार्थक श्रिधातोः कर्तृगामि फल जनकभूते (समाप्तसेवाक्रिया) अर्थे लुङ् आत्मनेपदे 'त' सेवाफलपरगामी स्यात्। तदा परस्मैपदे 'ति' इकारलोपे अडागमे च्लि तत्स्थाने णिश्रिद्रुकर्तरि चङ्कृते, अनुबन्धलोपे द्वित्वे, चङि अभ्यासादि कार्ये, इयङ् लुङि रूपम्। अशिश्रियत यदा भगवन्तम्। अश्रयिष्यत् यदा भवन्तम् अश्रयिष्यत् तदा जीवनफलम वाप्स्यत्।

२ भृञ् ञ् इत् भृ धातुका भरणं-वस्त्रेण अन्नादिना साहाय्यकरणम्। पालनञ्च। अन्नवस्त्र आदि सहायताके अनुकूल पालनक्रिया अर्थ है जिससे क्रिया फल (सहायता भरणपोषण) कर्ताको लब्ध हो। तब आत्मनेपद, अकर्मकः वह फल दूसरेको लब्ध हो परस्मैपद सकर्मकधातु। भृ लट्, तिप् शप् भरति (धार्मिकः) भरते (अधार्मिकः) पहले ही (अद्यभिन्न) पालन-पोषणक्रिया अप्रत्यक्षकालमें समाप्त हो। बभार। वस्त्रादिना पालनं चकार, भृ अतुस् भृ भृ, द्वित्वे, भरभृ भभृ अभ्यासे चर्चः। बभृ अतुस् यणादिः। बभ्रतुः। थल् व म परे कृ सृ भृ वृ इति इट् निषेधः। भृ 'त' तस्य स्थाने एश्, द्वित्वे, उरत हलादिशेष अभ्यासचर्त्वे यण् बभ्रे बभ्राते, दीनान् बभ्रिरे। त्वम् आश्रितान् बभृषे। यूवां मित्राणि बभ्राथे। यूयं धर्मं बभृध्वे। तुम लोगोंने न जाने कब पालन किया। अहं बभ्रे आवां बभृवहे। वयं धर्मान् बभृमहे। त्वं धर्मं श्वः भर्तासि। सदा 'तं' भरिष्यति ऋद्धानोः स्ये इट् अन्न वस्त्रसे पालन करेंगे त्वम् भरतु। तुम गरीबोंका रक्षण करो। यथा—पूर्वजाः अभरन्त। स लोकान् भरेत। (३) शयग्लिङ्क्षु = शप्रत्यय, यक्आगम, यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे ऋ को रिङ् हो। रीङि प्रकृते=प्रकृतप्रसङ्ग प्राप्त रीङ् ऋतः' सूत्रसे रीङ की अनुवृत्ति संभव थी, पुनः ह्रस्व रिङ् का विधान सामर्थ्यसे सिद्ध है कि रिङ् विधान स्थलमें 'अकृत सार्वधातुकयोः' से दीर्घ नहीं होता।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१।२।१२ ऋवर्णात् परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। अभार्षीत्। अभार्ष्टाम्। अभार्षुः। अभार्षीः।

५४५ ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७। सिचो लोपो झलि। अभृत। अभृषाताम्। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। हृञ् हरणे। ३। हरति, हरते। जहार, जह्रे। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जहृषे। हर्ता। हरिष्यति,

---

भ्रियात् भ्रियास्तां भ्रियासुः। यकारादि लिङ् 'यास्त' परे 'रिङ् शयग्लिङक्षु' सूत्रेण ऋस्थाने रिङ् आदेश रुपम्। आप सदा पोषण करें। पालन क्रियाका फल कर्ताको मिले तब आत्मनेपद भृक्षीष्ट भृ, षीयुट् सुट् त अनुबन्धलोपे, षत्वे, ष्टुत्वे, ऋकारस्य गुणे प्राप्ते। (४) उः=ऋकारसे परे झलादि=झल् प्रत्याहारके अक्षर आदिमें हो ऐसे लिङ् सिच् कित् हो, तङि=आत्मनेपद परे। अत्र अनुदात्त धातुः अस्ति। इट् न भवति। तेन झलादि लिङ् कित् भवति। तस्य फलं गुण निषेधः। भृषीयास्ताम्। तुम दोनों सदा पालन करो। अभार्षीत् कर्तामें भरण पालन क्रियाका समाप्त काल अ भृ स् ई त्। सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु। इति आर् वृद्धिः। आत्मनेपदे अभृस् त इति दशायाम्, अयम्, अनिट् धातुः इट् न भवति। झलादि सिच्, उश्च सूत्रेण कित्। तेन न गुणः।

(५४५) ह्रस्वात् अङ्गात्=ह्रस्वान्त अङ्गसे परे सिच्का लोप हो झलिपरे अत्र ह्रस्वान्तम् अङ्गम् अभृ अस्ति। झल् तकारपरे सिचोलोपः। अभृत। अभृषाताम् अभृषत् अभृथा अभृषाथाम् अभृध्वम्। अभृषि अभृष्वहि अभृष्महि। भरणक्रिया के कार्यकारण भावमें लङ्। अभरिष्यत् अत्रापि ऋद्धनोः स्ये इति इट्। धातु अनेक अर्थधारण करते हैं। जिसका प्रकाशक (भेदक) उपसर्ग हैं जैसे—अनुहरति=बराबरी करता है। अभ्यवहरति=खादति। अपहरति आहरति (लाता है) उपहरति (उपहार देता है) उपसंहरति = उपसंहार करता है। उद्धरति = बेड़ापार करता है। संहरति = नाश प्रहरति=चोट पहुँचाता हैं। परिहरति=त्यागता है। ये सब ञकार इत् संज्ञक हृधातुकी विशेषता है। क्योंकि उसका भरण-पोषण स्तेय नाशन स्वीकारश्च, हरण करना पहुँचाना चोरी, विनाश, तथा स्वीकार आदि फलके अनुकूल क्रियावाचक अर्थ है। हृञ्को भृञके समान समझें। केवल कृ श्रु भृ से इट् निषेध नहीं होता। जहार। हरणकालकी परोक्षक्रिया जह्रतुः जह्रुः। जहर्थ तुमने कब चुराया। जह्रथुः जह्र। जहार जहर जह्रिव जह्रिम। जह्रे जह्राते जह्रिरे, अपने लिए हरण किया। हर्ता=कल हरेगा। हरिष्यति=आशीर्लिङ ह्रियात्। अत्र रिङ् विधीयते। अहार्षीत् अहार्ष्टाम् अहार्षुः अहारर्षीः। अहार्ष्टम् अहार्ष्ट अहार्षम् अहार्ष्व अहार्ष्म। (४) धृञ् धातुका धारणके अनुकूलक्रिया अर्थ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्; हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट। हृषीयास्ताम्। अहार्षीत्, अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत। धृञ् धारणे। ४। धरति, धरते। णीञ् प्रापणे। ५। नयति, ययते। डुपचष् पाके। ६। पचति, पचते। पपाच। पेचिथ, पपक्थ। पेचे। पक्ता। भज

यह भी क्रियाफलके स्वगामी परगामी भेदसे अकर्मक, सकर्मक आत्मनेपद-धरते, परस्मैपद-धरति। दधार, दध्रे। अनद्यतनपरोक्षसमाप्त धारणक्रिया। धर्ता (धारणं कर्ता) धरिष्यति, धरिष्यते। धरतु, धरताम्। अधरत अधरत। धरेत् धरेत ध्रियात् धृषीष्ट। अधार्षीत् अधृत। अत्र ह्रस्वादङ्गात् सिच् लोपः।

(५) णीञ्—ञ इत् नी धातुका प्रापण (पहुँचाना) या ले जानेके अनुकूल क्रिया अर्थ है यह सकर्मक है प्रापणफलका आधार, कर्तासे भिन्न है। अजन्त, एकाच्, अनिट् है, ग्रामम् अजां नयाति। यहाँ गाँवमें पहुँच (संयोग) फलका आधार ग्राम है क्रियाकर्ता में है। पहले ही प्रापणक्रिया अप्रत्यक्ष पूर्ण हो, तब लिट्। कृष्ण निनाय मथुरां निन्यतुः द्वारकां निन्युः। निनयिथ निनेथ निन्यथुः निन्य। निनाय निनय। निन्यिव निन्यिम। थलमें विकल्प इट्। वमको क्रादिनियमसे नित्यइट्। दिलीपः नन्दिनीं वनं निन्ये निन्याते निन्यिरे। त्वं प्रसादं निन्यिषे निन्याथे निन्यिध्वे। निन्ये निन्यिवहे निन्यिमहे। ध्वम्, वहि, महि, में क्रादिनियमसे नित्यइट्। नेता = प्रापणकर्ता नेष्यति = नयनं करिष्यति। प्रायण क्रियामें आज्ञाप्रेरणा निश्चय प्रार्थना आशीर्वाद अर्थमें लोट् नयतु नयताम्। अनयत् अनयत। नयेत् नयेत। नीयात् नेषीष्ट अनैषीत् अनैष्ट। अनेष्यत् अनेष्यत। इसके भी अनेक उपसर्ग अनेक अर्थके बोधक हैं। अनुनयति = प्रसन्न करता है अभिनयति = अनुकरण करना, अपनयति = दूर हटाना। अवनयति = नीचा करना। उपनयति = समीप ले जाना। (समीपं प्रापयति)। प्रणयति = प्रेम करना, परिणयति = विवाह करना, एते धातवः, उभयपदिनः। अथ उभयपदिनः स्वरितेत् धातवः।

(६) डुपचष्—'आदिर्ञिटुडवः' डु इत्, ष् इत्, अकारस्वरित इत्। 'स्वरित ञित्' सूत्रेण उभयपदी। पच् लट् ति, शप्। पचति=पाकानुकूलांक्रियां करोति। पचते कर्तृगामी क्रियाफल होनेसे आत्मनेपद। पच्धातुका विक्लित्ति (परिपक्वता) जनकक्रिया अर्थः। परोक्षकालिकपूर्वदिनसमाप्तपाकक्रियाअर्थे लिट्। पच्-पच् पपच्। पपाच पेचतुः पेचुः। एत्व-अभ्यासलोपौ। पपच्थ इतिदशायाम्, अजन्तः अकारवांश्च, अतः थल् परे विकल्पेन इट्। इट्पक्षे थलिचसेट्' इतिएत्वे अभ्यासलोपे च। पेचिथ। यदा न इट् तदा चोः कुः इतिसूत्रेण चकारस्य कुत्वे। पपक्थ, पेचथुः पेच। पपाच पपच, पेचिव पेचिम। अनद्यतनभूतकालिक समाप्तपाकानुकूल-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सेवायाम् । ७ । भजति, भजते । बभाज, भेजे । भक्ता । भक्ष्यति, भक्ष्यते । अभाक्षीत्, अभक्त । अभक्षाताम् । यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु । ८ । यजति, यजते । ६ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६ । १ । १७ । वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि । इयाज । ७ वचि-स्वपि-यजादीनां किति ६ । १ । १५ । वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् । ईजतुः ।

क्रिया सभी कर्तामें हो । (अपने लिए पहले ही पकाया) इस अर्थमे पेचे, पेचाते, पेचिरे । पेचिषे, पेचाथे, पिचिध्वे । पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे । आगामिदिनभविष्य-कालिकपाचनक्रिया । **पक्ता**, पक्तारौ । कल पकायेगा । पचष्यति, च् स्थाने कुत्वेन, क्, स्यसकारस्य षत्वे कषसंयोगे (क्ष) **पक्ष्यति** । पकायेगा । पचतां पचेतां पचन्ताम् । पचस्व पचेथां पचध्वम् । पचै पचावहै पचामहै । पाकक्रियाविषयकविधि, प्रेरण, प्रार्थना, आशीर्वादअर्थे । **अपचत्** । कलपकाया । **पचेत्**=पाकानुकूलप्रेरणा की संभावना पकाना चाहिए । **पच्यात्**=वह पकाये । **अपाक्षीत्** अपाक्ताम् अपाक्षुः । अपाक्षीः अपाक्ताम् । अपक्त अपक्षाताम् अपक्षत । अपक्थाः अपक्षाथाम् अपग्ध्वम् । अपक्षि अपक्ष्वहि अपक्ष्महि । जहाँ त थास ध्वम् रहे वहाँ झल् परे सिच्सकारस्य लोपः । कत्व षत्व कत्व यथायोग्य । **अपक्ष्यत्** । (७) भज धातुका सेवायां= सेवाजनक, प्रसन्नतानुकूलक्रिया अर्थः । प्रीतिजनक क्रियावाचक भज्धातोः वर्तमान-क्रियार्थे लट्तिप् शप् **भजति, भजते** । प्रीत्यनुकूलव्यापारः । **बभाज** भेजतुः भेजु । **भेजे** भेजाते भेजिरे । श्वः भगवन्तं **भक्ता** । भक्ष्यति (सेवा करेंगे) भजतु । अभजत् : **अभक्त** अभज स त जकारस्य कुत्वेन गकारे, चर्त्वेन ककारे, झलोझलि सिचोलोपे अभज् स् इत् कुत्वेचर्त्वे षत्वे **अभाक्षीत्** । (८) यज् धातुका देवपूजा, सङ्गतिकरण, दानके अनुकूल (दान-वस्तुमें स्वत्वका त्यागजनकक्रिया अर्थ । यजति—परोपकाराय देवपूजा, अच्छी सङ्गति, करता है दान देता है । (६) लिटि अभ्यासस्य, उभयेषाम् । वच्: इत्यादिधातु तथा ग्रह्यादी = ग्रहिज्यावयिव्यधि, इन धातुओंके अभ्यासको सम्प्रसारण हो, लिट् परे । **इयाज**—पूजा, दान, यज्ञ जनकक्रियावाचकअर्थे भूतकाले लिट्, तिप, णल् । यज् अ । द्वित्वे अभ्यासहलादिशेषे य यज् अ इति स्थिते, अभ्यासस्य यस्य सम्प्रसारणें । लिटि परे अ । सम्प्रसारणाच्च इति पररुपे । इ यज् अ । उपधावृद्धिः इयाज । **ईजतुः** । इयज् अतुस् इतिदशायाम् ।

(७) वचि (परिभाषणे बोलना) स्वप्, शयने, और यज् आदि धातुओंको सम्प्रसारण हो कित् परे । यजादिधातुः—**यजिर्वपि र्वहिश्चैव वसिर्वेञ् व्येञ् इत्यपि । ह्वेञ्वदी श्वयतिश्चेति यजाद्याः स्युरिमे नव** । यजादिगणपठित यज्धातुको प्राप्त द्वित्व बाँधकर, वचिस्वपियजादीनां सूत्रेण यकारस्य सम्प्रसारणे । सम्प्रसारणाच्च पूर्वरुपे । क्योंकि सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च कार्यं बलवत् । सम्प्रसारण तथा उसके

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ईजुः । इयजिथ, इयष्ठ । ईजे । यष्टा ।

८ षढोः कः सि ८ । २ । ४१ । यक्ष्यति, यक्ष्यते । इज्यात्, यक्षीष्ट । अयाक्षीत्, अयष्ट । वह प्रापणे । ९ । वहति, वहते । उवाह । ऊहतुः । ऊहुः । उवहिथ । ९ झषस्तथोर्धोऽधः ८ । २ । ४० । झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः ५५० ढो ढे लोपः ८ । ३ । १३ ।

आश्रितकार्यंपूर्वरुप आदि बलवान् होते हैं । इज् अ । अत्रद्वित्वे अभ्यासादिकार्ये सवर्णदीर्घे ईजतुः इति । ईयुः । प्रथमं सम्पसारणं पश्चात् द्वित्वादिः । सभी आत्मनेपद कित् हों । इयजिथ, इयष्ठ । तुमने पहले ही यज्ञ किया । (देवपूजा सत्सङ्ग दानके अनुकूल क्रियाअर्थवाचक) यज्धातोः अप्रत्यक्षसमाप्तक्रियाकाले अर्थे लिट् । यह धातु अनिट् तथा अकारवान् है । भारद्वाजमते इट्, द्वित्वे अभ्यासादि कार्ये (लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्) अभ्यासस्य सम्प्रसारणे इयजिथ । यदा न इट् तदा ब्रश्च भ्रश्च सृज् मृज् यज् आदि सूत्रेण 'ज' स्थाने 'ष' थस्य ष्टुत्वं ठः इयष्ठ । ईजथुः । इयाज, इयज, ईजिव, ईजिम । अत्र क्रादिनियमात् नित्यम् इट् । जहाँ क्रिया समाप्त हो उस का फल कर्तृगामी हो, आत्मनेपदमें सभी कित् हैं । अतः प्रथमं यजादिसम्प्रसारणं पश्चात् द्वित्वादिकार्यम् । ईजे, ईजाते, ईजिरे । त्वम् ईजिसे, ईजाथे, ईजिध्वे । ईजे, ईजिवहे, ईजिमहे । देवपूजार्थक यज्धातोः आगामिभविष्यकालिके दानार्थे लुट, तास्, तिप् आदि । ब्रश्च भ्रश्च आदि इति सूत्रेण षत्वे ष्टुत्वे यष्टा । यज्ञकर्ता । यष्टारौ यष्टारः (दानकर्तारः) । यज्ञक्रियाका सामान्यभविष्यकालमें लृट् यज् स्यति । 'ब्रश्च' इति षत्वे ततः ।

(८) षढोः = षश्च ढ़श्च षढ़ौ तयोः षढोः = ष याढ़के स्थानमें 'क' होसि — सकारपरे । षस्थाने कः । स्य सकारस्य षत्वे क ष संयोगे क्ष । यक्ष्यति । परोपकार के लिए यज्ञ करेंगे । यक्ष्यते । भवान् यजतु, यजताम् (आप यज्ञ करें) । अयजत्= कल कई सत्संग किये । यजेत् — आप भी सत्संग करें । इज्यात् = आप परोपकारी हैं दान करें । यक्षीष्ट — पूजा सत्सङ्ग विषयक आशीर्वाद, यक्षीयास्तां यक्षीरन् । अयाक्षीत् । यज् धातोः समाप्त यजनक्रिया अर्थे लुङ् अट् तिप्, इलोपे, च्लि, सिच्, वद् ब्रज् हलन्तस्याचः । बृद्धिः सकारलोपे, ईट् । ज स्थाने ष तस्य कः सिचः सस्य षत्वे । अयाष्टाम् अयाक्षुः अयाक्षीः । अयाष्टम् अयाष्ट अयाक्षम् । अयाक्ष्व अयाक्ष्म अयक्ष्यत ।

(९) वह धातु प्रापणअनुकूलक्रियाअर्थ, ढोना, पहुँचाना, प्राप्तकरना, आदि । यह सकर्मक है । प्रापणफलका आधार गर्दभः भारं वहतिमें भार शब्द है । प्रापणका जनक व्यापार कर्तामें है । वहति — बोझा ढोता है । वहते । स्वार्थं भारं नयति ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२। अनयोरवर्णस्य ओत्स्याड्ढलोपे। उवोढ। ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म।

नदी वहति। उवाह वह वह, ववह + अ लिट् परे अभ्यास वकारस्य सम्प्रसारणे, पूर्वरूपे, वृद्धि उवाह, ऊहथुः। पित् भिन्न लिट् कित् भवति। अतः (द्वित्वसे पहले) वचिष्वपि यजादीनां प्रथमं सम्प्रसारणे, ततो द्वित्वादिकार्यं, णल्, थल्में कित् नहीं होता। उवहथ अनिट् अकारवान् धातुः भारद्वाजमते इट् उवहिथ। तुमने भार कब ढोया? इट् अभावपक्षमें उवक्थ इति दशायाम्। (६) झषः, = झष् प्रत्याहारके अक्षरसे परे 'तयोः' त थके स्थानमें 'ध' हो। अधः = जुहोत्यादिका धा धातु न हो।

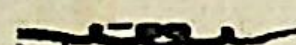
(१) ढका लोपहो ढपरे। (१) अनयोः = सह वह धातुके अवर्णस्य = अकारको ओत् = ओकार हो, ढलोप होनेपर। उवोढ = वह थ द्वित्वादिकार्ये। वह वह, ववह, अभ्यासस्य सम्प्रारणे होढः, हस्थाने ढः (झषस्तथोर्धोऽधः) झष् प्रत्याहारे ढकार : तस्मात् परः थकास्य धकारः, उवढ ध। धस्य ष्टुत्वेन ढ ढोढेलोपः इतिढकारेपरे ढस्यलोपः, उवढ इति दशायां सहिवहोरोदवर्णस्य' इति ओकारे। अतः ढलोपे पूर्वस्य अणः दीर्घो न भवति। उवोढ ऊहथुः। उवाह उवह ऊहिव ऊहिम। क्रादिनियम से नित्य इट्। परोक्ष भूतकालिकवहन क्रियाका कर्ता, ऊहे (ढोयें, पहुँचायें वहन किये) ऊहाते (ते) ऊहिरे। वे सब न जाने कब ढोये। ऊहिषे, ऊहाथे, ऊहिध्वे। तुम लोगोंने कब विवाह किया। मुझे बताया भी नहीं। ऊहे ऊहिवहे ऊहिमहे। हम सबने विवाह किया उत्तरदायित्व ढोये। तुम लोगोंने देखा भी नहीं। वयम्, ऊहिमहे, यूयं न ददर्श। वोढा। परसाल विवाह करनेवाला है। गृहस्थीका बोझा ढोनेवाला है। प्रापणार्थक वह धातुः अनद्यतन भविष्य क्रियाअर्थे लुट् तास् तिप् डा। 'होढ.' हस्थाने ढ, झषस्तथोर्धः तस्य ष्टुत्वं ढः, ढोढे लोपः वह अकारस्य ओकारे वोढा वोढारौ वोढारः। भविष्यकाले प्रापणकर्ता (बोझा ढोना) विवाह आदि क्रियाके भविष्यकालविवक्षामें लृट् वक्ष्यति 'ते' वह + स्यति इति स्थिते ढत्वे (षढोक. सि) कत्वे, प्रत्यय-अवयव सकारस्य षत्वे कष संयोगे क्षत्वे रुपम्। वह धातु से लोट्। वहतु वहताद् (कार्यभार सभालो) अवहत्। अवहत जैसे — रघु सभाले थे। वहेद् वहेत। वैसे आपभी जिम्मेदारी सभालें। वहन क्रिया विषयमें आशीर्वाद अर्थमें लिङ उह्यात् आप ढोयें। यासुट्के कित् होनेसे सम्प्रसारण हुआ। आत्मने पदमें वह सीयुट् सुट् ढत्व कत्व षत्व क्षत्व वक्षीष्ट। वरकन्याका भार ढोये। प्रापण क्रिया समाप्त हो चुकी हो। तब लुङ् अट् तिप् इकार लोप्, सिच् ईट् उपधावृद्धि ढत्व कत्व षत्व क्षत्व अवाक्षीत् अवोढाम्। अवह्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत । अवोढाः । अवक्षाथाम् । अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि ।

इति भ्वादयः ॥ १ ॥

'स' ताम् । होढः तकारस्य झषस्तथोर्धः तस्य ष्टुत्वे सिचः 'झलोझलि' सूत्रेण सलोपे ओकारे । अवाक्षुः झेर्जुस् । ढत्व कत्व क्षत्व हलन्तलक्षणवृद्धिः । अवाक्षीः अवोढम् । अवोढ । अवहस्त । होढः तकारस्य धः । ष्टुत्वेन ढः, ढोढे लोपः, सहिवहोरोद्, अवर्णस्य ओकारे । यहाँ तक शप् विकरण प्रधानधातुः भ्वादिगणः समाप्तः ।



CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२—अथादादयः

अद भक्षणे । १ । २ अदिप्रभृतिभ्यः शपः २ । ४ । ७२ ।

लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः । ३ लिटचन्यतरस्याम् २ । ४ । ४० अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि। जघास । उपधालोपः । ४ शासिवसिघसीनां च ८ । ३ । ६० । इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्वम् । जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जक्षथुः जक्ष । जघास जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः ।५५५ ईडत्यर्तिव्यतीवाम् ७।२।६६। अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् । आदिथ । अत्ता ।

अथ अदादिप्रकरणम्—अद् भक्षणे धातु आदि में हो वह समुदाय अदादिगण हैं । १ । अद् धातु का भक्षण, गलविलाधः संयोग, 'खाने के' अनुकूल, क्रिया अर्थः । इसका प्रयोग अतिशीघ्र खाने गलेके विलमें उतारनेवाले जीव, पशु, राक्षस, कुत्तेः आदि के लिए है । भक्षणार्थक अद्धातोः प्रचलित भक्षणक्रिया अर्थे लट् तिप् शप् ततः । २ । अदिप्रभृतिभ्यः=अद् इत्यादि, अदादिगणपठित धातुओंसे परे शप्का लुक् हो । इति शपो लुक् । अद्ति 'खरिच' इति दस्य चर्त्वेन 'त' अत्ति । अत्तः तस् परे, शपः लुक् चर्त्वे रु॰ वि॰ । अदन्ति झस्य अन्तादेशे । अत्सि । दकारस्य चर्त्वे । थस् थ सर्वत्र चर्त्वे मिप् वस्मस् इत्यत्र दकारः तिष्ठति । यह शीघ्र भक्षणक्रिया का वर्तमानकालिक प्रयोग । ३ । लिटि अन्यतरस्याम् । अद्के स्थानमें घस्लृ=घस् आदेश विकल्पसे हो लिट् परे । लृ अनुबन्ध है इत्संज्ञक भी । जघास् भक्षणार्थक अद्धातोः अद्यतनभिन्न परोक्षेसमाप्त भक्षणक्रिया अर्थे लिट् अदस्थाने घस्लृ=घस् आदेशे, घस्लिट् । तिप् णल् द्वित्वादिकार्ये घस् घस् घघस् जघस् । उपधावृद्धिः । कदाफलं जघास । द्विवचने जघस अतुस् 'गमहनखनघसाम् इतिउपधायाः अकारस्य लोपे क्तिपरे अतुस् । ४ । इण्कुभ्यांपरस्य=इण् और कवर्गसेपरे अनुशासनार्थक शास्) निवासार्थक वस् भक्षणार्थवघस् धातुके अवयव सको ष हो । यद्यपि आदेशप्रत्ययोः से षत्वसम्भव था परन्तु आदेशरुप सकार नहीं है, न प्रत्ययका अवयव ही है । घको चर्त्वेन क् कष संयोगे क्ष जक्षतुः । इसीप्रकार जक्षुः जघसिथ=जघस्थ इति दशायां, नित्यम् इट् । क्योंकि लुङि लिट्में ही घस् आदेश है, तास् में नही, क्रादिनियमसे नित्य इट् । एवं जक्षिव जक्षिम भी जाने यदा न घस्लृ आदेशः तदा अतआदेः दीर्घः । आद आदतुः आदुः । पहले ही परोक्षकालमें खाया । आदिथ अद् अद् 'अअद' अतआदेः दीर्घे, आअद थ इति उपदेशे अकारवान् धातुः अस्ति । विकल्पेन इट् प्राप्तः ।

। ५५५ । इट, भक्षणार्थक अद्, गमनार्थकऋ, और वेञ् धातुओंसे परे थल्को इट् आदिथ, आदिम । अत्ता। अद्यभिन्नभविष्यक लिकभक्षणकर्ता । अत्स्यति । भक्षणं करिष्यति अत्तु, अत्ताम् (वे भक्षण करें) अद शप्, लुक् दकारस्य चर्त्वं तकारः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अत्स्यति । अत्तु, अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु । ६ हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१। होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् । अद्धि,अत्तात् । अत्तम् । अत्त अदानि । अदाव। आदाम। ७ अदः सर्वेषाम् ७।३ । १०० । अदःपरस्यापृक्तासार्वधातुकस्य अट् स्यात् सर्वमतेन । आदत् आत्ताम्, आदन् । आदः,आत्तम् आत्त। आदम्, आद्व, आद्म । अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः । लुङ्सनोर्घस्लृ २ । ४।३७। अदो-घस्लृ स्याल्लुङि सनि च । लृदित्वादङ् । अघसत् । आत्स्यात् । हन हिंसागत्योः ।२। हन्ति ।९ । अनुदात्तोपदेश-वनति-

---

भोजनविषयक प्रेरणा, अर्थमें, त्वम् अद्धि (तुम खूब खाओ) अद् लोट्, सिप् सेर्ह्यपिच्च' इति सिस्थाने हि आदेशे । ६। हवन भोजन अर्थक हुधातु और झलन्तेभ्यः=झल् प्रत्याहारके अक्षर अन्त में हो ऐसे धातुसे परे 'हि' के स्थानमें धि हो । हि को तातङ् पक्षमें । अत्तात् अत्तं यूयम् अत्त । अदानि अद्मिप् मेर्निः आडुत्तमस्य पिच्च इति आड् । हम लोग भक्षणकरें ।७। अद्धातुसे परे अपृक्त एक अल् वर्णरुप प्रत्यय) सार्वधातुकको अट् आगमन हो, सबके मतमें । आदत् भक्षणार्थक अद्धातोः अद्यभिन्न समास क्रियाकाले अर्थे लङ्, तत्स्थाने तिप् । आडजादीनामिति आट् । शपो लुक् अदः सर्वेषामिति सार्वधातुक् अपृक्ततकारस्य लट् आगमे इत्यादि कलही भक्षण करलिया । आत्ताम्, तस (ताम्) दकारस्य चर्त्वं । आदन्=वे लोग-चबैना चबाये । आदः=तुम कब निगलगये । आत्तम्, आत्त । आदम् आद्व आद्म अद्यात्-भक्षणकी विधि, अनुरोध सम्भावना अर्थमें लिङ् अद्-यासुत्-लिङः सलोपो अनन्त्यस्य, इति यासुट् सकारस्य लोपे, शपः लुक् । अकारं विना अतो येयः न प्रवर्तते। अद्याताम् अद्युः । अव झेर्जुस् उस्यपदान्तात् इतिपररुपे । आपलोगोंको भक्षण करना चाहिए । आशीर्लिङ् अद्यात् यासके सकारको 'स्कोः' सूत्रसे लोप । द्विवचने । आद्यास्ताम् । अत्र न सकारलोपः, न पदान्तो अस्ति । न झलरे अस्ति । अद्याः अद्यासम् अद्यास्व, अद्यास्म (८) अद्के स्थानमें घस्लृ=घस् आदेश हो, लुङ् या सन् परे । लृकार इत् होनेसे पुषादिद्युतादि लृदितः से च्लिके स्थाने सिच्को बाधकर अङ् हो । अघसत् भक्षणार्थक अद्धातोः समासभक्षण क्रियाकाले अर्थे लुङ् घस्लृ आदेशे अट्तिप् । इतश्च इकारलोपे च्लि, तस्य स्थाने अङ् आदेशे । आत्स्यत् लृङ् अट्तिप् इकारलोपस्य दस्य चर्त्वेन तः । (२) हन्धातुका हिंसा और गति-गमनके अनुकूल क्रिया अर्थः । इस धातुका हिंसा, परपीडा, अर्थ प्रधान है । जो शब्द वाच्य है । गति अर्थ अप्रसिद्ध है । सकर्मकः । लगुडेन श्वानं हन्ति । यहाँ फल पीडा है जिसका आधार कुत्ता, उसके अनुकूल क्रिया हन्तामें है । हिंसार्थक हन्धातोः हननक्रिया वर्तमाने लट्तिप् शप् 'अदिप्रभृतिभ्यः इतिशपो लुकि । हन्ति । अत्र अपदान्तनकारस्य अनुस्वारे तस्य ययिपरे परसर्णे नकारे, इत्यपि वक्तु शक्यम् । हतः हन् शप् तस् शपोलुक् (९) अनुदात्तोपदेश

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७। अनुनासिकान्ताना-मेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ क्ङिति ङिति परे। यमि-रमि-नमि-गमिहनि मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः। तनु क्षणु-क्षिणु-ऋणु-तृणु-घृणु-वनु-मनु-तनोत्यादयः। हतः। घ्नन्ति। हंसि। हथः। हन्मि। हन्वः हन्मः। जघान। जघ्नतुः। जघ्नुः। ५६० अभ्यासाच्च ७।३।५५। अभ्यासात् परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं

अनुदात्त पढ़े गये हो उपदेश अवस्थामें ऐसे वन, तन इत्यादि अनुनासिकान्त धातुका-लोप हो झलादि कित् ङित्परे। अनुनासिकान्त परे हन्का लोप प्राप्त हुआ। अलोन्त्यस्यसे अन्त्य अल् न का लोप हुआ। अतः उपदेश अवस्थामें अनुदात्त अनु-नासिकान्त धातु ६ हैं। यम् उपरमें=विरक्त होना। रम्क्रीडायाम्। णम् प्रह्वत्वे=प्रणाम करना गम्गतौ, हन् हिंसागत्योः। मन्ज्ञाने। तनोत्यादि आठ हैं। तनुविस्तारे क्षण्हिंसायम्। क्षिण्त्र, ऋण्गतौ, तृण्अदने, घृण्दीप्तौ। प्रकाश करना। मनु ववबोधने (ज्ञानकरना) वनु याचने तस् प्रत्यय, अपित् सार्वधातुक होने से ङित् है। तब नलोप हुआ। घ्नन्ति=हिंसार्थकहन्धातोः हननक्रिया वर्तमाने लट् प्रथम पु० बहुवचने झि (झोन्तः) आदेशे, अपित्सार्वधातुकं ङित् भवति। गम्हन्खन् घसां लोपः इति उपधा अकारस्य लोपे, नकारपरे, हकारस्य हो हन्तेर्ञिण्नेषु, इति कुत्वे; आन्तरतम्यपरीक्षायां कवर्गे घकारे। हंसि' नकारस्य नश्चापदान्तस्य झलि इति अनुस्वारे। हथः हथ। झलादिङित् प्रत्ययपरे अनुनासिकलोपः। अहं दुष्टं हन्मि। आवां हन्वः। वयं हन्मः। जघान-परपीडाजनक क्रियावाचकहन् धातोः अद्यभिन्न समाप्तपरोक्षहनन, क्रियाकाले अर्थे लिट्, तिप्, णल्-द्वित्वादि कार्यं हहन्+अ, अभ्यासहकारस्य कुहोश्चुः इति चवर्गे, आन्तरतम्यपरीक्षायां झकारे 'अभ्यासे चर्चः' इति जश्त्वेन जकारे। जहन्+अ उपधायाः घकारे, अनतः। ञ्नामेकी शैलीपूर्ववत्। जघन अतुस् इति दशायां गम् हन् जन् इति कित् अतुस्परे, उपधा अकारस्य लोपे, अभ्यासहकारस्य कुत्वे जश्त्वेन जकारे। अभ्यासे चर्चः' अभ्यास-उत्तर खण्डस्य हकारस्य नकारपरे हो हन्तेर्णि-इतिकुत्वे जश्त्वेन, तुमदोनों ने पापीका हनन् किया जघ्नुः (देवाःदुष्टान्)

(५६०) अभ्यासात्=अभ्याससंज्ञकसे परे हन धातुके ह को कुत्व (कवर्ग) हो। वाह्यप्रयत्नमें ह के स्थानमें घ हो। जघनिथ। जघन्थ। त्वं कर्ता में पूर्वकालिक अप्रत्यक्षहननक्रिया हो, तव हन् लिट् द्वित्वादि कार्ये म० पु० एकवचने सिप्। तस्य स्थाने थल् जहन्थ। भारद्वाजमते इट् न भवति। अन्यमते इट भवति। जहनिथ जहन्थ इति स्थिते 'अभ्यासाच्च' सूत्रेण अभ्याससंज्ञक 'ज' से परे ह को कुत्वं घः। हो हन्तेः न कुत्वम्: ञित् णित् परे नास्ति, जघ्नथुः पापानि यूवां, यूयं अधर्मान् जघ्न। जघान जघन (अहम्-कदा) जघ्निव। उपधालोपे नकारपरे होहन्तेः 'कुत्व'

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात्। जघनिथ, जघन्थ। जघ्नथुः। जघ्न। जघान, जघन। जघ्निव। जघ्निम। हन्ता। हनिष्यति। हन्तु, हतात्। हताम्। घ्नन्तु। १ हन्तेर्जः ६।४।३६। हौ परे। २ असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२। इत ऊर्ध्वमापादसमाप्ते-राभीयं समानाश्रये तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धम्। इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि। हतात्। हतम्। हत हनानि। हनाव। हनाम। अहन् अहताम् अघ्नन्।

से नित्यम् इट। हिंसार्थक हन्। धातोः अनद्यतन भविष्यकालिक लुट् तिप् तास डा आस्लोप बलादि—आर्धधातुक इट प्राप्ते 'एकाच्उपदेशे' अनुदात्तात् इति इट् निषेधे। नकारस्य अनुस्वारपरस-वर्णौ। देवी दैत्यान् हन्ता। दस्यून् हनिष्यति। ऋद्धनोः स्ये' इतीट्। हन्तु हिंसा परपीडाके लिए प्रेरणा आज्ञा अर्थ में लोट्। हन्तु। एरुः इकारस्य उः। नस्य अनुस्वारपरसवर्णे। आशीर्वादे अर्थे, तुस्थाने तातङ् (अनुदात्तोपदेश वनति) नलोपे। हतात् हताम्=हन्तस् तस्य स्थाने ताम् आदेशे, नकारस्य अनुतात्तोपदेश इतिलोपे। रामकृष्णौ मुष्टिकचाणूरादीन् हताम्। पाण्डवाः कौरवान् घ्नन्तु हन् + झि उपधा (अकार) लोपे नकारपरे हकारस्य हो हन्तेः इति कुत्वेन घकारे, झन्तः। एरुः कृते। (१) हन् धातुके स्थानमें ज आदेश हो हि परे। (२) असिद्धवत्=असिद्धेन तुल्यं। असिद्ध के समान यत्र — यहाँ आभास् = प्रतीत होता है। इट् ऊर्ध्वम्==इस सूत्रके बाद छठे अध्यायके चतुर्थपादके बाइसवें सूत्र के अनन्तर पादसमाप्तिपर्यन्त सभी कार्य अभीयसंज्ञक हैं। आपादसमाप्तेः आभीयम् समानाश्रये — समान है, आश्रय निमत्तिकारण या आधार जिनका उन्हें समानाश्रय कहते हैं। हन्' के स्थान में ज आदेश हेर्लुक् दोनों आभीय कार्य हैं। समानाश्रयभी। 'हनके स्थानमें ज आदेश तथा अदन्तअङ्ग 'ज' उससे हि आदेशकार्य दोनों के होनेपर प्रथम 'ज' आदेश, हेर्लुक् की दृष्टिमें असिद्ध है। इति जस्य असिद्धत्वात् — इस नियमसे 'ज' के असिद्ध होनेपर 'हि' का लुक् नहीं हुआ त्वं पापानि जहि हतात्। हन् शप् सिप् शपो लुक्सि-स्थाने हि हन्तेर्जः आदेश, अदन्ताङ्ग' मत्वा हेर्लुक् प्राप्ते, असिद्धवत् अत्र आभात्' इति जकारस्य असिद्धे (न) हेर्लुक्; यदा हिस्थाने तातङ् तदा अनुदात्तोपदेश इति नकारलोपे हतं विघ्नान् यूयं हत उ० पुरुषे आट् आगमे हनानि हनाव हनाम। हम सब वध करें। अहन् हिंसार्थक हन् धातोः अद्यभिन्न समाप्त हननं क्रियाकाले अर्थे लङ्तिप् इलोप शपोलुक् अट् आगमे अहन्त। हल्ङ्याभ्यो सूत्रेण अपृक्त हलः लोपे। कृष्णः कंसम् अहन्। बलरामौ, अहताम् — तस्ताम् हन् नकारलोपे, देव्यः निशुम्भान् अघ्नन्। अहन् + झि झोन्तः, अजादि ङित्प्रत्ययपरे गमहन् इति उपधा (अकारस्य) लोपे हो हन्तेः कुत्वे। त्वम् अहन्। सिप् इतश्च इकारलोपे सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे अहत। अहनम्, अहन्व, अहन्म। हन्यात् हननसम्भावना अर्थेलिङ् (आप मारें।) हन् यास् तिप शपोलुक् लिङि सलोपे। हन्यातम् हन्युः। हन्याः हन्यातं हन्यात। हन्यां हन्याव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अहन् अहतम्, अहत। अहनम्, अहन्व, अहन्म । हन्यात् । ३। आर्धधातुके २। ४ । ३५ । इत्यधिकृत्य । ४ हनो वध लिङि २।४।४२।५६५ लुङि च २।४। ४३। वधादेशोऽदन्तः । आर्धधातुके इति विषयसप्तमी । तेनार्धधातुकोपदेशेऽकारान्तत्वादतो लोपः । वध्यात् । वध्यस्ताम् । अवधीत् । अहनिष्यत् । यु मिश्रणामिश्रणयोः ।३।६ उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९। लुग्विषये उतो

हन्याम । (३) आर्धधातुके यह अधिकार सूत्र है। इसमें सभी कार्य होगे। अतः इसका विशेष अर्थ नहीं है । अर्धधातौ भवम् आर्धधातुकम् । अन्य सूत्रोंके साथ मिल कर सार्थक हो। (४) हन् के स्थानमें वध आदेश हो, लिङ आर्धधातुक है । लिङ का विषय होनेपर बध आदेश हो ।

(५६५) लुङ्के विषयमें भी हन्को वध् हो । जो अदन्त है। 'अर्धधातुके' (शब्द) में विषय सप्तमी है । विषये भवः वैषयिकः आधारः अर्धधातुकका विषय रहे तभी वध आदेश हो आर्धधातुक प्रत्ययपरे अर्थ आवश्यक नहीं है। यदि विषयसप्तमी नहीं होगी तो, पर सप्तमी हो जायेगी । आर्धधातुक परे भी वध आदेश होगा । अतोलोपः से अकारलोप नहीं होगा । उपदेशका अभाव होनेसे, तेन = अर्धधातुकोपदेशे=विषय सप्तमी स्वीकार करनेपर अर्धधातुक उपदेशकालमें अदन्त होनेसे अकारलोप होता है। वध्यात् हन्लिङ् वध् आदेश तिप्, यासुट् इकारलोपे 'अतो लोप' इति अकारलोपे वध्यास्ताम् वध्यासुः । अवधीत् समाप्तहनन् क्रियाका कर्ता अवध् इस् ईत् । हलन्त लक्षणावृद्धिः प्राप्तः । नेटि इति निषेधे । सिचः सकारलोपे, इटः ईटि दीर्घे, अतोलोप अकारलोपे अकारलोपस्य स्थानिवद्भावेन अतोहलादेर्लघोः । इति न विकल्पवृद्धिः । इदमेव अदन्तस्य फलम् । अवधिष्टाम् अवधिषुः । अवधिष्व अवधिष्म । अहनिष्यत् । (३) यूधातुका मिश्रण = मेलनम्=मिलना । तद्विरुद्धम्, अमिश्रणम् = अलगकरना । (६) लुकि=लुक्विषये, शपोलुक् होनेपर धातुके उकारको वृद्धि हो, पित् हलादिसार्वधातुकपरे । अभ्याससंज्ञक न हो तो । यहाँ अभ्यस्तसंज्ञकधातुको वृद्धिनिषेधका फल जुहोत्यादिमें है क्योंकि वहाँ अभ्यस्त होनेपर वृद्धि नहीं होती । यह वृद्धि तिप् सिप् मिप् विभक्तिमें ही होगी । अपित्सार्वधातुकमें वृद्धि नहीं । ङित् होनेसे निषेध होगा । धानायां गुडं यौति = मिश्रयसि । धनियांमें गुण मिलता है । मिश्रणार्थक यूधातोः लट् तिप् सिप् । अत्र लुक् विषयोऽस्ति । धातु उकारस्य वृद्धिः, पित् हलादिसार्वधातुकमपित् । तण्डुलेभ्यः कंकणं यौति पृथक्करोति । यह फल व्यापारका अलग आधार होनेसे सकर्मक है । युतः । अपित् होनेसे न वृद्धि न गुणः युवन्ति । झोऽन्तः अपित्, न वृद्धिः । उवङ् आदेशः । यौसि = मिलाते हो अलग करते हो, युथः युथ । मिश्रणकी वर्तमानकालिक क्रिया । यौमि, युवः युमः । अत्र न वृद्धिः, पितो अभावात् । युयाव, अत्र द्वित्वं णित्परे वृद्धिः आव आदेशे । जहाँ मिश्रण या अमिश्रणकी समाप्त अद्यतन

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य । यौति, युतः, युवन्ति । यौषि युथः, युथ । यौमि युवः युमः । युयाव । यविता । यविष्यति । यौतु, युतात् । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयाः ९ । इह उतो वृद्धिर्न । भाष्ये 'पिच्चङिन्न ङिच्च पिन्न इति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । यूयात् । यूयास्ताम् । यूयासुः । अयावीत् । अयविष्यत् । या प्रापणे । ४ । याति । यातः । यान्ति ।

क्रियाका परोक्षकालिक कर्ता **युयाव**, युयुवतुः युयुवुः युयविथ । उदूदन्तै यौति आदि के शेष कारिकामें पाठ होनेसे उदात्तोपदेश है । अतः थल् व् ममें इट् भवति : युयुवथुः कित् अथुस्परे गुण निषेधः । उवङ्, युयुव । युयाव, युयव युयुविम । **यविता**— मिलाने या अलग करने की श्वः परश्वः परतरश्वः क्रियाका कर्ता । **यविष्यति**— मिश्रणं अमिश्रणंवा करिष्यति । महिषात् गौः यौतु । अत्र हलादिपित् सार्वधातुकं 'तु' तत उकारस्य वृद्धिः तुस्थाने तातङ्-ङित्पक्षे न वृद्धिः न-वागुणः । **युतात्** युतां युवन्तु । अच्परे उवत् । युहि युतात् । हि पक्षे कित् नास्ति न वृद्धिः । ङित् फलं-नगुणः । युवानि युवाव, युवाम । आट्परे गुणावादेशो । अत्र न वृद्धिः । यतः हलादिर्नास्ति । **अयौत्** मिश्रण या अश्रिणके अनुकूल क्रियावाचक युधातोः अनद्यतन समाप्त मिश्रण या अमिश्रण क्रियाकाले अर्थे लङ् तिप् अट् इकारलोपे शप्, लुक् उतोवृद्धिलुकि हलि उकारस्य वृद्धिः । **अयुताम्**, अयुवन् अत्र अच् परे उवङ् विशेषः । त्वं कदा अयौः, अयुतम् अयुत ! अनद्यतन भूतकालिकमिश्रणक्रियाका कर्ता । अयुवम् अयुव अयुम । हमलोगोंने बहुतोंको मिलाया । विधि आज्ञा प्रेरणा यदि मिलानेके विषयमें हो तब **युयात्** इत्यत्र उतोवृद्धिलुंकिहलि इह न वृद्धिः यतः यासुट्ङित् अस्ति । यद्यपि तिप् अपि पित्, अस्ति । वृद्धिः प्राप्नोति तथापि भाष्ये ङिचपन्न=यः ङित् अस्ति, स पित् न मन्यते । यः पित् अस्ति, स ङित् न भवति । इत्थं व्याख्यानं भाष्ये वर्तते । यासुटः ङिद्विशेषविधानेन पितं बाधते । तस्य फलं अहलादिपित् न वृद्धिः । युयाताम् । वे दोनों अलग हो । युयुः—वे सब मिल गये । आशीर्वाद अर्थमें यूयात् अकृत सार्वधातुकयोः दीर्घः । युयास्तां युयासुः—ईश्वर तुम्हें मिलायें । भूतकाले समाप्त क्रिया अर्थे लुङ् अट् अयु इस् ईत् । इटः ईटि सिच्लोपे । सिचोवृद्धिः परस्मैपदेषु । वृद्धिः आव् आदेशे, दीर्घे **अयावीत्** अयाविष्टाम् अयाविषुः । अयावीः अयाविष्टम् अयाविष्ट । अयाविष्व अयाविष्म । अयाविष्यत् । (४) **या** धातु प्रापण—पहुँचना, जाना, फलके अनुकूल क्रिया अर्थः । गम्धातुकी तरह सकर्मक है **याति** (जाता है) तिस्रः कन्यकाः यान्ति । प्रापण—जनकक्रियाका परोक्षभूतकाल अर्थमें **ययौ**—या या, यया, णल् स्थाने आत् अणौलः सूत्रेण अजादि कित् अतुस्प्रत्ययपरे आकारलोपे । ययिथ ययाथ । अयम् धातुः अनिट् । अजन्तस्य थल्परे विकल्पेन इट् । इट्परे आलोपः । इट्अभावेन आलोपो न । याता—श्वः गमनकर्ता मन्दिरं यास्यति । स हाट्कं यातु ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात् । अयाताम् । ७ लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११ । आदन्तात् परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् । अयुः, अयान् । यायात् । यायाताम् । यायुः । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः । अयासीत् । अयास्यत् । वा गतिगन्धनयोः । ५ । भा दीप्तौ । ६ । ष्णा शौचे । ७ । श्रा पाके (८) दा कुत्सायां गतौ (९) प्सा भक्षणे (१०) रा दाने (११) ला

तथा स अयात् । कृष्णबलरामौ मथुरां, अयातां (७) आकारान्तसे लङ्के झिको विकल्पसे जुस् उस् हों । अयुः—प्रापणार्थक या धातोः अद्यभिन्नसमाप्तक्रियाकाले अर्थेलङ् तस्यस्थाने झि, तस्य स्थाने 'लङः शाकटायनस्यैव' इति जुस्—उस् उस्य-पदान्तात् इति अकारस्य पररुपे सकारस्य रुत्वेविसर्गे, अयुः । उस् अभावे झोऽन्तः । इकारलोपे । तकारस्य संयोगान्तलोपे अयान् । विधि, प्रेरणा अर्थे यायात् । वह जाय । यायुः । वे जांय । यायात्—आशीर्वादके अनुकूलगमनजननक्रिया । आयासीत् गृहम् अया स् त् । यमरमनमातांम् सक्च इति सूत्रेण इट्सक् । झल्परे सिच्लोपे रुपम् । अयासिष्ट । अयासिषुः । आयासीः अयासिऽटम् अयासिष्ट । अयासिषम् अयासिष्व अयासिष्म) (५) उत्साहेन च, हिंसायाम्, सूचने चापि, गन्धनम् । वाधातु गति-वायुचलने तथा गन्धप्रतीत होने, सूचित करने उत्साहहिंसा, अनुकूल क्रिया अर्थ । वह क्रिया वर्तमान रहे, तब वाति—हवा चलती हैं । गन्धलेकर (ववौ वायुः सुखस्पर्शः) या धातुकी तरह रुप होंगे । श्वः वाता, सदा वास्यति, स वातु । यथा-प्रभञ्जन अवात् अवाताम् अवुः अवान् । लङ् शाकटायनस्यैव इति झेर्जुस् विकल्पेन । वायात् (वायु वहे) अवासीत् । सूचित किया । अवास्यत् । निर-उपसर्गसे वाधातु अर्थ 'बुझना' या शान्त होना है (६) भाधातुका दीप्ति, प्रकाश, चमक, जनकक्रिया । सूर्यः भाति । चन्द्रः विभाति तमः अभाति । अर्थ बदलते हैं । प्रकाशका वर्तमानकालिक विधिनिषेध । वभौ रामः सभायाम् । राममें चमकना क्रियाका समाप्तपरोक्षकाल है । परश्वः भाता = भास्यति सदा । हमेशा चमकेगा । स भातु यथा दिलीपः अभात् । अभाताम् अभुः । लङोर्झेर्जुस् । भायात् प्रकाशित हो । अभासीत् = प्रकाशित हुआ । अकर्मक धातुः स अभास्यत् यदा । भा=प्रकाशे रतम् आसक्तं, तत् भारतम् (७) ष्णा = धात्वादेः षः सः । निमित्त षके अपाये = हट्जानेसे नैमित्तिक णका भी अपाय (हठना) होता है । स्नाधातुका शौच अर्थ है । यद्यपि शौचशब्द पवित्रता, शुद्धि, अर्थमें प्रसिद्ध है तथापि स्नान अर्थ ही वाच्य है, अभिप्रेत है । स्नानक्रिया वर्तमान रहे तब स्नाति रामः । नि उपसर्गसे परिपक्व होना अर्थ है निष्णाति, प्रवीण होता है । स गङ्गायां सस्नौ = स्नान क्रिया । दीर्घसूत्री श्वः स्नाता । गुरुः सदा स्नास्यति । चैत्रः स्नातु । यथा—मैत्रः अस्नात् । शिष्यः स्नायात् । आशीर्लिङ 'वान्यस्य' इति एत्वविकल्पे । स्नेयात् स्नायात् । अस्नासीत्=स्नानक्रिया । यदा अस्नास्यत् तदा निर्मलमभविष्यत् । (८) श्राधातु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आदाने (११) दाप् लवने (१३) पा रक्षणे (१४) ख्या प्रकथने (१५) अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः। विद ज्ञाने (१६) ८ विदो लटो वा ३(४)८३। वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः। वेद, विदतुः विदुः, । वेत्थ, विदथुः, विद । वेद, विद्व, विद्म । पक्षे—वेत्ति । वित्तः । विदन्ति । ९ उष-विद-जागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३ (१३७) एभ्यो लिटि आम् वा स्यात् । विदेर-दन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः । विदाञ्चकार । विवेद । वेदिता । वेदिष्यति ।

सीरा पकाने अर्थमें हैं। श्राति अश्रात् अश्रासीत् (९) द्राधातु कुत्सा = निन्दित घृणित अर्थ) द्राति = पतनपथ पर चलता है निद्राता। निदद्रौ। खगः निद्रातु। निद्रायात् (१०) प्सा का भक्षण अर्थ है। प्साति, पप्सौ, अप्सात्=भोजन किया। अप्सासीत् = भक्षणकर चुका (११) रा का देना अर्थ **राति अरासीत्** (१२) लाधातुका आदान (ग्रहण) लेना। लाति=लेता है, ललौ=कभी ले चुका। लाता लास्यति (लेगा) लातु अलात्, अलासीत् अलास्यत् (१३) दाप्धातु छेदनकर्तन, काटने **लवन** करने अर्थमें **दाति** लवन करता है। **दास्यति**=लवनकरेगा, प्रेरणा अर्थे **दातु** (छेदनकरो। **अदात्**, लवन किया। अदासीत् (१४) **पाति**=रक्षति। **पपौ**=ररक्ष, **पास्यति**=रक्षिष्यति। पातु, रक्षतु अपात्। अपासीत् (रक्षण क्रिया) **अपास्यत्** (१५) **ख्या** धातुका प्रकथन कहना अर्थ है। ख्याति प्रसिद्ध होता है उपसर्गसे प्रख्यात् विख्यात्। व्याख्याति=व्याख्यानं करोति। इसधातुका प्रयोग केवल सार्वधातुकमें ही होता है (१६) विद्धातुका ज्ञानानुकूलव्यापार। वह क्रिया वर्तमान रहे, वेत्ति (८) ज्ञानार्थक विद्धातुसे परे लट्के स्थानमें परस्मैपदप्रत्ययको णल् आदि विकल्पसे हो।

वेद – ज्ञानकी वर्तमानकालिक क्रिया (जनता है।) विद्लट्विप् 'विदो लटो-वा' इतिणल्, शपो लुकि अनुबन्धलोपे, गुणे। अत्र द्वित्वं न भवति। लिट् लकारस्य अभवात् विदतुः विदुः (जानते हैं) त्वं वेत्थ। तुम जानते हो। विद्व विद्म। हमलोग धर्म जानते हैं। यदा णल् न भवति तदा विद + ति चर्त्वे गुणे। वेत्ति। वित्तः विद्, तस्, चर्त्वे, अपित् सार्वधातुकं ङित् भवति। अतएव न गुणः। (९) उष् दाहे = जलाना, ज्ञानार्थकविद्, जागरणर्थक जागृ, इन धातुओंसे आम् विकल्पसे लिट् परे रहते, **विदेः** = विवधातुके अकारान्त प्रतिज्ञासे 'अतोलोपः' इति अकारलोपे सति। तस्य स्थानिवद्भावेन उपधायां लघु न मिलति, अतः आमिपरे लघूपधगुणो न भवति, **विदाञ्चकार**=ज्ञानार्थक विद्धातोः अद्यभिन्न समाप्तपरोक्ष-ज्ञानक्रियाकाले लिट् 'उषविद' सूत्रेण आम् प्रत्ययः लिटोलुक, कृलिट् इति अनु-प्रयोग, द्वित्वादिकार्यं, मान्तस्य पदसंज्ञायामनुस्वारपरसवर्णे विदः लुप्तस्य अकास्य स्थानिवद्भावेन लघूपधगुणो **विवेद**। वह पहले ही जान लिया था। विविदतुः विविदुः विवेदिथ, विविदथुः, विविद। विवेद। विविदिव विविदिम। अयं धातुः सेट्। य अनिट 'विद्सत्तायां' दिवादिः। परश्वः समाचारं वेदिता। अद्यतः निरन्तरं धर्म' वेदिष्यति।(२७०) विदांकुर्वन्तु=विद्धातुसे लोट्परे आम् हो, आम् परे गुणका अभाव

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

५७० । विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३ ।१।४१। वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते । १ तनादिकृञ्भ्य उः ३ ।१।७९। तनादेः उः प्रत्ययः स्यात् । शपोऽपवादःविदाङ्करोतु । २ अत उत् सार्वधातुके ६ ।४। ११० । उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत् उत् सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ् कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत् । अवित्ताम् । अविदुः । ३ दश्च ८ । २ । ५ । धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा । अवेः, अवेत् । विद्यात् । विद्या-

---

कार्य विकल्पसे निपातित हैं । पुरूषवचने विदाङ्कुर्वन्ति—शब्दमें प्रथमपुरुष, बहुवचन ही न समझें, अपितु सभी पुरुष सभी वचनमें ये कार्य हो । १ । तनादिगणपठितधातु तथा कृञ्से परे उप्रत्यय हो शप्को बाधकर । ज्ञानजनक क्रियाके विषयमें प्रेरणा, प्रार्थना, निश्चय प्रतीत हो तब विदङ्करोतु=विद्लोट् लोट्परे विद्से आम्, गुणका अभाव, लोट्कालुक् कृलोट्का अनुप्रयोग । कृके आगे 'तनादि कृञभ्यः उः' से उप्रत्यय, शपको बाधकर हुआ । उप्रत्ययः नशित्, नचित् अस्ति । किन्तु धातोः विहित आर्धधातुकसंज्ञकः । तस्य फलम् ऋस्थाने गुणः । तत् सार्वधातुकसंज्ञकः तस्य फलम् उप्रत्ययस्य गुणः । एरुः मान्तस्य अनुस्वारे परसवर्णे 'तु' इत्यस्य तातङ् दशायां ङिति सति उकारस्य गुणनिषेध । ऋकारस्य गुणे विदाङ्करुतात् ततः । २ । उप्रत्यय हो अन्तमें ऐसे कृञधातुके अको उहो, कित् ङित्सार्वधातुकपरे विदाङ्कुरुतात् । ज्ञानके लिए आशीर्वाद । शिष्यौ विदाङ्कुरुताम् । सर्वे धर्मं विदाङ्कुरुताम् । सर्वे धर्मं विदाङ्कुर्वन्तु । त्वं नीति विदाङ्कुरु, उतश्च प्रत्यात् इति हि लोपः अहरहः संध्यां विदाङ्करवाणि । अत्र उ०पु० वचने आडुतमस्य पिच्च । इति आट् भवति । अकारस्य उकारो न भवति । किन्तु उप्रत्ययस्य गुणः आवादेश्च । विदाङ्करवाव विदाङ्करवाम । पक्षे आम् अभावे । वेत्तु, वित्तात् वित्तां विदन्तु । वित्तात् वित्तं वित्त । अहं मनोरमां विदानि । आवां कौमुदीं विदाव । वयं शेखरं विदाम । उत्तमपुरुषस्य आट्पित् भवति । यस्य फलं पुगन्तलघूपधस्य च इति गुण अवेत् । ज्ञानार्थक विद् अद्यभिन्न समाप्तज्ञानक्रियाकाले लङ्तिप् इकारलोपे । शपो लुक् अट्, गुणे, हल्ङ्याादिलोपे । वावसाने इति दकारस्य चर्त्वविकल्पे अवेत्, अवेद् । (रहस्यम्) तौ उपनिषदम् अवित्ताम् अपित्सार्वधातुक परे न गुणः अविदुः । झिस्थाने सिच्अभ्यस्त विदिभ्यः च इति जुस् । ३ । धातुके पदान्त 'द' को रुहो सिप्परे । त्वं मन्त्रम् अवेः अवेत् । अविद्सिप् इकारलोपे सकारस्य संयोगान्तलोपे दश्च दकारस्य रु० वि अवेः । यदा न रुः तदा चर्त्वविकल्पे अवेत्द् अवित्तम् अवित्त । अवेदम् अविद्व—अविद्म । शिष्यः विद्यात् । ज्ञानं प्राप्नुयात् । ज्ञानजनकक्रियासमाप्ते (भूतकाले) अर्थे लुङ् । अविद् इस् ईट् गुणे सिंजलुकि दीर्घे । अवेदीत् वेदिष्टम् अवेदिष्ट ज्ञानं । अवेदिषम् अवेदिष्व अवेदिष्म । मन्त्रं यदा ब्रह्म अवेदिष्यत् तदा मोक्षो अभविष्यत् । १७ ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्ताम् । अवेदीत् अवेदिष्यत् । अस भुवि ।१७। अस्ति । ४ श्नसोरल्लोपः ६। ४।१११ श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । असि । स्थः । स्थ। अस्मि । स्वः । स्मः ।५७५ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यचपरः ८।३।८७ उपसर्गेणः प्रादुषश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्परः किम्—अभिस्तः । ६ अस्तेर्भूः २।४।५२ । आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु, स्तात् । स्ताम् । सन्तु । ७ घ्वसोरेद्धाभ्यासलोपश्च ६ । ४ । ११९ । घोरस्तेश्च एत्वं स्यात् हो परे अभ्यासलोपश्च ।

हो, आम्से परे लोट्का लुक् हो । लोडन्तकरोति=कृलोट्का अनुप्रयोग हो । ये चार अस धातुका भूकी तरह सत्तानुकूल क्रिया अर्थ है : फल-सत्ता, उपस्थितिः, अस्तित्व, सन्ति । ४ । श्नसो = श्नाप्रत्यय (विकरण) और अस् धातुके अकारका लोप हो कित् ङित्सार्वधातुकपरे स्तः । सत्ता अर्थ वाचक अस्धातोः मध्यम पु० द्वि० तस् श्नसोरलोपः इति अकारलोपे । सभी अपित् सार्वधातुक ङित् होते हैं । उसकेपरे अस् अकारका लोप । दोनों हैं । ते सन्ति । हैं । त्वम् असि=तुम हो । तासस्त्योर्लोपः इति अस् सकारस्य लोपे । स्थः तुम दोनों हो, अहं अस्मि, आवां स्वः । वयं स्मः । इस धातुमें सत्ता अस्तित्व विद्यमानता, रूपफल मात्र जान पड़ता है, क्रिया की प्रतीति नहीं होती । वह कर्तासे अनुमित है । अकर्मक धातु ।

५७५ । उपसर्ग इण् और प्रादुस् अव्ययसे परे अस् धातुके स्को षहो । यकार और अच् परे । यथा—निष्यात् (सिद्ध हो) निःउपसर्गक स्यात् । यहाँ उपसर्ग नि'का इण् 'इ' है । उससे परे उसके सको 'ष' हुआ । यकारपरे यासुटका या । प्रादुःष्यात् (प्रकट हो) प्रनिषन्ति=प्रनिपूर्वक सन्ति । यहाँ उपसर्ग इण् निमे 'इ' उससे परे सको ष हुआ । अच्परे स' में अ है । प्रादुःषन्तिं । यहाँ भी प्रदुस् इस उदयसे परे अस् के सको 'ष' हुआ । अस्परे समें अ हैं । यच् पर किम् । यपरे या अस् परे स को ष हो ऐसा क्यों ? अस्तिः में अभिके इण्से परे असके सको ष न हो । वहाँ न य परे, न अस् है । अतः (यच्) पढ़ा । तुम दोनों चारों तरफ हो । ६ । असधातुके स्थानमें भू आदेश हो, आर्धधातुकलकारके विषयमें । आर्धधातुक में सर्वत्र भू आदेश निश्चित है बभूव = परोक्षकालिक सत्ताजनक समाप्तक्रिया । प्रयोगसिद्धः पूर्ववत् । सत्ता, उत्पत्ति या उपस्थितके विषयमें आज्ञा प्रेरणा आशीर्वाद अर्थमें लोट्, अस्तु = अस् धातोः लोट् तिप् शप् लुक् एरुः अस्तु (तव कल्याण) तुस्थाने तातङपक्षे ङित् अस्ति । यस्य फलं 'श्नसो' अकारलोपः । स्तात्, स्तां, सन्तु । मेंभी ङित्भाव, अकारलोप, आयुषस्ते सन्तु । म० पु० एकवचने शिप् नस्य 'हुझल्भ्योहेर्धिः' इति हि स्थाने धि आदेशे प्राप्ते त । ७ । घ्वसो — घुसंज्ञक और असको एत् = एकार हो हौ=हिपरे । अभ्यास का लोप भी हो हिपरे । अलोन्त्य परिभाषासे अन्त्यवर्णको एत्व हो, अभ्यासका लोप केवल दाधासे सम्बन्धित है । इति सूत्रेण अस् अकारस्य एत्वे, एत्वस्य असिद्धत्वात् एत्वके (आभीय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । श्नसोरित्यल्लोपः । तातङ् पक्षे एत्वं न परेण तातङा बाधात् । ⁵एधि, स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम । आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् । अभूत्,अभविष्यत् । इण गतौ । १८ एति । इतः । ८ इणो यण् ६ । ४ । ८१ । अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति । ९ अभ्यासस्या सवर्णे ६।४७८ इवर्णोवर्णयोरियङुवङौस्तोऽसवर्णेऽचि ।

कार्य होने से) असिद्ध होनेपर झल्सेपरे हिको धि हुआ । 'श्नसोः' अकारलोपे । एधि । स्तात्, तातङ्पक्षे = हिके स्थानमें तातङ् आदेशके पहले 'ध्वसोरेद्' से एत्व नहीं होगा । क्योंकि तातङ्पर है, वह एत्वको बाध लेगा । हि न मिलनेसे एत्व नहीं होगा । एधि इन्द्रवर्मन् यूवां स्तम्=तुम दोनों बने रहो । यूयं स्त । अहं असानि, अस्धातुसे आट् आडुत्तमस्य पिच्च से आट् पित् है । ङित् न मिलने से अलोप नहीं होगा । हमलोग सदा रहें । असीत् । अद्यभिन्नभूतकालमें (थे) अस् लङ्त् । आट् । अस्तिसिचो, इति ईट् आगमे । आस्ताम् । श्नसोः अकारलोपे । आसन् । आसीः आस्तम् आस्त । आसम् आस्व आस्म । हमलोग पहले थे । स्यात् सत्ताकी संभावना अर्थमें लिङ् । अस् यास्त् । यास्के ङित् होनेसे अकारलोपे । जो ङित् है वह पित् नहीं होता । अन्यत्र भी । स्यातां, स्युः । स्याः स्यातं स्यात् । स्यां स्याव स्याम । आशीर्लिङ् लुङ् लृङ् इन लकारोंमें अस्को भू मानकर रूप समझें (१८) गमनार्थक इण् धातोः गमन क्रिया व० अर्थे लट् शपोलुक् सार्वधातुक गुणे एति । उपसर्ग बलसे यह धातु अनेक अर्थ धारण करता है जैसे उपैति=समीपं गच्छति । अपैति=(अलग) पृथग्भवति । ऐति=आगच्छति । अन्वेति=सम्बन्ध जोड़ता है या अनुगच्छति (पीछे चलता है) । अभ्युपैति=स्वीकारं करोति । अभिप्रैति=भाव रखता है । अभ्युदेति= उन्नति करता है । समुदेति=प्रत्यक्ष होता है । व्येति = बदलता है । अवैति=जानाति । इतः में भी सभी उपसर्ग । इ तस् । रुत्स वि० इतः । अपित्के ङित् होनेसे गुणः नि० (८) इण् को यण् हो । इ उ ऋ लृ के स्थानमें क्रमसे य व र ल हो, अजादि प्रत्ययपरे । यन्ति = गमनानुकूलक्रियावाचक इ धातोः प्रचलित क्रिया वाचक लट्, तस्य स्थाने बहुवचने, झि । तस्य अन्त आदेशे । इ+अन्ति । 'अचिश्नुधातुभ्रूवां' सूत्रेण इयङ् प्राप्त, तं बाधित्वा 'इणो यण्', इस्थाने यकृते यन्ति । एषि इथः इथ । एमि, इव, इम । वर्तमान कालिकगमनक्रिया सभी कर्ता में आवश्यक है (६) अभ्यासके इकार उकारको इयङ् उवङ् हो, असवर्णे, सवर्णसंज्ञाभिन्न अच्परे यथा इयाय =गत्यर्थक इ धातोः अद्य भिन्न समाप्तपरोक्षगमनक्रिया अर्थेलिट् । तिप् णल् द्वित्वे इ इ अ अचोऽञ्णिति इति इकारस्य वृद्धिः, तस्य आयादेशे । असवर्णे अचिपरे आ इति अभ्यासस्य इकारस्य इयङ् आदेशे । इयाय । द्विवचने ' इ इ अतुस्, अजादि प्रत्ययपरे इ स्थाने य कृते ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इयाय। ५८० दीर्घं इणः किति ७।४।६९। इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि। [२]ईयतुः। इयुः। [३]इययिथ: इयेथ। एष्यति। एतु। ऐत् ऐताम्। [४]आयन्। [५]इयात्। [६]ईयात्। १ एतेर्लिङि ७।४।२४। उपसर्गात् परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि। निरियात्। उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। अभीयात्। अणः किम्—समेयात्। ५८२ इणो गा लुङि २।४।४५।

(५८०) इणः= अभ्यास इणः=इकारको दीर्घ हो कित् लिट् परे। एति अभ्यास इकारस्य दीर्घे ईयतुः (जग्मतुः) ईयुः (जग्मुः) इययिथ, इयेथ। म० पु० एकव० सिप् स्थाने थल्कृते गुण होकर इ ए थ अनिट् अजन्तधातुको इट् विकल्प अभ्यासस्य इकारस्य इयङ् इट्पक्षे एकारस्य अयादेशे। यदा न इट् तदा इय् एथ = इयेथ। ईयथुः ईय। इयाय इयय ईयिम। एषा (श्वः गन्ता)। एष्यति (ज्ञास्यति) एतु, इतात् इतां यन्तु। (एहि इतम् इत। यहाँ सेर्ह्यपिच्च, सिके स्थानमें, हि। अपित् होने से ङित्। गुण निषेधः। अयानि अयाव अयाम अत्र आट् पित् अस्ति तेन सार्वधातुकगुणो भवति। अयादेशश्च। ऐत् (अगच्छत्) अनद्यतनभूतकालकी गमनक्रिया इ + लङ्। ति इकारलोपे, शपोलुक्। वृद्धि ऐताम्= वे दोनों पहुँच गये। आयन्=इ + झि इकारलोपे 'झोऽन्तः' ल् अवस्थायाम् आट्। आ इ अन्। इणो यण् सूत्रेण इस्थाने य आयन्=अगच्छन्। ऐः, ऐतम्, ऐत। आयम्, ऐव, ऐम। ईयात्=गच्छेत्, इयाताम् इयुः। इयाः इयातम् इयात। इयाम् इयाव याम आशिषि लिङ् लकारे अकृतसार्वधातुकयोः दीर्घे। ईयात् वैकुण्ठम् (१) एतेः=ईणः। उपसर्गसे परे इण्धातुके अण्को ह्रस्व हो, आर्धधातुक कित् लिङ परे। निरीयात्—निर्गमनअर्थं द्योतक निर् + ईयात्। यहाँ उपसर्ग निर्‌से परे इण् ईयात् का अण् ई उसे ह्रस्व हुआ। आर्धधातुक किति लिङ्परे 'यात्' इति (प०) उभयत्—दोनों (अन्तादिवत्भाव, पूर्ववद्भाव) के एक साथ आश्रयण—संभावना हो' तव नान्तादिवत्—अन्तादिवत्भाव नहीं होता। पूर्वका धर्म अन्तमें, अन्तका धर्म आदिमें नहीं माना जाता। अभीयात् में सवर्णदीर्घ हुआ है। वहाँ अन्तादिवच्च सूत्रसे अभीमें उपसर्ग अभिका धर्म और परादिवद्भावसे ईण धर्म (इयात् का) लाकर ह्रस्व करना चाहते थे। परन्तु परस्पर-विरोधी धर्म एकसाथ उपस्थित हैं। अतः अन्तादिवत्—एकादेशमें अन्त्यका आदिधर्म निषिद्ध हुआ। अतः ह्रस्वो न भवति। अणः किम्? एतेर्लिङ् सूत्रमें अण्को ह्रस्व न कहते, अब अन्य (अण्से अतिरिक्त) को भी ह्रस्व होने लगता। सम् + एयात्के ए-को ह्रस्व होनेलगता। (२) इण्धातुको गा आदेश हो लुङ्के विषयमें, गा होनेपर 'गातिस्थाघूपाभूभ्यः' से सिच्लुक् गा आदेशका फल आट् न होना भी है। अट् आगात्। क्रियावाचक इ धातोः लुङि। इणोगाङ्लुङि इति इ स्थाने गा आदेशे आगमे च्लेः सिच्, तिप् इकारलोपे 'गातिस्था' इति सिचो लुक् अगात् अगाताम् अगुः। आतः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गातिस्थेति सिचो लुक्। 'आगात्। ऐष्यत्। शीङ् स्वप्ने। १९।५८३ शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१। क्ङिति चेत्यस्यापवदः शेते। शयाते। ४ शीङो रुट् ७।१।७ शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात्। शेरते। शेषे! शयाथे। शेध्वे। शये। शेवहे। शेमहे। शिश्ये। शिश्याते शिश्यिरे। शयिता। शयिष्यते। शेताम्। शयाताम्। शेरताम्। अशेत। अशयाताम्।

सूत्रेण झेर्जुस् उस्यपदान्तात् पररूपे। अगमत् इत्यर्थः। अगाः अगातम् अगात। अगाम् अगाव अगाम। ऐष्यत्—आट् आटश्चेति वृद्धिः। ऐष्यताम् ऐष्यन्। ऐष्यः ऐष्यतम् ऐष्यत, ऐष्यम् ऐष्याव ऐष्याम (३) शीङः---शीङ्धातुको गुण हो सार्वधातुक प्रत्ययपरे। आत्मनेपदी। त आतां झ आदिके अपित् सार्वधातुक होनेसे ङित् हैं। ङित्परे (क्ङितिचसे) प्राप्तगुणका निषेधका बाधक है (१६) स्वप्न जनकव्यापारवाचक शीङ् धातुके ङित् होनेसे (अनुदात्तेत्) आत्मनेपदे। शेते–शयनके अनुकूल क्रियावाचक शीधातोः शयनक्रिया वर्तमाने अर्थेलट् तस्य स्थाने आत्मनेपदे, प्रथमपुरुषस्य एकवचने 'त' टिसंज्ञा। टित् आत्मनेपदानां टेः एकारे शीते इति अवस्थायां सार्वतुकसंज्ञक त प्रत्ययपरे, सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति गुणस्य क्ङितिच इति निषेधे। निषेधस्य अपवादः (शीङःसार्वधातुके) गुणेः कृते शेते। दो कर्तामें शयनक्रिया वर्तमान हो शीधातोः लट्। द्विवचने (आताम्) सार्वधातुके परे इंकारस्य गुणे (एकारे) तस्य अयादेशे टि (आम्) इति तस्य एत्वे शयाते। यत्र अनेक कर्तारःशयनं कुर्वन्ति। तत्र शेरते शीङ + लट्झि (आत्मनेपदेषु अनतः) झस्थाने अतादेशे अगुणे (४) शीङ्धातुसे परे झके स्थानमे आदेश अत्को रुट्=र आगम हो। टेः एकारे शेरते। शेषे त्वम्। थासः से एत्वे गुणे शपो लुक् यूवां शयाथे यूयं शेध्वे। अहं शये, आवां शेवहे वयं शेमहे। शयनजननीक्रिया वर्तमानकर्ता। शिश्ये। अनद्यतनंभूतकालिक अप्रत्यक्षशयनक्रिया। स्वप्नार्थक शी धातोः परोक्षेलिट् (तस्य स्थाने 'त') तस्य स्थाने लिटस्तझयोरेशिरेच् इतिएश। 'शी' इत्यस्य द्वित्वे अभ्यःमस्य ह्रस्वे उत्तरखण्ड-ईकास्य यण्। शिश्येइति। बालको शिश्याते। "शिश्यः शिश्यिषे शिश्यध्वे। शिश्ये शिश्यावहे शिश्यामहे। अयं धातुः सेट् काशिकायां पठितः। अतः बलादि इट् भवति। अकर्मको धातुः। देवदत्तः शेते। शयनरूपं फलं तस्य जनको व्यापारः एकस्मिन् देवदत्ते तिष्ठति। विभाषेटः सूत्रेण ढत्वम्। शयिता शयनार्थक शी धातो अद्यभिन्नभविष्यकाकिशयनक्रियार्थेलुट् तस्य स्थाने त-तास् तस्य आर्धधातुकसंज्ञा। बलादि-आर्धधातु परे इट् आगमे। धातु इकारस्य गुणे अयादेशे 'त' स्थाने डा। डित्वसामर्थ्यात्-टि (आस्) लोपे रूपम्। एवं शयितारौ शयितारः। शयितासे शयितासाथे। शयिताध्वे। सामान्यभविष्य कालमें शयनजननी क्रियाके लिए शयिष्यते कदा देवदत्तः। आशीवार्दे अर्थेलोट् बहुपरिश्रमः कृतः। शेताम्-आमेतः इतिलोट्-एकारस्य आमि रूपम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत् । इङ् अध्ययने । २० । इङिकावध्युपसर्गंतो न व्यभिचरतः अधीते । अधीयाते । अधीयते । ५८५ गाङ् लिटि २।४।४९। इङो गाङ् स्याल्लिटि ।

धार्मिकौ सुखेन-शयाताम् । श्रमिकाः शेरताम् । शेश्व शयाथां शेध्वम् । आज्ञा चेत् अहं शयै । आवां शयावहैः । वयं शयामहै । एतऐ सूत्रेण, एकारस्थाने ऐकारे । अनद्यतन-समास शयनकक्रिया अर्थे लङ् अट्, आत्मनेपदे 'त' । शपो लुक् । शीङः गुणे अशेत । तौ अशयाताम् । ते अशेरत । अशेथाः अशयाथाम्, अशेध्वम् । अहं ह्यः अशयि । अशेवहि अशेमहि । यत्र शयनक्रियायाः सम्भावना प्रेरणा वा तत्र विधिलिङ् । स शयीत । वह थका होगा सोवे । अङ्गदहनुभन्तौ शयीयातां । कपयः शयीरन् । त्वं शयीथाः शयीयाथां शयीध्वम् । दिने अहं न शयीय । शयीवहि शयीमहि । शयनविषयक आशीवादार्थे ससुखं शयिषीष्ट । शीङ्+लिङ्त सीयुट्, सुट् इट् गुणयादेशे षत्वे ष्टुत्वे । शयिषीयास्ताम्, शयिषीरन् । वे सुख की नीद लें त्वं सुखं शयिषीष्ठाः शयिषीयास्थां शयिषीवहि शयिषीय शयिषीमहि, शयिषीमहि । अब हमलोग सुख से शयन करें । आपके आर्शीर्वाद से । अशयिष्ट । समाप्त शयनक्रिया अर्थे लुङ् अट् आत्मनेपदे त च्लेः सिच् अशीस्त इट् गुणे, आयादेशे, षत्वे ष्टुत्वे । अशयिषातम्, अशयिषत । अशयिष्ठाः अशयिढ्वम्ध्वम् । अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि । यदा स अशयिष्यत् तदा सुखम् अलप्स्यत् । यह भी अनेकार्थक, जो उपसर्ग से बोध्य है । जैसे-अधिशेते, बैकुण्ठं हरिः । आराम करना । पापी अनुशेते=पश्चातापं करोति । कविः आशेते आशयं धारयति । नास्तिकः संशेते, विशेते =विशेष सन्देह करता है ।

(२०) इङ् इत् इ धातु का अध्ययन=पढ़ना या बोधके अनुकूल क्रिया अर्थः । इङिकाविति—इङ् तथा इक् स्मरणार्थक धातु अधिउपसर्गको (न व्यभिचरतः) कभी त्यागते नही । अधिके योगमें ही प्रयोग अटल है । ङित् होने से आत्मनेपद । अधीते =अधिउपसर्गक अध्ययनार्थक इङ्धातोः ज्ञानजनकक्रियावर्तमाने लट्, त, टेः एत्वे, सार्वधातुकसंज्ञा शपो लुक् इकारयोः सवर्णदीर्घे रूपम् । अधीयते, आताम् टेः अत्वे, 'अचिश्नुधातु' इहि इयङ् सवर्णदीर्घे । बहुवचने झस्थाने, आत्मनेपदेष्वजतः इति अत् आदेश, । टेः एत्वे अधीयते । अपित् प्रत्ययः ङित् भवति । तेन गुणनिषेधः । त्वं वेदम् अधीषे । युवां शास्त्रमधीयाथे । यूयं तर्कम् अधीध्वे । अहं प्रथमायाम् अधीये । आवां नीतिम् अधीवहे । वयं धर्मम् अधीमहे ।

(५८५) गाङ्=इङ् धातुको गाङ् आदेश हो लिट् परे । अधिजगे अधिपूर्वक स्वाध्याय जनक् क्रियावाचक इङ् धातो परोक्षाध्ययन क्रियासमाप्ते अर्थे लिट् आत्मनेपदे 'त' तस्य स्थाने एश् । लावस्थायां 'गाङ्लिटि' इति 'गा' आदेशे तस्य द्वित्वे,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अधिजगे । अधिजगाते । अधिजगिरे । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अधीष्व, अधीयाथाम् अधीध्वम् । अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै । अध्यैत, अध्ययाताम्, अध्यैत । अध्यैथाः, अध्यैयाथाम्, अध्यैध्वम्, अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट । ६ विभाषा लुङ्लृङोः २ । ४ । ५० । इङो गाङ् वा

अभ्यासस्य ह्रस्वे, कुत्वे च ङित् तकारपरे 'आतोलोप' इट् च, आकारलोपे रूपम् । **अधिजगाते** । पहले ही अध्ययन किये, आताम् परे आतोलोपः इति विशेषः । छात्राः परश्व अधिजगिरे झ स्थाने इरेच् एत्वे आकारलोपे । त्वम् कदा वेदम् अधिजगिषे । यूवां यदा अधिजगाथे, तदा यूयं कक्षायां अधिजगिध्वे । अहं भोजनकाले **अधिजगे** । आवां ब्राह्ममुहुर्ते **अधिजगिवहे** । वयं दशघटिका **अधिजगिमहे** । हलादिप्रत्ययपरे क्रादिनियमात् इट् भवति । इट् भवति । तेन सर्वे आजादयः आकारलोपभाजो भवन्ति । आगामिदिने **अध्येता** । अधिइङ् धातोः अनद्यतनभविष्यकालिक अध्ययन क्रिया अर्थे लुट् आदि । अयम् अनिट् धातुः । अत इट् न भवति । इकारस्य गुणे यणिरूपम् । तुमलोग छुट्टीके बाद पढ़ोगे । हमलोग त्यौहार बीतनेपर स्वाध्याय करेंगे । **अध्येष्यते**=वह सदा पढ़ेगा । अध्ययन जनकक्रियाके विषयमें विधि, आज्ञा प्रेरणा सन्मान, अनुरोध, निश्चय, प्रार्थना प्रतीत हो तब अधिपूर्वक **इधातोः** लोट् । तस्य स्थाने 'त' एत्व 'आम् एतः' शपोलुक् सवर्णदीर्घे **अधीयाताम्**, अजादिविभक्तिपरे सवर्णदीर्घे अधीयाताम् । यूयम् अधीयताम् तुमलोग यशकेलिए धर्मशास्त्र पढ़ो । **अधीस्व**= थासः से सवाभ्यां वामौ इति एकारस्त 'व' आदेशे । हलादिपरे सवर्णदीर्घे, यूवां नीतिम् अधीयाथाम् धर्मंवा, यूयं विज्ञानम् अधीध्वम् । अहं हितोपदेशम् **अध्ययै** ।= उत्तमपुरुषस्यएकवचने इट् आट् अधि इ आइ धातु—ईकारस्य गुणे अयादेशे, टेः एत्वे, आटश्चेति वृद्धिः, यणि अध्ययै एवं सूक्तिम् अध्ययावहै । महाभारतं अध्ययाम हैं । **अध्यैत** अध्ययनक्रिया आजसे भिन्नभूतकालमें हुई हो तब लङ् आट् आत्मनेपदे 'त' शपो । लुक् । अधि आ इ त । 'आटश्च' वृद्धिः, उपसर्ग इकारस्य यण् । **अध्यैयाताम्** = वे दोनों परसों पढ़े थे । अध्यैयत जनाः रामायणं । यथा त्वं पुराणं **अध्यैथाः** । यूवां वेदम् अध्यैयाथाम् । अहं परश्वः पुस्तकम् अध्यैयि । वयं नास्तिकधर्मंमध्यैमहि । **अधीयीत** । अध्ययन की सम्भावना अर्थमें लिङ् 'त' सीयुट्, शप् लुक् अनुबन्धलोपे 'अचिश्नु' इति इयङादेशे । अपित्सार्वधातुकं ङित् भवति । तेन न गुणः सवर्णदीर्घ । कृष्णबलौ गुरुकुले **अधीयीयाताम्** । अत्र सीयुट्—यकारस्य न लोपः । क्या वे लोग तर्क पढ़ेंगे या धर्म **अधीयीथाः** अधीयीयाथाम् अधीयीध्वम् । अहं ज्योतिषम् अधीयीय । आवां मुहूर्तचिन्तामणिम् । अधीयीवहि । **अध्येषीष्ट**, सीयुट् सुट्षत्व ष्टुत्व इति विशेषः । अध्ययनविषयक आशीर्वादजनकक्रिया अर्थः अध्येषीष्ठा । **अध्येषीय** (६) इङ्के स्थानमें गाङ् आदेश हो, **विभाषा**=विकल्पसे । लुङ् या लृङ्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात । ७ गाङ् कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् १।२।१। गाङादेशात् कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः । ८ घु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-सां हलि ६।४।६६। एषामात ईत् स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट । अध्येष्ट । अध्यगीष्यत । अध्यैष्यत । दुह प्रपूरणे:। दोग्धि । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि । दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाथे । धुग्ध्वे । दुहे । दुह्वहे । दुह्महे । दुदोह, दुदुहे । दोग्धासि, दोग्धासे । धोक्ष्यति, धोक्ष्यते । दोग्धु, दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि,

---

परे 'ल' अवस्थामें ही गाङ् भवति । (७) गाङादेशात्=इ के स्थानमें गा आदेशसे या कुटादिभ्य=तुदादिगणप्रठित कुट् इत्यादि धातुओंसे परे ञित् णित्से भिन्न प्रत्यय ङित हो (८) घु=घुसंज्ञक (दा धा) मा = नापना स्था = गति निवृत्ति गा = गाना, पानार्थक पा, त्यागार्थक ओहाक् । नाशार्थक 'षो; इन धातुओंके आकारको उकार ही, हलादिकित् ङित् आर्धधातुक परे । अध्यगीष्ट अध्ययनार्थक अधिपूर्वक 'इ' धातो. समाप्त-अध्ययनक्रिया अर्थे लुङ् । विभाषा 'लुङ् लृङोः' इति 'इ' स्थाने 'गा' आदेशे लुङ् 'त' च्लेः सिच् । तस्य ङित् णित् भिन्न ङित् संज्ञाकृते । आर्धधातुकसंज्ञायां मास्था इति 'गा' अकारस्य ईत्वे, षत्वे, ष्टुत्वे, उपसर्ग-इकारस्य यणि रूपम । गाङ् आदेशस्य अभावे-आडागमे । आटश्चेति वृद्धिः । प्रथमम् अट् आगमः इति विशेषः । अध्यैष्ट-अध्यैषाताम् अध्यैषत । अध्यैषाथाम् अध्यैढ्वम् । अध्यैषि, अध्यैष्वहि अध्यैष्महि । यदि परिश्रमेण परीक्षापुस्तकम् अध्यगीष्यत्, तदा उदतररिष्यत् अध्यैष्यत अध्यैष्येताम् अध्यैष्यन्त । अध्यैष्ठाः अध्यैष्येथाम् अध्यैष्यध्वम् । अध्यैष्ये अध्यैष्यावहि अध्यैष्यामहि । अत्र 'आथाम्' परे आतोङितः इति प्रवर्तते (२१) दुहधातुक्रियाफल यदि कर्तृगामी हो तब आत्मने-पदम् । यदा फलं परगामी तदा परस्मैपदम् । पूरणार्थक सकर्मक दुह्धातोः दोहनक्रिया वर्तमानकाले लट् तिप् शपो लुक् । (दादेर्धातोर्घः) तस्य झलांजश् 'ग' झश् परे । झषस्तथोर्धोऽधः ईति तकारस्य धः । गुणे दोग्धि=गोपौ पयांसि दुग्धः । अहिर गाय से दूध दुहते हैं, त्वम् धोक्षि दुह सिप् शपोलुक दादेर्धातोर्धः एकाचोवशोभष् इति भष् भावेन 'द' स्थाने घ कृते । जश्त्वे, चर्त्वे 'क' कृते सिपः सकारस्य षत्वे रुपम् । दुग्धः दोह्मि दुह्व दुह्म । हमलोग सभी भैंस दुहते हैं । यहाँ क्रियाफल परगामी है । कर्तृगामि दोहन क्रियाफले स स्वार्थ—दुग्धे दुहाते दुहते । त्वमं धुक्षे । दुहाथे दुग्ध्वे । दुहे दुह्वहे । दुदुहे, दुदोह (धरित्रीम्) दोग्धा गोपाल नन्दन । धोक्ष्यति रघु प्रजाकेलिए उसीसे कररुपी दूध दुहेंगे । दोग्धु = तुम तीन गाय दुहो । दुग्धात्=सदा दुहते रहो । दुग्धाम्=तस् (ताम्) त स्थाने ध । हस्थाने धत्वे, जश्त्वे दुहन्तु । त्वं सर्वाः गाः + दुक्षि । दुग्धः दुग्ध । दोहैं, दोहावहै दोहामहै । दुग्धां दुहातां दुहन्ताम् । धुक्ष्व=दुह थासः 'स' सवाभ्यां वामौ एस्थाने व कृते । धत्वे, भूषभावे, जश्त्वे, चर्त्वे क्षत्वे । दुहाथां दुग्ध्वम् । अधोक् पूरणार्थके दुह धातोः अद्यभिन्नसमास दोहनक्रिया काले लङ्ति इकारलोपे, अट्, तकारस्य संयोगान्तलोपे धत्वे भषभावे गुणे, जश्त्व, चर्त्वे । अधोक् । अदुग्धाम् दोनों कल दुहे थे सर्वे अदुहन् । अधोः अदुग्धाम् । अदुहम् अदुह्म ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दोहाव । दोहाम । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहाथाम् । धुग्ध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । अदुग्धाम् । अदुहन् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अदुहत । अधुग्ध्वम् । दुह्यात्, दुहीत । ९ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १ । २ । ११ । इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि । धुक्षीष्ट । ५९० शल इगुपधाद-निटः क्सः ३ । १ । ४५ । इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात् । अधुक्षत् । १ लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७ । ३ । ७३ । एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि । अदुग्ध, अधुक्षत ।

२ क्सस्याचि ७ । ३ । ७२ । अजादौ तङि क्सस्य लोपः । अधुक्षाताम् ।

---

(९) लिङ्सिचौ – इक्के समीप हलसे परे झलादि लिङ् या सिच्को कित् हो तिङ्परे । धुक्षीष्ट – प्रपूरणार्थकदुह धातोः दोहन विषयक–आशीर्वादार्थे लिङ् । अत्र लिङ्सिचा आत्मनेपदेषु इतिझलादि लिङ् (सीयुट्सहित–आशीर्लिंङ् अस्ति) तं कितं करोति । तस्य फलं गुणनिषेधः । सुट् षत्वे ष्टुत्वे घत्वे भष्भावे जश्त्वे चर्त्वे क्षत्वे । धुक्षीयास्तां धुक्षीरन् धुक्षीष्ठाः । धुक्षीयास्थां धुक्षीध्वं धुक्षीय धुक्षीवहि धुक्षीमहि ।

(५९०) शल – इक्हो उपधामें ऐसे शलन्त धातुके अनिट् होनेपर च्लिको क्स आदेश हो । क्समें क अनुबन्ध है 'स' अदन्तः । अधुक्षत्=प्रपूरणार्थक दुह धातोः समाप्त दोहनक्रियार्थे लुङ् तिप् इकारलोपे, अट्, च्लि, तस्य सिच् प्राप्ते, तं बाधित्वा शलइगुपधात् इति सूत्रेण उपधायाः इक्–दुह–उकारः । एवं शलन्तधातुः दुह इति अनिट् अपि अस्ति, अतः च्लिस्थाने क्स आदेशे, ततो घत्वेभषभावेकत्वे षत्वे क्षत्वे । गोपी श्यामाः अधुक्षताम् अधुक्षन् । अधुक्षः । पृथ्वीम् अधुक्षतम, अधुक्षत, अहं गाम् अधुक्षम् । अधुक्षाव अधुक्षाम । १ लुग्वेति–वृद्धि अर्थवाचक दिह प्रपूरणार्थक दुह धातु, आस्वादने अर्थे लिह, तथा गुह धातुके क्सका लुक् विकल्प से हो । दन्त्यस्थानक तङि=आत्ममेपद परे । त, थास, ध्वं ये दन्त्य आत्मनेपद हैं । इन्हींके क्सका लोप विकल्प हो । व का दन्त्य स्थान भी है वकारस्य दन्त्योष्ठम् । वहि परे भी लुक् हो । अदुह स्त् इति दशायां लुगवादुहदिह आदि सूत्रेण क्स, लोपपक्षे घत्वे तथोर्धोऽधः घस्य जश्त्वे । अदुग्ध । यदा लोपो न भवति तदा अधुक्षत । २अचि=अजादिआत्मनेपद परे क्सका लोप हो, वह लोप अन्त्य अल् अके स्थानमें हो । अधुक्षाताम्–अदुह स आताम् अत्र अजादिः आत्मनेपदं आताम् परे क्स सकारस्य आकारलोपे घं, भष; ग, क क्ष, यदि क्सका अकार लोप न होता । आतोङितः से आताम्के आको इय् होने लगता । मेघशलः मेघान् अधुक्षन्त । अदुह स झ झोऽन्तः इति अन्य आदेशे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः। अधुक्षाथाम्। अधुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। अधुक्षि। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। एवं दिह उपचये। २२। लिह आस्वादने। २३। लेढि। लीढः। लिहन्ति। लेक्षि। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिलेह, लिलिहे। लेढासि, लेढासे। लेक्ष्यति, लेक्ष्यते। लेढु। लीढाम्। लिहन्तु। लीढि। लेहानि। लीढाम्। अलेट्, अलेड्। अलिक्षत्, अलीढ, अलिक्षत। अलेक्ष्यत्,

---

कृते सति। क्सस्याचि इति क्स अकारस्य लोपः। तस्य फलम् आत्मनेपदेष्वनतः इति अत् आदेशो न इति। त्वम् अजाः अदुग्धाः अहं महिषी अधुक्षि। हमलोग पशु दुहनेका कार्य समाप्त किये। यदा पशवः अधोक्ष्यत् तदा दुग्धस्य मन्थनम् अभविष्यत्। (२१) एवम्=इसी प्रकार, दिह्धातुका उपचय=वृद्धि होनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। अकर्मकधातुः क्योंकि फल और फलजनकक्रिया दोनोंका आधार एक है। रुपं दुहवत् देग्धि दिग्धे। दिदेह। दिदिहे। देग्धा धेक्ष्यति देग्धु अधेक् धिक्षीष्ट। दिहीत अधिक्षत् अदिग्ध। उपदेह सन्देह विदेह आदि शब्द इसी धातुसे बने हैं।

(२२) लिह्धातुका आस्वादन=स्वाद (रस लेना) चाटनेके अनुकूल व्यापारः स्वरितेत्, उभयपदी, सकर्मकः। क्योंकि स्वाद रुप फल उसका जनक व्यापारका आधार भिन्न भिन्न है। सलेहनं (चूसकर) लेढ़ि=आस्वादते आस्वादनार्थक लिट-धातोः वर्तमान-आस्वादन क्रिया अर्थे लट् 'ति' होढः। झषस्तथोर्धोऽधः ष्टुत्वेन ढः, ढोढेलोपः, गुणे लेढ़ि। एवं लीढ़ः ढत्व धत्व ष्टुत्व ढोढे लोपः। अत्र गुणः प्राप्नोति। तं बाधित्वा ढलोपे पूर्वस्य दीर्घो अणः, इति इकारस्य दीर्घे ते जम्बुफलानि लिहन्ति। त्वम् आम्रफलानि लेक्षि। अत्र सिप् परे ढ क, षढोकःसिः अत्र इणः परं सकारं दृष्ट्वा षकारो भवति। कष = क्ष, लिक्षे=थासःसे ढ क ष क्ष एत्व,। लिलेह, लिलिहे। आस्वादन क्रिया पहले ही समाप्त हो अदृष्ट हो। लेढु आस्वादनार्थक लिट्धातोः स्वादविषयक प्रेरणार्थक लोट् सिप् शपोलुक् सिप् स्थाने अपित्हि आदेशे। हि स्थाने धि धत्व ष्टुत्व ढलोप दीर्घे रुपम्। लेहानि अत्र आट् पित् अस्ति। तेन गुणो भवति। लिढां लिहातां लिहतां लिक्ष्व लिहाथां लिढ्वम् लेहै लेहावहै लेहामहै। अलेट्—ड्। अलीढ़ाम् अलिहन्। अलेट् अलीढ़म् अलीढ़। अलेहम् अलिह्व अलिह्म। लिह्यात्। लिहीत। लिहीयाताम् लिहीरन्। आशीर्लिङ्। अलिक्षत् अलिक्षताम् अलिक्षन्। अत्र शलइगुपधादनिटःक्स यदा दन्त्य तङ् प्रत्ययपरे मिलति तदा लुग्वा दुहदिह आदि सूत्रेण क्स। अकारस्य लुक् विकल्पे। अलीढ़ अलिक्षाताम् अलिक्षन्त। अलीढ़ाः अलिक्षाथांः इत्यादि। चटनी अर्थमें अलेक्ष्यत् अवलेह समलेह सम्यक् आस्वादिनी आदिशब्द लिह्धातुकी देन है। यदा औषधम्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अलेक्ष्यत। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। २४। ३ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४। ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुव-श्चाहादेशः। आह। आहतुः। आहुः। ४ आहस्थः ८।२।३५। झलि परे। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः।

५९५ ब्रुव ईट् ७।३।९३। ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते। ६ ब्रुवो वचिः २।४।५३।

तदा रक्त शुद्धिः अभविष्यत्। (२३) ब्रूधातु व्यक्त वाणी–स्पष्ट बोलनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। अकार इत् होनेसे आत्मनेपद, स्पष्ट वाणी के लिए प्रसिद्धः। मनुष्यमात्र में उपयोगी है। उच्चारणजनकव्यापारका समान आधार होनेसे अकर्मक है।

(३) ब्रूवः = बूधातुसे परे लट् स्थान तिप् तस् झि सिप् थस् इन पाँचों के स्थानमें णालादयः। णल् अतुप् उस् थल् अथुम् ये पाँच आदेश क्रम से विकल्पसे हों। साथ में ब्रुको आह आदेश भी हो। आह–स्पष्ट अर्थवाचक ब्रुधातोः स्पष्ट — उच्चारणे अर्थे वर्तमाने लट् तस्य स्थाने तिप् ततः ब्रुवः पञ्चानामादित आहोब्रुवः इति तिप् स्थाने णल ब्रुस्थाने आह। अनुबन्धलोपे आह। तौ आहतुः (दोनों स्पष्ट बोले) ते आहुः (वे साफ बोले)। (४) आहके स्थानमें थ आदेश हो झल् संज्ञक अक्षर परे। अन्त्य अल् ह के स्थान में थ आ। चर्त्वे। त्वम् आत्थ, युवाम् (५९५) ब्रूवः = ब्रूधातुसे परे हलादि पित् प्रत्ययको ईट् आगम हो। यदा लट् स्थानक तिप् स्थाने णलादयो न भवन्ति, तदा ब्रूति शपोलुक् बुब्रूः ईट् इति सूत्रेण हलादिपित् प्रत्यय तिप् शिप् मिप् तस्य ईट् आगम। सार्वधातुक परे गुणः अय आदेशः श्लोकं ब्रवीति। महात्मानौ ब्रूतः। नेतारः सभायां ब्रूवन्ति, ब्रवीषि ब्रूथः ब्रवीमि ब्रूव ब्रूम। ब्रुवन्ति इत्यत्र झोन्तः इति झ स्थाने अन्तादेशे कृते। गुण निषेधे सति, अत्र श्नुधातु इति उवङादेशे। ब्रुवन्ति सभी अजादि प्रत्ययों में उवङ् भवति, बूते ब्रूषे ब्रूवाथे ब्रूध्वे। ब्रुवे ब्रूवहे ब्रूमहे। यत्र उवङ् तत्र ह्रस्व उकारेः (६) ब्रुवः = ब्रूके स्थानमें बच् आदेश हो आर्धधातुक-प्रत्यय परे। उवाच—स्पष्टभाषणार्थक ब्रूधातोः अप्रत्यक्षसमाप्तभाषण क्रियाकाले अर्थे लिट् तिप् णल् आदेशे 'लिट्च' इति आर्धधातुकसंज्ञा तस्मिन् परे 'ब्रुवो वचिः' इति ब्रूस्थाने वच् आदेशे। तस्य द्वित्वे, अभ्यासस्य हलादिशेषे ववच् अ अभ्यास वकारस्य लिटि अभ्यासस्योभयेषां सूत्रेण सम्प्रसारण उकारे। उपधा दीर्घे रुपम्। ऊचतुः–प्रथमही बोले, ब्रू अतुस् बच् आदेशे असंयोगात् लिट् कित् भवति, तेन अतुस् कित् अस्ति। ततो द्वित्वं प्राप्नोति, सम्प्रसारणंच प्राप्नोति। अत्र एष निर्णयो

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः। अधुक्षाथाम्। अधुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। अधुक्षि। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। एवं दिह उपचये। २२। लिह आस्वादने। २३। लेढि। लीढः। लिहन्ति। लेक्षि। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिलेह, लिलिहे। लेढासि, लेढासे। लेक्ष्यति, लेक्ष्यते। लेढु। लीढाम्। लिहन्तु। लीढि। लेहानि। लीढाम्। अलेट्, अलेड्। अलिक्षत्, अलीढ, अलिक्षत। अलेक्ष्यत्,

---

कृते सति। क्सस्याचि इति क्स अकारस्य लोपः। तस्य फलम् आत्मनेपदेष्वनतः इति अत् आदेशो न इति। त्वम् अजाः अदुग्धाः अहं महिषीः अधुक्षि। हमलोग पशु दुहनेका कार्य समाप्त किये। यदा पशवः अधोक्ष्यत् तदा दुग्धस्य मन्थनम् अभविष्यत्। (२१) एवम्=इसी प्रकार, दिहधातुका उपचय=वृद्धि होनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। अकर्मकधातुः क्योंकि फल और फलजनकक्रिया दोनोंका आधार एक है। रूपं दुहवत् देग्धि दिग्धे। दिदेह। दिदिहे। देग्धा धेक्ष्यति देग्धु अधेक् धिक्षीष्ट। दिहीत अधिक्षत् अदिग्ध। उपदेह सन्देह विदेह आदि शब्द इसी धातुसे बने हैं।

(२२) लिहधातुका आस्वादन=स्वाद (रस लेना) चाटनेके अनुकूल व्यापारः स्वरितेत्, उभयपदी, सकर्मकः। क्योंकि स्वाद रुप फल उसका जनक व्यापारका आधार भिन्न भिन्न है। सलेहनं (चूसकर) लेढ़ि=आस्वादते आस्वादनार्थक लिट-धातोः वर्तमान-आस्वादन क्रिया अर्थे लट् 'ति' होढ़ः। झषस्तथोर्धोऽधः ष्टुत्वेन ढ़ः, ढ़ोढ़ेलोपः, गुणे लेढ़ि। एवं लीढ़ः ढ़त्व धत्व ष्टुत्व ढ़ोढ़े लोपः। अत्र गुणः प्राप्नोति। तं बाधित्वा ढ़लोपे पूर्वस्य दीर्घो अणः, इति इकारस्य दीर्घे ते जम्बुफलानि लिहन्ति। त्वम् आम्रफलानि लेक्षि। अत्र सिप् परे ढ़ क, षढ़ोकःसिः अत्र इणः परं सकारं दृष्ट्वा षकारो भवति। कष = क्ष, लिक्षे=थासःसे ढ़ क ष क्ष एत्व,। लिलेह, लिलिहे। आस्वादन क्रिया पहले ही समाप्त हो अदृष्ट हो। लेढु आस्वादनार्थक लिट्धातोः स्वादविषयक प्रेरणार्थक लोट् सिप् शपोलुक् सिप् स्थाने अपित्हि आदेशे। हि स्थाने धि धत्व ष्टुत्व ढ़लोप दीर्घे रुपम्। लेहानि अत्र आट् पित् अस्ति। तेन गुणो भवति। लिढां लिहातां लिहतां लिक्ष्व लिहाथां लिढ्वम् लेहै लेहावहै लेहामहै। अलेट्—ड्। अलीढ़ाम् अलिहन्। अलेट् अलीढ़म् अलीढ़। अलेहम् अलिह्व अलिह्म। लिह्यात्। लिहीत। लिहीयाताम् लिहीरन्। आशीर्लिङ्। अलिक्षत् अलिक्षताम् अलिक्षन्। अत्र शलइगुपधादनिट्क्स यदा दन्त्य तङ् प्रत्ययपरे मिलति तदा लुग्वा दुहदिह आदि सूत्रेण क्स। अकारस्य लुक् विकल्पे। अलीढ़ अलिक्षाताम् अलिक्षन्त। अलीढ़ाः अलिक्षाथाः इत्यादि। चटनी अर्थमें अलेक्ष्यत् अवलेह समलेह सम्यक् आस्वादिनी आदिशब्द लिह्धातुकी देन है। यदा औषधम

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अलेक्ष्यत। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। २४। ३ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४। ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुव-श्चाहादेशः। आह। आहतुः। आहुः। ४ आहस्थः ८।२।३५। झलि परे। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः।

५९५ ब्रुव ईट् ७।३।९३। ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते। ६ ब्रुवो वचिः २।४।५३।

तदा रक्त शुद्धिः अभविष्यत्। (२३) ब्रूधातु व्यक्त वाणी–स्पष्ट बोलनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। ञकार इत् होनेसे आत्मनेपद, स्पष्ट वाणी के लिए प्रसिद्धः। मनुष्यमात्र में उपयोगी है। उच्चारणजनकव्यापारका समान आधार होनेसे अकर्मक है।

(३) ब्रूवः = ब्रूधातुसे परे लट् स्थान तिप् तस् झि सिप् थस् इन पाँचों के स्थानमें णालादयः। णल् अतुप उस् थल् अथुम् ये पाँच आदेश क्रम से विकल्पसे हों। साथ में ब्रुको आह आदेश भी हो। आह–स्पष्ट अर्थवाचक ब्रुधातोः स्पष्ट — उच्चारणे अर्थे वर्तमाने लट् तस्य स्थाने तिप् ततः ब्रुवः पञ्चानामादित आहोब्रुवः इति तिप् स्थाने णल ब्रुस्थाने आह। अनुबन्धलोपे आह। तौ आहतुः (दोनों स्पष्ट बोले) ते आहुः (वे साफ बोले)। (४) आहके स्थानमें थ आदेश हो झल् संज्ञक अक्षर परे। अन्त्य अल् ह के स्थान में थ आ। चर्त्वे। त्वम् आत्थ, युवाम् (५९५) ब्रूवः = ब्रूधातुसे परे हलादि पित् प्रत्ययको ईट् आगम हो। यदा लट् स्थानक तिप् स्थाने णलादयो न भवन्ति, तदा ब्रूति शपोलुक् बुब्रूः ईट् इति सूत्रेण हलादिपित् प्रत्यय तिप् शिप् मिप् तस्य ईट् आगम। सार्वधातुक परे गुणः अय आदेशः श्लोकं ब्रवीति। महात्मानौ ब्रूतः। नेतारः सभायां ब्रुवन्ति, ब्रवीषि ब्रूथः ब्रवीमि ब्रूव ब्रूम। ब्रुवन्ति इत्यत्र झोन्तः इति झ स्थाने अन्तादेशे कृते। गुण निषेधे सति, अत्र श्नुधातु इति उवङादेशे। ब्रुवन्ति सभी अजादि प्रत्ययों में उवङ् भवति, ब्रूते ब्रूषे ब्रुवाथे ब्रूध्वे। ब्रुवे ब्रूवहे ब्रूमहे। यत्र उवङ् तत्र ह्रस्व उकारेः (६) ब्रूवः = ब्रूके स्थानमें वच् आदेश हो आर्धधातुक-प्रत्यय परे। उवाच–स्पष्टभाषणार्थक ब्रुधातोः अप्रत्यक्षसमाप्तभाषण क्रियाकाले अर्थे लिट् तिप् णल् आदेशे 'लिट्च' इति आर्धधातुकसंज्ञा तस्मिन् परे 'ब्रुवो वचिः' इति ब्रूस्थाने वच् आदेशे। तस्य द्वित्वे, अभ्यासस्य हलादिशेषे ववच् अ अभ्यास वकारस्य लिटि अभ्यासस्योभयेषां सूत्रेण सम्प्रसारण उकारे। उपधा दीर्घे रुपम्। ऊचतुः–प्रथमही बोले, ब्रू अतुस् बच् आदेशे असंयोगात् लिट् कित् भवति, तेन अतुस् कित् अस्ति। ततो द्वित्वं प्राप्नोति, सम्प्रसारणंच प्राप्नोति। अत्र एष निर्णयो

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आर्धधातुके । उवाच । ऊचतुः । ऊचुः । उवचिथ, उवक्थ । ऊचे । वक्तासि, वक्तासे । वक्ष्यति, वक्ष्यते । ब्रवीतु, ब्रूतात् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रवाणि । ब्रूताम् । ब्रूवै । अब्रवीत्, अब्रूत । ब्रूयात्, ब्रुवीत । उच्यात्, वक्षीष्ट । ७ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३ । १ । ५२ । एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् । ८ वच

यत्सम्प्रसारणं तदाश्रयं कार्यं बलवत् । इति परिभाषाबलेन वचिस्वपि यजादीनां किति सूत्रेण द्वित्वस्य अपेक्षया प्रथमं वस्थाने उसम्प्रसारणें तदाश्रयकार्यं सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम् । तदनन्तरं द्वित्वादिकार्यं भवति । ऊचतुः । सवर्ण दीर्घे । ऊचुः । उवचिथ ब्रू धातुः तास प्रत्यय परे अनिट् अकारवांश्च । तेन थलि इट् विकल्पः उवचिथ, यदा न इट तदा चोः कुः इति कुत्वे उवक्थ उचे—ब्रू 'लिट्' त, एश्, असंयोगात् लिट् कित्, अतः प्रथमं सम्प्रसारणं पश्चात् द्वित्वादि कार्यम् । ऊचाते ऊचिरे । ऊचिवे ऊचाथे ऊचिध्वे, ऊचे, ऊचिवहे ऊचिमहे । वक्ता (कल स्पष्ट बोलेगा) वह सदा निष्पक्ष बोलेगा । वक्ष्यति—स्यु परे वच् चकारस्य कुत्वेन क सकारस्य षत्वे कष = क्ष, वक्ष्यति, वक्ष्यतः वक्ष्यन्ति ब्रवीतु ब्रूतात् ब्रूतां ब्रुवन्तु, ब्रूहि ब्रूतात् ब्रूतं । ब्रवानि ब्रवाव ब्रवाम । एवं ब्रूतां ब्रूतां ब्रुवातां ब्रुवताम् । ब्रूष्व बुवाथां ब्रूध्वं ब्रवै ब्रवावहै ब्रवामहै । अब्रवीत् अद्य भिन्नभूतकाले समाप्तस्वष्टोच्चारणक्रिया अर्थे लङ् तिप् इकारलोप अट् ब्रुवः ईट् गुणे अवादेशे । अब्रूतात् अब्रुवन् अब्रवीः अब्रुतम् अबूत अब्रुवम् अब्रूव अब्रूम । अब्रूत अब्रुवाताम् अब्रुवन्त अब्रूथाः ब्रूयात् स्पष्टोच्चारण विषयक विधि, आज्ञा प्रेरणा प्राथंना सम्भावनायां लिङ् । ब्रूयातां ब्रूयुः ब्रूयाः ब्रूयातं ब्रूयात ब्रूयाम् । ब्रुवीत । अत्र सीयुट् विशेषः । ब्रुवीयाताम् ब्रुवीरन् ब्रूवीथाः ।

आशीर्लिङ स्पष्ट उच्चारण विषयक आशीर्वाद अर्थमें वच् यास्त किदाशिषि इत्यनेन यासुट् कित् भवति । तस्य फलं वचि स्वपियजादीनामीति सम्प्रसारणम् । उच्चात् उच्चास्ताम् उच्चासुः । उच्चाः उच्चास्म । यदा आत्मनेपदं तदा न कित् न सम्प्रसारणाम् । अतो वच् सी स् त कुत्वे पत्वे ष्टुत्वे वक्षीष्ट ।

(७) अस्यतिप्रक्षेपणार्थक अस्, वोधनार्थक वच् प्रकथनार्थक ख्या, धातुसे परे । च्लिको अङ् आदेश हो । (८) वच्को 'उम्' आगम हो अङ् परे । अवोचत्—प्रवचनार्थक ब्रूधातोः समाप्तप्रवचन क्रियाकालवाचके लुङ् तस्यस्थाने तिप् । इकारलोपे अट् च्लेः-अङ् । अस्यतिवक्ति सूत्रेण । तस्य आर्धधातुकसंज्ञा ब्रूस्थाने वच् आदेशे अङ्परे वच, उम्, आदेशे मित्वात् अन्त्य अच् । वकारस्य अकारः । तस्मात् परः उः अवउच् अत् इत् दशायां गुणे । अवोचत् अवोचताम् अवोचन् अवोचः अवोचतम् अवोचत । अवोचम् अवोचाव अवोचाम । अवोचत अवोचेताम् अवोचन्त । यदा सभायां साधु अवक्ष्यत् (ग ? गू ?) चर्करीतम् यह यङ् लुङन्तका नाम है । यङ्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

उम् ७।४।२०। अङि परे। अवोचत्, अवोचत। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत। (ग० सू०) चर्करीतं च। चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य संज्ञा, तदादौ बोध्यम्। ऊर्णुञ् आच्छादने। २५। ९ ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०। वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके। ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते। (ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्)।

६०० न न्द्राः संयोगादयः ६।१।३। अचः पराः संयोगादयो नदरा

लुङन्त से बना है उसी का परिचय भी दे रहे हैं। च = उसको अदादिगणमें समझे। जिसका फल शप्का लुक् यङ्लुङन्त धातुसे भी हो। २४ ञ इत् ऊर्णु—धातुका आच्छादन = आवरण, ढकना, परदा, उनी कपड़ा धारणके अनुकूल क्रिया अर्थः। स्वरितञित् धातु उभयपदी। अनेक अच् सेट् तथा सकर्मकः, यथा—सशरीरम् ऊर्णौति। आच्छादन फलका आश्रय (कर्म) शरीर है। तदनुकूल क्रिया कर्तामें है, ऊर्णा (ऊन) इसी धातुसे बना है जिसका प्रयोजन आच्छादन है। आच्छादन जनकक्रियावाचकऊर्णुधातोः आवरण क्रियाकाले वर्तमाने लट् तिप् शप्लुक् ततः।

(९) ऊर्णोतेः = ऊर्णु धातुकको विकल्पसे वृद्धि हो हलादि पित् (तिप् सिप् मिप्) सार्वधातुकपरे अलोन्त्यपरिभाषया अन्त्य-अल्-उकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति, यदा न वृद्धिः तदा सार्वधातुकगुणः। ऊर्णोति। तण्डुलम्। पिद्भिन्न ङिद्भवति, तस्य फलं गुणाभावः। ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति, शीतकालमें सभी शरीर ढकते हैं। अजादि विभक्ति परे उवङ् भवति। ऊर्णौसि ऊर्णोसि ऊर्णथः ऊर्णुथ। ऊर्णौमि ऊर्णोमि ऊर्णुव, ऊर्णुम। आच्छादन फल कर्तृगामी हो तब ऊर्णुते ऊर्णुवाते, अजादि विभक्ति परे उवङ्। ऊर्णुवते ऊर्णुसे, ऊर्णुवाथे, ऊर्णुध्वे। ऊर्णुवे ऊर्णुवहे ऊर्णुमहे (वा) ऊर्णुधातुसे आम् नहीं कहना चाहिए। इजादि मानकर या गुरुमान समझकर आम् प्राप्त था।

(६००) अचः = अच्से परे संयोगादयः = संयोग संज्ञकवर्ण आदिमें हों ऐसे नन्द्रा न् द् र् को द्वित्व न हो। नु शब्दको द्वित्व हो यतः (क्योंकि) द्वित्वदृष्टया णत्वं असिद्धं भवति, फलतः ततोऽभ्यासात् परो न ण भवति नकारानुस्वारपञ्चमो- झलि धातुषु। सकारः शकारश्चेति षाट्टवर्गस्तवर्गजः। धातुका अवयव झलिपरे अनुस्वार कहीं पञ्चमवर्ण ङकारादि देखे जाते हैं, वे नकार स्थानिक हैं। अनुस्वारः यथा—स्रंसु ध्वंसु भ्रंमु इति पञ्चम वर्णः। यथा अङ्क अञ्च लुण्ठ मन्थ तृम्फ चकार- परे सकारः शकारो भवति, यथा—ओ व्रश्च, रेफ षकारसेपरे टवर्ग तवर्गज है। रेफसे परे तवर्ग ऊर्णु है। षकारसे परे टवर्ग ष्टुनाष्टुः है। ऊर्णुनाव=कुहरेसे सूर्य ढके थे। आच्छादन जनक क्रियावाचक ऊर्णुधातोः अप्रत्यक्षसमाप्तक्रियाकाले लिट् इजादि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

द्विर्न भवन्ति। नुशब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः ऊर्णुनुवुः। १ विभाषोर्णोः १।२।३। इडादिप्रत्ययो वा ङित्स्यात्। ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति। ऊर्णौतु, ऊर्णोतु। ऊर्णवानि। ऊर्णवै। २ गुणोऽपृक्ते ७।३।९१। ऊर्णोतेर्गुणोऽ-

---

गुरुमान् धातुः। इति ज्ञात्वा आम् प्राप्नोति, 'ऊर्णोतेराम्नेतिवाच्यम्'। इति निषेधे अयम् अजादि धातुः। अतः द्वितीय—एकाचः द्वित्वं भवतु, एतेन रेफसहितस्य र्णू इत्यस्य द्वित्वं प्राप्नोति, अत्र अच्—ऊकारः, तस्मात् परः संयोगः, रेफः तस्य द्वित्वं प्राप्तम् नन्द्राः इति निषेधः, ततः नु शब्दस्य द्वित्वं रेफात्परस्य अभ्यासनकारस्य पुनः णत्वं लिट्स्थाने तिप् णल् अनुबन्धलोपे, अभ्यासोत्तरखण्ड-नुघटक-उकारस्य अचोञ्णिति वृद्धिः आवादेशे रुपम्। ऊर्णुनुवतुः अत्र अपित् लिट् कित् भवति। तस्य फलं गुण निषेधः। अजादि परे उवङ् आदेशः।

(१) ऊर्णोः = उर्णु धातुसे परे, इट् आदिमें हो ऐसा प्रत्यय ङित् विकल्पसे हो, सेट् धातुसे परे ङित्पक्षे गुणनिषेधो भवति। तदा उवङ् यदा न ङित् तथा गुणो भवति। यथा – ऊर्णुनु + इथ। अत्र विभाषाउर्णोः इतिसूत्रेण इडादिथल् ङित् भवति तदा गुण निषेधः। उवङ् आदेशश्च। यदा न ङित् तदा गुण अवादेशश्च। ऊर्णनविथ = तुमने चावलको कब ढका था। ऊर्णुनुवथुः ऊर्णुनव ऊर्णुनाव ऊर्णुनविव ऊर्णुनविव। ऊर्णुनुवे ऊर्णुनुवाते ऊर्णुनुविरे। थासःसे ऊर्णुनुविषे ऊर्णुनविषे ऊर्णुनुविढ्वे—ध्वे। यदा आवरणजनकक्रिया श्वः परश्वः कालिकी तदा ऊर्णुविता उर्णविता। विभाषोर्णोः इतिङित् विकल्पः। ऊर्णविता ऊर्णवितारौ ऊर्णतारः। आत्मनेपदे ऊर्णुवितासे ऊर्णुवितासाथे इत्यादि सामान्यभविष्यकालिक—आच्छादनक्रिया यत्र तत्र ऊर्णुविष्यति ऊर्णुविष्यतः ऊर्णुविष्यन्ति। यदा न ङित् न गुण निषेधः। तदा ऊर्णविष्यति ऊर्णविष्यतः ऊर्णविष्यन्ति ऊर्णुविष्यते ऊर्णविष्यते ऊर्णुविष्यसे ऊर्णविष्यसे ऊर्णुविष्ये ऊर्णविष्ये गरम वस्त्रके आच्छादन, आवरण, परिधान विषयक आज्ञा, प्रेरणा आशीर्वाद, अर्थ हो तब लोट्। ऊर्णोतेर्विभाषा इति वृद्धिः। ऊर्णौतु यदा न वृद्धिः तदा गुणः ऊर्णोतु ऊर्णुतात् ऊर्णुताम् ऊर्णुवन्तु। शीतकाले ऊनका वस्त्र धारण करें। ऊर्णुहि ऊर्णुतात् ऊर्णुतम् ऊर्णुत ऊर्णवानि ऊर्णवाव ऊर्णवाम ऊर्णुताम् ऊर्णुवाताम् ऊर्णुवताम् ऊर्णुष्व ऊर्णवै।

(२) अपृक्ते = अपृक्तसंज्ञक हलादि पित्सार्वधातुक परे ऊर्णु धातुको गुण हो। वृद्धिको बाधकर। यह वृद्धि ऊर्णोतेर्विभाषा की है। और्णौत् = अनद्यतनसमास आच्छादन क्रियाकाले लङ् तिप् इकारलोप, आट् वृद्धिः, ऊर्णोतेर्विभाष इति उकारस्य वृद्धिः प्राप्नोति, तं बाधित्वा गुणोऽपृक्तेः इति गुणे, शपो लुकि रूपम्। और्णुताम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्धयपवादः । और्णोत् । और्णोः । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाः । ऊर्णुवीत । ऊर्णूयात् । ऊर्णुविषोष्ट, ऊर्णविषीष्ट । ३ ऊर्णोतेर्विभाषा ७ । २ । ६ । इडादौ सिचि वा वृद्धिः परस्मैपदे परेः । पक्षे गुणः । और्णावीत्, और्णुवीत्, और्णवीत् । और्णाविष्टाम्, और्णुविष्टाम्, और्णविष्टाम् । और्णविष्ट, और्णुविष्ट । और्णुविष्यत्, और्णविष्यत् । और्णुविष्यत, और्णविष्यत ।

इत्यदादयः ॥ २ ॥

और्णुवन् । और्णोः और्णुतम् और्णुत । और्णवम् और्णुव और्णुम । और्णुत —और्णुवाताम् और्णुवत । आच्छादन क्रिया के सम्भावना अर्थमें लिङ् ऊर्णुयात अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घः । ऊर्णुवीत ऊर्णुविषीष्ट, अत्रविभाषोर्णोः ऊर्णविषीष्ट ।

(३) ऊर्णोतेः = इडादि परस्मैपद सिचपरे ऊर्णुधातुको वृद्धि विकल्प हो । पक्षमें गुण हो और्णावीत् । ऊर्णुलुङ तिप् च्लि सिच् ईट् आट् आटश्चेति वृद्धिः ऊर्णोतेर्विभाषा इडादि परस्मैपद सिच्परे उकारस्य वृद्धिः आव्आदेशे । यदा न वृद्धिः तदा विभाषोर्णोः इति ङित् । तस्य फलं गुणनिषेधः तत् उवङ् आदेशः और्णुवीत् । यदा न ङित् तदा गुण अवादेशश्च, और्णवीत् । आत्मनेपदमें और्णविष्ट अत्र ङित् विकल्पः उवङ् आदेशः यदा न ङित् तदा गुण अवादेशश्च । इति अदादिगणः ।

अथ जुहोत्यादिप्रकरणम्

हु धातु हो आदिमें जिस (समुदाय) विशेषके उसे जुहोइत्यादिगण कहते हैं । इसकी विशेषता शप्विकरणको श्लु आदेश होना । जिसके परे रहते इस गणके धातुको द्वित्व हो अतः जुहोत्यादिगण पढ़ा यद्यपि ह्वादि पढ़ सकते थे, जैसे सिन्धु हिन्दुमें ह को स का भ्रम न हो । (१) हु धातु का दान तथा अदन (भोजन)-के अनुकूल क्रिया अर्थः । जुहोति शब्दका व्यावहारिक अनुभव हवन करने अर्थमें हैं, मन्त्र विधिसे आहुति डालना (हवन करना) यहाँ दान (देवता निमित्तका)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ जुहोत्यादयः

हु दानादनयोः ॥ १ ॥ ४ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २ । ४ । ७५ । शपः श्लुः स्यात् । ६०५ श्लौ ६ । १ । १० । धातोर्द्वे स्तः । जुहोति । जुहुतः । ६ अदभ्यस्तात् ७ । १ । ४ । झस्यात्स्यात् । हुश्नुवोरिति यण् । जुह्वति । ७ भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३ । १ । ३९ । एभ्यो लिटि आम् वा स्यादाभि

स्वाहा है । अदन भोजन करने अर्थमें है । (४) जुहोत्यादि गण पठित धातुओंसे शप्को श्लु हो । यह 'श्लु' लोप रूप है । यद्यपि लोपः भी कह सकते थे, किन्तु आगे द्वित्व विधान 'श्लु' शब्दोच्चारणसे हुआ है इसलिए श्लु पढ़ा ।

(६०५)श्लु=शप् लुक्के विषयमें धातुको द्वित्व हो, जुहोति= हवनं करोति । देवता विषयक भोजन क्रियावाचक हुधातोः लट् तिप् शप् 'जुहोत्यादिभ्यः' शप् स्थाने श्लुः (अदर्शन) श्लौ इति सूत्रेण द्वित्वे पूर्वस्व अभ्याससंज्ञा, तस्य फलं कुहोश्चुः चवर्गझ, आन्तरतम्यात् । अभ्यासे चर्च इति झलां जश् जकारः । द्वितीय हुशब्दस्य सार्वधातुकगुणे रूपम् जुहोति वर्तमानकालिकहवन दान भोजन क्रियावाचक हु धातोः द्विवचने तस् अयम् अपित् सार्वधातुकः स, ङिद्वत्, तस्य फलं गुणस्यनि० । रुत्व वि० जुहुतः । अनेक कर्तृषु स्वाहा, भोजनानुकूलाक्रिया वर्तमाने सति । हु धातोः लट् झि, शप् श्लु द्वित्वादिकार्ये । झोन्तः इति प्राप्ते अन्तादेशं बाधित्वा । उभे अभ्यस्तम् इति सूत्रेण जुहोत्यादिगणे पठिताः धातवः अभ्यस्तसंज्ञकाः भवन्ति । षष्ठाध्याय प्रकरणे विहितानां षाष्ठं द्वित्वम् (६) अभ्यस्तात्=अभ्यस्त संज्ञकधातुसे परे झको अत् आदेश हो । इति झ स्थाने अत् आदेशे जुहु + अति, अत्र उवङ् प्राप्ते तं बाधित्वा 'हुश्नुवोः' सार्वधातुके इति यण् जुह्वति । जुहोषि जुहथः जुहुथ । जुहोमि जुहुवः जुहुमः ।

(७) भयार्थक भी, लज्जार्थक ह्री, पालनार्थक भृ, धातुओंसे आम् प्रत्यय हो, लिट् परे, विकल्पसे । श्लुवच्च = आम्परे श्लुकीतरह (द्वित्व) कार्य भी हो । जुहवाञ्चकार-हवनदान, अदन भक्षणक्रिया वाचक हुधातोः समाप्त-अप्रत्यक्ष क्रियाकाले अर्थे लिट् भीह्रीभृ आदिसूत्रेण आम्' तस्य श्लुवद्भावे यस्य फलं द्वित्वम् अभ्यासादिकार्यम् । आमः इतिलिट् लुक् । जुहवाम् इतिदशायाम् कृञ्चानु प्रयुज्यते इति कृलिट् । भू लिट् । अस् लिट् इति अनुप्रयोगे । जुहवामकृलिट् । तिप्णल् कृ इत्यस्य द्वित्वे कृ कृ (उरत्) कर् कृ-हलादिशेषे, वृद्धि बाधित्वा गुणे उपधावृद्धिः मान्तस्य पदसंज्ञा अनुस्वारपरसवर्णे । राजानौ जुह्वाञ्चक्रतुः । मुनयः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार, जुहाव। होता। होष्यति। जुहोतु, जुहुतात्। जुहुताम्। जुह्वतु। जुहुधि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्।
८ जुसि च ७।३।८३। इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि। अजुहवुः।

जुह्वाञ्चक्रुः। जुह्वाञ्चकर्थ। यूयं जुह्वाञ्चक्र। अहं कदा जुह्वाञ्चकर इति न जाने, आवां जुहवाञ्चकृव। एवं जुह्वाम्बभूव जुहमास इत्यादि। यदा आम् न भवति। तदा हुशब्दस्य द्वित्वादि कार्ये जुहाव जुहुवतुः जुहुवुः। जुहविथ जुहोथ जुहुवथुः, जुहुव। जुहाव जुहव जुहुविम जुहुमिव। अद्यभिन्नभविष्यकाले अर्थे लुट् श्वः होता—तिप् तास् डा गुण। होतारौ होतारः। होतासि। स सदा होष्यति। हवनं करिष्यति, अयम् अनिट् धातुः। इट न भवति। किन्तु आर्धधातुक गुणएव। यदा हवन, दान, भोजन, स्वाहा, विषये आज्ञा, प्रेरणा, प्रार्थना, आशीर्वाद सम्भवति। तत्र जुहोतु शप् श्लु द्वित्वादिकार्यं पूर्ववत्। एरुः लट् साम्बन्धि इकारस्य उः इति विशेषः। जुहोतु 'तु' स्थाने तातङ् जुहुताव् तस्य स्थाने तां जहुताम्, आप हवन करें। ग्रहबाधा हटेगी। अनेक कर्तामें हवन क्रिया—वर्तमान हो तब जहुझि अदभ्यस्तात् इति झ स्थाने 'अत्' एरुः इस्थाने उः। हुश्नुवोः इति यण् जुह्वतु। जुहुधि (तुम हवन दान करो) जुहुसि तस्य स्थाने हि तस्य हुझल्भ्यो हेर्धिः इति 'धि' आदेशे। जुहुतं जुहुत। जुहवानि। अहम् आवा वयं कर्तामें हवनक्रियाकी प्रेरणा सम्भावना हो तब उत्तम पु० मिप, मेर्निः आडुत्तमस्य पिच्च इति आट्, पित् अस्ति। तस्य फलं हुश्नुवोः यणं बाजित्वा गुणः, अवादेशश्च। एवं जुहवाव, जुहवाम। अजुहोत्—यदा गतदिने हवनादि जननीक्रिया समाप्ता, तदा भूतकाले लङ्। अजुहुति इकारलोपे गुणे। तौ ह्यः अजुहुताम्। ते गतसम्वत्सरे अजुहवुः। अजुहुझि इति दशायाम्। सिज्भ्यस्तविदिभ्यश्च इति सूत्रेण अभ्यस्त संज्ञकात् परस्य झिस्थाने जुस्। अपित ङित् अस्ति। तस्य फलं गुणनिषेधः। तेन उवङ् प्राप्नोति। तं बाधित्वा, हुश्नुवोः यणप्राप्तः। तं तिरस्कृत्य।

(८) च = इक् = इ उ ऋ ऌ हो अन्तमें ऐसे अङ्गको गुण हो, अजादि जुस् = उस् परे अवादेशे रु० वि० रुपम्। अजुहोः अजुहुतम् अजुह्वत। अजुहवम् अजुहुव, जुहुयात्—हु धातोः विधिनिमन्त्रण, आमन्त्रण, साम्प्रश्न प्रार्थना अर्थे लिङ् तिप्थास् शपश्लु द्वित्वादिः, जुहुयाताम् जुहुयुः। आशीर्लिङ् (तुम हवन करो) तुम्हें सुख मिलेगा। हूयात्-अकृतसार्वधातुकयोः दीर्घः हूयास्ताम् हूयासुः। अत्र यासुट् कृते सति अजादिजुस् नास्ति। तेन जुसि च इति गुणो न। हवनक्रिया समाप्ता इति भूतकालः तस्मिन् अर्थे लुङ् अ हु स् इत् अत्र सिचि वृद्धिः अनिट् धातुः इट् न भवति। षत्वं अहौषीत् अहौष्टाम् अहौषुः। अहौषीः। यदा अहोष्यत्=हवनम् अकरिष्यत् तदा पुण्यं अलप्स्यत्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। ञिभी भये। २। बिभेति। ९ भियोऽन्यतरस्याम् ६। ४। ११५। इकारो वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभितः, बिभीतः। बिभ्यति-बिभयाञ्चकार, बिभाय। भेता। भेष्यति। बिभेतु, बिभितात्, बिभीतात्। अबिभेत्। बिभीयात्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत्। ह्री लज्जायाम्। ३। जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रियति।

---

(२) ञिभी आदिर्ञिटुड्वः इति ञि इत् भी धातुका भयभीत भवनानुकूल व्यापार अर्थ है अनिट सकर्मकः। फलव्यापार समानाधिकरणात्। भयकी क्रिया कर्तामें वर्तमान रहे, तब बिभेति—भयार्थक भीधातोः वर्तमानभयजनक क्रिया अर्थे लट् तिप् शप्, श्लु, द्वित्वादिकार्ये। द्वितीयस्य इकारस्य गुणे रूपम्। चोरसे डरता है। बालक अंधेरेमें भूतसे डरते हैं। (९) भियः – भीधातुको ह्रस्व इकार हो अन्यतरस्याम्=विकल्पसे। हलादि कित्ङित् सार्वधातुकपरे। बालकौ बिभीतः। दो कर्ताकी विवक्षामें द्विवचने तस्, अपित् सार्वधातुक ङित् होनेसे भियोन्यतरस्यामिति इकारस्य ह्रस्वविकल्पः बिभितः। अन्येषु—हलादिङित् सार्वधातुकपरे इस्थाने ह्रस्वविकल्पे। चौराः बिभ्यति झस्थाने अत् अदभ्यस्तात् यण्। बिभेषि बिभिथ. बिभीथः। बिभिथ, बिभीथ बिभेमि बिभिवः बिभीव बिभयाञ्चकार। अनद्यतन परोक्षकालिक्भयजननीक्रिया समाप्तेकाले लिट् भी भृहुवां श्लुवच्च, इति, आमि, श्लौ, द्वित्वादिकार्ये कृलिट् अनुप्रयोगे। यदा न आम् तदा न अनुप्रयोगः। ततः लिट् स्थाने तिप्णल् द्वित्वादिः वृद्धिः आय आदि कार्ये। बिभाय बिभ्यतुः बिभ्युः। बिभयिथ बिभेथ बिभ्यथुः बिभ्य। बिभाय बिभय बिभ्यिव बिभ्यिम। भारद्वाजनियमेन इट् विकल्पः। थलि परे अन्यत्र क्रादि नियमात् नित्यम् इट्। भेता = कल डरेगा। भेष्यति-चोरसे सदा डरेगा, बिभेतु, भगवान् आपको सदा भय दें। वह गुरुसे डरे, तो सुधार हो आशीर्वाद अर्थमें तु को तातङ् होनेपर हलादिङित् मानकर भियोऽन्यतरस्याम्से ह्रस्व विकल्प है। श्वानौ बिभीताम्। युवानः बिभ्यतु। बिभिहि बिभीहि बिभितात् बिभीतात्। तुम नरकसे सदा डरो। बिभितं बिभीतम्। अहं गुरोः बिभयानि, आवां बिभयावः। वयं बिभयामः। अट् पिद्भवति तस्य फलं गुणः अयादेशश्च। यत्र हलादिः तत्रैव ह्रस्वविकल्पः अद्यभिन्न समाप्त भयक्रियाकाले लङ्, अट्, शप्, श्लु, द्वित्वादिकार्यं पूर्ववत्। अबिभेत् अबिभिताम् अबिभीताम् अबिभयुः अबिभेः। अबिभीयम् बिभियात् बिभीयात् भय क्रियाकी सम्भावना अर्थमें लिङ् यासुट् इकारस्य ह्रस्व विकल्पे। भीयात् भीयास्तां भीयासुः। अभैषीत्। सिचि इगन्ताङ्गस्य वृद्धिरिति विशेषः अभैष्टाम् अभैषुः, अभैषीः अभैष्टम् अभैष्ट। अभैषम् अभैष्व अभैष्म। यहाँ भूतकाल भयकी समाप्त क्रिया है। स अध्यापकात् अभेष्यत् तदा अध्ययनम् करिष्यत्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। ह्रेता। ह्रेष्यति। जिह्रेतु। अजिह्रेत्। जिह्रीयात्। ह्रीयात्। अह्रैषीत्। अह्रेष्यत्। पॄ पालनपूरणयोः। ४।

६१० अर्तिपिपर्त्योश्च ७।४।७७। अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ। पिपर्ति। १ उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२। अङ्गावयवौष्ठ्य-पूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात्। २ हलि च ८।२।७७।

---

(३) ह्रीं धातुका लज्जाजनकक्रिया (जाना) अर्थः प्रायः अकर्मक तथा अनिट्। इसका रूप भीधातुके सदृश समझें। कर्तामें लजाना क्रियावर्तमान रहे तब श्वसुरात् जिह्रति। दम्पती जिह्रीतः। शिष्याः जिह्रियति। अत्र झ स्थाने अत् कृते इयङ्। जिह्रियाञ्चकार लिट् परे (भी ह्री) आदि सूत्रेण आम् इत्यादि कार्ये। स अधर्माचरणात् कदा जिह्राय इति न जाने। श्वः ह्रेता, ह्रेष्यति। एवं मद्यवा जिह्रतु। यथा नारदः अजिह्रेत् एवं स जिह्रीयात्। ह्रीयात्। अधर्मं कृत्वा यथा—सः अह्रैषीत् एवं भवानपि अह्रेष्यत्।

(४) पॄ धातुका पालन, लालन और पूरण, पूर्ति करनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। अयम् सेट् सकर्मकश्च। गोपः दुग्धपात्रे पयः पिपर्ति। यहाँ पूरणफल उसके अनुकूल क्रिया का आधार भिन्न-भिन्न है। माता वत्सं पिपर्ति। बछड़ेका पालन करती है। (६१०) अर्ति = अर्ति—ॠ, पिपर्ति=पॄ धातुके अभ्यासको इकार अन्तादेश हो श्लुके विषयमें। पिपर्ति = पालन, रक्षण, पूरण, आपूर्ति, जनकव्यापारवाचक पॄ धातोः क्रिया वर्तमाने लट् तस्य स्थाने तिप् ('शप-श्लुः) (अदर्शनम्) द्वित्वं पॄ पॄति इति दशायामभ्यास-ॠकारस्य 'अर्तिपिपर्त्योश्च' सूत्रेण इकारे रपरे। हलादिशेषे, द्वितीयॠकारस्य सार्वधातुक गुणे। दो कर्तामें पालनपूरणजनक क्रिया विद्यमान हों तब द्विवचने तस् श्लु आदि कार्ये इत्वे हलादि शेषे ततः। (१) ओष्ठ्यपूर्वस्य=अङ्गका अवयव ओष्ठस्थान वाला वर्ण पूर्वमें हो ऐसे ॠकार, तदन्त अङ्ग को उ अन्तादेश हो। द्वितीय ॠकारस्य पूर्ववर्णः पकारः ओष्ठसंज्ञकः, अङ्गस्य अवयवश्चास्ति। ॠकारस्य रपर सहित = उर् आदेशे। पिपुर् तस् ङित्। गुण निषेधे।

(२) रेफ या व अन्तमें हो ऐसे धातुके उपधाके इक् को दीर्घ हो, हल् वर्ण परे। रेफान्त धातु पिपुर् है उसके उपधाको दीर्घ हुआ। पिपूर्तः पयः बालकौ। गाव वत्सानि पिपुरति। पॄ+झि झ स्थाने 'अत्' द्वित्वे अभ्यास इत्व ओष्ठ्यपूर्वस्य उर् पिपुरति। ङित् भावेन गुणो न भवति। पिपर्षि पिपूर्थः पिपूर्थ। पिपर्मि पिपूर्वः पिपूर्मः। पालनपूरणफलजनक क्रियावाचक पॄधातोः परोक्षसमाप्त क्रियाकाले अर्थे लिट्, तिप्, णल् द्वित्वे अभ्यासस्य ॠकारस्य उरत् इति अत् हलादि शेषे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि। पिपूर्तः। पिपुरति। पपार। ३ शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२ एषां लिटि ह्रस्वो वा स्यात्। पप्रतुः। ४ ऋच्छत्यॄताम् ७।४।११। तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ॠतां च गुणो लिटि। पपरतुः। पपरुः।

६१५ वृतो वा ७।२।३८। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि। परीता, परिता। परीष्यति, परिष्यति। पिपर्तु। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्। ६ सिचि च परस्मै-

---

गुणे उपधायाः वृद्धिः। पपार। १पृ अतुस् ततः। (३) हिसार्थक शॄ, विदारणार्थक दॄ, पालनपूरणार्थक पॄ, धातुओंको कित् लिट् परे ह्रस्व विकल्प हो। ह्रस्वे कृते यण् पप्रतुः। यदा न ह्रस्वः तदा। (४) तुदादि गण पठित ऋच्छ धातु तथा ऋ धातु और ॠदन्त धातुको गुण हो लिट् परे। प्रसङ्गमें ॠदन्त धातु है, दीर्घ ॠ को गुण। पपरतुः। पपरुः पपरिथ उदृदन्तैः नियमसे इट्। पप्रथुः पपरथुः। पप्र, पपर। पपार पपर। पप्रिव पपरिव।

(६१५) निरनुबन्ध वृ से सामान्यका ग्रहण होता है। अतः वृञ् और दीर्घॠदन्त-धातुओंसे परे इट्को विकल्पसे दीर्घ हो, लिट् परे न हो तो। आगामि भविष्य-कालिकपालनपूरण क्रिया वाचक पॄ धातोः लुट् तिप् तास्, डा, गुण, इट्। पर् इता। दीर्घ-ॠकारान्तधातोः परे इटो दीर्घविकल्पेन परीता परिता। परीष्यति। स्य इट् दीर्घे। यदा न दीर्घः तदा परिष्यति। आजसे गायका पालन करेंगे। स गां पिपर्तु। दोहिनीं पिपूर्तात्, पिपूर्ता पिपुरतु। त्वं हस्तावलम्बनीं फलैः पिपूर्हि, पिपूर्तात्. पिपूर्तं पिपूर्त। ङित्, हलि परे गुणो न भवति। किन्तु उदोष्ठ्यपूर्वस्य उर् भवति हलिच सूत्रेण दीर्घः। पिपराणि—उत्तमपुरुषे आट् मेर्निः आट् पित् भवति। तस्य फलं गुणः। पिपराव, पिपराम। अद्यभिन्नसमाप्तपालनपूरणक्रिया अर्थे लङ् तिप् अट् शप् श्लु द्वित्वादिः अर्तिपिपर्त्योश्च अभ्यासस्य इत्वे, गुणे अपिपर्त् अपिपरु,। अपिपः सिप् इकार लोपे गुणे, शलोपे रेफविसर्गे। अपिपूर्तम्, अपिपूर्त। अपिपरम्, अपिपूर्व, अपिपूर्म। हमलोग गड्ढेको भर चुके हैं। पालनपूरणक्रिया-विषयक प्रेरणा, सम्भावना, अर्थे लिङ्। पिपूर्यात् यत्र अशीर्वादः, तत्र पूर्यात्। अत्र अत्र यासुट् ङित् भवति, तेन न गुणः किन्तु ॠकारस्य उत्वे हलिचेति दीर्घे, पूर्यास्तां पूर्यासुः। पूर्याः पूर्यास्तं पूर्यास्त। पूर्यासं पूर्यास्व पूर्यास्म। आप भण्डारको भरें। देवदत्तः कोषम् अपारीत्=पालनपूरणक्रियासमाप्तकाले अर्थे पॄ धातोः लुङ् तिप् अट् च्लेः सिच् इट् ईट् सिचि वृद्धिः। सलोपे दीर्घे: अपारिष्टाम्—तस् ताम् षत्वे ष्टुत्वे वृतोवा इति दीर्घे प्राप्ते। (६) परस्मैपदपरक सिच् परे वृङ् वृञ्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पदेषु ७।२।४०। अत्र इटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरीष्यत्, अपरिष्यत्। ओहाक् त्यागे।५। जहाति। ७ जहातेश्च ६।४।११६। इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। जहितः। ८ ई हल्यघोः ६।४।११३। श्नाऽभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलादौ न तु घोः। जहीतः। ९ श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२। अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके। जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु, जहितात्, जहीतात्।

६२० आ च हौ ६।४।११७। जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ।

ऋदन्तात् इटो न दीर्घं इति इटः दीर्घनिषेधे। अपारिषुः अपारीः अपारिष्टम्। अपारिष्ट। अपारिषम् अपारिष्व अपारिष्म।

यदा दोहिनीम् अपरीष्यत् गाम् च अपरिष्यत् तदा कल्याणं कुलञ्च सुसंस्कृत मभविष्यत (५) ओकार इत् हा—धातुका त्यागके अनकूल क्रिया अर्थं। ओकार इत् अनिट तथा सकर्मकः पापं जहाति। त्यागरूपफल पापमें है उसका जनकक्रिया कर्तामें। त्यागजनकक्रिया वाचक हा धातोः वर्तमान काले कर्तरि लट्। तिप् शप् श्लु द्वित्वादि कार्ये जहाति। दो कर्तामें त्यागानुकूल व्यापार विद्यमान हो द्विवचनं तस् जहा-तस् ततः (७) हा धातु को इकार अन्तादेश हो विकल्पसे हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे तस् प्रत्ययः। ङित् अस्ति एव। हलादिरपि। तेन आकारस्य इकारे जहितः यदा न इत्वम् तदा।

(८) श्नाप्रत्ययः अभ्यस्तसंज्ञकश्च धातु इनके आ कों ई हो, सर्वधातुककित् ङित् हलादिप्रत्यय परे नतुघोः-घु संज्ञक परे न हो तो। इति सूत्रेण हा आकारस्य ईत्वे जहीतः जहति। त्यागानुकूला क्रिया वाचक हा धातोः वर्तमाने लट् बहुवचने झि, द्वित्वादि कार्ये 'अदभ्यस्तात्' सूत्रेण झ स्थाने अत् आदेशे। जहा अति ततः। (९ श्ना प्रत्यय अभ्याससंज्ञकधातुके आ का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुकपरे, इति ङित्सार्वधातुकं झि प्रत्ययं दृष्टवा आकारलोपे। जहति। अत्र निष्कर्षः हलादिपरे ईत्वम्, अजादि परे आकारलोपः। जहासि, जहिथः, जहीथः। मिप०। जहामि जहिव जहीव। जहौ—पपौकी तरह। त्याग क्रिया की समाप्तिअप्रत्यक्ष हो, तब हा धातोः लिट् तिप् णल्। हा हा, ह हा, ज हा, 'आत् औ णलः' णल् स्थाने औ आतोलोप इट् च आकार लोपे। जहतुः जहुः। जहिथ जहाथ जहथुः जह जहौ जहिव जहिम। हाता (त्यागकर्ता) हास्यति (त्यागं करिष्यति) जहातु त्यागं करोतु। तु स्थाने तातङ् कृते जहातेश्च वा इट् पक्षे ईत् जहितात् जहीतात जहितां जहीतां जहतु ते दोषान्। सिप् प्रत्यये। (६२०) हा धातुके हि परे आ हो चात्—च कहनेसे, जहातेश्च, ईहल्यघोः से इत् ईत् भी हो।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

जहाहि, जहिहि, जहीहि । अजहात् । अजहुः । १ लोपो यि ६ । ४ । ११८ । जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके । जह्यात् । एर्लिङि । हेयात् । अहासीत् । अहास्यत् । माङ् माने शब्दे च । ६ । २ भृञामित् ७ । ४ । ७६ । भृञ् मङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ । मिमीते । मिमाते । मिमते । ममे । माता । मास्यते । मिमीताम् । अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट ।

रूपत्रयं = जहाहि जहिहि जहीहि ? त्वम् आत्मीयान्, तन्नयुक्तं । जहितम् जहीतम् जहित जहीत, जहानि जहाव जहाम । आट् पित् है, ङित् नहीं । अतः ङित्का फल नहीं होगा, अजहात्—भूतकाले त्यागानुकूल व्यापारसमाप्त हो तब लङ् अट् तिप् द्वित्वादि कार्ये । अजहिताम् अजहीताम्, अजहुः । उसि अपदान्तात् इति पूर्वरूपे अजहाः । अजहितम् अजहीतम् । मिप्० अजहाम् अजहिव अजहीम ।

(१) जहातेः = हाधातुके आ का लोप हो सि = यकारादिसार्वधातुकपरे जह्यात्-जहा या त् अत्र यकारादिसार्वधातुक 'याति' इति हा धातोः आकारस्य लोपे । जह्यातां जह्युः, जह्याः हे तात ? भवान् स्व दोषं हेयात् । 'आशीर्लिङ्' हायात्, अत्र 'एर्लिङ्' आकारस्य एकारे । हेयास्ताम् हेयासुः अहासीत्—त्यागकी क्रिया समाप्तरूपभूतकाल, अ हा स् इ स् ई त् । इटः ईट सलोपे दीर्घे रूपम् । अहासिष्टाम् अहासिषुः । अहासीः अहासिष्टम् अहासिष्ट । अहासिषम् अहासिष्व अहासिष्म । शिष्यों ने अविवेक छोड़ दिया । स अहास्यत ।

(६) माङ् ङ्कार इत् मा धातु का माँप = नापना शब्दे च ध्वनिकरनेके अनुकूलक्रिया अर्थ । यह अनिट्, आत्मनेपदी सकर्मकः ।

(२) पालनार्थक भृ, मापार्थक मा, गमनार्थक ओहाङ, इन तीन धातुओं के अभ्यासको इकार अन्तादेश हो, श्लुके विषयमें । मिमीते = तोलनं ध्वनि वा करोति । मापार्थक या ध्वन्यर्थक, क्रियावाचक मा धातोः प्रचलित क्रियाकाले लट् ङित्वात् आत्मनेपदे 'त' टेरेत्वे, शप् श्लु द्वित्वादि कार्ये 'ममाते' इति दशायां भृ ञामित् सूत्रेण अभ्यास-अकारस्य इकारे, उत्तरखण्डस्य आकारस्य ई हल्यघोः इति ईत्वे रूपम् बालको मिमाते—आतां परे श्ना अभ्यस्तयोरात इति आकार लोपे रूपम । अजाः मिमते—झि अत् कृते आकार लोपः अभ्यासस्य मिमीषे मिमाथे मिमीध्वे । मिमे मिमीवहे मिमीमहे । उपसर्ग वलात् अनुमिमीपे=अनुवाद करना, उन्मिमीते = आँख खोलना, उपमिमीते = उपमा देना, निर्मिमीते=निर्माण करना, अवमिमीते = अपमान करना । ममे, ममाते ममिरे । ममिषे ममाथे ममिध्वे । ममे ममिवहे ममिमहे । माता = माप कर्ता में में ध्वनि करना तोलन् क्रिया सामान्य-भविष्यमें विवक्षित हो तब । मास्यते । तुलां करिष्यति, मे मे ध्वनिं वा । मिमीतां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अमास्त । अमास्यत । ओहाङ् गतौ । ७ । जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता । हास्यते । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत । डुभृञ् धारणपोषणयोः । ८ । बिभर्ति । बिभृतः । बिभ्रति ।

=तोलनं करोतु, मिमातां मिमतां । मिमीष्व मिमाथां मिमीध्वम् । अहं तव बलं मिमै, मिमावहै मिमामहै ।

तोलन क्रिया अद्यभिन्नकालमें समाप्त हो तब लङ् स शतद्रोणं व्रीहिम् अमिमीत । तौ अमिमातां ते अमिमत । त्वम् अमिमीथाः । अमिमाथाम् अमिमीध्वम् । अमिमे अमिमीवहि अमिमीमहि । मिमीत = आप चना, मटर, तिल्ली तौलें, मीसीष्ट अमास्त् अमास्यत् । मिमीत, ध्वनि या तुला जनक क्रिया की सम्भावना प्रेरणा, प्रगट हो । मा धातोः लिङ् अभ्यासस्य भृञामित् द्वितीयस्य ईहल्यघोः ईत्, वह धान तौले या चना । मिमीयातां मिमीरन् । त्वं गोधूमं मिमीयाः, यूवां काष्ठस्य वस्तु मिमीयाथां, यूयं पटोलं मिमीध्वम्, अहं किं मिमीय । मिमीवहि मिमीमहि । स सर्वस्मिन्काले सुवर्णं मामीष्ट । पक्षिणः तडागम् अमास्त । यदि कृष्णम् अमास्यत् सत्या सत्यमवाप्स्यत् ।

(७) ओहाङ् = ओ ङ् इत् हाधातोः गमनमर्थः । अयं ङित् आत्मनेपदी, अनिट् सकर्मकश्च । स क्रीडास्थलं जहीते = जाता है । संयोग (फल) क्रीडास्थल है । तदनुकूल कर्ता भिन्न है । गमनार्थक हा धातोः वर्तमाने लट् शपः श्लु भृञामित् अभ्यासस्य इकारे आत्मनेपदे त ङित् परे इ—हल्यघोः । इकारे रामकृष्णौ मल्लस्थलं जिहाते, चाणूरादयः जिहते । अभ्यस्यात् परस्य झ स्थाने अत्, आकारलोपे । जिहीषे जिहाथे जिहिध्वे । अहं विद्यालयं जिहे, जिहीवहे, जिहीमहे । परोक्षकालिकसमाप्तगमनकक्रियाजनक व्यापारः हा हा ह हा जहा । त स्थाने ए आलोपे जहे । वह कब गया मालुम नहीं । जहाते जहिरे जहिषे जहाथे जहिध्वे । जहे जहिवहे जहिमहे । क्रादिनियमात् इट् । हाता = गमनकर्ता । हास्यते = गमनं करिष्यते । सकुसंगति जीहीताम् । शिष्यौ जिहाताम् । भक्ताः तीर्थे पापं जिहताम् । त्वं सर्वत्र जिहीस्व जिहाथां जिहीध्वम् । जिहै जिहावहै जिहामहै । अत्र आट् आगमः पित् अस्ति । तस्य फलं नहि आकार लोपः । किन्तु सवर्णदीर्घे एत ऐ अजिहीत्—अनद्यतनभूतकालिकगमनानुकूलव्यापारः तो परश्वः अजिहातां ते श्वः लक्ष्मणपुरं अजिहत, यथा—त्वं काशीम् अजिहीथाः । अजिहाथाम् अजिहीध्वम् अजिहि अजहीवहि अजहीमहि गमनविषयक विधि प्रेरणा अर्थे लिङ् जिहीत (वह जाय) जिहीयाताम् जिहीरन् । हसीष्ट हासीयास्ताम् अहास्त (वह बम्बई गया) व्यापारिणौ विदेशम् अहासाताम्, अहासत अहास्थाः अहासाथाम् अहाध्वम् । अहासि अहास्वहि अहास्महि अहास्यत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

बिभृते। बिभ्राते। बिभ्रते। बिभराञ्चकार, बभार बभर्थ, बभृव। बिभराञ्चक्रे, बभ्रे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। बिभर्तु। बिभराणि। बिभृताम्। अबिभः। अबिभृताम्। अबिभरुः। अबिभृत। बिभृयात्, बिभ्रीत। भ्रियात्, भृषीष्ट। अभार्षीत्। अभृत। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। डुदाञ् दाने। ९। ददाति। दत्तः। ददति। दत्ते। ददाते। ददते। ददौ, ददे। दातासि, दातासे। दास्यति, दास्यते। ददातु। ३ दाधा घ्वदाप् १। १। २०। दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना। घ्वसोरित्येत्वम्। देहि। दत्तम्। अददात्, अदत्त। दद्यात्, ददीत। देयात्, दासीष्ट। अदात्। अदाताम्। अदुः। ४ स्थाघ्वोरिच्च १। २। १७। अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे। अदित। अदास्यत्, अदास्यत। डुधाञ् धारणपोषणयोः। १०। दधाति।

---

(८) डुभृञ्=डु ञ् इत् भृ धातुका धारण पोषण पालन जनकक्रियाअर्थः। अनिट् उभयपदी, सकर्मकः सः पुत्रं बिभर्ति। धारणपोषणजनकक्रिया वर्तमाने लट् तिप् शपः श्लु विषये द्वित्वादिकार्ये भृञामित् इति अभ्यासस्य इकारे पितरौ विभृतः। भ्रातरः स्वान् विभ्रति। यत्र भरणपोषणक्रियाजन्यंफलं कर्तृगामी वर्तते तत्र बिभृते, यत्र ङित् प्रत्ययः, तत्र गुण निषेधो भवति बिभ्राते।

बिभृषे बिभ्राथे बिभृध्वे बिभ्रे बिभृवहे बिभृमहे। परीक्षकालिकधारणपोषणफल-जनकसमाप्तक्रिया अर्थे लिट् बिभ्राञ्चकार भीह्रीभृहुवाम् इति लिट् परे आम् अन्य कार्ये श्लुवच्च बिभ्राञ्चक्रे। यदा आम्न भवति तदा बभार। बभ्रतुः बभ्रुः। बभर्थ कृ सृ भृ इति इट् निषेधः बभ्रतुः बभ्रुः। बभ्रे बभ्राते बभृरे बभृसे अत्र इट् न भवति। श्वः भर्ता। भरणपोषणकर्ता। भरिष्यति, ऋद्धनोः स्ये इति इट् परोपकाराय पालनं पोषणं च करिष्यति। भरिष्यते = अपने कल्याण के लिए पोषण क्रिया करेगा, किसी को पालन पोषण क्रियाके लिए प्रेरणा आज्ञा करनी हो तब लोट् बिभर्तु इगन्तगुणः बिभृतात् ङिति परे गुणनिषेधात् विभृतां बिभ्रतु। बिभराणि आट् (पित्) गुणे मेर्निः विभराव विभराम, विभृताम् = अपना कल्याण करो, बिभ्रातां बिभ्रताम्। बिभृष्व बिभरै बिभरावहै बिभरामहै। अबिभः धारण पोषणार्थक, भृ धातोः समाप्त क्रियार्थे लङ् तिप् इकारलोपे अट् द्वित्वादि कार्ये, गुणे तकारस्य हल्ङ्यादिलोपे, रेफस्य विसर्गे। अबिभृताम् अबिभरुः। अभ्यस्तसंज्ञकस्रे परे झिको जुस। जुसिचेति गुणः। अबिभः, अबिभृतम् अबिभृत। अबिभरम् अबिभृव अबिभृम। बिभृयात् — यातां, युः। बिभ्रीत। बिभ्रयातां बिभ्रीरन्।

कर्तृगामी क्रियाफलके भूतकालमें अबिभृत अबिभ्राताम् अबिभ्रत। अबिभृथाः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विधिलिङ्—भ्रियात्—आशीर्लिङ् आर्धधातुकसंज्ञा रिङ् आदेशः भ्रियास्तां भ्रियासुः। भृषीष्ट उश्च इति कित्, तस्य फलं गुणनिषेधः भृषीयास्तां भृषीरन्। अभार्षीत् अभार्ष्टां अभार्षुः। सिच् परे वृद्धिः। अभार्षीः अभार्ष्टम् अभार्ष्ट। अभृत=अभृसत ह्रस्वादङ्गात् इति सिचोलुक् अभृषाताम् अभृषत। अभृथाः अभृषि। भगवान् भक्तान् अभरिष्यत् तदा सुखम् अभविष्यत्।

(९) डु ञ् इत्संज्ञक दा धातोः दान (अर्पण) के अनुकूलक्रिया अर्थः। कोई स्वत्व (स्वाधिकार) निवृत्ति परस्वत्व (अन्य अधिकार) की उपलब्धि जनकव्यापारः उभयपदी सकर्मक, अनिट्, ददाति वस्त्रं रजकाय। दाधातु दान जनक क्रियावाचक है वर्तमानकाले अर्थे लट् तिप् शपः श्लु द्वित्वे अभ्यासह्रस्वे। दत्तः—दान क्रियाके कर्ता दो हों, तब द्विवचने तस् श्लु आदि कार्ये, ङित् तस्परे अभ्यस्तस्य आकारलोपे दकारस्य चर्त्वेन 'त' रुत्वे विसर्गे, राजानः दुर्बलाय कम्बलान् ददति झिस्थाने अत्, अभ्यस्त आकारलोपः ददासि दत्थः दत्थ। ददामि दद्वः दद्मः। आत्मकल्याण के लिए दानानुकूल क्रिया हो तब दत्ते ददाते ददते। दत्से ददाथे दध्वे, ददे दद्वहे दद्महे, ददौ। अत्र आकारपरः णल् औभवति। आकारलोपे ददौ ददतुः ददुः ददिथ ददाथ ददथुः दद ददौ। ददे। ददाते ददिरे ददिषे। ददाथे ददिध्वे। ददे। दातासि त्वं पुस्तकम् दातासे नारिकेलं मह्यम्। दास्यति दास्यते शिवः वरं ददातु। दत्तात् ङित्परे 'आतोलोप इट् च इति आकारलोपे चर्त्वे दत्तां ददतु। ददानि ददाव ददाम।

(३) दारुप और धारुप धातुको घुसंज्ञा हो। दाप् दैप्से बने दा धा को घुसंज्ञा न हो। दानार्थक दा, खण्डनार्थक दो, रक्षणार्थक देङ्, इन्हीं के दारुप को घुसंज्ञा हो। धा धारण पोषणार्थक धेट्का 'धा' लाक्षणिक लिया गया, घुसंज्ञाका प्रयोजन भूमास्था, घ्वसोरेत् एलिङ्, गतिस्था, आदिका कार्य होना। घ्वसोः इत्येत्वं देहि। दा सिप् सेर्हि,श्लु आदिकार्ये ददाहि (घ्वसोरेद्धाव अभ्यासलोपश्च) से आकारको एत्व अभ्यासलोपे। ददानि ददाव ददाम। दत्तां ददातां ददताम्। ददस्व ददै ददावहै ददामहै, यत्र ङित्प्रत्ययः, तत्र श्नाभ्यस्तयोरात् इत्याकारलोपः दद्यात्, ददीत, ददीयाताम् ददीरन्। ददीथाः। देयात् एलिङ् इति आकारस्य एकारः दासीष्ट दासीयास्ताम् दासीरन्।

अदात् दानजनकक्रियावाचक दा धातोः दा धा घ्वदाप् इति घुसंज्ञा तस्मात् भूतकाले समाप्तदानक्रिया अर्थे लुङ् अट् तिप् सिच् गतिस्था घूपा सिच्लोपे। अदात्। तौ दानमदाताम्। ऋषयः सहस्रवारं कपिलां गाम् अदुः। अत्र सिच्लोपे सति 'आतः' सूत्रेण झेर्जुस् उस्य पदान्तात् इति पररूपे। अदाः अदातम् अदात। अहं ज्ञानम् अदाम् आवां धनम् अदाव। वयम् अदामः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६२५ दधस्तथोश्च ८ । २ । ३८ । द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथोः स्ध्वोश्च परतः । धत्तः । दधति । दधासि । धत्थः । धत्थ । धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे । घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च । धेहि । अदधात्, अधत्त । दध्यात्, दधीत । धेयात्, धासीष्ट । अधात्, अधित । अधास्यत्, अधास्यत । णिजिर् शौचपोषणयोः । ११ । (इर इत्संज्ञा वाच्या)। ६ णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७ । ४ । ७५ । णिज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः

---

४) स्था और घुसंज्ञक अनयोः = इन दोनों के ईकार अन्त आदेश हो, सिच् कित् आत्मनेपदपरे । भूतकालिकदानानुकूल क्रिया अर्थे । अदित । अदासृत—दा इत्यस्य घुसंज्ञा, तस्य स्थाघ्वोरिच्च इति आकारस्य ईत् आदेशे । सिचः कित् कृते ह्रस्वादङ्गात् इति सिच् लोपे ङितभावे गुणनिषेधो । अदित अदिषाताम् अत्र आतां परे सिच् लोपो न भवति । कित्वाभावात्, ते कम्बलान् अदिषत अदिथाः अदिषाथाम् अदिढ्वम्, अदिषि, अदिष्वहि, अदिष्महि उपसर्गबलसे अनेकार्थकः । आदत्ते विद्यां संधत्ते सायकम् ।

(१०) धा धातुका वस्त्रादिधारण, शरीरादिपोषणके अनुकूल क्रिया अर्थः अनिट् सकर्मक उभयपदी च । स मुद्रिकां दधातु । धारण फल मुद्रिका में उसकी क्रिया कर्तामें । यह क्रिया वर्तमान रहे धा ति श्लौ, द्वित्वे अभ्यासे, धकारस्य अभ्यासे चर्चः इति दकारः । (६२५) द्विरुक्तस्य = जिसको द्वित्व किया गया हो, ऐसा झष अन्तवाला धा धातु उसके वश्को भष् हो त थ स ध्व परे । यह भषभाव लट् लोट् लङ् वेधिलिङ्में हो । आकार लोप होनेपर । धत्तः—द धा तस् स्नाभ्यस्तयो रातः इति आलोपे । ततः दधस्तथोश्च दकारस्य भष् प्रत्याहार धकारे, उत्तरधकारस्य चर्त्वे तकारे । ताः आभूषणानि दधति त्वं किं दधासि यूवां धत्थ, दधामि दध्व दध्म उपसर्गेण धात्वर्थः परिवर्त्तते यथा —अविदधाति विदधाति आदधाति—स्थापयति निदधाति परिदधाति = पहिनता है । प्रणिदधाति, मनः योजयति अनुसन्दधाति, खोज करता है । श्रद्धधाति । संदधाति घ्वसोः धु अस् को एत्व हो । अभ्यासलोपश्च= अभ्यासका लोप हो धेहि दधाहि, अत्र अभ्यासस्यलोपे धु संज्ञकस्य धा इत्यस्य एकारे कौपीनम् अदधात् विपूर्वो धा करोत्यर्थे अभिपूर्वस्तु भाषणे, मेलने चापि सम्पूर्वो, निपूर्वः स्थापने मतः ।

(११) णिजिर् धातुका शौच् = प्रक्षालन, धोना, धोबी कपड़ा धोता है । तथा पोषणफलके अनुकूल क्रिया अर्थः । वा० (धातुमें इर्की इत् संज्ञा कहनी चाहिये । तस्य लोपः तस्यफलं इरितो 'वा' इति च्लेः अङ् आदेशे निनिजति (६) णिज्, पृथक् भावार्थक, विज्, व्याप्ति अर्थमें विष्, धातुओंके अभ्यासको गुणहो,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात् श्लौ। नेनेक्ति। नेनिक्तः। नेनिजति। नेनिक्ते। निनेज, निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यति, नेक्ष्यते। नेनेक्तु। नेनिग्धि। ७ नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७। लघूपधगुणो न स्यात्। नेनिजानि। नेनिक्ताम्। अनेनेक्। अनेनिक्ताम्। अनेनिजुः। अनेनिजम्। अनेनिक्त। नेनिज्यात्। नेनिजीत। निज्यात्, निक्षीष्ट। ८ इरितो वा ३।१।५७। इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु। अनिजत्, अनैक्षीत्, अनिक्त। अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत।

इति जुहोत्यादयः ॥ ३ ॥

श्लु का विषय हो तो। इति अभ्यासस्य गुणे द्वितीयस्य सार्वधातुकगुणे। चोः कुः इति कुत्वेन 'ग' चर्त्वेन क। नेनेक्ति — वह पोषण करता है धोबी वस्त्र धोते समय नेनेक्ति कहते हैं। नेनिक्तः अत्र केवलं अभ्यासगुणो भवति। नेनिजति—अत्र अदभ्यस्तात् झि स्थाने अत्। नेनेक्षि, नेनिक्थः नेनिक्थ। नेनेज्मि नेनिज्व नेनिज्म। शौच पोषण फलानुकूल क्रिया जन्यफल कर्तृगामी हो तब—नेनिक्ते नेनिजाते नेनिजते नेनिक्षे। निनेज निनिजुः निनेजिथ। निनिजे निनिजाते निनिजिरे निनिजिषे। नेक्ता — प्रक्षालन कर्ता पोषणकर्ता नेक्ष्यति — रजकः वस्त्राणि,। त्वं भवनं नेनेक्तु। नेनिक्ताद् नेनिक्ताम्, नेनिजतु। नेनिग्धि। अत्र हि अपित् सन् ङित् अस्ति। तस्य फलं सार्वधातुक गुणनिषेधः हेर्धिः नेनिक्तं नेनिक्त। (७) अजादि पिति सार्वधातुकपरे अभ्यस्तस्य — अभ्याससंज्ञकधातुको पुगन्तलघूपधस्य च इति गुणो न। नेनिजानि, अत्र आट् पित् अस्ति,। लघूपधगुणः प्राप्नोति, परन्तु अजादिपित् सार्वधातुकपरे दृष्ट्वा अभ्याससंज्ञक गुणनिषेधः। नेनिजाव नेनिजाम। नेनिक्तां, नेनिजातां नेनिजतां नेनिक्था नेनिजै। अनेनेक् वस्त्र प्रक्षालन कर चुका। तौ पशून् अनेनित्ताम् अनेनिजुः अनेनेक् अनेनिजम्। अत्र लघूपधगुणस्य नाभ्यस्तस्याचि इति निषेधे। शौचपोषण विषयक सम्भावनायां लिङ् नेनिज्यात्। नेनिज्यातां नेनिज्युः। नेनिजीत, अत्र सीयुट् सकारस्य लोपे, तेन अजादि पित् सार्वधातुकपरे गुण निषेधः। अत्र लिङ् सिचावात्मनेपदेषु सूत्रेण सीयुट् कित् भवति। तस्य फलं गुण निषेधः (८) इर् इत् संज्ञकधातुपरे च्लिको अङ् विकल्पसे हो, परस्मैपदपरे। अनिजत्—भूतकालिक समाप्तशौचपोषण क्रिया अर्थे लुङ्। अनिज् च्लि-त। ततः ईरितोवा इति च्लि स्थाने अङ् — अ कृते। अनिजताम् अनिजन् अनिजः अनिजतम् अनिजत। अनिजम् अनिजाव अनिजाम। यदा सिच् भवति। तदा व्रद व्रज् हलन्त्यस्याचः इति वृद्धिः। अस्तिसिचोऽपृक्तेः इति ईट् कुत्वे चर्त्वे षत्वे, क्षत्वे। अनैक्षीत् अनैक्ताम्, अनैक्षुः। आत्मनेपदे झलोझलि इति सिचोलोपः। अनिक्त अनिक्षाताम् अनिक्षत। अनिक्थाः अनिक्षि। इति जुहोत्यादिगणः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ दिवादयः

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु । १ ।
९ दिवादिभ्यः श्यन् ३ । १ । ६९ । शपोऽपवादः । हलि चेति दीर्घः ।

॥ ४ ॥ अथदिवादिप्रकरणम्

अथ=जुहोत्यादि (श्लुविकरणाक) प्रकरणसमाप्त्यनन्तरं दिव् आदिः यस्य तद्दिवादिगणप्रकरणम् । प्रकृतिप्रत्ययमध्ये यस्तिष्ठति स विकरणः । श्यन्विकरण-प्रधान गणदिवादि है । (१) दिवधातुका क्रीडा, द्यूत खेलनं, विजिगीषा=(विजयस्य इच्छा,) व्यवहारः=क्रय विक्रय रुपः । आदानप्रदानरुपः व्यवहारः । द्युतिः=प्रकाशः, (चमकना) स्तुतिः=प्रशंसा मोदः हर्षः=प्रसन्नता, । मद=नशा या गर्व । स्वप्नः= शयनं, कान्तिः इच्छा नतु प्रकाशः गतिः=गमनं करना इन धात्वर्थ फलों के अनुकूल क्रिया दिव्धातुका अर्थः । (९) दिवादिगणपठित धातुओंसे श्यन्=य प्रत्यय हो कर्ता अर्थ में । यह श्यन् शप् का बाधकः श इत्का फल सार्वधातुकसंज्ञा । न इत् का फल आद्युदात्त, दीव्यति—क्रीडा, विजगीषा, आदि फलजनकव्यापारवाचक दिव्धातोः क्रियावर्तमाने सति, लट् तस्य स्थाने तिप् शपं बाधित्वा श्यन्=य । हलिच इति दीर्घः । अत्र गुणो न भवति । श्यन् इति अपित् सार्वधातुकं तत् ङिद्भवति, तेन न गुणः । दीव्यति दीव्यतः दीव्यन्ति । देवी देवता दिव्य । आदि शब्द इसी धातु से बने हैं । पाण्डवाः अवदीव्यन्ति, पराजितो भवन्ति । दिदेव=क्रीडा विजयेच्छा इत्यादिफलजनकव्यापारवाचक दिव्धातोः अनद्यतनसमाप्तपरोक्ष क्रिया अर्थे लिट् तिप् णल् दिव्-दिव् दिदिव गुणे दिदेव । कृष्णदम्पत्ती दिदिवतुः भाष्यकराः दिदिवुः । त्वं दिदेविथ दिदिवथुः दिदिव । दिदेव दिदिविव दिदिविम । बलादि आर्धधातुक परे इट् आगमो भवति ।

देविता आगामिदिने क्रीडाद्युतिस्तुति आदि कर्ता अर्थे लुट् तास् इट् गुणे । सामान्यभविष्यकालमें विजयेच्छा व्यवहारादि हो तब देविष्यति देविष्यतः । दीव्यतु—श्यन् प्रत्ययपरे हलिचेति दीर्घः । धृतराष्ट्र बोले कि तुम जूआ खेलो । विधि, प्रेरणा, आज्ञा, आशीर्वाद अर्थमें लोट्, दीव्यतात् दीव्यतां दीव्यन्तु । दीव्य-अत्र हलिचेति दीर्घे, अतोहेः, इति हिलोपे । अदीव्यत्=क्रीडा किया । विजय पाया, प्रकाशस्तुति मोदमदआदिके अनुकूल अद्य भिन्न दिनेसमाप्तक्रिया अर्थे । दीव्येत् भवान् । कान्ति गतिक्रीडा आदिक्रिया की सम्भावना । दीव्यात् सर्वत्र हलिचेत् दीर्घः । अदेवीत् अदेविष्टाम् अदेविषु । अदेवीः अदेविष्टम् अदेविष्ट । अदेविषम् अदेविष्व अदेविष्म । अदेविष्यत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दिव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवं षिवु तन्तुसन्ताने । २ । नृती गात्रविक्षेपे । ३ । नृत्यति । ननर्त । नर्तिता । ६३० सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ७ । २ । ५७ । एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा । नर्तिष्यति, नर्त्स्यंति । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् ।

---

(२) षिवु=उकार इत् षिव् धातुका तन्तुसन्तान=तानाबाना विस्तार या सूत्र सन्तान, सीना—गूँथना जनक क्रिया अर्थः । सीव्यति (कञ्चुकी कुर्ता सीती है) तौ ऊर्णा वस्त्रं सीव्यतः । तन्तुसन्तनं कुरुतः यथा पूर्वजाः चतुष्वन्दीं सेषिवुः श्वः उपानहौ सेविता । वस्त्राणि सेविष्यति । स सीव्यतु यथा लाभं यथा अन्ये असीव्यन् लाभं अलभन् । यदि निर्धनोपि सीव्येत् तर्हि बहुधनं सीव्यात् । असेवीत्=असिव् इस् इत् । इटः ईटि सलोपः दीर्घे । अघूपधगुणे ! यदि स सर्वेषां वस्त्रम् असेविष्यत् तर्हि बहुधनम् अलप्स्यत् । यह धातु उनी, सूती आदिके सीने अर्थमें उपयोगी है । परिषीव्यति, निषीव्यति इत्यादौ षोपदेश निमित्तक परिनिविभ्यः इति षत्वम् ।

(३) नृती = ईकार इत्नृत् धातुका गात्रविच्छेप, अङ्गप्रत्यङ्ग हाव-भाव प्रदर्शित करना अङ्ग हिलाना, शरीरमें तरङ्ग आना, इसके अनुकूल क्रिया अर्थः अयं सेट् अकर्मकः । श्यन् । सर्वत्र अपित् सार्वधातुक है उसका फल ङित्भाव, गुणनिषेध । नृत्यति मयूरः । नृत्यतः नृत्यन्ति । त्वं नृत्यसि । अहं सभायां नृत्यामि । शिवः सुन्दरं ननर्त । नृत्, नृत्, नृनृत, 'उरत्' नर्नृत, ननृत, गुणे रुपम् । बाराङ्गने ननृतुः । जनाः ननृतुः यथा—त्वं ननर्तिथ । युवां मञ्चे ननृतथुः । यूयं सभायां ननृत । तथैव अहं ननर्त, आवां ननृतिव । वयं ननृतिम । बलादि-आर्धधातुकपरे इट् क्ङिद्भवति तत्र गुणनिषेधः । गात्र विच्छेपकी क्रिया अद्य भिन्नभविष्यकालिक हो, लुट् नर्तिता । इट् गुण आदिः । नर्तितारौ नर्तितारः नर्तितासि (वे कल नाचेंगे) सामान्य भविष्य कालिकनर्तन क्रिया हो वहाँ लृट् स्य ति गुण । नर्त्स्यति ततः ।

(६३०) एभ्यः=छेदनार्थक कृत्, अनावरणार्थंक चृत् । दीप्ति=प्रकाशार्थक, छृद् हिंसार्थक, अनादरार्थक तृद्, गात्र विक्षेपार्थक नृत, धातुओंसे परे सिच् से भिन्न सादेः=सकारादि आर्धधातुकप्रत्ययको इट्-विकल्पसे हो । प्रसङ्गे सकारादिः 'स्य' प्रत्ययस्य से सिचि, आदि सूत्रेण इट् नर्तिष्यति । यदा न इट् तदा नर्त्स्यंति । बालिका नृत्यतु । यथा—बालकः अनृत्यत् । यदि नर्तकः नृत्येत् सर्वे प्रसन्नाः भवेयुः । स ससुखं नृत्यात् । अनर्तीत्=अनृत् इस् ईत् । इटः ईटि सलोपे गुणे दीर्घे गन्धर्वौ सभायां कदा अनर्तिष्टाम् । यदा तारिकाः अनर्तिषुः । यदा त्वम् अनर्तीः अनर्तिष्टम् अनर्तिष्ट । तदा अहम् अनर्तिषम्, अनर्तिष्व अनर्तिष्म । लृङ् लकारे सकारादि-आर्धधातुक स्यपरे इट् विकल्पेन भवति, यदा मेघाः अभूवन् तदा मयूराः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अनर्तिष्यत्, अनत्स्यत् । त्रसी उद्वेगे । ४ । वा भ्राशेति श्यन्वा । त्रस्यति, त्रसति । तत्रास । १ वाजॄभ्रमुत्रसाम् ६ । ४ । १२४ । एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा । त्रेसतुः, तत्रसतुः । त्रेसिथ, तत्रसिथ । त्रसिता । शो तनूकरणे । ५ ।

२ ओतः श्यनि ७ । ३ । ७१ । लोपः स्यात् । श्यति । श्यतः । श्यन्ति ।

अनर्तिष्यन् अनत्स्यन् ।

(४) त्रसी—इकार इत् । त्रस् धातुका उद्वेग—ऊबना, घबराना, उचाट होना, डरनेके अनुकूलक्रिया अर्थः । वह क्रिया वर्तमान रहे तब त्रस् श्यन्=यति परन्तु नित्य श्यन् को बाधकर 'वाभ्राश्म्लास् भ्रमु-क्रमु आदि सूत्रेण श्यन् विकल्पः । त्रस्यति यदा न श्यन् तदा शप् एव तिष्ठति अनुबन्धलोपे त्रसति बालकः अन्धकारे शून्य घरमें चोरोंसे डरता है । वह घबड़ाहटकी उद्वेगजनकक्रिया परोक्षभूतकालमें तब लिट् त्रस्-त्रस् तत्रस् उपधा वृद्धिः णित् परे णलादिः । परश्वः स्वप्ने तत्रास, दम्पती त्रेसतुः । तत्रस्-अतुस् इति दशायाम् । (१) एषाम्=जीर्णार्थक जॄ, भ्रमणार्थक भ्रम्, उद्वेगार्थक त्रस्, इन धातुओंको कित् लिट् परे और सेट् थल् परे, एत्व अभ्यास लोप हो विकल्पसे । (यह अप्राप्त विभाषा है । अत एकहल्मध्ये सूत्र प्राप्त नहीं हैं । क्योंकि जॄ को त्रसके संयोग होनेसे) । इति सूत्रेण एत्वे अभ्यास लोपे च त्रेसतुः । यदा एत्वाभ्यास लोपौ न भवतः तदा तत्रसतुः । जनकसभायां परशुरामं दृष्ट्वा स सर्वे जनाः त्रेषुः । तत्रषुः । थलि परे इट् कृते सति एत्वे अभ्यासलोपे च त्रेसिथ, तत्रसिथ त्रेसथुः एत्रसथः, त्रेस् तत्रस् अहं तत्रास तत्रस् त्रेसिव तत्रसिव । त्रेसिव तत्रसिम । स त्रसिता । त्रसिष्यति । त्रस्यतु त्रसतु । अत्रस्यत् अत्रसन् त्रस्येत् त्रसेत् । त्रस्यात् अत्रासीत् अत्रसीत् । अतोहलादेर्लघोः इति वृद्धिविकल्पः अत्रसिष्यत् तदा कुपथ्मत्यक्ष्यत् ।

(५) शो धातुका तनूकरण=कृश दुर्बल, पतला, न्यून, करनेके अनुकूलक्रिया अर्थः अयं अनिट् अकर्मकः, तनू करणार्थक शो धातोः प्रचलितक्रिया काले वर्तमाने लट् शपं बाधित्वा श्यन्=य ततः (२) ओतः=ओकारका लोप हो श्यन् परे इति ओकरलोपे । श्यति शरीरं । तौ तपसा शरीरं श्यतः । तक्षकाः काष्ठानि श्यन्ति । त्वं तु अधीतां विद्यां श्यसि । श्यथः श्यथ । अहं गात्रं श्यामि । आवाम् आलस्यं श्यावः वयं पापानि श्यामः । सर्वत्र श्यन् परे ओकारलोपो भवति, भगीरथः यथा शरीरं तपसा शशौ । तदा गङ्गा आगमत् । शो + लिट् तिप् णल् 'आदेच उपदेशे' इति आत्वे आत् और णलः इति औकारे द्वित्वादिः शशौ शशतुः शशुः शाता – ओकारस्य आत्वं न्यूनकर्ता स्वकीयान् अवगुणान् शास्यति, क्षीणीकरण या न्यूनीकरणविषयक आज्ञा, प्रेरणा, की सम्भावनामें लोट् श्यतु । तु स्थाने तातङ् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शशौ । शशतुः । शाता । शास्यति । ३ विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८।
एभ्यः सिचो लुग्वा स्यात्परस्मैपदे परे। अशात् । अशाताम् । अशुः । इट्-
सकौ । अशासीत् । अशासिष्टाम् । छो छेदने । ६ । छ्यति । षोऽन्तकर्मणि
। ७ । स्यति । ससौ । दोऽवखण्डने । ८ । द्यति । देयात् । अदात् । व्यध

श्यतात् दुर्गुणानि । श्यतां श्यन्तु । श्य (हेलुंक पक्षे तातङ्) श्यतात् श्यतं श्यत ।
श्यानि श्याव श्याम । तनुकरणकी क्रिया समाप्त हो लङ् अश्यत् अश्यताम् अश्यन्,
अश्यः, अश्यतम्, अश्यत, अश्यम् अश्याव अश्याम श्येत् श्येतां श्येयुः । श्येः श्येतं
श्येत, श्येयं श्येव श्येम ।

(३) विभाषा ऐभ्यः=सूँघने अर्थमें घ्रा, पानार्थक धेट्, तनूकरणार्थक शो, छेदनार्थक दो, नाशकारणार्थक षो, इन धातुओंसे परे सिच्का लोप विकल्पसे हो परस्मैपद परे । अशात्—तनूकरणानुकूलक्रियावाचक शोधातोः भूतकाल (समाप्त क्रिया अर्थे लुङ्) अट् तिप् सिच् 'आदेच् उपदेशे' इति ओकारस्य आत्वे । विभाषा घ्राधेट आदि सूत्रेण सिचो लुक् विकल्पः । अशात् मूर्खो 'अध्ययनम् अशाताम् । कृषकाः कीटान् अशुः, अत्र 'आतः' सूत्रेण झि स्थाने जुस् आत्वे आकारस्य अस्य-पदान्तात् इति पररूपे । यदा सिचो लुक् न भवति तदा यमरम् नमातां सक् च' सूत्रेण इट्सकौ भवतः । अ शा स् इ स् ईत् । इट ईटि' सलोपे दीर्घे । आशासीत् । अशाशिष्टाम् अशाशिषुः । अशाशीः । अशास्यत् ।

(६) छो धातुका छेदन=काटनेके अनुकूल क्रिया अर्थः सकर्मकः काष्ठं छ्यति ओकार इत् श्यनपरे (छिनत्ति) काटता है । चच्छौ शाकम् । वृक्षं छाता । पटोलं छास्यति कुष्माण्डं छ्यतु यथा—कर्कटीम् अच्छ्यत् । नापितः केशानि । छ्येत्, छायात् अच्छात् । अच्छासीत् विभाषा घ्रेटेशाच्छासः । (७) षो=सोधातुका अन्तकर्म= विनाशकरण, समाप्त होना, या अन्तिमसंस्कारजनक क्रिया अर्थः । सकर्मकः । यह क्रिया वर्तमान् रहे तत्र लट् । पितुः शवं स्यति । परन्तु उपसर्गके योगमें अर्थ भिन्न है यथा—अवस्यति निर्धारणं करोति । व्यवस्यति=व्यवस्थानं करोति । भरतः दशरथस्य शरीरं शशौ । पपौ इव । साता, सास्यति । स्यतु (अन्तिम संस्कार करो) यथा—पूर्वजाः अस्यन् । स्येत् असात् असासीत् । सिच् लुक् विकल्पः ।

(८) दो धातुका अवखण्डन=शकलीकरणम् टुकड़ा करनेके अनुकूल क्रिया अर्थः सकर्मक । सर्वत्र श्यन् परे ओकार लोपः । अन्यत्र ओकारस्य आत्वम् । स काष्ठं द्यति, शकलीकरोति=टुकड़े करता है । यथा—तक्षा ददौ । दाता, दास्यति, द्यतु अद्यत् द्येत् अदात् । अत्र गातिस्था' आदि सूत्रेण सिचो नित्यं लोपः देयात् इत्यत्र ऐर्लिङः अनशत् ।

(९) व्यधधातुका ताडन, वेधनं, बाणादिना परपीडा करणम् । पतले

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ताडने । ९ । ४ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६ । १ । १६ । एषां सम्प्रसारणं स्यात्किति ङिति च । विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विविधुः । विव्यधिथ, विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । पुष पुष्टौ । १० । पुष्यति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्ष्यति । पुषादीत्यङ् । अपुषत् । शुष शोषणे । ११ ।

धारवारे शस्त्रप्रयोगमें इसधातुका उपयोग है, सकर्मकः । व्याधाशब्द इसी धातुसे बना है । ताडन या वेधन क्रिया वाचक व्यध्धातोः प्रचलितक्रिया वर्तमाने लट् तिप् शपः श्यन् । ततः । (४) ग्रह = ग्रहण करना वयोहानार्थक ज्या, तन्तु सन्तानर्थक व्येञ् ताडनार्थक व्यध, इच्छार्थक वश, ठगने अर्थमें व्यच्, छेदनार्थक व्रश्च धिज्ञासार्थक पृच्छ, पाकार्थक भ्रस्ज, इन धातुओं को सम्प्रसारण हो कित् ङित् प्रत्यय परे । प्रसङ्गे श्यन् प्रत्ययः, ङिद्वत्, अपित्सार्वधातुकत्वात् । ङित्परे । व्यधधातो यकारस्य सम्प्रसारणे व्याधः बिडालं विध्यति । अर्जुनशिखण्डिनौ भीष्मं विध्यतः । सर्वान् विध्यन्ति । ताडनजनकक्रियावाचक व्यध्धातोः अद्यभिन्नसमाप्तताडनक्रियायाः परोक्षकाले अर्थे लिट् तिप् णल् द्वित्वे लिटचभ्यासस्वोभयेषामिति, अभ्यासस्य सम्प्रसारणे । हलादिशेषे अतोपधायाः वृद्धिः पित्स्थले एवं भवति । थल्परे भारद्वाजमते इट् विकल्पः । विव्यधिथ पक्षे थस्थाने धः । धातुधकारस्य जश्त्वे सवर्णेझरि लोपे विव्यध । कित्प्रत्यये तु पूर्वं सम्प्रसारणं तदाश्रयं कार्यं पररुपं बलवद्भवति । पश्चात् द्वित्वम् । अतो विविधतुः विविधुः । व्यध्ता इतिदशायां झषस्तथोर्धोध, इति त स्थाने धः । धातुकारस्य जश्त्वं परश्वः मत्स्यान् व्यद्धा । शबरः शुकान् व्यत्स्यति । मुनिः मदनं विध्यतु, यथा—कामः शिवमविध्यत् । यदि सर्वेजनाः कामानि विध्येयुः ममाशीर्वादः, ते विध्यासुः आशीर्लिङ् यासुट् किद्भवति । तस्य फलं सम्प्रसारणम् । यदा ताडनक्रिया समाप्ता भूतकाले अर्थे लुङ् अव्यात्सीत् अव्याद्धाम् अव्यात्सुः । वद व्रज हलन्तलक्षणा वृद्धिः । धकारस्य चर्त्वेन तकारः । अव्यात्सीः अव्याद्धाम् अव्याद्ध झलो झलि सलोपः । अव्यात्सम् अव्यात्स्व अव्यात्स्मा (१०) पुष्धातुका पुष्टि—पोषण = वढ़ना दृढ़ होने जनक क्रिया अर्थः अनिट् भी, सज्जनः शरीरं पुष्यति । पुष्टिजनकक्रियाके वर्तमाने लट् मूर्खौ शरीरमेव पुष्यतः । सर्वे प्राणिन. पितरौ गुरुञ्च पुष्यन्ति । यथा—त्वम् उद्याने वनस्पतिं पुष्यसि एवमहम् आत्मीयान् पुष्यामि, । गुरुः ज्ञानेन शिष्यं पुपोष त्वं सुपुषिथ नित्यं बलादि इट् । पोष्टा + ता ष्टुत्वे गुणेच । पोष्टारौ पोष्टासि । पोक्ष्यति पुषयति अत्र षढोकः सि धातु षकारस्य स्थाने क, स्यसकारस्य षत्वे क ष संयोगे क्षत्वे रुपम् । अपुषत्— पोषणार्थक पुष्धातोः भूतकाले लुङ् अट् तिप् पुषादि द्युतादि इति च्लि स्थाने अङ् ।

(११) शुष् धातुका शोषण = निरसीभवनं—निरस होना सूखनेके अनुकूल व्यापारः अनिट् । मदीयं वस्त्रं शुष्यति । यथा = गुरोः शुशोष । परश्व सर्वेषां,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शुष्यति। शुशोष। अशुषत्। णश अदर्शने। १२। नश्यति। ननाशः। नेशतुः।

६३५ रधादिभ्यश्च ७।२।४५। रध् नश् तृप् दृप् द्रुह् ष्णुह् ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात्। नेशिथ। ६ मस्जिनशोर्झलि ७।१।६। नुम् स्यात्। ननंष्ठ। नेशिव, नेश्व। नेशिम, नेश्म। नशिता, नंष्ठा। नशिष्यति, नङ्क्ष्यति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत्। षूङ् प्राणिप्रसवे। १३। सूयते। सुषुवे। क्रादिनियमान्निट्। सुषुविषे।

शोष्टा शोक्ष्यतिच। तत्रापि शुष्यतु, यथा—मम अशुष्यत्। एवं सर्वेषां शुष्येयुः अशुषत्। (१२) णश अदर्शने (णोनः) धातुका (अदर्शन) लोप अप्रत्यक्ष आदि अर्थ है। घटो नश्यति। घटका अदर्शन। ननाश—लिट्लकारमें कित् वचन अतुस् आदि परे। इट् पक्षेच अत एकहल्मध्ये, थलि च सेटि, एताभ्याम् एत्वम्, अभ्यासलोपश्च भवतः। नेशतुः ननश अतुस्। एत्वे अभ्यास लोपे च नेशुः (६३५) **रधादिभ्यः**=रध आदि धातुओसे परे बलादि आर्धधातुकको विकल्प इट् हो। नेशिथ अदर्शनार्थक नश् धातोः परोक्षे समाप्त क्रिया अर्थे लिट् मध्यम पुरुषस्य एक वचने थल् तस्य आर्धधातुकसंज्ञा रधादिभ्यश्च इट् विकल्पः थलिच सेटि एत्वे, अभ्यास लोपे च। इट् अभाव पक्षे ननश थ इति दशायाम् (६) मस्ज् और नश् धातुको नुम् हो, झलि=झलादि प्रत्ययपरे। इति नुम्=(न) तस्य अपदान्त झलि परे अनुस्वारे व्रश्चभ्रस्ज इति सकारस्य षत्वे यकारस्य ष्टुत्वे ननंष्ठ. नेशिव नेश्व, नेशिम नेश्म, इट् विकल्पे। नशितां रधादिभ्यश्च इट् यदा न इट् तदा नंष्टा- नुम ष्टुत्वे, षत्वे, एवं नशिष्यति। यदा न इट् तदा नश् स्यति। अत्र व्रश्चेति षत्वे षढोः कः सि इति कत्वे क ष संयोगे क्षत्वे ततः मस्जि नशोर्झलि, इति नुम्। अनुस्वारपरसवर्णौ नङ्क्ष्यति नश्यतु अनश्यत् नश्यात्। नङ्क्षीत् अनशत्। पुषादि गणत्वात् च्लेः अङ् अनशाताम् अनशन् अनश. अनशतम् अनशत्।

(१३) षु धातुका प्राणिप्रसव = जीव जनन् (पैदा) होनेके अनुकूलव्यापारो अर्थः। प्रायः प्राणियोंके प्रसवमें प्रयुक्त अनिट् धातु है। भार्या पुत्रं सूयते प्रसव कालकी क्रियाके वर्तमान रहते लट्। गावौ सूयेते। अजाः चतुरः वत्सान् सूयन्ते रामं सुषुवे। कैकेयी सुमित्रा च सुषुवाते सुषुविरे। त्वं कदापुत्रौ सुषुविषे, क्रादि- नियमात् नित्यमिट् भवति। सुषुवाथे, सुषुवे सुषुविवहे सुषुविमहे। प्राणियोंके प्रसव क्रियाकी समाप्तिका अप्रत्यक्ष काल अर्थ। सोता—श्वः सोता। यदा स्वरति सूति सूयति इत्यादि सूत्रेण इट् तदा सविता। प्रसवकर्ता। कल बच्चा पैदा करेगी। अन्यत्र इट् विकल्प, उक्त सूत्रसे स्मरण करे। सविष्यते सोष्यते। गर्भिणी प्रसवं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सुषुविवहे । सुषुविमहे । सविता, सोता । दूङ् परितापे । १४ । दूयते । दीङ् क्षये । १५ । दीयते । ७ दीङो युडचि क्ङिति ६ । ४ । ६३ । दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् । (वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ) । दिदीये । ८ मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ६ । १ । ५० । एषामात्वं स्याल्ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते । दाता । दास्यति । (स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः) । अदास्त । डीङ् विहायसा गतौ । १६ । डीयते । डिड्ये ।

करिष्यति । आज्ञा, प्रेरणा, विधि, अर्थमें लोट् सूयताम्=वह पैदा करे । असूयत् सूयेत् सविषीष्ट सोषीष्ट । असविष्ट असोष्ट । असविष्यत् असोष्यत् ।

(१४) ङकार इत् दूधातुका परिताप=आत्मग्लानि, पश्चात्ताप, दुखी होना अर्थ यह सेट् अनिट् भी, कैकेयी दूयते ग्लानिं करोति । धृतराष्ट्रः पुत्रनाशात् श्रुत्वा दुदुवे, दुदुवाते दुदुविरे छात्राः अनुत्तीर्णाः भूत्वा । त्वं दुदुविषे दुदुवाते दुदुविध्वे, अहं दुदुवे । अद्यभिन्न भविष्यकाल में पश्चाताप् क्रिया का द्योतक लुट् । इट् दविता । गुणावादेशे, सज्जनः अपराधं कृत्वा दविष्यते । यथा—दशरथः एवं सोऽपि दूयताम्, यथा—दशरथः श्रवणं हत्वा अदूयत् दूयेत्, दवषीष्ट, अदविष्ट अदविष्यत् ।

(१५) दीधातुका क्षय=विनाश, ह्रास, क्षीणताजनकव्यापारः सन्निपातेन रोगी क्षीयते । वर्तमानकालिकीक्षयक्रिया । दिदीये—क्षयार्थक दिधातोः परोक्षेलिट्त—एश्, द्वित्वे, अभ्यासह्रस्वे ततः । (७) दीङः=दीङ् धातुसेपर अजादि कित्ङित् आर्धधातुकको युट् (य) आगम हो इतिसूत्रेण अजादि ङित् आर्धधातुकसंज्ञक एकारस्य युट्=य् आगमे । अत्र असिद्धवदत्राभात् इति सूत्रेण युट्आगमस्य असिद्धि कृत्वा एरनेकाच् सूत्रेण यण् प्राप्नोति, यन्निषेधार्थं (वा) वुक् युट् ये दोनों उवङ् और यण् की दृष्टिमें सदा सिद्ध है । क्षय क्षीणता ह्रासकी क्रिया अद्यभिन्न भविष्यकालिक हो तो लुट् । (८) मीनाति हिंसार्थक मी, क्षेपणार्थक मि, क्षयार्थक दी, धातुओं को आकार अन्तादेश हो, ल्यपिपरे, गुणवृद्धिनिमित्तक शिद्भिन्न प्रत्ययपरे, चकारात् शिद्भिन्न, एच्निमित्तकस्यापि ग्रहणम् । दाता, दास्यति, दीयताम् अदीयत् दीयेत्, दासीष्ट, (वा०) स्थाघोः=स्थाधातु घुसंज्ञक धातुओं को लुङ्लकार में स्थाघोरिच्च सूत्रसे प्राप्त ईत्व न हो । इति वार्तिकेन ईत्वनिषेधे आदास्त अदासाताम् अदासत । क्षयके अनुकूल भूतकालिकक्रिया अर्थः । (१६) ङ्इत् डीधातुका विहायसा=आकाश से गमन अर्थः, ऊपर उड़ना सेट्, अकर्मक, प्रायः उत्पूर्वक-प्रयोगप्रशस्त है । उड्डीयते वायुयानं । डिड्ये पक्षी डयिता, डीयताम्, अडीयत, डीयेत डयिषीष्ट अडयिष्ट अडयिष्यत् ।

(१७) पीङ् धातुका पीना जलादिका, गलविलाधः संयोग अर्थः । दुग्धं पीयते। पिप्ये, पेता, पेष्यति, पीयताम्, अपीयत, पीयेत, पेषीष्ट, अपेष्ट अपेष्यत ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

डयिता। पीङ् पाने। १७। पीयते। पेता। अपेष्ट। माङ् माने। १८। मायते। ममे। जानी प्रादुर्भावे। १९। ९ ज्ञाजनोर्जा ७।३।३९। अनयोर्जादेशः स्याच्छिति। जायते। जज्ञे। जनिता। जनिष्यते।

६४० दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१। एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने तशब्दे परे। १ चिणो लुक् ६।४।१०४। चिणः परस्य लुक् स्यात्। २ जनिवध्योश्च ७।३।३५। अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। अजनि, अजनिष्ट। दीपी दीप्तौ। । २०। दीप्यते। दिदीपे। अदीपि, अदीपिष्ट। पद गतौ। २१। पद्यते।

---

(१८) माँ धातुका मान परिच्छेदकरना, नापना या तौलना अर्थः, मायते, ममे, माता, मास्यते, मायताम्, अमायत, मायेत, मासीष्ट, अमास्त, अमास्यत्।

(१९) इकार इत् जन् धातुका प्रादुर्भाव प्रकट, उत्पत्तिजनक क्रियाअर्थः। (९) अनयोः— अवबोधनार्थक ज्ञा, प्रादुर्भावार्थक जन् धातुको जा आदेश हो, शित्प्रत्ययपरे। प्रादुर्भवनक्रियावर्तमाने (पुत्रः जायते) जन् धातोः वर्तमाने लट् त टेः एत्वे श्यन् = य ज्ञाजनोर्जा इति जनस्थाने जा आदेशे, जायते। कृष्णः। प्रादुर्भावार्थक जन् धातोः लिट् त एश् द्वित्वादि, जजन-ए इति। **गमहनजन** आदि सूत्रेण उपधाअलोपे नकारस्य श्चुत्वे ञकारे जज्ञ्ञेः। जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे, देवता पैदा हुए। त्वं कस्मिन् वर्षे जज्ञिषे, जज्ञाथे जज्ञिध्वे। जज्ञे जज्ञिवहे जज्ञिमहे। परश्वः बालको जनिता। भगवान् धर्मरक्षार्थं सदा जनिष्यते। जायताम् अजायत, जायेत। जनिषीष्ट। अजनिष्ट, अजनि। प्रादुर्भावार्थक जन्धातोः भूतकाले (समाप्त जनन क्रिया)—लुङ् तिप् इकारलोपे अट् आगमे च्लेः सिच्प्राप्तेः परन्तु।

(६४०) दीप—प्रकाशे उत्पत्यर्थे जन, ज्ञाने, अर्थे बुध, पूरणार्थे पूरी, प्रसारण पालने अर्थे ताय, विकसने प्याय, इन धातुओं से परे च्लि के स्थान में चिण् आदेश विकल्प से हो। एकवचने त शब्द परे। इति च्लिस्थाने चिण् अनुबन्धलोपे ततः, (१) चिण् से परे त शब्द का लुक्=अश्रवण अदर्शन हो, इससे त का लोप हुआ। अजन् + इ। अत्र उपधावृद्धि प्राप्ते तां बाधित्वा। (२) **अनयोः**=जन और बध धातु की उपधा को वृद्धि न हो, चिण् ञित् णित् कित् प्रत्यय परे इति निषेधे। यदा च्लिस्थाने चिण् न भवति, तदा सिच् इट् षत्व ष्टुत्व अजनिष्ट। अजनिषाताम अजनिषत अजनिष्ठाः, दीपीदीप्तौ=ईकार इत् दीप्धातुका प्रकाशजनक व्यापारो अर्थः। बालकः मणिरिव दीप्यते। वर्तिका दीदीपे, दीपिता, दीपिष्यते, अदीपि, दीपजन आदि सूत्रेण चिण्। पक्षे अदीपिष्ट। २१। पदधातुका गति=गमन अर्थ है। वह क्रियाके वर्तमान कालमें लट्श्यन् ते। पद्यते, गच्छति। पेदे देवदत्तः ज्ञानं परश्वः पत्ता। पत्स्यते, पद्यताम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पेदे। पत्ता। पत्सीष्ट। ३ चिण् ते पदः ३।१।६०। पदेश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे। अपादि। अपत्साताम्। अपत्सत। विद सत्तायाम्। २२। विद्यते। वेत्ता। अवित्त। बुध अवगमने। २३। बुध्यते। बोद्धा। भोत्स्यते। भुत्सीष्ट। अबोधि, अबुद्ध। अभुत्साताम्। युध संप्रहारे। २४। युध्यते।

अपद्यत्, पद्येत पत्सीष्ट। अपादि-गत्यर्थक पदधातोः समाप्तगमन क्रिया भूतकाले लुङ् अट् त च्लि तस्य स्थाने। ३। पदधातु से परे च्लि स्थाने चिण् होत शब्द परे। इति च्लिस्थाने सिच् चर्त्वे। अपत्सत् अपत्थाः अपत्साताम्, अपध्वम्। अपत्सि अपत्स्वहि अपत्समहि। यत्र झलिपरे अस्ति तत्र झलोझलि इति सकार लोप। पद धातु के अनेक अर्थ है। अप्रसिद्ध अर्थों के द्योतक उपसर्ग होते हैं। यथा—प्रयत्पाणिः शरणं, प्रपद्ये=ग्रहण करना, उपपद्यते=उपपन्न होना, उत्पद्यते=जन्म लेना, आपद्यते=आपत्ति होना, निष्पद्यते, सिद्ध होना, विपद्यते=विपत्ति में पड़ना। सम्पद्यते= सम्पन्न होना, उपपादन=निष्पादन। प्रपन्न।

(२२) विद्धातु का सत्ता उपस्थितिः वर्तमानत्व, अस्तित्व जनक व्यापार अर्थ है। अनिट् अकर्मकश्च, इस धातुमें सत्ता रूप फल की, स्पष्ट प्रतीति है, किन्तु क्रिया की नहीं, वह कर्ता में प्रत्यय होने से अनुमित है। स विद्यते, सनकादयः विद्यन्ते। भवान् वेत्ता, वेत्स्यते। संस्कारः। विद्यतां यथा—सूर्यः अविद्यत्। भवान् विद्येत। वित्सीष्ट। अवित्त। (२३) बुध—धातु का अवगमन ज्ञान के अनुकूल व्यापारो अर्थः। ज्ञान की क्रिया वर्तमान रहने पर बुध्यते। समाचारं बुबुधे, शास्त्रं बोद्धा, गुणो। तयोर्धोधः धस्य चर्त्वे, शस्त्रं (भोत्स्यते) एकाचो बशो इति भषभावे इति व स्थाने भ (वह शास्त्र समझेगा)। तुम शास्त्र समझो बुध्यस्व, यथा—स बुध्यतां, भुत्सीष्ट। अत्रापि भष्भावे चर्त्वे, ईश्वर चाहेंगे अवश्य ज्ञान होगा। नारद इत्यबोधि कृष्णः। दीप जनबुध इति च्लेः चिण्, यदा न चिण् तदा झलोझलि सिच् लोपे अबुद्ध। झषस्तथोर्धोऽधः।

अभुत्साताम् बुध के 'ब' को भष् भावेन 'भ' अभुत्सत। सभी वेदान्त समझें। अबुद्धाः अभुत्साथाम् अभुद्ध्वम्। अभुत्सि अभुत्स्वहि अभूत्समहि (२४) युध् धातु का सम्प्रहार संग्राम खुलीमार के अनुकूल व्यापार अर्थ। अयमनिट् अकर्मक अत्मनेपदी च। सम्प्रहरण क्रिया प्रचलित रहे तब युध्यते। बालकौ युध्येते। शत्रवः परस्परं युध्यन्ते, युध्यसे युध्येथे युध्यध्वे। युध्ये, युध्यावहे युध्यामहे। संग्रामकी क्रिया की परोक्षकालिक समाप्ति अर्थ में लिट् युध-युध युयुध त-एस्, युयुधे नकुल, सर्पेण सह। मेषः श्व योद्धा, प्रहरणार्थक् युधधातोः अद्यभिन्नभविष्य, काले अर्थे लुट् तास् तिप् डा लघूपध् गुणे झषस्तथोर्धोधः त स्थाने ध, धातु धकारस्य जश्त्वेन दकारे। अत्र इट् न भवति, अनुदात्तोपदेश धातुः अनिट्भवति। योद्धारौ योद्धारः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

युयुधे। योद्धा। अयुद्ध। सृज विसर्गे। २५। सृज्यते। ससृजे। ससृजिषे।

४ सृजि-दृशोर्झल्यमकिति ६।१।५८। अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति। स्रष्टा। स्रक्ष्यते। सृक्षीष्ट। असृष्ट। असृक्षाताम्। मृष् तितिक्षायाम्। २६। मृष्यति, मृष्यते। ममर्ष। ममर्षिथ। ममृषिषे।

योद्धासे योद्धासाथे योद्धाध्वे योद्धाहे योद्धास्वहे योद्धास्महे। सामान्य भविष्यकालिक। योधिष्यते, आपत्तिभिः। भवानपि परिस्थितिभिः युध्यतां यथा—करपात्रीः धर्मार्थं अयुध्यत। यदि धार्मिकः युध्येत तर्हि कल्याणं भवेत्, युत्सीष्ट, युद्धक्रियासमाप्तौ भूतकाले लुङ् अयुद्ध। अयुधसत् झलोझलि इति सलोपे त स्थाने 'ध' जश्त्वे। बलकेशवौ, अयुत्साताम् यथा—राजानः अयुत्सत अयुद्धाः अयुत्साथाम्। अयुत्सि अयुत्स्वहि अयुत्समहि। अयोत्स्यत् अयोत्स्येताम्।

(२५) सृज्धातुका विसर्ग विशेष सृष्टिकरना अर्थः। यद्यपि विपूर्वक सृज् का विदाकरना, त्याग अर्थ, यथा—विसर्जनं विसृजति तथापि धात्वर्थमें निर्दिष्ट होनेसे विशेष निर्माण अर्थ भी है, केवल सृजका प्रयोग निर्माण अर्थमें ही है, यह निर्माणकी परोक्ष कालिक क्रिया रहने पर भवनं ससृजे। ससृजाते ससृजिरे। ससृजिषे ससृजाथे ससृजिध्वे। ससृजे ससृजिवहे ससृजिमहे। सृष्टि (निर्माण) किया—अद्य भिन्न भविष्यकालमें लुट् सृज् ता (तास् डा)। (४) अनयोः=सृज् और दृश्धातुके झलि=झलादि अकित्प्रत्ययपरे अम् आगम् हो। सृअ ज् ता ऋ स्थाने यण् जकारस्य व्रश्चभ्रस्जेति षत्वे, ततः ष्टुत्वेस्रष्टा। स्रष्टारौ। स्रष्टारः। स्रष्टासे स्रष्टाध्वे स्रष्टाहे स्रष्टास्वहे स्रष्टास्महे। कुलालः मृतमृत्पात्राणि स्रक्ष्यते सृज् स्य ते। झलादि किद्भिन्न प्रत्ययः 'स्य' अतः अम् आगमो भवति। जकारस्य व्रश्चेति षः तस्य कः स्यं सकारस्य षः कषसंयोगे क्षः। स्रक्ष्येते। भवान् शकटादीन् सृज्यताम् यथा—ब्रह्मा सर्वान् असृज्यत। त्वमपि सृज्येः। यथा—बालकाः अत्र सीयुट कित् अस्ति तेन अम् न भवति सृक्षीरन् ध्रुवाय ध्रुवलोकम् असृष्ट विष्णुः। असृजस्त् झलोझलि सलोपे षत्वे ष्टुत्वे रूपम्। अत्रापि लिङ् सिचावात्मनेपदेषु इति सूत्रेण सिच्कित् भवति, तेन 'अम्' न। असृक्षाताम् अत्र जकारस्य षत्वे षढोः कः सि। असृत असृक्थाः असृक्षाथाम् असृड्ढ्वम् असृक्षावहि असृक्षामहि।

अस्रक्ष्यत (२६) मृष्धातुका तित्तीक्षा (सहनं) वर्दास्त करने के अनुकूल क्रिया अर्थ। यह सेट् स्वरितेत् सकर्मक, उभयपदीं, मृष्यति लट् तिप् श्यन् (सहन करता है)। दुष्टं मृष्यते।-सहन क्रिया का परोक्षभूतकाल मृष्-मृष् मर्‌मृष् ममृष ममर्ष (बहुत क्षमाकर चुका) ममृषतुः प्रजाः ममृषुः। यत्र कित् प्रत्ययः तत्र न गुणः। ममर्षिथ ममृषथुः। ममृषे ममृषाते ममृषिरे क्रादिनियमात् नित्यमिट् सहन-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

मर्षितासि, मर्षितासे। मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। णह बन्धने। १७। नह्यति, नह्यते। ननाह। ननद्ध, नेहिथ। नेहे। नद्धा। नत्स्यति। अनात्सीत्, अनद्ध।

इति दिवादयः।

अथ स्वादयः

षुञ् अभिषवे। १। ६४५ स्वादिभ्यः श्नुः ३। १। ७३। शपोऽपवादः। सुनोति। सुनुतः (५०१) हुश्नुवोरिति यण्। सुन्वन्ति। सुन्वः, सुनुवः।

क्रिया सभी कर्ता में माने मर्षितासि एक महीने के बाद सहन करूँगा। तिप् तास् डा इत् गुण् मर्षितासे थासः से मर्षिष्यति। आप कब क्षमा करेंगे। इट् स्य, गुण, पापः दुखं मृष्यतु, मृष्यताम् गुरुः अमृष्यत, मृष्येत मृष्यात् मृक्षीष्ट अमर्षीत् अमर्षिष्ट, अमर्षिष्यत् विमृष्यति। आदिमें उपसर्ग जुड़नेपर विचार आदि अर्थ हैं। (२७) नह् बन्धने=बांधना संयत, परिधान, अर्थः अनिट्, स्वरितेत् उभयपदी सकर्मक, स उपानहौ नह्यति। यथा—अग्रजः ननाह, नेहतुः नेहुः, अत एकहल्मध्ये इति एत्वे अभ्यासलोपे। नेहिथ नहनह ननह, इट् थल् थलि च सेट् इति एत्वेऽभ्यासलोपे इट् अभावपक्षे ननहथ नहोधः इति हकारस्य धः झषस्तथोर्धोधः इति थस्य धः पूर्वधकारस्य जश्त्वे, त्व पशून् कदा ननद्ध। नेहथुः नेह ननाह ननह नेहिव नेहिम, आत्मनेपदे नेहे नेहाते नेहिरे। आगामिवर्षे वत्सान् नद्धा (बांधेगा) नत्स्यति। नहोधः तस्य चर्त्वं तकारः। नह्यतु नह्यताम्, अनह्यत, नह्येत्, नह्यात् नत्सीष्ट अनात्सीत् अनाद्धाम् अनात्सुः अनात्सीः, अनाद्धम् अनाद्ध। अनात्सम् अनात्स्व अनात्स्म, अनद्ध अनत्साताम् अनत्सत अनद्धाः अनत्साथाम् अनध्वम् अनत्सि अनत्स्वहि अनत्स्महि। अनत्स्यत्–त। सन्नद्ध सन्नह्यतिमें उपसर्ग विशिष्टका तैयार होना अर्थ है।

इति प्रभाकरीटीकायां दिवादिः।

(५) अथस्वादिः—अथ श्यन् विकरण विषयक धातुगण समाप्त्यजन्तरं सुधातः आदौ यस्य प्रकरणस्य तत् आरभ्यते स्वादिगणका भेदकधर्म श्नु विकरण है। (१) ञ इत् षुधातुका अभिषव=स्नपनं लता आदि निचोड़ना, स्नानं=स्नान करना, कराना भी, पीडनम्=निचोड़कर चुआना, सुरासन्धानं सोमलता आदिका रस निकालना, मद्य् प्रकाना अर्थ षोपदेश, उभयपदी, सकर्मकः।

(६४५) स्वादिगणपठित धातुओंसे श्नु प्रत्यय हो, प्राप्त शप्को बाधकर यह श्नु शित्, सार्वधातुक, अपित्, ङित् भी है। सुनोति बारम्भारं स्नाति, लतां

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुन्वहे, सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि, सुनवै । सुनुयात् । सूयात् । ६ स्तु-सु-धूञ्भ्यः परस्मैपदेषु

निश्चोतति, परान् पीडयति, । आदि क्रियाओंके वर्तमान रहते षु धातो लट् तिप् शपं बाधित्व स्वादिभ्यः श्नुः, अनुबन्ध लोपे, धात्वादेः षः सः । उकारस्य सार्वधातुक रे गुणे, परन्तु धातोः उकारस्य न गुणः अपित् ङित् व्यवधानात् । सोनं सुनुतः अत्र तस् ङित् अस्ति । यस्य फलं गुणाभावः सुन्वन्ति, अभिषवार्थक सुधातोः वर्तमान-कालिके सुरासन्धानार्थे लट् बहुवचने झि झोऽन्तः आदेशे शपः श्नुः । सु नु अन्ति । ङित् सन् गुण निषेधः उवङ् आदेशं बाधित्वा हुश्नुवोः सार्वधातुके इति यण् । त्वं शिवं सुनोसि अभिषेकं करोषि, यूवां वस्त्र सुनुथः, सुनुथ, अहं अङ्गौच्छ वस्त्रं सुनोमि आवां सुन्वः सुनुवः लोपश्चा-स्वोः इति उकारस्य लोप विकल्पे । एवं सुन्मः सुनुम, सुनुते स्नानं कुरुते । सु नु त टेः एत्वे अपित् 'नु' ङित् अस्ति, तस्य फलं गुणनिषेध । सुन्वाते आताम् परे हुश्नुवोः इति उस्थाने यण् टेः एत्वे । सुन्वते । अत्र झस्थाने 'आत्मनेपदेष्वनतः' इति अत् आदेशे यण् पूर्ववत् । सुनुषे सुन्वाथे सुनुध्वे । सुन्वे सुन्वहे सुनुवहे । म्वोः परे उकारलोपविकल्पे सुषाव—अभिषेकसुरासन्धाननिश्चयोतनफल जनकक्रियावाचक सुधातोः अद्यभिन्नभूतकाले (समाप्त क्रिया अर्थे) परोक्षे लिट् तिप् णल, द्वित्वे अभ्यासकार्ये, वृद्धिः अवादेशे, षत्वे दुःस्वप्ननिश्चयरणाय शिवं सुषाव, सुषुवतुः सुषुवुः । सुषविथ सुषोथ सुषुवथुः । सुषाव सुषव सुषुविव सुषुविम, आत्मने-पदे त स्थाने एश् द्वित्वे, उवङ् आदेशे सुषुवे सुषुवाते सुषुविरे । सुषुविषे सुषुआथे सुषुविध्वे सुषुवे सुषुविवहे । सोता मद्यक्षरणकर्ता । सोष्यते, वस्त्रपीडमं करिष्यति, सुनोतु, सुनुतात्, सुनुतां सुनुवन्तु । सनु—अत्र सि स्थाने 'हि' कृते 'उतश्च प्रत्ययात्' इति हेलुंकः सुनुतं सनुत, सुनवानि = सुनुआट् नि । पित् ङित् न भवति । उकारस्य गुणे अवादेशे रूपं सुनवाव सुनवाम, सुनुतां सुन्वातां सुन्वताम् सुनुस्व सुन्वाथां सुनुध्वम् आत्मनेपदे उत्तम पुरुषस्य एकवचने इट आट आटश्चेति वृद्धिः 'एतऐ' उकारस्य गुणे अवादेशे सुन्वै सुन्वावहै असुनोत् असुनुताम् असुन्वन् । असुनोः असुनुतम् असुनुत । असुनवम् असुन्व असुन्म । असुनुत असुन्वाताम् असुन्वत असुनुथाः । सुनुयात् । सूयात् अकृत्सार्वधातुकपरे दीर्घः । सुन्वीत । सुन्वीयातां सुन्वीरन् । सुन्वीथाः । सोषीष्ट सोषीयास्तां सोषीष्ठाः ।

(६) स्तुसु धुञ्धातुसे परे सिच्को इट् हो परस्मैपद परे । असुत् इति स्तुसु-धुञ्भ्यः इति सिच इट् आगमे अस्तिसिचोऽपृक्ते इति ईट् आगमे । इटः ईटि इति सिचसकारस्यलोपे, सवर्णदीर्घे सिच्वृद्धिः आव् आदेशे । असावीत् असाविष्टाम् असा-विषुः असावीः असाविष्टम् असाविष्ट । असाविषम् असाविष्व असाविष्म, आत्मनेपदे असुसत —गुणे षत्वे ष्टुत्वे असोष्ट । असोषाताम् असोषत असोष्ठाः असोष्यत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७।२।७२। एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु। असावीत्। असोष्ट। चिञ् चयने। २। चिनोति। चिनुते। ७ विभाषा चेः ७।३।५८। अभ्यासात् परस्य कुत्वं वा स्यात् सनि लिटि च। चिकाय, चिचाय। चिक्ये। चिच्ये। अचैषीत्, अचेष्ट। स्तृञ् आच्छादने। ३। स्तृणोति, स्तृणुते। ८ शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१। अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ये। तस्तार। तस्तरतुः तस्तरे। (४३८) गुणोऽर्तीति। स्तर्यात्। ९ ऋतश्च संयोगादेः ७।२।४३। ऋदन्तात् संयोगादेः परयोर्लिङ्-

---

(२ चिधातोः चयनम्=इकट्ठा करना चुनना, संग्रह के अनुकूलव्यापारः अनुदात्तोपदेश, अनिट्. उभयपदी, सकर्मकश्च रामः पुष्पं चिनोति। तण्डुलात् कंकड़ चिनुते सु धातुके समानरूप।

(७) अभ्यास से परे चिके चको कुत्व विकल्प हो सन् लिट् परे। पुष्पाणि कदा चिकाय, चयनानुकूल व्यापार वाचक चिधातोः अद्यभिन्नभूतकाले लिट् द्वित्वादिः चिचिअ। विषापाचेः इति द्वितीय चकारस्य कुत्वे अचोऽणिति इति अजन्तं मत्वावृद्धिः आदेशे। यदा न कुत्वं तदा चिचाय चिक्यतुः चिच्यतुः। चिकेथ चिकयिथ। चिचेथ चिचयिथ चिकाय चिकय इत्यादि। चेता (धान्यानां चयनकर्ता)। चेष्यति, चेष्यते। प्रत्याशिनां चयनं करिष्यति। भवान् चिनोतु, चिनुताम् अचिनोत् अचिनुत। चिनुयात् चिन्वीत। चीयात् चेषीष्ट अचैषीत् अचेष्ट।

अपचिनोति=नीचे गिरता है। अवचिनोति। निचले भागसे चुनता है। निश्चनोति=निश्चयं करोति संचिनोति संग्रहक०। (३) स्तृधातुका आच्छादन, आवरण, ढकना अर्थः। स्तृणोति आच्छादयति गृहम्। स्तृ 'नु' ति गुणे ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। विस्तृणोति = चांदनी फैलती है। या विस्तार करता है, आस्तृणोति = आच्छदनं करोति।

(८) अभ्याससंज्ञकसे शर् = श ष स अक्षर पूर्वमें हों ऐसा खय् प्रत्याहारके अक्षर शेष रहे, अन्यका लोप हो। हलादि शेषको बाधकर। आस्तरणार्थकस्तृधातोः अद्यभिन्न परोक्षभूतकाले अर्थे लिट् स्तृ स्तृ अ शर्पूर्वाखयः सूत्रेण शर्पूर्वकखयः अभ्यासस्य सकारः। स शिष्यते। अन्यः सकारः लुप्यते। ऋतश्चसंयोगादेर्गुणः इति अर्गुणे उपधावृद्धिः। तस्तार। तौ आस्तरणं तस्तरतुः तस्तरे, तस्तराते तस्तरीरे तस्तरी— फैली है। स्तर्ता। स्तरिष्यति। स्तरतु (ऋद्धनोः इति इट्) स्तृणोतु। अस्तृणुत। स्तृणुयात् स्तर्यात्। गुणोर्ति इति गुणः। (९) ऋदन्तसंयोगादिधातुसे परे लिङ् सिच् को इट् विकल्प हो। तङ् = आत्मनेपदे परे स्तरिषीष्ट। स्तृ सीसत् अत्र ऋतश्च—आदि सूत्रेण विकल्पेन इट्। आर्धधातुकगुणे षत्वे ष्टुत्वे रुपम्। यदा न इट् तदा उश्च इति कित्वे गुणनिषेधे स्तृषीष्ट। अस्तार्षीत् अस्तार्ष्टाम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सिचोरिड् वा स्यात्तङि। स्तरिषीष्ट। स्तृषीष्ट, अस्तरिष्ट। अस्तृत। धूञ् कम्पने। ४। धूनोति, धूनुते। दुधाव। (४७६) स्वरतीति वेट्। दुधविथ, दुधोथ।

६५० श्र्युकः किति ७। २। ११। श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न। परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्। दुधुविव। दुधुवे। अधावीत्। अधविष्ट। अधोष्ट। अधविष्यत, अधोष्यत्। अधविष्यताम्, अधोष्यताम्। अधविष्यत, अधोष्यत। इति स्वादयः।

इगन्तलक्षणावृद्धिः अ तरिष्ट, ऋतश्चसंयोगादेः इति इट्। यदा न इट् तस्मिन् पक्षे 'उश्च' कित्, गुण निषेधे ह्रस्वादङ्गात् इति सलोपे। अस्तृत।

(४) धु धातुका धुनना (धुनियां कर्म) कम्पन = कँपाना हिलाना आदि अर्थः। हिरण्यकशिपुः, चम्पक वनानि धुनोति, कार्पासं —रूई धुनता है। शप् के स्थानमें श्नु प्रत्यय गुण धुनुतः धुन्वन्ति। धुनुते धुन्वाते धुन्वते। परोक्षकालिककम्पन क्रिया अर्थमें। धु-त—धू धू दुधू अ। अचोऽञ्णिति वृद्धिः इति आयादेशे दुधाव। दुधुवतुः दुधविथ-दु 'धु इ' थ इति दशायां स्वरतिसूतिसूत्रेण इट् विकल्पे। यदा न इट् तदागुणे दुधोय। धविता। (६५०) श्रि, एकाच् और उगन्त धातुओंसे परे गित् कित् वलादिआर्धधातुकको इट् न हो। दुधुव—म। अत्र स्वरतिसूयति इति विकल्प इट् विधायकं सूत्रं परमपि (पर है) विप्रतिषेधे परं कार्यं भवति। तथापि स्वरत्यादि के विकल्पको बाधकर, पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्ड (पहले निषेध का आरम्भ) होनेके सामर्थ्यसे अनेन-श्र्युकः किति, इति सूत्रेण, इट् निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमात् निषेध को बाधकर नित्य इट् हुआ। दुधविथ दुधुवथु। दुधुवे दुधुवाते दुधुविरे। धविता, धोता। धविष्यति धोष्यति। धूनोतु धूनुताम्। अधुनोत् अधुनुत। धुन्वीत धूयात्। धविषीष्ट, धोषीष्ट। अधावीत् अधाविष्टाम् अधाविषुः। इतिस्वादयः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६—अथ तुदादयः

तुद व्यथने । १ । ६५१ तुदादिभ्यशः ३ । १ । ७७ । शपोऽपवादः । तुदति, तुदते । तुतोद । तुदोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत्, अतुत्त । णुद प्रेरणे । २ । नुदति, नुदते । नुनोद । नोत्ता । भ्रस्ज पाके । ३ । (६ : ४) ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः, शस्य जश्त्वेन जः । भृज्जति,

---

अथतुदादिः

(१ तुद्धातु हो आदिमें जिस प्रकरणके । पूर्व पर प्रकरणका भेदक धर्म शप्के स्थानमें श विकरण जो पित् नहीं है । शप्पित् है । शको ङिद्वत् तन्निमित्तकगुण, सम्प्रसारण, आदि नहीं होते । शप् अनुदात्त, श उदात्त है । स्वरितेत् उभयपदी, अकर्मक, तुद्का व्ययनं दुःखदानं पीडापहुँचाना । दैत्यः देवान् तुदति तुतुदे व्यथनार्थक (परपीड़ाप्रापणार्थक) तुद् धातोः लट्तिप्श = अ अत्र गुणो न भवति । श-ङित् अस्ति । तुदतः तुदन्ति तुदते । तुतोद, लिट् तिप् णल द्वित्वादिः गुणे । न जाने कब पीड़ा दिया । तुतुदतुः तुतुदुः तत् चक्रुः तुदादि थल्परे द्वित्वादि कार्ये गुणे, क्रादि-नियमात् नित्यमिट् तुतुदथुः : तुतुदे । व्यथित किया त स्थाने एश् । असंयोगात् लिट् कित्, तस्य फलं गुणाभावः । व्यथन क्रिया अद्यभिन्न भविष्यकालिकी हो । तोत्ता तोत्तसि तोत्तासे, तोत्तास्मि । तोत्स्यति । तुदतु तुदतां तुदेत्. तुद्यात्, तुत्सीष्ट । अतौत्सीत् । सिचि वृद्धिः, ईडागमे दस्य चर्वे अतौत्ताम् अतौत्सुः । अतौत्सीः, अतौत्तम्, अतौत्त । झलोझलि इति सिच् सकारस्य लोपः । अतुत्त अतोत्स्यत् अतोत्स्यत् अतुत्साताम् अतुत्सत अतुत्थाः ।

(२) णुद=नुद् धातुका प्रेरणा, क्रियामें प्रवृत्तिजनकव्यापारो अर्थः । नुदति । शिक्षक शिष्यको प्रेरित करता है । विपूर्वक नुदधातु का विनोद = बहलाना अपनोद अपनुदति दूरकरना । प्रणुदति=सम्पूर्णरूपं तुद्वत्तुल्यं नोत्ता, नोत्स्यति, अनौत्सीत् अनोत्स्यत् । (३) भ्रस्ज धातुका पाके=भाड़में भूंजने के अनुकूल क्रिया अर्थः चणकं कलायकं (मटर) मसूरिकां गोधूमं च भृज्जति । भ्राष्ट्रे भर्जनाय भ्रस्ज्धातोः वर्तमानकालिकीभ्राष्ट्रभर्जनक्रियावर्तमाने लट् तिप्, तुदादिभ्यः शः ङित् अस्ति । भ्रस्ज अति-इति दशायां ग्रहिज्यावयिव्यधि इत्यादि सूत्रेण र-स्थाने ऋ सम्प्रसारणे । अकारस्य पूर्वरूपे सस्य श्चुत्वेन तस्य झलांजशिझसि इति जकारे भृज्जति । एवं भृज्जते । लावा लाई भूंजता हूँ । भूँजता है । भृज्जेते, भृज्जन्ते । भृज्जसे भृज्जेये

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भृज्जते । २ भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६ । ४ । ४७ । भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज । बभर्जतुः । बभर्जिथ, बभर्ष्ठ । बभ्रज्ज । बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिथ । (३०९) स्कोरिति सलोपः (३०७)

भृज्जध्वे । भृज्जे वृद्धा भृज्जति । अहं भृज्जे । (२) भ्रस्जधातु के रोपधयोः= रेफ और उपधा दोनों के मिलित स्थानमें रम् आगम हो विकल्पसे आर्धधातुक प्रत्यय परे, रम् में अम् दोनों इत् । केवलं रेफः शिष्टः मित्वात्=रम् के मित् होने से अन्त्य अच्से परे हो स्थानषष्ठी निर्देशात्=रोपधयोः में स्थानषष्ठी उच्चरित है रम् होने पर रेफ और उपधा दोनोंकी निवृत्ति हो गयी, क्योंकि रेफ उपधा दोनों के ही स्थान में रम् हुआ है । कलायकं यवं च कदा बभर्जः । पाकजनकक्रियावाचक भ्रस्ज धातोः परोक्षेलिट् तिप्णल् भ्रस्ज अ इति दशायां भ्रस्जोरोपधयो इति सूत्रेण भ्रस्ज (के) रेफस्य उपधाभूतसकारस्य च स्थाने रम् आगमे रेफस्य सकारस्य च निवृत्तिः । अनुबन्धलोपे । भर्ज् भर्ज् बभर्ज । बालिके धन्यानि बभर्जतुः; यदा न इट् बभर्जिथ । भारद्वाजमते पाक्षिक इट् । सकार लोपे, जकारस्य बभर्ष्ठ— व्रश्चभ्रस्ज इति जकारस्य षत्वे । सकारस्य ष्टुत्वे । यदा रम् आगमो नभवति तदा भ्रस्ज शब्दस्य द्वित्वादिकार्ये बभ्रस्ज अ इति स स्थाने श्चुत्वेन शः तस्य जश्त्वेन जः । बभ्रज्जथुः । बभ्रजिथ, अत्र भारद्वाजनियमेन इट् । यस्यमते न इट्, तत्र बभ्रस्जथ 'स्कोः संयोगाद्योः' इति संयोगादि सकारस्य लोपे जकारस्य व्रश्चेति षत्वे, ष्टुत्वे च बभ्रष्ट । भ्रस्ज-ता—रम् आगमे, रेफसकारयोः निवृत्तिः (लोपः) व्रश्च भ्रस्ज इति षत्वे, तकारस्य ष्टुत्वे भर्ष्टा । यदा रम् न भवति । तदा संयोगादिसकारलोपे, जकारस्य षत्वे, तकारस्य ष्टुत्वे भ्रष्टा । भर्क्ष्यति, भ्रस्ज् स्यति । रम्आगमे । भ्रज-स्यति जकारस्य षत्वे तस्य षढोकःसि इति ककारे स्य सकारस्य षत्वे संयोगे-क्ष रुपम् । रम् अभावपक्षे सकारस्य संयोगादिलोपे षत्वे भ्रक्ष्यति । ङ्किति—कित् ङित् आर्धधातुक परे रमागम=भ्रस्जोरोपधयोः सूत्रसे प्राप्त रम् आगम को बाधकर सम्प्रसारण हो । पूर्वं विप्रतिषेधेन=विप्रतिषेधे परंकार्यम् । सूत्र से परकार्य रम् आगमको बाधकर पूर्व विप्रतिषेधसे सम्प्रसारण हुआ । भ्राष्ट्रे भर्जनार्थक भ्रस्ज धातोः आशीर्वादार्थे लिङ् तिप्, यास्, 'किदाशिषि' सूत्रेणं यासुट् कित् भवति । यहाँ प्राप्त रम् आगमको बाधकर पहले सम्प्रसारण हुआ । पूर्वविप्रतिषेधसे रम् आगम भर्ष्टा में चरितार्थ है । सम्प्रसारण इज्यात् में वार्तिक से पूर्व विप्रतिषेध से सम्प्रसारण प्रबल पड़ा । भृस्ज् या त् । सकारस्य श्चुत्वे तस्य जश्त्वेन जकारे । भृज्ज्यास्ताम् । आत्मनेपदमें एकबार रम् आगम, एकबार सम्प्रसारण भ्रस्ज् सीसृत् । सकारस्य संयोगादिलोपे, जकारस्य षत्वे, षढोः क आदेशे, षत्वे ष्टुत्वे रम् आगमे भ्रक्षीष्ट सम्प्रसारण पक्षे भृक्षीष्ट ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

व्रश्चेति षः । बभ्रष्ठ । बभर्ज, बभ्रज्जे । भ्रर्ष्टा भ्रष्टा । भ्रक्ष्यति, भर्क्ष्यति । (क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन) भृज्ज्यात् । भृज्ज्यास्ताम् । भृज्ज्यासुः । भक्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट । अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत्, अभर्ष्ट, अभ्रष्ट । कृष विलेखने । कृषति, कृषते । चकर्ष । चकृषे ।

१ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ३ । १ । ५९ । उपदेशेऽनुदात्तो

तुम सदा भाड़में अन्न भूजा करो । कन्या यवं गोधूमं च अभ्राक्षीत् । अभ्रस्ज् स् त् इति दशायाम्, रम् आगमे रेफसकारयोर्लोपे वद्व्रज हलन्तस्याचः इति वृद्धिः । जकारस्य षत्वे षकारस्य कत्वे सिचः सकारस्य षत्वे ईट् आगमे रुपम्, यदा रम् आगमो न भवति, तदा सकारस्य संयोगादिलोपे अन्यत्कार्यं पूर्ववत् । अभ्राक्षीत् अभ्राष्टाम् अभ्राक्षुः । अभ्राक्षीः अभ्राष्टम् अभ्राष्ट । अभ्राक्षम् अभ्राक्ष्व अभ्राक्ष्म । सेविका कन्दम् आलुकं च । अभर्ष्ट । भूतकालिकभर्जन क्रिया अर्थ में लुङ् अभ्रस्ज स् त अत्र रेफ उपधासकारस्य च स्थाने 'रम्' आगमे झलोझलि सिच् सकारस्य लोपे जकारस्य षत्वे तकारस्य ष्टुत्वे रुपम् । रम अभावपक्षे सकारस्य संयोगादिलोप इति विशेषः । अभ्रष्ट अभ्रक्षाताम् अभ्रक्षत । अभ्रष्ठा अभर्ष्ट अभर्क्षाताम् अभर्क्षत, अभर्ष्ठाः अभर्क्षाथाम् अभर्ढ्वम् । यदा भर्ज्यं (भूजा) अभर्क्ष्यत अभ्रक्ष्यत तदा सर्वे अखादिष्यन् ।

(४) कृष्धातुका विलेखनम् भूमिकर्षणं = हलखींचना या कुदालसे गोड़नेके अनुकूल व्यापारो अर्थः स्वरितेत्, उभयपदी, अनिट्, सकर्मकः । किसान खेत जोतता है, यहाँ कर्षण खींचना रुप फल खेतमें है उस क्रिया को करने वाला किसान है । फल व्यापारका आश्रय भेद है । शप के स्थानमें तुदादिभ्यः—श=अ प्रत्यय । जो अपित् ङित्वत् भी है । जिसका फल है गुणका अभाव हलवाहक हल जोतता है । कृषकः क्षेत्रं कृषते । विलेखन (जोतना) क्रिया परोक्षमें समाप्त हो तब चकर्षः ; कृष् लिट् तिप्णल् कृकृष् । अभ्यास ऋ स्थाने अत् हलादि शेषः । उत्तर खण्ड ऋकारस्य गुणः । महिषासुरं चकर्ष जगर्ज च कृषे. आत्मनेपदे त तस्थाने एश् कृते गुणात् पूर्वविप्रतिषेधेन । ऋदुपधेभ्यः लिटः कित्वं भवति, तेन गुणो न । अभ्यासादि कार्ये । चकृषाते चकृषिरे, चकृषिषे । चकर्ष चकृषतुः चकृषुः । चकर्षिथ चकृषथुः चकृष । चकर्ष चकृषिव चकृषिम । हमलोग ऊसर खेत जोतते हैं । क्रष्टा विलेखनार्थक भूमिकर्षणार्थक कृष् धातोः अद्य भिन्नभविष्यकालिक • कर्षणक्रिया अर्थे लुट् तास् तिप्डा अनुबन्ध लोपे टिलोप कृष् ता इति दशायाम् । (३) अनुदात्तस्य = उपदेश अवस्थामें जो अनुदात्त और ऋदुपध=ह्रस्व ऋकार उपधामें हो उस धातुको 'अमं' हो विकल्पसे, झलादि कित् भिन्न आर्धधातुक परे । प्रसङ्गमें कृष् धातु उपदेशमें

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

य ऋदुपधस्तस्याम् वा स्याज्झलादावकिति । क्रष्टा, कर्ष्टा । कृक्षीष्ट । (स्पृश मृश कृष-तृप-दृषां च्लेः सिज्वा वाच्यः) । अक्राक्षीत, अकार्क्षीत् । अकृक्षत् । अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । क्सपक्षे-अकृक्षत । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । मिल सङ्गमे । ५ । मिलति, मिलते । मिमेल । मेलिता । अमेलीत् । मुच्लृ मोचने । ६ । ४ शे मुचादीनाम् ७ । १ । ५९ । मुच लिप्-

अनुदात्त, ह्रस्व ऋकार, उपधामें उससे परे किङ्भिन्न झलादि प्रत्यय तास् है अम् हुआ । कृ अष ता अत्र ऋकारस्य यण् तकारस्य ष्टुत्वे । अम् अभाव पक्षे आर्धधातुक गुणे कर्ष्टा-कर्ष्टारौ कर्ष्टारः । लड़का बड़ा होगा तब खेत जोतेगा । सामान्य भविष्य कालिक कर्षणक्रियामें क्रक्ष्यति कर्क्ष्यति क्रक्ष्यते । भवान् आत्मानम् उद्यानं कृषतु । कृषतां कृषेतां कृषन्ताम् । यथा—आभीरः कर्षणयन्त्रेण (ट्रैक्टर) अकृषत् अकृषत । खेत जोतने विषयकविधि, आज्ञा प्रेरणा, सम्भावना अर्थ में लिङ् । कृषेत् कृषेताम् कृषेयुः । कृषेत कृषेयातां कृषेरन् । कृष्यात् । आप अपनी भूमि प्रसन्न होकर कृक्षीष्ट— (कर्षणं कुर्यात्) कृष स्त इत्यवस्थायाम् 'षढोः क सि' इति ककारे षत्वे ष्टुत्वे कृक्षीष्ट लिङ् सिचावात्मनेपदेषु इति सूत्रेण लिङ् कित् भवति, तेन अमागमो न कृक्षीयास्तां कृक्षीयारन् कृक्षीष्ठा कृक्षीयास्यां कृक्षीय । भूतकालिक समाप्तकर्षणक्रिया अर्थे लङ् तिप् च्लि । ततः (वा) स्पृशः मृश कृश तृप दृप इन धातुओं से परे च्लिको सिच् विकल्पसे हो । इति सिच् पक्षे अम् आगम अक्राक्षीत् । अम् अभावे अकार्क्षीत् । क्स पक्षे अकृक्षत् । अकृष्ट । अत्र सिच पक्षे झलोझलि इति सलोपे ष्टुत्वे । अकृक्षाताम् अकृक्षत अकृढ्वम् । यदा च्लिस्थाने क्स भवति, तदा ष् स्थाने क । स स्थाने ष । अकृक्षत—यत्र कित् अस्ति तत्र 'अम्' न भवति । अकृक्षाताम् अत्र क्सस्याचि इति अकारस्य लोपः, अकृक्षन्त । अत्र झकारस्य अन्त आदेशे क्सस्याचि अकारलोपे तेन 'आत्मनेपदेष्वनतः' इति प्रवर्तते । अक्रक्ष्यत् अकर्क्ष्यत । निष्कृषति, संकृषति ।

(५) अकार इत् मिल धातुका सङ्गम—मेलनं मिलनामिलाना, फलजनक व्यापारो अर्थः; मेला, सम्मेलन आदि अनेकभाव, गङ्गा यमुना सरस्वती च मिलन्ति । एतासां सङ्गमो भवति, मिमेल (कुम्भ में सभी लोग मिले) मेलिता, मेलिष्यति, मिलतु, अमिलत, अमेलीत्, अमेलिष्यत् । (६) लृकार इत् मुच् धातु का मोचन मुक्त करना, छोड़ना या खोलना फलजनकव्यापारो अर्थः, सकर्मक अनिट् मुच् अति इति । (४) मोचनार्थक मुच् उपदेहार्थक लिप्, लाभार्थक विद्, लोपार्थक लुप, सिञ्चनार्थक सिच्, छेदनार्थक कृत्, दैन्यार्थक खिद्, पेषणार्थक पिस्, धातुओंसे नुम् हो सपरे । इति सूत्रेण नुम् (न्) आगमे तस्य अनुस्वारे अनुस्वारस्य ययिपरे परसवर्णे ञकारे । यत्र श प्रत्ययः तत्रैव नुम् भवति । मुञ्चति गां श्रीकृष्णः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विद्-लुप् सिच्-कृत्-खिद-पिशां नुम् स्यात् शे परे। मुञ्चति, मुञ्चते। मोक्ता। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुञ्चत्, अमुक्त। अमुक्षाताम्। लुप्लृ छेदने। ७। लुम्पति। लुम्पते। लोप्ता। अलुपत्, अलुप्त। विद्लृ लाभे। ८। विदति, विदन्ते। विवेद, विविदे। व्याघ्रभूतिमते सेट्। वेदिता। भाष्यमतेऽनिट्। परिवेत्ता। षिच क्षरणे। ९। सिञ्चति, सिञ्चते।

दिलीपः धेनुं बनाय मुमोच, श्वः नगरं मोक्ता—मुच्ता गुणे चकारस्य कुत्वे मोक्ष्यति मोक्ष्यते। मुञ्चतु मुञ्चताम्, अमुञ्चत। मुञ्चेत् मुच्यात्, पुषादिद्युतानि इति च्लिस्थाने अङ् अमुचत् अमुक्त। झलोझलि सलोपः। अमुक्षाताम् अमुक्षत। अमुक्थाः, अमुक्षाथाम् अमुग्ध्वम्। अमुक्षि, अमुक्ष्वहि, अमुक्ष्महि, अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यत। (७) लुप् धातुका छेदन, समाप्ति, लोप, अभाव, फलजनकक्रिया अर्थः। यह भी अनिट् है। लृदितकाफल 'लृदितः परस्मैपदेषु' च्लिस्थाने अङ् विधानम्। लुम्पति शूर्पणखा रावणवंशं, लुलोप श्वः सर्वं लोप्ता, लोप्स्यति, लुम्पतु, अलुम्पत्, लुम्पेत्, अलुपत्, अलुप्त। (८) विद धातुका लाभप्राप्ति, फलजनकक्रिया अर्थः, यहाँ भी लृदितका फल च्लिको अङ् होना। अनिट् उभयपदी, विप्रः 'गाम्' विन्दति शे मुचादीनामिति नुम् विन्दते। एकलव्यः श्रद्धया धनुर्ज्ञानं विवेद, विविदे। व्याघ्रभूति, आचार्यके मतमें विद्धातु सेट् है। अनुदात्तोपदेश धातुमें पठित है। यह मत चान्द्र और दुर्ग आचार्य का भी है। परन्तु भाष्यकारके मतमें अनिट् है प्रमाणमें परिवेत्ता उदाहरण है। परिपूर्वक विद्धातुसे तृच, किन्तु इट् का न होना। जेष्ठं परित्यज्य दाराग्निग्राही, परिवेत्ता उच्यते। जेठ भ्राताके पहले छोटे का विवाह होना परिवेत्ता है। वेदिष्यति वेत्स्यति। अविदत् अवित्त।

(९) षिच् धातुके षको स स्वरितेत् अनिट्, सकर्मक सिच् धातुका क्षरण, चूना, पसीझना, सींचना, फलजनकक्रिया अर्थः सींचने, पानी रेंगने की क्रिया, वर्तमान रहते कर्ता अर्थमें लट् तिप् तुदादिभ्यः श (अ) शेमुचादीनाम् इति नुम् (न) तस्य अनुस्वारे परसवर्णे ञकारे सिञ्चति सिञ्चते क्षेत्रं जलेन। स उद्यानं सिषेच, अहं तु लघुवाटिकां सिषेच। सभी किसान अपना खेत सींचे, सिषेचिथ। सिषिचे सिषिचाते सिषिचिरे सिषिचिषे, सिषिचाथे सिषिचिध्वे, बलादिप्रत्यये परे नित्यमिट्, कल नहरके जलसे सींचूँगा, सेच्ता चकारस्य कुत्वे। सेक्ता सेक्तारौ सेक्तारः, ऋतुकाले इन्द्रः क्षेत्राणि सेक्ष्यति, चकारस्य कुत्वे, षत्वे, क्षत्वे। सेक्ष्यते। विपसया व्याकुलो भवान् आत्मानं सिञ्चतु, सिञ्चताम्। यथा—वरिणा वनस्पति ह्यः असिञ्चत्। असिञ्चत। अद्यभिन्नभूतकालिक सिञ्चनक्रिया। सिञ्चेत्। यदि आप दस बीघे खेत सींचे तो जीवन लहलहा उठे। सिच्यात्-आप अवश्य सींचे। सिक्षीष्ट। असिचत्, क्षरणार्थक सिच् धातोः भूतकालेसमाप्तसिञ्चन क्रिया अर्थे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६५५ लिपि-सिचि ह्वश्च ३।१।५३। एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। असिचत्।
६ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४। लिपि-सिचि-ह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि। असिचत, असिक्त। लिप उपदेहे।१०। उपदेहो=वृद्धिः। लिम्पति, लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्, अलिपत, अलिप्त। इति- उभयपदिनः। कृती छेदने।११। कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। अकर्तीत्। खिद परिघाते।१२। खिन्दति। चिखेद। खेत्ता। पिश अवयवे।१३। पिंशति। पेशिता। ओव्रश्चू छेदने।१४। वृश्चति।

कर्तरि लुङ् तिप् इकार लोपे, अट् आगम, च्लिस्थाने, सिच्, प्राप्ते ततः। (६५५) एभ्यः—लीपनार्थक लिप्, सिच् तथा स्पर्धार्थक ह्वेञ्, धातुओंसे परे च्लिको अङ् आदेश हो इति अङिरूपम्। असिच'ताम्। असिचः। आत्मनेपदेतु। लिप् सिच् ह्वेञ् धातुसे परे च्लि को अङ् विकल्पसे हो, तङि=आत्मनेपदेपरे। असिचत, असिचाताम् असिन्चत। असिचथाः, यदा न अङ् तदा च्लिस्थाने सिच् झलोझलि सूत्रेण सलोपे कुत्वे, असिक्त, असिक्षाताम् असिक्षत। अशिक्था अशिक्षाथाम् असिक्ध्वम्। यदा पुष्पवाटिकां असेक्ष्यत तदादेवत्वम् ऐधिष्यत्।

(१०) स्वरित (अकार) इत् अनुदात्तोपदेश, अनिट्, सकर्मक, लिप् धातुका उपदेह=वृद्धि (लीपने, पोतनेसे स्वच्छता की सम्वृद्धि ही वृद्धि है) तदनुकूलव्यापारो धात्वर्थः, शेमुचादीनाम् नुम्। तिस्रः गृहान् लिम्पन्ति, बालिकायें मन्दिरको पोत रही हैं, यथा—दीपावल्यां सर्वे गृहाणि लिलिपुः लिलिपिरे। अहन्तु श्वः लेप्तास्मि। सभी त्यौहारोंमें लेप्स्यन्ति, अलिम्पत्। लिम्पेत् लिप्सीष्ट। लिप्यात्। ग्रामवासिनः, स्वभवनानि अलिपन्। अलिप्त अलिप्साताम् अलिप्सत। (११) इकार इत् कृत् धातुका छेदन, कर्तन काटना फल जनकक्रिया अर्थ है। जहाँ श विकरण होगा, वहाँ शे मुचादीनां से नुम् होगा। छेदनकी क्रिया वर्तमाने कर्तरि लट् कृन्तति शाकम्। सखि ! भ्राता वास्तुकं चकर्त, नप्ता नासिकां कर्तिता। नापितः, केशं कर्तिष्यति। कर्त्स्यति, सेअसिचिकृतचृत इट् विकल्पः, कृन्ततु, अकृन्तत् कृन्तेत् कृत्यात् अकर्तीत्।

(१२) खिद्धातुका दैन्यं, दीन, खिन्न, दुःखी होना फलजनक् क्रिया अर्थः। मुचादीनांमें परिगणितः अतएव नुम् खिन्दति शपरे। कौशल्या बनवासं श्रुत्वा चिखेद, श्वः कैकेयी खेत्ता,। सर्वे खेत्स्यन्ति। यदि बड़ोंकी बात नहीं माना, तदा भवान् खिन्दतु। यथा – बाली अखिन्दत् यदि खिन्नता प्रगट करे तो अपराध क्षमा हो। खिद्यात् अखेदीत् अखेदिष्यत् (१३) पिश्धातुका अवयव पृथक्करण, पीसना, चूर्णजनकव्यापार अर्थ.। चैत्रः पेषणयन्त्रे गोधूमं पिंशति यथा—यवं पिपेश पेशिता, सर्वं पेशिष्यति। त्वं नीवारं पिंशतु। यथा अहम् अपिंशम्। यथा–अन्नं

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वव्रश्च। वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ। व्रश्चिता, व्रष्टा। व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत, अव्राक्षीत्। व्यच व्याजीकरणे। १५। विचति। विव्याच। विविचतुः। व्यचिता। व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्याचीत्,

---

पिशेत्, तदा रोटिकां खादेद्। पिश्यात् अपेशीत् अपेशिष्यत्। (१४) ओ उ इत्। ब्रश्च् धातुका छेदन आरासे चीरना या वङ्सि छेद करना, वह छेदन क्रियाके वर्तमानकालमें कर्तरि लट्, तिप्, तुदादिभ्यः सः। सार्वध तुकं तस्य ङित्-भावः ग्रहिज्यावयि आदिसूत्रेण सम्प्रसारणे पूर्वरूपे। वृश्चति तक्षा काष्ठम्) परोक्षे समाप्त छेदन क्रिया-काले कर्तरि लिट् तिप् णल् द्वित्वे अभ्यासस्य लिट्परे सम्प्रसारणे पूर्व रुपे वृव्रश्च अ। अभ्यास-ऋकारस्य उरत् — अर् हलादिशेषे वव्रश्च वव्रश्चतुः वव्रश्चिथ। स्वरतिसूति इति इट् विकल्पः। यदा न इट् तदा वव्रश्च थ इति दशायां सकारस्य संयोगदिलोपे, चकारस्य, व्रस्जभ्रस्ज इति षत्वे षकारस्य ष्टुत्वे वव्रष्ठ ऊदित्को इट् विकल्प बाधकर क्रादि नियमसे नित्य इट् व 'म' परे हो परश्व: वृक्षं व्रश्चिता ऊदित् इट् विकल्पः। पक्षे। व्रष्टा। मम पुरुषाः जंगले सरलान् वृक्षान् व्रश्चिष्यन्ति। इट् अभावे व्रक्ष्यन्ति। वृश्चतु। अवृश्चत्। वृश्चेत्। वृश्च्यात्। छेदन क्रियाके समाप्तिकालमें लुङ् अव्रश्च इस् इत्। इटः ईटि सलोपे दीर्घे, अव्रश्चीत् अव्रश्चिष्टाम् अव्रश्चिषुः अव्रश्चीः। उदितोवा, ईतीट् अभावे हलन्तलक्षणाद्वृद्धिः व्रश्चेति चकारस्य षत्वे षढोः क आदेशे सिच् ककारस्य षत्वे क्षत्वे अव्राक्षीत् अव्राष्टाम् अव्राक्षुः अव्राक्षीः।

(१५) व्यच् धातुका व्याजीकरण छद्मकरणम् — छलाना, ठगना, या धोखादेना, फलजनक क्रिया अर्थः। छलजनकव्यापारवाचक व्यच् धातोः क्रिया वर्तमाने लट् श = अ तिप् शके अपित् सार्वधातुक होनेसे ङित् परे ग्रहिज्यावयि सूत्रेण य स्थाने इ सम्प्रसारणे, सम्प्रसारणाच्च इति अकारस्य पूर्वरूपे। विचति। मायावी महिलाको ठगता है। व्याजीकरण छलनेकी क्रिया परोक्षकालमें लिट् तिप्णल् द्वित्वादिः व्यव्यच् अ। लिटि अभ्यासस्योभयेषाम् इति अभ्यास्य सम्प्रसारणे विव्याच विविचतुः अत्र प्रथमस्य सम्प्रसारं भवति पश्चात् द्वित्वम्। एवं सवत्रं कित् लिटि परे बोध्यम्। विविचुः। विव्यचिथ विव्याच। विव्यच। ग्रहोंने हमलोगोंको धोखा दिया, श्वः भवन्तं व्यचिता। कामः सर्वं व्यचिष्यति। भवान् शत्रूम् विचतु। यथा—कृष्णः दुर्योधनान् अविचत्। यदि स विचेत् तदा सुखं भूयात्। छद्मकरण अर्थविषयक आशीर्लिङ् विच्यात्। किदाशिषि इति यासुट् कित् भवति। तस्य फलं सम्प्रसारणम्। व्याजीकरण क्रिया समाप्ति रूप भूतकालमें लुङ्। अव्यच् इस इत् इति दशायाम् इटई-टिसकार लोपे, दीर्घे, वदव्रजहलन्तस्याच इति प्राप्ता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अव्यचीत् । व्यचेः कुटादित्वमनसि इति तु नेह प्रवर्तते, अनस्सीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात् । उछि उञ्छे । १६ । उच्छति । उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः । ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । १७ । ऋच्छति । (६१४) ऋच्छत्यृतामिति गुणः । द्विहल् ग्रहणस्याऽनेक-हलुपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्च्छ । आनर्च्छतुः । ऋच्छिता । उज्झ उत्सर्गे । १८ । उज्झति । लुभ विमोहने । १९ । लुभति ।

वृद्धिः, नेटि सूत्रेण निषिध्यते । अतः अतोहलादेर्लघो इति वृद्धिविकल्पः शकुनीमे; पाण्डवोंको धोखा दिया । व्यचेः=व्यच् धातु कुटादि गणमें पढ़ा है । परन्तु असभिन्न प्रत्यय होनेपर जहाँ अस् भिन्न सिजादि प्रत्यय हो, वहाँ गाङ् कुटादिभ्यः नहीं लगता क्योंकि 'अनसि' शब्दमें नञ् पार्युदासार्थक है, अस् सदृश कृत्प्रत्यय ही लिया जायेगा । कुटादिगणीय नहीं ! अतः ङित् न होनेसे वृद्धि निषेध नहीं हुआ । (१६) इइ-त् उच्छधातु उञ्छवृत्तिसे निर्वाह करना अर्थ है, खेतमें गिरा हुआ कणिशस्य मञ्जरी, अन्य 'बालिके, टुकड़े आदि इकट्टा करना उञ्छवृत्ति है । इदितोनुम् । क्षेत्रात् कणम्=अन्नं शस्यखण्डं वा उञ्छति । कणशः आदान=कण कण् का लेना उच्छ है । कणिशाद्यर्जनं=सस्य मञ्जरी का संग्रह शिल है. ऐसा यादव कोषसे । परोक्ष भूतकाले उञ्छवृत्ति क्रिया रहते उञ्छाञ्चकार, उञ्छिता, उञ्छतु, उञ्छेत्, उछयात् औञ्छीत् औञ्छिष्यत् ।

(१७) ऋच्छ धातुका गति=गमन ज्ञान, इन्द्रियप्रलय, स्वापः=इन्द्रियोंका निश्चेष्ट होना । मूर्तिभावः, काठिन्यं निष्कृय होना, फल जनक क्रिया अर्थः । सः इन्द्रियम् ऋच्छति । व्यायामशालां गच्छति, मूर्तिभावं चित्ररूपं प्राप्नोति । इन्द्रिय प्रलय या निष्कृय भावकी क्रिया, परोक्ष कालमें समाप्त हो तब आनर्च्छ=ऋच्छ+अ ऋच्छत्यृतां सूत्रेग ऋकारस्य स्थाने अर गुणे अर्च्छ अ । तस्मान्नुट्, द्विहलः सूत्रमें द्विहल् शब्दका ग्रहण अनेक हल्का उपलक्षण (बोधक प्रकाशक) है । न एक हल् इति अनेक हल् । एकसे अधिक हल् दो या तीन जैसे—र् च् छ्के ग्रहणसे नुट् आगम् हो गया, द्वित्वदि कार्यं पूर्वं भवति, अत आदेः दीर्घः आनर्च्छ । यद्यपि यह धातु इजादि गुरुमान् भी है तथापि आम नहीं हुआ, अनृच्छः इति निषेधात् । वह साधु, इन्द्रियोंको लीन कर लिया । नये-नये, परसों, निष्कृय बनेगें । ब्रह्मचारी स्त्रीको देखकर मूर्तिभाव होगा ।, ऋच्छतु । आप भी इन्द्रियोंका निग्रह करें । जैसे—भीष्मने किया, आर्च्छत् । यदि जिह्वाम् ऋच्छेत् तदा मनः सदा ऋच्छ्यात् । सन्यासिनः=आत्मानम् आर्च्छीत् । आर्च्छिष्टाम् आर्च्छिषुः (१८) उज्झधातुका उत्सर्गं त्याग, छोड़ना अर्थ है । कृषकः घासादिकान् उज्झतु । सन्तः मोहादीन् उज्झाञ्चकार । उज्झिता=दो दिन बाद धानकी निराई करेगा । उज्झिष्यति । रघु शत्रून् औज्झीत् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७ तीप-सह लुभ-रुष-रिषः ७ । २ । ४८ । इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात् । लोभिता, लोब्धा । लोभिष्यति । तृप तृम्फ तृप्तौ । १२ । तृपति ततर्प । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति । शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः) आदिशब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः । ततृम्फ । तृप्यात् । मृड पृड सुखने । २३ । मृडति । पृडति । शुन गतौ । २४ । शुनति । इषु इच्छायाम् ।२५। इच्छति । एषिता, एष्टा । एषिष्यति ।

---

(१९) लुभ्धातुका विमोहन, विशेषरूपसे मोहित होना । मोहगमन होना । अर्थः । यह विमोहन आशक्ति क्रियाके वर्तमान कालमें लुभति, लुलोभ । (७) तीषसहलुभरुष रिषः ति=तकारादि आर्धधातुको इट् आगम हो तीष् सह लुभ रुष रिष् धातुओंसे परे । लालचमें मोहित होने अर्थवाचक लुभ् धातोः भविष्यकालिक लोभन क्रिया अर्थे लुट् आदिकार्ये । लुभ्ता तादि आर्धधातुक परे तीषसः आदि सूत्रेण इट् गुणे लोभिता । यदा न इट् तदा झषस्तथोर्धोऽधः इति त स्थाने 'ध' पकारस्य जश्त्वं बकारः । लोभिष्यति लोप्स्यति लुभतु अलुभत् अलोभीत् ।

(२०।२१) तृप, तृम्फ दोनों धातु का तृप्ति के अनुकूलक्रिया अर्थः । स तृपति, पितृन् ततर्प । श्वः ऋषीन् तर्पिता । तृपतु, अतृपत्, अतर्पीत् । तृम्फति भक्तः कथां श्रुत्वा । (वा०) तृम्फादीनां=तृम्फके सदृश धातुओं को नुम् आगम हो । **आदि शब्दः**—तृम्फादीनां शब्द में आदि शब्द **प्रकारे**=सदृश अर्थ का वाचक है । **अत्र**=इस प्रकरण में जो धातु **नकारेण अनुशक्ताः**=नकार से जुड़े हो, उन्हें भी तुम्फादि समझना चाहिए । तृम्फ धातु से 'श' विकरणपरे अनिदितां हल, उपधायाः न-के लोप से तृम्फादीनांमिति नुम् । नकारस्य अनुस्वारपरसवर्णौ । ततृम्फ । भोजन करके तृप्त हुआ । तृम्फिता । तृम्फतु अतृम्फत् । तृम्फेत्, तृप्यात् । अत्र आशीर्लिङि यासुट् कित् अस्ति । तस्य फलम् 'अनिदितां हल्' इति नकारलोपः (तृम्फका म असिद्ध होकर 'न' होता है) अतृम्फीत् ।

(२२।२३) मृड पृड धातु, सुखी होने या देने अर्थ में है । शिवः भक्तान्मृडति यथा—नारदः दक्षसुतान् **ममर्ड** अमर्डीत् । (२४) शुनधातुका गति (कुत्तेकी चालके) अनुकूल क्रिया अर्थः । शुनति=श्वेव गच्छति, शुशोन शोनिता, शोनिष्यति, शुनतु, अशुनत्, शुनेत् अशोनीत् अशोनिष्यत् । (२५) इष धातु का इच्छा के अनुकूल व्यापार चेष्टा अर्थ. । इषधातो। इच्छाजनकक्रिया वर्तमाने लट् ति, श=अ, इषुगमियमाञ्छः इतिषस्थाने छ, तुक् तकारस्य श्चुत्वे । इच्छति । इयेष । ईषतुः । एषिता एष्टा तीषसहलुभ्रुष्रिषः इति इट् विकल्पः । इच्छतु, ऐच्छत् । इच्छेत् इष्यात् । ऐषीत् इष् धातोः भूतकाले अर्थे लुङः, आट्, वृद्धिः, लुङः, स्थाने तिप् च्लि-सिच्; (इट, ईटि) सलोप इकारलोपे । ऐषिष्टाम् ऐषिषु ऐषीः ऐषिष्टम्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एष्यात् । ऐषीत् । कुट कौटिल्ये । २६ । (५४७) गाङ्कुटादिति ङित्वम् । चुकुटिथ चुकोट, चुकुट । कुटिता । पुट संश्लेषणे । २७ । पुटति । स्फुट विकसने । २८ । स्फुटति । स्फुटिता । स्फुर स्फुल संचलने । ३० । स्फुरति । स्फुलति ।

८ स्फुरति-स्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८ । ३ । ७६ । षत्वं वा स्यात् । निष्फुरति, निष्फुलति । णू स्तवने । ३१ । परिणूतगुणोदयः । नुवति ।

ऐषिष्ट । ऐषिषम् ऐषिष्व ऐषिष्म । (२६)कुट् धातुका कौटिल्य कुटिलता करना, कूट करना, पिङ्गलबोलना अर्थः । कुटति । शिवगण नारद की कूट करते हैं । कुटतः । चुकोट । कूट करनेकी परोक्षकालिक समाप्त क्रिया करटक दमनकौ चुकुटतुः । यथा—त्वं भातॄन् चुकुटिथ । अत्र द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये, इट् आगमे 'गाङ् कुटादिभ्यः इति सूत्रेण थल ङित् भवति । क्ङिति च सूत्रसे गुणका निषेध । ङित्काफल चुकुटथुः । चुकोट चुकुट चुकुटिव चुकुटिम । कुटिता कुटिष्यति । कुटतु, अकुटत्, कुटयात् अकुटीत् अकुटिष्यत् । (२७) पुट् धातुका संश्लेषण (पदार्थद्वयसम्मेलनम्) । दो वस्तुओंका एकमें मिलाना, जोड़ना, व्यापारः । पयसि पानीयं पूटति पुट देना । यथा—आभीरः पुपोट । पुट भेदन (जोड़ को तोड़ना) पुपोट । विखरे हुए लोगों को मिला दिया । पुटिता अत्र इट् कृते (गाङ्कुटादिभ्यः) इति ङित् तस्य फलं गुण निषेधः । पुटिता पुटिष्यति इत्यादि । (२८) स्फुट धातु का विकसित् होना, खिलना, आदि अर्थः । सेट् सकर्मकः कुटादिगणीयः । स्फुटति सूर्य को देखकर कमल खिलता है । पुस्फोट अस्फुटीत् ।

(२९:३०) स्फुर् स्फुल् धातु का संचलन क्रिया, खिलना, फड़फड़ाना, उभरना, फलानुकूलव्यापारो अर्थः । स्फुरति कुक्कुटाण्डम् । स्फुलति गर्भिणी । (८) निर- नि और वि उपसर्गसे परे सेट् धातुसकारस्य षत्वे शर्परे खरि 'वा' विसर्गलोपो वक्तव्यः) इति विसर्गलोपे पक्षे वाशरि इति विसर्गस्य विसर्गे, पक्षे षत्वे निःष्फुरति निष्फुरति । पुस्फोर । स्फुरिता, स्फुरतु, अस्फुरत्, स्फुरेत् स्फुर्यात् अस्फुरीत् । (३१) णू=नू धातु का स्तवन=स्तुति करना । यह दीर्घ उकारान्त है । प्रमाण देते हैं कि परिणोतः=सर्वत्र प्रशंसितः गुणानाम् उदयो यस्य । यहाँ णूत् दीर्घान्त है । उदाहरण में उवङ् होने से ह्रस्व ज्ञान पड़ता है । नुवति । स्तवनार्थक नूधातु से प्रचलितस्तुति क्रिया के वर्तमान रहते लट्, श=अ अपित्सार्वधातुकं ङित् । तस्य फलं गुणनिषेधः । अचि श्नुधातुर्भ्रुवाम इति ऊकारस्य उवङ् नुवति =भगवान् की स्तुति करता है । नुनाव=णल् । णितपरे, अचोञ्णिति वृद्धिः । आवादेशे शिवं नुनाव । नुविता । अत्रापि कुटादित्वात् ङित् गुणनिषेधे उवङ्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नुनाव। नुविता। टुमस्जो शुद्धौ। ३२। मज्जति। ममज्ज। (६३६) मस्जि-नशोरिति नुम्। (मज्जेरन्त्यात् पूर्वो नुमवाच्यः) संयोगादिलोपः। ममङ्क्थ, ममज्जिथ। मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत्। अमाङ्क्ताम्। अमाङ्क्षुः। रुजो भङ्गे। ३३। रुजति रोक्ता। रोक्ष्यति। औक्षीत्। भुजो कौटिल्ये। ३४। रुजिवत्। विश प्रवेशने। ३५। विशति। मृश आमर्शने।

आदेशे नुविष्यति। नुवतु। अनुवत्। नुवेत् नूयात्। अनौवीत् अनुविष्यत् (३२) टुओइत् मस्जधातु का शुद्धि अर्थः। यह शुद्धि 'माँजने' से या नहाने से हो, अनिट् अकर्मकः। टुइत्का फल द्वितोऽथुच्। ओदितकाफल निष्ठासंज्ञक तकारस्य नकारे। नकारे।शुद्ध होने की क्रिया वर्तमान रहते लट् तिप् श, मस्ज् अति। स स्थाने श्चुत्वेन श. झ्रांजत्र्भ्शि इति जकारे मज्जति। माजने या धोने की क्रिया परोक्ष-काल में समाप्त हो। तब मस्ज्मस्ज् ममस्ज् श्चुत्वे जश्त्वे। ममज्ज, ममज्जतुः ममज्जुः। ममस्ज् थ भारद्वाजमते इट्, श्चुत्वे, जशत्वे। ममज्जिथ। इटोअभावे मश्जि'=मश्ज् और नश्, मस्जिनशोर्झलि सूत्रेण नुम् 'मिदचोऽन्त्यातपरः' इति अन्त्य अच् परे प्राप्नोति, उसे बाधकर वार्तिक से मस्ज धातु के अन्त्यवर्ण से पूर्व नुम् हुआ। मसन्ज्थ-सकारस्य संयोगादिलोपे, द्वित्वादिकार्यं सति। ममन्ज् थ, जकारस्य कुत्वे चर्त्वे ककारे, नकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे ङ' ममङ्थ। ममज्जथुः। परश्वः संक्रान्तिकाले मङ्ता। यहाँ भी झलादि प्रत्यय 'ता' परे नुम्, सलोपे, कुत्वे, चर्त्वे अनुस्वारपरसवर्णे। मङ्क्ष्यति मस्ज स्यति 'मश्जि नशोर्झलि' इति नुम् अन्त्या-त्पूर्वी वाच्यः। सलोपे, जकारस्य कुत्वे चर्त्वे षत्वे क्षत्वे। स्नानस्य क्रिया समाप्ति-काले लुङ् अमस्ज सइत्। नुम् सलोपे वृद्धिः। कुत्व चर्त्वं षत्व। अनुस्वारे पर-सवर्णेषु अमाङ्क्षीत् अमाङ्क्तां (झलोझलि सिचो लोपः) अमाङ्क्षुः। आङ्क्षीः अमाङ्क्तम् अमाङ्क्त। अमाङ्क्षम् अमाङ्क्ष्व अमाङ्क्ष्म।

(३३) रुज् धातु का भङ्ग, विकल होना, शरीरतोड़ना, फलजनक क्रिया अर्थः। अनिट्, ओदित्, अकर्मक, ओकार इद् का फल निष्ठातको न होना। रुजति, शरीरं ज्वरवेगेन, विषादिकया (व्यवाय) दुखं: सहते। रुग्ण, रोगी, रोग, शब्द इसी धातु से बने हैं। स श्वः रोक्ता। अद्यभिन्नभविष्यकालिक रुज् शरीर टूटने की क्रिया। रुज् ता अत्र लघूपधगुणे अकारस्य कुत्वे चर्त्वे। रोक्ष्यति सस्य षकारे। रुजतु, अरुजत्, रुजेत् रुज्यात्, अरौक्षीत्। हलन्तलक्षणा वृद्धिः, अरौक्ताम् अरौक्षुः अरौक्षीः।

(३४) ओइत् भुज् धातु का कौटिल्य टेढ़चाल, धोखा, छल, भोगना फलानु-कूल क्रिया अर्थः। इसका रूप रुज्की तरह।

(३५) विश्धातु का प्रवेशन, घुसना प्रवेश, फलजनक व्यापारो अर्थः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३६। आमर्शनं = स्पर्शः। (६५३) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्। अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्। अमृक्षत्। षद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु। ३७। सीदतीत्यादि। शद्लृ शातने। ३८। ९ शदेश्शितः १। ३। ६०। शिद्-

विशति सूची। गृहं विवेश। विलम्बेन कक्षायां वेक्ष्यति। त्वं गुहायां विश विशतु। यथामुचुकुन्दो, अविशत्। विशेत्। विश्यात्। अविक्षत्। अवेक्ष्यत्। उपसर्गबलसे इसके भी अनेक अर्थ हैं। अभिनिविशते सन्मार्गम् (अच्छे रास्ते पर चलना है) निविशते यदि शूकशिखापदे। टूंण् चरणमें चुभता है। उपविशतु आर्य। गृहं प्रविशति।

(३६) मृश धातु का आमर्शनं स्पर्शः। अर्थात् सहलाना, हाँथ फेरना, प्यार करना, आदि। आमृशति शरीरं, मुखं आमृष्टा जागर्ति। माता बालकं मृशति। यथा—पिता पुत्रं ममर्श। शिक्षकः मर्ष्टा। मक्ष्यति मृशतु अमृशत्। मृशेत्, मृश्याद। अम्राक्षीत् (अमृश् स्ईत्) अनुदात्तस्य ऋदुपधस्यधातोः ऋकारस्य अम् (अ) आगमे। ऋकारस्य यण्। हलन्तस्याचः वृद्धिः शकारस्य जश्त्वेन जकारे, कुत्वे चर्त्वे षत्वे क्षत्वे। अम्राष्टाम् अम्राक्षुः। अम्राक्षीः। अम् अभावपक्षे ऋकारस्य हलन्तत्वात् वृद्धिः। अमार्क्षीत् अमार्ष्टाम् अमार्क्षुः। इति सिच पक्षे रूपद्वयम्। स्पृश् मृश कृष् आदिना यदा न सिच् तदा च्लि स्थाने क्सः=स तस्य कित्वात् वृद्धिनिषेधः। शेषं पूर्ववत्। अमृक्षत् अमृक्षन् अमृक्षताम् अमृक्षन्। (३७) लृकार इत् 'सद' धातु का विशरण, विखरना, अवयवोंका अलग होना, फटना, गति = गमन (अवसादनं) दुःखी=पीडित होना, इन फलों का जनक क्रिया धात्वर्थः। अनिट् अकर्मः। लृदित् का फल च्लिको अङ् होना। विखरना, गमन, दुखी होना, क्रिया के वर्तमानकालमें लट् तिप् श। सद अति। सर्वत्र सार्वधातुकलकारस्थले पाघ्रा इत्यादि सूत्रेण सद् स्थाने सीद् आदेशे शप् आदि कार्ये (मौक्तिकं) सीदति (निर्धन दुखी होता है)। अहं मनोबलेन सीदामि। उपसर्ग बल से अनेक अर्थ अवसीदति — खिन्नो भवति। आसीदति=समीपं गच्छति। प्रसीदति = प्रसन्नो भवति। प्रत्या-सीदति = निषीदति, उपविशति=बैठता है। विषीदति = विषादं ग्लानि करोति। उक्तक्रिया परोक्षकाल में समाप्त हो तब लिट् सद् सद् ससद् ससाद, सेदतुः सेदुः। एत्वे अभ्यासलोपे सत्ता (कल खेत में धान छींटा जायेगा)। सत्स्यति = दुःखी भविष्यति। आज्ञा विधि प्रेरणा, अर्थ में लोट् सीदतु= तुम दुःखी रहो। असीदत् = मेरे कपड़े बिखर गये हैं। सीदेत् सद्यात् तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जाय। असदत्, च्लि —अङ् असत्स्यत् (३८) शद धातुका शातनम् = अवयवानां विभागः = अलग अलग होना फलजनकक्रिया अर्थः। अनिट् अकर्मकः (९) शिद्भाविनो = जब श प्रत्यय होने से शित् होना हो अस्मात्=शद् धातु से तङ = आत्मनेपद और

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते। शीयताम्। अशीयत। शीयत। शशाद। शत्ता। शत्स्यति। अशदत्। अशत्स्यत्। कॄ विक्षेपे। ३९।

६६० ॠत इद्धातोः ७।१।१००। ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत्स्यात्। किरति। चकार। चकरतुः। चकरुः। करीता, करिता। कीर्यात्। १ किरतौ लवने ६।१।१४०। उपात् किरतेः सुट् छेदने। उपस्किरति (अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम्)। उपास्किरत्। उपचस्कार। २ हिंसायां प्रतेश्च ६।१।१४१। उपात् प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम्। उपस्किरति। प्रतिस्किरति। गॄ निगरणे। ४०। ३ अचि

शान = शानच् कानच आदि प्रत्यय हों। मुनेर्जटा शीयते। अवयवविभाग की क्रिया वर्तमान रहते शद धातोः लट्। शदेः शितः इति सूत्रेण आत्मनेपदे 'त' टेः एत्वे शद् स्थाने शीय आदेशे। सेना शशाद शेदतुः शत्ता शत्स्यति। तव पापं शीयताम्। यथा महात्मनाम् अशीयत भवतां शीयेत्। अशदत। अशत्स्यति। (३९) कॄधातुका विच्छेप बिखेरना, छींटना, जनक व्यापार अर्थः। व्याधः अन्नं किरति। क्रियायाः वर्तमाने लट् ति श, कॄअति।

(६६०) ॠदन्तधातुके अङ्गको इत् आदेश हो वह अलोन्त्यस्यसे ॠके स्थान में इ 'उरणरपर' से इर् आदेश हो इति सूत्रेण ॠस्थाने इर् आदेशे किरति। व्याध कदा अन्नं। चकार। कॄ लिट्, तिप्, णल्, ॠच्छत्यॄतां सूत्रेण गुणे। ततो द्वित्वे, अभ्यासादिकार्ये, अतउपधायाः वृद्धिः। अतुस् प्रत्ययपरेऽपि। कृषकौ क्षेत्रे धान्यं चकरतुः। सर्वे चकरुः। श्वः गोधूमं करिता। कॄ इट् ता (ॠच्छति, ॠतां गुण) (अर्) वृतोवा इति इटः दीर्घविकल्पे। पक्षे करीता, करिष्यति, अकिरत्। किरतु। कीर्यात् ॠत् इत् धातोः इति ॠस्थाने इर् आदेशे। हलि चेतिदीर्घे। विक्षेप = बिखेरने की क्रिया समाप्त हो, तब अकार्षीत्। अकारिष्टाम् अकारिषुः। अत्र सिच् परे इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः।

(१) उपात् = उपशब्दसे परे किरतौ = कॄधातुको सुट् = स आगम हो, लवने, छेदने, काटने, अर्थमें। उपस्किरति हरिणः जालम्। अत्र उक्तसूत्रेण सुट् ककारस्य आदौ भवति। (वा०) अड् = अट् तथा अभ्यास के व्यवाये = व्यवधानमें भी ककारके पूर्वमें सुट् आगम कहना चाहिए। उप + अकिरत् इति दशायाम् उपसे अट्के व्यवधानमें कके पूर्वमें सुट् हुआ। उपास्किरत् = छेदन, कार्यक्रिया, भवान् कदा काष्ठम् उपचस्कार। (२) प्रतेश्च—उप और प्रतिसे परे कॄ धातुको सुट् आगम हो हिंसा अर्थ होनेपर, उपस्किरति। कन्या कीटं प्रतिस्किरति। व्याधः मृगम्। हिंसा अर्थबोधक सुट् प्रत्यय समझें। (४०) गॄधातुका निगरणं = मुखे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विभाषा ८।२।२१। गिरते रेफस्य लोऽजादौ प्रत्यये वा। गिरति, गिलति। जगार, जगाल। जगरिथ, जगलिथ। गरिता, गरीता। गलिता। गलीता। प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्। ४१। (६३४) ग्रहिज्या० इति सम्प्रसारणम्। पृच्छति। पप्रच्छ। पप्रच्छतुः। पप्रच्छुः। प्रष्टा। प्रक्ष्यति। अप्राक्षीत्। मृङ् प्राणत्यागे। ४२।

ग्रासप्रच्छेपः (निगलना) सेट् सकर्मक, लीलनेके अनकूलक्रिया। जहाँ निगरण (लीलना) क्रिया वर्तमान रहे लट् ति, श = अ। गृ अति ॠत्इद्धातोः इतिसूत्रेण ॠस्थाने इर् आदेशे। **गिरति**। ततः।

(३) गृधातुके रेफको ल हो **अचि**=अजादि-प्रत्ययपरे **विभाषा** = विकल्पसे इति सूत्रेण र् स्थाने लत्वे। पक्षे **गिलति**, गिलहरी अन्न खाती है। शृगाल. मेषवत्सं **जगाल**। अचिविभाषा इति र स्थाने लत्वे। पक्षे **जगार**। जगलिथ। इट्परे अजादिप्रत्यय मानकर र को ल हुआ। व्याघ्रः वत्सान् गलीता, गरीता पक्षे लत्वम्। इटो दीर्घविकल्पः बालिका गोलिकां गलीष्यति, गरीष्यति। पक्षे लत्वंदीर्घश्च। भवान् औषधं **गिलतु** गिरतु। यथा—अन्ये रोगिणः अगिलन् अगिरन्। यदि जरा फलं गिलेत् गिरेत् कल्याणं भवेत्। त्वं रसगोलिकां सदा गीर्याः। निगरणक्रिया-समाप्त होनेपर अगालीत् अगारीत्। अगालिष्यत् अगारिष्यत्। निगरति, निजगाल **संगिरते** = प्रतिज्ञां करोति। (४१) प्रच्छधातुका ज्ञीप्सा, जिज्ञासा, पूछना प्रश्न जनक क्रिया अर्थः। अनिट् सकर्मकः। बालकं पितरं पृच्छति। प्रश्नफलका आश्रय बालक तदनुकूलक्रिया चैत्रमें जिज्ञासा की वर्तमानकालदशामें लट्, श, प्रच्छ **अति**। ग्रहिज्यावयिव्यधि आदि सूत्रेण र स्थाने ॠ सम्प्रसारणे, सम्प्रसारणाच्च इति अकारस्य पूर्वरूपे **पृच्छति** शिष्यः गुरुं धर्मं **प्रपच्छ**। भक्तौ शिवं पप्रच्छतुः। सर्वे आत्मकल्याणं प्रपच्छुः। श्वः प्रश्नं प्रष्टा। अद्यभिन्नभविष्यकालिकक्रिया अर्थे, लुट् प्रच्छ+ता व्रश्च भ्रस्ज आदि सूत्रेण छ स्थाने षकृते ष्टुत्वेन तस्थाने टकारे रूपम्। त्वं कदा प्रश्नं **प्रक्ष्यसि**। प्रच्छ स्यति। छस्थाने षकृते तस्य षढो कः सि इति कः। स्य सकारस्य षत्वे क्षत्वे रूपम्। भवान् भाग्यं **पृच्छतु** यथा—वृद्धा **अपृच्छत्**। यदि कुशलं पृच्छेत् आप जिज्ञासा शान्तिके लिए सदा पूछे। पृच्छयात् = प्रश्नकी भूतकालिकक्रिया **अप्राक्षीत्**। अप्रच्छस इत् इति दशायां वद् व्रज हलन्तस्याचः इति वृद्धिः छकारस्य षत्वे। क आदेशे, सिच् सकारस्य षत्वे क्षत्वे रूपम्। **अप्राष्टाम्**। अत्र झलोझलि इति सिचः सकारस्य लोपे। **अप्राक्षुः** अप्राक्षीः अप्राष्टम् अप्राष्ट। अप्राक्षम् अप्राक्ष्व अप्राक्ष्म। (४२) मृधातुका प्राणत्याग मृत्यु होना, अर्थः। अनिट् अकर्मकः। प्राणत्याग-जनक—क्रियावाचक मृधातोः प्रचलितमरणक्रियाकाले वर्तमाने लट् श मृ अ लट्। ततः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४ म्रियतेर्लुङ्-लिङोश्च १।३।६१। लुङ्-लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र। रिङ्। इयङ्। म्रियते। ममार। मर्ता। मरिष्यति। मृषीष्ट। अमृत। पृङ् व्यायामे। ४३। प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः। व्याप्रियते। व्यापप्रे। व्यापप्राते। व्यापरिष्यते। व्यापृत। व्यापृषाताम्। जुषी प्रीतिसेवनयोः। ४४। जुषते। जुजुषे। ओविजी भयचलनयोः। ४५। प्रायेणा-

---

(४) मृयतेः = लुङ् लङ्, शित् = शप्रत्यय की प्रकृतिभूत मृङ् धातुसे तङ् = आत्मनेपद हो। अन्यत्र न। लिट् लुट् लृट् लङ् में नहीं। इति आत्मनेपदे 'त' रिङ्-शयग्लिङ्क्षु' इति ऋस्थाने रिङादेशे। ततः इयङ् म्रियते। ममार = प्राण त्यागकी परोक्षभूतकालिक क्रिया मृ मृ मर् मृ ममृ 'अ' वृद्धिः। वृत्रासुरः इन्द्रवज्रेण ममार। मर्ता। अद्यभिन्नभविष्यकाले लुट् मृ ता गुणः। सर्वे मरिष्यन्ति। ऋद्धनोः स्ये इति इट्। श विकरणविषये 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' इति आत्मनेपदम्। महादुष्टस्त्वं म्रियताम्। यथा—हिरण्याक्षः अम्रियत। यदि दुष्टः मृयेत् तदा कल्याणं भवेत्। मृषीष्ट = मरण विषयक आशीर्वादार्थे लिङ्। उक्त सूत्रेण आत्मनेपदम्। सीयुट् सुट् 'उश्च' इति कित्, तस्य फलं गुणनिषेधः षत्वे ष्टुत्वे। अमृत = मरण क्रियासमाप्तिकाले लुङ् त, अट् सिच्, सकारस्य 'ह्रस्वादङ्गात्' इति लोपः। अमृषाताम् अमृषत। अमृथाः अमृषाथाम्, अमृढ्वम्। अमृषि। आ ां प्रतिष्ठाभङ्गेन अमृष्वहि, वयं अमृष्महि। अमरिष्यत्। (४३) ङ् इत्. पृ धातुका व्यायाम, व्यापार कसरत, चेष्टा करनेके अनुकूल क्रिया अर्थः। अनिट् अकर्मकः। प्रायेण = यह धातु प्रायः विआङ पूर्वक है। कहीं नहीं भी है। व्यायमकी क्रियाके वर्तमान रहपे। व्याप्रियते धनिकः। मल्लोत्रा वि आपृ अत्र रिङ्शयग्लिङ्क्षु इति सूत्रेण ऋस्थाने रिङ् आदेशे। इकारस्य इयङ टेः एत्वम्। व्यापप्रे = परोक्षभूतकालिकव्यापार या व्यायाम व्यापृ 'त' तस्य स्थाने 'एश्' द्वित्वादिकार्यं, उत्तरखण्डस्य ऋस्थाने यण। व्यापारिणौ मल्लौ वा व्यापप्राते। व्यापर्ता। व्यापरिष्यते। ऋद्धनोः इतीट्। व्याप्रियताम्—येतां यन्ताम्। व्याप्रियत, व्यापृयत व्यापृषीष्ट। व्यापृत=ह्रस्वादङ्गात् इति सिचोलोपः व्यापृषातां व्यापृषत। (४४) ईकार इत् जुषधातुका प्रीति = सप्रेम मिलन, सेवन = सुश्रूषा = सेवाके अनुकूल व्यापारो अर्थः। कामी स्त्रियं जुषते। मुढः शरीरं जुजुषे। स शिवं जोषिता। जोषिष्यते। राजा प्रजाकी सेवा करेगा। भवान् परिवृत्तं जुषताम्। यथा—रामः आश्रितान् अजुषत। यदि नेता प्रजां जुषत तदा विजयी भवेत्। त्वं देशवासिनं जोषिषीष्ठाः। अजोषीष्ट। यदि लोकान् अजोषिष्यत् तदा सुखम् अभविष्यत्। (४५) ओकार ईकार इत् विज धातुका भय और कम्पनके अनुकूल क्रिया अर्थः। ओ इत्का फल उद्विग्नः मे निष्ठा 'त' को नकार होना। ईदित्से इट् निषेध। सेट् सकर्मकः। प्रायः यह धातु उत्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यमुत्पूर्वः। उद्विजते। ६६५ विज इट् १। २। २। विजः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्। उद्विजिता।

इति तुदादयः।

७—अथ रुधादयः

रुधिर् आवरणे। १। ६६६ रुधादिभ्यः श्नम् ३। १। ७८। शपोऽपवादः। रुणद्धिः (५७६) श्नसोरल्लोपः। रुन्धः। रुन्धति। रुणत्सि।

पूर्वक दृष्ट है। भय कम्पन की क्रियाके वर्तमान कालमें उद्विजते उद्विग्न, भयभीत, कम्पित होना। राज्ञा अङ्गेन प्रजाः उद्विजते उद्विजिता। भय, कम्पन उद्वेग, जनकक्रियावाचक उद्विजधातोः अद्यभिन्नभविष्यकालिक क्रिया अर्थे लुट् त, तास्, डा आदि इट् ततः।

(६६५) विज् धातुसे परे इट् आदि प्रत्यय ङिद्वत् हों। ङित्‌का फल गुण निषेधः। प्रजाः कटुशासनात् उद्विजिष्यते। शासकः असामाजिकतत्वान् उद्विजताम्। यथा—रघुः शत्रून् उदविजत। उविजेत्। उद्विजिषीष्ट। उदविजिष्ट। उदविजिष्यत।

इति प्रभाकर्यां तुदादि गणः समाप्तः।

अथरुधादिः इस गणकी मुख्य विशेषता 'श्नम्' विकरण है। जो प्रकृति प्रत्ययके मध्यमें 'न' बनकर बैठता है। यही अन्य प्रकरणोंका भेदक धर्म है। (१) रुध्धातुका आवरण, अवरोध, रुकावटके अनुकूल क्रिया अर्थः। इर इत्। इसकाफल इरितो 'वा' से च्लिको अङ् होना है। अनिट्, सकर्मकः, उभयपदी।

(६) रुधादिगण पठित धातुओंसे परे श्नम् हो। शप्‌को बाधकर। अनुबन्ध लोप 'न' शेष। रुधादिशब्दमें ध को जश्त्व नकरनेका फल अनुकार्य रुधका स्पष्ट ज्ञान होना। सूत्रमें होनेसे साधुः। श्नं श्‌काफल श्नसोरल्लोपः। मित्‌का फल मिदचोऽन्त्यात्परः। रुणद्धि आवरण, अवरोध, फलजनकव्यापारवाचकरुधधातोः अवरोधक्रिया-वर्तमाने काले अर्थे लट्,ति। शपं बाधित्वा 'श्नम्' अनुबन्धलोपे-'न'मित्वात् उकारोत्तरवर्ति नकारो जायते। रुन्धति। झषस्तथोः इति तस्याने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रुणत्सि। रुन्धः। रुन्ध। रुणध्मि। रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुन्धे। रुन्धाते। रुन्धते। रुरोध, रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यति, रोत्स्यते। रुणद्धु, रुन्धात्। रुन्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि रुणधानि। रुणधाव। रुणधाम। रुन्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम्। रुन्त्स्व। रुणधै। रुणधावहै। रुणधामहै। अरुणत्, अरुणद्। अरुन्धाम्। अरुन्धन्, अरुणत्। अरुणः। अरुन्ध। अरुन्धाताम्। अरुन्धत।

'ध'। धातु धकारस्य जश्त्वं दकारः, नस्य णत्वे रुपम्। तौ शत्रून् रून्धः। रून्ध्'तस् इति दशायां तस् इत्यस्य (अपित् सार्वधातुकं) ङित। श्नसोरल्लोपः' 'अकारस्य लोपे तस्य स्थाने धः' झरोझरि सवर्णे' पूर्वधकारस्य लोपविकल्पे। 'णत्वे रुपम्'। नकारस्य अनुस्वारेपरसवर्णे, रुन्धः। पक्षे रुन्द्धः। शत्रुसेनां रुन्धन्ति। रुन्ध्झि, झकारस्य 'अन्त' आदेशे अकारलोपे। नकारस्य अनुस्वारपरसवर्णे। त्वं बालकं रुणत्सि अत्र धकारस्य चर्त्वेन तकारः। यूयं कुत्सितां प्रवृत्ति रुन्धः। यथा—अहं (खल) वृत्ति रुणध्मि। आवां गर्तं रुन्ध्वः, वयं रुन्ध्मः। अवरोध-क्रियाका फलकर्तृगामी होनेसे आत्मनेपद रुन्धे, कृष्णरामौ रुन्धाते। राक्षसाः रुन्धते। रोकनेकी क्रिया अनद्यतनपरोक्षकालमें समाप्त हो तब रुरोध। रुरुधतुः रुरुधुः। रुरोधिथ। रुरुधिव रुरुधिम। रुरुधे, रुरुधाते रुरुधिरे। रुरुधिषे। परश्वः आक्रमणकारिणः रोद्धा। रुधता, त स्थाने ध, धातु धकारस्य जश्त्वम्। उकारस्य गुणः। सेना रोत्स्यति। राजमार्गं रोत्स्यते भवान् स्वरिपून् रुणद्धु। अवरोध-विषयक आशीर्वादार्थे 'तु' स्थाने तातङ्, रुन्धात्। रुन्धि, रुन्ध्'हि'हुझल्भ्यो हेर्धिः इति हि स्थाने धि। झरोझरि सवर्णेधकारलोपे। नकारस्य अकारलोपे। रुणधानि आडुत्तमस्य पिच्च' आट्। पिदस्ति। तस्य फलं नकारस्य अकारलोपो न। रुणधाव। रुणधाम। रुणधै रुणधावहै, रुणधामहै। गोपः स्वगाः व्रजं रुन्धां गोपौ रुन्धातां। सर्वे रुन्धताम् रुन्त्स्व, रुन्ध्थास, तस्य'से' तस्य (एकारस्य) सवाभ्यां वामौ इति व। धस्य चर्त्वे तः, नकारस्य अकारलोपः। रुन्धाथां रुन्धध्वम्। रुणधै रुणधावहै रुणधामहै। अवरोध या रूंधना क्रियाके अनद्यतनभूतकालमें लङ्। अरुण्ध्त् तकारस्य संयोगान्तलोपे, जश्त्वे, वावसाने चर्त्वे। अरुणत्-द् मार्गं; राजपुरुषौ दस्यून् अरुन्धाम् अरुन्धन्। रामः अधर्ममरुणत्। अवरोधक्रियाका कर्ता त्वं हो म० पु० सिप्, इलोपे, सकारस्य हल्ङ्याब्भ्यो दिलोपे, धकारस्य जश्त्वे चर्त्वेविकल्पे। अरुणत्। पक्षे-दकारस्य रुत्वे विसर्गे अरुणः। अरुन्धम् अरुन्ध। आत्मनेपदे अरुन्ध्त 'श्नसोः' अकारलोपे तस्य धः, सवर्णे झरिलोपे, अरुन्धाताम् अरुन्धत अरुन्धाः। अवरोध आवरणविषयकविधि, प्रेरणा, प्रार्थनाकी सम्भावनामें रुन्धीत। बालकान् रुन्ध्यात्। भवान् अधर्ममार्गात् सर्वं रुध्यात् रुत्सीष्ट। लिङ्-सिचौ इतिकित्, तेन गुणो न। अवरोधक्रियाके भूतकालमें, अरुधत। अत्र इरितोवा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अरुन्धाः। रुन्ध्यात्। रुन्धीत। रुध्यात्, रुत्सीष्ट। अरुधत्, अरौत्सीत्, अरुद्ध। अरुत्साताम् अरुत्सत्। अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत। भिदिर् विदारणे। २। छिदिर् द्वैधीकरणे। ३। युजिर् योगे। ४। रिचिर् विरेचने। ५। रिणक्ति, रिङ्क्ते। रि च। रेक्ता। रेक्ष्यति, अरिणक्। अरिचत्, अरैक्षीत्,

---

इति च्लि स्थाने अङ् अरुधताम् अरुधन् अरुधः। यदा च्लिस्थाने अङ् न भवति तदा सिच्, वदव्रजहलन्तस्याचः वृद्धिः, धकारस्य चर्त्वे, ईट्, अरौत्सीत् अरौद्धाम् अरौत्सुः। आत्मनेपदे। अरुद्ध झलोझलि सिचोलोपः, तस्य धः, धातुधकारस्य जश्त्वम्। अरुत्साताम्, अरुत्सत। अरोत्स्यत्। (२) इर्इत्संज्ञक भिद्धातुका विदारण, भेदन, फाड़ना, फलजनकक्रिया अर्थः। अनिट् सकर्मकः। नृसिंहः हिरैण्यकशयपो. वक्षस्थलं भिनक्ति। भिन्ते श्नं कृते भिन्दत। दकारस्य सवर्णी-झरिपरे लोपे, अल्लोपे च। विदारणफलका आधार वक्षस्थल। क्रियाका आधार नरसिंहः। यथा—विष्णुः मधुं कैटभञ्च विभिदे। श्वः भेत्ता, सदा मत्कुणान् भेत्स्यति। भवान् आत्मानम् अवगुणं भिनक्तु, भिन्तात् भिन्ताम्। यथा—अन्यो अभिनत्, अभिनत। भिन्देत्, भिन्दीत, भिद्यात् भित्सीष्ट। अभिदत् अभैत्सीत् अभित्त। अभेत्स्यत।

(३) छिद धातुका द्वैधीकरण, एकस्य वस्तुनः छेदनेन खण्डद्वयकरणम्। छीलना काटना= टुकड़े करना, अनिट्। इर इत्। सकर्मकः। उभयपदी। तक्षा काष्ठ छिनत्ति छिन्तः। श्नम् अकारलोपः दकारस्य सवर्णे झरिपरे लोपः। द्वैधीकरण (खण्ड होना) फल काष्ठमें, तदनुकूलक्रिया तक्षा (बढ़ई) में। यथामहिषासुरस्य शिरः विच्छेद, विच्छिदे। गुरुः तव अज्ञानानि छेत्ता। नापितः छुरेण केशान् छेत्स्यति। छेत्स्यते। स कुष्माण्डं छिन्तु। छिन्ताम् यथा पाचकः अलावुं पटोलं च अच्छिनत। अच्छिन्त छिन्देत्, छिन्दीत। नवान्नं छिद्यात् छित्सीष्ट। अच्छिदत्। अच्छैत्सीत्, अछित्त। अच्छेत्स्यत्। उच्छिनत्ति=उच्छिन्न करता है। परिछिनत्ति= नापता है। परिच्छेद्य परिच्छेदक, परिछिन्न। (४) इर इत् युजधातु का योग, संयोजन मिलना, अर्थके अनुकूल क्रिया। कृषकः वृषभौ युनक्ति। युन्ते न-मे अकालोप होने से न का अनुस्वारपरसवर्ण। प्रथम ज को कुत्वेन ग चर्त्वेन 'क'। हनुमान् सीतां युयोज युयुजे सन्त भक्तनां मनः परमात्मनि योक्ता योक्ष्यति। योक्ष्यते, युनक्तु युन्ताम्। अयुनक्। अयौक्षीत्। अयुक्त। अयोक्ष्यत्। अनुयुङ्क्ते अनुयोग करता है उद्युङ्क्ते = उद्योग करता है। उपयुङ्क्ते उपयोगः। नियुनक्ति = नियुक्त करने की क्रिया। प्रयुन्ते=प्रयोग करता है। वियुनक्ति = वियोग। (५) रिच् धातु विरेचन, पृथक्करण, रिक्त करना = खाली होना। फलजनक व्यापारो अर्थः, अनिट्, सकर्मकः, इर इत्। भाटकः गृहं रिणक्ति। रिङ्क्ते। चकारस्य कुत्वे,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अरिक्त। विचिर् पृथग्भावे। ६। विनक्ति, विङ्क्ते। क्षुदिर्। सम्पेषणे। ७। क्षुणत्ति, क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्, अक्षौत्सीत्. अक्षुत्त। उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः। ८। छृणत्ति, छृन्ते, चच्छर्द। (६३०) सेऽसिचीति वेट्। चच्छृत्से, चच्छृदिषे। छर्दिता। छर्दिष्यति, छर्त्स्यति अच्छृदत्, अच्छर्दीत्। अच्छर्दिष्ट। उतृदिर् हिंसानादरयोः। ९। तृणत्ति। तृन्ते। कृती वेष्टने। १०। कृणत्ति। तृह हिंसि हिंसायाम्। ११-१२।

७ तृणह इम् ७। ३। ९२। तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति।

अकारलोपे. सति नकारस्य अनुस्वारपरसवर्णे विरेचन, रिक्त फलका आधार गृह तदनुकूलक्रिया भाटकमें। छात्रः छात्रावासं रिरेच। रिरिचे, रेक्ता अत्रगुणे चकारस्य कुत्वे रेक्ष्यति सकारस्य षत्वे क्षत्वे। अरिणक्—उसने स्थान खाली कर दिया। तकारस्य हल्ङ्यादि लोपे, नकारस्य णत्वे, चकारस्य कुत्वे अरिङ्क्ताम् अरिञ्चन्। त्वं कदा अरिणक्, अरिङ्क्ताम्, अरिङ्क्त। अहं ह्यः अरिणचम्। अरिञ्च्व अरिञ्च्म। रिच्यात् रिञ्चीत। रिच्यात् रिक्षीष्ट। अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त। झलोझलि सिच् लोपः ककारस्य कुत्वम्। (६) विच धातु का पृथग्भाव, विभाग-करण, अलग होना, फलजनकव्यापारोऽर्थः। तण्डुलात् कंकड़ं विनक्ति। = अलग करता है। उपसर्गसे अनेक अर्थ होंगे। विवेच। वेक्ता। वेक्ष्यति। अविनक्। अविचद्। (७) क्षुध धातु का सम्पेषणम। चूर्णीकरणम्। कूटना, उलूखल में मुसलसे कूटने अर्थमें विशेष है। भार्या मुसलेन, उलूखले यवं क्षुणत्ति। क्षुन्ते। वैद्यः औषधानि चुक्षोद, चुक्षुदे, क्षोक्ता, क्षोत्स्यति उच्छृद् = छृद् धातु का दीप्ति, प्रकाश बढ़ाना, देवन, जूआ खेलना, शोक करना, गृहिणी वर्तिकां छृणत्ति। छृन्ते। पाण्डवः द्यूतं चच्छर्द। यथा—त्वं चछृदिसे, सेऽसिचिकृतचृतछृदतृदनृतः इति 'इट' विकल्पः। छर्दिता, छर्त्ता अद्यभिन्नभविष्यकालिकप्रकाशकर्ता। द्यूत क्रीडकः छर्दिष्यति छर्त्स्यति। च्लि, स्थाने अङ् अछृदत्। अङ् अभावे सिच् लिट्, सिज्लोपः। अच्छर्दिष्ट। (९ तृद धातुका हिंसा, प्राणवियोग। अनादर, अपमान फलके अनुकूल क्रिया, सेट्, उभयपदी। मदान्धः सर्वं तृणत्ति तृणतुल्य अपमान या कष्ट देता है। तृन्ते श्नम् अकारलोपे, झरोझरि सवर्णे, दकारलोपे। ऋषयः संसारं ततर्द, तर्दे। तर्दिता। तर्दिष्यति। तृणत्तु। तर्दिषीष्ट अतृदत् अतर्दीत्। अतर्दिष्ट। अतर्दिष्यत्। (१०) कृत् धातुका वेष्टन घेरना, लपेटना, अर्थः। पुस्तकं कृणत्ति (वेष्टयति)। (११-१२) तृह हिंस धातुका हिंसा के अनुकूला क्रिया अर्थः प्राण वियोगानुकूलव्यापारो हिंसा। (७) तृह् धातुको 'श्नम्' करने पर 'इम्' का आगम हो हलादि पित् प्रत्यय परे। तृणेढि। = हिंसानुकूल क्रियावाचक तृह् धातोः प्रचलितक्रियावर्तमाने लट् तिप्, शपं बाधित्वा, 'श्नम्'

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तृणेढि । तृण्ढः । ततर्ह । तर्हिता । अतृणेट् । ८ श्नान्नलोपः । ६ । ४ । २३ । श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् । हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता । ९ तिप्यनस्तेः ८ । २ । ७३ । पदान्तस्य सस्य दः स्यात् तिपि न त्वस्ते । (१०५) ससजुषोरुरित्यस्यापवादः । अहिनत्, अहिनद् । अहिंस्ताम् । अहिंसन् ।

६७० सिपि धातो रुर्वा ८ । २ । ७४ । पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद् वा । पक्षे (६७) 'झलां जशोऽन्ते' इति जश्त्वम् । अहिनः, अहिनत्,

---

अनुबन्धलोपे, णत्वे तृणह् ति 'तृण ह इम्' इति सूत्रेण इम् आगमे (अन्त्य अच् परे मित् भवति) ततः नकारघटकअकार-इकारयोः स्थाने एकार गुणे तृणेह ति । हकारस्य ढः, तकारस्य (तथोर्धोऽध्रः तस्य ष्टुत्वं ढः, ढोढेलोपः । नकारस्यणकारः । दस्यून तृण्ढः–तृनह तस इति नकारस्य अकारलोपः हस्य ढः तस्य ध, ढः ढोढेलोपः, नस्य णः । तृंहन्ति । त्वं सर्वं तृणेक्षि । तृण्ढः तृण्ढ अह कमपि न तृणेह्मि । तृंह्व तृंह्मः हिंसा क्रिया अद्यभिन्न भूतकालमें समाप्त हो तब । अतृणेट् । अतृनहत् 'तृणह इम् आगमे, तकारस्य हल्ङ्यादिलोपे, हकारस्य ढत्वे, जश्त्वे, चर्त्वे, रूपम् । अतृण्ढाम् अतृंहन् । अतृणेट् अतृण्ढम् अतृण्ढ । अतृणेह्मि अतृंह्व अतृंह्म । तृंह्यात् तृह्यात् । अतर्हीत् अतर्हिष्टाम् । अतर्हिष्यत् । (८) श्नात् 'श्नम्' से परे नकारका लोप हो । हिनस्ति मत्कुणम् । हिंसार्थक इदित् हिंस धातोः (इदितोनुम् धातोः नुम् कृते लट्), तिप् श्नम् हिनन् स् ति । श्नात् नलोपः इति द्वितीय नकारस्य लोपे रूपं । राक्षसौ हिंसतः । हिंसन्ति । त्वं पापं हिनस्सि । हिंस्थः हिंस्थ । हिनस्मि हिंस्व, हिंस्मः । जिहिंस, जिहिंसतुः । हिंसिता । हिंसिष्यति । हिनस्तु । (८) तिपि = पदान्त 'स' को द हो तिप् परे अनस्तेः = न अस्तेः । अस्का सकार न हो । यह सूत्र ससजुषोरुः का बाधक है । हिंसा क्रियाका अद्यभिन्न भूतकाल में । अहिनत् । हिंसार्थक हिंसधातोः नुम् लट् तिप् इकारलोपे, श्नम् अट् अहिनस्त् तकारस्य हल्ङ्यादिलोपे, तिप्यनस्तेः इति सकारस्य दः । न तु ससजुषोरुः । दकारस्य चर्त्वे अहिनत् रूपम् । पक्षे अहिनद् अहिंस्ताम् । श्नमः अकारलोपे नस्य अनुस्वारे रूपम् । अहिंसन् ।

(६७०) सिप्परे पदान्त धातु के स को रु हो । विकल्प से अहिनः=अहिनस् स् सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे 'श्नान्न लोपः' इति द्वितीय नकारस्य लोपे, सिपि धातोः इति सकारस्य रु नं भवति । तदा झलां जशोऽन्ते इति सकारस्य जश्त्वं दकारः, चर्त्वं विकल्पः अहिनत्, अहिनद्, अहिंसतम् अहिंसत अहिनसम्, अहिंस्व, अहिंस्म । हिंस्यात् अहिंसीत् । (१३.) उन्दधातु का क्लेदनम्, आर्द्री करणम् = गीला करना पसीना अर्थः । बालकः वस्त्रं उनत्ति—उनन्दति श्नान्नलोपः, द्वितीय नकारस्य लोपे दकारस्य चर्त्वे । रजकौ वस्त्राणि उन्तः अन्येऽपि उन्दन्ति । इजादिः गुरुमान् धातु

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अहिनद् । उन्दी क्लेदने । १३ । उनत्ति । उन्तः । उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार । औनत् । औन्ताम्, औन्दन् । औनः औनत् । औनदम् । अञ्जू व्यक्ति-म्रक्षण-कान्ति-गतिषु । १४ । अनक्ति । अङ्क्तः अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ, आनङ्क्थ । अञ्जिता, अङ्क्ता । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् । १ अञ्जेः सिचि ७ । २ । ७१ । अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् । आञ्जीत् । तञ्चू

होने से आम् कृ लिट् आदिका अनुप्रयोग । उन्दाञ्चकार खट्वाम् । आर्द्रीकरणक्रिया होने वाली हो तब उन्दिता । उन्दिष्यति । हो चुकी हो तब । औनत् । उन्द न त् आट्, वृद्धिः, द्वितीयनकारस्य लोपे, तकारस्य हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् इति लोपे दकारस्य चर्त्वे औनत्, औन्ताम् । नलोपः अलोपः, दकारस्य सवर्णे झरिपरे लोपे । औन्दन् औनः औनत् । सिप् सकारस्य हल्ङ्यादि लोपः । दकारस्य दश्चेति 'रुः' । उन्द्यात्, उद्यात्, औन्दीत् औन्दिष्यत् । (१४) उकार इत्, अञ्जधातुका व्यक्तिः, विवेचनम्, स्पष्टज्ञान करना, म्रक्षण, अभ्यङ्ग, विलेपनम्=शरीर में मालिस करना, कान्ति= इच्छा, गमन आदि फलजनकव्यापारो अर्थः ऊदित् से इट् विकल्प प्रश्नं शरीरम्वा अनक्ति । अङ्क्तः अञ्जन्ति । श्नान्नलोपः, जकारस्य कुत्वं गकारः, तस्य चर्त्वं ककारः । विवेचन अङ्गकी स्वच्छता, इच्छा, या गमन करता है । विवेक, स्वच्छता आदि फलजनक क्रियाके दो कर्ता हों तब द्विवचनं 'श्नम्' अनञ्ज तस् इति दशायाम् जकारस्य कुत्वं चर्त्वं ककारः नश्चापदान्तस्य झलि इति नकारस्य अनुसारे तस्य यथि परे पसवर्णे ङकार अन्त आदेशे । अञ्जन्ति । श्नमः परस्य नकारस्य लोपः, अकारलोपश्च अनुस्वारपरसवर्णे अनक्षि । अङ्क्थः, अङ्क्थ । अनज्मि, अञ्ज्व, अञ्ज्म । उक्तक्रिया अद्यभिन्न परोक्षकालमें समस्त हो, लिट् द्वित्वादिकार्ये अञ्ज् अञ्ज्, 'अत आदेः' आअञ्च् तस्मान्नुड्द्विहलः सूत्रेण नुट् । आनञ्ज आनञ्जतुः आनञ्जुः । त्वं स्वशरीरम् आनञ्जिथ, स्वरति-सूति-सूयति-धूञूदितोवा इति इट् विकल्पः । पक्षे कुत्वे, चर्त्वे, अनुस्वारपरसवर्णे । अञ्जिता । उदित्वात् इट्विकल्पः पक्षे अङ्क्ता । अञ्जिष्यति अङ्क्ष्यति । विधि प्रेरणा आदि की सम्भावनामे अनक्तु, अङ्क्तात् अङ्क्ताम् अञ्जन्तु अङ्ग्धि-अञ्ज् सि तस्य 'हि', हेर्धिः, सो अपित्, ङित् भवति । श्नम् अकारस्य लोपे, जकारस्य कुत्वं गः नकारस्य अनुस्वारपर सवर्णौ । अङ्क्तम् अङ्क्त । अनजानि । लोट्लकारस्य उ० पुरुषस्य आट्, पित्, भवति । द्वितीयनकारस्य श्नान्नलोपः । आनक्-आनअद् । आट्, वृद्धिः, धातु नकारस्य लोपः तकारस्य हल्ङ्यादिलोपः, चर्त्वम् । आङ्क्ताम् आञ्जन्, आनक् आङ्क्तम् आङ्क्त । आनजम् ।

(१) अञ्ज धातु से परे सिच् को नित्य इट् हो । यह विकल्पइट्का बाधक है । आञ्जीत=अञ्जधातोः भूतकाले लुङ् त, आट् वृद्धिः च्लेः, सिच्, तस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

संकोचने । १५ । तनक्ति । तङ्क्ता, तञ्चिता । ओवीजी भयचलनयोः । १६ । विनक्ति (६६५) विज इडिति ङित्वम् । विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् । शिष्लृ विशेषणे । १७ । शिनष्टि । शिंष्टः । शिंषन्ति । शिनक्षि । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । शिंढि । शिण्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । शिंष्यात् । शिष्यात् । अशिषत् । एवं पिष्लृ संचूर्णने । १८ ।

(अञ्जेः सिचि) इति नित्यमिट् । इट् च । इटः ईटि सलोपे । सवर्णदीर्घे । आञ्जिष्टाम् आञ्जिषुः । आञ्जीः, आञ्जिष्टम् आञ्जिष्ट । आञ्जिषम् आञ्जिष्व आञ्जिष्म । आञ्जिष्यत् आङ्क्ष्यत् । अभ्यनक्ति=अङ्गलेपन करता है । व्यनक्ति= स्पष्ट करता है व्यंग्य अङ्ग आदिशब्द इसी धातुके रूप हैं । बालिका नेत्रयोः अञ्जनम् अनक्ति । (१५) ऊकार इत् तञ्च् धातुका संकोचनम्—प्रसृतस्य वस्तुनो अल्पदेशकरणम् । बटोरना, संकुचित करने के अनुकूल व्यापारो अर्थः । विकल्प इट् सकर्मकः । सर्पः शरीरं तनक्ति । सेवकः ततञ्च, भवान् श्वः तङ्क्ता तञ्चिता इट् विकल्पः तङ्क्ष्यति तञ्चिष्यति । तनक्तु तङ्ग्धि । अतनक् अतञ्चत् । अताङ्क्षीत् । (१६) ओ ई इत् विज् धातुका भय चलन, कम्पन के अनुकूल क्रिया अर्थः चौरः वृक्षश्च विनक्ति । विवेज । विविजिथ, (विजइट्) इति ङित्वात् न गुणः । सर्वे विरोधिनः, श्व विजिता विजिष्यति । विनक्तु अविनक्, अविज्यात् ।

(१७ लृ इत् शिष धातुका विश्लेषण-विशेषता बताना अर्थः । विपूर्वक शिष् धातुका इतरव्यावृत्तिकरणरूपविशेषण अर्थः । केवल शिषका अवशेषो अर्थः । अकर्मक, अनिट् । लृदित्का फल च्लिको अङ् होना । ब्रह्म केवलं शिनष्टि शेष रहता है । अत्र तिपः तकारस्य ष्टुत्वम् । द्वौ, शिंष्टः, तस् प्रत्ययः अपित् सार्वधातुक होनेसे ङित् । श्नमः अकारलोपे अनुस्वारे ष्टुत्वे । फलानि शिंषन्ति । शिनक्षि सिप्परे षकारस्य 'षढोः कः सि' इति ककारे सिपः सकारस्य षत्वे । शिंष्ठः शिंष्ठ । अवशेष या विशेषता बतलानेकी परोक्ष भूतकालिक क्रिया (विशेष) शिशिषतुः शिशिषुः शिशेषिथ । शेष्टा, शेक्ष्यति, शिनष्टु, शिंष्टां शिंषन्तु । शिण्ढि=शिनष् हि इति अत्र श्नमो अकारस्य लोपे हिस्थाने धिः, षकारस्य जश्त्वं डः । धकारस्य ष्टुत्वं ढः सवर्णे झरिपरे डकारस्य लोपे अनुस्वारपरसवर्णौ । पक्षे शिंष्ठ शिंष्ठ (शिनषाणि—आट् मेर्निः णत्वम् । अशिनट् तिप् तकारस्य हल्ङ्यादिलोपे, षकारस्य जश्त्वेन डः, तस्य चर्त्वम् । अशिंष्टाम् । अशिंषन् । अशिनड् अशिंष्टम् अशिंष्ट । अशिनषम् । शिंष्यात् यासुट्, ङित् श्नमः अकार-लोपः अनुस्वारे । अशिषत्, अट्तिप् च्लिस्थाने (पुषादिसूत्रेण) अङ् अशिषताम् अशिषन् अशिषः । (१८) पिष—धातुका सञ्चूर्णनम् पीसना, चूर्ण करना

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भञ्जो आमर्दने। १९। (६६८) श्नान्नलोपः। भनक्ति। बभञ्जिथ। बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्ग्धि। अभाङ्क्षीत्। भुज पालनाभ्यवहारयोः। २०। भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक्।

२ भुजोऽनवने १। ३। ६६। तङानौ स्तः। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्—महीं भुनक्ति। ञिइन्धी दीप्तौ। २१। इन्धे। इन्धाते। इन्धते।

अर्थः है। अनिट लृदित्, सकर्मकः। ससंपं पिनष्टि। पिपेष, पेष्टा, पेक्ष्यति, पिनष्टु, अपिनट्। पिंष्यात् पिष्यात् अपिषत्। अपेक्ष्यत्।

(१६) ओकार इत् भञ्जधातुका आमर्दनं=त्रोटनम्=तोड़ना, भञ्जनकरना। ओदित्का फल निष्ठातको न होना। 'श्नान्न लोपः श्नम्से परे न का लोप होता है। हनुमान् वाटिकां भनक्ति। यथा-इन्द्रः वृत्तासुरं बभञ्ज, त्रोटन, भञ्जन, क्रियाका परोक्ष भूतकाल हो त्वं कदा बभञ्जिथ—(तास्से नित्य अनिट् होनेसे भारद्वाज नियमसे) इट् विकल्प, पक्षे जकारस्य कुत्वे, चर्त्वे, नकारस्य अनुस्वारे परसवर्णे बभङ्क्थ। श्वः फलानि भङ्क्ता। कपालं भङ्क्ष्यति। भनक्तु। भङ्क्तां भनजन्तु भङ्ग्धि हिस्थाने धिकृते, पित् भिन्न ङित् परे, श्नम्, अकारस्य लोपे, हेर्धि, जकारस्य कुत्वं नकारस्य अनुस्वारपरसवर्णो। भङ्क्तं भङ्क्त। भनजानि, भनजाव भनजाम। अभनक् भञ्ज्यात् भज्यात्। अभाङ्क्षीत्। अभञ्ज् सईत् वद व्रज हलन्तस्याचः इति वृद्धिः जकारस्य कुत्वं, चर्त्वं ककारः पत्वे क्षत्वे अनुस्वारे परसवर्णे। अभाङ्क्ताम् अभाङ्क्षुः। अभाङ्क्षीः अभङ्क्ष्यत्। वि उपसर्गसे विभाग अर्थः (२०) भुज्धातुका पालन रक्षण अभ्यवहार 'भक्षण' भोजन आदि अर्थः। बङ्गीयः तण्डुलं भुनक्ति, जकारस्य कुत्वे, चर्त्वे। तौ भुङ्क्तः। ते भुञ्जन्ति। त्वम् भुनक्षि। यूवां भुङ्क्थः। यूयं भुङ्क्थ। अहं भुनज्मि। आवां भुञ्ज्वः। भुञ्ज्मः। अतिथिः बुभोज। जज्ञे भोक्ता, लघूपधगुणः। भोक्ष्यति—भुजस्यति गुणे, कुत्वे। अभुनक् अभुङ्क्ताम् अभुञ्जन्। अभुनग् अभुङ्क्तम् अभुङ्क्त। अभुनजम् अभुञ्जव अभुञ्ज्म। भुञ्ज्यात्। भुज्यात् अभोक्षीत् अभोक्ष्यत्।

(२) अनवने, अवनं=रक्षणं, तद्भिन्नं=अरक्षणे अर्थ भुज्धातोः आत्मनेपदं पालन अर्थसे भिन्न भोजन अर्थमें आत्मनेपद हो। यथा—ओदनं भुङ्क्ते। भुज्धातुका भोजन अर्थ होनेसे आत्मनेपद हुआ। अनवने किम्। पालनसे भिन्न अर्थमें आत्मनेपद क्यों कहा। यहीं भुनक्ति। यहाँ पृथ्वीका भोग पालनरूप है आत्मनेपद नहीं हुआ। भोक्ता। भोक्ष्यते भुङ्क्तां भुङ्क्ष्व। भुञ्जाथां भुङ्ग्ध्वम् भुनजै भुनजावहै भुनजामहै। अभुङ्क्त, अभुङ्क्थाः अभुञ्जि,। भुञ्जीत, भुक्षीष्ट अभुक्त। अभुक्षाताम् अभुक्षत अभोक्ष्यत (२१) इन्धधातु दीप्ति, प्रकाश अर्थमें

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इन्त्से। इन्ध्वे। इन्धाञ्चक्रे। इन्धिता। इन्धाम्। इन्धाताम्। इनधै। ऐन्ध। ऐन्धाताम्। ऐन्धाः। विद विचारणे। २२। विन्ते वेत्ता।

इति रुधादयः।

८—अथ तनादयः

तनु विस्तारे। ३ तनादिकृञ्भ्यः उः ३।१।७९। शपोऽपवादः। तनोति. तनुते, ततान तेने। तनितसि, तनितासे, तनिष्यति, तनिष्यते।

है। इन्धे। श्नमूसे परे नकारलोप, उसीके अकारका लोप, टिको एत्व, त को ध, सवर्णपरे लोपः इन्धाते इन्धते। इन्धाञ्चगुं इजादिक्रेरुमान् होनेसे थाम् कृ' का प्रयोग। इन्धिता। इन्धाम्। इन्धते एकारस्य आम्। अकारलोपे। तस्य धः सवर्णलोपे। (२२) विद्धातुका विचारणानुकूलव्यापारो अर्थः, विन्ते, विद, न त, अकारलोपे। दकारस्य सवर्णे झरि परे लोपे। विन्दाते विन्दते विन्त्से, विन्दाथे विन्ध्वे, विन्दे विन्द्वहे विन्दहे। विविदे वेत्ता, वेत्स्यते, विन्ताम्, अविन्त, विन्दीत, वित्सीष्ट अवित्त, अवेत्स्यत्। इतिरुधादयः।

(८) अथतनादयः। तनादिगण पठित धातुओंका विशेष लक्षण उकार विकरण है। (१) तन् धातुका विस्तार, फैलानेके अनुकूल क्रिया अर्थः। उकार इत्का फल निष्ठाप्रत्ययको इट्का निषेध। यथा—ततं विश्वम्। विश्वको बनाया सकर्मकः सेट्, उभयपदी। (३) तनूधातु आदिमें हो ऐसे गणपठित धातुसे और कृधातुसे उप्रत्यय हो शप्को बाधकर। बुधःकीर्ति तनोति। विस्तार फलजनकक्रिया वाचक तनुधातोः क्रियायाः वर्तमाने कर्तरि लट् तिप् शप्स्थाने तनादिभ्यः उः, (विकरण) तन् उति गुणे। तनोति। विस्तारफलका आधार कीर्ति है। उसकी क्रिया बुधमें है। तनुते, यहाँ तकारके ङित् होनेसे गुण नहीं हुआ। तन्वाते तन्वते। तनुषे तन्वाथे तनुध्वे: तन्वे तन्वहे तनुमहे। ततान—द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये उपधा वृद्धिः तेनतुः तेनुः। तेनिथ तेनथुः तेन। ततान तेनिव तेनिम। एत्वे अभ्यासलोपे च तेने तेनाते तेनिरे। तेनिषे तेनाथे तेनिध्वे। तेने। त्वं वितानं तनितासि तनितासे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तनोतु, तनुताम् । अतनोत्, अतनुत । तनुयात्, तन्वीत । तन्यात्, तनिषीष्ट । अतनीत्, अतानीत् । ४ तनादिभ्यस्तथासोः २ । ४ । ७९ । तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् त-थासोः । अतत, अतनिष्ट । अतथाः, अतनिष्ठाः । अतनिष्यत्, अतनिष्यत । षणु दाने । २ । सनोति, सनुते ।

६७५ ये विभाषा ६ । ४ । ४३ । जन-सन-खनामात्वं वा यादौ क्ङिति सायात् । सन्यात् । असानीत्, असनीत् । ६ जन-सन-खनां सञ्झलोः ६ । ३ । ४२ । एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति असात्, असनिष्ट । असाथाः, असनिष्ठाः । क्षणु हिंसायाम् । ३ । क्षणोति, क्षणुते । (४६६) ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अक्षणीत्, अक्षत, अक्षणिष्ट । अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः । क्षिणु च । ४ । उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा । क्षिणोति

तनिष्यति तनिष्यपे । तनोतु, तनुतां तन्वन्तु । तनु तनुतं तनुत तनवानि, तनवाव तनवाम । तनुतां तन्वातां तन्वाताम् । तनुष्व । तन्वै तनवावहै, तन्वीत । तन्यात् तनिषीष्ट । अतानीत् अतनीत् (४) तन् इत्यादि धातुसे सिच्का विकल्पसे लोप हो, त और थास् परे । अतत--यहाँ सिच्का लुक् हो गया । यदा न लुक् तदा अतनिष्ट, अतनिषाताम् । अतथाः अतनिष्ठाः । तनादिभ्यः सिचो लुक् अनुदात्तोपदेश इति नकारस्य लोपे,लोपस्य अभावे इट् षत्वे ष्टुत्वे अतनिष्ठा । अतनिष्यत । (२) षोपदेशः सेट् सन् धातुका दान देना, मिलाना, सानना । मां घासः सनोति । तुषं सनुते ।

(६७५) ये विभाषा जनसन् षनधातुको आत्व विकल्पसे हो यकारादि (कित्) प्रत्यय परे यकारादि कित् प्रत्यय परे या सनः नकारस्य आत्वम् सायात् । यदा न आत्वं तदा सन्यात् । बालकः द्विदलं भक्तं च असानीत् । अतो हलादेर्लघोः इति वृद्धि विकल्पः । (६) जन् सन् षन् धातुओंके अन्त्य अल् नकारको आकार अन्तादेश हो, सन्परे झलादिकित् ङित् परे च । पशुओं या बालकोंके लिए दान क्रियाका भूतकाल (असन् सत्) तनादिभ्यः इति सिचोलुक् । जन् सन् इत्यात्वम् असात्, सिचो लोपाभावे इट् । तदा न झलादिः न च आत्वम् असनिष्ठ असनिषाताम् असनिषत । असाथाः असनिष्ठाः, असनिषाथाम् असनिढ्वम् असनिषि । (३) उकार इत् क्षणधातुका हिंसानुकूलव्यापारो अर्थः । हिंसक पशुं क्षणोति । क्षनुते । चक्षाण चक्षणे । अक्षणीत् । अक्षण इस ईत् । इटः ईटि सलोपे वदव्रज इति प्राप्त वृद्धेः 'नेटि' सूत्रेण निषेधे । अक्षणीत् अक्षतः । तनादिभ्यः सिचः विकल्पेन लुक्, अनुदात्तोपदेश इति णकारस्य लोपः यदा न सिचो लुक् तदा इट् षत्वे ष्टुत्वे । (४) क्षिणुधातुकाभी हिंसा, क्षीण, विनाश करना अर्थ । नाशकी क्रिया वर्तमान रहते । क्षणोति । उप्रत्ययके वर्तमान रहते । लघूपधगुणे=पुगन्ता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

क्षेणोति। क्षेणिता। अक्षेणीत्, अक्षित, अक्षेणिष्ठ। तृणु अदने। ५। तृणोति, तर्णोति। तृणुते, तर्णुते। डुकृञ् करणे। ६। करोति। ७ अत उत् सार्वधातुके ६।४।११०। उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति। कुरुतः। ८ न भकुर्छुराम् ८।२।७९। भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया न दीर्घः। कुर्वन्ति। ९ नित्यं करोतेः ६।४।१०८। करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः। कुर्वः। कुर्मः। कुरुते। चकार, चक्रे।

लघूपधस्य च इस सूत्रसे गुण हुआ। **यदि संज्ञापूर्वको विधिः अनित्यः।** कोई संज्ञा होनेपर विधि होना अनित्य है यथा—उपधासंज्ञा लघुसंज्ञाका निमित्त होनेसे 'गुण' संज्ञा पूर्वक विधि है। इस लिए अनित्य हुआ। तब गुण न होनेसे **क्षिणोति** यथा। शृगालः **क्षेणिता**। व्याघ्रः बालकान् **अक्षेणीत्**। **अक्षित** तनादिभ्यः इति सिचो लुक् विकल्पः। (५) तृणधातु **अदनं** भक्षणं तृण सहित खाजाना अर्थः। **तर्णोति** =सतृणम् अत्ति। तृणोति (यदा संज्ञापूर्वको विधिः अनित्यः तदा न गुणः)। तृणके तुल्य समझना धातुका स्वाभाविक अर्थः।

(६) डुकृञ् = कृधातुका करणे = उत्पत्तिके अनुकूल व्यापारो अर्थः। अनिट् उभयपदी सकर्मकः। डु इत्‌का फल क्त्रिप्रत्यय। कुलालः घटं करोति। उत्पत्ति फल घटमें तदनुकूल क्रिया कुलालमें। उत्पत्तिजनक क्रियावाचक कृधातुसे वर्तमान क्रियाकाले लट् तिप तनादिभ्यः उः, उकारपरे ऋकारस्य गुणः। एवं तिपरे उकारस्य गुणः करोति। कृ + तस् उ प्रत्यये। गुणे करुतस् ततः।

(७) उत् = उ प्रत्यय अन्तमें हो ऐसे कृञ धातुके अको ह्रस्व 'उ' हो। सार्वधातुककित् ङित् प्रत्यय परे। तस् ङित् है। उसके परे 'क' में अ को उ हो गया। कुरुतः। ङित्वात् गुणो न भवति। (८) भसंज्ञक कुर् छुर् की उपधाको दीर्घ न हो। कुर्वन्ति। कृ उ अन्ति। 'उ' विकरणस्य यणि। ऋस्थाने 'अर्' गुणे 'अत् उत् सार्वधातुके' इति अकारस्य उकारे 'हलिचेति' उकारस्य दीर्घे प्राप्ते। नभकुर्छुरामिति निषेधे। त्वं किं करोषि ? अहं घटं करोमि। यूवां किं कुरुथः ? आवां मालां कुर्वः। यूयं किं कुरुथ ? वयं चित्रं कुर्मः। (९) कृधातुसे परे प्रत्ययरूप उकारका नित्य लोप हो। (म, व) परे। (ऊकार लोप होनेसे कुर्वः कुर्मः बना। आत्मनेपद (जहाँ क्रियाका फल कर्तृगामी हो)। चैत्र चित्रं कुरुते। कुर्वाते। कुर्वते। कुरुषे। कुर्वाथे। कुरुध्वे। कुर्वे कुर्वहे कुर्महे। उत्पत्तिके अनुकूलक्रियापरोक्षकालमें समास हो तब चकार। कृ कृ कर् कृ ककृ चकृ अ गुणे उपधावृद्धिः, चक्रतुः चक्रुः। चकर्थ चक्रथुः। चकार। चकृव चकृम। चक्रे चक्राते चक्रिरे। श्वः घटं कर्ता। करिष्यति करिष्यते, गृहं करोतु। कुरुतां कुर्वातां कुर्वताम्। कुरुष्व कुर्वाथां कुरुध्वम्। करवै करवामहै। कुरुतात् कुरुतां कुर्वन्तु। कुरु कुरुतात् करवाणि। **अकरोत्**। अनद्यतन-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कर्तासि, कर्तासे। करिष्यति, करिष्यते। करोतु, कुरुताम्। अकरोत्, अकुरुत।

६८० ये च ६।४।१०९। कृञ उलोपः स्याद्यादौ प्रत्यये परे। कुर्यात्, कुर्वीत। क्रियात्, कृषीष्ट अकार्षीत, अकृत। अकरिष्यत्, अकरिष्यत। १ सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७। २ समवाये च ६।१।१३८। सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद् भूषणे संघाते चार्थे। संस्करोति=अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति=सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिद् अभूषणेऽपि सुट्। 'संस्कृतं भक्षाः' इति ज्ञापकात्। ३ उपात् प्रतियत्न-वैकृत-वाक्याध्याहारेषु च ६।१।१३९। उपात् कृञ सुट्

क्रिया समाप्तिकाले लङ्। कपालम् अकुरुतां, पात्राणि अकुर्वन् त्वं शूर्पम् अकरोः। कुद्दालं परशुञ्च अकुरुतम्। अकुरुत। अकरवम् अकुरुव अकुरुम। अकुरुत अकुर्वाताम् अकुर्वत। अकुरुथाः अकुर्वाथाम् अकुरुध्वम्। अकुर्वि अकुर्वहि अकुर्महि। करणानुकूलव्यापारविषयक विधि आज्ञा, प्रेरणा आशीर्वादकी सम्भावनामें विधिलिङ् कृ उ यासत् उ प्रत्ययपरे ऋकारस्य अर् गुणे अकारस्य अत् उत् इति सूत्रेण उकारे ततः।

(६८०) कृसे परे उकार का लोप हो यकारादि प्रत्ययपरे इति उप्रत्ययस्य लोपः हलिच इति दीर्घस्य न भकुर इति निषेधः। कुर्यात कुर्यातां कुर्युः। कुर्याः कुर्यातं कुर्यात कुर्यां कुर्याव कुर्याम। कुर्वीत कुर्वीयातां कुर्वीरन्। कुर्वीथाः। उत्पत्ति क्रियाविषयक आशीर्वादे अर्थे लिङ्। क्रियात् रिङ्शयलिङ्क्षु इति ऋकारस्यरिङ्। कृषीष्ट उश्च इति सूत्रेण कित्, तस्य फलं गुणो न। अकार्षीत् = अडादिकार्ये सिच् वृद्धिः, षत्वे। अकार्ष्टाम् अकार्षुः। अकार्षीः अकार्ष्टम् अकार्ष्ट। अकार्षम्। अकृत ह्रस्वादङ्गात् इति सिचो लोपः अकृषाताम् अकृषत। अकृथाः। अकरिष्यत्। (१) सम और परि उपसर्गसे कृ धातुको सुट् हो भूषण, अलङ्कार, अर्थमें सुट्के टित् होनेसे कके पहले स् हो सुट्का अलङ्कार अर्थ।

(२) समवाय = समुदाय अर्थमें भी सुट् समझें। माता कन्यां संस्करोति = अलंकृत करती है। यहाँ सुट्का सजाना सुशोभित, अलंकृत करना आदि अर्थः। सम्परीभ्यांसे सुट् संस्कुर्वन्ति, यहाँ सुट् होनेसे संघ, समुदाय, समवाय, अर्थ हुआ। संघीभवन्ति। इकट्ठे होते हैं। संघटन-बढ़ रहे हैं। समपूर्वक कृधातुको अभूषणाऽपि -भूषण अर्थ न होनेपर भी सुट् देखा जाता है। इसमें प्रमाण संस्कृतं भक्षाः। यहाँ भक्षणकी वस्तु (अन्नं संस्करोति) में सुट् देखा गया है। उसका सजाना अर्थ नहीं है। (३) उप उपसर्गसे परे कृञ्को सुट् आगम हो। एषुअर्थेषु - प्रति-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यादेष्वर्थेषु चात् प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो—गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं—विकारः। वाक्याध्याहारः—आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता कन्या। उपस्कृताः ब्राह्मणाः। एधो दकस्योपस्कुरुते। उपस्कृतं भुङ्क्ते। उपस्कृतं ब्रूते। वनु याचने। ७। वनुते। ववने। मनु अवबोधने। ८। मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत। मनिषीष्ठ। अमनिष्ट। अमत। अमनिष्यत। इति तनादयः।

यत्न, विकार, वाक्याध्यहार, अर्थों में भी चात् = चकारसे प्रागुक्तयोः = पहले कहे गये अलंकार संघ, आदि अर्थमें भी हो। प्रतियत्नका गुणाधान=गुणोंका रङ्ग चढ़ाना अर्थमें सुट्। जो वस्तु विकृत है, उसीको वैकृत कहते हैं। (विकारः) वाक्याध्याहार करके आकाङ्क्षित वाञ्छित शब्दसे एकदेशको पूराकरना। उपस्कृता कन्या यहाँ सुट्का कन्याको अलंकृत करना अर्थ है। उपस्कृताः ब्राह्मणाः। यहाँ सुट्से संघ अर्थ सिद्ध है। ब्राह्मण इकट्ठे हुए एधोदकस्य—यहाँ एधस् शब्द सान्त, नपुंसकलिङ्ग काष्ठवाची है। क्वाथ (उबाल) आदिमें लकड़ी जलके गुणको ग्रहण करती है। उपस्कृतं भुङ्क्ते। यहाँ विकार अर्थमें सुट् है, विकृतभोजन खाता है। उपस्कृतं ब्रूते। वाक्यका अध्याहार करके बोलता है। सुट्का वही अर्थ है।

(७) उकार इत् वन धातुका याचन = माँगनेके अनुकूल क्रिया है। भिक्षुकः भिक्षां वनुते। वन, उ, ते भिक्षा मांगनेके वर्तमानकालिकक्रिया। वन्वाते वन्वते वनुषे वन्वाथे। ववने। परोक्ष भूतकालकी याचन क्रिया आदि शब्द इसीधातुके रूप हैं। वनिता। आश्रय जाँचने वाली। ववने 'अत एकहल्मध्येसे प्राप्त एत्व अभ्यास लोपका (न शसददवादिगुणानां) से निषेध। (८) उदित मन्धातुका अवबोधन ज्ञान, स्वीकार, माननेके अनुकूलक्रिया अर्थः। आत्मानं पण्डितं मनुते। शप्के स्थान में उप्रत्यय। शिष्यौ गुरुं मन्वाते। सेवकाः वेतनं मन्वते। मनुषे मन्वाथे। मन्वे मन्वहे (म, व) परे उकारलोपः। मानने स्वीकार करने, ज्ञान होनेकी परोक्ष भूतकालिक क्रिया अर्थमें लिट् आत्मनेपदे 'त'—एश् (मन मन् ए) हलादिशेषः। एत्वे अभ्यास लोपे मेने श्वः विचारं मनिता। स सदा भवदाज्ञां मनुताम्। यथा—मातुः अमनुत। विदुषां सेवां मन्वीत्। मनिषीष्ट। अमनिष्ट अमनिषाताम् अमनिषत। तनादिभ्यस्तथासोः इति सूत्रेण तथ परे। यदा सिचोलोपो भवति, तदा अनुदत्तापदेश अनुनासिक नकारस्य लोपे सति। अमत अमनिषाताम् अमनिषत।

इति प्रभाकर्यां तनादयः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

९—अथ क्र्यादयः

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये । १ । ४ क्र्यादिभ्यः श्ना ३ । १ ८१ । शपोऽपवादः । (६१८) ई हल्यघोः । क्रीणीतः । (६१९) श्नाभ्यस्तयोरातः । क्रीणन्ति । क्रीणासि । क्रीणीथः । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रीणीवः । क्रीणीमः । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । क्रीणीषे । क्रीणाथे । क्रीणीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रियुः । चिक्रेथ, चिक्रयिथ । चिक्रीये । क्रेता । क्रेष्यति, क्रेष्यते । क्रीणातु, क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । अक्रीणात्, अक्रीणीत । क्रीणीयात्-क्रीणीत । क्रीयात्, क्रेषीष्ट । अक्रेषीत्,

---

(९) अथ क्यादि—इस प्रकरण का भेदक धर्म श्ना विकरण शप् का अपवाद है । (१) डुञ् इत् क्रीधातु का द्रव्य विनिमय खरीदना, किसी वस्तु या द्रव्य को देकर कोई वस्तु लेना । लोक में वि उपसर्ग से विक्रय अर्थः । केवल क्री मे क्रयके अनुकूलक्रिया अर्थः । द्रव्य विनिमयकी क्रियावाचक क्रीधातोः प्रचलितक्रयण क्रियावर्तमाने कर्तरि लट्, ति, शपं वाधित्वा । (४) क्री आदि धातुओं से श्ना प्रत्यय हो शप्को बाधकर शकार इत् । प्रकृतिप्रत्ययमध्ये क्रीनाति णत्वे । पुस्तकं क्रीणाति । फले क्रीणीतः अत्र श्ना आकारस्य 'हलि' अघोः' सूत्रेण ईत्वे । जनाः मेलायां मिष्ठान्नं क्रीणन्ति । झो अन्तः । श्ना आकारस्य श्नाभ्यस्तयोः लोपः । त्वं क्रीणासि । यूवां क्रीणीथः । यूयं क्रीणीथ । अहं क्रीणामि । आवां क्रीणीव, वयं क्रीणीमः । ङिद्वत्स्थले आकारस्य ईत्वम् । क्रीणीते । अपित् ङित् स्थले श्ना आकारस्य ईकारे हलिपरे । यत्र हलिपरे नास्ति तत्र श्ना श्नाभ्यस्तयोः आकार लोपे यथा—क्रीणाते क्रीणते क्रीणीषे क्रीणाथे क्रीणीध्वे । क्रीणे क्रीणीवहे । स कदा सकलानि पुस्तकानि चिक्राय । इति अहं न जाने । द्रव्य विनिमय (खरीदने) के परोक्षभूतकालिक क्रिया । क्री लिट् णल् = अ द्वित्वे अभ्यास आदिकार्ये द्वितीयस्य इकारस्य अचोऽञ्णिति 'ऐ' वृद्धिः । आय आदेशे रुपम् । ते शाटिकां विक्रियतुः अत्र अतुस् कित् अस्ति । तस्यफलं गुण निषेधः । ततः अचिश्नु इतीयङ् । ताः चिक्रियुः । एवं चिक्रिये चिक्रियाते चिक्रयिरे । चिक्रेयिथ अत्र नित्यम् इट् । श्वः पीतवस्त्रं क्रेता । कृष्णाङ्गारं क्रेष्यति । सर्वे क्रीणन्तु । भवान् सम्पन्नः । क्रीणीतात् क्रीणीताम् । क्रीणीहि क्रीणीतं क्रीणीत । क्रीणानि क्रीणीव क्रीणीम । क्रीणीतां क्रीणातां क्रीणताम् । क्रीणीष्व । क्रयणक्रिया की अद्यभिन्नभूतकाल में लङ् अक्रीणात् गोपालः दधि । वनेचरो सोमम् आक्रीणीताम् पालाः मेषान् अक्रीणन् । अक्रीणाः अक्रीणीत । अक्रीणम्, अक्रीणीव अक्रीणीम । आत्मनेपदे अक्रीणीत् । अक्रीणाताम् अक्रीणत ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अक्रेष्ट । अक्रेष्यत्, अक्रेष्यत । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च । २ । प्रीणाति, प्रीणीते । श्रीञ् पाके । ३ । श्रीणाति । श्रीणीते । मीञ् हिंसायाम् । ४ ।

६८५ हिनु-मीना ८ । ४ । १५ । उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्यैतयो र्नस्य णः स्यात् । प्रमीणाति, प्रमीणीते । (६३८) मीनातीत्यात्वम् । ममौ । मिम्यतुः । ममिथ, ममाथ । मिम्ये । माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । षिञ् बन्धने । ५ । सिनाति, सिनीते ।

अक्रीणीथाः । अक्रीणे क्रीणीयात् । सीयुट् परे श्ना आकारस्य लोपः । हलादिपरे श्ना आकारस्य ईत्वम् । अजादिपरे आकारलोपे । क्रीणीयाताम् क्रीणीयुः क्रीणीयुः क्रीणीथाः क्रीणीथाम् क्रीणीत क्रीणीयाताम् क्रीणीरन् । अक्रैषीत्—क्रयणक्रिया भूतकाले लुङ् अ क्री स् ई त् । इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः, सिच् परे सकारस्य षत्वे रुपम् । अक्रैष्टाम् अक्रैषुः । अक्रैषीः अक्रैष्टम् अक्रैष्ट । अक्रैषम् अक्रैष्व अक्रैष्म । अक्रैष्यत् विक्रय अर्थ में परिव्यवेभ्यः क्रियः से आत्मनेपद ही होता है ।

(२) ञकार इत् प्रीधातु का तर्पणं तृप्तिः सन्तुष्टिः प्रसन्न होना, कान्तिः — इच्छा करने के अनुकूल क्रिया अर्थः । अनिट् उभयपदी सकर्मकः । शैवः शिवं प्रीणाति । सन्तुष्टि या इच्छा का आधार शिव है । प्रसन्न करने के अनुकूल क्रिया शैव (शिवभक्त) में है । पिप्राय पिप्रिये, प्रेता, प्रेष्यति । प्रीणातु । अप्रीणात् । अप्रीणीत । अप्रैषीत् अप्रेष्ट । (३) एवं श्री श्रीणाति सीरा में पकाता है । श्रीणीते । शिश्राय शिश्रिये, श्रेता, श्रेष्यति अश्रैषीत् । (४) मीधातु का हिंसा परपीडा, प्राण वियोगजनकव्यापारो अर्थः । सकर्मक, उभयपदी, अनिट् । सिंहः शशकं मीनाति । कुक्कुटं प्रमीणीते ।

(६८५) उपसर्ग में स्थित णत्व का निमित्त 'इ' 'ष' से परे हिनु, मीनाके न को 'ण' हो : मीनातिमिनोतिदीङाल्यपिच सूत्र से 'मी' के ई को आत्व हुआ । मा मा णल् स्थाने औ 'आत् औ णलः' । वृद्धिः । ममौ । हिंसा की परोक्ष भूतकाल की क्रिया (श्वानौ शृगालं मिम्यतुः) मिमि द्वित्वे अतुस् परे यण् आदिकार्यें । आत्व केवल तिप् सिप् मिप् में ही होता है । मिम्युः सिप् स्थाने थल् परे मीनाति मिनोति इति आत्वम् । द्वित्वादिकार्ये । तास् परे नित्यम् अनिट्, अजन्त अकारवान् धातुः भारद्वाज मते इट् । आतोलोप इटच' इति आकारलोपे । ममिथ । इट अभावे । ममाथ त्वं शशकान् । कदा मत्कुणं मिम्ये । एशपरे यण् । माता (हिंसा कर्ता) मास्यति (प्राणवियोगं करिष्यति) मीयात् मासीष्ट, अत्र आत्वे कृते यम्रम् नमातांसक्च इति सक् । इट् कृते अ मा स् इ त् । इटः ईटि सलोपे, दीर्घे रुपम् । अमासिष्टाम् अमासिष्ट । अमासिषम् । अमास्त च्लि सिच् । अमासाताम् अमासत ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सिषाय, सिष्ये। सेता। स्कुञ् आप्लवने। ६। ६ स्तन्भु-स्तुन्भु-स्कन्भु-स्कुन्भु-स्कुञ्भ्यः श्नुश्च ३।१।८२। एभ्यः श्नुप्रत्ययः स्यात् चात् श्ना। स्कुनोति, स्कुनाति। स्कुनुते, स्कुनीते। चुस्काव, चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्, अस्कोष्ट। स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः। सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः। ७ हलः श्नः शानज्झौ ३।१।८३। हलः परस्य श्न शानजादेशः स्याद् हौ परे। स्तभान। ८ जॄ स्तन्भु-म्रुचु म्लुचु-ग्रुचु-ग्लुचु-ग्लुञ्चु-श्विभ्यश्च ३।१।५८। च्लेरङ् वा स्यात्। ९ स्तन्भेः ८।३।६७। स्तन्भे सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। व्यष्टभत्, अस्तम्भीत्। युञ् बन्धने। ७। युनाति, युनीते।

अमास्थाः अमासाथाम् (५) ञित्, उभयपदी, अनिट्। षिधातुका वन्धन के अनुकूल-क्रिया अर्थः। वृषभं सिनाति वत्सं सिषाय। पोटकं सिष्ये। सेता, सेष्यति, सिनातु, असीनात्, सीयात् असैषीत् असैष्टाम् असैषुः। असित असिषाताम् असिषत। असिथाः। (६) स्कुधातु का आप्लवनम्=गतिविशेष, चारों ओर ऊछलकूद, जल में चतुर्दिक तैरना। आप्लवन की क्रिया के वर्तमान काल में लट् स्कुति ततः।

(६) स्तन्भु स्तुन्भु इत्यादि सूत्रपठितधातुओं से श्नु विकरण है। चकारसे श्ना भी हो। इतिश्नुः गुणः स्कुनोति। पक्षे स्ना स्कुनाति। वत्तख तैरता है। कठपुतली नाचती है। काष्ठपुत्तलिका चुस्काव कुष्काव परोक्षकालिक उछलकूद की क्रिया। स्कुको द्वित्वादिकार्यं शर्पूर्वाः खयः शिष्यते। कपिः श्वः स्कोता। स्कौषीत्। स्तन्भु आदि चार धातुएँ सौत्राः=सूत्रमें पठित हैं। धातुपाठमें नहीं। ये सभी रोधनार्थक (रोकने) अवरोध अर्थवाले परस्मैपदी हैं। (७) हल से परे श्नाके स्थानमें शानच् आदेश हो। हिपरे। यहाँ श्नः इति श्नाशब्दस्य षष्ठी—विभक्तेः एकवचने रुपम्। ('आतो धातोः' सूत्रके (आतः) योग विभागसे अधातुके भी अकारलोप होने से श्नाङ्स् अकार लोप हुआ) श्नः वना। स्तभान—रोधनार्थक स्तन्भ इति सौत्रधातोः प्रेरणा अर्थे लोट्, सिप्, हि, श्ना, स्तन्भ हि। अनिदितामिति न लोपः। हलः श्नः इति सूत्रेण श्नास्थाने शानच्—आन। अतोहेः इति हेर्लोपः। (८) नृ स्तन्भु म्रुचु इत्यादि सूत्रपठितधातु और श्वि धातुओंसे परे च्लिको अङ् आदेश विकल्पसे हो। (९) सूत्रपठित स्तन्भ धातुके सको ष हो। व्यष्टभत्। विउपसर्ग स्तन्भधातोः भूतकालिकक्रियार्थे लुङ् तिप् च्लिस्थाने जृस्तम्भसूत्रेण अङ्=अ, ङित् अस्ति। अनिदितामिति नकारस्य लोपे। स्तन्भु इति सूत्रेण सकारस्य षत्वे ष्टुत्वे, अटि, यण् रुपम्। यदा च्लिस्थाने सिच् तदा इट ईट् सिचो लोपे, दीर्घे। स्तन्भीत् गोकर्णः सूर्यम्। यु धातुका बन्धन अर्थ है। सकर्मकः अनिट्। यशोदा कृष्णं युनाति। दुर्वाशा राधाकृष्णौ युयाव। युयुवे। कृषकः वत्सानि योता योष्यति, युनातु, अयुनात्, युनीत, युषीष्ट अयौषीत्। अयौष्टाम्, इत्यादि (८)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

योता। क्नूञ् शब्दे। ८। क्नूनाति, क्नूनीते। क्नविता। दॄञ् हिंसायाम्। ९। दृणाति, दृणीते। द्रूञ् हिंसायाम्। १०। द्रूणाति, द्रूणीते। पूञ् पवने। ११।

६९० प्वादीनां ह्रस्वः ७। ३। ८०। पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वॄञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भॄ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ कॄ ॠ गॄ ज्या री ली व्ली प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः। पुनाति, पुनीते। पविता। लूञ् छेदने। १२। लुनाति, लुनीते। स्तॄञ् आच्छादने। १३। स्तृणाति। (६४८) शर्पूर्वाः खयः। तस्तार। तस्तरतुः। तस्तरे। स्तरिता, स्तरीता। स्तृणीयात्, स्तृणीत। स्तीर्यात्।

क्नू धातुका शब्दे कुँ कूँ की आवाज करना, सेट् अकर्मक। मूषकः क्नुनाति। वराटिका चुक्नाव चुक्नुवे। वत्सः क्नविता। अक्नावीत्। अक्नविष्ट। (९) दृधातु हिंसार्थक है। दृणाति। सिंह हरिणम्। व्याघ्रः अजांददार, ददरे। कालः त्वां दर्ता। दरिष्यति, दरिष्यते। भावान् वृश्चिकं दृणातु दृणीताम्। यथा—हस्ती क्षेत्रं अदृणत्, अदृणीत, दृणीयात्। द्रियात्। दृषीष्ट। मार्जारी मूषकं अदार्षीत्, अदृत।

(१०) द्रुधातुभी हिंसार्थक है। वकः मत्स्यं द्रुणाति। हस्ती वृक्षं दुद्रुवे, दुद्राव, । वृषभः क्षेत्रं द्रविता। टिड्डीदलं शस्यान् द्रविष्यति द्रविष्यते। हनुमान अशोकवाटिकां अद्रुणात् अद्रावीत् अद्रविष्ट (११) ञ् इत् पू धातुका पवन (पवित्र) शुद्धिके अनुकूलव्यापारो अर्थः। सेट् सकर्मक। (६९०) प्वादीनाम् पूञ् पवने छेदनार्थकलूञ्, आच्छादनार्थक स्तॄ, हिंसार्थककॄञ्, स्वीकरणार्थक वॄञ् कम्पनार्थक धूञ्, हिंसार्थकशॄ, पालनार्थक पॄ, पोषणार्थक भॄ, प्राणवियोगार्थक मॄ हिंसार्थक दॄ, जीर्णार्थक जॄ—झॄ, धारणार्थक धॄ विनाशार्थक नॄ, गत्यर्थक ॠ, निगलनार्थक गॄ वयोहानि—अर्थे ज्या, हिंसार्थक री मेलनार्थक ली, स्वीकारार्थक व्ली, गमनार्थक प्ली, इन चौबीस धातुओंको शित् प्रत्ययपरे ह्रस्वहो। अग्निः अशुद्धं वस्तु पुनाति। पवनार्थकपूधातोः प्रचलित क्रिया वर्तमाने लट् तिप् श्ना, शित् परे ऊकारस्य ह्रस्वः सूर्यः सर्वं पुनाति। पुपाव पुपुवे। गङ्गा पविता। सर्वान् पविष्यति। शिवः पूयात् पविषीष्ट अपावीत् अपविष्ट। (१२) लू धातुका छेदन कर्तन, काटना अर्थजनक क्रिया सेट् सकर्मक। क्षेत्रं लुनाति। शष्यं लुनीते। लुनातु, अलावीत् अलविष्ट। लविता लविष्यति। लुनीयात् लूयात् लुनिषीष्ट।

(१३) स्तॄधातुका आच्छादन, ढकना, फैलाना आवरण, अर्थजनकव्यापारः। स्तृणाति। चादरसे समान ढकता है। शर्पूर्वक—(स ष श) खय् प्रत्याहारके अक्षरपरे हो तो खय्प्रत्याहारका अक्षर ही शेष रहता है। कुशान् तस्तार= आच्छादनकी परोक्षकालिकसमाप्तक्रिया अर्थे लिट् तिप् णल् द्वित्वादिकार्ये शर्पूर्वाः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७ । २ । ४२ । वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि ।

२ न लिङि ७ २ । ३९ । वृत इटो लिङि न दीर्घः । स्तरिषीष्ट । (५४४) उश्चेत्यनेन कित्वम् । स्तृषीष्ट, (६१६) सिचि च परस्मैपदेषु । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषुः । अस्तरीष्ट, अस्तरिष्ट अस्तीर्ष्ट । कॄञ् हिंसायाम् । १४ । कृणाति, कृणीते । चकार, चकरे । वॄञ् वरणे । १५ । वृणाति, वृणीते । ववार, ववरे । वरिता, वरीता । (६११) उदोष्ठ्येत्युत्वम् । वूर्यात् । वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवूर्ष्ट । धूञ् कम्पने । १६ । धुनाति, धुनीते । धोता, धविता ।

खयः सूत्रसे अभ्यासका खय् (त) शेष रहा । स का लोप । उत्तरखण्डस्य ऋकारस्य ऋच्छत्यृतामिति, गुणः । अत उपधायाः वृद्धिः । सेवको विस्तरं तस्तरुः । तस्तरे श्वः षटवां स्तरिता । वृतोवा इति इट् स्थाने दीर्घविकल्पे । स्तरीता । स्तृणातु अस्तृणात् स्तृणीयात् । स्तृणीत । स्तीर्यात् । यासुट्परे ऋत इद्धातोः इति सूत्रेण इर् आदेशे । हलिचेति दीर्घे । आच्छादनार्थक'स्तृ'धातोः आशीर्वादार्थे लिङ् आत्मनेपदे'त'सीयुट् सुट् अनुबन्धलोपे ततः । (१) वृङ् वृञ् और ऋदन्त धातुओंसे परे लिङ् और सिच् को इट् हो विकल्पसे आत्मनेपदपरे रहते इति वा इट् । (२) ऋकारस्य गुणे वृङ् वृञ् ऋदन्त धातुसे परे इट्को दीर्घ न हो । षत्वे ष्टुत्वे स्तरिषीष्ट । इट् अभावपक्षे उश्च इति सूत्रेण सीयुट् कित् भवति । तस्य फलं गुणनिषेधः ऋकारस्य इर् आदेशः । हलिचेतिदीर्घे । षत्वे ष्टुत्वे स्तरिषीष्ट । प्रकृतिः आकाशम् अस्तारीत् अस्तृईस् ईत् । सिच्परे इगन्ताङ्गस्य ऋकारस्य आर् वृद्धिः । वृतोवा इतिदीर्घः । प्राप्नोति'न सिच् परस्मैपदेषु इति न दीर्घः । स्तारिष्टाम् स्तारिषुः । अस्तृस्त लिङ्सिचोः इति इट् । ऋकारस्य गुणः वृतोवा इति दीर्घे अस्तरीष्ट । यदा न दीर्घः अस्तरिष्ट । यदा इट् न तदा उश्च इति सिच् कित् भवति । ऋकारस्य इर् आदेशे, दीर्घे, षत्वे ष्टुत्वे स्तीर्ष्ट । (१४) कृधातुका हिंसाजनक व्यापारोऽर्थः । स्तॄञ्धातोः तुल्यं रूपम् । (१५) वॄञ्का भी वरण = स्वीकारजनक व्यापारो अर्थः । दाता वरं वृणाति । प्वादीनां ह्रस्वः यथा—नलः दमयन्तीं ववार । स्वीकार किया । बहवः कन्यां वरीतारः वरिष्यन्ति । रामः सीतां अवृणात् । अवृणीयात् वूर्यात् । यासुट् किदस्ति । उदोष्ठ्यपूर्वस्य इति सूत्रेण ऋकारस्य उर् आदेशे । हलिचेति दीर्घे । वरिषीष्ट । लिङ्सिचोरिति इट् विकल्पः । अवारीत् । अवरीष्ट । (१६) धूधातुका कम्पन, कँपाना हिलाना, जनकक्रिया अर्थः सकर्मकः । स्वरतिसूतिसूयतिधूञ् ऊदितोवा इति इट् विकल्पे । धुनियाँ रुई धुनता है । धुनाति धुनीते वायुः । वृक्षं दुधाव दुधुवे ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट। ग्रह उपादाने। १७। गृह्णाति, गृह्णीते। जग्राह, जगृहे।

३ ग्रहोऽलिटि दीर्घः ७।२।३७। एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि। ग्रहीता। गृह्णातु। (६८७) हलः श्नः शानज्झौ। गृहाण। गृह्यात्। गृहीषीष्ट। (४६५) ह्म्यन्तेति न वृद्धिः। अग्रहीत्। अग्रहीष्टाम्। अग्रहीष्ट। अग्रहीषाताम्। कुष निष्कर्षे। १८। कुष्णाति। कोषिता। अश भोजने। १९। अश्नाति। आश। अशिता। अशिष्यति। अश्नातु।

धोता, धविता। इट् विकल्पः। धोष्यति धविष्यति, अधुनात्। अधावीत्। स्तुसुधूञ्भ्यः नित्यमिट्। अधविष्ट। (१७) ग्रहधातुका उपादान=ग्रहण स्वीकार फलजनक व्यापारो अर्थः। स्वरितेत्, सेट्, सकर्मकः। बालकः चोरस्यं गृह्णाति। उपादानार्थकग्रहधातोः लट्ति श्ना अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्। तस्यफलं ग्रहिज्या इति सूत्रेण रेफस्य ऋसम्प्रसारणम्। बालकः पुत्तलिकां गृह्णीते। कृषकौ हलं गृह्णीतः। स्त्रीयः जलघटं गृह्णन्ति। त्वं मधूकं गृह्णासि। गृह्णीथः गृह्णीथ। अहं पुस्तकं गृह्णामि। आवां लगुडं गृहह्णीव। वयं गृह्णीम। गृह्णीते गृह्णाते, गृह्णते। गृह्णीसे। जग्राह, जगृहे, जग्रहाते, जग्रहिरे। (३) एक अच् रूप ग्रहधातुसे विधान किया गया इट् को दीर्घ हो, अलिटि=लिट परे न हो तो ग्रहीता। स्वीकारार्थक ग्रह धातोः अद्यभिन्नभविष्यकाले अर्थे लुट् इट् आदि। ग्रहोअलिटि दीर्घः। इति दीर्घे ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यते। गृह्णातु गृह्णीतात् गृह्णीताम् गृह्णन्तु। गृहाण अत्र हलः परस्य 'श्ना' स्थाने शानच्=आन कृते हेर्लुक्। गृह्णीत। गृह्णानि गृह्णीव गृह्णीम। गृह्णीताम् गृह्णाताम् गृह्णताम् अगृह्णत् अगृह्णीत गृह्णीयात् गृह्णीत गृह्यात् ग्रहीषीष्ट ग्रहोऽलिटि इति दीर्घः उपादानक्रियाके भूतकालमें अग्रहीत् इ स् ई त्। इट ईटि, सलोपे, सवर्ण दीर्घे, अत्र वदव्रजहलन्तस्याचः इति प्राप्तां वृद्धि 'नेटि' सूत्रेण निषेधे। विकल्पवृद्धिः ह्म्यन्त=क्षणश्वस् आदि सूत्रेण निषेधः। अग्रहीष्टाम् अग्रहीष्ठाः। अग्रहीषम् अग्रहीढ्वम्। अग्रहीष्यत् अग्रहीष्यत।

(१८ कुष धातुका निष्कर्ष=अन्तर्गतस्य वहिः निःसारणम्=खोदकर बाहर निकालने के अनुकूल किया। सेट्। तृणेन दन्तं कुष्णाति। बिलात् सर्पं चुकोप। अकोषीत्। (१९) अश का भोजन करना अर्थः। स मोदकम् अश्नाति। नकारस्य श्चुत्वं प्राप्तं शात् इति निषेधे। अश्नीतः अश्नन्ति। त्वं कर्पट्टिकां अश्नासि, अश्नीथः। अहं फलानि अश्नामि अश्नीवः अश्नीमः। शश्कुलीम् आशः श्रीफम् आशतुः। अशिता। तण्डुलम् अशिष्यति। भवान् ससुखम् अश्नातु अश्नीतां अश्नन्तु। त्वं घृतम् अशान। हलः श्नः इति श्ना स्थाने शानच्। अतः परस्य हेर्लुक्। अश्नीतं अश्नीत अश्नानि, अश्नाव अश्नाम। अनद्यतनभूतकालकी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अशान। मुष स्तेये। २०। मोषिता। मुषाण। ज्ञा अवबोधने। २१। जज्ञौ। वृङ् संभक्तौ। २२। वृणीते। ववृषे। ववृढ्वे। वरिता, वरीता। अवरीष्ट, अवरिष्ट, अवृत।

इति क्र्यादयः।

१०—अथ चुरादयः

चुर स्तेये। १। ४ सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५। एभ्यो णिच् स्यात्।

क्रिया अर्थ में लङ्। आश्नात आश्नीताम् आश्नन्। आश्नाः आश्नीतम् आश्नीत। अहं जम्बूरसम् आश्नम्। अश्नीयात्। अश्नीयाः अश्नीयाम्। अश्यात्। आशीत आशिष्टाम्। आशिष्यत्। (२०) मुष्—धातुका स्तेयं चौर्यम् = चोरीकरना अर्थः। कृष्णः नवनीतं मुष्णाति चौरः चणकं मुमोष। मूषकः मोषिता) मोषिष्यति, मोहनोऽपि मुष्णातु। गोपीनां वस्त्रं अमुष्णात्। मुष्णीयात्। स सदा मुष्यात्। इन्द्रः अश्वं अमोषीत्। अमोषिष्यत्। (२१) ज्ञा—धातुका अवबोधन ज्ञानकरना अर्थः ज्ञाननेकी क्रियावर्तमान रहते जानाति। 'ज्ञाननोर्जा' सार्वधातुक लकारोंमें 'जा' करेगा। जानीतः जानन्ति त्वं मम गुणं जानासि। जानीथः जानीथ अहं सर्वं जानामि जानीवः जानीमः। जानीते जानाते जानते। तदपि च न जाने स्तुति महो। जज्ञौ ज्ञा ज्ञा ज्ञज्ञा णल् स्थाने औ आदेशे। वृद्धिः। जज्ञतुः। ज्ञाता, ज्ञास्यते, ज्ञास्यति। जानातु जानीतां जानन्तु। जानीहि जानीतं जानीत। जानामि जानाव जानाम। जानै जानावहै जानामहै। जानीयात् जानीयातां जानीयुः। जानीत जानीयातां जानीरन्। ज्ञेयात्। ज्ञायात् ज्ञासीष्ट अज्ञासीत्। अज्ञास्त अज्ञासाताम् अज्ञासत।

(२२) वृङ्धातुका सम्भक्ति = पूजा, दान, सेवाजनकव्यापार अर्थः। वृणीते वृणाते वृणते वृणीषे वृणाथे वृणीध्वे। वृणे वृणीहे वृणीमहे। वव्रे वव्राते वव्रिवे। ववृषे अत्र इट् निषेधः 'कृ, सृ' इति सूत्रेण। वरीता अवरीष्ट लिङ्सिचोः इति दीर्घे। दीर्घस्य अभावे अवरिष्ट, इट् अभावे ह्रस्वादङ्गात् इतिसिच्लोपः। अवृत इति प्रभाकर्यां क्र्यादयः।

(१०) अथचुरादयः (१) चुरधातु=चोरी करनेके अनुकूलक्रिया अर्थः। इस प्रकरणका भेदकधर्म स्वार्थमें णिच् प्रत्यय है। यह सकर्मक सिद्ध है। स्तेयार्थ-जनक क्रियावाचक चुरधातोः णिच्। (४) सत्यापपाशरूपवीणा तूल श्लोक, सेना

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

चूर्णान्तेभ्यः 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे। (४५१) पुगन्तेति गुणः (४६८) सनाद्यन्ता इति धातुत्वम्। तिप् शबादि। गुणायादेशौ। चोरयति। ६९५ णिचश्च १। ३। ७४। णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात्। चोरयिषीष्ट (५१८) णिश्रीति चङ्। (५३०) णौ चङीति ह्रस्वः। (५३१) चङीति द्वित्वम्। (३९६) हलादिः

लोमन् त्वच् वर्मन्वर्णचूर्ण इन शब्दोंसे तथा चुरादिगणपठित धातुओंसेपरे णिच् हो, ण् च् इत्। चुर इति स्थिते चूर्णान्तेभ्यः = सत्यापसे लेकर चूर्णपर्यन्तशब्दोंको प्रातिपादिकसे धातुके अर्थमें णिच् विधान सिद्ध था। तेषामिह = उन शब्दोंका यहाँ ग्रहण करना प्रपञ्चार्थम् प्रातिपदिकोंको बिस्तारसे समझनेके लिए है। यहाँ अनुपयोगी है तथापि सत्यापयति = सत्यप्रमाणित करता है। पाशयति = पाशं करोति रुपयति = चित्र बनाता है। वीणांकरोति वीणयति। अवीविणत्। तूलयति (धुनकर, रुई, बनाता है)। श्लोकयति श्लोक बनाता है। सेनायति = सेनाका संगठन करता है। लोमयति, त्वचमति, वर्मयति, वर्णयति, चूर्णयति। यहाँ तक णिच् प्रत्यय का धात्वर्थ करोति या आचष्टेसे विवृत है। चुरादिधातुसे णिच् स्वार्थ में हो। स्वं प्रकृति (चुर्) तस्य अर्थः स्वार्थ चोरीके अनुकूल क्रिया। स्वार्थे भवः स्वार्थिको णिचप्रत्ययः इसका प्रकृतिसे भिन्न कोई विशेष अर्थ नहीं है। चुर् इ अत्र णिच् आर्धधातुक संज्ञकः पुगन्तलघूपधस्य च इति उपधा उकारस्य गुणे चोर् इ = चोरि इत्यस्य सनाद्यन्ताः धातवः इति धातुसंज्ञा। ततः लट् तिप् शप् इकारस्य गुणे अयादेशे। चोरयति नवनीतं कृष्णः। स्तेयफल नवनीतमें तदनुकूल क्रिया कृष्णमें। इदं सकर्मकस्य लक्षणम्।

(६९५) णिच्प्रत्यय अन्तमें हो। उससे आत्मनेपद हो। यदि क्रियाकाफल कर्ता को मिले तो। इससे उभयपदी सिद्ध है। वानरः फलं चोरयतेः चोरयेते, चोरयन्ते। चौर्यकर्मकी अद्यभिन्नपरोक्षभूतकालमें समाप्तक्रिया हो। तव ब्रह्मा वत्सानि चोरयामास। (कास् अनेकाजाम्वक्तव्यो' लिट्)। अनेकाच् धातुसे आम् कृ भू अस्का अनुप्रयोग होकर चोरयामासकी सिद्धि। चोरयाञ्चकार, अनेकाच् सभीधातु सेट्' होते हैं। श्वः पात्रं चोरयिता। 'चोरि' धातु बनानेकी विधि, पूर्ववत्। अद्यभिन्नभविष्यकाले चौर्ये अर्थे लुट, तास् तिप, डा, इट, गुणे अयादेशे। असभ्याश्चोरयिष्यन्ति। तस्यापि कमण्डलुं चोरयतु। यथा—मम अचोरयत्। यदि तस्य पुस्तकानि चोरयेत्। त्वं सदा चोरयेः। अत्र णेरनिट् सूत्रेण णिचोलोपे निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापि अपायः। कारणहटनेसे कार्य भी हटता है। णिच्के लोपसे गुणका अभाव नहीं होगा क्योंकि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं से णिच्की सत्ता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शेषः । (५३४) दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः । अचूचुरत् । अचूचुरत ।
कथ वाक्यप्रबन्धे । २ । अल्लोपः ।

६ अचः परस्मिन् पूर्वविधौ । १ । १ । ५७ । परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्यात् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः । कथयति । अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न ।

मानी जायेगी । भगवान् सदा पापानि चोरयिषीष्ट । चोरि इ सीस् त । इकारस्य गुणे अयादेशे सकारयोः षत्वे ष्टुत्वे रूपम् । स्तेयकर्मके भूतकाले लुङ् णिच् अट् त, अचोरि-त अत्र च्लिस्थाने णि श्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरिचङ् (अ) प्रत्यय । अचोरि अत् । णौचङि उपधायाः ह्रस्वे (चङ् परक णिपरे उपधायाः ओकारस्य ह्रस्वउकारे) चुर् इत्यस्य 'चङि' सूत्रेण द्वित्वे । अभ्याससंज्ञा हलादिशेषे अचुचुर इ अ त । अत्र सन्वलघुनिचङ्परे आदि सूत्रेण सन्द्भावे । तस्य फलं (दीर्घोलघोः) इति अभ्यास—उकारस्य दीर्घे णेरनिटि इति णिलोपे । आत्मनेपदे अचूचुरत अचोरयिष्यत् । (२) कथ-धातुका वाक्यप्रबन्ध=अपने शब्दसे बोलना, प्रवचन (कथा कहने के अनुकूल क्रिया अर्थः । अल्लोपः । कथ् धातुसे स्वार्थमें णिच् प्रत्यय आनेपर अतोलोपः सूत्रेण अन्त्य अकारका लोप हुआ ।

(६) परस्मिन् = परको निमित्तमानकर अचः = अच्के स्थानमें आदेशको स्थानिवद्भाव — स्थानीके तुल्य धर्मवाला आदेश हो । स्थानिभूत अच्से पूर्वत्वेन = पूर्वदिशामें दृष्टस्य = देखे गये, विधौ = विधेयकी कर्तव्यतामें । इस सूत्रसे अकार-लोपके स्थानिवद्भाव होनेसे उपधाको वृद्धि नहीं होती । कथयति—वाक्यरचनानुकूल क्रियावाचक कथ धातोः चुरादिभ्यो णिच् 'कथ इ अतोलोपः. अकारस्य लोपे । कथ इ—अत्र अच परस्मिन् सूत्रेण अकारलोपस्य स्थानिवद्भावं कृत्वा अत उपधायाः इति न वृद्धिः । स्मानिवद्भाव होनेसे उपधामें अकार नहीं मिला । जो स्थानिभूत अच् अकारसे पूर्वमें दृष्ट है । यहाँ विधि (वृद्धि) की कर्तव्यतामें लट् तिप् शप् गुणायादेशे । अग्लोपित्वात् अक् (अ इ उ ऋ ऌ) इनका जहाँ लोप हुआ हो वहाँ दीर्घ तथा सन्वद्भाव नहीं होता । कथमें अका लोपहोनेसे अग्लोप हुआ । अतः दीर्घ सन्वद्भाव नही हुए । अचकथत्—कथा कहनेकी भूतकालिकक्रिया अर्थमें लुङ् अट् च्लिस्थाने चङ् (अ) द्वित्वादिकार्ये अचकथइ अत् णिलोपे । कथयाञ्चकार, कथयिता, अकथयत् । कथयेत् । कथयाञ्चक्रे कथयिषीष्ट । (३) गण्धातुका सङ्ख्यान (गणना करना) अर्थः अकारलोपे । अग्लोपी, सेट् गणयति । सङ्ख्या-नार्थकगण्धातोः प्रचलित गणना क्रियाकाले लट् । स्वार्थे णिच् । अकारलोपे तस्य स्थानिवद्भावेन न उपधावृद्धिः । तिप् शप् गुण अयादेशे । गणयाञ्चकार । गण-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अचकथत् । गण संख्याने । ३ । गणयति । ७ ई च गणः ७ । ३ । ९७ । गणयतेरभ्यासस्य ईत् स्याच्चङ् परे णौ चादत् । अजीगणत् । अजगणत् ।

इति चुरादयः ।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

६९८ स्वतन्त्रः कर्ता १ । ४ । ५४ । क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः

यिष्यति गणयिष्यते । गणयतु । गणयताम् । अगणयत् । गणयेत् गणयिषीष्ट । अजीगणत्—सङ्ख्यानार्थक गण्धातोः णिच् अकारलोपे स्थानिवद्भावेन उपधावृद्धिर्न भवति । सनाद्यन्ता धातवः इति धातुसंज्ञायां भूतकाले अर्थे कर्तरि च लुङ् तिप् अट् च्लि स्थाने चङ् । चङि द्वित्वादिकार्यें णिलोपे अजगणत् । अत्र (७) गणधातुके अभ्यासको ईत् = ईकार भी हो चङ् परकणिपरे । चात् = चकारसे अकार भी हो । अभ्यासस्य ईकारे अजीगणत् । पक्षे अकारे अजगणत् अजगणताम् अजगणन् । अजगणः अजगणतम् अजगणत । अजगणम् अजगणाव अजगणाम ।

इति प्रभाकर्यां चुरादिप्रकरणम् ।

अथण्यन्तप्रक्रिया—प्रेरणार्थकणिच् प्रत्ययः अन्ते यस्य सः ण्यन्त धातुः । तस्य प्रक्रिया = साधुत्वप्रकारः फलोत्पादकोव्यापारः । प्रेरणा अर्थमें णिच् प्रत्ययान्तः धातुका प्रकरण चलाते हैं। भूवादयोधातवः से धातुसंज्ञक (धातु बोधकः) खादति में खादसे, प्रेरणा अर्थ में णिच् होने पर माता खादयति (खिलाती है) में खादिके सनाद्यन्ता धातवःसे धातुसंज्ञा । प्रयोजक (प्रेरक) के व्यापार (क्रिया) में णिच्-प्रत्यय हो । जिस प्रेरणाका । खिलाना पढ़ाना अर्थ । (८) स्वतन्त्रः = किसी भी क्रियाके करनेमें स्वतन्त्ररूपसे विवक्षित कारकरूप अर्थको कर्तृसंज्ञा हो । फलके लाभ से क्रिया करनेकी रुचि होती है । फलजनक व्यापार (क्रिया) है । उस क्रियाको फलवती बनानेमें स्वतन्त्र हो, पराधीन न हो, ऐसा विवक्षित=अभीष्ट कारक कर्तृ-संज्ञक हो यदायदीयोव्यापारः धातुना अभिधीयते तदा स कर्ता । सभी कारक कर्ता हो सकते हैं । यथा—रामः पठति । पठन उच्चारण या ज्ञानके अनुकूलक्रियाको फलवती बनानेमें राम स्वतन्त्र है । वही स्वतन्त्रतया विवक्षित अर्थ हैं । उनको कर्तृसंज्ञा हुई । मोहनः मोदकं भूङ्क्ते । भोजनक्रियामें मोहन स्वतन्त्र है । परन्तु यदायदीयोव्यापारः धातुना अभिधीयते तदा व्यापाराश्रयत्वेन स्वातन्त्र्यात् कारकान्तरण्यापि कर्तृसंज्ञां लभन्ते । अतएव काष्ठानि पचन्ति रोटिका पच्यते स्थाली पचति इत्यादिसिध्यन्ति ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कर्ता स्यात्। ९ तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५। कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्। ७०० हेतुमति च ३।१।२६। प्रयोजक-व्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति।

---

(९) तत्प्रयोजकः = तस्य = कर्तुः प्रेरकः, क्रियायां प्रवर्तकः (माता) स्वतन्त्र कर्ताको पठन आदि क्रियामें प्रेरित करनेवाली (कि तुम पढ़ो) तुम पैदा होओ, भोजन करो। इस प्रकारसे क्रिया करानेवालेको हेतुसंज्ञा तथा कर्तृसंज्ञा हो। जैसे— चैत्रः विद्वान् भवति यहाँ विद्वान् होनेकी क्रियामें चैत्र स्वतन्त्र है। विद्वांसं भवन्तं तं मैत्रः अध्यापनेन प्रेरयति, यहाँ विद्वान वनानेकी क्रियामें प्रेरक रुचिवर्धक, प्रवर्तक मैत्र है। उसे हेतुसंज्ञा कर्तृसंज्ञा भी हुई। चैत्र प्रयोज्य (क्रियामें प्रवृत्तिके योग्य) है। जैसे—भोजनका कर्ता प्रयोज्य है, खिलानेवाला प्रयोजक। पढ़नेवाला प्रयोज्य है। पढ़ानेवाला प्रयोजक। बालकः खादति। माता तं भोजयति (खिलाती है) प्रथमकर्ता प्रयोज्य है। उसका प्रेरककर्ता (माता) प्रयोजक है। प्रेरक (खिलाने-वाली) कर्ता, हेतुसंज्ञक भी है। जो खिलावे, पढ़ावे, होवावे, उसीको हेतुसंज्ञा भी समझें।

(७००) हेतुमतति = हेतुसंज्ञा अस्ति अस्य इति हेतुमान् (व्यापारः) तस्मिन् हेतुमतिव्यापारे = (प्रयोजकः = प्रेरणाकरनेवालेकर्ताके व्यापारे = क्रियामें खिलाना पढ़ाना पहुँचाना, सुलाना आदि व्यापारमें) प्रेरणा अध्येषणा, अन्वेषणा इत्यादि अर्थ वाच्य हो, उस अर्थको कहनेवाला णिच् प्रत्यय धातुसे हो (णिच् प्रत्ययका शुद्धार्थं प्रेरणा है) क्रियामें प्रवृत्त कराना अर्थः। धातुके अर्थमें प्रेरणा अंशको णिचप्रत्यय व्यक्त करता है। इसीको प्रकट करनेके लिए शतृप्रत्ययान्त पठन्तं, गच्छन्तं, भवन्तं, पश्यन्तं आदि शब्द जोड़े जाते हैं। यथा—चैत्रो भवति। भवन्तं चैत्रं मैत्रः प्रेरयति। यत्त्वं विद्वान् भव। विद्वान् होते हुए चैत्रको मैत्र प्रेरित करता है। उसका प्रकाशक शतृप्रत्ययान्त 'भवन्तम्' शब्द है। यहाँ भवन क्रियाका कर्ता चैत्र प्रयोज्य है। उसका प्रेरक मैत्र है। उस प्रयोजककी क्रियामें प्रेरणा अर्थ होनेपर धातुसे णिच् हुआ। भूणिच् अनुबन्धलोपे 'इ' ण् इत् होनेसे अतः अचोऽञ्णिति सूत्रेण उस्थाने औवृद्धिः। अवादेशे भवि इति दशायां सनाद्यन्ताः धातवः इति धातुसंज्ञा वर्तमानकालिक प्रेरण-क्रिया अर्थ कर्तरि लट्। यद्यपि दो कर्ता तथापि प्रधानेकार्यसम्प्रत्ययः तिप् शप् गुणायादेशे चैत्रं भावयति मैत्रः। चैत्र को स्वतन्त्रः कर्तासे कर्तृसंज्ञा। तृतीया को वाधकर गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ आदि सूत्रसे अकर्मक भूधातुके अण्यन्त (भवति) अवस्थाके कर्ताको ण्यन्त 'भावयति' इस अवस्थामें कर्मसंज्ञा कर्मणि द्वितीयाविभक्तिः भावयति। यत्र चैत्रो भवति। भवन्तं चैत्रं पितरौ प्रेरयतः, तत्र चैत्रं भावयतः। यत्र बहवः प्रेरयन्ति, तत्र चैत्रं भावयन्ति। म० पु० में चैत्रो भवति, वाक्यमें यदि

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

त्वं प्रेरयसि । तत्र त्वं चैत्रं भावयसि । युवां प्रेरयथः । इति भावयथः । यूयं प्रेरयथ भावयथ । यत्र अहं प्रेरयामि तत्र चैत्रं भावयामि इत्यादि । जहाँपर गति = गमन बुद्धि = ज्ञान प्रर्यवसान = भक्षण, शब्दकर्मक अकर्मकसे भिन्न सकर्मक धातुसे णिच् प्रत्यय हो, वहाँ प्रयोज्य (स्वतन्त्रः) कर्तामें तृतीया विभक्ति ही हो । जैसे—चैत्रः तण्डुलं पचति । पंचन्तं तं मैत्रः प्रेरयति । इति मैत्रश्चैत्रेण तण्डुलं पाचयति । यहां चैत्रेणमें द्वितीया नहीं हुई । प्रधान क्रिया (णिजर्थव्यापार) है, अतः प्रथम, मध्यम उत्तम पुरुष की व्यवस्था प्रयोजक व्यापारके अनुसार । एवं भावयते = णिचश्च सूत्र से कर्तृगामी क्रियाफल होनेपर आत्मनेपद । लिट्में चैत्रो बभूव, मैत्रः प्रेरयाम्बभूव । भावयामास । भावयिता भावयिष्यति । भावयतु अभावयत । भावयेत् भाव्यात् अबीभवत् । चैत्रो अभूत् मैत्रः तं प्रेरिरत् इत्यर्थे भूतकालिकसमाप्त भवनसम्बन्धी प्रेरणा क्रियाकाले लुङ् अथवा उत्पत्ति-अनुकूलव्यापारवाचक भूधातोः भूतकालिक प्रेरणा अर्थे णिच् = इ (सनाद्यन्ताः धातवः) प्रेरणाविशिष्टभवनक्रियार्थवाचक 'भू' इ-धातोः लुङ् तिप् च्लि, णिश्रिद्रु इति सूत्रेण कर्तरिचङ् = अ, अट् । अभूइ अत् । (णिच अच आदेशो न भवति, द्वित्वे कर्तव्ये) द्वित्व होना हो, तब णिच् परे रहते अचके स्थानमें वृद्धि आदि आदेश नहीं होते । णेरनिटि इति 'णि' लोपे । भू शब्दस्य 'चङि' सूत्रेण द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये द्वितीय भूशब्दस्य वृद्धिःऔ । तस्य आवादेशे, अबुभाव अत् । (णौ चङि) सूत्रेण उपधायाः आकारस्य ह्रस्वे (सन्वल्लघुनि) इति सन्वद्भावे ततः ।

(१) प्रत्यय परे रहते जो अङ्ग उसके अवयव अभ्यासके उकारको इकार हो पूयण्ज्यपरे = पवर्ग यण् जकारे परे, यदि अवर्णपरे हो तो । इति सूत्रेण उकारस्य इकारे । तस्य दीर्घो लघोः इति दीर्घे । अबीभवत् अबीभवताम्, अबीभवन् । ष्ठा-धातुका गतिनिवृत्ति, रुकजाना अर्थः । ष्ठाधातुको धात्वदेः षः सः से स होकर 'स्था' उसके स्थान में तिष्ठ आदेशः । मूर्तिः तिष्ठति । तिष्ठन्तीं-तां रामः प्रेरयति । इति रामः मूर्तिं स्थापयति । मोहन मूर्तिको स्थिर करता है । गतिनिवृत्यर्थकस्था धातोः हेतुमति च सूत्रेण 'प्रेरणा' अर्थे णिच् । स्था इ ततः ।

(२) अर्ति गत्यर्थक ऋ लज्जार्थक ह्री, री, क्नूयीशब्दे, विधूननार्थ क्ष्मायी, आदि धातु और आकारान्त धातुओंको पुक् (य) हो णिच् परे । इति सूत्रेण आकारान्तात् पुक् । स्थापि (स्थित्यनुकूलव्यापारनुकूलव्यापारः वृत्यर्थः) इत्यस्य सनाद्यन्ताः इतिधातुसंज्ञायां लट् तिप् शप् गुणायादेशे स्थापयति बैठता है । स्थाप-

---

१ ओः पुयण्ज्यपरे ७ । ४ । ८० । सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत् स्यात् पवर्ग-यण्-जकारेष्व-वर्णपरेषु परतः । अबीभवत् । ष्ठा गति-निवृत्तौ । २ अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ ७ । ३ । ३६ ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापयति। ३ तिष्ठतेरित् ७।४।५। उपधाया: इदादेश: स्याच्चङ् परे णौ। अतिष्ठिपत्। घट चेष्टायाम्। ४ मितां ह्रस्व: ६।४।९२। घटादीनां ज्ञपादीनां च उपधाया ह्रस्व: स्याण्णौ। घटयति। ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च। ज्ञपयति, अजिज्ञपत्।

इति ण्यन्तप्रक्रिया।

याञ्चकार रामो रामेश्वरं स्थापयिता भविष्यकालिक स्थापनाक्रिया अर्थमें स्थापयिष्यति। अनद्यतनभूतकालिकी क्रिया अस्थापयत्। चैत्र: मूर्तिम् अस्थात्। मैत्र: तं प्रैरिरित् इत्यर्थे अतिष्ठिपत्। गतिरोधार्थक स्था: धातो: अवरोधक्रियाविषयक प्रेरणार्थे णिच् (इ) पुक् (प) अवरोधप्रेरणार्थवाचका स्थापि इत्यस्य सना० धातुसंज्ञा, गतिनिवृत्ति क्रियार्थप्रधान कर्तरि लुङ तिप् च्लेश्चङ् अट् अस्थाप् इ अत। (३) तिष्ठते: = स्थाधातुकी उपधा को इकार आदेश हो चङ् परकणिपरे। इति इत्वे। स्थिप इत्यस्य द्वित्वे (शपूर्वा: खय:) इति सकारलोपे अथिस्थिप इअत्। अभ्यासे चर्च: इति चर्त्वे णिलोपे षत्वे ष्टुत्वे। अस्थापयिष्यति। घट धातुका चेष्टा प्रयास, प्रवृत्ति कार्य अर्थ:। मित्।

(४) घट् आदि और ज्ञप आदि धातुओं को ह्रस्व हो णिच्परे सुग्रीव: युद्धे घटते, तं प्रेरयति राम: सुग्रीवं घटयति। चेष्ठार्थक घटधातो: प्रेरणार्थे णिच् उपधावृद्धि: मितां ह्रस्व: इति ह्रस्वे 'घटि' इत्यस्य धातुसंज्ञा लट् तिप् शबादि: घटयति। घटयाञ्चकार। घटयिता। अघटयत्, घटयेत्, घटयात्। अजीघटत्। ज्ञप धातु ज्ञाने = जानने, ज्ञापने=ज्ञानकराने अर्थके अनुकूल क्रिया चुरादि:। शिष्य: ज्ञपयति। गुरु: तं ज्ञपयति। चुरादिणिच् ज्ञापि धातो: प्रेरणार्थे णिच् (णेरनिटि) इति प्रथम णिलोपे, उपधावृद्धि: तस्य मितां ह्रस्व: इति ह्रस्वे। ज्ञपि इत्यस्य धातुसंज्ञा तिप् शप्, गुणे, अय् आदेशे रूपम्। अजिज्ञपत् = ज्ञानकराया, करवाया भी, ज्ञप् धातो: स्वार्थेणिच् तत:, प्रेरणार्थे णिचि। एकस्य णेर्लोपे लुङ् तिप् च्लेश्चङि, द्वित्वे अभ्यासादि कार्ये, सन्वद्भावे, 'सन्यत:' इति इत्वे अत्र अभ्यासस्य न दीर्घ: लघु: नास्ति दीर्घो लघो इति न प्रवर्तते। अजिज्ञपत्। इति प्राभाकर्यां ण्यन्तप्रक्रिया।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

७०५ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३ । १ । ७ । इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि । ६ सन्यङो ६ । १ । ९ । सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । (५३३) सन्यतः । पठितुमिच्छति पिपठिषति ।

अथसन्नन्तप्रक्रिया—सन्प्रत्ययः अन्ते यस्य स सन्नन्तः । तस्य प्रक्रिया फलजनकसंस्कारः । इस प्रकरणकी विशेषता धातुसे खानेकी इच्छा=जिघत्सयति । जानेकी इच्छा जिगमिष्यति । इच्छा क्रियाका कर्म पढ़ना, खाना, जाना क्रिया है । जो तुमुन् प्रत्ययसे व्यक्त है । पठितुम् इच्छति, अत्तुमिच्छति गन्तुमिच्छति । धातुरुप कर्मके साथ कर्ताका होना आवश्यक है । पाठकः पठितुं इछति । इच्छा क्रियाका कर्म पठितुं है परन्तु दोनों क्रियाका कर्ता एक (पाठकः) ही है तभी समानकर्तृकत्व आयेगा । सन् प्रत्यय होनेसे सनाद्यन्तधातु बनता है । जिसमें इच्छाक्रिया कर्मकी प्रवृत्ति स्वीकृति है । यह एकार्थीभावरुप है । अलग-अलग अनेक अर्थका एक अर्थ होना एकार्थीभाव है. पठ्धातु, इच्छार्थक इष्धातु दोनोंक्रियाका एक अर्थः, पढ़नेकी इच्छा हैं पठनविषयिणीच्छा भवितुमिच्छति (होनाक्रिया इच्छाकाकर्म है) बुभूषति । भवनकर्मकइच्छानुकूलाक्रिया बुभूष्धातुका अर्थ है । (७०५) धातोः, पञ्चम्यन्तम् । कर्मणः पञ्चम्यन्तं । समानकर्तृकात्—समानः, तुल्यः, एकः कर्ता ययोः क्रिययोः स समानकर्तृकः तस्मात् । तुमुन्विशिष्ट किसी क्रियाका इच्छाक्रियाके साथ समानकर्ता होनेसे, इषिकर्मणः—इच्छार्थक इष धातुका कर्म हो, ऐसा धातुपठ् गम् इत्यादि । इषिणैकर्तृकात्=जो इष् धातुका कर्ता हो, वही इष्के कर्म पठ् गम् आदिका भी कर्ता हो, तब धातुसे सन्प्रत्यय विकल्पसे इच्छा अर्थमें हो. यथा—पठ्धातुका स्पष्ट उच्चारण, व्यक्तवाणी के अनुकूलक्रिया अर्थः सेट् । (६) सन्नन्तस्य = सन्प्रत्यय हो अन्तमें जिसके यङन्तस्य = यङ् प्रत्यय हो अन्तमें, उस धातु के प्रथम एकाच्को द्वित्व हो । अजादेस्तु = अजादिधातु हो तो द्वितीय, एकाच्को द्वित्व हो । सन्यतः = सन्परे अभ्यासस्य इकारः रामः पठितुम् इच्छति । अत्र रामः यथा इच्छायाः कर्ता । पठितुम् इति च कर्मं । समान कर्तृसत्वे इष धात्वर्थे इच्छाका (कर्मीभूत अर्थपठन) तद्वाचक इषधातोः (कर्म पठधातुः) तस्मात् इच्छार्थे सन्, तस्य आर्धधातुकसंज्ञा, वलादि आर्धधातुक, इट् पठ्इस । षत्वे पठिष् 'सन्यङोः' इति सूत्रेण सन्नन्तस्य पठिष् इत्यस्य प्रथम—एकाचः पठ् इत्यस्य सन्यङोः द्वित्वे, अभ्यासस्य हलादिशेषे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मणः किम्-गमनेनेच्छति। 'समानकर्तृकात्' किम्-शिष्याः पठन्त्विती-च्छति गुरुः। वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। (५५८ लुङ्सनोर्घस्लृ। ७ सस्यार्ध-धातुके ७।४।४९। सस्य तः स्यात् सादावार्धधातुके। अत्तुमिच्छति जिघत्सति। (४७५) एकाच इति नेट्। ८ अज्झनगमां सनि ६।४।१६।

पपठिष् इति स्थिते, 'सन्यतः' अभ्यासपकारस्य इत्वे, पिपठिष्। पठनकर्मकइच्छा-नुकूलव्यापारः सन्नन्तधात्वर्थः। अत्र सनाद्यन्ताःधातवः इति धातुसंज्ञा, वर्तमाने-काले लट् तिप् शप् आदि। पिपठिषति। पठनकर्मक इच्छानुकूलव्यापारः। सेट् धातुओंसे सन् होनेपर इट् होगा अनिट्से नहीं। आर्धधातुक मानकर आवश्यक-कार्य तथा द्वित्वादि होनेके पश्चात् सनाद्यन्त धातु बना है। कर्मणः किम् सूत्रमें इच्छाक्रियाकाकर्म कहना क्यों आवश्यक है। इसलिए कि जोधातु इच्छाक्रियाका कर्म हो उसीसे सन् हो यदि करण-सम्प्रदान आदि हों तबसन् न हो। अतः पठनेन पठनाय इच्छति यहाँ सन् नहीं हुआ। क्योंकि पठन् इच्छाक्रियाका कर्म नहीं है, किन्तु करणादि है। इसी प्रकार गमनेनेच्छति गमन्कर्म नहीं है। इच्छाका कर्म तुमुन्से जाने। समानकर्तृकात् किम् एकही कर्ताहा दोनोंके तभी सन् हो, ऐसा क्यों कहा? जहां दो कर्ता हों वहाँ सन् प्रत्यय न हो यथा—शिष्याः पठन्तु। शिष्यलोग पढ़ें। इतीच्छति गुरुः ऐसी गुरुकी इच्छा है। यहाँ दो कर्ता होनेसे सन् नहीं हुआ। 'वा' के ग्रहणसे विकल्प पक्षमें पठितुमिच्छति ऐसे वाक्यभी होते हैं। पठनकर्मक इच्छाक्रियाके परोक्षभूतकालमें पिपठिषाञ्चकार, पिपठिषाम्बभूव। अद्यभिन्न भविष्यकालमें पिपठिषिता। सामान्यभविष्य, पिपठिषिष्यति, पिपठिषतु, अपिपठिषत् पिपठिषेत् पिपठिष्यात्, अपिपठिषीत आत्मनेपद या। परस्मैपद दोनों प्रकारके धातुओंसे सन्प्रत्यय होता है। इच्छति इयेष एषिता एष्टा एषिष्यति, इच्छतु, एच्छत, इच्छेत्, इष्यात् ऐषीत् ऐषिष्टाम् (७) 'स'के स्थानमें त हो सकारादि आर्धधातुकपरे। यथा—सर्पं अत्तुमिच्छति (अदभक्षणे) भक्षण करना चाहता है। इच्छाक्रियाका कर्म अद्धातु, दोनोंका कर्ता मयूरः। अद्धातोः सन् 'लुङ् सन्परे अद्स्थाने घस्लृ=घसआदेशे अयमनिटधातुः इट् न भवति। सकारादि आर्धधातुक सन्का स परे सस्यार्धधातुके इति सूत्रेण स स्थाने तकृते। घत्स्। द्वित्वे अभ्यासा-दिकार्ये सन्यत इतिइत्वे जिघत्स=अदनविषयिका इच्छानुकूला इति सनाद्यन्तधातु-संज्ञा, लट् तिप् शप् आदि जिघत्सति मूषकं मयूरः। तत्कर्तृकभक्षणविषयक वर्तमानकालिक इच्छानुकूलव्यापारः। जिघत्सिता, जिघत्सिष्यति, जिघत्सतु, अजिघत्सत् अजिघत्सीत्। एकाच् उपदेशेअनुदात्तात् सूत्रसे प्राप्त इट्का निषेध।

(८) अजन्त धातु, हनधातु अजादेशगमेश्च=अच् (इण् आदि) के स्थानमें गम आदेश हुआ हो, उसको दीर्घ हो, झलादि सन् प्रत्ययपरे। जब इट नहीं होता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि। ९ इको झलि १।२।९। इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। (६६०) ऋत इद्धातोः। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति। ७१० सनि ग्रह-गुहोश्च ७।२।१२। ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात्। बुभूषति। इति सन्नन्ताः।

अथ यङन्तप्रक्रिया

७११ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२। पौनः

तब सन् झलादिमाना जाता है। यदि इट् होता तब यदागम् परिभाषासे सन् अजादि हो जाता। (९) इगन्त अङ्गसे परे झलादि सन् कित् हो। धातुके ऋत् को इत् हो। कर्तुमिच्छति बालः इति विग्रहे उत्पत्तिजनक व्यापारवाचक कृधातोः समानकर्तृकत्वे इच्छार्थकसन् प्रत्यये। कृ-स अत्र इट् प्राप्ते (एकाच्) इति निषेधे। अत्र अज्झनगमां सनि सूत्रेण, कृ इत्यस्य दीर्घे 'इको झल्' सूत्रेण सन् कित् भवति। तस्य फलं क्ङिति चेति गुणनिषेधः। कृ-स इति ऋत् इद्धातोः ऋकारस्य इ आदेशे, रपरे हलिचेति दीर्घे। कीर्स। ततः सन्यङोः इति द्वित्वे, अभ्यास आदिकार्ये, (सन्यतः) इत्वे, सकारस्य षत्वे 'चकीर्ष' इति सनाद्यन्तधातुः उत्पत्ति विषयक—इच्छानुकूलव्यापारोऽर्थः। तस्मात् वर्तमानकालिक लट् तिप् शबादिः। **चिकीर्षति**। चिकीर्षिष्यति, अचिकीर्षत् अचिकीर्षीत्। चिकीर्ष्यात् चिकीर्षेत्। कारयितुमिच्छति चिकारयिषति। अचिकारयिषीत् अपिपाठयिषति। पक्तुमिच्छति पिपक्षति पाचयितुमिच्छति **पिपाचयिषति** अपिपाचयिषीत् तण्डुलः पिपाचयिष्यते।

(७१०) ग्रहगुह, उगन्त धातुओंसे परे सन् प्रत्ययको इट् न हो। जगद्गुरुः **बुभूषति**—भवितुमिच्छति। चैत्रः। इच्छाक्रिया भवनक्रिया दोनोंका कर्ता एक होनेसे भूधातोः इच्छार्थे सन् इट्, प्राप्ते, तस्य सनिग्रहगुहोश्च इति निषेधे, इकोझल् इत्यनेन सन् किद्भवति। तेनुगुणस्य निषेध, भू स=सन्यङो इति द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये षत्वे, बुभूष इति सनाद्यन्तधातुः। भवनविषयक इच्छानुकूलव्यापारः धात्वर्थः। लट् तिप् शबादिः **बुभूषति** बुभूषाञ्चकार। बुभूषिता बुभूष्यात् अबुभूषीत् इति **प्रभाकयां सन्नन्तप्रक्रिया।**

अथ यङन्ताः—यङ् प्रत्ययो अन्ते यस्य स यङन्तः (धातुः) तस्य प्रक्रिया सिद्धिसंस्कारविशेषः। यहाँ यङ्प्रत्यय क्रियामें पुनः पुनः प्रवृति या अधिक्य अर्थका वाचक है, जिस अर्थको धातुके साथ पुनः पुनः, भृश या आतिशय, शब्दका ज्ञान करते हैं। यही प्रकरणभेदक धर्म है। (१) **क्रियासभिहारे**=क्रियाके बार-बार प्रयोग होनेपर, या अतिशय, अत्यधिक क्रियाका होना, अर्थ

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात्। २ गुणो यङ्लुकोः ७।१।८२। अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च। ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्। पुनः पुनरतिशयेन वा भवति—बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट ३ ३ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३।१।२३। गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यात्, न तु क्रियासमभिहारे। ४ दीर्घोऽकितः ७।४।८३। अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङि यङ्लुकि च। कुटिलं व्रजति—वाव्रज्यते।

७१५ यस्य हलः ६।४।४९। यस्येति सङ्घातग्रहणम्। हलः परस्य

प्रकट करना हो, एकाच हो तथा हलादि हो तब यङ् हो। अनेकाच् अजादि धातुसे यङ् नहीं होता। पक्षमें वाक्य भी रहता है ङित् होनेसे आत्मनेपद (२) गुणो=अभ्यासको गुण हो यङ्परे यङ्लुक् होनेपर (अवयवे अचितार्था प्रत्ययाः समुदायस्योपकारकाः भवन्ति) यङ्का ङित् अवयवमें अचरितार्थ होनेसे समुदायका उपकारक बना ङित होनेसे अनुदात्त ङित् आत्मनेपदम् लगता है। बोभूयते। सत्तार्थक भूधातुसे पुनः पुनः भवनक्रिया या अतिशय भवन अर्थवाचक (धातोरेकाचो आदि सूत्रेण) यङ्। भूय—सन्यङोः इति प्रथम—एकाचः भू इत्यस्य द्वित्वे अभ्याससंज्ञा (गुणो यङ्लुकोः) इति अभ्यास—उकारस्य गुणे, अभ्यासस्य चर्त्वे जश्त्वे बोभूय। इति सनाद्यन्तधातुः पुनः पुनः अतिशय भवनक्रिया। एकार्थीभावरूपा वृत्तिः। धातुसंज्ञा लट्। अत्मनेपदे त शप् टेरेत्वे अतोगुणः पररूपे बोभूयते। सभी यङन्त आत्मनेपदी, सेट्, सकर्मक होते हैं। बोभूधातु बननेकी प्रक्रिया पूर्ववत्। आम्प्रत्यये—कृ लिट् अनुप्रयोगे लिङ्गादिकार्ये बोभूयाञ्चक्रे। बोभूयिता। बोभूयिष्यते, मम ग्रामे गोधूमं बोभूयताम्। अबोभूयत। बोभूयेत अबोभूयिषत अबोभूयिष्ट। लुङ् सिच् इट् इत्यादि।

(३) गतौ गति अर्थवाचक धातुसे कौटिल्य=कुटिलस्य भावः अर्थमें यङ् हो। अन्यअर्थमें यङ् न हो। इसलिए। (पुनः पुनः अतिशय) ऐसा विग्रह गत्यर्थक धातुके साथ न करे (४) अकित्धातुके अभ्यासको दीर्घ हो, यङ्में यङ्लुक्में भी पनीपत्यते इत्यादिमें दीर्घ-वारणके लिए अकित्। अभ्यासको जहाँ नीक् नुक् आगम है वहाँ कित् होनेसे दीर्घ नहीं होता। कुटिलं व्रजति। गत्यर्थक कुटिलकर्मक व्रजनानुकूले अर्थे व्रज्धातोः (नित्यं कौटिल्ये गतौ) यङ्। गत्यर्थक धातुके कुटिल अर्थमें यङ्का विधान व्रज + य। 'सन्यङोः' इति द्वित्वे, हलादिशेषे, 'दीर्घो अकितः' सूत्रेण अभ्यासस्य दीर्घे वाव्रज्य कुटिलकर्मकव्रजनानुकूलव्यापारः। यङन्तधात्वर्थः। तस्य धातुसंज्ञा लट् 'त' शप् आदि। वाव्रज्यते (७१५) यस्येति=य का, संघात= समुदाय, अकारसहित यकारका ग्रहण है। हल्से परे य शब्दका लोप हो। आर्ध धातुक परे। आदेः परस्य सूत्रसे परको विहितकार्य आदिके स्थानमें हो। अतोलोपः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यशब्दस्य लोप आर्धधातुके। आदेः परस्य। (४७०) अतो लोपः। वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता। ६ रीगृदुपधस्य च ७।४।९०। ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङि यङ्लुकि च। वरीवृत्यते। वरीवृताञ्चक्रे। वरीवृतिता। ७ क्षुम्नादिषु च ८।४।३९। णत्वं न। नरीनृत्यते, जरी

से अकारलोपः परोक्षकालिक समाप्तकुटिल व्रजन क्रियावाचक वाव्रज्य धातोः लिट् आम्, तस्य आर्धधातुकसंज्ञा यस्य हलः इति सूत्रेण आदेः परस्य इति सहकारेण यकारस्य लोपः अकारलोपे वाव्रजाम्, कृ लिट् इत्यादि वाव्रजाञ्चक्रे। कुटिलकमक व्रजनक्रिया अनद्यतनभविष्यकालिक हो तब वाव्रजिता वाव्रजिष्यते वाव्रज्यतां वाव्रजिषीष्ट आवाव्रजिष्ट। (६) ऋदुपधस्य ऋकार उपधामें हो ऐसे धातुके अभ्यासको रीक् आगम हो, यङ्परे यङ्लुक् परे च। पुनः पुनः अतिशयेन वर्तते बार-बार या अधिक व्यवहार करने अर्थमें वृत् धातोः यङ् द्वित्वे वृवृत्य ऋकारस्य रीक् आगमें वीरीवृत्यते। वरीवृत्य इति यङन्तधातुः (पुनः पुनः अत्यधिक विद्यमानानुकूव्यापारः धातुसंज्ञा लडादि कार्ये रुपम्। परोक्षकाले पुनः पुनः अतिशय सत्तारुपव्यवहाररूप समाप्तक्रिया अर्थे वरीवृताञ्चके। वरीवृत्यधातोः लिट् आमि। यकाराकारयोः लोपे। लिडन्त कृ अनुप्रयोगे रूपम्। अवरीवृत्यत वरीवृतिषीष्ट अवरीवर्तिष्ट।

(७) क्षुभ्नादि गणपठित 'शब्दोंको णत्वं न भवति। गणमें कुछ शब्दोंको णत्व प्राप्त है। नरीनृत्यते पुनः पुनः अतिशयेनवा नृत्यति। बार-बार या बहुत तूफानी नृत्य करता है। इत्यर्थे नृत्धातोः यङ द्वित्वादिकार्ये रीग्रीदुपधस्यच इत्यभ्यासस्य रीक् आगमें, तदा नरीनृत्य इति (यङन्तधातुः) तस्य नृत्यक्रियाविषयक पुनः पुनः अत्यधिकप्रवृत्ति—अनुकूलव्यापारो अर्थः धातुसंज्ञा लडादिकार्यें। द्वितीयनकारस्य णत्वे प्राप्ते क्षुभ्नदिषुच इति निषधे नरीनृत्यते नृत्यकी बार-बार आवृत्ति या अधिकता क्रिया परोक्षकालमें समाप्त हो तब नरीनृताञ्चके। नरीनृतिता =बार-बार या बहुत नाचनेवाली नरीनृतिष्यते। नरीनृत्यता नरीवर्त्यैत अनरीनर्तिष्यत। जरीगृह्यते। पुनः पुनः अतिशयेन वागृह्णति शश्कुलिम्। बार-बार या बहुत अधिक पूड़ी लेता है। इत्यर्थे उपादानार्थक ग्रहधातोर्यङ ग्रह इत्यस्य द्वित्वादि कार्ये अभ्यास्यरीक्। ग्रहिज्या इतिसम्प्रसारणं, जरीगृह्य इति यङन्तधातुः। ग्रहण विषयक बार-बार या अधिक प्रवृत्तिके अनुकूल क्रिया अर्थे लडादिकार्यें। वह क्रिया परोक्ष कालमें हो तब जरीगृह्याञ्चक्रे आगामिभविष्काले जरीगृहीता। जरीगृहीष्यते अजरीगृह्यत अजरीगृहीष्ट। कुटिलं गच्छति जङ्गम्यते जङ्गमिता जङ्गमिष्यते कुटिल अर्थबोधक यङ प्रत्यय जङ्गम्यतां जङ्गम्यै जङ्गम्यावहै जङ्गम्याम है। अजङ्गम्यत, येतां, न्त। जङ्गमिषीष्ट अजङ्गमिष्ट (कुटिलं अगमत्) अतिशयेन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गृह्यते । इति यङन्तप्रक्रिया ।

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया

७१८ यङोऽचि च २ । ४ । ७४ । यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्याच्चकारात्तं विनापि क्वचित् । अनैमित्तिकोऽयम् अन्तरङ्गत्वादादौ भवति । ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वमभ्यासकार्यम् । धातुत्वाल्लडादयः । (३८०) शेषात्कर्तरीति परस्मैदम् । चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक् । ९ यङो वा ७ । ३ । ९४ । यङ्लुगन्तात् परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा

यजते इति यायज्यते यायजाञ्चक्रे चकार यायजिता यायजिष्यते । अयाज्यत । यायजिषीष्ठ अयायजिष्ठ । यायजीति यायष्टिः यायष्टः । यायजीत यायाष्ठः अयायजीत् अयायाजीत् । खद चाखद्यते । शासय्यते । अशाशयिष्ट । ब्रू वाच्यते । इति प्रभाकर्या यङन्तप्रक्रिया ।

अथयङ्लुङन्ता यङ् प्रत्ययका जो अर्थ पहलेथा वही यङ्लुक्में भी है । प्रक्रियामें भेद समझाते हैं । यङ् लुक् होनेपर, शेषात्कर्तरि परस्मैदंसे परस्मैपद ही होता है । आत्मनेपदका निमित्त न होनेपर (८) यङ्का अच्प्रत्यय परे लुक् हो । सूत्रमें चकारसे तम्–अच्के विनाभी यङ्का लुक् हो अनैमित्तिकः=विना निमित्तके यङ् लुक् होनेसे अन्तरङ्ग हुआ । अनैमित्तिकम् अन्तरङ्गं, निमित्त सापेक्षं बहिरङ्गम् । द्वित्वादिकार्यम् असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे । अन्तरङ्गकार्ये (यङ् लुक्की कर्तव्यतामें बहिरङ्ग द्वित्वादि कार्य असिद्ध हो । प्रथमं यङ् लुक् ततः–यङ् लुक् होनेपर प्रत्यय लोपे प्रत्ययलक्षणसूत्रसे यङ् मानकर द्वित्वे सन्यङोः । अभ्यास आदिकार्ये । धातुसंज्ञा होनेसे लट् आदिकार्यं ततः मेषात् = आत्मनेपदप्रत्यय होनेके कारणोंसे अतिरिक्तकारण 'शेष' कहलाता । उससे कर्तामें परस्मैपद 'चर्करीतं संग्रह (नाम) यङ् लुक्का है, जिसको अदादिगणमें पढ़ाहुआ मानकर यङ् लुक्में भी शप्का लुक समझें ।

(९) यङ्लुक् अन्तमें हो उससे परे हलादिपित् आर्धधातुकको ईट आगम विकल्पसे हो । भू सू धातुको होनेवाले गुणका नभूसूवोस्तिङ् सूत्रसे निषेध । यङ्लुक् भाषामें नहीं होता । अत्र प्रमाणं छन्दमें, भू धातुको, यङ्लुक्में बोभोतु तेतिक्ते, ऐसा निपातन किया गया है । यदि निषेध होता तो निपातन व्यर्थ होता । बोभवीति पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति । बार-बार या बहुतअधिक चमंरोग होता है । इति अर्थे भू धातोः यङ् प्रत्ययः । तस्य यङोऽचि च इति यङ्लोपे ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात्। (४४०) भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। बोभूतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात्। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः (६०६) अदभ्यस्तात्, बोभुवति। बोभवाञ्चकार, बोभवामास। बोभविता। बोभविष्यति। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्। बोभूताम्। बोभुवतु। बोभूहि। बोभवानि। अबोभवीत्। अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभुवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयुः। बोभूयात्। बोभूयास्ताम्। बोभूयासुः (४३९)। गातिस्थेति सिचो लुक्। (७१९) यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्

प्रत्यय लोपे सति यङ् तदन्तं मत्वा भूशब्दस्य सन्यङोः इति द्वित्वे। अभ्यासादि कार्यें, गुणों यङ्लुकोः इति अभ्यासस्य गुणे 'बो भू' इति यङ्लुक् धातुः। बार-बार या अत्यधिक होनेकी क्रिया वृत्त्यर्थः। धातुसंज्ञा, लडादिकार्ये। यङोवा इति ईट उत्तरखण्डस्य उकारस्य गुणे अवादेशे बोभवीति। यदा ईट न भवति तदा गुणः बोभोति। अदिप्रभृतिभ्यः शपः इति शपोलुक्। दोकर्ता उक्त क्रियाके आधार हों तब द्विवचन तस् बोभूतः। अपित् तस् ङिद्भवति तस्य फलं गुण निषेधः। भत्कुणाः बोभुवति झिस्थाने अत् आदेशे (अदभ्यस्तात्। बोभुवति उवङ् आदेशे यदा गुण निषेधः। बोभवीषि बोभोषि, वोभूथः वोभूथ। पुनः पुनः अतिशयन भवनार्थक यङन्त बोभूधातुः अनेकाच्। आम् प्रत्ययः। कृ लिट् अनुप्रयोग आदि कार्ये बोभवाञ्चकार। बोभविता आर्धधातुकगुणे अवादेशे। बार-बार या बहुत अधिक वर्षा होने वाली है। बोभविष्यति। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्, बार-बार या बहुत पैदा करो। इस अर्थमें विधि, प्रेरणा, आज्ञा, आशीर्वाद, निश्चय, प्रार्थना आदि अर्थमें लोट् इट् विकल्प तातङ् विकल्प होनेसे तीन रूप।

बोभूताम्। ङित्वात् गुण निषेधः बोभुवतु। झ स्थाने अत्। अपित् ङित्। घुण निषेधः उवङ् आदेशे रुपम्। बोभूहि। तुम बार-बार अनेक वनो। बोभवानि। मेर्निः आट आगमे गुणे अवादेशे। 'अबोभूवीत् अनद्यतनकाले समाप्त क्रिया अर्थे लङ् 'यङोवा'से ईट् विकल्प। अबोभुवुः। सिच् अभ्यस्तविदिभ्यश्च इति झिस्थाने जुस् उवङ् आदेशे। कुशलमङ्गल सुखआनन्दके बार-बार या अधिक होनेका आशीर्वाद बोभूयात् अदादि मानकर शप् लुक् (लिङः सलोपो) इति सकारलोपः बोभूयुः शप् लुक् झि स्थाने जुस् उस्य पदान्तात् इति पूर्वरुपे बोभूयात् स्कोः संयोगाद्योः इति सकारलोपे गातिस्था धूपाभूभ्यः सूत्रसे सिच्का लोप। यङो 'वा' से ईट् पक्षमें गुणको बाधकर वुक् आगम हो, अच्परे नित्य हो। अबोभूवीत् बार - बार या अत्यधिक भवनक्रियाके भूतकालमें अबोभूसईत् गातिस्था' इति सिज्लोपः हलादिपित् सार्वधातुकतिप्परे। यङोवा ईट्। ईट् पक्षमें गुणको बाधकर नित्य होनेसे भुवोवुक् 'लुङ् लिटोः' से वुक्। इट् अभावे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वुक्। अबोभूवीत्, अबोभोत्, अबोभूताम्। अबोभूवुः। अबोभविष्यत्।

इति यङ्लुगन्ताः।

अथ नामधातवः

७२० सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८। इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच् प्रत्ययो वा स्यात्। १ सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः २।४।७१। एतयोरवयवस्य सुपो लुक्। २ क्यचि च ७:४।३३।

अबोभोत्। अबोभूवुः सिचसे परे झिस्थाने जुस् भुवोवुक् आगमे अनेकलोग बार-बार प्रवृत्त हुए। इति प्रभाकर्यां यङ्लुगन्ताः।

अथ नामधातवः—नाम एव धातुः नामधातुः तस्य प्रक्रिया साधुत्व प्रकारः, अथ = धातुगणसमाप्तिके पश्चात् अब नाम = प्रतिपदिकप्रकृतिकसुबन्तो द्देश्यकप्रत्ययान्तशब्दको धातु बनानेकी विधिः = प्रातिपदिकसे आई विभक्ति सुबन्त है। उसको धातु (क्रियावाचक) बनानेकी शैली प्रस्तुत करते हैं। कोई भी शब्द कैसे धातु बन जाय। इस प्रकरणका भेदकधर्म इच्छति क्रियाका कर्मीभूत सुबन्त (द्वितीयान्तपद) हो। और समस्त प्रातिपदिकोंसे इच्छा, आचार, आदि अर्थोंमें क्यच् क्यङ् क्यष् क्विप् आदि प्रत्ययोंका विधान हो। कर्तासे सम्बन्धित द्वितीयान्तपद इच्छा, कामनाका विषय हो तो।

(६२०) इषिकर्मणः = इच्छा क्रियाके कर्मसे, इष् धातुका कर्मीभूत इच्छा क्रिया तथा उसका कर्म दोनों एषितृः = इच्छा कर्तासे सम्बन्धित सुबन्त हो तब इच्छा अर्थमें क्यच् प्रत्यय विकल्पसे हो। इस क्यच्का कर्तृसम्बन्धिनी कर्म विषयिणी इच्छा अर्थ है। अतः इच्छा क्रिया कर्तृसम्बन्धिनः कर्मीभूतात् सुबन्तात् इच्छायामर्थे क्यच् इति सूत्रार्थः। सुबन्तप्रकृति-क्यच्प्रत्यय-आत्म-सम्बन्धिनी पुत्रविषयिणी इच्छा यह सनाद्यन्तवृत्तिका अर्थ है (१) धातु तथा प्रातिपदिकसंज्ञक के अवयव सुप्का लुक् हो (२) क्यचि च अवर्णको ईकार हो क्यच्परे। पुत्रीयति आत्मनः पुत्रमिच्छति अपनेसे सम्बन्धित पुत्रकी कामना करता है। इत्यर्थे पुत्र + अम् यही इच्छाका कर्म है। इच्छा करनेवालेका सम्बन्धी है। उससे उसी अर्थमें क्यच् पुत्र + अम् प्रकृति है क्यच् प्रत्यय है। इच्छाकर्ताके माध्यमसे पुत्र इच्छाका विषय बना। इस अर्थका वाचकः क्यच् प्रत्ययः। जहाँ स्वयं (अपने लिए पुत्र चाहता है वहीं पर इच्छाकर्तासे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अवर्णस्य इः। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति। ३ न क्ये १।४।१५। क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत्। नलोपः। राजीयति। नान्तमेवेति किम्—वाच्यति (६१२) हलि च। गीर्यति। पूर्यति। धातोरित्येव नेह—

सम्बन्धित पुत्रसे क्यच् होगा। (यदि परस्य पुत्रमिच्छति) दूसरेके लिए पुत्र चाहता है तब क्यच् नहीं होगा। क्योंकि आत्मनः पदप्रयोगसे सम्बद्ध नहीं है) अनुबन्धलोपे पुत्र अम् य, इतिदशायां सनाद्यन्ताः इति धातुसंज्ञा (सुपोधातुसे) धातुका अवयव 'अम्' विभक्तिका लोप हुआ। पुत्र य इति शिष्यते। प्रातिपदिक-संज्ञासे विभक्ति लुक् समास (वृत्ति) में होता है। 'क्यचि च' इति क्यच्परे अकारस्य ईकारः (पुत्रीय इतिनामधातुः। स्व (आत्मसम्बन्धी) पुत्रकर्मक-इच्छानुकूलव्यापारः इति नामधातुःवृत्यर्थः लट्तिप् शबादिः। अतोगुणे पररुपे। पुत्रीयतः पुत्रीयन्ति। अनेकाच्धातुः। लिट्परे, आम् भवति। कृ-लिट्' अनुप्रयोगे। पुत्रीयाञ्चकार। पुत्रीयिता आत्मसम्बन्धी पुत्रविषयिणी आगामि-भविष्यकालकी इच्छा। पुत्रीयिष्यति (पुत्रं एषिष्यति) पुत्रमिच्छतात् पुत्रीयतात्। पुत्रमैच्छत् अपुत्रीयत्। पुत्रमिच्छेत् पुत्रीयेत्। पुत्रं ऐषीत् अपुत्रीयत्। पुत्रीय्यात्। अपुत्रीयीत्। इस प्रकार जितने सुप् आत्मा हैं सभीके सुबन्तसे क्यचप्रत्यय। यथा—आत्मनः विद्यामिच्छति विद्यीयति (आत्म सम्बन्धी विद्याविषयिणी इच्छा। आत्मनः भवनमिच्छति भवनीयति। भार्यीयति गुरूयति। पत्नीमिच्छति पत्नीयति। युवतीमिच्छच्छति युवतीयति। मन्त्रीयति, राष्ट्रपतीयति। क्यजन्त-धातु सिद्ध होनेपर ही अन्यकार्य। इस प्रकरणके धातु नाम (प्रातिपदिक)-से बनते हैं। इसलिए नामधातु नाम पड़ा।

(२) क्यच् तथा क्यङ् प्रत्यय परे रहते नान्तशब्द ही पद कहलाता है। जो नान्त नहीं है ये क्यच्-पद नहीं होंगे। राजीयति आत्मनः राजा भवितुमिच्छति। या अपने से सम्बन्धित को राजा बनाना चाहता है। 'राजन् अम्' यह सुवन्त है इच्छा क्रियाके कर्तासे सम्बन्धित है उससे इच्छा अर्थमें क्यच् हुआ। सनाद्यन्ता धातवः इति धातुसंज्ञा। धातुका अवयव सुपोलुक् 'राजन्य' अत्र नः क्ये इति नियमेन क्यच् क्यङ् परे नान्त राजन् शब्दः, पदसंज्ञक इति सिद्धः। तस्यफलं 'नलोपः' इति नकार लोपे, 'राज य। क्यचि-च इति अकारस्य ईकारे लडादिकार्ये। नान्तमेव किं —क्यच् क्यङ्परे नान्तको ही पदसंज्ञा क्यों कहा? इस लियेकि नान्तभिन्नको पदसंज्ञा न हो। यथा वाच्यति देवदत्तः आत्मनः वाचम्=वक्तारं वाणीमिच्छति अपने लिये या अपनेसे सम्बन्धित (वक्ता) वचन–सत्यप्रतिज्ञा चाहता है। वाच्यति अत्र वाच शब्द नान्त नहीं है। अतः पदसंज्ञा नहीं हुई। यदि पदसंज्ञा होती तो कुत्व जश्त्व होते। गीर्यति। मूकः आत्मनः गिरं पुरं–ग्रामं वा इच्छति। गूंगा अपने लिए वाणी (सरस्वती) पुर=आवास, चाहता है। पुर, अम्, इस सुबन्तसे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दिवमिच्छति । दिव्यति । ४ क्यस्य विभाषा ६ । ४ । ५० । हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः । तस्य स्थानिवत्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता, समिध्यिता ।

इच्छा कर्तृसम्बन्धी तथा इच्छायाः कर्म सुवन्त 'पुर् + अम्' इत्यस्मात् क्यच् सनाद्यन्त धातुसंज्ञा सुपः लोपे हलि चेति दीर्घे, गीर्यं पूर्यं, इति क्यजन्त धातुः । आत्मसम्बन्धी वाणी या **ग्रामकर्मक इच्छानुकूलव्यापारो वृत्त्यर्थः** । लट् तिप् आदि कार्ये पूर्यति । धातोः = हलि च सूत्रसे रेफान्त और वान्त धातुके रेफ और व की उपधाको दीर्घ हो । यदि रेफ और व धातुके अन्तमें न होकर प्रातिपदिकके अन्तमें हो तो दीर्घ न होकर गृ धातुसे इच्छति अर्थे क्विप् । ऋकारको इत्व होकर गिर बना । यहाँ रेफधातुका है, इसलिए दीर्घ हुआ **गीर्यति** परन्तु नेह = इह न । आत्मनः **दिवम् इच्छति** । स्वयं स्वर्गकी इच्छा करता है । इच्छाकर्तृसम्बन्धी इच्छा कर्म सुवन्त दिव अम् व के उपधाको हलिचसे दीर्घ प्राप्त था, परन्तु धातुका 'व' न होने से दीर्घ नहीं हुआ । अयं वकारः प्रातिपदिकस्य **दीव्यति** (**क्विप् विच्** ये अन्तमें हो तो धातुत्व नष्ट नहीं होता । दिवशब्द यदि क्विवन्त होता (च्छ्वोः शूड से व को ऊठ्, यण् होकर द्युः हो जाता । यदि विजन्त होता तो, लघूपधगुण नहीं, लोप होने लगता । दिव स्वर्गवाची अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है । अकार यकारलोपे । **वाचाञ्चकार** वाचिता, वाचिष्यति, वाच्यतु, अवाच्यत, अवाचीत् । **गिराञ्चकार** । गिरिता गीर्यतु अगीर्यत् अगिरीत् अगिरिष्यत् । **पुराञ्चकार** पुरिता अपूर्यत्, अपुरीत् । **दिवाञ्चकार दिविता** दीव्यतु अदीव्यत् अदेवीत् ।

(४) **हल्सेपरे**—क्यच् और क्यङ्का विकल्प से लोप हो, सार्वधातु परे । **परस्य**='पर' में क्यच् क्यङ्को विधान किया कार्य, उसके आदि (य) को हो, य का शेष, अ का 'अतोलोपः से लोप । **तस्य**=उस अ के लोप को स्थानिवद्भाव होनेसे लघूपधगुणो न । क्योंकि उपधामें लघु नहीं मिलता । आत्मनः समिधम् इच्छति । अपनेसे सम्बन्धित लकड़ी चाहता है । समिध-अम् इस सुबन्तसे क्यच् प्रत्यय धातुसंज्ञा, विभक्तिलोप, समिध्य यह क्यजन्त धातु है । जिसका इच्छा क्रियाके कर्तृसम्बन्धी समिधाकर्मक इच्छानुकुल व्यापारः । **समिध्यति** समिधम् इयेष, समिधाञ्चकार (परोक्षभूत कालिकसमिधकर्मक इच्छानुकूलाक्रिया समिधम् एष्टा एषिता वा **समिधिता** । समिध्य इति क्यजन्त धातोः लुट्, तास्–डा, इट् **समिध्यिता** । क्यच् विभाषा इति सूत्रेण आदेः परस्य सहकारेण यकारस्य लोपे । अतोलोपः इति अकारलोपे तस्य स्थानिवद्भावात् प्राप्तगुणस्य अभावें रूपम् । यदा यलोपो नभवति तदा द्वितीयं रूपम् । समिधम् एषिष्यति, **समिधिष्यति** । समिधम् इच्छतु **समिध्यतु** । समिधिम् ऐच्छत् । **असमिध्यत्** समिधमिष्यात्, **समिध्यात्** समिधम् ऐषीत् **असमिधीत्** । **पुत्रकाम्यसि** । सभी हलन्त धातुओं से क्यच् होनेपर विकल्प यलोप होता है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७२५ काम्यच्च ३।१।९। उक्तविषये काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मन इच्छति–पुत्रकाम्यति। पुत्रकाम्यिता। ६ उपमानादाचारे ३।१।१०। उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्। पुत्रमिवाचरति–पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्। (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः)। (२७४) अतो गुणे। कृष्ण इव आचरति कृष्णति। स्व इवाचरति स्वति।

(७२५) उक्तविषये=इच्छाक्रियाका कर्मीभूत (इच्छाक्रिया सम्बन्धी अर्थ का वाचक) सुबन्तसे इच्छा अर्थ में काम्यच् प्रत्यय हो। आत्मनः पुत्रमिच्छति मनुः। अपने लिए पुत्रकी कामना करते हैं। इषधात्वर्थ इच्छा का कार्मीभूत। इच्छाकर्ताका सम्बन्धी 'अर्थ' पुत्र है। उनका वाचकसुबन्त पुत्र+अम् है अत्र इच्छार्थे काम्यच्। अनुवन्धलोपे। पुत्र, अम् काम्य। इति दशायाम् सनाद्यन्ता धावतः इति धातुसंज्ञा सुपोलुक्। पुत्र काम्य' इति नामधातुः। स्वसम्बन्धी पुत्र विषयिणी इच्छसि पुत्रकाम्यसि। पुत्रम् इच्छामि पुत्रकाम्यामि। पुत्रम् एष्टा इति पुत्रकाम्यिता (छात्रः वृतिं-काम्यति) वृत्तीयति पुत्र 'पुत्रकाम्य' इति नामधातोः लुट् तिप् आदि कार्यं अतोलोपः इति अकारस्य लोपे। पुत्रम् एष्यति पुत्र काम्यिष्यति। ऐच्छत् अपुत्रकाम्यत्। ऐषीत् अपुत्रकाम्यीत्। (६) उपमानात्= जिसका सादृश्य उपस्थितिक्रिया जाय उसे उपमान कहते। उपमान रूपकर्म, उपमानवाची सुबन्त से आचार, व्यवहार, आचरण, अर्थ में क्यच् हो सुबन्त कर्म और उपमानभी होना चाहिए यह क्यचका आचार चरित्र व्यवहारों अर्थः इच्छार्थक क्यचके समान है अर्थ भेद विग्रहसे निर्णय किया जाता है। आत्मनः पुत्रमिव आचरति छात्रम्। छात्रके साथ अपने पुत्र के समान व्यवहार करता है। पर पुत्र की तरह नहीं। आचरणकर्ता सम्बन्धी आचर क्रिया का कर्म पुत्र+अम् इस सुबन्तमें छात्र उपमेय है। उपमान वाची शब्द पुत्र है) सुबन्त से क्यच्। शेषकार्य पूर्ववत् (पुत्रीयति) पुत्रमिवाचरामि। पुत्रीयामि। पुत्रमिव आचचार इति पुत्रीयाञ्चकार। पुत्रमिव आचरिष्यति पुत्रीयिष्यति। यत्किञ्चित् कर्तृकपुत्रकर्मक आचारसदृशछात्रोद्देश्यकमाचरणम्। पुत्रमिव आचरत् अपुत्रीयत्। आचर्यात् पुत्रीयात्। पुत्रमिव आचारीत् अपुत्रीयीत। धार्मिकः द्विजं विष्णुमिव आचरति। धर्मात्मा ब्राह्मणके साथ बिष्णु तुल्य आचरण करता है। आचार क्रिया का कर्तृसम्बन्धी अर्थवाचक सुबन्तपद विष्णु-अम् उपामानादाचारेऽर्थे क्यच्। धातुसंज्ञा सुपोलुक् अकृत सार्वधातुकयोः दीर्घः विष्णूय (आचारक्रिया कर्तृसम्बन्धी उपमानकर्मक व्यवहारानुकूलाक्रिया। विष्णुमिव आचरामि विष्णुयामि इत्यादि। (वा०) सभी प्रातिपदिकोसे आचार, (सुन्दरव्यवहार) अर्थमें क्विप् प्रत्यय विकल्पसे हो। क्विप्का सर्वापहारलोप। क्विप्प्रत्यय होनेपर अतोगुणेसे मकार का लोप। कृष्ण इव आचरति दैत्यः आचरणकर्ता प्रथमान्त पद हो "उपमानवाची

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सस्वौ । ः अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६ । ४ । १५ । अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति । इदमिवाचरति = इदामति । राजेव=राजानति । पन्था इव=पथीनति ।

हो तब आचार अर्थमें क्विप् । परन्तु प्रातिपदिकसे ही क्विप् का विधानहोने से सुबन्त न होनेपर विना पदान्तके भी पररूप होता है । कृष्ण इति । यह क्विबन्तनाम धातु है । जिसका आचारविषयिणी कर्तृसम्बन्धिनी उपमानभूत होनेके अनुकूल क्रिया अर्थः ; **कृष्णति,** कृष्णतः, कृष्णन्ति । कृष्णकर्तृक आचरण सदृश-आचरणं चैत्रकर्तृकम् । कृष्णिता कृष्णइव आचचार इति कृष्णाञ्चकार । अकृष्णत् अकृष्णताम् अकृष्न् । कृष्यात् कृष्यास्ताम् । अकृष्णीत् । अकृष्णिष्टाम् अकृष्णिषुः । **स्वइवाचरति स्वति** । अपने समान अपने लोगों के साथ व्यवहार करता है । इत्यर्थे सर्वप्रातिपदिकेभ्य इति क्विप् आचारे अर्थे । सर्वापहारलोपे, धातुसंज्ञा, वर्तमाने लट् शप् **स्वति** । अतोगुणे इति पररूपे **स्वति** शरीरम् शरीरमें आत्माकी तरह आशक्त है, आत्मकर्तृकम् आचरणसदृशाचरणं शरीरकर्तृकम् **स्वतः स्वन्ति** । स्वसि स्वथः स्वथ । स्वामि स्वाव स्वाम । **सस्वौ** = स्वइव आचचार रामः । स्व-इस प्रातिपदिक से लिट् तिप् णल् । स्व इत्यस्य द्वित्वे, अभ्यासादिः सस्व अ णल्परे स्व-अकारस्य स्थाने (अचोऽञ्णिति) इति–वृद्धिः । स स्त्रा अ आकारान्तसे परे णल् को औ । वृद्धिः । **सस्वौ** = वार्तिकार मते सस्वौ इत्येव रुपम् । सस्वतुः सस्वुः । सस्विथ सस्वथ सस्वथुः सस्व सस्वौ सस्विव, सस्विम **स्विता,** स्विष्यति, स्वतु स्वेत् अस्वीत् । (७) अनुनासिककान्तधातुकी उपधाको दीर्घ हो, झलादि कित् ङित् तथा क्विपरे । **इदामति** अयम् इव **आचरति,** अमुक व्यक्तिके समान आचरण करना है । उपमान हो ।

तथा प्रातिपदिक हो, आचरण क्रियाके कर्तासे सम्बन्धित हो, तदा आचारे अर्थे क्विप् । सर्वापहारलोपे प्रत्ययलक्षणेन, अनुनासिकस्य क्वि-आदि सूत्रेण, अनुनासिकान्तस्य 'इदम् शब्दस्य उपधायाः अकारस्य दीर्घे । इदाम् इति नामधातुः । लट् तिबादिः । **इदामति इदामतः इदामन्ति** । नहि कश्चित् इदामति (कोई इसकी तरह आचरण नहीं करता) इदम् इव आचचार इति । **इदामाञ्चकार** । नपुंसककी तरह आवरण किया । इदम् इव आचरिष्यति इदामिष्यति । स्त्रीकी तरह आचरण करेगा । **इदामतु** ऐदामत्, इदामेत्, इदाम्यात् ऐदामीत्, ऐदामिष्टाम् । **राजानति**= राजाइव आचरति दम्भी, अहंकारी (राजाके समान आचरण करता है ।) इत्यर्थे 'राजन्' इस प्रातिपदिकसे क्विप् प्रत्यय सर्वापहारिलोपे, 'अनुनासिकस्य क्वि'आदि सूत्रेण दीर्घे । राजान् इति नामधातुः राजसदृशम् आचरणमर्थः । लडादिकार्ये । दरिद्रोऽपि **राजानति** । तो **राजानतः** । ते राजानन्ति । राजानाञ्चकार राजानिता, राजानिष्यति । राजानतु अराजानत्, राजान्यात् अराजानीत् । **पथीनति** । पन्था इव आचरति । यह मार्ग सड़ककी तरह हो रहा है । क्विप् सर्वापहारि लोपे अनुनासिककी उपधाको दीर्घ । **पथीनति** । पथीनाञ्चकार, पथीनिष्यति । **अपथीनत्** । पथीन्यात् । अपथीनीत् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८ कष्टाय क्रमणे ३ । १ । १४ । चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् । कष्टाय क्रमते – कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहते, इत्यर्थः । ९ शब्दवैर-कलहाभ्र-कण्व-मेघेभ्यः करणे ३ । १ । १७ । एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् । शब्दं करोति = शब्दायते । तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच् । (प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च) = प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे

---

(८) कष्टाय कष्टं पापम् । तस्मै पापाय क्रमणे उत्सहते (क्रमपादविक्षेपे) पापके लिए पैर बढ़ाने अर्थमें क्यङ् (य) चतुर्थी विभक्ति अन्तमें हो ऐसे कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो । चतुर्थ्यन्त कष्ट ङे, से उत्साह (कदम बढ़ाने अर्थमें) कष्टाय क्रमणे इति सूत्रेण क्यङ् = (य) धातुसंज्ञा ङलुक्, अकृत सार्वधातुकयोः दीर्घः 'कष्टाय' इति सनाद्यन्तधातुः । पापकर्मविषयक उत्साहानुकूलव्यापारो धात्वर्थः लट् तिप् शप् आदिः । प्रकृत्यर्थ, प्रत्ययार्थ समुदायार्थका ज्ञान आवश्यक है । स कष्टायते कष्टायेते कष्टायन्ते । कष्टायाम्बभूव । कष्टाय क्रान्ता, कष्टायिता । कष्टाय क्रंस्यते, कष्टायिष्यते । अक्रमत् अकष्टायत् अकष्टायेताम्, क्रंसीष्ट कष्टायिषीष्ट अक्रंसत अकष्टायिष्ट ।

(९) एभ्यः = शब्दवैरकलह, अभ्रकण्व, मेघ, ये कर्म हो, ऐसे धातुसे करोति अर्थमें क्यङ् (य) प्रत्यय हो शब्दायते, शब्दं करोति । आवाज करता है । इस विग्रहमें करोति क्रियाका कर्ता सम्बन्धी-शब्द कर्मकध्वनिकरण क्रिया अर्थमें क्यङ् । शब्द + अम् से करण अर्थमें क्यङ् = य अकृतसार्वधातुकयोः इति दीर्घे । शब्दाय, इति समुदायः, ङित् तस्य फलम् आत्मने पदम् शबादिकार्ये शब्दं कुरुतः शब्दायेते । शब्दं कुर्वन्ति, शब्दायन्ते । शब्दं चकार इति शब्दायामास शब्दायिता । शब्दं करिष्यति शब्दायिष्यते । शब्दायताम् = शब्दं करोतु । कुरुताम्, अशब्दायत शब्दायिषीष्ट । शब्दमकार्षीत् अकृत वा अशब्दायिष्ट वैरं करोति वैरायते । कलहं करोति कलहायते । अभ्रं करोति, अभ्रायते । कण्वं पापं करोति इति कण्वायते, मेघं करोति इति मेघायते । (वा०) तत्करोति = तम् द्वितीयान्तशब्दसे करोति या आचष्टे कहने अर्थमें णिच् प्रत्यय हो, घटं करोति आचष्टे वा (घड़ाको बनाता है या उसे समझाता है) द्वितीयान्त घट + अम् से उक्त अर्थमें णिच् = इ ति, सुप् (अम्) का लोप यथा—(वा०) प्रातिपदिक से धातुके अर्थमें णिच् प्रत्यय बहुल करके हो, इष्ठवच्च' = वह णिच् इष्ठन् प्रत्ययके सदृश हो । जैसे—इष्ठन् प्रत्ययपरे प्रातिपदिकको पुम्वद्भाव, रभाव, टिलोप, विन् और मतुपका लोप यणादि लोप, प्रस्थ, स्फ आदि आदेश और भ संज्ञा ये कार्य होते हैं । इसीप्रकार णिच् परे भी उक्त कार्य हों । 'इति ब्वार्तिकेन णिच् परे भसंज्ञा 'यस्येति च' इति अकारलोपे । घटि धातुः लट् तिप् शबादिः । घटं कुर्वन्ति घटयन्ति । घटं करोषि,

२०

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

णिच् स्यात्, इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्र-स्थ-स्फाद्यादेश-भसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः। इत्यल्लोपः घटं करोत्याचष्टे वा घटयति।

इति नामधातवः

अथ कण्ड्वादयः

७३० कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७। एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक्

घटयसि। घटं कुर्मः, घटयामः। घटयाञ्चकार। घटं करिष्यति घटयिष्यति। घटम् अकरोत् अघटयत्। घटं कुर्वीत् घटयेत्। अकार्षीत् अकृतवा अजघटत्। सुपो धातु इति सुपोलुक् पुम्वद्भावश्च। पट्वीमाचष्टे पटयति। अत्र पुम्बद्भावभसंज्ञे भवतः। दृढ़ं करोति द्रढ़यति। अत्र णिच् परे रभावः। पटुमाचष्टे पटयति। (णिच् परे टि लोपः) स्रग्विणं आचष्टे स्रजयति। णिच् परे विन् प्रत्ययस्य लुक्। श्रीमन्तं करोति श्राययति। मतुपो लुक्। स्थूलम् आचष्टे स्थवयति। दूरं करोति दवयति अत्र णिच् परे यण् आदिःलोपे। प्रियमाचष्टे प्रापयति णिच् परे प्रिय शब्दस्य प्रादेशे। स्थिरं करोति स्थापयति। स्थिर शब्दस्य स्था आदेशे। स्थिरम् आचष्टे स्थापयति। आचष्टे आचक्षाते आचक्षते। आचचक्षे आचख्यौ आचक्षिता अचक्षिष्यते। आचक्षताम् आचक्षीत् आचक्षिषीष्ट। आचक्षिष्ट ये विग्रहके साधन हैं।

इति प्रभाकर्यां नामधातवः।

अथकण्वादिः (७३०) कण्ड्वादिगणमें पठित् धातुओंके अर्थका बोधक नित्य यक् प्रत्यय हो। स्वार्थे = स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः स्वार्थः यह यक् अपनी ही प्रकृतिके अर्थको कथयति। कण्ड्वादि दो हैं। धातु और प्रातिपादिक। धातु से ही यक् हो (कित्का फल भी हो) प्रातिपदिकसे न हो। अतः धातु विशेषण दिया। (१) कण्डू धातुका गात्रस्य (शरीरस्य, विघर्षणम् = खुजलानेके अनुकूलक्रिया अर्थः। इसी अर्थका वाचक कण्डूधातुके उपदेशावस्थामें अन्त्य हल् ञ-इत् हुआ। ततः कण्ड्वादिभ्यो यक् इति स्वार्थे यक्। ह्रस्व उकार हो वहाँ दीर्घ कण्डूय सनाद्यन्तधातुसंज्ञा वर्तमानकाले कर्तरि लट् तिप् शप् पररूपे कण्डूयति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यात् स्वार्थे । कण्डूञ् गात्रविघर्षणे । १ । कण्डूयति, कण्डूयते । इत्यादि । इति कण्डवादयः ।

अथात्मनेपदप्रक्रिया

७३१ कर्तरि कर्मव्यतिहारे १ । ३ । १४ । क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम् । व्यतिलुनीते=अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः । २ न

सुखानुकूलघर्षणं करोति । परस्य शरीरं । कण्डूयते स्वशरीर खुजलाता है । कण्डूयसि अहं कण्डूयामि । यूयं कण्डूयथ । कण्डूयते कण्डूयसे अहं कण्डूये । कण्डूयाञ्चकार । कण्डूयाञ्चक्रे । चक्राते चक्रिरे । कण्डूयिता, कण्डूयिष्यते । अकण्डूयत कण्डूयतें, कण्डूय्यात्, कण्डूयिषीष्ट, अकण्डूयीत्, अकण्डूयिष्टाम् अकण्डूयिषुः । अकण्डूयीः । अकण्डूयिष्टम् अकण्डयिष्ट अकण्डूयिषाताम् अकण्डूयिषत । इति कण्डवादिः ।

अथात्मनेपदप्रक्रिया—आत्मनेपदीप्रत्यय होने के लिए विशेष अर्थ प्रकाशनकी विधि प्रारम्भ करते हैं । किन-किन अर्थों में आत्मनेपदका विशेष विधान है । नियम सामान्य रूप से उक्त है । उभयपदी धातुओंमें परगामी क्रियाफलमें परस्मैपद होता ही है । परन्तु आत्मनेपद भी होता है । कहीं-कहीं परस्मैपदी धातुका अर्थ उपसर्गबलसे बदल जानेपर आत्मनेपद हो, इसी विशेषता की प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं । (१) कर्मव्यतिहारे—क्रियाका विनिमय, परिवर्तन, अदला-बदली अर्थको प्रकाशित करनेके लिए किसी धातुसे कर्तामें आत्मनेपद हो । परस्पर व्यतिहारो द्विविधः । करणरूप और अन्यके योग्य कर्म अन्य करे । ब्राह्मण कर्म क्षत्रिय करे । व्यतिलुनीते—वि अति उपसर्गकलूधातुका लवनक्रियाका परिवर्तन विनिमयानुकूलपरस्परलवनमर्थः । उसी अर्थको प्रकाशित करने के लिए आत्मनेपद 'त' श्ना । ईत्वादिकार्ये व्यतिलुनीते अन्य (शूद्र) के योग्य सस्यादिलवनम्—खेतीकी कटाई 'ब्राह्मणः करोति' । क्रियाविनिमय अर्थका बोधक आत्मनेपद । व्यतीलूनीयेते । व्यतिलुलुवे (एक दूसरेका कार्य एक दूसरेने अनद्यतन परोक्ष कालमें किया) लविता लविष्यति लूनीताम् । व्यत्यलूनीत । लुनीयात् । लविष्ट अलाविष्ट । (२) क्रियाओंके व्यतिहार अदला-बदलीके प्रसङ्गमें गति अर्थ, हिंसा अर्थवाली क्रियाके वाचक धातुसे (क्रियाके विनिमय अर्थ कहनेके लिए)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गतिहिंसार्थेभ्यः १।३।१५। व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति। ३ नेर्विशः १।३।१७। निविशते। ४ परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८। परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते।

७३५ वि-पराभ्यां जेः १।३।१९। विजयते। पराजयते। ६ समव-प्र-विभ्यः स्थः १।३।२२। सन्तिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते।

आत्मनेपद न हो। किन्तु परस्मैपद हो उस अदला-बदली को कहे। दो दृष्टान्त-विअति उपसर्गक गत्यर्थ गम् धातुका गमनक्रियाकी हेराफेरी अर्थ है। अतः व्यति-पूर्वक गम्धातोः क्रिया परिवर्तन-वर्तमाने लट् अन्यस्य योग्यं गमनम् अन्यः करोतीत्यर्थे आत्मनेपदं प्राप्तम्। गतिहिंसार्थेभ्यः धातुभ्यः, न आत्मनेपदं, किन्तु परस्मैपदम् तिबादिकार्ये। व्यतिगच्छन्ति। अन्यस्य योग्यं गमनम् अन्ये कुर्वन्ति। व्यतिघ्नन्ति वि अतिपूर्वकहननक्रियायाः विनिमयो अर्थः। तस्मात् लटि। हनन्क्रिया विषयक अन्य हिंसाके योग्य, अन्य करता है। न गति हिंसार्थेभ्यः आत्मने निषेधे। अन्यस्य योग्यं हननम् अन्ये कुर्वन्ति। व्यतिजगाम व्यतिगन्ता।

(३) नि उपसर्गकविश धातुसे चुभने अर्थमें आत्मनेपद हो। निविशते (परस्मैपदी) विश्धातुका प्रवेश करना अर्थ है। किन्तु 'नि' उपसर्गसे चुभना अर्थ है। इसी बोधके लिए आत्मनेपदका विधान। 'नेर्विशः' सूत्रसे भवति (निविशते यदि शूक शिपापदे) पैरमें टूंण चुभ जाय। निविविशे। यहाँ निशब्द अर्थवद्-ग्रहणपरिभाषासे अर्थवान् लेना चाहिए (मधूनि विशन्ति भ्रमराः) यहाँ निके निरर्थक होनेसे आत्मनेपद नहीं होता। (४) परि वि अव उपसर्गसे परे क्री धातु (क्र्यादिगण) आत्मनेपद हो। जो उपसर्गबलात् विशेष अर्थ को प्रकाशित करे। वे विशेष अर्थ परस्मैपद द्वारा प्रकाशित करनेसे अशुद्ध होंगे। परगामी क्रिया कालमें भी आत्मनेपदका विधान है। परिक्रीणीते परिपूर्वक क्री (वेतनमूल्यपर सेवा स्वीकार करना) तस्मात् वर्तमान क्रियाकाले लट् उभयपदे प्राप्ते, परिव्यवेभ्यः क्रियः इति आत्मनेपदमित्यादि कार्यं, स्वामी वेतनपर सेवक रखता है। क्रीधातुका द्रव्य विनिमय, खरीदना, मात्र अर्थ है। तथाऽपि 'वि' उपसर्ग लगनेसे बेचना अर्थ हुआ। उसी अर्थ बोधके लिए आत्मनेपद, अवपूर्वक क्रीधातुका सस्तेमें खरीदना अर्थः। उसी अर्थका प्रकाशक आत्मनेपद अवक्रीणीते विचिक्रिये। विक्रेष्यते विक्रेता विक्रणीताम् विक्रीणातां विक्रणताम्। व्यक्रीणीत्। विक्रणीत् व्यक्रेष्ट।

(६३५) वि और परा उपसर्गसे जिधातुसे आत्मनेपद हो। जय होने अर्थमें जिधातु परस्मैपदी है। विजते विउपसर्गसे विशेष विजय अर्थ होनेपर 'विपराभ्याजेः' सूत्रेण आत्मनेपदे। पाराजते जिसका पराजय (निकृष्ट हार) अर्थ है उसी अर्थ का विशेष प्रकाशक आत्मनेपद हुआ। 'वि' के साहचर्यसे पराशब्द भी उपसर्ग

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वितिष्ठते। ७ अपह्नवे ज्ञः १।३।४४। शतमप जानीते=अपलपतीत्यर्थः। ८ अकर्मकाच्च १।३।४५। सर्पिषो जानीते=सर्पिषोपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः। ९ उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३। धर्ममुच्चरते=उल्लङ्घ्य

ही ग्राह्य है। पराजयति सेना। यहाँ पराशब्दके उपसर्ग न होनेसे आत्मनेपद नहीं हुआ। शत्रून् पराजयते, दुश्मनोंको हराता है। अध्ययनात् पराजयते ग्लायति। पुत्रात् शिष्यात् पराजयते। पराजिज्ये। पराजेता। पराजेष्ट। पराजेष्यत। (६) सम्, अव, प्र, वि, उपसर्गसे परे गतिनिवृत्त्यर्थक स्थाधातुसे आत्मनेपद हो। स्थाधातु परस्मैपद धर्मको छोड़कर आत्मनेपदी धर्मधारण करे। सन्तिष्ठते— सम् पूर्वक स्थाधातुका अच्छी स्थितिमें ठहरना अर्थः। वहाँ परस्मैपदको बाधकर सम्पूर्वक स्थाधातोः आत्मनेपदे 'त' आदिकार्ये। सन्तस्थे। संस्थाता, संस्थास्यते, संतिष्ठतां, समतिष्ठत, संतिष्ठेत, संस्थासीष्ट, समस्थित। स्थाघ्वोरिच्च, ह्रस्वादङ्गात् इति सिचोलुक्। अवतिष्ठते ह्रास हो रहा है। इस अर्थके रहते अवपूर्वक स्थाधातोः आत्मनेपदे शप्, तिष्ठ आदेशे। प्रतिष्ठते। प्र पूर्वक स्था धातुका प्रतिष्ठाकी स्थितिमें होना अर्थः। प्रपूर्वक स्थाधातोः आत्मनेपदे प्रस्थान करना भी अर्थ है। अक्रूरः प्रतस्थे। पुरुषः परश्वः प्रस्थाता। प्रस्थास्यते। प्रतिष्ठताम् प्रातिष्ठत्। प्रतिष्ठेत् प्रस्थासीत्। प्रास्थित, प्रास्थिषाताम्। प्रास्थिषत। प्रास्थिथाः।

(७) अपह्नु=छिपाना, तस्मै अपह्नवे=अपलापे, गोपने, घोटाला या छिपाने अर्थ में अर्थ में अप् पूर्वक ज्ञा धातुसे आत्मने पद हो ज्ञा धातुके उभयपदी; परगामी क्रिया फल में भी विशेष अर्थ बोधक आत्मने पद हो। शतं अपजानीते। सौ (रुपये) का घोटाला या छिपाना अर्थः अप् पूर्वक ज्ञा धातोः गोपने, अपलापे अर्थे आत्मनेपदं भवति। अपजानीते अपजज्ञे, अपज्ञाता अपज्ञास्यत। अपजानीत अपाजानीत् अपज्ञास्त अपाज्ञासाताम्।

(८) अकर्मक ज्ञा धातुसे परगामी क्रियाफल अर्थ में आत्मनेपद हो। उस-अर्थ में परस्मैपद अनुचित हैं। सर्पिषो जानीते। घी के लोभसे भोजनमें प्रवृत्त होता है। घी रूप उपाय प्रवृत्तिमें कारण है। अत्रः ज्ञा धातुः प्रवृत्तिरूपे अर्थे अकर्मकः। जिसका प्रकाशक आत्मनेपद सूत्रसे हुआ। 'ज्ञोऽविदर्थस्य करणे ज्ञा धातुका अविद= अज्ञान अर्थ हो, तब करण अर्थमें षष्ठी जो अर्थ तृतीयाका ही रहेगा। (९) उदश्चरः=उत्पूर्वक चर, धातु सकर्मकसे आत्मनेपद हो। धर्ममुच्चरते। उत्पूर्वक चर धातुका उलङ्घन करके चलना अर्थः। धर्म की उपेक्षा करता है। उत्पूर्वक चर्धातोः सकर्मकात् आत्मनेपदं भवति उच्चेरे। उच्चेराते, उच्चेरिरे।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गच्छतीत्यर्थः ।

७४० समस्तृतीयायुक्तात् १।३।५४। रथेन सञ्चरते। १ दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५। संपूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीयाचेच्चतुर्थ्यर्थे। दास्या संयच्छते कामी। २ पूर्ववत् सनः १।३।६२। सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात्। एदिधिषते। ३ हलन्ताच्च १।२।१०। इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्। निविविक्षते। ४ गन्धनावक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु

उच्चरिता, उच्चरिष्यते उदचरत् उदचरिष्ट।

(७४०) तृतीयान्त के युक्तात् = योग (सम्बन्ध) होनेपर सम् पूर्वक चर धातुसे आत्मने पद हो रथेन सञ्चरते 'रथेन' यह तृतीयान्तपदके सम्बन्धमें स पूर्वक चर धातु (जिसका मस्तीमें घूमना अर्थ है) से आत्मने पद हुआ। रथेन सञ्चेरे। रथके सहयोगसे न जाने कितना विचरण किया। (१) सम् उपसर्गक 'दाण्' धातु तृतीयान्त पदसे युक्तात्=सम्बन्धित (जुड़ा) हो तो उक्तम्=आत्मनेपद हो। परन्तु वह तृतीया चतुर्थीके अर्थमें हुई हो। दास्याः संयच्छते कामुकः। कामी पुरुष दासीको देता है। यहाँ दास्याः शब्दमें तृतीयान्त विभक्ति चतुर्थीके अर्थमें दाण धातुके योगमें हुआ है। क्योंकि कामी कामना पूर्तिके लिए दासीको दे, यह अशिष्ट व्यवहार है। 'अशिष्टव्यवहारे दाण्प्रयोगे' चतुर्थी अर्थे तृतीया। यहाँ दा धातुके योगमें चतुर्थीके अर्थमें तृतीया हुई। उसीका प्रकाशक आत्मनेपद है। अतः संपूर्वक दा धातोः आत्मनेपदम्। पाघ्राध्मा-इति सूत्रेण दाण् स्थाने यच्छ आदेशे। सन्ददे सन्दाता। (२) सन् प्रत्यय होनेके पहले जिस धातुका जो पद हो उसीके तुल्य सदृश सन्नन्त धातु से भी वही पद हो। अर्थात् सन् होनेपर भी आत्मनेपदी धातुसे आत्मनेपद ही होता है। यथा—एदिधिषते एधितुं वर्धितुमिच्छति, वृद्धयर्थक एध् धातोः इच्छार्थे सन् इट् एधिष अजादि धातोः द्वितीयस्य एकाचः 'धि' इत्यस्य द्वित्वे धिधि अभ्यासादि कार्ये एदिधिष=वृद्धिकर्मक इच्छानुकूल व्यापारः सनाद्यन्त-धात्वर्थः। लडादि कार्ये।

(३) इक्=इ उ ऋ ऌ के समीप हल् से परे झल् आदिमें हो, ऐसा सन् कित् हो। निविविक्षते। निवेष्टुं, कुशलीभवितुमिच्छति। निविष्ट, प्रविष्ट, कुशल होना चाहता है। निपूर्वक विश् धातोः इच्छार्थे सन् प्रत्यये। इट् न भवति। अतः सन् प्रत्ययः झलादिः अस्ति। किद्भवति। इक् समीपे वर्तमानो हल् सकारः। ततः हलन्ताच्च सूत्रं सनः सकारं कितं करोति। तस्य फलं गुणनिषेधः। सकारस्य षत्वं, षढोः कः सि इति कत्वं, सकारस्य षत्वे लडादिकार्ये। अत्र पूर्ववत्सन इति आत्मनेपदम्। सनः पूर्वं नेर्विशः इति आत्मनेपदम्। (४) गन्धनं (सूचनं) पर

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कृञः १।३।३२। गन्धनं=सूचनम्। उत्कुरुते=सूचयतीत्यर्थः। अवक्षेपणं=भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते = भर्त्सयतीत्यर्थः हरिमुपकुरुते = सेवत इत्यर्थः। परदारान् प्रकुरुते - तेषु सहसा प्रवर्तते। एधोदकस्योपस्कुरुते= गुणमाधत्ते। कथाः प्रकुरुते=कथयतीत्यर्थः। शतं प्रकुरुते=धर्मार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्—कटं करोति। (६७२) भुजोऽनवने। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम् — महीं भुनक्ति। इत्यात्मनेपदप्रक्रिया।

दोषाविष्करणम्। दूसरेका दोष खोलना। अवक्षेपणं भर्त्सनं, तर्जनं, फटकार। सेवन=सेवा करना, साहसिक्य = बलात्कारेण वशीकरणम्। बलपूर्वक वशमें करना। प्रतियत्न=गुणोंका ग्रहण, प्रकथन, प्रवचन, उपयोग, धर्मादि—अर्थे द्रव्य विनियोगः इत्यादि अर्थमें कृ धातुसे आत्मनेपद हो। डुकृञ् करणे धातुके परगामी क्रियाफल होनेपर भी आत्मनेपद ही हो, यह भाव है। उत्कुरुते (सूचयति) पर दोषको प्रकाशित करता है, इस अर्थमें उत्पूर्वक कृधातोः आत्मनेपदम्। आदि कार्य। श्येनो वर्तिकाम् उदाकुरुते, बाज बटेरको भर्त्संन (झटका देता है) इस अर्थका बोधक उद् आ पूर्वक कृ धातोः भर्त्सन् अर्थे सम्भवे गन्धनादि सूत्रेण आत्मने पदम्। हरिम् उपकुरुते। हरिका उपकार (सेवा) करता है। उपपूर्वक कृ धातोः सेवार्थे आत्मनेपदम्। परदारान् प्रकुरुते। पर स्त्रीको सहसा = बलात् वशमें करता है। प्रपूर्वक कृ धातोः सहसाप्रवृत्ति—अर्थे गन्धनादि-सूत्रेण आत्मनेपदम्। एधः इन्धनं, दकं - जलम्। लकड़ी जलके गुणको ग्रहण करती है। उपपूर्वक कृ धातोः गुणस्य आधानं ग्रहणमर्थः। तस्मात् गुणाधाने अर्थे आत्मनेपदम् अत्र एधशब्दः अदन्तो निपातितः एधस्य काष्ठस्य शोषणमादि गुणाधानम्। दकस्य जलस्य, गन्धद्रव्य चन्दनकाष्ठ —आदि सम्पर्कजनितगन्ध-ग्रहणमित्यर्थस्य प्रकाशकम्। कथा प्रकुरुते। कथा सम्बन्धी (प्रवचन) अर्थ ही आत्मनेपदका भाव है। शतं प्रकुरुते धर्मार्थे द्रव्यसंग्रहं करोति। धर्ममें लगानेके लिए सैकड़ोंका संग्रह करता है। प्रपूर्वक कृ धातोः विनियोग इत्यर्थे आत्मनेपदम्। एषुकिम्-गन्धन आदि अर्थ रहते 'कृ' से आत्मनेपद क्यों? कटं करोति। चटाई बनाता है। इत्यर्थे आत्मनेपदं मा भवतु। भुजोअनवने भुज धातुसे पालनसे भिन्न भोजन आदि अर्थमें आत्मनेपद हो। ओदनं भुङ्क्ते। यहाँ भुज् धातुसे आत्मनेपद भोजन अर्थको कहता है। पालन आदि अर्थ व्यावृत्त होते हैं। अनवने=अवनं रक्षणम् न अवनं तस्मिन् अनवने पालन भिन्नेऽर्थे आत्मनेपदं क्यों कहा? इसलिए कि जहाँ पालन अर्थ हो, वहाँ आ० न हो जाय। जैसे महीं भुनक्ति। पृथ्वीका पालन करता है।

इति प्राभाकर्याम् आत्मनेपदप्रक्रिया।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

७४१ अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९। कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् अनुकरोति। पराकरोति। ६ अभि-प्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०। क्षिप प्रेरणे। स्वरितेत्। अभिक्षिपति। ७ प्राद्वहः १।३।८१। प्रवहति। ८ परेर्मृषः १।३।८२। परिमृष्यति। ९ व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३। रमु क्रीडायाम्। विरमति। ७५० उपाच्च १।३।८४।

अथपरस्मैपदप्रक्रियाः—सामान्यनियमपरस्मै पद के सम्बन्धमें उक्त हैं। विशेषनियमके लिए प्रकरणस्य प्रारम्भः। विशेष करके अभयपदी धातुओंसे कर्तृगामी क्रिया फलमें आत्मनेपद को वाधकर परस्मैपद का होना किन-किन स्थलोंमें निश्चित है, उनका संकेत सूत्रोंसे करते हैं।

(७४५) अनुपरा पूर्वक कृञ् धातुसे कर्तृगामी क्रिया फलमें भी आत्मनेपद को बाधकर परस्मैपद और गन्धन, अवक्षेपण आदि अर्थमें भी परस्मैपद हो। गन्धनादि अर्थ हो या अनुपरा पूर्वक कृञ् हो कर्तृगामी क्रिया फल होनेपर भी परस्मैपद का नियम है। अनुकरोति अनुपूर्वक कृ धातुका अनुकरण (नकल) करना अर्थः। उससे वर्तमान कालमें लट् अनुकरणका (फल) कर्तृगामी होनेसे अनुपराभ्यां कृञः, सूत्रेण परस्मैपदम्। चित्रकारः चित्रं अनुकरोति। अत्र आत्मने पदम् अशुद्धम्। पराकरोति परापूर्वक कृ धातोः दूरीकरणमर्थः। वर्तमाने लट् कर्तृगेफलेपि परस्मैपदम्।

(६) अभिप्रति अति उपसर्गक प्रक्षेपणार्थकं क्षिप धातुसे परस्मैपद हो, उपसर्गसे, धात्वर्थ विशेष हों, इसका सूचक परस्मैपद। अभिक्षिपति (सन्मुख फेंकता है) इत्यर्थे अभिपूर्वक-क्षिप्धातोः परस्मैपदम् अतिक्षिपति प्रतिक्षिपति विपरीत फेंकना। स्वरितेत् धातुः। (७) प्रपूर्वक वह् धातुसे विशेष अर्थमें परस्मैपद हो। प्रवहति। भारी बोझा ढोता है। कर्तृगामी क्रिया फल होनेपर भी आत्मने पद स्थाने परस्मैपदं शुद्धम्। (८) परिपूर्वक तितिक्षायां = सहन करने अर्थमें मृष धातुसे कर्तृगामीक्रियाफल होनेपर भी परस्मैपद हो। सब प्रकारसे कष्ट सहन करता है। परिमृषति। अत्र परस्मैपदम्। (९) वि आङ्परि उपसर्गक् 'रम्' धातुसे परस्मैपद हो। उपसर्गबलसे अर्थपरिवर्तनका सूचक परस्मैपद। विपूर्वक रम्धातुका विराम, रुकना, निवृत्त होना अर्थः। इसीका वाचक आत्मनेपद। आरमति। आङ् पूर्वक रम्धातुका आराम करना, आनन्दसे चारों तरफ विहार करना अर्थः। परस्मैपदं परिरमति सब तरफसे सुख पाता है।

(७५०) उप उपसर्गसे परे रम्धातुसे परस्मैपद हो। उप पूर्वक रम्धातुका निवृत्ति रूप उपराम, विराम, रुकना, उदासीन होना अर्थः। इस अर्थमें उपरम् धातुः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ।

इति पदव्यवस्था ।

यथा—त्वम् अहम् वहीं मध्यम उत्तम पु० हो । जहाँ तिङ्का वाच्य=अर्थकारक न होकर भाव (क्रिया) अर्थ हो, वहाँ अन्य पुरुष हो । परन्तु प्रथम पुरुषमें क्या तीनों अकर्मकः उसका कर्म यज्ञदत्तं कैसे ? समाधान—अन्तर्भावित्=यहाँ प्रेरणा क्रियाका वाचक णिच्का अर्थ अन्तर्भावित् है । मूलधातुके स्वार्थमें अङ्गीकृत है । अन्तर्भावितः स्वार्थे अङ्गीकृतो अर्थः (प्रयोजक व्यापारो) येन, प्रेरणा अर्थ छिपा होनेसे सकर्मक बन गया । पदव्यवस्था यहाँ आत्मनेपद परस्मैपदकी व्यवस्था ही पद व्यवस्था है । नाम ग्रहणेन नामैकदेशग्रहणात् न्यायेन । इति परस्मैपद प्रक्रिया प्रभाकर्याम् ।

अथभावकर्मप्रक्रिया—कर्तृवाच्य (कर्तामें प्रत्यय) अर्थ के पश्चात् भाववाच्य (क्रिया अर्थ में) (कर्म अर्थ में) कर्मवाच्य लकारोंकी प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं । भावश्च कर्मंच भावकर्मणी तयोः प्रक्रिया (साधनिका दशा) आरभ्यते 'लः कर्मणि चाभावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्रसे कर्ता, कर्म, भाव, अर्थबोधक लकार उक्त हैं । भ्वादिसे परस्मैपदप्रक्रियापर्यन्त धातुओंसे कर्ता अर्थमें लकार कर्तृवाच्य हुए । इस प्रकरणमें सकर्मक धातुओंसे कर्ममें, अकर्मक धातुओंसे भावमें लकारका विधान हो । अतः प्रकरणमारभ्यते—यदि अकर्मक धातुओंसे भावअर्थमें लकार विधान किया गया, तब भावपदके अर्थकी स्वाभाविकी जिज्ञासा जागर्तिकिं-भावः ? क्रिया, भावना, व्यापार ये पर्यायवाची शब्द हैं । यद्यपि प्रत्येकधातुओंमें भावरूप क्रिया है । वह धातुसे लब्ध है । पुनः लकार में भाव अर्थ कहनेकी शक्ति कैसे ? शब्दार्थ वह है जो अन्यसे लब्ध न हो, भाव धातुसे लभ्य है, तन्न जो भाव धातुसे लब्ध है वही लकारसे अनूदित है, कोई अन्य अर्थ नहीं है । लकारसे द्योत्य है पुनरुक्तिः विवशता । न केवलाः प्रकृति प्रयोक्तव्याः नाऽपि केवल प्रत्ययः । केवल प्रकृति या प्रत्ययका प्रयोग लोके उपयोगी नहीं । भाव=धात्वर्थ क्रिया अर्थमें लकार होनेसे प्रथम मध्यम, उत्तम पुरुषोंकी प्रयोग व्यवस्था कैसे ? सम्भवति इति चेत् शृणु । जहाँ तिङ् आदि प्रत्ययका वाच्य=अर्थ कारक=कर्ता कर्म, युष्मद या अस्मद् शब्द हो

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भावकर्मप्रक्रिया

७५१ भावकर्मणोः १ । ३ । १३ । भावे कर्मणि च धातोः लस्यात्मनेपदम् । २ सार्वधातुके यक् ३ । १ । ६७ । धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके । भावः = क्रिया । सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियायाः

वचन सम्भव हैं ? नहीं । लकारसे अनुवाद किया गया भाव रूप है अद्रव्य =लिङ्ग सङ्ख्या, अन्वय विहीन है । यहाँ द्विवचन बहुवचन सम्भव नहीं । किन्तु एकवचन भी सम्भव कैसे ? क्रियामें एकत्व सङ्ख्या भी ज्ञात नहीं होती, तथापि सर्वत्र औत्सर्गिकं साधुत्वार्थं=स्वभावसे एकवचन (भावमें प्रत्यय होनेपर) हो, इस प्रकार 'यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः' भावमें प्रत्यय होनेसे भाव उक्त है कर्ताके अनुक्त होनेसे अनुक्ते कर्तरि तृतीया भवति ।

सभी भावार्थक लकारमें प्रथम पु० एकवचन कर्तामें तृतीया (त्वया मया अन्यैश्च भूयते) कर्म अर्थमें लकार होनेपर कर्ताके अनुक्त होनेसे तृतीया । कर्मके उक्त होनेसे प्रथमा । यहाँ पुरुष वचनकी व्यवस्था कर्म अर्थके अनुसार है । उसीमें लिङ्गसङ्ख्याका अन्वय है । यथा चैत्रः आनन्दमनुभवति । चैत्रेण आनन्दो अनुभूयते । रामः त्वाम् अनुभवति । रामेण त्वम् अनुभूयसे । भक्तः माम् अनुभवति । भक्तेन अहम् अनुभूये । सकर्मक तथा अकर्मक धातुओंसे पूर्वोक्त व्यवस्था सुनिश्चित है । फल और व्यापार दो अर्थ धातुके हैं । जैसे—पचमें पाक, क्रिया । शृणोतिमें श्रवण, क्रिया । पठति, ज्ञान, तदनुकूलक्रिया ये दोनों अर्थ एक ही कर्ता में हों वे अकर्मकाः धातवः । देवदत्तः शेते शयनफल तथा क्रिया दोनों देवदत्त में ही हैं । दोनों अर्थ भिन्न आधारमें हों तब सकर्मक धातु । जैसे पचति तण्डुलं वह्निः । पाकफल चावलमें, अग्निकाष्ठ संयोग फूत्कार आदि क्रिया, कर्तामें (फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वम् अकर्मकत्वम्) फलव्यधिकरण व्यापारवाचकत्वम् सकर्मकत्वम् ।

(१) भाव और कर्म अर्थमें ल्के स्थानमें आत्मनेपद हो भाववाच्य अर्थमें भी (२) भाव और कर्म अर्थवाची सार्वधातुक 'त' आदि परे हो तो धातुसे यक् हो । क इत् यहाँ भावका अर्थ धातुकी क्रिया है । जो भाव अर्थमें हुए लकारसे अनुदित है । युष्मद अस्मत् = (त्वम् अहम्) आदिके साथ सामानाधिकरण्यं=सामान सम्बन्धसे 'शेषे प्रथमः से प्रथम पु० ही हो । भाव अर्थमें ल्के स्थानमें तिङ् उसका वाच्यार्थ, क्रिया अद्रव्य=रूपलिङ्ग सङ्ख्याके सम्बन्धसे शून्य होनेसे द्विवचन आदिका ज्ञान नहीं होता । वहाँ स्वाभाविक एकवचन ही निश्चित है । त्वया मया (तुमसे, मुझसे) अन्य लोगोंसे होना क्रिया हो रही है । भूयते । भवनार्थक भूधातोः,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि, किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः -। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे। ३ स्य-सिच्-सीयुट्-तासिषु भावकर्मणो रुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२।

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वदभावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः। भाविता, भविता। भाविष्यते, भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट। ४ चिण् भावकर्मणोः ३।१।६६। च्लेश्चिण् स्याद् भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे अभावि। अभाविष्यत, अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः। अनुभूयते

वर्तमानकाले भावे अर्थे लट्। भावकर्मणोः इत्यात्मने पदे 'त' सार्वधातुके यक् टेः एत्वं, क्त्वित्वान्न गुणः। भूयते त्वया। कर्तरि तृतीया। बभूवे परोक्षकालिक भवन क्रिया त्वया, मया अन्यैश्च बभूवे। द्वित्वादिकार्यं। पूर्ववत् (३) उपदेशे अज्झन ग्रहदृशाम्—उपदेश अवस्थाका जो अच् तदन्तधातु और हन् ग्रह, दृश धातुओंको चिणीव—चिण्प्रत्यय इव यहाँ भी अङ्गकार्य विकल्पसे हो. स्य, सिच् सीयुट्, तास् प्रत्ययपरे। भावकर्मणोः—भाव, कर्म अर्थज्ञानका विषय बने तब स्यसिच् आदिको, इट् आगम ही हो। संयोग शिष्ट। चिण्वद्भावः—चिणके तुल्य कार्य हो पक्षमें इट् होगा। विपक्षमें इट् नहीं होगा। सेट्से इट् संभव। चिण्प्रत्यय रहनेपर यथा वृद्धिर्भवति। तथैव चिण्वद्भाव स्थलमें भी वृद्धि हो। भाविता—भूधातोः भावे लुट् भावकर्मणोः इति आत्मनेपदे 'त' डा तास् इत्यादि भू ता। स्य सिच् आदि सूत्रेण चिण्वद्भावे इडागमे, अचोऽञ्णिति इति उकारस्य वृद्धिः आव् आदेशे रूपम्। चिण्वद्भावके अभावपक्षमें वलादि इट् गुणे अव्आदेशे। देवदत्तः मन्त्री भविता इति देवदत्तेन मन्त्रिणा श्वः भाविता। देवदत्तेन भाविष्यते, भविष्यते। त्वया राज्ञा भूयताम्, अभूयत, भूयेत्, भविषीष्ट। त्वया मुख्य मन्त्रिणा भाविषीष्ट। पुत्रोऽभूत् (पैदा हुआ) पुत्रेण अभावि। पुत्रने जन्म लिया। (४) च्लिके स्थानमें चिण् आदेश हो भावकर्मवाची तशब्दपरे (अभूत) अभावि। तेन भूधातोः भावे लुङ् अट् त, च्लि स्थाने भावकर्मणो इतिचिण् अनुबन्ध लोपे 'इ' चिणोलुक् उकारस्य वृद्धिः आवादेशे। अभाविष्यत् चिण्वद्भावे इट्। अकर्मकोऽपि—अकर्मक-धातु भी उपसर्गके बलसे सकर्मक होता जाता है। अथवा भूधातुमें सकर्मक (अनुभव) अर्थ को अप्रसिद्ध या गुप्त शक्ति है। उपसर्ग उस अप्रसिद्ध शक्तिको प्रसिद्ध कर देता है। अकर्मकके सकर्मक होनेमें प्रमाण—चैत्रेण आनन्दः अनुभूयते। चैत्रसे आनन्द अनुभूत होता है। अनुपूर्वक भूधातुका अनुभव अर्थ खुल गया। कर्ममें लकार उक्त है। उक्ते प्रथमा (आनन्दः) अनुक्ते तृतीया (चैत्रेण) कर्ममें लिङ्गः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभविषाताम्, अन्वभाविषाताम्। णिलोपः—भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। चिण्वदिट्। भाविता। आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। भावयिता। भावयिषीष्ट। अभावि। अभाविषाताम्। अभावयिषाताम्। बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। बोभूय्यते। बोभूयते। (४८३) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः। स्तूयते विष्णुः। स्ताविता, स्तोता। स्ताविष्यते, स्तोष्यते।

सङ्ख्याका अन्वय होनेसे त्वया आनन्दः अनुभूयते मया दुःखम्, अन्येतु उभे अनुभूयेते। राजानः सुखानि अनुभूयन्ते। मया त्वम् अनुभूयसे। अहं सर्वम् अनुभवामि। इति मया सर्वम् अनुभूयते। कर्ताके अनुक्त होनेसे तृतीया कर्मके उक्त होनेसे प्रथमा। अन्वभावि सुखम्। अनुभू, चिण्त, वृद्धिः आवादेशे चिणोलुक् आदिः। पाण्डवैः सुखदुःखे अन्वभाविषाताम्। ण्यन्तस्य भाविधातोः कर्मणि प्रत्यये 'ति' यक् णेर्निट् इति णिलोपादिः। चैत्रो मैत्रं भावयति=होवाता है। चैत्रेण मैत्रे भाव्यते वयं भवामः। ते प्रेरयन्ति इति ते अस्मान् भावयन्ति। तैः वयं भाव्यामहे। वयं तान् भावयामः। अस्माभिस्ते भाव्यन्ते। णिच् अवस्थायां प्रयंवृद्धस्य गतिसूत्रेण कर्मसंज्ञा, णिच् परे, अकर्मकधातुरपि सकर्मको भवति। कर्मणि प्रत्यये प्रयोजकस्य तृतीयान्तता। प्रयोज्यस्य प्रथमान्तता। चैत्रस्त्वां भावयति, चैत्रेण त्वं भाव्यसे। मां भावयति। अहं भाव्ये। इत्यादीनि उदाहरणानि भवन्ति। भाव-धातुसे कृ लिट् भावयाञ्चक्रे। भाविता 'चिण्वादिटः' इस इटके आभीयत्वेन =आभीयसंज्ञक होनेसे असिद्ध हो जानेपर णेरनिट् सूत्रेण णिलोपे। पक्षे वलादिलक्षण इट् सिद्धः। अतो न णिलोपः। गुणे अयादेशे भावयिता। भाविष्यते, भावयिष्यते। भाव्यताम्। अभाव्यत। भाव्येत, भाविषीष्ट, अभाविष्यत। अभविष्यत। सन्नन्तसे भावकर्म भवितुम् इच्छति बुभूषति देवदत्तः इति देवदत्तेन बुभूष्यते। त्वया मया च होनेकी इच्छा होती हो भवन कर्मक इच्छानुकूलव्यापारवाचक बुभूष् धातोः कर्मणि 'त' यक् (अतोलोपः) अकारलोपे इत्यादि बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता इट् अकारलोपे। बुभूषिष्यते बुभूष्यताम् अबुभूषिष्ट। सन्तन्त-अकर्मकसे अकर्मक, सकर्मकसे सकर्मक होते हैं। यङन्त बोभूय पुनः पुनः अतिशयार्थबोधक धातोः भावे अर्थे लट् 'त' यक् अकारलोपे बोभूयाञ्चक्रे बोभूयिता अबोभूयत। अबोभूयिष्ट यङ्लुक्पक्षे बोभूयते। यक् इत्यादि। स्तूयते। (भक्तः विष्णुं स्तौति) भक्त विष्णुकी स्तुति करता है, प्रशंसनीय गुणोंसे विष्णु स्तुत होते हैं। स्तुत्यर्थक स्तुधातोः कर्मणि लट्। त। आत्मनेपदे 'यक्' अकृत्सार्वधातुकयोः दीर्घः गोपैः कृष्ण रामौ स्तूयेते स्तूयन्ते। त्वं सर्वैः स्तूयसे। त्वया मया स्तूयेथे। यूयं सर्वैः स्तूयध्वे। त्वया अहं स्तुये। आवां स्तूयावहे। देवाः रामं तुष्टुवुः देवैः रामः तुष्टुवे। भविष्यकालिक,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अस्तावि। अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम्। ऋ गतौ। (४९८) 'गुणोर्ति' इति गुणः। अर्यते। स्मृ स्मरणे। स्मर्यते। सस्मरे। उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता, अर्ता। स्मारिता, स्मर्ता। (३३४) अनिदितामिति नलोपः। स्रस्यते। इदितस्तु नन्द्यते। सम्प्रसारणम्। इज्यते।

विष्णुकर्मक, स्तुति—अनुकूलाक्रिया। स्ताविता भविष्यकालिके कर्मणि अर्थे लुट् (स्य सिच्) आदि सूत्रेण उपदेशे अजन्तधातुः इति मत्वा चिण् भावः। विष्णु की स्तुति की जायेगी। इट् च। वृद्धिः। आवादेशे स्ताविता। पक्षे गुणे स्तोता। छात्राः गुरुं स्तोष्यन्ति छात्रैः गुरुः स्ताविष्यते, स्तोष्यते। त्वया शिवः स्तूयताम्। यथा-विष्णुः अस्तूयत। यदि छात्रैः मन्त्री स्तूयेत तदा वृत्तिं दापयेत। विष्णुं स्तूयासुः तैः विष्णुः स्ताविषीष्ट चिण् इट् विकल्पः स्तोषीष्ट। देवैः देवी अस्तावि। (अस्तावीत्) लुङ् चिण् वृद्धिः आदि। देव्यौ अस्ताविषातां अस्तोषातामस्ताविषत्। अस्ताविष्यत। अर्यते सेवकः पन्थानं सेवकैः पन्था अर्यते। कर्मणि अर्थे लट् यक् ऋ+यते। 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः' इति ऋस्थाने अरगुणे रूपम्। अर्यते, अर्यन्ते। स्मृधातुकः स्मरणजनकक्रिया अर्थः। छात्रः वृत्तिं स्मरति। इति छात्रेण वृत्तिः स्मर्यते। कर्मणि लट् यक् गुणे सस्मरे। उपदेशे 'स्यसिच्' सूत्रमें उपदेश ग्रहण करनेसे उपदेश अवस्थामें अजन्त मानकर चिण् भाव इट् हो इसका फल आरिता। देवदत्तः पन्थानमर्यते इति देवदत्तेन पन्था आरिता अर्ता। परत्वात् सार्वधातुकगुणे (अर्)। इदानीं हलन्त होनेसे (अजन्त न होने से) चिण् इट् कैसे? समाधान—अर्गुण होने पर भी उपदेश अवस्थामें अजन्त था। ऋधातोः कर्मवाच्ये लुट् परत्वात् नित्यत्वाच्च सार्वधातुकगुणे अरिता। उपदेशावस्थायाम् अजन्तधातुः 'ऋ' इति, तस्य चिण्भावे इट् च। व्यपदेशवत् भावसे अजन्तं सिद्धं। उपदेश अवस्थामें अजन्त था। उपधा वृद्धिः पक्षे अर्ता। सा पतिं स्मर्ता। इति तया पतिः स्मारिता। स्मारिष्यते स्मरिष्यते। त्वया मित्रं स्मर्यताम्। मया पाठः अस्मर्यत। स्मर्येत, स्मारिषीष्ट। तया माता अस्मारि। अस्मारिषातां त्वम् अस्मारिष्ठाः। अहं अस्मारिषम्। ध्वंस—पतन अर्थवाचक; स्रंस धातोः कर्मवाच्ये लट् यक् आदि। नकारलोपे। शरीरात् शाटी स्रस्यते। वायुना सस्रंसे। स्रंसिता स्रस्यताम् अस्रस्य स्रस्यते। अस्रंसि। इदितधातुसे नकारलोप नहीं होता यथा नन्द्यते समृद्धि अर्थमें इदित् नद धातोः नुमागमः नन्दति रामेण नन्द्यते। नन्द्यन्ते, बालकेन ननन्दे। नन्दिता नन्दिष्यते अनन्दि। जहाँ उपदेशमें में अजन्त नहीं है। तत्र चिण्भावो न भवति। सो अतिथि यजति। इतितेन अतिथिः इज्यते। यज-यक-ते वचिस्वपि इति सम्प्रसारणे ईजे यष्टा यक्ष्यते इज्यताम् ऐज्यत। अयाजि अयक्षाताम् अयक्षत।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७५५ तनोतेर्यकि ६ । ४ । ४४ । आकारान्तादेशो वा स्यात् । तायते, तन्यते । ६ तपोऽनुतापे च ६ । १ । ६५ । तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । (५८८) घुमास्थेतीत्वम् । दीयते । धीयते । ददे । ७ आतो युक् चिण्कृतोः ७ ३ । ३३ । आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । दायिता, दाता । दायिषीष्ट । अदायि

---

(७५५) तन् धातुको 'आ' अन्त आदेश हो, यक् परे विकल्पसे । अहं ब्रह्माण्डं तनोमि । मया ब्रह्माण्डं तन्यते । तन् + यते । तनोतेर्यकि इति सूत्रेण नकारस्य 'आ' अन्तादेशे तायते । पक्षे तन्यते । तेने । तनिता, तायतां, तन्यताम् । अतायि अतायिषाताम् ! पापेन पापः अन्वतप्त । पापी पापसे स्वयं सन्तप्त हुआ । (पाप दुःखी हुआ) । (६) तप् धातुसे च्लि के स्थानमें चिण् 'न' हो, कर्म कर्ता और अनुताप=कष्ट सहना पश्चात्ताप अर्थ में । अनुपूर्वक तप धातु का पश्चात्तापो अर्थः । यथा अन्वतप्त पापेन पापः पापिनं पापकर्तृ पुरुषं पापं अताप्सीत् । इति पापेन पापी (पाप) अन्वतप्त । अतिघोर पाप देखकर या यातनाभोग देखकर पापको भी पश्चाताप हुआ । अकर्मक होनेसे भाववाच्यरूप । अथवा पापः अन्वतप्त । अकर्मकसे कर्तृवाच्य, भाववाच्यमें पापेन अन्वतप्त । पापसे पश्चाताप किया गया । तप्यते । तेपे । तप्ता । तप्स्यते, तप्यताम्, अतप्यत । कर्मकर्तृ का उदाहरण आगे । श्रेष्ठी वस्त्रं ददाति । इति वस्त्रं दीयते ! दानार्थक दाधातोः कर्मवाच्ये अर्थे वर्तमाने लट् यक् दा, य, ते घूमास्था आदि सूत्रेण ईकारे दीयते ते गाः ददति तैः गावः दीयन्ते । धीयते । धारण पोषणार्थक धाधातोः कर्मणि लट् यक् आकारस्य ईकारे । धीयते । त्वया निर्झरिणी ददे । (ददौ) कञ्चुकी दधे (दधौ) ।

(७) आतः=आदन्त धातुओंको युक्=य आगम हो चिण् ञित् णित् कित् प्रत्ययपरे । स पुस्तकं दाता, इति तेन दायिता चिण्भावे, इट् । आतोयुक् आगमे पक्षे दाता चिणभाव पक्षमें, युक् होता ही है । दायिष्यते दास्यते ! धनवता सहायता दीयताम् यथा—राजभिः अदीयत । सोऽपि दीयेत् । दायिषीष्ट, दासीष्ट । अदात् अदायि चिण्भावकर्मणोः इति चिण् । आतोयुक् । तशब्दस्य चिणोलुक् । ग्रन्थौ अदायिषाताम् । अदिषाताम् । अधायि इत्यादि । बालः आलुकं भुङ्क्ते इति बालेन भुज्यते । भञ्जनार्थक भञ्जधातोः कर्मवाच्ये लट् । अनिदितामिति नलोपे अग्निबाणेन गृहाणि भज्यन्ते । बभञ्जिरे । भङ्क्ता, भङ्क्ष्यते, भज्यताम् अभज्यत । ते प्र० अभाजि । अभञ्ज इति । च्लि स्थाने कर्मणि चिण् चिणोलुक्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अदायेषाताम् । भज्यते । ८ भञ्जेश्च चिणि ६ । ४ । ३३ । नलोपो वा स्यात् । अभाजि, अभञ्जि । लभ्यते । ९ विभाषा चिण्णमुलोः ७।१।६९। लभेर्नुमागमो वा स्यात् अलम्भि, अलाभि । इति भावकर्मप्रक्रिया ।

ततः । (८) भञ्ज धातु के न का लोप हो चिण् परे विकल्पसे । न लोप पक्षे उपधा वृद्धिः अभाजि अभाव पक्षे अभञ्जि । स कर्मफलं लभते इति तेन लभ्यते । लभ् धातोः कर्मणि अर्थे लट् यक् आदिकार्ये । लेभे, लब्धा, लप्स्यते, लभ्यताम् । राधिका कृष्णमलभत । इति कृष्णः तया अलम्भि । लभ् धातोः कर्मवाच्ये अर्थे लुङ् अट् त, च्लेश्चिण् ।

(९) लभ् धातु को नुम् आगम हो चिण् और णमुल्परे, विकल्प से नुम् पक्षे अलम्भि । नकारस्य अनुस्वारपरसवर्णे । अभावपक्षे उपधावृद्धिः अलाभि अलप्साताम्, अलप्सत, अलब्धाः, अलप्साथाम्, अलब्ध्वम् । अलप्सम् ।

इति भावकर्मप्रक्रिया प्राभाकर्याम्

अथकर्मकर्तृ—कर्म एव कर्ता, तस्य प्रक्रिया, (साधनिका दशा) कर्मको कर्ता मानकर लकारका विधान हो, कर्म ही कर्ता बने । वह कर्म कर्तृवाच्य है । किसी क्रियासे सभी कारक सम्बद्ध है । यथा—एक ही पच धातु के प्रयोगमें चैत्रः तण्डुलं वह्निना विप्राय स्थाल्यां पचति । चैत्र चावलको अग्नि द्वारा विप्रके लिए स्थालीमें पकाता है । कर्ता, कर्म, करण, आदिका क्रियासे सम्बन्ध दृष्ट है । चैत्रमें कर्ता (क्रियाके आश्रय) की विवक्षा न हो तथा जिस कारक में क्रिया की प्रधानता हो, धातुवाच्य कहनेकी इच्छा हो, तादृश धातुवाच्य ही कर्ता कारक है । जैसे—वह्निः पचति । करण कर्ता अधिकरणकर्ता स्थाली पचति । तण्डुलः पच्यते । कर्म कर्ता । सम्प्रदान अपादान कारकोंमें कर्ताकी विवक्षा नहीं होती । अनुभवविरोधात् । ग्रामः आगच्छति विप्राय गां ददाति में (विप्र देता है । ग्राम आता है ।) ऐसा अनुभव नहीं है । ऐसी दशा में कर्मको ही कर्ता कहना यदि इष्ट हो तब सौकर्य=सुविधा, सुगमताके लिए कर्ताकी क्रियाको अप्रधान मानकर कर्मको क्रियाको स्वतन्त्र मानकर कर्म कर्ता हो । यथा—पच्यते तण्डुलः । यहाँ सकर्मक धातु भी अकर्मक होकर उसमें भाव या कर्तामें लकार हो, तब पच् धातुके भी अकर्मक होनेसे तण्डुलेन पच्यते । ओदनः पच्यते । ओदनेन पच्यते । ओदन पकाता है । भावके उक्त होनेसे कर्म कर्ताके अनुक्त होनेसे तृतीया । इन्हीं विचारोंके बोधके लिए प्रकरण प्रारम्भ करते हैं । जब कर्मको ही कर्ता विवक्षित हो अभिप्रेत हो तब सकर्मक धातु भी अकर्मक होकर कर्ता, भाव, अर्थमें लकार समझाते हैं ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः। ७६० कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७। कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन यगात्मनेपदचिण्वदिटः स्युः। पच्यते फलम्। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावे तु भिद्यते काष्ठेन। इति कर्मकर्तृप्रक्रिया।

---

(७६०) कर्मणा=कर्म संज्ञकमें स्थित क्रिया (कर्मणि तिष्ठतीति कर्मस्था)। कर्ममें रहनेवाली क्रियाके तुल्य (सदृश) क्रियावाला कर्ता कर्मवत्=(कर्मणा तुल्यं) कर्मके सदृश हो जाय। जो कर्म कर्ता बन जाय, उसमें कर्माणि प्रत्ययके सभी कार्य होते हैं। जैसे—कर्ममें प्रत्यय होनेपर यक् आत्मने पद, चिण्भाव, इट् ये कर्तामें भी हों। यदि कर्म कर्ता हुआ तो। जब क्रिया कर्ममें साक्षात् या लक्षणासे समझमें आवे, तब कर्मवद्भाव होता है। यथा—पच्यते फलम्। कालः फलं पचति। समय फलको पकाता है। यहाँ फल कर्म है उसमें स्थित क्रिया पाक है। जब फल (कर्म) को कर्ता की या फलमें स्वतन्त्र क्रियाकी विवक्षा हुई तब फल कर्ता हुआ। कर्मकी दशामें जो पाक क्रिया, कर्ताकी दशामें वही पाक क्रिया होनेसे फलको कर्म भाव आदि। क्योंकि कर्मस्था क्रियाके तुल्यक्रिया फलरूप कर्तामें है। कर्ममें लकार यक् आत्मनेपद आदि होनेसे पच्यते फलं स्वयमेव इति रूपम्। कर्म भावपक्षमें प्रथम, मध्यम, उत्तम पु० यथायोग्य होंगे। त्वं पच्यसे सन्तप्यसे संसारः मां पचति संसारेण अहं सन्तप्ये पच्ये। दुःखमनुभवामि। कर्तामें प्रथमा विभक्ति। भावमें लकार होनेपर चैत्रेण भूयतेकी तरह प्रथम पु० एक व० यथा—फलेन पच्यते। त्वया मया च पच्यते। एवं भिद्यते काष्ठम्। देवदत्तः काष्ठं भिनक्ति। किं देवदत्तेन काष्ठं स्वयमेव भिद्यते। देवदत्त लकड़ी तोड़ता है। लकड़ी की सरलता सुगमतासे टूटनेपर उसीमें क्रिया प्राधान्य की विवक्षा हुई। कर्मवद्भाव आत्मनेपद, यक् आदि। पाचकः श्यामाकम् अपाक्षीत् इति पाचकेन श्यामाकं अपाचि स्वयमेव। एवं यन्त्रं वृक्षम् अभैत्सीत् इति किं यन्त्रेण वृक्षः स्वयमेव अभेदि। पचभिद्से कर्मकर्तृ वाच्ये अर्थे लुङ् कर्मवद्भावे च्लेश्चिण् चिणोलुक् तकारस्य लोपे। वृद्धिः। गुणः करणकर्तामें, भावमें प्रत्यय होनेपर कर्तामें तृतीया। भिद्यते काष्ठेन। भाववाच्य लकारसे कर्ता अनुक्त होनेपर तृतीया हुई। भिद्यते हृदयग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्तेचास्य कर्माणि, तस्मिन्दृष्टे परावरे। मोक्षार्थी हृदय ग्रन्थिं भिनक्ति। सर्वसंशयं छिनत्ति। परे=ब्रह्मादयः अवरे न्यूनाः यस्मात्स निर्गुणः। मोक्षार्थिना किं हृदयग्रन्थिः स्वयमेवच्छिद्यते। संशयाः (शरीरम् इन्द्रियाणि वा आत्मा अस्ति न वा) मनो, बुद्धिः दृष्टे परावरे=परात्परे निखिलाधारमूलभूते ब्रह्मणि। स्वयमेव भिद्यन्ते ग्रन्थयः। इत्यादि कर्मकर्तरि सिध्यन्ति। इति प्राभाकार्यां कर्मकर्तृप्रक्रिया।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ लकारार्थप्रक्रिया

७६१ अभिज्ञावचने लृट् ३।२।११२। स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यने धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। वस निवासे। स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः। एवं बुध्यसे, चेतयसे इत्यादिप्रयोगेऽपि। **२ न यदि ३।२।११३।** यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि कृष्ण। यद्वने अभुञ्ज्महि। **३ लट् स्मे ३।२।११८।**

लकारार्थप्रक्रिया—सभी लकारों के अर्थ समझाये गये हैं। कारणवश किसी लकार के अर्थमें दूसरे लकारका प्रयोग भी साधु सिद्ध हैं। उनकी प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं। (१) **अभिज्ञा** स्मरणात्मकं (साक्षात् ज्ञायते या सा) पहिचानका वचने = शब्दे। **स्मृतिबोधिनि** = स्मरणका (ज्ञान) बोध करानेवाला पद **उपपदे** = समीपमें हो, **अनद्यतन** अद्यभिन्नभूतकाल अर्थमें धातुसे लृट् हो। लङ् लकारको बाधकर। **अद्यतन** = आजका कार्य अद्यभिन्नभूतकाल लङ्का अर्थ है। स्मरण अर्थमें उसे बाधकर लृट्का उसी भूत अर्थमें विधान हुआ। 'वस' धातुका निवासजनकक्रिया अर्थः **स्मरसि** = हे कृष्ण! स्मरण है जब हम लोग गोकुलमें रहते थे। यहाँ भूतकाल होनेपर भी गोकुलमें निवासका स्मारक 'स्मरसि' शब्द है। वसधातोः लङ्स्थाने अभिज्ञावचने लृट्लकारे सस्यार्धधातुके इति सस्थाने त **वत्स्यामः**। भूतकालिक—निवास क्रिया विषयकवर्तमानकालिकंस्मरणम्। त्वत्कर्तृक कृष्णोद्देश्यक इस प्रकार **बुद्ध्यसे** सुदामन् गुरुकुले **पठिष्यामः** लङ्स्थाने लृट् स्मरणार्थक पदके रहते ही लङ्के स्थानमें लृट् होगा। **चेतयसे** नन्दं वने मेलायां स्थूलसर्पः **ग्रसिष्यति**। स्मरसि मित्र: बाल्यकाले कक्षायां **पठिष्यामः** स्मरणवाचक अन्य शब्दके सम्बन्धमें भी नियम लगेगा।

(२) **यद्योगे** = यत् शब्दके योग = सम्बन्धमें उक्त नियम नहीं लगता। लृट् न होकर लङ् होता है। **अभिजानासि** = अभिपूर्वक ज्ञा (जन) का स्मरण, पहिचान याद, अर्थ है। हे कृष्ण तुम्हें स्मरण है कि हम लोगोंने वन में भोजन किया था। यत् शब्दके सम्बन्धसे प्राप्त लृट्का 'न यदि' इति सूत्रेण निषेधे, यथा प्राप्तलङि रूपम्। आपको याद है? जब हमलोग तीर्थयात्रामें गये थे। बारात गाँवके निकट आई थी।

(३) स्मशब्दके योग (सम्बन्ध) में परोक्ष अनद्यतनभूतकाल अर्थमें लटलकार हो परोक्षे लिट्को बाधकर यथा—युधिष्ठिर यज्ञ करते थे (**यजति स्म युधिष्ठिरः**) स्मके सम्बन्धमें भूतकालमें भी लट् हुआ। यह विशेष प्रक्रिया है। प्राप्त लिट्को बाधकर।

२१.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

लिटोऽपवादः । यजति स्म युधिष्ठिरः । ४ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा ३ । ३ । १३१ । वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः । कदाऽऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि; अयमागमं वा । कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि, गमिष्यामि वा ।

७६५ हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३ । ३ । १५६ । वा स्यात् । कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् । कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति । भविष्यत्येवेष्यते । नेह—हन्तीति पलायते । (४२५) विधिनिमन्त्रणे लिङ् । विधिः=प्रेरणं=भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्, यजेत । निमन्त्रणं=नियोगकरणमावश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्, इह भुञ्जीत । आमन्त्रणं=कामचाराऽनुज्ञा, इहासीत । अधीष्टः=सत्कारपूर्वको व्यापार, पुत्रमध्यापयेद्भवान् । सम्प्रश्नः=सम्प्र-

---

(४) वर्तमानकाल में जो प्रत्यय कहे गये हैं वे वर्तमानकालके समीपमें भूतकाल हो या भविष्य वर्तमानकी तरह विकल्पसे हो (वत्घटितमतिदेशः) यथा— कदा आगतोसि—कब आये हो । यह प्रश्न भूतकालिक हैं किन्तु उत्तर में वह भूतकाल वर्तमानके समीप है अतः वर्तमान कालिक लकार अयमागच्छामि (अभी आया हूँ) पक्षमें भूतकालिक लकार लङ्का प्रयोग आगच्छं भी सत्य है । कदा गमिष्यसि ?—कब जाओगे, भविष्यकालिकः प्रश्नः उसके समीप वर्तमान कालमें वर्तमानवद्भाव लट्का प्रयोग (एष गच्छामि) अभी जाऊँगा । पक्षमें गमिष्यामि भी साधुः ।

(७६५) हेतु=कारण, हेतुमत्=कार्य भाववाली क्रियाओंसे लिङ् लकार हो विकल्पसे । यथा—यदि कृष्णको नमस्कार करोगे तब सुख पावोगे । नमस्कार कारण है, सुख कार्य है । इस स्थितिमें लिङ्का प्रयोग । पक्षमें भविष्यकालिक लृट् लकार कृष्णं नंस्यति चैत्सुखंयास्यति इत्यादिमें हुआ । यह विधान भविष्यति एव भविष्यकालमें ही इष्यते=इष्ट है । भूत या वर्तमान कालमें नियम नहीं लगता । हन्ति (पलायते) जब मारता है तब भागता है । यहाँ पलायन क्रियामें हनन् क्रिया कारण है । तथापि भविष्यकाल न होनेसे लिङ् नहीं हुआ । किन अर्थों में लिङ् होता है उसका विवरण विधि आज्ञा, प्रेरणा, नोकर आदि छोटे पर आदेश चलाना, यजेत (वह यज्ञ करे), निमन्त्रण (नियोग करे) निश्चितरूपसे क्रियामें लगाना । आवश्यक श्राद्ध भोजन आदिमें दौहित्र (पुत्री के पुत्र) आदि को प्रवृत्त कराना (जीहाँ भोजन कीजिए), आमन्त्रणं=परकीये अभिलषितविषये अनुमतिप्रदानम् । कामचार इच्छाके अनुसार, अनुज्ञा=अनुरोध इह आसीत् । यहाँ आप बैठे । सम्मान पूर्वक क्रियाको अधीष्ट कहते हैं । आप कृपया मेरे पुत्रको पढ़ायें । सम्प्रश्नः=निर्णय करनेको सम्प्रश्न कहते हैं । हम

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

धारणम्, किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। प्रार्थनं=याच्ञा, भो भोजनं लभेय। एवं लोट्। इति लकारार्थप्रक्रिया।

इति तिङन्तम्।

अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया

६ धातोः ३।१।९१। आतृतीयाध्यायसमाप्तेः ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। (३०२) कृदतिङिति कृत्संज्ञा। ७ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ७।१।९४। अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना। ८ कृत्याः ७।१।९५। ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः। ९ कर्तरि कृत् ३।४।६७। कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्।

वेद पढ़े या न्याय शास्त्र प्रार्थना याच्ञा। भोजनं लभेय। इति प्रभाकार्यां लकारार्थप्रक्रिया। एतावात् पर्यन्त तिङन्तका प्रकरण पूरा हुआ।

अथ कृदन्त प्रकरणम्। सुबन्तके अनन्तर तिङन्त विषयक सभी नियम पूर्ण हुए। कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्रमें प्रथम उपस्थित कृत्प्रत्ययान्त कृदन्त शब्दकी सिद्धिका प्रकरण प्रारम्भ करते है। सर्वप्रथम कृत्य संज्ञक प्रत्ययोंकि प्रक्रिया साधनिका शैली प्रस्तुत है। धातुसे तिङ हुए अब कृत् होंगे। इति प्रसङ्ग सङ्गतिः।

(६) धातोः। आतृतीया=अष्टाध्यायीके धातोः सूत्रसे लेकर तृतीयाध्याय समाप्तिपर्यन्त सभी प्रत्यय धातुसे परे हों। "कृदतिङ' सूत्रसे अतिङ=तिङ्से भिन्न प्रत्यय कृत्=कृत्यसंज्ञक हों। असरूप=समानरूप न हों ऐसा अपवादप्रत्यय उत्सर्ग=व्यापक सूत्रका बाधक विकल्पसे हो। जैसे तव्यत्, तव्य, अनीयरका असरूप ण्यत्' अपवाद है। भिन्नरूप होनेसे, बाधक विकल्पसे बनता है। किन्तु स्त्रियां क्तिन् सूत्रके स्त्रियांके अधिकारमें कहे गये प्रत्ययोंको छोड़कर। विकल्पका फल है जहाँ ण्यत् (कार्यम्) आदि है, वहाँ तव्यत् (कर्तव्यं करणीयम्) आदि भी हों। जहाँ अपवाद (शास्त्र विशेष) और सामान्यके प्रत्यय हों वहाँ सूत्र नहीं लगेगा। यद्यपि अनुबन्ध की सहायतासे भेद प्रतीत होते हैं। किन्तु नानुबन्धकृत परिभाषा से सरूप ही है। अतः विकल्प बाधका प्रसङ्ग नहीं है। अण् आदिप्रत्यय 'अ' शेष रहनेसे समानरूपवाले हैं। 'क' होनेपर पक्षमें अण् नहीं होगा (समानरूप होनेसे) स्त्रियांके अधिकारमें भी विकल्प नियम नहीं लगता। (८) ण्वुल्तृचौ' सूत्रसे पहलेके प्रत्ययों तककी कृत्यसंज्ञा। इसका प्रयोजन (९) कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्ता अर्थमें

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इति प्राप्ते ।

७७० तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः ३ । ४ । ७० । एतो भावकर्मणोरेव स्युः । १ तव्यत्तव्यानीयरः ३ । २ । ९६ । धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यम्, एधनीयं त्वया, भावे–औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वञ्च । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया । (केलिमर उपसंख्यानम्) पचेलिमा माषाः, पक्तव्या

हों । इससे सभी प्रत्यय कर्तामें होने लगे । तब ७७० । एते कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थ **तयोरेव**=भाव और कर्म अर्थमें ही हों । कृत्यप्रत्यय अकर्मकसे भावमें सकर्मकसे कर्ममें **तयोरेव**–कृत्यक्त खलर्थाः इससूत्रसे हो । अतः सर्वथा कृत्य प्रत्ययके योगमें विकल्पसे षष्ठी होगी ।

खल्‌प्रत्ययके अर्थ कहे जायेंगे । क्रियाकी कठिनता या सरलता अर्थका प्रकाशक खल् है । उस अर्थमें अन्य प्रत्यय भी लिए जाँय । अतः जहाँ कृत्य क्तप्रत्यय होंगे, वहाँ अनुक्तकर्ता अर्थमें तृतीया अवश्य होगी । **मया शयितव्यम् अहं-शये** मुझे सोना चाहिए । मया शयितम् । अहं करवाणि, कुर्याम् । मया सुकरः दुष्करो वा इदं कार्यम् । (१) तव्यत् तव्य **अनीयर**, ये प्रत्यय धातुसे हों । यत्र तकार इत् तत्रतित्स्वरितं भवति । **एधितव्यं**–वृद्धयर्थक अकर्मक एधधातोः तव्यत् प्रत्यय किस अर्थमें हो कृत्संज्ञकप्रत्यय कर्तामें हों । उसे बाधकर **तयोरेव** कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्रसे अकर्मक धातुसे भावमें प्रत्यय हुआ । **अनुक्ते कर्तति तृतीया । यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः** जिस अर्थ में प्रत्यय हो उसीमें प्रथमा हो । कृदन्तत्वात् । त्वया एधितव्यं त्वम् एधस्व (लोट्) ऐधेथाः (लिङ्) तुम्हें **बढ़ना चाहिए** । इति त्वया एध्यताम्, एधेथाः इति त्वया एधितव्यम् । तुम बढ़ो । तुम्हें बढ़ना चाहिए । लिङ्, लोट्, कृत्य प्रत्यय, ये समानार्थक हैं । (यदि कर्तामें प्रत्यय हो तब कृत्यानां कर्तरि 'वा' सूत्रसे पक्षमें षष्ठी भी । होती यत्र भाव अर्थ प्रधान है तत्र लिङ्ग सङ्ख्या की प्रतीति नहीं होती । एकवचन स्वाभाविक है । नपुंसक लिङ्ग भी सामान्ये नपुंसकम्' कर्ममें प्रत्यय सकर्मक धातुओंसे होते हैं । कर्मके अनुसार लिङ्ग वचन भी होते हैं । इसी प्रकार **एधनीयं** भी होगा । एध+अनीयर । सकर्मकका उदाहरण **त्वं धर्मं चिनु चिन्वीथाः** कर्तरि प्रत्ययः तुम धर्मको अपनाओ । **कर्तृवाच्य**, चयनार्थक चिधातु सकर्मक है ।

चिधातोः (**त्वया धर्मः चीयते**) कर्मणि तव्यत् । अनीयर, चयन क्रियाका कर्म धर्म है । वह प्रधान हो गया । धर्म तुमसे चुना जाना चाहिए । चिधातोः तव्यत् गुणे कृदन्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्ये । पुलिङ्ग, एक व० कर्मके अनुसार । **अनुक्ते कर्तरि तृतीया** त्वया धर्मः चेतव्यः । (वा०) तव्यत् सूत्रमें **केलिमर** प्रत्ययका भी **उपसङ्ख्यान**=संग्रह, मानना चाहिए । अनुबन्धलोप

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यर्थः। **भिदेलिमाः सरलाः**, भेत्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययः।
२ **कृत्यलुटो बहुलम् ३ । ३ । ११३ ।**

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति। १।

स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः। ३ **अचो यत्**

'एलिम' शिष्यते। पचेलिमाः (पक्तव्याः, पकाना चाहिए) नवा वधूः, माषान् पचतु पचेत् 'वा' इति वध्वा माषाः पचेलिमाः। बहूसे उदद पकाये जांय। पच् धातोः कर्मणि (वार्तिकेन) 'केलिमर' प्रत्यये अनुबन्धलोपे पच्+एलिम, सम्मेलने, स्वादिकार्ये पचेलिमः। पचेलिमौ। पचेलिमाः वनेचरः। सरलान् भिनत्तु। जंगली चीड़ (देवदारु) वृक्षको काटें भिन्देत्। तेन वृक्षाः भिदेलिमाः भेदनार्थक भिद्धातोः कर्मणि अर्थे केलिमर इत्यादि। भेदनाश्रय कर्म, क्रियाके फलका आश्रय होता है। पक्तव्याः शब्दसे कर्मणि प्रत्ययका संकेत है। भेत्तुं योग्याः शक्याः 'वा' **भिदेलिमाः** वृक्षाः। पक्तुं योग्याः तण्डुलाः। चेतुं योग्यं **चयनीयं** पुष्पम्। चयन क्रियाके फलका आश्रय सकर्मकसे ही कर्ममें प्रत्यय सम्भव है। (२) **कृत्यसंज्ञक** प्रत्यय और ल्युट् जहाँ कहे गये हो, वहाँ **बहुलम्**=आवश्यकतानुसार होते हैं। क्योंकि बहुलका अर्थ **क्वचित्**=कहीं प्रवृत्ति हो, कहीं **अप्रवृत्ति**=प्रयोग विशेषमें प्रवृत्ति न हो। कहीं **विकल्पसे** कहीं विल्कुल न हो। **विधि** (ब्रह्मा) या बादलके **विधान** (वर्षा) के समान **बहुधा**=प्रायः **समीक्ष्य**=समझकर, चार प्रकारका बाहुलक विद्वान् बोलते हैं, जिसके फलस्वरूप करण, सम्प्रदान, अर्थमें भी प्रत्यय हो गये। वर्षाकी (बादलकी) कहीं वृष्टि, **अनावृष्टि** रुक-रुककर वृष्टि, लगातार वृष्टिकी तरह बाहुलक नियम है। जिस साधन (चूर्णसे) स्नान किया जाय उसको **स्नानीयम्** चूर्णेन लेपेन स्नातु स्नायात् वा (स्नान साधन) अर्थ है। स्ना धातोः करणे अनीयर् कृत्य ल्युटो बहुलं सूत्रसे करण अर्थ बाहुलकसे लब्ध है। जिसको दिया जाय उसे दानीय कहते हैं। विप्राय ददतु इति **विप्रो दानीयः**। दा धातोः उद्देश्ये अर्थे अनीयर। बाहुलक बलसे सम्प्रदान अर्थका लाभ। बाहुलक बलसे अपादान सम्बन्ध अधिकरणमें भी प्रत्यय (अनीयर) आदि होगे। (३) **अजन्त** धातुसे **यत्** प्रत्यय हो। अजन्त सकर्मक हो तो कर्ममें। अकर्मक हो तो भावमें। **चेयम्**। त्वं पुष्पाणि चिनु (लोट्) चिन्वीथाः **त्वया चीयताम्**। तुम फूल चुनो, तुमसे चुने जांय। इस अर्थमें **त्वया चेयम्**। एवं चेतुमर्हं चेतुं शक्यम्। चुनने योग्य हैं। या चुननेमें समर्थ है। इन विग्रहोंसे भी वह रूप सम्भव है। चयनानुकूल क्रिया वाचक चिधातोः **अजन्तात् कर्मणियत्**। तस्य आर्धधातुक संज्ञा, गुणे, स्वादिकार्ये, सामान्ये नपुंसकम्। नपुंसक अर्थ प्रातिपदिकार्थ है। चयनाश्रयः चयन विषयः इति कृदन्त कृत्यर्थः। अलग-अलग अर्थका एकार्थ होना।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३।१।९७। अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्। चेयम्। ४ ईद्यति ६।४।६५। यति परे आत ईत् स्यात् देयम्। ग्लेयम्।

७७५ पोरदुपधात् ३।१।९८। पवर्गान्तादुपधाद्यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्। ६ एति-स्तु-शास्वृ-दृ-जुषः क्यप् ३।१।१०९। एभ्यः क्यप् स्यात्। ७ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।४।३४। इत्यः। स्तुत्यः। शासु–अनुशिष्टौ। ८ शास इदङ्हलोः ६।१।७१। शास उपधाया

---

(४) यत्प्रत्यय परे आ को ई हो। त्वं देहि, दद्याः त्वया (वराय घटीयन्त्रं रजतपात्रं) देयम्। दीयंताम्। तुम चाँदीका पात्र दो, या तुमसे दिया जाय। इति त्वया देयम्। दानार्थक दा धातोः कर्मणि अचो यत्। दा+य ईद्यति इति सूत्रेण आकारस्यः ईकारे गुणे। कृदन्तत्वात् स्वादिकार्ये। दातुम् अर्हं योग्यं दान विषयः रजतमिति कृदन्तार्थः ग्लातुं=ग्लानिं कर्तुं ग्लेयम्। कैकेयी ग्लायतु। ग्लायात्। तया ग्लातुम् अर्हं ग्लेयं (ग्लानिविषयः) ग्लै+य आत्व—ईत्व—गुण, आदिकार्ये। (७७५) पोः=पवर्ग (पफबभम) अन्तमें हो तथा अदुपधात्=अकार उपधामें हो उस धातुसे यत् (य) हो ण्यत् प्रत्यय प्राप्त हो तो, उसे बाधकर। स शपतु, शपेत् वा—तेन शप्यतामिति शप्यम्। शपितुं योग्यम् अर्हं समर्थं वा शपथ खाना चाहिए या शापके योग्य है। यह वृत्तिका अर्थ है। गोपीभिः उद्धवः शप्यः। पवर्गान्तः आक्रोशे, शप् धातुः। कर्मणि यत् (प्राप्तं ण्यतं बाधित्वा) शापविषयः इति अर्थेन अर्थवत्त्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्ये लब्धुं शक्यम् लभ्यं फलम्। लब्धुं योग्यम् (त्वं लभस्व, लभेः, त्वया लभ्यताम्) इति लभ्यम्। डुलभष् प्राप्तौ। लभ धातोः यत् (प्राप्ति योग्ये अर्थे) प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्ये। कृत्य प्रत्ययके लिए हमेशा लोडन्तसे विग्रह भावकर्मके रहते हुए, विग्रह होना चाहिए केवल कृत्यप्रत्ययके प्रसंगमें।

(६) एति=गति अर्थमें इण्धातु, स्तुति अर्थमें स्तु अनुशासनार्थक शास्, वरणार्थक वृ आदरार्थकदृ, प्रीतिसेवार्थक जुष, इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो। (७) ह्रस्वको तुक हो, पित् तथा कित् परे। इत्यः–त्वं एहि इयाः इति एतुं गन्तुं योग्यः (पुरुषः देशः) गमनार्थक इण्धातोः एतिस्तुशास् आदिसूत्रेण कर्मणि क्यप् अनुबन्धलोपे ई+य। पितिपरे ह्रस्वस्य तुक=त् आगमे, स्वादिकार्ये। स गुरुं स्तौतु स्तूयात् तेन गुरुः स्तूयतामिति स्तुत्यः। स्तवनार्थक स्तु धातो कर्मणि क्यप्। स्तु+य पित्परे ह्रस्वस्य तुक्, कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्ये। शासधातुका अनुशासनजनकव्यापारो अर्थः। त्वं छात्रं शाधि इति त्वया (शासितु योग्यः) शिष्यः छात्रः। शिक्षकः छात्रं शास्ति। कर्मणि प्रत्यये शिष्यते गुरुणा गुरोर्वा शिष्यः छात्रः। अनुशासनार्थक शासधातोः 'शास्वृ—सूत्रेण कर्मणि अर्थे क्यप् (य)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इत् स्यादङि हलादौ क्ङिति। शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः। ९ मृजेर्विभाषा ३।१।११३। मृजेः क्यब्वा। मृज्यः।

७८० ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४। ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्। १ चजोः कु घिण्ण्यतोः ७।३।५२। चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे। २ मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४। मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः। ३ भोज्यं भक्षे ७।३।६९। भोग्यमन्यत्। इति कृत्यप्रक्रिया।

शास्य। (८) शास्धातुको इत्व = ह्रस्व इकार हो हलादि किति ङितिपरे। इति आकारस्य इकारे। 'शासिवसिघसीनाञ्च' इति षत्वे स्वादिकार्ये। दाता वरं वृणोतु, व्रियते इति दात्रा वरो वृत्यः। वरणार्थक वृधातोः कर्मणि क्यप् तुक्। इष्टरूपेण स्वीकारविषयः। धर्मात्मा साधुः आदरतामिति साधुः आद्रियताम् आदृत्यः। आदरार्थक दृ धातोः क्यप् तुगादिः। आदृत्यः आदरविषयः। माता रामं जुषताम् इति रामः जुष्यतां जुष्यः (प्रीतिसेवनयोग्यः) इति एकार्थीभावः। (९) मृज्धातु से क्यप् विकल्पसे हो। क इत्का फल् गुणनिषेधः। मार्ष्टुं = स्वच्छं कर्तुंयोग्यः मृज्यः राजमार्गः वैतनिकः गृहं मार्ष्टुं इति गृहं मृज्यतां मृज्यः। स्वच्छता जनक-क्रियावाचक मृजधातोः ण्यत्प्राप्ते तं बाधित्वा मृजेर्विभाषा इति क्यप् अनुबन्धलोपे, कित्, गुणनिषेधे। निर्मलंकर्तुं योग्यः। स्वादिकार्ये। मृज्यः। स्वच्छताविषयः।

(७८०) ऋहलोः = ऋवर्णान्त तथा हल् अन्तमें हो ऐसे धातुसे ण्यत्। णत-इत् (य) प्रत्यय हो। त्वं कुरु, क्रियेतां, अहं करोमि क्रिये कर्तुं योग्यम्, अहं कार्यम्। करणार्थक या उत्पत्तिजनक क्रियार्थक कृधातोः कर्मणि ण्यत् (उक्त सूत्रेण) णितिपरे अचः ऋकारस्य स्थाने वृद्धौ रूपम्। करने योग्य। हर्तुं योग्यम् ह्रियतामिति हार्यम्, जो हरण किया जाय। जो हरणके योग्य हो। हरणार्थक हृधातोः कर्मणि ण्यत्, वृद्धिः। हरणयोग्यं रत्नम्। धर्तुं योग्यम् धार्यं ध्रियताम् (जो धारणके योग्य हो) कौशेयः (रेशमी) वस्त्रं, मणिः। (१) च और ज को कुत्व हो (घइत्) घित् और ण्यत् परे। (२) मृजेः = मृजधातुके इक्को वृद्धि हो, सार्वधातुक आर्धधातुक परे। मार्ग्यः मृजधातोः क्यपो अभावे ण्यत्। जकारस्य चजोः इतिकुत्वे। सूत्रमें (घित् तकारस्य अनुनासिके घिण् इति) मृजेः ऋ स्थाने वृद्धिः। स्वादिकार्ये मार्ग्यः। पन्था। (३) भक्ष = भक्षणके योग्य अर्थ हो तब भुजधातोः कर्मणि यत् सूत्रमें भोज्यम्के उच्चारणसे ,जको कुत्व न होना निश्चित है। सूत्रे निपतन्ति ये ते निपाताः। इससे कुत्वका अभाव सिद्ध है, लेह्यं, चोष्यं भोज्यं, पयः घृतं वा। जो वस्तु भोज्य नहीं है वह उपभोग्यं (पालनीयम्)।

इति प्राभाकरीटीकायांकृत्यप्रकरणम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पूर्वकृदन्तम्

७८४ ण्वुल्-तृचौ ३।१।१३३। धातोरेतौ स्तः। (७६९) कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे:। ५ युवोरनाकौ ७।१।१। यु वु एतयोरनाकौ स्तः।

अथपूर्वंकृदन्तम्—धातुके अधिकारमें तिङ्से भिन्न प्रत्ययको पूर्वंकृदन्तमें कृत्य-संज्ञक माना गया। इन प्रत्ययोंके तीन भाग है १—कृत्य संज्ञक। २—कारक प्रधान भाग (पूर्वंकृदन्त)। ३—भाव प्रधानभाग (उत्तरकृदन्त) कारक प्रधान प्रत्ययका प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। धातुके पाँच अर्थ हैं। कर्ता, कर्म, क्रिया, सङ्ख्या, काल। उससे सभी प्रत्यय द्योतक पक्षमें धातुके अर्थको उद्वुद्ध करेंगे। वाचकपक्षमें धातुका फल और व्यापारमात्र अर्थ है। कर्ता आदि अर्थ प्रत्ययके हैं। धातोः = तृतीय अध्याय प्रथमपाद ९१ सूत्रसे अध्यायकी समाप्ति तक जो प्रत्यय कहे गये वे धातुसे परे हो। उन प्रत्ययोंको अतिङ् = तिङ भिन्न होनेसे कृत्संज्ञा हो। बाधक परिभाषा सूत्र (७६१) असरूपः = धातुके अधिकारमें असमानरूपवाले अपवाद = बाधक (प्रत्यय) उत्सर्ग = व्यापक सूत्रके (प्रत्ययका) बाधक विकल्पसे हों। स्त्र्यधि-कारोक्तं ~ स्त्रियांके अधिकारमें कहे गये प्रत्ययोंके बिना = छोड़कर। इसी कारण सामान्य सूत्र, तव्यत् तव्य अनीयर सूत्रको बाधकर यत्, ण्यत् आदिके असरुप अप-वादप्रत्यय, होनेसे विकल्प हुआ। हार्यं हर्तव्यं हरणीयम् भी होते हैं। गम्यं गन्तव्यं गमनीयं मार्गम्। जहाँ समानरुपवाला प्रत्यय अपवाद बने वहाँ विकल्प नियम नहीं लगता। अण्–क–श–ड आदि प्रत्यय होनेपर 'अ' के शेष रहनेसे समानरूप प्रत्यय हो गये। वहाँ अण्का बाधक नित्य होंगे।

(७८४) धातो = धातुसे ण्वुल् और तृच् प्रत्यय कर्ता अर्थमें हो। (कर्तरि-कृत्) सूत्रसे सभी कृत्प्रत्यय कर्ता अर्थमें होते हैं। क्रियावाची धातु प्रसिद्ध है। सारा जगत क्रियामें है या क्रियारूप है। वही प्रकृति है। फल पैदा करती है। उसके लिए पुरुष अपेक्षित है 'प्रत्ययः' पुलिङ्ग होनेसे पुरुष है। वीजरुप है। 'स्वां प्रकृति-मधिष्ठाय' क्षेत्रमें उप्त है। क्षेत्र प्रकृतिभूत धातुवाच्य क्रिया है। दोनोंके योगसे काल क्रिया कारक फलवान् है।

(७८५) यु वु इनके स्थानमें अन् अक् आदेश क्रमश हों। करोति इति कारकः। कृधातुका वह क्रिया अर्थ है जो किसी न किसी फल को पैदा करे। फल जनक क्रियावाचक कृधातोः ण्वुलतृचौ इति सूत्रेण ण्वुल् (वु) प्रत्यये (कर्तरि अर्थे) प्रकृतिः कृ (फल जननी क्रिया) प्रत्यय वु (जो क्रियामें स्वतन्त्र हो) कर्ता अर्थ युवोरनाकौ इति वुस्थाने अक् आदेशे। णित् परे 'अचोञ्णिति' इतिवृद्धिः। कार्यं-कर्ता-अर्थसे अर्थवान् कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञा प्रथमायाः एकवचने रूपम्। उत्पत्तिफल-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कारकः । कर्ता । ६ नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३ । १ । १३४ । नन्द्यादेर्ल्युः; ग्रह्यादेर्णिनिः; पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः । लवणः । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । पचादिराकृतिगणः । ७ इगुपध-ज्ञा-प्री-किरः कः ३ । १ । १३५ । एभ्यः कः स्यात् ।

जनकव्यापाराश्रयः । कार्यं करनेवाला । कारिका स्त्रियाम् । कारकं नपुंसके । कर्ता=कृधातोः कर्तरि अर्थे तृच्, तस्य आर्ध० संज्ञा, गुणे, कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञा सु इत्यादिकार्ये । कर्ता (पुलिङ्गे) कर्त्री, स्त्रियाम् । कर्तृ क्लीबे । एवं पचतीति पाचकः, पक्ता,, पाचकम् । पाठकः पाठिका पठिता इत्यादि सभी धातुओंसे कर्ता अर्थमें प्रत्यय होंगे (६) नन्द्यादेः=नन्दि आदि धातुओंसे ल्यू=यु प्रत्यय । ग्रह्यादेः =ग्रह आदि गणपठित धातुओंसे णिनि=इन् । पच् आदि धातुओंसे अच्प्रत्यय, कर्ता अर्थमें हो । अनुबन्धलोपे नन्दयतीति नन्दनः । सम्वृद्धयर्थक आनन्दवर्धक, ण्यन्त नन्दि धातुसे पूर्वसूत्रको बाधकर 'नन्दिग्रहि' इत्यादि सूत्रेण ल्यु (यु) तस्य स्थाने युवोरनाकौ इति अन आदेशे । णिलोपे कृदन्तत्वात् स्वादिकार्ये । नन्दनः । आनन्ददानकर्ता । सम्वृद्धिके अनुकूलक्रियावाला । जनान् अर्दयतीति जनार्दनः अर्दगतौ याचने, जनताको सन्मार्गपर ले चलनेवाले मुक्तिदायक भगवान् विष्णुः जनपूर्वक अर्दि (ण्यन्त) धातोः । कर्तरि ल्यु=यु तस्य स्थाने अन आदेशे स्वादिकार्ये आर्तजनको ज्ञान तथा सुखदाता । लवणः लूञ् छेदने लू धातोः नन्द्यादिगणे पाठात् ल्यु (अन) निपातनाण्णत्वम् । कृदन्तत्वात् प्रा० सं० स्वादिकार्ये छेदनक्रियाकर्ता । अथवा नमक गलानेमें कुशल होनेसे लवणः छेदनक्रिया वाचक लूधातु उसका आश्रय लवणः । गृह्णाति स्वीकरोति इति ग्राही । ग्रहणके अनुकूल क्रिया (का आश्रय) (वाला) उपादान=स्वीकारजनक व्यापार वाचक ग्रहधातोः कर्तरि णिनि (इन्) प्रत्यये णित् परे उपाधायाः अकारस्य वृद्धिः ग्राहिन् । कृदन्तत्वात् प्रा० सं० स्वादि कार्ये । ग्राही, ग्राहिणौ, ग्राहिणः । ग्राहिणा ग्राहिभ्यामित्यादि । ष्ठा गतिनिवृत्तौ । तिष्ठतीति स्थायी (ठहरनेवाला) निवृत्तिः अवरोध, अर्थवाचक स्थाधातोः कर्तरि णिन्=इन् । स्था इन् । णित्परे आतोयुक (य) स्थायिन् कृदन्तत्वात् प्रा० सं० स्वादिः । मन्त्री मत्रि गुप्तपरिभाषणे, गोपनीय विचार मन्त्रणा, सलाह गुप्त परिभाषण वाचक चुरादि मन्त्रधातोः कर्तरिणिन् मन्त्रिन् स्वादिः । नान्तोपधायाः दीर्घे मन्त्रयते =गुप्तं भाषते इति मन्त्री, परामर्शदाता, सचिव, विचारदाता । पचादि सभीधातु आकृतिगण माने जाते हैं । प्रकृति (धातु) से अकार मात्रप्रत्यय देखनेसे पचादिगण अन्दाज ले । यथा—पचतीति पचः । पाकार्थपचधातोः नन्दिग्रहिसूत्रेण अच् (अ) स्वादिः । पाककर्ता भोजन पकानेवाला । नदति ध्वनति नदः अव्यक्त आवाजकर्ता । चोरयति इति चोरः चुरानेवाला । कर्तामें अच्प्रत्यय दर्शनसे आकृति गण हो गये (७) इगुपध=इकार हो उपधामें जिसधातुके और ज्ञा प्री कृधातुओंसे 'क'

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः। ८ आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६। प्रज्ञः। सुग्लः। ९ गेहे कः ७।१।१४४। गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

७९० कर्मण्यण् ३।२।१ कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। १ आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३। आदन्ताद्धातोर-

---

(अ) प्रत्यय हो। 'क' इत् होने से गुण वृद्धिका निषेध। बुध्यते ज्ञानं करोति बुधः (बोध करानेवाला) पण्डितः अवगमनार्थक, ज्ञानलाभके अनुकूल क्रिया वाचक बुधधातोः (उपधामें इक् होने से) क (अ) प्रत्यये, कृदन्तत्वात् प्रा० सं० प्रथमायाः एकवचने बुधः ज्ञानाश्रयः जाननेवाला। जानीते जानातीति ज्ञः अवबोधनार्थक ज्ञाधातोः ज्ञानजनक क्रियाश्रये अर्थे कः (अ) आतोलोप इट्च इति ज्ञा घटक-आकारस्य लोपे कृश्यति तनूकरोति, क्षीणी-भवति कृशः (दुर्बलः बलहीनः)। कप्रत्यये गुणनिषेधे। तर्पण अर्थे प्रीङ धातुः। प्रीणाति पितरं तृप्तिं गमयति, प्रियः। तृप्तिके अनुकूल क्रियाश्रयः प्री-'क' इयङ् प्रियः। तृप्त करनेवाला। किरति, विक्षेपं करोतीति किरः। विक्षेपार्थक कृधातो 'क' (अ) ऋत् इद्धातोः इर् आदेशे किरः; विखेरनेवाला (८) उपसर्गे=उपसर्गसहित आतः=आकारान्त धातुसे कप्रत्यय हो। प्रकर्षेण प्रतिभया जानाति अवबुध्यते इति प्रज्ञ विद्वान्। प्रतिभाशाली, प्रपूर्वक ज्ञा धातोः आतश्चोपसर्गे इति सूत्रेण कर्ता अर्थे (क) प्रत्यये ज्ञामें 'आ' लोपे। टाप् प्रज्ञा। प्रातिपदिकादिकार्ये। सुष्टु ग्लायति इति सुग्लः हर्षक्षयाश्रयः क्रियाका स्वतन्त्र आश्रय। उचित ग्लानि या बहुत ग्लानि करनेवाला। सुपूर्वक हर्ष-क्षयार्थक ग्लै ओदच् उपदेशे इति ऐकारस्य आत्वे। ततः कप्रत्यये, आकारस्य लोपे स्वादिसम्बन्धिकार्ये ग्लानिकर्ता (गरैगलानि कुटिल कैकेयी)। (९) (गृह कर्ता हो) तब ग्रहधातुसे कर्ताअर्थमें क प्रत्यय हो। ग्रह उपादाने (गृहणाति धान्यादि-कमिति) विग्रहे अन्नादिग्रहणार्थक ग्रहधातोः कप्रत्यये। कित्परे ग्रहिज्या इति सम्प्रसारणे नपुंसकलिङ्गनिमित्तककार्ये गृहम् (भवनम्) गृहाः पुंसि भूम्नि एव (काकवन्तो देवदत्तस्य गृहाः) अर्धर्चादिगणे पाठेन उभयलिङ्गकः। पुल्लिङ्गे बहुवचनमेव।

(७९०) कर्मणि=कर्मवाचकपद, उपपद=पूर्वमें हो, तब धातुसे कर्म अर्थ बोधक अण्प्रत्यय हो, यथा—कुम्भं करोति। (घड़ा बनानेवाला) कुम्भकारः, कुलालः, (कुम्हार)। कुम्भकर्म है उसके उपपद (पूर्व) में रहते उपपदमतिङ् सूत्रेण समासे। समासका अवयव सुप्का लुक् हुआ। कर्मणि उपपदे कर्तरि अण् कुम्भ कृ अ 'अचोञ्णिति' वृद्धिः कुम्भकर्मकोत्पत्त्याश्रयः (१) आतः=अनुपसर्गे उपसर्ग रहित आदन्त धातुसे कर्मअर्थवाचक पद पूर्वमें रहे तब धातुसे कप्रत्यय हो। अणोऽ-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः। आतो लोपः। गोदः। धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्—गोसंदायः। (मूलविभुजादिभ्यः कः) मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः। २ चरेष्टः ३।२।१६। अधिकरणे। उपपदे। कुरुचरः। ३ भिक्षा-सेनाऽऽदायेषु च ३।२ १७। भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्। आदायचरः। ४ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०। एषु द्योत्येषु

पवादः अण्को बाधकर। (आ) का लोप। गोदः गां ददाति गोकर्मकदानाश्रयो यजमानः दानार्थक उपसर्गरहित, आकारान्तश्च (कर्म गाम्) उपपदे दाधातुसे अण्को बाधकर कप्रत्यय। उपपदमतिङ् इति समासे, विभक्तिलुक्। आकारलोपे स्वादिः धनं ददातीति धनदः धनदेनेवाले कुबेरः। कम्बलदः। कम्बलदान क्रियाकर्ता विद्यादः वृत्तिदः वेतनदः सभी उपसर्गरहित आकारान्त धातुसे कर्म उपपद रहते क प्रत्यय होकर गोदः की तरह सिद्ध होंगे। अनुपसर्गग्रहण सूत्रमें क्यों किया ? इस लिए कि, उपसर्गसहित दाधातुसे क प्रत्यय न हो। यथा—गो सन्ददाति गोसन्दायः। अच्छी तरह गोदान करनेवाला। गो अम् दा अत्र (क) प्रत्यय न होकर अण् हुआ। आतो युक्=य आगमे, उपपद समासे कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञादिकार्ये। (वा)। मूल विभुजआदिगण के लिए क प्रत्यय हो अत्र तादर्थ्ये चतुर्थी (तस्मै मूल विभूजादि गणाय अर्थः तदर्थः तस्य भावः) उनकी सिद्धिके लिए क प्रत्यय हो। मूलानि विभुजति मूलाविभुजा जड़को उखाड़नेवाला (मूल) कर्म उपपद रहते अण्को बाधकर वार्तिकसे क प्रत्यय हुआ। समासे, सुपोलुक्, कृदन्तत्वात्स्वादिकार्यें। मूलविभूजादि गणके आकृतिगण होनेसे, महीं धरती इति महीध्रः कुं पृथ्वी धरतीति कुध्रः। धृधातोः कः (अ) गुणनिषेधे, ऋकारस्थाने यण् (पृथिवी धारण करने-वाला) पहाड़, जिनके भारीपनसे पृथ्वी अचला हो गयी हैं।

(२) अधिकरणपद उपपद=पूर्वमें हो गति-भक्षणार्थक चर्धातुसे ट प्रत्यय हो। ट इत्। तस्य फलं टिड्ढाणञ् इति ङीप्। कुरुषु चरति गच्छति। कुरुषुचर इति दशायां चरेष्टः (अ) समासे, सुपोलुक्, कृदन्तत्वात् स्वादिकार्यें कुरुचरः पुरुषः। कुरुचरी कुरुदेशमें विचरने या घास चरनेवाली। गतिभक्षण दो अर्थ चर्धातुके हैं। (३) भिक्षा सेना आदाय, इनके उपपद रहते ट प्रत्यय हो। भिक्षां चरति खादति इति भिक्षाचरः। कर्म होनेपर चरका भक्षण अर्थ उचित है। सेनायां चरति विचरति सेनाचरः। आदाय चरति आदायचरः। आदाय ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द है जहाँ क्त्वाको ल्यप्, लेकर चलनेवाला। (४) हेतु=कारण, ताच्छील्यं=तस्य शीलं सुन्दरं स्वभावः तच्छीलं तदेव ताच्छील्यम् सत्स्वभाव और अनुलोमा (अनुकूलः) तस्य भावः आनुलोम्यम्=अनुकूलता अर्थ द्योत्य, व्यंग्य,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

करोतेष्टः स्यात् ।

७९५ अतःकृ-कमि-कंस-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीष्वनव्ययस्य ८ । ३ । ४६ । आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । ६ एजेः खश् ३ । २ । २८ । ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् । ७ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् वचनकरः । ६ । ३ । ६७ । अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य । शित्वा-

---

प्रकाशित होना हो, तब धातुसे ट हो । टित् 'अ' ।

(७९५) अतः=अकारसेपरे अनव्ययस्य अव्ययके विसर्गको छोड़कर, सभी विसर्गके स्थानमें नित्य 'स' आदेश हो, समासे = समासहोनेपर, कृ, कमि (धातुः) कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा, कर्णीशब्द परे रहते । ये समासशक्तिका परिचायक हैं । यशः करोतीति यशस्करी (विद्या ही यश बढ़ानेका कारण है) यशः करोति इति लौकिक विग्रहे, यशस्+आम् कृ इति अलौकिक विग्रहे, 'कृञो हेतु' आदि सूत्रेण हेतु (कारण) अर्थका प्रकाशक ट = अ हुआ । उपपदसमासे सुपोलुक्, आदिकाय, स० नि० ऋकारस्यगुणे 'टिड्ढाणञ ङीप् यशस्करी यश बढ़ानेवाली 'विद्या' कला कविता प्रवचन आदि । यशः के विसर्गको अतः 'कृकमि' आदि सूत्रसे स् हुआ, जिह्वामूलीयको बाँधकर । श्राद्धकरः श्रद्धया दीयते श्राद्धः । तं कर्तुं शीलं (स्वाभावो) यस्य । श्राद्ध करना जिसका शील नैसर्गिक हो । यहाँ ताच्छील्य अर्थका प्रकाशक ट=अ हुआ । श्राद्ध 'अम् कृ' अ । उपपदसमासे सुपोलुक्, ऋकारस्य गुणे स्वादि-सम्बन्धिकार्ये । श्राद्धकर सज्जनः । वचनकरः आज्ञाकारी आनुकूल्य=अनुकूलता का उदारहण—वचनंकरोति । आज्ञां पालयति, अनुकूलं करोति अनुकूलकरः अनुशासन माननेवाला । वचन+अम्+कृ इति अलौकिक विग्रहे अनुकूलता अर्थ व्यञ्जक 'ट' प्रत्यये । उपपदसमासादिकार्यें गुणे एकवचने स्वादिः । (६) ण्यन्त एज् (कम्पनार्थक धातुसे खश् (अ) प्रत्यय हो । खश् इत् । कर्ता (कम्पन क्रिया वाला) अर्थमें खश् प्रत्यय हो ।

(७) अरुषः = रहस्य द्विषत् – दुश्मन और अजन्त शब्दोंसे मुम् (म) आगम हो, खिदन्त (ख इत् अन्ते यस्य) ऐसा प्रत्यय परे हो । अनव्ययस्य=अव्ययको मुम्' न हो । शित्वात्=खश्के शित् होनेसे शप् आदि भी होते हैं । सार्वधातुक संज्ञा भी । जनान् एजयति (लोकान् कम्पयति) (एजृकम्पने) इति जनमेजयः (परीक्षितको सर्पदंश होनेपर उनका पुत्र विश्व कंपा-देनेवाला सर्पयज्ञ किया था) जन्+शस्+एजि इति अलौकिक विग्रहे एजेः खश् । कम्पनक्रियाश्रयः कर्ता तदर्थे खश् अनुलन्धलोपे शित्सार्वधातुकं, शप्, आदि कार्ये । शप्खशोः अकारयोः अतोगुणे इति पररूपे, इकारस्य गुणे अयादेशे । उपपदसमासे, सुपोलुक् खिदन्त

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

च्छबादिः। जनमेजयतीति जनमेजयः। ८ प्रियवशे वदः खच् ३।२।३८। प्रियंवदः। वशंवदः। ९ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५। मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः। ८०० नेड् वशि कृति ७।२।८।

वशादेः कृतः इण्न स्यात्। शॄ हिंसायाम्। सुशर्मा। प्रातरित्वा। १ विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१। अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात्। विजायत इति विजावा। ओणृ अपनयने। अवावा। विच्। रुष् रिष्

एजय' परे अजन्तजनशब्दस्य मुम् (म) आगमे, स्वादिकार्येरूपम्। (८) प्रिय और वश कर्म होकर उपपद=पूर्वपद हों। तब वद्धातुसे खच् प्रत्यय हो। खच् इत् (अ) शेष। खित्फलं (मुम्)। प्रियं वदति (मधुरं ब्रतीति, प्रियस्पष्टवक्ता, वद व्यक्तायां वाचि, स्पष्ट उच्चारण) इत्यर्थे प्रिय+अम् वद् इति अलौकिक विग्रहे पूर्वसूत्रेण खच् प्रत्यये, अनुबन्धलोपे, उपपदसमासे, सुपोलुक् (सुपोधातु प्रादिपदिकयोः)। खित्परे अजन्तस्य प्रियशब्दस्य मुम् (म) अनुस्वारे। कृदन्तत्वात् विभक्तिकार्ये। वशम्वदः। वशे वदति। (मैं वशमें हूँ अधीन हूँ ऐसा जो बोले) वश्-वद्-खच् आदि पूर्ववत्। (९) अन्येभ्योऽपि—मनिन् क्वनिप् वनिप् और विच् ये प्रत्यय धातुसे हों। आकारान्त धातुसे होते ही हैं। अन्य धातुओंसे भी हो। विच् का सम्पूर्ण लोप। अन्यका आंशिक लोप। पित् नित्का अन्तर भी है।

(८००) न, इट्, वशि। वशादिः वश्=वरल, ञमङणन, जबगडद ये अक्षर आदिमें हों तब कृत्प्रत्ययपरे इट् न हो। शृधातुका हिंसा=परपीडाके अनुकूल क्रिया अर्थः। सुष्ठु सुन्दरं शृणाति हिनस्ति इति सुशर्मा (कमालका हिंसक) सुपूर्वक शृधातुसे (अन्येभ्योऽपि दृश्यते) इति सूत्रेण मनिन् (मन्) प्रत्यये आर्ध— संज्ञायाम् ऋकारस्य अर् गुणे 'वलादि' इट्प्राप्ते 'नेड्वसि कृति' इति निषेधे सुशर्मन् कृदन्तत्वात्स्वादिकार्ये, सुशर्मा। सुशर्माणौ, सुशर्माणः। सुशर्मणा सुशर्मभ्यामित्यादि। प्रातः एति गच्छति (सवेरे जावाला) प्रातर्पूर्वक इण् धातोः अन्योभ्योऽपि, क्वनिप् खन्प्रत्यये कर्तरि अर्थे। तुक् (त) आगमे प्रातरित्वन्-शब्दात् स्वादिकार्ये प्रातरित्वा। यज्वन् शब्दवत् रुपाणि प्रातर्गामी। इण्गतौधातुः।

(१) विट् और वन् प्रत्ययपरे अनुनासिक वर्णको आकार हो। विट् प्रत्ययः वेदे मिलति। विच् लोके। विजायते अनेकरूपेण प्रादुर्भवति (जनीप्रादुर्भावे) विपूर्वक जन्धातोः अनेकरूपधारणमर्थः तस्मात् अन्योभ्योपि दृश्यन्ते इति कर्तरि वनिप्प्रत्यये अनुबन्धलोपे (विट्वनोः) आदि सूत्रेण वन्परे जन् नकारस्य आकारे, सवर्णदीर्घे, विजावन् कृदन्तत्वात् साधुत्वकार्ये। विजावा। विजावानौ विजावानः। राजा इव रुपाणि। ओणति पापं दूरीकरोति (ओणृ अपनयने=दूरी करणे) या सा अवावा ब्राह्मणी। पापसे हटानेवाली अपनयनार्थक ओण्धातोः वनिप्. ओण्वन्.

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हिंसायाम्। रोट्, रेट्, सुगण्। २ क्विप् च ३। २। ७६। अयमपि दृश्यते। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्। ३ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८। अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी। ४ मनः ३। २। ८२। सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी।

(विड्वनोः) इति णकारस्य आत्वे, ओ आ वन्। ओस्थाने अवादेशे, अवावन् सु। नान्त—उपधायाः दीर्घे, सुनकारयोः लोपे। अवावा अवावानौ अवावानः। अवावना, अवावभ्याम् यज्वन् इव रूपाणि। विच्प्रत्ययका उदाहरण रोट् रेट हिंसाजनक व्यापारवाचकरुष्, रिष् धातोः विच्, सर्वापहारलोपे, लघूपधगुणे प्रथमायाः एकवचने, षकारस्य जश्त्वेन डः चर्त्वंविकल्पे। सुष्ठु गणयति सुगण् (सुन्दरगणना करनेवाला, शोभनगणनानुकूल व्यापाराश्रयः। विच् इत्यादिकार्ये।

(२) अयमपि = क्विप् प्रत्ययभी धातुसे कर्ता अर्थमेंदेखा जाता है। इसका भी सर्वापहारलोप। कित्का फल (गुणवृद्धि) निषेध। तुक्, नकारलोप आदिभी फल है उखायाः पात्रात् (हाँडीसे) स्रंसते (उबलकर गिरनेवाला) उखास्रत् उफान। स्रंसु, भ्रंसु, ध्वंसु, धातुका अवस्रंसनं (स्खलनजनकक्रिया अर्थः) (वटुली दूध अर्थमें पञ्चम्यन्त 'उखा-ङस्', स्रंस् धातोः क्विप् प्रत्यये, सर्वापहरलोपे, क्विप्परे अनिदितामिति नलोपे, उपपदसमासे, ङसोलुक् उखास्रंस् कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा प्रथमैकवचने सु वसुस्रंसु—आदि सूत्रेण सकारस्य दकारे, अवसाने चर्त्वंविकल्पे। उखास्रंसौ उखास्रंसः। पर्णात् (पत्तोंसे) ध्वंसते (गिरनेवालाकीड़ा) या पान, पर्णङस् ध्वंस् क्विप् आदि पूर्ववत् पर्णध्वत्। वाहात् भ्रंसते (घोड़ेसे गिरनेवाला पूर्ववत्) क्विप् अनुनासिकलोप व्रश्चभ्रस्ज इतिषत्वे, जश्त्वे, चर्त्वे विकल्पे वाहभ्रट् वाहभ्रसौ।

(३) अजातौ = जातिवाचक अर्थसे भिन्न सुबन्तपदपूर्वमें हो तब धातुसे कर्ता अर्थमें णिनि = इन् प्रत्यय हो ताच्छील्ये = स्वभाव, आदत अर्थमें खुले तो। उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः (उसका स्वभावः) गर्म भोजन करनेकी आदतवाला इति उष्णभोजी उष्णं सुबन्त है। जातिवाचकभिन्न गुणवाचक है। भुज्धातोः तस्य शीलं स्वभाव, तस्मिन् अर्थे कर्तरि उक्तसूत्रेण णिनिः (इन्) समासे सुपोलुक्. लघूपधगुणे। उष्णभोजिन् कृदन्तत्वात् प्रा० स० स्वादिः। उपधादीर्घे, नकारादिलोप। भोजिनौ भोजिनः। (४) सुबन्त पूर्वपद हो तब मन्धातुसे कर्ता अर्थमें णिनि प्रत्यय हो आत्मानं दर्शनीयं मन्यते जानाति (मनज्ञाने) अपनेको सुन्दर (दर्शनीय) समझनेवाला दर्शनीय + अम् + मन् धातोः कर्तरि अर्थे णिनिः = इन् उपपदसमासे सुपोलुक् जहाँ जहाँ समास हो वहाँ-वहाँ सुपो धातुप्रातिपदिकयो से सुप्का लुक् होता है। उपधा—अकारस्य वृद्धि प्रथमायाः एकवचन सु उपधादीर्घः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८०५ आत्ममाने खश्च ३ । २ । ८३ । स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात् । चाण्णिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः । पण्डितमानी । ६ खित्यनव्ययस्य ६ । ३ । ६६ । खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः नत्वव्ययस्य । ततो मुम् । कालिमन्या । ७ करणे यजः ३ । २ । ८५ । करणे उपपदे भूतार्थयजेर्णिनिः कर्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी । ८ दृशेः क्वनिप् ३ । २ । ९४ । कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान्

---

(८०५) आत्ममाने =स्वकर्मके । स्वयं (अपनेको) मानने अर्थमें वर्तमान मन्धातुसे सुबन्तपूर्वपद रहते खश् हो णिनि भी । मनधातुका कर्ता स्वयं मानता हो स्वयं कर्म भी हो, तभी खश् । शित्का फल सार्वधातुकसंज्ञा और श्यन् । शित् फल अरुर्द्विषजन्तस्य मुम् । आत्मानं पंडितं मन्यते । अपनेको अपनेआप पंडित मानते हैं । मन्धातुका कर्ता (व्यापाराश्रयः) अपनेको पंडित मानना, यही स्वकर्मक मनन है । पंडित + अम् मन् धातोः आत्ममाने खश् (अ) समासे, सुपोलुक्, शित्सार्वधातुकसंज्ञा श्यन्, अनुबन्धलोपे, मुम् आगमे, अनुस्वारे, स्वादिकार्ये पंडितमन्यः । स्वकर्मक पंडितमननाश्रयः । पण्डितमानी खश् अभावपक्षे णिनि उपधावृद्धिः इति विशेषः । नलोपः । (६) खिदन्ते = ख इत् अन्तमें हो, ऐसे प्रत्यय परे पूर्वपदको ह्रस्व हो, अनव्ययस्य = अव्यय न हो तो । कालिमन्या । आत्मानं कालीं मन्यते अपनेको कालीमाई माननेवाली स्त्री । कालीं इस सुबन्तके उपपद रहते स्वकर्मकमनन् ज्ञानानुकूलक्रिया अर्थमें खश् (अ) प्रत्ययः । उपपदसमासे, सुपोलुक् शइत्काफल सार्वधातुकसंज्ञा, श्यन् । खित्का फल कालीके ईकारको ह्रस्व । खित्यनव्ययस्य स्त्रीत्व विवक्षामें टाप् कालिमन्या (कन्या) ततः स्वादिसम्बन्धिकार्ये ।

(७) करण = साधन पूर्वपद रहे भूतार्थवृत्तेः = भूत (समाप्तिक्रिया) अर्थ वाचकधातु (यज)-से णिनिप्रत्यय हो कर्ता अर्थमें, भूतकालमें । कर्ता अर्थमें ही णिनि प्रत्यय । यथा—सोमेन (सोमनामक साधनसे लतासे) इष्टवान् (यज्ञकर चुका हो) भूतकाले अर्थे, क्तवतु । सोमयाजी = यज्ञ क्रियामें सोमसाधन (करण) है । उसके पूर्वपद रहते सोम यज । भूतकाले अर्थे कर्तरि णिनि (इन्) समासे, सुपो लोपे, णित्परे अत, उपधायाः वृद्धिः सोमयाजिन्-प्रथमायाः एकवचने नान्तस्य उपधादीर्घे सुलोपादिकार्ये । अग्निष्टोमयाजी अग्निष्टोमेन (अग्निष्टोमनामक साधनसे) इष्टवान् (यज्ञकर चुका हो) करणसाधन उपपद रहते भूतकाले = समाप्तक्रियायां कर्तरि णिनिः अन्यकार्यं पूर्ववत् ।

(८) दृशेः क्वनिप् । कर्मपूर्वपद रहे, भूतकालमें वर्तमान दृशधातुसे कर्ताअर्थमें क्वनिप्प्रत्यय हो यथा—पारं = (पूर्ण, परतटम्, अन्तिमस्थितितक) दृष्टवान्,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पारदृश्वा । ९ राजनि युधि कृञः ३ । २ । ९५ । क्वनिप् स्यात् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । राजकृत्वा ।

८१० सहे च ३ । २ । ९६ । कर्मणीति निवृत्तम् सह । योधितवान् = सहयुध्वा । सहकृत्वा । १ सप्तम्यां जनेर्डः ३ । २ । ९७ । २ तत्पुरुषे कृति

(दर्शन किया) इति पारदृश्वा (गृद्धः)। पार+अम् यह कर्म पूर्वमें होनेसे भूतकालिक दर्शनक्रिया—अर्थवाचक दृश्धातुसे कर्ता अर्थमें क्वनिप् (वन्) हुआ। उपपदसमासे सुलोपे पारदृश्वन् इति प्रथमायाः एकवचने उपधादीर्घे नलोपादिकार्ये। सम्पाती समुद्रपार सीताजूको देखा। (९) राजन् कर्म उपपद हो तब युध् और कृञ् धातुसे कर्ता अर्थसे क्वनिप् (वन्) हो। युध-धातु अन्तर्भावित=भीतरप्रविष्ट ण्यर्थ=प्रेरणार्थक है। युधका, सम्प्रहार, कड़ीभार, व्यर्थ होनेपर प्रेरणाकरना लड़वाना अर्थः। राजयुध्वा (मन्त्री, शत्रुः) राजन् अम्, यहकर्म पूर्वपद रहते भूतकालिक कर्ता अर्थमें युधसे क्वनिप्=वन्, समासे, सुलोपनलोपौ, राजयुध्वन्, नान्तस्य प्रा० संज्ञा आदिकार्ये। जो राजाको भी युद्धकरवा चुका हो। राजानं कृतवान् जो राजा बना चुका हो, वह राजकृत्वा मुनिः। राजन् अम् कर्मक कृधातोः क्वनिप् (वन्) ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (त) समासादिकार्ये। (८१०) सह शब्द उपपद हो, भीतर प्रविष्ट णिचि अर्थका वाचक युध और कृधातुसे भूतकालिक क्रिया अर्थमें क्वनिप् (वन्) हो। कर्मणि=कर्म अर्थ का उपपद रहना, निवृत्त हो गया। अनुवृत्तनहीं होगा। सह=साथमें योधितवान्—युद्ध करवाया हो, वह सहयुध्वा। शकुनी है। साथ (युगपत्) अर्थमें सह शब्दके उपपद रहते युद्ध प्रेरणा अर्थवाचक युधसे क्वनिप्। सहयुध्वन् स्वादि सम्बन्धिकार्यें। सहकृतवान् =साथमें जोकर चुका हो। सहकृ, 'वन्' तुक्, सहकृत्वन् प्रा० आदिकार्ये क्वनिप् वनिप्प्रत्ययान्त शब्दोंको यज्वन्के समानरूप स्त्रीलिङ्ग बोधकप्रत्ययङीप् होनेपर वनोर चसे 'र' का भी विधान। पारदृश्वरी दुर्गा। सहकृत्वरी योषिता संहयुध्वरी इत्यादि। (१) सप्तम्यां=सप्तमी विभक्ति अन्तमें हो ऐसेपदके पूर्वमें रहते प्रादुर्भावार्थक जनधातुसे। ड (अ) हो। डित्काफल टिलोप है। (२) तत्पुरुष समासमें कृति=कृत्प्रत्ययपरे ङे ङिविभक्तिका अलुक्=लोप न हो। बहुलम्=विकल्पसे। बहून् अर्थान् लातीति बहुलम्। अनेक स्थिति (या) यथेच्छ स्थिति होना। धातु या प्रातिपदिकका अवयव सुप्का अलुक हो, इच्छानुसारी लोप है। सरसि=तडागे वाप्यां (तालाबमें) जातं = पैदा हुआ। वह सरसिजं सरोजम् (कमल है) सरसि जन् अत्र सप्तम्यन्तपूर्वपदे प्रादुर्भावार्थक जन्धातोः सप्तम्यां जनेर्डः। डइत् (अ) डित्वसामार्थ्यात् टि (अन्) लोपे, उपपदसमासे विभक्ति लुक्प्राप्ते तस्य (तत्पुरुषे कृतिबहुलमिति) सूत्रेण निषेधे स्वादिसम्बन्धिकार्ये। यदा

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

बहुलम् ६ । ३ । १४ । ङेरलुक् । सरसिजम् । सरोजम् । ३ उपसर्गे च संज्ञायाम् । ३ । २ । ९९ । प्रजा स्यात् सन्ततौ जने । ४ क्त-क्तवतू निष्ठा १ । १ । २६ । एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ।

८१५ निष्ठा ३ । २ । १०२ । भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र (७७०) तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । (७६९) कर्तरि कृदिति कर्तरि

न निषेधः तदा सुपोलुक् सकारस्य रुत्वे, हशि चेति उत्वे, गुणे, अतो नपुंसकलिङ्ग प्रकाशिका प्रथमाविभक्तिः । (३) (यदि) उपसर्गपूर्वपद हो तत्र जनधातुसे ड (अ) प्रत्यय हो, संज्ञा अर्थमें । प्रजा = सन्तान अर्थमें प्रकर्षेण जायन्ते । प्रजन् धातोः संज्ञा अर्थे ड (अ) टि (अन्) लोपे प्रा० संज्ञा स्वादिकार्ये, संज्ञा अर्थमें प्रत्ययका प्रमाण देते हैं कि 'प्रजा स्यात्सन्तौजने' जनशब्द (समाज) अर्थमें प्रसिद्ध है । (४, क्त क्तवतु प्रत्ययोंकी निष्ठासंज्ञा हो ।

(८१५) भूतकाल (समाप्ति क्रिया) अर्थवाचक धातुसे निष्ठासंज्ञकप्रत्यय हो । निष्ठासंज्ञा, भूतकालका स्मरण, वर्तमानभविष्यकालकी निवृत्ति करता है । तत्र=निष्ठासंज्ञक प्रत्ययोंमेंसे क्तप्रत्यय भाव और कर्ममें होता है । तयोरेव=कृति, क्त, खलर्थ यह प्रमाण है । क्तवतु प्रत्यय कर्ता अर्थमें कर्तरिकृत् सूत्र प्रमाण है । क्त (भाव क्रिया) और कर्म = (फलाश्रय) का स्मारक । क्तवतु व्यापाश्रयः कर्ताका । फलतः क्तप्रत्ययसत्वे कर्तरि तृतीया । कर्तरि प्रत्यये प्रथमा । कर्मणि प्रथमा द्वितीया च । यथोचितं ज्ञेयम् । वाक्यभेदभी, कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य इत्यादि समझना चाहिए उकौ इतौ उ–इत् । शेष 'त' अकारान्तः । 'तवत्' हलन्त । ये प्रत्यय आर्धधातुकं शेष से आर्ध. संज्ञक है । क्योंकि तिङ् शित्से भिन्नधातुसे विहित प्रत्ययकी आधधातुक् संज्ञा होती है । वलादिका फल सम्भावित इट्का होना । अहं अस्नासम् (कर्तृवाच्य) मया अस्नायि । मैंने स्नान किया था मुझसे स्नान हुआ इति मया स्नातम् । शुद्धिजनकक्रियावाचकं स्नाधातोः अकर्मकत्वात् भावे तयोरेव कृत्यक्तखलर्था इति । क्तप्रत्यये । तस्य निष्ठासंज्ञा (निष्ठासूत्रेण) भूतकालिक भाव (समाप्तक्रियाः) अर्थवाचकः निष्ठा, स्नात कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञा, भावे नपुंसकम् एकवचनञ्च । प्रातिपदिकार्थ मानकरके प्रथमा हुई) कर्ताके अनुक्त होनेसे तृतीया (मया स्नातम्) मुझसे स्नान हुआ । मया शब्दमें कृत्प्रत्ययके सम्बन्धमें (कर्तृकर्मणोः) कृति सूत्रसे षष्ठी नहीं होगी । क्योंकि न लोकाव्यय निष्ठाखलर्थतृनाम्से निषेध । स्तुतः त्वं विष्णुं अस्तौषीः । त्वया विष्णुः स्तावि । तुमने विष्णुकी स्तुति की । इत्यर्थे त्वया विष्णुः स्तुतः । स्तुति–अर्थवाचक स्तुधातोः कर्मणि निष्ठासंज्ञक क्तप्रत्ये क इत् कित् । तस्य फलं गुणनिषेधः प्रथमाया एक वचने रूपम् । (त्वया) विशेषण देनेसे सकर्मक स्तुधातुसे कर्ममें प्रत्यय सूचित होता है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः। ६ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२। रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्। (६६०) ऋत इत्। रपरः। णत्वम्। शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः। ७ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३। निष्ठातस्य नः स्यात्। द्राणः। ग्लानः। ८ ल्वादिभ्यः ८।२।४४। एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्।

प्रधानकर्ममें प्रथमा अनुक्तकर्तामें तृतीया। विष्णु=व्यापकः विश्वं=संसारं कृतवान्। विष्णुने संसारको बनाया। उत्पत्तिफलजनक व्यापारवाचक कृधातोः कर्तरिअर्थे क्तवतु (तवत्)। कृतवत्। कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञा प्रथमायाः एकवचने सु। उगिदचां सर्वनामस्थाने अधातोः इति सूत्रेण नुम्। कृतव 'न' त्। नान्त-उपधायाः दीर्घे हल्ङ्यादि लोपे, संयोगान्तलोपे च। कर्ता अर्थमें क्तवतु होनेसे कर्ता 'विष्णु' उक्त हुए। उक्ते प्रथमा। विश्वमें (अनुक्तेकर्मणि) द्वितीया (६) रेफ दकारसे परे निष्ठा संज्ञकको 'न' हो। निष्ठासंज्ञक तकारकी अपेक्षा पूर्वमे धातुके द को भी 'न' हो। शॄधातुका हिंसाके अनुकूलक्रिया अर्थः। हिंसार्थक शॄधातो, कर्मणि अर्थे निष्ठासंज्ञक क्त (त) प्रत्यये शॄ त 'ऋत इद्धातोः' सूत्रेण ऋ स्थाने इर् आदेशे। हलिचेति इकारस्य दीर्घे, शीर्त, रदाभ्यामादि सूत्रेण रेफपरस्य तकारस्य नकारे, णत्वे शीर्णः। मृगः। व्याधः मृगं शीर्णवान् इति व्याधेन मृगः शीर्णः। भिन्नः, ग्रन्थः। बालकः ग्रन्थम् अभिनत्। इति बालकेन ग्रन्थः भिन्नः। बालकसे किताब फाड़ी गयी। विदारणार्थक भिद्धातोः कर्मणि अर्थे निष्ठा संज्ञक क्त प्रत्यये 'रदाभ्यांम्' सूत्रेण दकारात्परस्य तकारस्य नकारे दकारस्य च नकारे, भिन्नः। छिन्नः तक्षा (बढ़ाई) वृक्षम् अच्छिदत्, इति तक्ष्णा वृक्षः छिन्नः=(काटागया) द्वैधीकरणार्थक छिद्धातोः कर्मणि निष्ठासंज्ञक 'क्त' प्रत्यये, नत्वादिकार्यं पूर्ववत् (७) संयोगादेः=संयोगसंज्ञकवर्ण आदिमें हो आकारान्त हो, यण्वाली धातुसे परे निष्ठाके तको न हो, 'द्रा' कुत्सायां, गतौ, कुटिलचाल अर्थवचाक द्रा धातोः निष्ठाक्तप्रत्यये, यह संयोगादि अकारान्त है 'र' होनेसे यण्वान् है। संयोगादेः सूत्रेण तकारस्य नकारे, णत्वें शकुनिः अद्रासीत् (कुटिल चालचला)। इति शकुनिना द्राणः। भावे क्तः कैकेयी अग्लासीत् इतितया ग्लानः कैकेयीसे ग्लानि हुई। हर्षक्षयार्थक ग्लैधातोः भावेअर्थे क्त आदेच उपदेशे अशिति। इति ऐ स्थाने आत्वे। अयंधातुः संयोगादिः आकारान्तः, लकारेण यणवानपि। तस्य फलं निष्ठा तस्य नः ग्लानः (८) लूञ्छेदने धातुसे लेकर क्र्यादिगणके एकविंशते=२१ धातुओंसेपरे प्राग्वत्= पहलेकी तरह निष्ठाके तको न हो। लूनः (गोधूमः) कृषकः गोधूमम् अलावीत्। कृषकेन अलावि इति विग्रहे, छेदनार्थक लूधातोः निष्ठा क्त (कर्मणि 'त' प्रत्यये) ल्वादिभ्य सूत्रेण तकारस्य नकारे ... गेहूँकी फसल कृषकसे

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

लूनः। ज्याधातुः। ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। ९ हलः ६।४।२। अङ्गावयवाद्धलः परं यत् सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।

८२० ओदितश्च ८।२।४५। भुजो-भुग्नः। टुओश्वि-उच्छूनः। १ शुषः कः ८।२।५१। निष्ठातस्य कः। शुष्कः। २ पचो वः ८।२।५२। पक्वः। क्षै हर्षक्षये। ३ क्षायो मः ८।२।५३। क्षामः। ४ निष्ठायां सेटि ६।४।५२। णेर्लोपः। भावितः। भावितवान्। दृह-हिंसायाम्।

काटी गयी। जीनः (जीर्णवयस्कः) जुलजुल बुड्ढा। वयोहानार्थक, अवस्था क्षीणार्थक ज्या' धातोः कर्मणि क्त, लू आदिमें पठित होनेसे निष्ठा तस्य नः। ग्रहिज्यावयिव्यधि आदि सूत्रेण यकारस्य सम्प्रसारणे, सम्प्रसारणच्च इति पूर्वरुपे ततः। (९) अङ्गका अवयव हल्सेपरे जो सम्प्रसारण तदन्तको दीर्घ हो। अङ्गका अवयव जिके इ को दीर्घ हुआ। कृदन्तत्वात् स्वादिकार्ये। कालः वृद्धम् अजिनात् इतिकालेन वृद्धः जीनः।

(८२०) ओदितः ओ इत् हो जिस धातुका उससे परे निष्ठा 'त' को न हो। ओकार इत् भुजो आमर्दने, त्रोटनं रौंदना त्रोटनार्थक भुज्धातोः क्तप्रत्यये, ओदितश्च सूत्रेण तकारस्य नकारे (चो कुः) इति जकारस्य गकारे, प्रा० संज्ञा स्वादिकार्ये भुग्नः। टुवोश्वी (गतिवृद्धयोः) गमन् और वृद्धिः या सूजन अर्थवाचक श्वीधातोः उत् उपसर्गकात्। निष्ठाक्तप्रत्यये ओदितश्च इति तकारस्य नकारे। यजादि गणपठितेन वकारस्य सम्प्रसारणे ईकारस्य पूर्वरूपे 'हलः' सूत्रेण दीर्घे श्वीदितो निष्ठायाम् इति निषेधे' स्वादिकार्यें, पादः उच्छूनः=(सूजगया)

(१) शुष धातुसे परे निष्ठा 'त' को 'क' हो शुष्कः ग्रीष्मः नीवारम् अशुषत् इति ग्रीष्मेण नीवारः शुष्कः। (२) पच् धातुसे परे निष्ठा तको व हो। पक्वः (कार्पाशः, मक्कायः) कालः, मक्कायम् अपाक्षीत् इति कालेन पक्वः पाकार्थक पच्धातोः निष्ठा (क्त) त पचो वः इति तस्य वः क्षैधातुका हर्षक्षय प्रसन्नताविनाशक अनुकूलक्रिया अर्थः। कालः पाण्डुं अक्षायत्। समय पाण्डु राजा को क्षीण किया इति कालेन पाण्डुः क्षामः। कृशभवनार्थक क्षी धातोः निष्ठा (क्त) प्रत्यये तस्थाने आदेच उपदेशे अशिति सूत्रेण ऐकारस्य आकारे ततः। (३) क्षै धातुसे परे निष्ठा 'त' को म हो। मकृते। कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञादिकार्यें। (४) सेट = इट् सहित निष्ठासंज्ञक परे हो तब णि का लोप हो। भावितः। पिता पुत्रम् अबोभवत्। पित्रा पुत्रो अभावि, इति विग्रहे भवनानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारवाचक भावि धातोः भावे अर्थे क्त, कर्तरिक्तवतु—तवत् प्रत्ययें वलादि आर्धधातुक इट् आगमे। सेटि,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८२५ दृढः स्थूल-बलयोः ७ । २ । २० । स्थूले बलवति च निपात्यते । ६ दधातेर्हिः ७ । ४ । ४२ । तादौ किति । हितम् । ७ दो दद्घोः ७।४।४६ । घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात् तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः । ८ लिटः कानज्वा ३ । २ । १०६ । ९ क्वसुश्च ३ । २ । १०७ । लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः । तङानावात्मनेपदम् चक्राणः ।

८३० म्वोश्च ८।२।६५ । मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः । जगन्वान् ।

निष्ठा तकारपरे णिलोपे । भाव् इत । स्वादिकार्ये भावितः । कर्तरिप्रत्यये भावितवद् सु । नुम्, नान्तोपधादीर्घे, सुलोपादि कार्ये, भावितवान् । पिता पुत्रको पैदा किया । (८२५) स्थूल और बलवान् अर्थमें दृढ़शब्द निपातनसे सिद्ध हो, सूत्रमें जो पतित (उच्चारित) हो उसे निपातन कहते हैं । दृढः हिंसार्थक दृह धातोः क्तप्रत्यये हकारस्य होढ़ इति ढत्वे झषस्तथोर्धः इति तकारस्य धकारे, ष्टुत्वेन ढ़कारे, ढोढेलोपः इतिलोपे । ये कार्य निपातनसे मान्य हुए । दृढः, बलवांश्च (६) दधातेः=धाधातुको (हि) आदेश हो तकारादिकित् प्रत्ययपरे । हितं (धारणं कृतं, धारणपोषणार्थक धाधातोः निष्ठा क्त, धास्थाने हि आदेशे, नपुंसकलिङ्गे प्रथमायाः एक वचने रुपम् (७) दो-घुसंज्ञक दा धातु को दथ आदेश हो, तकारादिकित् प्रत्ययपरे । त्वम् अदाः=तुमने दिया, इति त्वया दत्तः ग्रामः । दानार्थक दाधातोः कर्मणि अर्थे क्त प्रत्यये 'दो' दद्धो इति सूत्रेण दास्थाने दथ् आदेशे, थकारस्य चर्त्वे प्रा० सं विभक्तिकार्ये दत्तः । अधात् इति धत्तः (उष्णीषः) (८) लिटः=लिट्के स्थानमें कानच् आदेश विकल्पसे हो कच् इत् 'आन' शेष । (९) लिट्के स्थानमें क्वसु आदेश भी विकल्पसे हो कउ इत् (वस्) शेष । तङानौ= तङ प्रत्याहार आनौ=शानच्- कानच्की आत्मनेपदसंज्ञा हो । अतः आत्मनेपदी धातुओंसे वे होंगे । चक्राणस्तिष्ठति (कामकरके बैठा है) अकृत (चकार) इति विग्रहे उत्पत्तिफलजनक कृ धातोः परोक्षकालिक समाप्त क्रियाकाले अर्थे लिट् 'लिटः कानजवा' इति लिट्स्थाने कानच् = 'आन' कृइत्यस्य द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये चकृआन ऋस्थाने यण् णत्वे चक्राण विभक्ति आदिकार्ये, चक्राणः चक्राणौ चक्राणाः तिष्ठन्ति । (८३०) मान्तस्य - मकारान्तधातुके अन्त्यअल्को न आदेश हो, म व परे । जगाम इति जगन्वान् उत्तरदेश संयोगजनकगम् धातोः परोक्ष समाप्त गमन क्रिया अर्थे लिट् । तस्य स्थाने (क्वसुश्च) सूत्रेण क्वसु-वस् द्वित्वे अभ्यासादिकार्ये जगम्वस् म्वोश्च इति मकारस्य नकारे । जगन्वस् इत्यस्य प्रा० सं० उगिदचां इति नुम् सु इत्यस्य हल्ङ्यादिलोपे, सकारस्य संयोगान्त लोपे, सान्त महत् इति दीर्घे । जगन्वान्सौ जगन्वान्सः पुरुषाः, कभी पहुँच गये । शस्विभक्तिमें वशोः सम्प्रसारणं वकारस्य संप्रसारणे गमु हन जन इति उपधा-अकारस्य लोपे जग्मुषः जग्मुषा

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ लटः शतृ-शानचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ । अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः शबादि । पचन्तं चैत्रं पश्य । २ आने मुक् ७ । २ । ८२ । अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे पचमानं चैत्रं

जगन्वद्भ्यां जगन्वद्भिः । वंसु संसु इति हलादिविभक्तिपरे सकारस्य दकारेः अजादिपरे शस् विभक्तिवत् बोध्यम् । जग्मुषि जग्मुषोः जगन्वत्सु ।

(१) **लटः**=लट्स्थाने **शतृशानचौ**=शतृ और शानच्प्रत्यय हो, **अप्रथमासमानाधिकरणे**=प्रथमाविभक्तिसे भिन्न तथा प्रथमाविभक्तिके सदृश द्वितीया, तृतीया, इत्यादिके साथ समाधिकरण=समानविभक्ति बनती हो, तब लट्के स्थानमें शतृ और शानच् हो । विकल्प, श इत् का फल सार्व० संज्ञा, शप् होना । ऋ इत्का फल उगितश्च सूत्रसे ङीप् और नुम् आदि है । 'अत्' शेष, परस्मैपदका संकेत । शानच् = आन-शेष आत्मनेपदका संकेत । इससे स्त्रित्व विवक्षामें टाप् होता हैं । समानविभक्ति प्रथमाका नहीं होना चाहिए, इसलिए **अप्रथमा** कहा । उदाहरणमें द्वितीयान्तदिया । **पचन्तं चैत्रंपश्य** पकारहे चैत्रको देखो पाकजनक पच् धातोः वर्तमानेकाले अर्थे लट् । पचन्तं चैत्रमें प्रथमा भिन्न प्रथमा सदृश् द्वितीयाका **समानाधिकरण** = समानविभक्ति देखकर (लटः शतृशानचौ) आदि सूत्रेण लट् स्थाने शतृ=अत्प्रत्यये, सार्व० संज्ञा, शप् (अ) पच् अ अत् । अतोगुणे इतिपररुपे पचत् ईति प्रा० संज्ञा, नुम् (न) आदि विभक्तिकार्ये द्वितीयायाः एकवचने रुपम् । प्रथमाभिन्न प्रथमासदृश तृतीया समानवचनविभक्तिका उदाहरण— **पचता** चैत्रेण सेटकं मोदकं भुक्तम् । **पचते** चैत्राय फलानि देहि । **पचतः** चैत्रात् अधीतम्, **पचतः** मैत्रस्य प्रवचनम् । **पचति** चैत्रे सर्वे गुणाः दृश्यन्ते । इन उदाहरणों में पक् क्रियाका कारकके साथ समानविभक्ति दृष्ट है । शतृ अभावपक्षे पचति चैत्रं पश्य (मृगो धावति पश्य) । अर्थ वही है, पकारहे चैत्रको देखो । (२) **आने** = अकारान्त अङ्ग को मुक् (म) आगम हो 'आन' परे रहते । उक् इत् । शानच्का उदाहरण **पचमानं** चैत्रं पश्य, (अपने लिए पकारहे चैत्रको देखो) पाकजनकपच् धातोः वर्तमानपाक क्रियाकाले लट् तस्य स्थाने शानच् अनुबन्धलोपे 'आन' शप् । पच + आन अदन्तम् अङ्गमिति ज्ञात्वा आनेमुक् इति मुक् (म) आगमे । पचमान इत्यस्य प्रा० संज्ञा विभक्तिकार्ये । चेत्रं में द्वितीयाका समानाधिकरण पच्में देखकर रुप समझें । यहाँ मुक् अजन्त अङ्ग मानकर होता है । शप् श्यन् श, चुरादिणिचि, आदिलिङ्ग है । यहाँ भी **पचमानेन** चैत्रेण भोक्तव्यं, **पचमानाय** पुरुषाय दक्षिणां देहि । **पचमानात्** चैत्रात् रोटिका भक्तं द्विदलं शाकञ्चानय, **पचमानस्य** चैत्रस्य दुहिता भोक्तुमिच्छति । पचमाने चैत्रे गुणाः सन्ति । लट् = लटः **शतृशानचौ** सूत्रे, वर्तमाने लट् सूत्रात् लट् इति आवर्तितुं

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विजः । ३ विदेः शतुर्वसुः ७ । १ । ३६ । वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विदन् । विद्वान् । ४ तौ सत् ३ । २ । १२७ । तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ।

८३५ ऌटः सद्वा ३ । ३ । १४ । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोःसम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् ।

शंक्यते (आवृत्ति कर सकते थे) पुनः सूत्रमें लटग्रहणात्—लट्के ग्रहणसे यह सूचित है कहीं-कहीं प्रथमा विभक्तिकी समानतामें भी शतृशानच् संभव है । यह क्वचित् शब्दका भाव है । यथा—सन् द्विजः (विद्यमानः ब्राह्मणः) अस्ति इति विग्रहे विद्यमानार्थक अस् धातोः वर्तमाने लट् तस्य स्थाने शतृ=अत श्नसोः अकारलोपे स्+अत् सत् इति प्रा० संज्ञासु, नुम्, सुलोपतलोपौ सन् । यह स्थिति कादाचित्क है सामान्य नहीं । परन्तु यह क्वाचित्क होते हुए भी प्रयोग बहुल भी देखा है । बालकः खादन् मूत्रयति । तिष्ठन् खादति । गच्छन् तृणं स्पृशति । गच्छन् कच्छपः जयति । अगच्छन् शसकः पराजयते । अगच्छन् वैनतेयोपि ।

(३) विदेः=ज्ञानार्थक विद्धातुसे परे शतृके स्थानमें वसु आदेश विकल्पसे हो । ज्ञानार्थक विद्धातोः वर्तमानकालिक कर्तरिअर्थे लट् तत्स्थाने 'शतृ' आदेशे, तस्य स्थाने (विदेः शतुर्वसुः)=वस् आदेशे । विद्वस् इत्यस्य कृदन्तत्वात् प्रा० संज्ञा, उगित्वात् नुम् । सान्तमहत् इति उपधादीर्घे । सुलोपसंयोगान्तलोपौ, विद्वान् । यदा शतृ स्थाने वसु न भवति तदा शतृ=(अत्) नुम् सुलोपे संयोगान्तलोपे । विदन्=ज्ञान ग्रहणकर्ता । विदन्तौ विदन्तः विदन्तम् विदन्तौ विदतः विदता विदद्भ्याम् । (४) तौ=शतृ और शानच्की 'सत्' संज्ञा हो ।

(८३५) ऌट=भविष्यकालवाचक ऌट् लकारके स्थानमें 'सत्' प्रत्यय विकल्पसे हो । व्यवस्थितविभाषा—विगता भाषा विभाषा जो कहीं हो कहीं न हो । यह व्यवस्था है । ऌट्के स्थानमें तेन=इसलिए व्यवस्थित विभाषा होनेसे अप्रथमा= प्रथमाभिन्न प्रथमाके सदृश द्वितीया आदि विभक्तिका समानाधिकरण होनेसे प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते सम्बोधन, लक्षण और हेतु अर्थमें नित्य आदेश (सत् संज्ञक) हों । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य भविष्यमें कार्यकरने वालेको देखो । करणार्थक कृधातोः भविष्यकाले अर्थे कर्तरिऌट् तस्य स्थाने शतृ तथा शानच् आदेशे अनुबन्धलोपे स्य, इट्, षत्वे करिष्यत् प्रा० सं० 'सु' नुम्, आदिकार्ये द्वितीया विभक्तिः करिष्यन्तं करिष्यमाणं । पढ़ते हुए छात्रोंको देखो । बढ़ती हुई सेनाको रोको । प्रत्ययपरे उदा०—करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः । उत्तरपदे=करिष्यद्भक्तिः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य। ६ आ क्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु ३।२।१३४। क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः। ७ तृन् ३।२।१३५। कर्ता कटान्। ८ जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वृङः षाकन्।३।२।१५५। ९ षः प्रत्ययस्य १।३।६। प्रत्ययस्यादि ष इत्संज्ञः स्यात्। जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः, वराकी।

८४० सनाशंस-भिक्ष उः ३।२।१६८। चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

सम्बोधने—हे करिष्यन्, लक्षणे अर्जयिष्यन् वसति। हेतौ भक्षिष्यन् तिष्ठति (६) आक्वेः=क्विप्प्रत्ययपर्यन्त अभिव्याप्य=तक वक्षमाणाः कहे जानेवाले प्रत्यय। तच्छीलादिति=तस्य शीलं स्वभाव आदत, तद्धर्म तस्य धर्म कर्तव्यं) तस्य साधुकारी=सुन्दर कार्यकुशलः अर्थका अधिकार मानकर आजभास सूत्रके क्विप्प्रत्यय पर्यन्त सूत्रोंसे विधान किये गये प्रत्यय यथोचित इन्हीं अर्थोंमें हो (६) धातुसे कर्ताअर्थमें तृन् प्रत्यय हो। कटान् साधु करणं शीलं धर्मम् अस्ति। इति कटान् कर्ता आसनोंका निर्माता। उत्पत्तिजनकक्रियार्थककृधातोः तच्छील, तद्धर्म, साधुकारिणि अर्थे कर्तरि तृन् न लोपे, आर्ध० संज्ञा ऋकारस्य गुणे कर्तृ, प्रा० संज्ञा विभक्तिसम्बन्धि कार्ये। कर्ता। चटाइयोंको बढ़िया बनाना जिनकी आदत हो, कर्तव्य समझें, सुन्दर बनानेकी स्वाभाविक कलावाला। कटान्में कर्म क्यों पढ़ा? कृत्के सम्बन्धमें षष्ठी क्यों नहीं हुई, इसलिए कि, नलोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् इति सूत्रेण निषेधः (८) बहुभाषणार्थक जल्प, भिक्षार्थकभिक्ष, छेदनार्थक कुट्ट; स्तेयार्थकलुण्ठ, सम्भक्त्यर्थकवृङ्। इनधातुओंसे षाकन्प्रत्यय हो तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारीके कर्ता अर्थमें। (९) प्रत्ययके आदिमें षकी इत्संज्ञा हो। जल्पति, बहुभाषते, इति जल्पाकः अथवा अधिक बोलना, जिसका स्वभाव धर्म हो साधुवक्ता हो बहुभाषणाश्रयः व्यक्तभाषणार्थक जल्पधातो बहुभाषणशीले कर्तरि अर्थे षाकन्। षः प्रत्ययस्य इति 'ष' इत् जल्पाकः। वृ+आक गुणे स्वादिकार्ये वराकः। स्त्रीलिङ्ग बोधविवक्षायां षिद्गौरादिभ्यश्च इति ङीष (ई) यस्येतिच अकारलोपे। वराकी। कन्या। भिक्षाकः भिक्षते (भिक्षा मांगना शील, स्वभाव, धर्म, कुशलता आदत अथवा भिक्षा एवं शीलं धर्मों यस्य इति भिक्षाकः। भिखारी। कुट्टति इति स्वभावः कर्तव्यं, निपुणता, अस्य अथवा कुट्टनं शीलम् अस्य कुट्टाकः कूटनेकी आदतवाला। लुण्ठति (परद्रव्याणि हठात् अपहरति) एवं भूतं स्वभावः कर्तव्यं चातुर्यम् अस्य लुण्ठाकः (लुटेरा) वृणुते कन्यां स्वीकरोति वराकः (वर) वरं स्वीकरोति इति वराकी कन्या। (श्रद्धया दानस्वीकर्ता।

(८४०) सन्=सन्नन्तधातु, आशंस, और भिक्षधातुओंसे 'उ' प्रत्यय हो, कर्ता

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-पॄ-जु-ग्रावस्तुवः क्विप् ३ । २ । १७७ । विभ्राट् । भाः । २ राल्लोपः ६ । ४ । २१ । रेफाच्छवोर्ल्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति । धूः । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः । जः । ग्रावस्तुत् ।

अर्थमें । कर्तुम् इच्छति चिकीर्षति इति चिकीर्षुः सन्नन्तचिकीर्ष धातोः सनाशंस-भिक्ष उः । 'अतो लोपः' अकारलोपे विभक्तिसम्बन्धिकार्यं । आशंसुः (पूर्ण (प्रशंसा) आशा करनेवाला) आशंसति, आशस्ते इति विग्रहे आशंस् धातो 'उः' प्रत्यये । प्रथमायाः एकवचने रूपम् । भिक्षुः भिक्षते, याचते अन्नादिकमिति विग्रहे भिक्षधातोः कर्तरि उप्रत्यये । (१) दीप्ति-अर्थे भ्राज् भाष । हिंसार्थेधुर्वी, दीप्तौ द्युत, बल-प्राणनयोः ऊर्ज, पालनपूरणयोः पॄ, गतौ जु, ग्रावस्तुत्, इनसबोंसे क्विप् हो सर्वापहारिलोप भी । विभ्राट्–विशेषेण भ्राजते, द्योतते इति विग्रहे विपूर्वक भ्राजधातोः उक्तसूत्रेण क्विप् तस्य सर्वापहारलोपे विभ्राज् इत्यस्य 'कृतद्धित' सूत्रेण प्रा० संज्ञायां प्रथमायाः एकवचने सु, व्रश्च इति षत्वे जश्त्वे चर्त्वे रूपम् । भाः । भासते दीप्यते प्रकाशते इति विग्रहे भास्धातोः क्विप्, पूर्णलोपे, स्वादिकार्ये ।

(२) सकारस्य रुत्वे वि० स्त्रीलिङ्ग भाः प्रकाश, चमक । रेफसे परे छ और व का लोप हो, क्विप् झलादिकित् ङित् प्रत्ययपरे धूः । धूर्वति, हन्ति इति विग्रहे धुर्व धातोः 'भ्राजभास' इत्यादिना क्विप्, पूर्णलोपे, (राल्लोपः इति सूत्रेण) रेफात्परस्य वकारस्य लोपे । धुर इत्यस्य प्रा० संज्ञा, सुः, तस्य लोपः । र्वोरुपधायाः दीर्घे, रेफस्य विसर्गे । विद्युत् विद्योतते, विशेषेण दीप्यते प्रकाशते इति विग्रहे विपूर्वक द्युतधातोः क्विप् तस्य पूर्णलोपे स्वादिसम्बन्धिकार्ये । बिजली ही विशेष चमकती है । ऊर्क् । ऊर्जति बलवान् भवति । प्राणं दधाति इति विग्रहे बलप्राणधारणार्थक ऊर्ज् से क्विप्, लोप, स्वादिकार्ये, चोः, कुः, चर्त्वे रूपम् । अत्र ककारस्य संयोगान्तलोपो न भवति । रात्सस्य, रेफसे परे स का ही लोप होता है । पिपर्ति पालयति, पूरयति पालन-पोषण (नौकरी, जीविकाके माध्यमसे) करे जहाँ उसे (पूः) ग्राम नगर कहते हैं । पालन पूरणार्थक पॄधातोः क्विप् पूर्णलोपे उदोष्ठ्यपूर्वस्य' इति ऋस्थाने उकारे, रपरे (उर) पुर् इति प्रा० स्वादिकार्ये । दृशि ग्रहणस्य=अन्येभ्योपि दृश्यते इस अग्रिमसूत्रसे दृशिके ग्रहणका अपकर्षण करके, यह सिद्ध किया । विध्यन्तर=एवं अन्य विधियोंका भी संग्रह स्वीकार है । इसलिए जू गतौ + धातुसे क्विप्, दीर्घ भी हों । इसीबातको सूचित करते हैं कि दृशि ग्रहणका अपकर्षात्=खींचकर लानेसे जवतेः—जूधातुको दीर्घभी हो । सौत्र प्रयोग जूः जूधातोः क्विप् इत्यादिकार्ये । ग्रावस्तुत् । ग्रावं पाषाणं स्तौति । पत्थरकी स्तुतिकर्ता । कारूः मूर्तिपूजकः या हृदय हीन व्यक्तिकी खुशामदी ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

(क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च) वक्तीति वाक्। ३ च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।४।१९। सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति। पृच्छतीति-प्राट् आयतं स्तौति-आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जूरुक्तः। श्रयति हरिं-श्रीः। ४ दाम्नी शस-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच-मिह-पत-दश-नहः करणे ३।२।१८२। दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे। दात्यनेन—दात्रम्। नेत्रम्।

ग्रावपूर्वक स्तूधातोः क्विप् पूर्णलोपे ह्रस्वस्य पिति कृतितुक् (त्) ग्रावस्तुत्। स्वादिकार्यें। अन्यविधियोंके संग्रहमें प्रमाण (वा०) है। क्विप्=परिभाषणार्थक वच, प्रवते। गतौ प्रू, प्रच्छि, आयतपूर्वकस्तु, कटपूर्वक प्रु, जू, श्री धातुओंसे क्विप् दीर्घ, सम्प्रसारणका अभाव,। ये तीनकार्य हो। वक्ति इति। वाच् वाणी (सरस्वती) जो बोले परिभाषणार्थक (सर्वतोमुखीवक्ता) वचधातोः क्विप् उक्त-वार्तिकेन, दीर्घे, स्वादिकार्यें चोः कुत्व।

(३) सतुक्कस्य, तुक्सहित छ, व को क्रमसे श, ऊठ् आदेश हो अनुनासिक क्विप् और झलादि किति ङिति परे। पृच्छति। (प्रश्नकरने वाला) प्रच्छधातोः वार्तिकेन कर्तरि क्विप् दीर्घे, सम्प्रसारणनिषेधे प्राच्छ-अनुबन्धलोपे छस्थाने 'च्छोः' इति 'श' आदेशे प्राश्। व्रश्चेति शस्थाने षः, तस्य जश्त्वेन दकारः चर्त्वेन तकारः प्रथमायाः एकवचने प्राट्। कटप्रूः भूतुल्यं कटं प्रवते-चटाई बुनने वाला कटं तृणमयं स्तरणम्। तस्य रचयिता। कटपूर्वक गत्यर्थक प्रुधातो वार्तिकेन क्विप् पूर्णलोपे, दीर्घे विभक्तिकार्ये कटप्रूः (कटप्रुवौ कटप्रुवः। आयतं विस्तीर्णं स्तौति प्रशंसते लम्बा प्रशंसक। विस्तृत गुणगायक, आयातस्तूः अत्रापि क्विप्, दीर्घः, इत्यादिकार्यम्। जूः कहा गया। श्रयति हरिं, विष्णुकी सेवा करने वाली श्रीः लक्ष्मी। अत्रापि क्विप् दीर्घ ईकारान्तः स्त्रीलिङ्ग, स्वादिकार्ये (४) लवनार्थकं दाप्, काटना। प्रापणार्थक नी, ढोना पहुँचाना,। हिंसायां शस्, मिश्रण अमिश्रण वाचक यु-मिलाना अलग करना। योगार्थक युज, स्तुतौ स्तु। व्यथने तुद, बन्धने सि। सिच् सेचने। मिह, मूत्रत्यागे, पतने पत्, दंशने दंश, बन्धने नह धातुओंसे ष्ट्रन् (त्र) प्रत्ययकरण अर्थमें हो। दाबादेः=दाप इत्यादि। कारणके हटनेसे कार्यभी हटता है। दाति लुनाति, छेदनं लवनं करोति अनेन (जिस साधनसे)। वह दात्रम्। उक्त विग्रहे लवनार्थक दाधातोः 'दम्नी' आदिसूत्रेण करणे (लवन साधने) अर्थे ष्ट्रन्=त्र नपुंसकलिङ्गे स्वादिकार्ये दात्रम्। हँसिया, खुरपी, कुल्हाड़ी। नेत्रम्। नयति इच्छितस्थलं प्रापयाति। (ले जाता है) अनेन जिस साधनसे इति विग्रहे प्रापणार्थक नीधातोः ष्ट्रन् नप् विभक्ति आदिकार्ये नेत्रम्। पहुँचनेका साधन आँख।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८४५ ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-सेषु च ७।२।९। एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न। शस्त्रम्। योत्रम्। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री। ६ अर्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चर-इत्रः ३।२।१८४। अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्।

(८४५) ति=क्तिन् और क्तिच्का सामान्य ग्रहण। दीप्तिः अर्थः तु= तुम्प्रत्यय सेतुः। सक्तुः। त्र (ष्ट्रन्) दात्रं पात्रम्। हस् औणादिकः तन्-हस्तः। थ (औणादिकः) क्थन् हथः। कुष्ठं काष्ठम्। शि, कुक्षिः। सु इक्षुः। सर, सरन् अक्षरम्। क कन् शल्कः। स वत्सः। एषां दशानाम् इनदशप्रत्ययोंको वलादि आर्धधातुके इट् न हो। अतः ष्ट्रन् होनेपर इट नहीं हुआ। तितुत्रेषु 'अग्रहादीनामिति 'न' परे धातोः इट् दृश्यते। निगृहीति निपठितिः। शास्ति हिताहितं, शुद्धाशुद्धं (रामवत् भवतु, 'न' रावणवत्। इति शास्त्रम्।) शास्ति=उपदिशति अनेन, धर्म-अधर्म, हित-अहित, शुद्ध-अशुद्धका अनुशासन पूर्वक ज्ञान हो जिस साधनसे वह है शास्त्रम् अनुशासनार्थक शास्धातोः करणे ष्ट्रन् (त्र) योति (संयोजयति वृषभौ) अनेन योत्रं घासनिष्कासनयन्त्रम्। मिश्रणे च युधातुः योगे=द्वयोः सम्बन्धे (दोदो जोड़ने अर्थमें) युज् धातुसे ष्ट्रन्। योक्त्रम् जूआ। वृषभादेः गले युगबन्धनरज्वोर्नाम् स्तौति अनेनेति स्तोत्रम्। तुदति व्यथते अनेनेति तोत्त्रं वृषभादि प्रेरणदण्डः (चाबुक) सेक्त्रम् सिञ्चनपात्रात्, यन्त्रात् सिञ्चति अनेन। पुष्पवाटिका सीचनेका साधन, मिहति—मूत्रत्यागं करोति अनेन मेढ्रं ढत्वे; धत्वे ष्टुत्वे ढलोपे शिश्नः। जननेन्द्रियम्। पतति अनेन पत्त्रं 'झरोझरि' तकारलोपे (पत्त्रन्तु वाहने पर्णे पक्षे शरपक्षिणो) पत्ता, सवारी, पंख, बाण, पक्षी,। दशति अनेनेति त्र, षत्वे ष्टुत्वे दष्ट्रा। (दाता)। नह्यते बध्नाति अनेन इति (चर्ममयी रज्जुः) न हो ध, तको ध जश्त्वे नद्ध्री षित्वान्ङीष्। ढत्व, षत्व, ष्टुत्व इत्यादि यथायोग्य समझलें। लिङ्गका निर्णायक लोकानुसारी व्यवहार है। (६) अर्ति—गतौ अर्थे ऋ। छेदनार्थे लू, विधूनने कम्पने धू प्रेरणे (सु) अवदारणे, खनने खन, मर्षणे सहने सह, गतिभक्षणे अर्थे चर इन धातुओंसे इत्र प्रत्यय हो। त्रान्तं क्लीबं, त्र अन्तमें हो, वे नपुंसक होते हैं। पुत्रमन्त्र-विवर्जितम्। अरति (नौकया पारं गच्छति) अनेन अरित्रम्। नाव चलानेका चप्पू पतवार (नौकाचालनसमये जले निपातनीयः प्लवनीयः दण्ड) ऋधातोः करणे अर्थे 'अर्ति—' सूत्रेण इत्रप्रत्यये, गुणे, नपुंसके, अरित्रम्। लुनाति छिनत्ति अनेन लवित्रं लू धातोः इत्र, इट, गुणे, अव्। काटनेका साधन चाकू आदि। धवित्रम् व्यजनं पंखा। सुवति प्रेरयति अनेन सवित्रम्। प्रेरित करनेके लिए कोई बहाना। खनति अनेन खनित्रम् खननशस्त्र, परशुः कुद्दालः खूर्पी। सहते घर्मादिकं सहित्रं छत्रम्। चरति गच्छति भक्षयति अनेन। चरित्रम्। चिम्मच

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सहित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् । ७ पुवः संज्ञायाम् ३ । २ । १८५ । पवित्रम् ।
इति पूर्वकृदन्तम् ।

अथोणादयः

कृ-वा-पा-जि-मि-स्वादि-साध्यशूभ्य उण् । करोतीति-कारुः । वातीति वायुः । पायुर्गुदम् । जायुरौषधम् । मायुः=पित्तम् । स्वादुः । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । आशु=शीघ्रम् । ८ उणदयो बहुलम् ३ । ३ । १ ।

चलानेका साधन । (७) पूधातुसे संज्ञामें इत्र प्रत्यय हो । पुनाति अनेन पवित्रम् । पैंती, कुश, तीर्थ, जल पू से इत्र गुणे अवादेशे । इति प्रभाकरीटीकायां पूर्वकृदन्तम् ।

अथोणादिः—इसके बाद उण्प्रत्यय हो आदिमें जिसके ऐसा समुदाय । प्रयोग देखकर प्रकृति प्रत्ययके अर्थ आदिकी कल्पना उणादिकी विशेषता है । कृ, वा, पा, जि मि स्वादि, साधि अश् धातुसे उण् प्रत्यय हो, कर्ता कर्म जो भी अर्थ सम्भव हो । यथा—करोतिति कारुः, शिल्पी=कारीगर, मिस्त्री । उत्पत्तिजनक, व्यापार-वाचक कृधातोः कर्तरि उण् । णित् । ऋकारस्य वृद्धिः । विभक्तिकार्ये कारुः कदा करिष्यति । वातीति वायुः जो आसमानमें बहे । हवा । वाधातोः उण् णित् परे आतोयुक्, (य) वायुः । निरन्तर चलनेवाला । पाति रक्षति शरीरं इति पायुर्गुदं =मलत्यागेन्द्रियम् । पाधातोः उण् युक् । जयति अभिभवति रोगान्. इति जायुः औषधम् । रोगनाशकः जिधातोः उण् । वृद्धिः आय् । मिनोति प्रक्षिपति शरीरमें गर्मी, मिचलाहट, पैदाकर वह मायुः । पित्तं । मि प्रक्षेपणे, उण्, णित्, वृद्धिः आय् । स्वदते स्वादं गृह्णाति । इति स्वादुः । स्वद्धातुः ऊ, उपधावृद्धि । परकार्यको जो सिद्ध करे वह साधुः है । साध्धातोः उण् । अश्नुते व्याप्नोति आशु (शीघ्रम्) अव्ययशब्द द्रव्यवाची (८) एते—उण् इत्यादि अनुमित प्रत्यय वर्तमान काल और संज्ञा अर्थमें हों । केचित् अविहिताः=बहुलग्रहणसे जिसका विधान न भी हुआ हो उसका भी ऊह्याः=कल्पना कर ले । वह कल्पना, तर्क, अन्दाज करनेकी विधि श्लोक बद्ध करते हैं । संज्ञासु=संज्ञा शब्दोंमें प्रथम कल्पनासे, धातुका-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्यूह्याः ।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद् विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

इत्युणादयः ।

अथोत्तरकृदन्तम्

८४९ तुमुन्-ण्वुलौ कियायां क्रियार्थायाम् ३ । ४ । १० । क्रियार्थायां

स्वरूप समझे, उसके बाद प्रत्यय की कल्पना करे । प्रत्ययोंमें भी कार्यात्=गुण वृद्धि सम्प्रसारण इत्यादि कार्यको देखकर इत् णित् कित् ङित् इत्यादि सम्बन्धी अनुबन्धको विद्यात् = जानीयात् समझें एतत्=यही सब सिद्धकी अनुरोधी कल्पना उणादिगणमें शास्त्रं = शासनके योग्य है । ऋफिड्ड संज्ञाशब्द है । ऋ धातु, प्रकृति, गुण, अभाव दर्शनसे कित्‌की कल्पना । यद्यपि उणादि प्रत्यय अष्टाध्यायीमें मान्य नहीं है । तथापि उणादयो बहुलं सूत्रके बहुलके अर्थविस्तारसे उणादिपाणिनि सम्मत, अनुमित है इति प्रां० टी० उणादिः ।

अथोरत्तरकृदन्तम् अथ=इसके पश्चात् उत्तरकृदन्त प्रारम्भ करते हैं। भाव यह कि—पूर्वकृदन्तमें कर्ता, कर्म, करण आदि (कारक) अर्थप्रधान प्रत्ययोंका प्रायः प्रवचन हुआ । उत्तर कृदन्तमें भाव अर्थ में प्रत्ययका प्राधान्य प्रफुल्लित है । इस प्रकरणके कुछ प्रत्यय अव्यय भी है यथा (६) तुमुन् (तुं) ण्वुल् (वु अक्) ये प्रत्यय क्रियार्थायां=क्रिया एव अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा, तस्याम् । किसी क्रियाकी सिद्धिमें उपयोगिनी (उपकारी) क्रिया उपपद = पदके समीपमें रहे, तब धातुसे भविष्य अर्थमें तुमुन् तथा ण्वुलप्रत्यय हो (तुम्) प्रत्यय मान्त होनेसे 'कृन्मेजन्तः, सूत्रसे अव्ययसंज्ञक) (अव्ययकृतो भावे) वार्तिकसे भाव अर्थमें तुमुन् । ण्वुल् कर्ता अर्थमें प्रसिद्ध है । यथा—कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्ण भगवान्‌को देखने जाता है । कृष्णकर्मको दर्शनानुकूलगमनानुकुलव्यापारः । मुख्यदर्शन क्रियाके लिए गमनक क्रिया हो रही है । अतः दृशधातुसे भविष्यकालिक दर्शन क्रिया अर्थे तुमुन् । दृश् तुम् 'सृजिदृशो' सूत्रेण ऋकारस्य अम् आगमे । दृ अश तुम्,

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्ण दर्शको याति। ८१० काल-समय-वेलासु तुमुन् ३।३।१६७। कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् स्यात्। कालः समयो बेला वा भोक्तुम्। १ भावे ३।३।१८। सिद्धावस्थान्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः। २ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९। कर्तृ-भिन्ने कारके घञ् स्यात्। ३ घञि च भावकरणयोः ६।४।२७। रञ्जेर्नलोपः स्यात्।

ऋत्स्थाने यण्, सकारस्य व्रश्चभ्रश्जेति षत्वे तकारस्य ष्टुत्वे। दर्शनाय इति द्रष्टुं कृष्णं दर्शको याति। कृष्णकर्मकभविष्यकालिकदर्शनानुकूलं गमनम्। द्रक्ष्यति इति दर्शकः (कृष्णको देखेगा इसलिए जाता है) कृष्णकर्मकभविष्यकालिक दर्शनार्थं गन्ता दृश् धातोः भविष्यकालिक-दर्शन क्रिया अर्थे कर्तरि ण्वुल्। दृश् वु। युवोरनाकौ, वुस्थाने अक्। ऋत्स्थाने, अर्गुणेः कृदन्तत्वात् स्वादिकार्ये। दर्शकः। यहाँ कृदन्तके योगमें षष्ठी प्राप्त थी (अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः) भविष्यकालिक अकपरे हो, तब षष्ठी नहीं होती। जलं पातुं याति, भोक्तुं याति। गन्तुं यतते।

(८५०) काल समय और बेला यद्यपि तीनों सामानार्थक हैं, तथापि काल ईश्वरका, समय जीवका, बेला कार्यका, सूचक है। इन शब्दोंके समीपमें किसी भी धातुसे तुमुन्=तुम् प्रत्यय हो तीनोंकालवाची होनेसे कालार्थेषु कहा भोक्तुं कालः गन्तु समयः शयितुं बेला। कालादि अर्थ उपपद=समीपमें रहते भुज्, गम्, शीङ् धातुने भविष्यकालिके भावे अर्थे तुमुन् (मान्त अव्यय) लघूपधगुणे, चोः कुत्वे चर्त्वे भोक्तुम्। भावः क्रिया, सा द्विविधा। साध्या (धातुवाच्या) सिद्धा (प्रत्ययवाच्या) जिस क्रिया से सुआदि विभक्ति आवे उसे सिद्धा कहते हैं। जबक्रिया सिद्धा अवस्थाको प्राप्त हो, लिङ्ग संख्या अन्वयके योग्य हो, ऐसा धात्वर्थ भाव (क्रिया) वाच्य हो, तब धातुसे घञ्=अ हो यह भाव (क्रिया) प्रत्ययका अर्थ होनेसे द्रव्यरूप है। लिङ्गसंख्यान्वितं द्रव्यम् (कृदभिहितो भावो द्रव्यवत्प्रकाशते) कृत्प्रत्ययसे उक्त क्रिया द्रव्य=कारकके सदृश प्रकाश देती है। लिङ्गवचनके योग्य हो गया। घञ् प्रत्ययान्त पुलिङ्ग होते हैं। यथा—पचनं विक्लित्यनुकूलीकरणं पाकः। पाकक्रिया। पचधातों भावे घञ्, उपधावृद्धिः (चजोः कुघिण्यतोः चकारस्य कुत्वेन कः पाक इति। प्रा० सं० स्वादिकार्ये। पच और घञ् दोनों क्रियाओं का अभेद सम्बन्ध लिङ्गसंख्याके अन्वय योग्य प्रत्ययार्थ प्रधान कारक है। (२) अकर्तरि कर्ता कारकसे भिन्न (किन्तु) कर्ताके सदृश द्वितीया तृतीया आदिकारक अर्थं होना हो तब धातुसे घञ् हो इसके पहलेका घञ् भावार्थक था।

(३) भाव और करण अर्थमें हुए घञ् के परे रहते रञ्ज धातुके न का लोप

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रागः । अनयोः किम्—रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः । ४ निवास चिति-शरीरोप-समाधानेष्वादेश्च कः ३ । ३ । ४१ । एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः । उपसमाधानं=राशीकरणम् । निकायः । कायः । गोमयनिकायः ।

८५५ एरच् ३ । ३ । ५६ । इवर्णान्तादच् । चयः । जयः । ६ ॠदोरप्

हो । रञ्जनं रागः रँगना । रञ्जति रज्यते वा अनेनति रागः (रङ्गनेका साधन) रञ्जनं रागः इत्यत्र रञ्जधातोः भावे घञ् रज्यते अनेन रागः इत्यत्र अकर्तरि च कारके संज्ञा अर्थे भावे करणे च घञ् प्रत्ययपरे, नकारस्य लोपे उपधायाः वृद्धिः कुत्वं रागः । रञ्जरागे इति धातुः । अनयोः किम् ? भाव और करण अर्थमें घञ् प्रत्यय-परे नकार लोप क्यों कहा ? इसलिए कि अधिकरण अर्थमें घञ्परे नकारलोप न हो । अतः रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः । आनन्दित हों लोग जिसमें नाटचशाला । रञ्ज्धातोः अकर्तरिच कारके संज्ञायामिति करणे घञ् । अत्र न लोपो न भवति । चजोः कुत्वे गकारे अनुस्वारपरसवर्णे ।

(४) निवास चिति (चिता अग्निस्थल) उपसमाधान = राशीकरण ढेर लगाने अर्थमें चि धातुसे घञ् हो आदेश्च कः = आदिवर्णोंको क हो । निकाय । निचीयन्ते उष्यन्ते मनुष्याः अस्मिन्निति (जिसमें प्राणी रहे, इकट्ठेहों वास करें) निपूर्वक चिधातोः निवासे अर्थे घञ् आदि चस्थाने कः नि, कि, अ । अचोञ्णिति वृद्धिः आयादेशे, स्वादिकार्ये निकायः । निवासः । कायो देहः (क्लीबपुंसोः) चीयन्तेऽस्थ्यादिकम् अस्मिन्निति कायः शरीरं (जिसमें हड्डी मांस, मज्जा, इकट्ठे हो) चिधातोः घञ् आदिकार्ये । गोमयानि (गोबर इत्यादि) निचीयन्ते इकट्ठे किये जाय । वह गोबरका ढेर घूर आदि । चिधातोः उपसमाधाने राशीकरणे अर्थे घञ् गोमयनिकायः ।

(८५५) एः = इवर्णान्तात् । धातोः अच् यह अच् घञ्का बाधक है । चयनम् एकत्रीकरणं चयः । चयनक्रिया । चैत्रेण पुष्पाणां चयः, चैत्रसे फूलोंकी ढेर लगी । इवर्णान्त चिधातुसे घञ् हुआ । गुणे, अयादेशे, चयः जयनं जयः । चैत्रेण विश्वेषां जयः जिधातोः भावे अच् चयः समूहे प्राकारे मूलबन्धे समाहृतौ ।

(६) ॠदोः = दीर्घ ॠकारान्त और उकारान्त धातुओंसे भाव अर्थमें अप् हो । अप्प्रत्ययेऽपि घञापवादः घञजपाः पुंसि । घञ् अच् अप् पुलिङ्गमें हों । इनमें अनुबन्धकृत भेद है । यथा—बलिहस्तांशवः कराः (अमरः । करणं करः बिखेरना या हाथ (करो वर्षोपले रश्मौ पाणौ प्रत्यायशुण्डयोः) विक्षेपार्थक कृधातोः अप् गुणे करः । निगरणं (गलबिलाधः करणं गरः, लीलना निगरणार्थक गृधातोः । यवनं मिश्रणं अमिश्रणं च यवः मिलाना । लवनं लवः । छेदन, लवन, लेश, अंश, लवोऽभिलाषो लवने इत्यमरः । यवो धान्ये अपृथक्कृतौ । कृषकेण क्षेत्राणां लवः

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३ । ३ । ५७ । ॠदन्तादुवर्णान्तादप् स्यात् । करः । गरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः । (घञर्थे कविधानम्) प्रस्थः । विघ्नः । ७ ड्वितः क्त्रिः ३ । ३ । ८८ । ८ क्त्रेर्मम् नित्यम् ३ । ३ । २० ।

क्त्रिप्रत्ययान्तान्मप् निवृत्तेऽर्थे । पाकेन निर्वृत्तं-पक्त्रिमम् । डुवप् उप्त्रिमम् । ९ ट्वितोऽथुच् ३ । ३ । ८९ । टुवेपृ कम्पने । वेपथुः । ८६० यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ् ३ । ३ । ९० । यज्ञः । याच्ञा । यत्नः ।

छात्रेण गुरोः स्तवः । स्तुतिः स्तोत्रं, वायुना पवः पवित्रीकरणम् । (घञर्थे क विधानम्) घञ् प्रत्ययके अर्थमें 'क' का भी विधान है (क) इत्का फल गुणनिषेध प्रस्थः (पसेरी) प्रतिष्ठन्ति धान्यानि अस्मिन् । परिमाणविशेष । गाड़ = जमींनमें अन्न रखनेकी जगह । अथवा प्रतिष्ठन्ते जनाः यस्मिन् इति प्रस्थः, पर्वतशिखरः । प्रपूर्वकंस्थाधातोः अधिकरणे अर्थे क (क् इत्) । (आतोलोप इट्च) इति आलोपे प्रस्थः । काम्यो देहः क्लीबपुंसयोः । विघ्नः विशेषेण हन्यन्ते कार्याणि अनेन । अथवा विघ्नन्ति मनांसि यस्मिन् । विपूर्वक हन्धातोः अधिकरणे क प्रत्यये 'गमहन- इति उपधायाः अकारलोपे, 'होहन्तेः' इति कुत्वे स्वादिसम्बन्धिकार्ये । विघ्नः ।

(७) ड्वितः = डु अनुबन्ध इत् होनेपर धातुसे क्त्रि प्रत्यय हो । (८) क्त्रिप्रत्ययान्त शब्दसे 'मप्' प्रत्यय हो, निर्वृत्त = सिद्ध अर्थ हो तो । यथा—पाकेन (पाकक्रियया निर्वृत्तं = सिद्धं पक्त्रिमम् । पकानेसे सिद्धवस्तु । डुपचष्—अनु बन्धलोपे पच्धातोः ड्वितः क्त्रि प्रत्यये, चकारस्य कुत्वेन कः पक्त्रि = पाक क्रियया सिद्धे अर्थे मप् । पक्त्रिमं क्षेत्रम् । लाभेन निवृत्तं ।

लब्धिमं भवनम् । डुवप् डु इत्संज्ञक वप् धातोः क्त्रि । वापेन निर्वृत्तमित्यर्थे 'मप्' बोनेकी क्रियासे सिद्ध वस्तु खेत । वचिस्वपि यजादीनामिति सम्प्रसारणे । उप्त्रिमम् (९) ट्वितो (टु इत् हो उस धातु से) अथुच् हो, भाव अर्थ में । वेपनं कम्पनमिति वेपथुः--काँपना वेप् धातु से अथुच् । स्वादिकार्ये । जिन धातुओं में टु इत् हो, उन सभी से अथुच् हो (टुओश्वि) श्वयथुः । सूजन । नन्दथुः (टुनदि) आनन्दवृद्धिः इत्यादि (८६०) पूजा सङ्गति, दान अर्थ में यज, भिक्षार्थक याच, याच्ञायां । प्रयत्नार्थक यत्, गत्यर्थक विच्, ज्ञीप्साार्थक प्रच्छ, रक्षणार्थक रक्ष, इन धातुओं से भाव आदि अर्थ मे नङ् हो । यजनं यज्ञः देवपूजनं सङ्गति करणम् दानञ्च । यजते स्वर्गफलं लभते अनेनेति इति यज्ञः इज्यन्ते देवाः अस्मिन्निति यज्ञः । हवन पूजन भवन के अनुकूल क्रियावाचक यज् धातोः 'यजयाच' सूत्रेण भावे, करणे, अधिकरणे वा नङ् प्रत्यये नस्य श्चुत्वेन ञः जञोर्ज्ञः याचनं याच्ञा । भिक्षा । याच् धातोः नङ् श्चुत्वे, स्त्रीत्वं विवक्षायां टाप् याच्ञा । यतनं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विश्नः । प्रश्नः । रक्षणः । १ स्वपो नन् ३ । ३ । ९१ । स्वप्नः । २ उपसर्गे घोः किः ३ । ३ । ९२ । प्रधिः । उपधिः । ३ स्त्रियां क्तिन् ३ । ३ । ९४ । स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवादः । कृतिः । स्तुतिः । (ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः) तेन नत्वम् । कीर्णिः । लूनिः । धूनिः । पूनिः । (सम्पदादिभ्यः क्विप्) सम्पत् । विपत् । आपत् । क्तिन्नपीष्यते । सम्पत्तिः ।

प्रयत्नकरणं यत्नः । विश्नः, विष्वग्गमनशीलः सूर्यः विच्छ धातोः नङ् 'च्छ्वोः' इति छ स्थाने शकृते रूपम् । मोघा याच्ञावरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा । पृच्छधातोः नङ् छ स्थाने (श) प्रश्नः । पृच्छा जिज्ञासा । यत्नेकृते च नहि सिध्यतिकोऽत्र दोषः । रक्षणः रक्षधातोः नङ् रषाभ्यामिति णत्वे (१) शयनार्थक स्वप् धातु से नन्=न प्रत्यय हो । नित् से अनुदात्त स्वप्नं, शयनं स्वप्नः शयन, सपना नींद (२) उपसर्ग पूर्वक घुसंज्ञक धातु से कि प्रत्यय हो, (क इत्) दा रुप या धा रूप से 'कि' । पुलिङ्गप्रधानं चक्रस्य परिधिः नाभिः, प्रधिः । प्रपूर्वक घुसंज्ञक धाधातोः कि (क इत्) आलोपे, विभक्ति कार्ये । उपधिः रथचक्रम् । 'उप' धा धातोः कि आलोपे । उपधानम् उपधिः, दम्भः । अथवा उपधीयते आनन्दाय आश्रीयते यः स उपधिः तक्रिया । मसनन्द । प्रधिः=गद्दा-तोशक । एवं वारिधिः तोयधिः, जलधिः, समुद्रः । विधिः व्याधिः=शरीर रोग । आधिः=मानसरोग । समाधिः एकाग्रता सन्धिः=जोड़ । अभिसन्धिः = आशयः । कि प्रत्यायान्त सभी पुलिङ्ग प्रसिद्ध हैं (३) स्त्रीलिङ्ग हो, भाव (क्रिया) अर्थ हो, तब क्तिन् हो । स्त्रियांके अधिकार में किसी भी प्रत्यय से बने शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं । घञ् का बाधक । करणं कृतिः क्रिया रचना, कविकर्म । कृधातोः स्त्रियां भावे क्तिन्, विभक्ति कार्ये । मति शब्दवत् रुपं चलति । स्तवनं स्तुतिः । स्तूयते अनया । स्तूधातोः क्तिन्=ति (वा०) ॠकारान्त ल्वादिगणपठित धातुओंसे क्तिन् प्रत्यय निष्ठा के समान हो । जिसका फल, त को (न) होना । कीर्णिः=बिखेरना । कृधातोः क्तिन् 'ॠत् इद् धातोः' ॠस्थाने इर 'हलिचेति' दीर्घे वार्तिकेन निष्ठावद्भावे तस्थाने नः । विक्षेपः । लवनं लूनिः कटाई, लनाई, लू धातोः क्तिन् निष्ठातस्य नः लूनिः, छेदनम् । धवनं धूनिः कम्पन, धुनना, पवनं पूनिः पवित्रता । क्तिन् निष्ठा तस्य नः वा०) सम्पदादि=सम् वि, आ पूर्वक पदधातु से भाव में क्विप् हो, सम्पदनं सम्पद्यते अनया) इति सम्पत् सम्पत्तिः सम्पूर्वक पदधातोः क्विप् सर्वापहारलोपे विभक्तिकार्ये, अवसाने चर्त्वे । विपदनं, विपद्यते अनया विपत्तिः विपत् दुख में पड़ जाना । आपद्यते विपत्तिः या लाभ में पड़ जाना आपद् पतने अर्थे पत् धातुः (उलटा अर्थः) आफत सम्पदादि से क्तिन्प्रत्यय भी इष्यते=इष्ट है । चर्त्वे, सम्पत्तिः सुखं, विपत्तिः दुःखम् । आपत्तिः=लाभ या आफत (४)

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विपत्तिः। आपत्तिः। ४ ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्तयश्च ३ । ३ । ९७ । एते निपात्यन्ते।

८६५ ज्वर त्वर स्रिव्यवि मवामुपधायाश्च ६ । ४ । २० । एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च। अतः क्विप्। जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः। ६ इच्छा ३ । ३ । १०१ । इषेर्निपातोऽयम्। ७ अ प्रत्ययात् ३ । ३ । १०२ । प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या। ८ गुरोश्च हलः ३ । ३ । १०३ । गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामप्रत्ययः स्यात्। ईहा। ९ ण्यासश्रन्थो युच् ३ । ३ । १०७ ।

ऊति यूति आदि निपातन से सिद्ध हो। ऊतिः अवनं रक्षणम्। अव-धातोः क्तिन्, वकारस्य ऊठ, दीर्घे, स्वादिकार्ये। यवनं यूतिः सानं सातिः। अन्तकर्म। हयनं हन्यते अनया वेति हेतिः। कीर्यते अनया कीर्तिः जिससे शत्रु बिखर जांय। ये सभी शब्द निपातन से सिद्ध हैं।

ज्वर, रोगे, त्वर सम्भ्रमे, स्रिव गतिशोषणयोः अव-रक्षणे, मव-बन्धने, धातुओंके व को ऊठ हो, अनुनासिक क्वि झलादिकिति ङिति परे। अतः इस सूत्रके निपातनसे धातुओंसे क्विप् सिद्ध है। ज्वरणं जूः। रोगः। ज्वरधातोः सम्पदादिभ्यः क्विप् सर्वापहारलोपे क्विपरे उपधायाः वकारस्य ऊकार 'जूर्' विभक्तिकार्ये जूः जूरौ जूरः। त्वरणं सम्भ्रमणं तूः शीघ्र शीघ्रता त्वर् से क्विप् ऊठ् आदि। शीघ्रकारी, रुग्ण, स्रिवणं स्रूः (शोषक, गन्ता) स्रुवौ, स्रुवः। अवतीति ऊः रक्षकः। ऊवौ ऊवः। मवति मूः बन्धकः=बाधने वाला। मूः मूवौ मूवः (६) इष् धातुसे श निपातनसे हो। देवदत्तेन पुत्रस्य एषणमिच्छा। इष् धातोः शप्रत्यये (शङ्त्) सार्वधातुकसंज्ञा इषुगमियमां छः इति षस्थाने छः तुक्, श्चुत्वं टाप् इच्छा। भावेप्रत्ययः। (७) प्रत्ययात्—प्रत्ययान्त धातुसे स्त्रीलिङ्ग अर्थमें अप्रत्यय हो। चिकीर्षा। चिकीर्षणं (कर्तुम् इच्छा) सन् प्रत्ययान्त चिकीर्ष धातोः अप्रत्ययात् सूत्रेण स्त्रियां भावे अर्थे अप्रत्यये। चिकीर्ष अ अतो लोपः टाप्। आत्मनः पुत्रस्य इच्छा। पुत्रकाम्या काम्यच् प्रत्ययान्त पुत्रकाम्यसे अ प्रत्यय टाप्। (८) गुरुमान् हलन्त धातुमे स्त्रीलिङ्गमें भावार्थे अप्रत्ययः। ईहा ईहनं चेष्टा। चेष्टार्थक ईह धातो गुरुमान् हलन्त देखकर अप्रत्यय टाप इहा, इच्छा, कांक्षा, स्पृहा, तृड्, वाञ्छा लिप्सा, मनोरथः (९) ण्यन्त आस् श्रन्थ इन धातुओंसे युच्=युप्रत्यय हो, यह युच् अका बाधक है। कारणा, तीव्र वेदना, अथवा कुम्भकारः घटान् करोति इति कुम्भकारेण घटानां कारणा ण्यन्तकारि—धातोः ण्यासश्रन्थो युच् इति युच्प्रत्यये, यु स्थाने युवोर्नाकौ इति अन आदेशे, कारि, अन णेरनिट् णिलोपे, टाप्। कुलालसे घटोंका निर्माण, विशेषज्ञोंसे भवनका निर्माण, कारणा। रावणः सीता-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा ।

८७० नपुंसके भावे क्तः ३ । ३ । ११४ । १ ल्युट् च ३ । ३ । ११५ । हसितम् । हसनम् । २ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३ । ३ । ११८ । ३ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६ । ४ । ९६ । द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः । ४ अवे-तॄस्त्रोर्घञ् ३ । ३ । १२० । अवतारः कूपादेः । अवस्तारो = जवनिका ।

८७५ हलश्च ३ । ३ । १२१ । हलन्ताद् घञ् । घापवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः । ६

हरति । रावणेन मारीचः सीतां हारयति । इति रावणेन सीतायाः हारणा । हारिधातोः युच् (अन) णिलोपे टाप् । हटाना । धारणा, विवाहना, वरः कन्यां विवहति दाता वरेण कन्यां विवाहयति इति वरेण कन्यायाः विवाहना, आसना, श्रन्थना ।

(८७०) नपुंसक लिङ्गमें कुछ भावार्थक क्त प्रत्यय हों । जो व्यक्त किये जा रहे हैं । (१) नपुंसकभाव अर्थमें ल्युट् प्रत्यय भी हो, सा जहास इति तया हसितं । हँसना । हस् धातोः क्त, इट् नपुंसकलिङ्गे । पक्षे ल्युट = यु, अन आदेशे, हसनं चैत्रस्य : क्तो ल्युट् नपुंसके भावे स्त्रियां क्तिन्नादयो यतः अतो घञपा पुंसि परिशेषादिति स्थितिः । (२) पुलिङ्ग संज्ञाअर्थमें प्रायः (बहुधा, अधिकतर), घ = अप्रत्यय (३) दो उपसर्गसे अधिक उपसर्गसे हीन छकारादि धातुको ह्रस्व हो, घ प्रत्यय परे । दन्ताः आच्छाद्यन्ते (दाँत ढँके जायँ जिससे वह दन्तच्छदः (ओष्ठः) । दन्तपूर्वकछादि धातोः, संज्ञा अर्थे अप्रत्यये, अनुबन्धलोपे, णिलोपे (छादेर्घे) इति आकारस्य ह्रस्वे । दाँतका आवरण । आकुर्वन्ति (जिसमें सभी लोग मिलकर सामूहिक काम करे वह) आकरः (खान) । आकृ धातोः अधिकरणे घ, गुणे, विभक्तिकार्ये, घ प्रत्ययान्तः पुलिङ्गः आक्रियन्ते उत्पाद्यन्ते रत्नानि अस्मिन्निति आकरः समुद्रः (४) अवपूर्वक तृ धातुसे अधिकरणे घञ् । अवतरन्ति जनाः यस्मिन्निति अवतारः (सीढ़ी) अथवा कूपात् जलम् अवतरन्ति भवन्ति अस्मिन् (क्यारी) जिसमें जल गिरें । अवपूर्वक स्तृधातोः घञ (अ) अधिकरणे अर्थे । अवस्तारः । अवस्तीर्यन्ते जनाः यस्यां (छोलदारी, पर्दा, प्राकार) ।

८७५ हलन्तधातुसे कारक अर्थमें घञ् प्रत्यय हो घको बाधकर । रमन्ते क्रीडन्ते रमण करते हैं योगिजन जिसमें, इति विग्रहे रमधातोः हलश्च सूत्रेण अधिकरणे घञ = अ । उपधावृद्धिः । रामः । परब्रह्म परमात्मा, आनन्दका आश्रय । अपमृज्यन्ते दूरीक्रियन्ते व्याधयः येन अपामार्गः चिचिड़ा, औषधि विशेष । अपपूर्वक मृजधातोः करणे घञ् मृजेः 'कुचिण्यतो' इतिकुत्वे, वृद्धि, उपसर्गस्य घञ्यनुष्ये

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३ । ३ । १२६ । करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् (७७०) तयोरेवेति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे-दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे-ईषत्करः । सुकरः । ७ आतो युच् ३ । ३ । १२८ । खलोऽपवादः ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः । ८ अलं-खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३ । ४ । १८ । प्रतिषेधार्थयोरलं-खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति

बहुलमिति दीर्घे (६) ईषद् (अल्प) दुस् (दुःख) सु (सलतासे) कृच्छ्र=दुःखसाध्य, अकृच्छ्र=कुछसाध्य, इस अर्थ में इषद् दुष, सु शब्दके उपपद रहते वे दुःख (या) सुख अर्थ हो तब धातुओं से खल्=(अ) प्रत्यय, तयोरेव भावकर्म अर्थमें ही हो । करण और अधिकरण अर्थ निवृत्त हो गये । भवान् कटं करोति । इत्यर्थे दुम् पूर्वकृधातोः उक्तसूत्रेण खल्=(अ) कर्मणि अर्थे, गुणे, विभक्तिकार्ये षत्वे । कर्ता । कर्तामें तृतीया भवता कटः दुष्करः । आपसे चटाईका बनना कठिन है । अकृच्छ्र=कठिनाईका अभाव, ईषत्पूर्वक कृधातो कर्मणिअर्थे खल् ईषत् कृ+अ गुणे स्वादिकार्ये ईषत्करः । सरलतासे करने योग्य है । ईषत्कर्तुं शक्यः । ईषत्क्रियते । दुखेन कर्तुं शक्यः दुष्क्रियते इति दुष्करः । सुखेन क्रियते, कर्तुं शक्यः इति सुकरः । सुखसे करने योग्य । अत्रसरले अर्थे कर्मणि खल् । कृद्योगे षष्ठी प्राप्ता, तत्र नलोकेति खलर्थयोगे निषेधे । उक्ते कर्मणि प्रथमा । अनुक्ते कर्तरि तृतीया । अल्पार्थे खल् । दुःखसुखार्थे खल् । (७) आकारान्त धातुसे इषद्, दुस्, सुके योगमें युच्= यु) प्रत्यय हो । च इत् युस्थाने (अन) खल्को बाधकर, भवान्, सोमं (सोमरसं) पिबति । (आप सोमरस पीते हैं) इत्यर्थे ईषत्पूर्वक पाधातोः ईषत् पाने अर्थे युच्, युस्थाने युवोरनाकौ इति अन अल्पाने अर्थे ईषत्पानः । सोमरसका आपसे थोड़ा पीना , अनुक्ते कर्तरि तृतीया । दुष्पीयते भवता सोमं तस्य पानं दुष्पानः पा युच अन । दुस् सकारस्य इदुदुपधस्य इनिपत्वे दुष्पानः । दुःखसे पीने योग्य, सुखेन पातुं योग्यः, सुपीयते वा सुपानः । सुखसे पीने योग्य । यह क्रिया प्रत्येक आदन्त धातुसे मान्य है । (८) प्रतिषेधयोः=निषेध अर्थवाले अलं और खलु शब्द उपपद (पूर्वमें) हो धातुसे क्त्वा प्रत्यय हो, प्राचीन आचार्यके मतमें । (क इत का फल) गुण वृद्धिनिषेध और सम्प्रसारण है । वलादि आर्धधातुकको इट् आगम हो प्राचां ग्रहणं किमर्थम् ? अव्ययकृतो-भावे सूत्रसे भाव अर्थमें क्त्वाका विधान है । उसका बाधक ल्युट् प्रत्यय (वाऽसरुपन्यायसे) विकल्पेन होगा ही । प्राचां ग्रहणं व्यर्थम् । अत आह पूजार्थम् । आदरार्थः । अव्ययेन=अव्ययके साथ उपपदसमास हो तत्र अमैव=अमकेसाथ ही हो । इति नियमात्=इस नियमसे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नियमान्नोपपदसमासः (८२७) दो दद्घोः । अलं दत्त्वा । घुमास्थेतीत्वम् । पीत्वा खलु । अलंखल्वोः किम्-मा कार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम्-अलंकारः । ९ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३ । ४ । २१ । समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ।

८८० न क्त्वा सेट् १ । २ । १८ । सेट् क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा ।

नोपपदसमासः = उपपदसमास नहीं होता । क्त्वा, 'अम्' नहीं है । अलं दत्त्वा (मतदो) । यहाँ अलं शब्द क्रिया निषेधक है । दानक्रियाका निषेध होनेसे दा धातोः क्त्वा घूसंज्ञक दास्थाने ददआदेशे । दद + क्त्वा । चर्त्वे क्त्वातोसुन् इति अव्ययसंज्ञा पीत्वा खलु (मतपियो) पाधातोः पान क्रियानिषेधे अर्थे क्त्वा, कित्परे 'घूमास्था' आदिना घूसंज्ञकस्य दा इत्यस्य आकारस्य ईत्वे रुपम् । पानं मा कुरु । अलंखल्वोः किम् सूत्रमें निषेधार्थक अलं और खलुका ग्रहण क्यों ? इसलियेकि निषेधार्थक (मा) के योगमें क्त्वा न हो प्रतिषेध=अलंको निषेधार्थक क्यों कहा ? इसलिए कि अलंकारः । अलं क्रियते अनेन अत्र क्त्वा (मा) भवतु । अलं शब्द भूषणार्थकः न तु निषेधार्थकः । (९) समानः कर्ता ययोः क्रिययोः ते समानकर्तृके । तयोः । समान = एककर्तावाली दो क्रियायें होती हों, तब पूर्वकालिक क्रियावाचक धातुसे क्त्वा हो, उसे पूर्वकालिकी क्रिया कहा जाय । जिसका अर्थ करके) जाकरके खाकरके, गत्वा भुक्त्वा है । यथा—भुक्त्वा व्रजति । भोजन करके जाता है । भोजन (तृप्तिके अनूकूल क्रिया) गमन (पहुँचनेकी क्रिया) इनका कर्ता एक ही है । अतः गलबिलाधः संयोगजनक भुज्धातोः पूर्वकालिक क्रियाअर्थे क्त्वा । क इत् जकारस्य कुत्वे, चर्त्वे, रुपम् । भोजनोत्तरकालिकी व्रजन क्रिया अर्थः । द्वित्वं = सूत्रमें द्विवचनमतन्त्रम् = अविवक्षित है । इष्ट नहीं । अनेक क्रियामें भी पूर्वकालिक अर्थवाचक क्त्वा हो । यथा—भोजन, पानकरके जाता है । यहाँ भोजन, पान, गमन, तीन क्रियायें हैं, मुख्यक्रिया गमन, उसकेपूर्वमें जितनी क्रियायें हों सबसे क्त्वा । अतः भुज् और 'पा' दोनोंसे क्त्वा । भुक्त्वा, पीत्वा, गच्छति खानपानके पश्चात् गमन इति वाक्यार्थः ।

८८० सेट्धातुसे परे क्त्वा कित् न हो । शयित्वा = पठति शयनं कृत्वा (सोकरके) इत्यर्थे शयनार्थक शीधातोः समानकर्तृकयोः सूत्रेण क्त्वा तस्य बलादि लक्षण इट् कृते गुणे, अयादेशे । अत्र क्त्परे क्ङिति च सूत्रेण गुणस्य निषेधशङ्का न कार्या, सेट्क्त्वा कित् न मन्यते । पूर्वकालकी क्रियाके साथ समानकर्ता निश्चित रहता है । सेट् किम् इट् सहितक्त्वा क्यों कहा गया । इसलिए कि कृत्वा में इट् रहित क्त्वा 'कित्' माना जाय । (१) व्युपधात्=इकार और उकार उपधामें

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सेट् किम्-कृत्वा। १ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६। इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेरलन्तात् परो क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात्किम्-वर्तित्वा। रलः किम्-सेवित्वा। हलादेः किम्-एषित्वा। सेट् किम्-भुक्त्वा। २ उदितो वा ७।२।५६। उदितः परस्य क्त्वा इड्वा। शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, द्यूत्वा। दधातेर्हिः। हित्वा। ३ जहातेश्च क्त्वि ७।४।४३। हित्वा। हाङस्तु-हात्वा। ४ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।३।३७। अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो

हो ऐसे हलादेः=हलादिधातु और रलन्तात्=रल् प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हों ऐसे धातुसे परे इट् सहित क्त्वा और सन् प्रत्यय विकल्पसे कित् हों। कित्फलं गुणादि निषेध, सम्प्रसारणञ्च। यथा—द्युतित्वा=प्रकाश करके। विद्युत् विलीना =विजली गायब हुई। दीप्ति अर्थक द्युतधातो, समानकर्तृकयोः पूर्वकाले अर्थे क्त्वा। उकारोपधः हलादिः धातुः रलन्तश्च, इट्सहित क्त्वा कित्। तस्य फलं गुणनिषेध! द्युतित्वा (पक्षे गुणः। द्योतित्वा अगच्छत्। एवं विलेखनार्थक लिखधातोः क्त्वादिकार्ये लेखित्वा लिखित्वा (लेखनकार्यं कृत्वा) व्युपधात् किम्? उकार इकार उपधामें हों ऐसा क्यों? इसलिए कि वर्तित्वामें कित् न हो जाय। ऋकारोपधः। गुणे कृते एकं रुपम्। रल्संज्ञाके अक्षर अन्तमें हों ऐसा क्यों? इसलिए कि सेवित्वा। अत्र विकल्पकित् न हो, यह वान्त है। रलन्त नहीं। हल् आदिमें हो ऐसा क्यों? एषित्वा अजादिको कित् विकल्प न हो। गुणे सेट् किम्=इट् सहित अर्थक्यों? इसलिए कि अनिट् क्त्वाको कित् विकल्प न हो। भूत्वा अनिट् है। (२) उदित धातुओंसे परे क्त्वाको विकल्प इट् हो। यथा—उपसमनार्थक शमधातोः पूर्वकाले अर्थे क्त्वा। उदितो वा सूत्रेण इट्विकल्पे शमित्वा, पक्षे। 'अनुनासिकस्य क्विझलोः' इति दीर्घे, मकारस्य (नश्चा) इति अनुस्वारे परसवर्णे शान्त्वा भोजनं कुरु। देवित्वा—क्रीडा, विजिगीषा आदिअर्थे (उकार इत्) दिव्धातोः क्त्वा, इट्विकल्पे, गुणे रुपम्। सेट् क्त्वा, किन्न भवति। पक्षे च्छ्वोः शूड इति 'व स्थाने (ऊठ्) इकारस्य यण् द्युत्वा=विजयी भविष्यामि। हित्वा धारणं कृत्वं, धारणार्थक धाधातोः क्त्वा धास्थाने दधातेर्हि 'हि' आदेशे 'हित्वा' रुपम्। (३) ओहाक् हाधातुको भी (हि) आदेश हो क्त्वापरे, त्यागार्थक हि धातोः पूर्वकालिक कियार्थे क्त्वा जहातेश्च सूत्रेण हास्थाने हि आदेशे हित्वा (त्यागकर) गतः। हाङस्तु=(ओहाङ्), गत्यर्थक हाधातोः क्त्वा, हात्वा भवति (गत्वा) हि आदेशो न। त्यागार्थक धातुसे (हि) होता है।

(४) अव्ययपूर्वपद हो तथा नञ्समास न हो, तब धातु से परे क्त्वा को

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ल्यबादेशः स्यात् । तुक्, प्रकृत्य । अनञ् किम्-अकृत्वा ।

८८५ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३ । ४ । २२ । आक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च । ६ नित्य-वीप्सयोः ८ । ३ ४ । आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् । आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञकेषु कृदन्तेषु । स्मारं स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा । स्मृत्वा । पायं पायम् । भोजं भोजम् । श्रावं श्रावम् । ७ अन्यथैवं-कथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३ । ४ । २७ । एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवंभूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात्

ल्यप् हो (ल् प इत्) प्रकृत्य (पूरा करके) प्रकृत्वा अव्ययपूर्वक प्र, उसका कुगति प्रादयः से क्त्वाप्रत्ययान्त कृत्वा के साथ समासे, ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् आगमे सर्वं प्रकृत्य विरमामि । अनञ्ग्रहण क्यों किया ? इसलिये कि नञसमासे क्त्वा को ल्यप् न हो । यथा—अकृत्वा गच्छामि अत्र नञ् समासो अस्ति ल्यप् न भवति (८८५) आभीक्ष्ण्ये=क्रिया की बारम्बार आवृत्ति कहनी हो तो क्त्वा के विषय में णमुल्=अम् प्रत्यय हो, क्त्वा भी । यह मान्त अव्यय है (६) नित्या च वीप्सा च तयोः क्रिया की निरन्तरता या वीप्सा आवृत्ति—निरन्तर होना । आभीक्ष्ण्यम्=क्रिया की आवृत्ति (निरन्तर होना) केवल तिङन्त और अव्यय संज्ञक कृदन्त की क्रिया में जाने । यथा—स्मारं (बारम्बार स्मरण चिन्तन, ध्यान करके शिव को नमस्कार करता है । मुख्य क्रिया नमस्कार, उसका पूर्वकालिक स्मरण जननी क्रिया, उसकी निरन्तरता, अनेक बार होना, पूर्व कालिक क्रिया अर्थ में णमुल्=अम् स्मृधातु से हुआ । अचोञ्णिति ऋस्थाने वृद्धिः, स्मारं पक्षे क्त्वा, स्मृत्वा ब्रवीमि । नित्यवीप्सयोः इति क्रियायाः आवृत्तिविषये द्वित्वम् । पायं पायं क्रिया की निरन्तरता अनेक बार होना अर्थ में पानार्थक रक्षणार्थक पाधातोः रक्षण या पान क्रिया का निरन्तर होने का प्रकाशक णमुल् । पा अम् । आतोयुक् चिण् कृतो इति युक् (य) द्वित्वं पायम्पायं जीवति । भोजम्भोजं=खाता हुआ लगातार । भुज् धातोः णमुल् द्वित्वे, श्रावं श्रावं श्रवण क्रिया को निरन्तरता, लगातार सुनना श्रु धातोः णमुल, वृद्धिः (आवादेशे, द्वित्वे, श्रावं श्रावं कण्ठस्थी कृतम्, पीत्वा भुक्त्वा श्रुत्वा ।

(६) अन्यथा एवं कथम् इत्थम्, इनके पूर्व पद रहते कृ धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यदि कृ से कारं प्रयोग सिद्ध हो उसका प्रयोग भी हो । बिना कृ के भी क्रिया सिद्ध हो । इसलिये (कृ) के व्यर्थत्वात्=व्यर्थ, अनावश्यक, होने से वह प्रयोगके अनर्ह (अयोग्य) हो । अन्यथा कारम्=अन्य प्रकार से दूसरे तरीके से खाता है । एवं कारम्=इस प्रकार । इत्थं कारम्=इस शैली से । यहाँ पूर्वपद रहते कृ धातु से णमुल्, णिति परे अच् स्थाने वृद्धिः । यहाँ (कारं) का प्रयोग

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोगानर्हं इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवंकारम्। कथंकारम्। इत्थंकारं भुङ्क्ते। सिद्धेति किम्-शिरोऽन्यथा। कृत्वा भुङ्क्ते।

इत्युत्तरकृदन्तम्।

अथ विभक्त्यर्थाः

८८८ प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचन-मात्रे प्रथमा २।३।४६।

न भी हो तो कोई क्षति नहीं। अन्यथा इत्थं एवं भी होते है इसलिये सिद्धः=कृ धातु से सिद्ध (कारं) का अप्रयोग रहने पर (वही अर्थ होने से) णमुल्। सिद्धेति किम्? कृ का सिद्ध प्रयोग (कारं के बिना भी इष्ट अर्थ निकले, ऐसा क्यों कहा? शिर को घुमाकर खाता है। अन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते यहाँ णमुल नहीं हुआ। क्योंकि यहाँ कृ व्यर्थ नहीं है इसलिये उसका कर्म शिरः हो सका।

॥ इति प्राभाकरी टीकायामुत्तरकृदन्तं समाप्तम् ॥

क्रियान्वयी कारकोंमें कर्ताकारकका प्रकाशक (बोधक) सु औ जस् इति प्रथमाका अर्थ (८) प्रातिपादकार्थश्च लिङ्गञ्च परिमाणञ्च, वचनञ्च तानि प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि, तानि एवमात्रं, तस्मिन्, प्राति-मात्रे अर्थे प्रथमा। यहाँ एव शब्द अवधारण दृढ़निश्चय, मर्यादा अर्थमें प्रयुक्त हैं। द्वन्द्वान्ते-श्रूयमाणं पदं प्रत्येकं सम्बध्यते द्वन्द्वसमास के अन्तमें, सुना गया (मात्र) शब्द प्रत्येकके साथ जुड़ता है। अतः प्रातिपदिकार्थमात्रे, लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे, वचनमात्रेऽर्थे (प्रातिपदिकके अर्थमें लिङ्ग, परिमाण वचनमात्र अर्थमे प्रथमा विभक्ति हो। वाक्यार्थबोधे पदार्थज्ञानं : कारणम्। पदोंके अर्थज्ञान होनेपर ही सूत्रके वाक्यार्थ का ज्ञान होगा। अतः नियत = व्यापकरूपसे, उपस्थिति = ज्ञान हो जिस अर्थका वही प्रातिपदिकार्थ है। जैसे—राम शब्दमें, राम 'रामत्व, पुलिङ्ग-पुंस्त्व मर्यादा अर्थका नियत (व्यापक) जहाँ-जहाँ राम शब्द रहे वहाँ-वहाँ ये अर्थ उपस्थित रहें। यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते सति यस्यार्थस्य नियमेन (व्यापकरूपेण) भानं (ज्ञानम्) भवति स प्रातिपदिकार्थः। जिस शब्दके उच्चारणसे जो अर्थ सर्वत्र व्यापकरूपसे समझमें आवे वही अर्थ प्रातिपदिकार्थः। उसीमें प्रथमा हो। शङ्का यद्यपि जाति, व्यक्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नियतोपस्थितिक: प्रातिपदिकार्थ:। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योग:। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। प्रातिपदिकार्थमात्रे—उच्चै:। नीचै:। कृष्ण:। श्री:। ज्ञानम्।

लिङ्ग सङ्ख्याकारक ये पांच प्रातिपदिकके अर्थ प्रसिद्ध हैं। **नियतोपस्थिक:** अर्थ कैसे ? यदि उक्त अर्थ ही प्रातिपदिकार्थ होंगे तब लिङ्ग, वचन (सङ्ख्या) ग्रहण व्यर्थ हो जायेंगे। क्योंकि वे भी प्रातिपदिकार्थमें गतार्थ हैं। लिङ्ग व्यर्थ होकर नियम घोषित करता है कि जो **अर्थ सभी देशकालमें असन्दिग्ध एकरस उपस्थित रहें वही प्रातिपदिकार्थ माने जाँय**। नियतोपस्थितिक: प्रा०। जाति व्यक्ति **अर्थ नियत** = व्यापक है लिङ्ग आदि कहीं अनियत भी हैं। वे प्रातिपदिकार्थ नहीं हो सकते। अत: सूत्रमें लिङ्गका पढ़ा जाना उचित है। वह **(अनियतलिङ्गमें प्रथमा हो)** ऐसा कहेगा। प्रातिपदिकार्थमात्रकी उपस्थिति है। सूत्रमें मात्र शब्दका प्रत्येकके साथ योग: = सम्बन्ध: है। प्रातिपदिकार्थमात्रे (जाति व्यक्ति) लिङ्ग वचन मात्र मर्यादित अर्थ कहनेके लिए **प्रथमा** हो। **लिङ्गमात्रे** प्रथमा। एक ही शब्दमें अनेक लिङ्ग भी हैं। वहाँ लिङ्गमात्रका आधिक्य माना जायेगा। **परिमाण मात्र** सङ्ख्यामात्र अर्थमें प्रथमा हो। प्रातिपदिकार्थ = जिस अर्थका व्यापकरूपसे ज्ञान हो उस अर्थको कहनेके लिए प्रथमा हो। शब्द तीन प्रकारके हैं। **१—अलिङ्ग २—नियतलिङ्ग, ३—अनियतलिङ्ग। १—अलिङ्ग**—यथा—उच्चै:। इस अव्ययशब्दका उच्चै: (अधिकरण = ऊँचास्थान नीचै: अधो अधिकरण (नीचा स्थान) ऊँचा नीचा अर्थबोधकप्रातिपदिकार्थलिङ्गरहित व्यापक है। अत: प्रथमा। **२—नियतलिङ्ग**। जिस शब्दमें जाति व्यक्तिके साथ लिङ्गनियत (व्यापक) किसी कालमें अन्तर न पड़े वह नियतलिङ्ग है। यथा—कृष्ण शब्दमें कृष्ण-व्यक्ति, कृष्णत्व गुण, पुलिङ्ग (पुंस्त्व) वसुदेवके पुत्र (वासुदेव) व्यक्तिवाचक शब्दमें ये अर्थ सभी देशकालमें सर्वत्र स्थायी निश्चित हैं वहीं प्रातिपदिकार्थे प्रथमा। काला गुणवाचक कृष्ण शब्द अनियत लिङ्ग है। यथा—कृष्ण: सर्प: कृष्णा शाटी, कृष्णं वस्त्रम्। यह नियतलिङ्ग न होनेसे प्रा० का उदाहरण नहीं होगा। वासुदेव अर्थवाला कृष्ण शब्द ही उदाहरण है। **'कर्षति भक्तानां मन:'** इति कृष्ण: (वासुदेव:)। **श्रयति सेवते, पुष्यति, लोकान्** इति श्री: (लक्ष्मी) में नित्यस्त्रीलिङ्ग लक्ष्मीरूप अर्थका व्यापक ज्ञान है। प्रा० कार्थे प्रथमा। ज्ञायते यत्तत् (जो कुछ जाना जाय) ज्ञानम्। यहाँ **क्लीबत्व** = नित्यनपुंसकलिङ्गका ज्ञान नियत (निश्चित, व्यापक) सर्वत्र उपलब्ध है। उन्ही अर्थमें निश्चितलिङ्ग होनेसे नियत उपस्थित है। अत: प्रा० मानकर प्रथमा। उच्चै: नीचै: में भी प्रथमाका व्यापक अर्थ है। अव्ययादाप्सुप: से विभक्तिलुक्। **लिङ्गमात्राद्याधिक्ये** = केवल लिङ्गमात्र अर्थ अधिक हों वह अनियतलिङ्ग है अधिकशब्द देने का तात्पर्य यह है कि जाति व्यक्ति अर्थ ज्ञात

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

लिङ्गमात्रे–तटः। तटी। तटम्। परिमाणमात्रे–द्रोणो व्रीहिः। वचनं= संख्या। एकः। द्वौ। बहवः। ९ सम्बोधने च २। ३। ४७। प्रथमा स्यात्।

होनेपर ही। अथवा लिङ्गमात्र अर्थ कहना ही उचित था तथापि प्रातिपदकार्थज्ञानके बिना लिङ्गका ज्ञान असम्भव हैं। इसलिए आधिक्य कहाँ। जहाँ शब्दमें एकलिङ्ग, नियत, व्यापकरूपसे उपस्थित नहीं है, किन्तु अनेकलिङ्ग हों वहाँ लिङ्गअर्थमें प्रथमा हो। यथा—तटः तटी, तटं यहाँ तीनो लिङ्ग होनेसे एकलिङ्गके निश्चित न रहनेसे प्रातिपदिकार्थे प्रथमा न हो सकी ; तट तटत्व जाति व्यक्तिसे अधिक, कहीं पुलिङ्ग कहीं स्त्रीलिङ्ग कहीं नपुंसक। अधिक अर्थवाचक प्रथमा विभक्ति अनियत लिङ्गोंके प्रथमार्थे लिङ्गग्रहणम्। **परिमाणमात्रे**=परिमीयते तोलनं क्रीयते येन तत् परिमाणम् (जिससे तौला-नापा जाय)। **द्रोणो व्रीहिः**=अष्टमुष्टिर्भवेत्कुञ्चा कुञ्चाष्टौ तु आढ़कम्। अष्टाढ़को भवेद्द्रोणः खरीद्रोणचतुष्टयम्। आठ मुट्ठीका एक कुञ्चा, आठ कुञ्चाका अढ़ैया। आठ अढ़ैयाका एक द्रोण, जिसका परिमाण अर्थ है। अतः द्रोण शब्दसे परिमाण अर्थमें **प्रथमा**। यद्यपि द्रोणशब्दमें द्रोण द्रोणत्व पुंस्त्व और परिमाण ये पाँच अर्थ नियत (व्यापक) होनेसे प्रातिपदिकार्थे प्रथमा सम्भव है। (तथापि नामार्थश्च नामार्थश्च नामार्थौ तयोः **नामार्थयोः** समान विभक्तिकयोः अभेदान्वयः) दो समानविभक्तिक प्रातिपदिकों अभेदका अन्वय है। तब द्रोण और ब्रीहि दोनोंमें प्रातिपदिकार्थे प्रथमा होनेसे द्रोणसे अभिन्न ब्रीहि धान्य अर्थ होगा। तब नपना, तौल और ब्रीहिके बीच **माप्य मापक** सम्बन्ध (परिच्छेद्य परिच्छेदक) **द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नोब्रीहिः** (द्रोणरुप नपनासे नपा हुआ धान्य) यह अर्थ नहीं बनेगा। परिमाण और द्रव्य एक नहीं हो सकते। अतः भेद (माप्य-मापकभाव) सम्बन्धके लिए द्रोणशब्दमें परिमाणमात्रे प्रथमा वक्तव्या। वचनं (सङ्ख्या) केवल सङ्ख्या अर्थ कहनेके लिए प्रथमा विभक्ति है। परन्तु एक+सु, द्वि+औ, बहु+जस् इत्यादौ प्रकृतिमें ही एक दो अनेक सङ्ख्या अर्थ उक्त है। पुनः सु औ जस् क्यों? **उक्तार्थनाम प्रयोगः** जो अर्थ प्रकृतिसे उक्त है वहाँ प्रथमा नहीं होगी। इसलिए 'वचन' ग्रहण किया। **न केवलाः प्रकृतिः प्रयोक्तव्याः नापिकेवल प्रत्ययः**। केवल प्रकृति या प्रत्ययका प्रयोग निषिद्ध है। अतः वचनग्रहणसे विभक्तियां स्वार्थमें या अनुवादक रूपमें होंगी। **अपदं न युञ्जीत**।

(९) **सम्बोधन** अर्थमें भी **प्रथमा** हो। प्रातिपदिकसे सम्बोध्यते अभिमुखी क्रियते व्यक्तिविशेषो येन तत्सम्बोधनम्। अपनी तरफ सुनने या समझनेके लिए किसीको आकृष्ट करना। उसका वाचक हे, है, अरे, अबे, धिक्, मूर्ख आदि शब्द

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हे राम !

८९० कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९। कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्। १ कर्मणि द्वितीया २।३।२। अनुक्ते कर्णणि

है। जो शब्द (हे राम मां पाहि) (हे शब्दसे रामको) आकृष्ट करने अर्थमें हो उसीसे प्रथमा हुई। हे राम+स् एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः इति सम्बुद्धिसकारस्य लोपे। इति प्रथमा। अथ द्वितीया (अम् औट शस्) र्थः।

(८९०) कर्तुः=कर्ताकी, क्रियया (क्रियासे) उत्पन्न फलसे (फलके आश्रयके लिए) ईप्सिततम् = (कर्ता) यम् ईप्सति=जिसको जोड़ना (चाहता है।) अथवा। यत् ईप्स्यते=सम्बन्धुमिष्यते (आप धातुका सम्बन्ध जोड़ना अर्थ है।) उससे सन् प्रत्ययका इच्छा अर्थः। क्त प्रत्ययका कर्म अर्थः। तमप् का अत्यधिक अर्थः। तत् ईप्सितम्-कर्तरि विद्यमाना या क्रिया तया उत्पन्नं फलं, फलस्य आश्रय रूपेण इष्टं अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमम् आप्तुम् इष्टतमं कारकं कर्म। कर्ताकी क्रियासे उत्पन्न फलको ईप्सितम् आप्तुं सम्बन्धुं (आश्रय) से जोड़नेके लिए इष्टतम् बहुत अभिलषित इच्छाका उद्देश्यविषय (फलका आश्रय) ऐसे कारक (क्रियान्वयी) को कर्म (फलाश्रय) संज्ञा हो। जिसका क्रियामें साक्षात् या परम्परया अन्वय हो उसे **कारक** कहते है **क्रियाजनकत्वं कारकत्वं** यथा—कर्ता कर्म करणका साक्षात् अन्वय। **नारदः स्तवेन हरिं भजति**। कर्ता नारद हैं। तद्वृत्तिः (उनमें वर्तमान) क्रिया भजन = (प्रसन्नताके अनुकूल) क्रिया उससे उत्पन्न फल प्रीति (प्रसन्नता रुप) फलको आप्तुं सम्बन्धुं (सम्बन्धित करनेके लिये) इष्टतम् अति अभीष्ट इच्छाका विषय हरि है। भजनका फल हरि (प्रसन्न हों) प्रसन्नता रुप फलका आश्रय (हरि) को कर्मसंज्ञा हुई। मेरे भजनरूप क्रियासे उत्पन्न प्रीतिरूपका आश्रय हरि हों, जो इच्छाका उद्देश्य हैं इति कर्म संज्ञा (१) अनभिहिते=अनुक्ते=प्रातिपदिक के अर्थ उक्त न हो। (प्रत्ययसे न कहा जाय।) तब कर्मसंज्ञकसे द्वितीया हो। इति द्वितीया हरिं भजति। एवं ग्रामं गच्छति कृषकः। कर्तामें विद्यमान गमन क्रिया। उसका फल संयोग (पहुचना) उसका आश्रय ग्रामको कर्मसंज्ञा। ओदनं पचति (चावल पकाता है) पाक क्रियाजन्यफल (मुलायमपनका आश्रय ओदन (तण्डुल) है कर्मसंज्ञाफलम्। उक्ते कर्माणि द्वितीया भवति अनुक्ते वा तन्निर्णायकं वचनं सूत्रञ्चोच्यते। यस्मिन्नर्थे विधीयन्ते, त्वादितव्यादितद्धिताः। समासोवा भवेत् यत्र स उक्तः प्रथमा ततः। जिस अर्थमें तद्धित कृदन्तके प्रत्यय हों, और समास हो, वहाँ जो अर्थ उक्त हो, उसीमें प्रथमा हो।

अभिहिते—प्रातिपदिकका अर्थ उक्त = प्रत्ययसे कहा गया हो। ऐसे कर्मादौ =कर्मकरण सम्प्रदान आदिमें प्रथमा। कर्मणि प्रत्यये च प्रथमा। यथा—लक्ष्मी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीया स्यात् । हरिं भजति । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा । हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितः । २ अकथितं च १।४।५१ । अपादानादिविशेषैरविवक्षितं

हरिं सेवते इति (लक्ष्म्याः) हरिः सेव्यते । लक्ष्मीसे हरि सेवा पा रहे हैं । सेवा अर्थमें सिव धातुका (कर्म) हरि है । कर्ममें (ते) प्रत्यय । कर्मका परिचायक (यक्) होनेसे कर्मरूप प्रातिपदिक अर्थ (व्यापक) हो गया । जाति व्यक्ति लिङ्ग आदि अर्थ प्रकाशिका प्रथमा हुई । अनुक्ते कर्मणि द्वितीया यदि कर्म अर्थ (प्रातिपदिकार्थ) उक्त (मुख्य) नहीं होगा, वहाँ द्वितीया होगी । कर्म अर्थ अधिक होनेसे नियत उपस्थिति नहीं है । लक्ष्मी (हरिं असेविष्ट), हरिकी सेवाकी । इति (लक्ष्याः) हरिः सेवितः । कर्ममें क्त प्रत्यय होनेसे कर्मका प्रातिपादिकार्थ जागृत हुआ । उक्ते प्रथमा हुई । कर्मादौ—में आदि पदसे कर्ताकर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान आदि भी लिए जाते हैं । कर्तामें प्रातिपदिकके अर्थका बोधकप्रत्यय हुआ हो, तब प्रथमा हो । अन्यथा = अनुक्त कर्ता होनेपर कर्तृकरणयोस्तृतीया हो । लक्ष्म्या में तृतीया हुई ।

(२) अकथितम् = अविवक्षितम् । अपादान, सम्प्रदान- करण, अधिकरण-कारकोंका विषय होनेपर उन्हें कहनेकी इच्छा न हो, किन्तु कर्म कारक कहनेकी इच्छा हो, तब कर्मसंज्ञा, कर्मणि द्वितीया । न कहिये कि बाणः हस्तं शिरसि निदधाति बाण हाथको शिरपर धरता है । यहाँ भी शिरसि शब्दमें सप्तमीकी अविवक्षा करके कर्मका प्रसङ्ग हो जाय ? तब अकथितकारकको परिगणित करके नियन्त्रित करते हैं कि शिरसिमें द्वितीया नहीं होगी । दुह्याच—प्रपूरण र्थक दुह्—दुहने अर्थमें । माँगने अर्थमें याच् । पाकार्थक पच् दमनार्थक दण्ड, अवरोध अर्थमें रुध । प्रच्छ । चयनार्थक चि । ब्रू=बोलना । अनुशासनार्थक शास् । जय अर्थमें जि । मन्थने मथ् । स्तेये । मुष । प्रापणार्थक नी, हरणे हृ । विलेखने कृष । वह । इन सोलह धातुओंका जो कर्म उससे सम्बन्धित जो अर्थ—उसीमें अपादान आदि कारककी—अविवक्षा कहनी हो, तब कर्मसंज्ञा हो । अन्य धातुओंके कर्मसे सम्बन्धित को कर्मसंज्ञा न हो । इस गणनामें निदधाति नहीं आता । अविवक्षा दो प्रकारकी है । अपादान आदि कारक प्राप्त हों, वहाँ अविवक्षा हो, जैसे—दुह, दण्ड, चि, जि, मुष, इन धातुओंके कर्मसे सम्बन्धितको प्राप्त अपादान आदिकी अविवक्षासे कर्म हो ।

विवक्षायां पञ्चमी विभक्तिरपि रुधधातुके प्रयोगमें भी अविवक्षा विवक्षा दोनों चलती हैं । ब्रूशास् धातुके कर्मसे सम्बधित सम्प्रदानकी दोनों इच्छा शेष धातुओं में केवल कर्मविवक्षा ही इष्ट है । कर्म ही हो अकथितञ्च सूत्रसे हुए कर्म गौण कर्म है । गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष् वहाम् । लकारादिः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

दुह्याच्-पच्-दण्ड्-रुधि प्रच्छि-चि ब्रू-शासु-जि-मथ्-मुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृ-कृष्वहाम् । १ ।

गां दोग्ध पयः । बलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानोदानं पचति । गर्गान् शतं दण्डयति । व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । वृक्षमवचिनोति फलानि । माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति । ग्राममजां नयति, हरति,

---

गां दोग्धि पयः । गायसे दूध दुहता है । दोहनक्रियाका मुख्य कर्म पय (दूध) है । उस क्रियाकी अवधि (सीमा) आरम्भ गौसे है । गोशब्दको प्राप्त अपदाने पञ्चमीकी अविक्षा — कहनेकी इच्छा नहीं हुई । किन्तु कर्म की विवक्षा होनेपर अकंथितञ्च सूत्रेण कर्मसंज्ञा द्वितीया । यह गौण कर्म है । मुख्यकर्म वह है जो कर्ताको इप्सितम् (अतिअभीष्ट) कारक हो । पञ्चमीकी इच्छासे (गोः पयोः दोग्धि) भी होगा । बलिं याचते वसुधां (राजाबलिसे भूमि माँगते हैं) याच् धातुका मुख्य कर्म मांगनेकी वस्तु वसुंधा है । मांगने क्रियाकी अवधि (आरम्भ) बलि है । बलिमें अपादानकी अविवक्षा करके उसमें कर्मकी इच्छासे कर्मसंज्ञा भी आदिः । इच्छापक्षमें "बलेः" पञ्चमी भी होगी । तण्डूलान् ओदनं पचति चावलसे भात पकाता है । ओदन (भात) चावलके अवयवोंका शिथिलीकरण, मुलायमपनका साधक तण्डुल है । ओदन — विकृति (कार्य) तण्डुल-प्रकृति (कारण) है । तण्डुलमें करणकी अविवक्षासे कर्मसंज्ञा । इच्छापक्षमें तण्डुलेभ्यः भी होगा । गर्गान् शतं गर्गोंसे सौमुद्रा अपराध दण्ड लेता है । मुख्यकर्म शतं लेनेकी अवधि गर्ग, अपादानकी अविवक्षासे कर्मसंज्ञा । पक्षमें गर्गेभ्य भी । ब्रजं (व्रजमें गायको रोकता है) ब्रजमें (अधिकरण) अविवक्षित होनेपर कर्मसंज्ञा । (द्वितीया) माणवकः पन्थानं पृच्छति । बालकसे रास्ता पूँछता है । अपादान अविवक्षित है गौणकर्म हुआ । चतुर्थीविभक्ति अविवक्षित हुई कर्मसंज्ञा । वृक्षं वृक्षसे फूलोंको चुनता है । फलचयन क्रियाकी अवधि वृक्षमें अविवक्षितकर्म । माणवकं धर्मं बालकके लिए धर्म समझाते या शासन करते हैं । जिसका उद्देश्य माणवक है चतुर्थीकी अविवक्षा, शतं जयति । देवदत्तसे सौरुपया जीतता है) देवदत्तमें अपदानकी अविवक्षा में कर्म । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । अमृतके लिए दूधसमुद्रको मथता है । यहाँ क्षीरनिधि गौण-कर्म हैं । सुधा मुख्यकर्म । क्योंकि मथधातुका मन्थनपूर्वक मक्खन (सुधा) निकालना अर्थ है । वही मुख्य कर्म । अतएव देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्मन्थे इति भारविः । गौणकर्म मानकर कर्ममें लकार हुआ अतएव स्थाली पचति । अग्निः पचति वाक्यभी होते हैं । स्थाली अग्नि भी पाकक्रिया की सिद्धिमें स्वतन्त्र स्वीकृत है । देवदत्तसे सौ रुपया चुराता है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कर्षति, वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि। ३ स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्। ४ साधकतमं करणम् १।४।४२। क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

८९५ कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८। अनभिहिते कर्तरि करणे

ग्राममजाम्- गाँवमें बकरीको ले जाता है, खींचता है, हरण करता है। ग्राममे अधिकरणकी अविवक्षा। यत्र अन्यकारकं नहि कथयितुमिष्टस्तत्र अकथितं चेति गौण कर्म "अर्थनिबन्धना" परिगणित धातुओंके अर्थ हैं, उस अर्थ के वाचक अन्य धतुके कर्मसे सम्बन्धितको भी अविवक्षित कर्म कहें। जैसे—बलिसे भिक्षा मागता यहाँ भिक्ष धातुके योगमें गौण कर्म हुआ। माणवक के साथ धर्मका भाषण प्रवचन व्याख्यान करते हैं ब्रूधातुके बदले भाष, वच के योगमें गौणकर्म हुए इति द्वितीया। अथ तृतीया=(टाभ्यां भिस्) र्थाः।

(३) स्वतन्त्रः कर्ता किसी क्रिया (व्यापार) की सिद्धमें स्वतन्त्र=स्वाधीन हो, पराधीन न हो, ऐसा, विवक्षित (वक्ताको इष्ट) अर्थ कर्ता है। वह क्रिया धातुका अर्थ तो। विवक्षाका भाव (इयं क्रिया अनेनैव साधनीया यह क्रिया इन्हीं से सिद्ध होगी। वही कर्ता (गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृ आदि) अर्थ हो तो (४) साधक=साधयति क्रियाफलं जनयति साक्षादुपकारं करोति साधकम् अतिशयेन साधकं साधकतमं करणं=क्रियते फलं जन्यते येन तत्। किसी भी क्रियाकी फल सिद्धिमें प्रकृष्ट (श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष उपकारक जो हो उसकी करणसंज्ञा हो। जिस साधनकी क्रियासे (बिना व्यवधानके) फल सिद्ध हो वह प्रकृष्ट है। यद्यपि सभी कारक क्रियाके उपकारक हैं। तथापि करणके अतिशय उपकारक होनेसे तमप् (अतिशय अर्थ) का प्रयोग सत्य होगा। एकसाथ एकफलका एक ही कारक उपकारक होगा। साक्षात् सहायक कारकको करणसंज्ञा हो। यथा—रामेण बाणेन हतो वाली। रामके बाणसे वाली मारा गया। वालीका हनन (हिंसा, मृत्यु, प्राणवियोग व्यापार) क्रियामें स्वतन्त्र होनेसे रामको कर्तृसंज्ञा। कर्तरि तृतीया। रामके बाणवेधनसे यद्यपि प्राणवियोग हुआ तथापि केवल रामकी हनन (व्यापार) क्रियासे ही प्राण वियोग नहीं हुआ अपितु रामसे छोड़े गये बाणकी क्रिया (व्यापार) से वाली की मृत्यु हुई। इस बधमें बाण-साक्षात् सहायक, साधकतम, प्रत्यक्ष उपकारक है। उसकी करणसंज्ञा।

(८९५) कर्तृ=कर्तृसंज्ञा और करणसंज्ञा हुई हो (यदि वह अनुक्त) (उस अर्थमें प्रत्यय न हुआ हो) तब उससे तृतीया विभक्ति हो। यह विभक्ति

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो वाली। ६ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२। दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्। ७ चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३। विप्राय गां ददाति। ८ नमः स्वस्ति-स्वाहा-स्वधाऽलं-वषड्योगाच्च २।३।१६। एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्तिः। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति

आश्रय और क्रिया दोनोंकी बोधिका है। बाणमें करणे, राममे कर्तरि तृतीया। धात्वर्थ क्रियाश्रयत्वं कतृत्वम् उक्ते कर्मणि प्रथमा। वाली (उक्तकर्म) है। हतः में कर्मणिप्रत्ययः इति तृतीया। अथ चतुर्थी ङेभ्यां भ्यस् का अर्थः (६) दान = दाधातुकी कर्मणा — (फलके आश्रय-कर्मसे) यं=जिसको अभिप्रैति सम्बन्धुमिच्छति। स्वीकृतसम्बन्ध जोड़ना चाहता है उसको सम्प्रदानसंज्ञा हो। सम्यक् प्रदीयते=स्वाधिकारं समाप्य समर्प्यते यस्मै (विप्राय) तत्सम्प्रदानम्। स्वस्वत्व = अपना अधिकार निवृत्तिपूर्वक (त्यागकर) पर (इष्टका स्वीकृत अधिकार स्थापित होना सप्रदान है। इति वृत्तिकारः यथा—धनी विप्राय गां ददाति। ब्राह्मण को गाय देता है। धनीं क्रियाका फल (दान) उसका आश्रय गायसे अपना अधिकार निवृत्ति (समझ) कर इष्टव्यक्ति (विप्र) का अधिकार सिद्ध करता है। उसी (दान) रुप फलका आश्रय (गाय) कर्म है। उस कर्मका विप्रसे स्वीकृत सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। किसके (लिए) या उद्देश्यसे गोदान करता है? विप्रके। उसीको सम्प्रदानसंज्ञा (७) सम्प्रदान संज्ञा होनेपर चतुर्थी विभक्ति हो। जिसका उद्देश्य (के लिए) अर्थः। इत्यनेन चतुर्थी। यहाँ दानशब्द उपलक्षण है। तत्स्वं बोधयन् परानपि बोधयति। अपना ज्ञान करता हुआ अन्यका भी ज्ञान करता है। अतः कर्ता क्रियामात्रस्य यत्कर्म तेन सह सम्बन्धु यं पदार्थम् अभिप्रैति स सम्बन्धोद्देश्यः सम्प्रदान संज्ञकः। किसी भी क्रियाका कर्म जिसके लिए हो उन सभीको सम्प्रदानसंज्ञा तथा चतुर्थी हो। इसलिए रामः सीतयै वार्तां प्रेषयति। आसुरेन्द्राय समाचरं कथय। तुभ्यं हितम् उपदिशामि। राजकाय वस्त्रं ददाति। के लिए मात्र चतुर्थीका विषय है। यह कारक चतुर्थी हुई। उपपद = पदके सम्बन्धमें होनेवाली चतुर्थी प्रस्तुत करते हैं। (८) नमः — नमस्कार, स्वस्ति कल्याण, स्वाहा (देवताको दान) स्वधा (पितरोकोदान) अलं (सशक्त) वषट् (दान) इन अव्यय शब्दोंके योग — सम्बन्धमें चतुर्थी हो। यथा—हरयेनमः (हरिको नमस्कार) नमः शब्दयोगे (नमः स्वस्ति) आदि सूत्रेण चतुर्थी। प्रजाभ्यः स्वस्ति। प्रजामात्रका कल्याण हो। स्वस्तियोगे चतुर्थी। अग्नये स्वाहा अग्निको पितृभ्यः स्वधा पितरोंको) देता है। स्वधा योगे चतुर्थी। अलमिति-सूत्रमें अल शब्द पर्याप्ति (पूर्णता) अर्थका ग्राहक है। दैत्योंकेलिए भगवान् अलं — पर्याप्त,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पर्याप्त्यर्थं ग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि। ९ ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४। अपायो=विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात्।

९०० अपादाने पञ्चमी २।३।२८। ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पततीत्यादि। १ षष्ठी शेषे २।३।५०। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी स्यात्। राज्ञः पुरुषः। कर्मादीना-

---

समर्थ, पूर्ण हैं। अलंशब्द प्रभु समर्थ, शक्तका भी बोधक है। उन सभीके योगमें चतुर्थी हुई। वषट् (वेदमें प्रयुक्त) का भी दान अर्थ.। इति चतुर्थी। अथ पञ्चमी ङसिभ्यां भ्यस्। (९) अपाय ·अपेति=विश्लिष्यति। विभाग, विश्लेष अलग होनेकी क्रिया, तस्मिन्साध्ये=उस क्रियाके रहनेपर जो ध्रुव=स्थिर निश्चित अवधिभूत, सीमा-क्रिया अलगावका आरम्भ जहाँसे हो, उस अवधिभूत कारकको अपादानसंज्ञा हो। अपादीयते क्रियायाः आरम्भः क्रियते यस्मात्तत् अपादानम्। विभागजनकव्यापारानाश्रयत्वे सति विभागाश्रयत्वम् अपादानत्वम्। यथा-धावतो अश्वात् पतति (भागते हुए घोड़ेसे गिरता है) देवदत्तका घोड़ेसे पतन गिरना, अलगाव होना है। विभाग विश्लेष, अपाय, जनक, विभाग क्रियाकी अवधि, सीमा, शुरुआत ध्रुव, अश्व है। तस्य अपादानसंज्ञा।

(९००) अपादानसंज्ञकसे पञ्चमी हो। अश्वात्में पञ्चमी हुई। ग्रामात् आगच्छति गाँवसे आता है। आनेकी क्रिया गाँवसे शुरु हो रही है। विभागपूर्वक संयोगके अनुकूल क्रियाकी अवधि अलगावका आरम्भ ग्रामसे है तस्य अपादानसंज्ञा। इति पञ्चमी, (१) ङस् ओस आम् षष्ठीका अर्थः। शेषे=उक्तादन्यः शेषः। अभीतक कारक और प्रातिपदिकार्थ उक्त हुए। उस अर्थसे व्यतिरिक्तः=बचा हुआ (अवशिष्ट) अर्थ स्वस्वामिभाव, जन्यजनक आदि सम्बन्ध शेष है, सभी सम्बन्धअर्थमें षष्ठीविभक्ति हो। यथा—राज्ञः पुरुषः। राजाका पुरुष स्वामि-सेवकभाव सम्बन्धको कहनेके लिए राज्ञ.में षष्ठी हुई। राजस्वामिकःसेवकः पुरुषः। राज'सम्बन्धी पुरुष राजाका विशेषण है। जो विशेपण हो उसीका सम्बन्ध कहने वाली षष्ठी हो। कर्मादीनाँ=कर्म करण अधिकरण आदि कारककी सम्बन्ध मात्रविवक्षा हो वहाँ भी षष्ठी हो। यथा—सन्तः वनम् अगमन् इति सद्भिः सताङ्गतम्। यहाँ सज्जनका गमनके साथ केवल सम्बन्ध अर्थ वाचिका षष्ठी। सर्पिषो जानीते। सर्पिषोपायेन प्रवर्तते घीके लिए घुसता है। केवल सम्बन्ध मात्रमें षष्ठी। घी सम्बन्धी ज्ञान। मातुः स्मरति माता सम्बन्धी स्मरण अर्थमें षष्ठी। स्मरणक्रियाका कर्म होनेपर भी सम्बन्धकी विवक्षासे मातुः में षष्ठी। एधोदकस्य=लकड़ीपर जलका गुण चढ़ता है। दक=(जलमें कर्मकी अविवक्षासे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

मपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधो दकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः। २ आधारोऽधिकरणम् १।४।४५। कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात्। ३ सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६। अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः। औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा। कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति मोक्षे इच्छाऽस्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति। वनस्य दूरे अन्तके वा।

इति विभक्त्यर्थाः।

षष्ठी) शम्भोः=शङ्कर भगवान्के चरणोंमें भजे–सेवा करता हूँ। चरण रूप कर्मकी अविवक्षासे चरणयोः में षष्ठी। इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् सप्तमी काअर्थः (२) कर्ताकर्मके माध्यमसे तन्निष्ठ=उनमें (कर्ता कर्ममें) रहनेवाली क्रियाओंके आधार (कर्ता आदिका आधारभूतकारक अधिकरणसंज्ञक हो। अधिक्रियते अस्मिन्निति अधिकरणम्। यद्यपि कर्ताकर्म क्रियाके साक्षात् आधार हैं। तथापि उनके माध्यमसे (परम्परया) क्रियाका अन्य आधार भी हैं। (३) अधिकरणसंज्ञकसे सप्तमी हो। च=पढ़नेका फल दूर और अन्तिक अर्थमें भी सप्तमी हो। यह आधार तीन हैं। (१) औपश्लेषिक=उप (समीपे) श्लेषः सम्बन्धः उपश्लेषः। तत्कृतम् अधिकरणम् औपश्लेपिकं, यथा - कटे आस्ते बैठना (आसन) क्रियाका आधारकर्ताका कट-चटाईके साथ संयोग (समीप) सम्बन्ध है। अतः आसन् क्रियाका परम्परया आधार कटकी अधिकरणसंज्ञा। अधिकरणे सप्तमी। स्थाल्यां पचति। स्थाली भी तण्डुलके माध्यमसे पाक क्रियाका आधार (अधिकरणसंज्ञक) है। (२) वैषयिक=विषये-भवः वैषयिकः। यह आधार किसी विषय अर्थका वाचक है। यथा—मोक्षे इच्छास्ति। मोक्षके विषयमें इच्छा है। अस्तिक्रियाका कर्ता इच्छा है। उसके माध्यमसे इच्छाका विषय मोक्ष भी क्रियाका आधार अधिकरणसंज्ञक) हुआ। सर्वस्मिन्नात्मास्ति। आत्मा सबमें है। यत्र सर्वावयवव्याप्तिः तदभिव्यापकम्। जो सभी अङ्गमें व्याप्त हो वह अभिव्यापक है। सर्वशब्दो अधिकरणसंज्ञकः अधिकरणे सप्तमी, वनस्य दूरं या समीपं (अन्तिक) अर्थमें सप्तमी हुई। दूरेऽन्तिके वा।

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः कृष्णं नमस्याम्यहम्।
कृष्णेनामरशत्रवो विनिहताः कृष्णाय तस्मै नमः।
कृष्णादेवसमुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहम्।
कृष्णे तिष्ठति सर्वमेतदखिलं हे कृष्ण रक्षस्वमाम्॥

इति प्रभाकर्यां कारकप्रकरणम्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ समासाः

समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः। स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः। प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः ! तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो द्विगुः। प्रयेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः। प्रायेणोभय-

---

अथसमासा :--तत्रादौ=सबसे पहले केवल समास प्रारम्भ करते हैं। समसनं=बहूनां पदानां मिलित्वा एकपदी भवनं समासः। एकार्थीभाव अनेक पद मिलकर एक अर्थ होना समास शब्द का अर्थ है। वे पांच हैं। पांचों समासो का लक्षण-सच=वह समास जो विशेष संज्ञा-अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व आदि नाम (संज्ञा) और उनके लक्षण (तात्पर्य) से मुक्त हो वह केवल समास प्रथमः कहलाता है। जैसे-भूतपूर्वः इसमें किसी समास का लक्षण न घटने से यह स्वतन्त्र विशेष नाम रूप रहित समास प्रथम है।

२—प्रायः (बहुधा) पूर्वपदार्थप्रधान=जिस समास में पहले पद का अर्थ मुख्य (प्रधान) हो वह अव्ययीभाव समास है (पूर्वपदस्यार्थः प्रधानं यत्र) यथा-अधिहरि, उपकृष्णं समासशब्दों में अधि, उप अर्थ की प्रधानता है। (अधि) का अधिकरण (हरि में) अर्थः। (उप) का समीप (कृष्ण के समीप अर्थः) प्रायः पद से सूचित है कि कहीं पूर्वपद का अर्थ प्रधान नहीं भी है। यथा-उन्मत्ता गंगा यस्मिन् देशे (उमड़ी हुई गङ्गा जिसके देश में हों) वह उन्मत्तगङ्गं है। यहाँ अन्य पदार्थं (देश) प्रधान होने पर भी अव्ययसमास माना गया। इसलिए अव्ययाधिकारपठितत्वम् अव्ययत्वम्।

३—प्रायः करके उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो जिस समास में वह तत्पुरुष समास है यथा-संकुलाखण्डम् आनय। (सरौतासे किया गया टुकड़ा लाओ) यहाँ उत्तरपद (खण्ड) का अर्थं टुकड़ा ही लाया जायेगा। प्रायः कहने का फल पञ्चानां तन्त्राणां समाहारः पञ्चतन्त्रं (पांच प्रकार के विचारों का समुदय) जो अन्य पदार्थ है, वहाँ भी तत्पुरुष लक्षण माना जाय। तत्पुरुषाधिकार पठित्वं तत्पुरुषत्वम्। तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय है, कर्म (विशेषणं) धारयति (शुद्ध विशेषण धारण करे, जहां समान विभक्तिवाले विशेषण विशेष्य सम्बन्ध हो) वह कर्मधारय (उत्तरपदार्थप्रधान अर्थ वाला) है। यथा—नीलोघटः समान विभक्ति विशेषणविशेष्यभावसम्बन्ध, उत्तरपदार्थप्रधानलक्षण घट गया। कर्मधारय का ही एक भेद द्विगु है। जो संख्यापूर्वक है। यथा-पञ्चानाम् अजानां

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः। ४ समर्थः पदविधिः २।१।१। पद-सम्बन्धी यो विधिः सः समर्थाश्रितो बोध्यः।

समाहारः पञ्चाजम्। पञ्चसंख्या पूर्व में हो जो अजाका विशेषण हो। द्विगु है।

४—प्रायः बहुधा अन्यपदार्थ (उच्चारित शब्दों से) भिन्न किसी का अर्थ प्राधान्य हो, वह बहुव्रीहि समास है। बहु--अनेक, व्रीहि=विशेषण। अनेक विशेषणों का तात्पर्य एक अन्य अर्थ में घटे। यथा–दृष्टः सागरो येन तं दृष्टसागरम् आनय (जिसने सागर को देखा हो उसे लाओ) यहां उच्चारितशब्द दृष्ट और सागर है। उससे भिन्न किसी व्यक्तिरूप अर्थ का प्राधान्य हुआ प्रायः शब्द का फल द्वौच त्रयश्च द्वित्रा जैसे द्वन्द्व=दोनों पदार्थो में भी बहुव्रीहि घटे। अतः बहुव्रीहेः अधिकारे पठितो बहुव्रीहिः।

५—प्रायः दोनों पद का अर्थ प्रधान हो उसे द्वन्द्वसमास कहते हैं। यथा–रामश्यामौ गुरुकुलात् आगच्छतः आगमन क्रिया में दोनों प्रधान हैं। यह समास अनेक पदवाला भी है। समाहार में लक्षणघटे अतः प्रायः पद दिया। द्वन्द्वाधिकारपठितत्वं द्वन्द्वत्वम्। भावात्मकतात्पर्य—द्वन्द्वोस्मि द्विगुरहं गृहे 'च' मे सततमव्ययीभावः। तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्याम बहुव्रीहिः॥ कोई व्यक्ति अपने सेवक से कहता है कि मैं द्वन्द्व=पति पत्नी दो हूं, द्विगु=दो गाय मेरे पास हैं। और मेरे घर में निरन्तर अव्ययीभाव=कम खर्च (कम परिश्रम) स्वाभाविक है। अतः हे पुरुष यह कर्मधारय=नौकरी ऐसी स्वीकार करो। जिससे मैं बहुव्रीहि बहुत धनी हो जाऊं। ४–पदविधिः पद के (उद्देश्य से) या उसकी सिद्धि के लिए जो विधि (विधान=समाससंज्ञा, तद्धित, कृत, सनाद्यन्त, एकशेष, आदिसंज्ञायें पद के सम्बन्ध में पद के उद्देश्य से विधान किये जाने से) पदविधि कहलायीं। वह विधि=परस्पर सामर्थ्य, सम्बन्ध, अन्वयशक्ति, एकार्थभाव पर आश्रित=आधारित हों। अनेक पदोंका समास एक पद के लिये होने से समास भी पदविधि कहलाया। परस्पर आकांक्षारूप सामर्थ्य=व्यपेक्षा एकार्थीभाव भेद से दो हैं। उच्चारितपदों का अस्तित्व भी बनाये रहे परस्पर आकांक्षा भी हो उसे व्यपेक्षा, यथा–राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः। राजस्वामिकः पुरुषः सेवकस्वामिभावसम्बन्ध होने से राजा और पुरुष का पृथक अस्तित्व सुरक्षित है। जहां पृथगर्थानां पदानाम् एकोपस्थितिः अलग-अलग अर्थवालों का मिलकर एकार्थ, एक उपस्थिति हो, वह एकार्थीभाव सामर्थ्य है। यथा–राजपुरुषः दोनों पद मिलकर एक अर्थ हो गये, अलग अस्तित्व नहीं।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

९०५ प्राक्कडारात् समासः २।१।३। 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्राक्समास इत्यधिक्रियते। ६ सह सुपा २।१।४। सुप् सुपा सह वा समस्यते। समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। परार्थाभिधानं वृत्तिः कृत्तद्धित-समासैकशेष-सनाद्यन्तधातुरुपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थाविवोधकं वाक्यं

---

८०५ कडारात्=कडाराः कर्मधारय इस सूत्र से पहले समास का अधिकार माना जाय, तभी समास का विधान हो। ६–सुप=सुबन्तका सुपा=सुबन्तके सह=साथ विकल्प से समास हो। समासत्वात्=समाससंज्ञा होने पर कृतद्धित-समासाश्च सूत्र से प्रातिपादिकसंज्ञा। सुपोधातु प्रातिपदिकयोः सूत्र से सुप का लुक् हो। परार्थस्य=एकार्थस्य परः=भिन्न-भिन्न उच्चरित पद मिलकर एक अतिरिक्त अर्थ बोले, वही अर्थ परार्थ है। उसका अभिधानं=बोध कराने वाली को वृति कहते हैं। वार्तनं=शब्दार्थयोः व्यवहारकारणं वृत्तिः (शक्तिः लक्षणा; व्यञ्जना) समस्यमानपदार्थापेक्षया भिन्नार्थाभिधायिका एकार्थीभावरूपा वृत्तिः, वृत्ति के ज्ञान से ही शब्द का समुचित प्रयोग सम्भव है। इसलिए वृत्ति का बहुत महत्व है। यह शब्द के धर्म और शक्ति को जागृत करती है। कुशल उपयोग में सहयोग देती है। यह वृत्ति पाँच भेद में दृष्ट है। कृत, तद्धितं, समास, एकशेष सनाद्यन्त धातु। जहाँ अनेक अर्थ मिलकर परस्पर आकांक्षावशात् एक अर्थ हो उसे वृत्ति कहते हैं। कृत्=पाठकः पठ धातु का ज्ञान या उच्चारण के अनुकुल क्रिया अर्थ है अक प्रत्यय का कर्ता, दोनों का अलग-अलग अर्थ उपस्थित है क्रियाकारकभावसम्बन्ध भी, उनका मिलकर एक (उच्चारणकर्ता) स्पष्ट-वक्ता) अर्थ परार्थ है। भिन्नार्थ है। कृदन्त वृत्ति मानी गयी। तद्धित–दक्षस्य (इन्प्रत्ययार्थ पृथक-२ होते हुए आकांक्षा से एक वर-कन्या की तरह एक दम्पती हो गये (प्रकृति कन्या प्रत्यय वर) (जन्यजनक भाव) यही तद्धिति वृत्ति है। एक शेष में भी अनेक अर्थवाले समान शब्द को एक शेष कहा गया। एक में अनेक का अर्थः। अतः वृत्ति है। सनाद्यन्त–पठितुमिच्छति पिपठिषति, पठन क्रिया और सन् प्रत्यय का अर्थ, मिलकर एक अर्थ की उपस्थिति पठनकर्मक इच्छानुकूल व्यापार अर्थ की उपस्थिति हो एकार्थवृत्ति है। वृत्तेर्यो अर्थः–ज्ञान कराने वाला वाक्य ही विग्रह है। जैसे :–पठतीति, पाठकः। मकरन्दस्य अपत्यमिति विग्रहे माकरन्दः। राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः। रामश्च रामश्च रामौ। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति इत्यादि वृत्ति–एकार्थी भाव का ज्ञान कराने वाले वाक्य का विग्रह (शरीर) है। स च=वह विग्रहोद

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वं भूतः—इति लौकिकः। पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः (इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च) वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इति केवलसमासः प्रथमः

अथ अव्ययीभाव

७ अव्ययीभावः २।१।५। अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात्। ८ अव्ययं

प्रकार का है। १—लौकिकः —लोकेभवः प्रयोगयोग्यः लौकिकः। लोक में उपयोग के योग्य हो। जैसे पठति, दक्षस्यापत्यं, राजः पुरुषः, कर्तुमिच्छति, ये विग्रह लौकिक हैं। अलौकिकवाक्य का शरीर (विग्रह) लोक में प्रयोग के अयोग्य है। जैसे—राजन् ङस पुरुष सु। यह अलौकिक है। लोक में प्रयोग के अयोग्य है। शास्त्र की सफलता के लिए कल्पनामात्र है। भूतपूर्वः (समाप्तभवन क्रिया पूर्वंभूतः जो पहले (प्राचार्य) था यह लौकिक विग्रह (वाक्य शरीर) है। लोक में प्रयोग के योग्य है। पूर्वअम् भूतसु, यह अलौकिक शरीर है। पूर्वशब्द का भूतशब्द के साथ (काल, क्रिया, सम्बन्धः) यही सामर्थ्य, शक्ति, एकार्थीभाव मानकर सहसुपा सूत्रेण विभाषा समासे। कृत्तद्धित सूत्रेण प्रा० संज्ञा तस्य अवयवसुपो लुक्। भूतपूर्वेचरट् इति सूत्रस्य निर्देशात् उच्चारणप्रमाणात् ज्ञायते यत् भूतशब्दस्य पूर्वप्रयोगो भवति। एकदेश विकृतन्यायेन प्रा० संज्ञा विभक्तिकार्ये भूतपूर्वः। पूर्वकालिकभवनक्रियाश्रयः (वा०) इवेन=इव इस अव्यय के साथ समर्थ सुबन्त का समास हो, विभक्ति का लोप न हो। यथा (वाक् च अर्थश्च) वागर्थौ इव (शब्द, अर्थ की तरह (सदृश) पार्वतीपरमेश्वर सम्पृक्त है) इति लौकिक विग्रहे वागर्थ औ इव इति अलौकिक विग्रहे वाणी अर्थ का इव = सादृश्य (समानता) समर्थ्य हुआ (वा०) से समास। विभक्तिलोप का निषेध। आव् आदेश। वागर्थाविव। वाणी और अर्थ के सदृश यह समासार्थ हुआ। समास में एकपद, एकअर्थ, एकस्वर होना अनिवार्य है पर तीनों का मिलकर ज्ञान समासार्थ होगा जिसमें ज्ञान से पुण्य होता है। अन्यथा उक्तफल नहीं होगा। समासस्वर अर्थ को प्रभावित करते हैं। सरन्तु स्वरों का अर्थ से सम्बन्ध न जोड़ना बीज को खेत में न बोने के समान दुर्भाग्य की बात है। विकल्प न होने पर भी यह समास अनित्य है। उद्घाहुरिव 'वामनः' इस कालिदास के प्रयोग से व्यत्यय भी मान्य है। इति प्रामाकर्यां केवल समासः।

अथ अव्ययीभाव :—न व्येति=विकारं न प्राप्नोति; तीनों लिंग, तीनों वचन, सात कारकों, इक्कीस विभक्तियों के विकार (कार्य) का पूर्ण प्रभाव न

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विभक्ति - समीप-समृद्धिवृद्धयर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भाव – पश्चाद्यथानुपूर्व्व – यौगपद्य – सादृश्य – सम्पत्तिसाकल्यान्त—वचनेषु २। १। ६। विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ 'हरि ङि अधि' इति

पड़े सदा एक रूप रहे। लिङ्ग संख्या कारक से विकृत न हो, उन्हें अव्यय कहते हैं। न अव्ययं, अनव्ययं=विकारसहितम्। अनव्ययस्य अव्ययभवनम् अव्ययीभावः। जो अव्यय नहीं है विकारो से भरे हैं अनव्यय (लिङ्गसंख्या कारक सहित) का अव्यय (विकाररहित) होना ऐसा समास अव्ययीभाव है। त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वासु च विभक्तिषु, सदृशं समानमेकरूपं यत्तिष्ठति तदव्ययम्। तस्य प्रकरणं, प्रक्रया, साधनिकादशा प्रारम्यते। इसमेपूर्वपद का अर्थ प्रायः प्रधान है। ६—अव्ययी=तत्पुरुषः सूत्र तक अव्ययीभाव समास का अधिकार चलता है। तत्पुरुषः सूत्र के पहले, जितने सूत्र से कार्य होंगे वे कार्य अव्ययीभाव माने जायेंगे। ८—कोई भी अव्ययशब्द विभक्त्यार्थादिषु=विभक्ति अर्थ में समीप अर्थ में, समृद्धि (सम्पन्नता) व्यृद्धि (वि+ऋद्धि)=सम्पत्ति. का विनाश। अर्थ का अभाव, अत्यय=(अधिक, नाश) असम्प्रति=अनुचित, शब्द का प्रादुर्भाव प्राकट्य। पश्चात् यथा—आनुपूर्व्यं (क्रमशः) यौगपद्य (एक साथ) सादृश्य (समानता) सम्पत्ति। शाकल्य (सम्पूर्ण) इन सोलह अर्थों में वर्तमानं=विद्यमान अव्यय शब्द का सुबन्त के साथ नित्य ही समास हो। वह अव्ययीभाव कहलाये। नित्य समास का लक्षण है कि प्रयेण बहुधा अधिकतर अविग्रहः=नास्ति लौकिकालौकिकशरीरम्। जिस समास का विग्रहवाक्य न बने वह नित्य समास है। यद्यपि यह लक्षण अस्पष्ट है और विग्रह कहने से ही समास के अर्थ का बोध सम्भव था। तब अविग्रह क्यों कहा ? अतः स्पष्ट करते हैं कि प्रायेण अस्वपद=प्रायः बाहुल्येन करके न स्वेन पदेन विग्रहो यत्र सोऽस्वपद विग्रहः जहाँ उच्चारित या आत्मीय पद के साथ विग्रह न हो (विग्रहभिन्न से) (समास भिन्न से हो) वह अस्वपद विग्रह नित्यसमास माना जाय। विभक्ति के अर्थ में वर्तमान अव्यय (नित्यसमास) का उदाहरण—अधिहरि हरौ इति लौकिक विग्रह : (हरि आधार में) इस समासार्थ में) हरि, ङि, अधि अलौकिक विग्रहे 'इति' के साथ लौकिकविग्रह, 'अधि' के साथ समास ही अस्वपद विग्रह का फल है। यहाँ सप्तमी अर्थ का द्योतक आधार अर्थ का प्रकाशक, अधि शब्द है। जो अव्यय जिस विभक्ति के अर्थ का प्रकाशक हो, उसी विभक्त्यन्त शब्द का उसी अव्यय के साथ समास समझें। हरिशब्द के साथ विभक्ति अर्थ में वर्तमान अव्यय 'अधि' का सूत्र से समास प्रा० सं० विभक्तिलोप। किस शब्द का पूर्व

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्थिते। ९ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३। समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

९१० उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३०। समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक् प्रयोगः। सुपो लुक्। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रादिपदिक-संज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः। (३७१) अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्। अधिहरि। १ अव्ययीभावश्च २।४।१८। अयं नपुंसकं स्यात्। २ नाव्य-

---

में प्रयोग हो निर्णायक सूत्र बोले—९ समासशास्त्रे=समासविधायकशास्त्र (सूत्र) में प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट (उच्चरित,) बोध्य शब्द की उपसर्जनसंज्ञा हो। प्रथमान्तपदजन्यबोधविषयो अर्थः। यथा—समाससंज्ञाविधायक शास्त्र अव्ययं विभक्ति आदि है। उसमें प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट पद अव्ययपद है उस अव्यय से बोध का विषय अधि (अधिकरण) शब्द है। इसी की उप० संज्ञा हुई, इति उप० संज्ञायां।

९१० समास में जिसको उपसर्जनसंज्ञा हुई हो, उसका पूर्व प्रयोग हो। अधिपद को उपसर्जनसंज्ञा, उसी का प्राक्=पहले प्रयोग=उच्चारण। कृत्तद्धित-समासाश्च इति प्रा० संज्ञा सुपोलुक् एकदेश एक अङ्ग के विकृत खण्डित हो जाने पर भी, अनन्यवत् अन्य नहीं माना जाता है। छिन्ने पुच्छे श्वा गर्दभो न भवति। जैसे पूँछ के खण्डित होने पर कुत्ता गर्दभ नहीं होता। एवं 'ङि' का लुक् होने पर भी हरिअधि में प्राति० संज्ञा बनी है। ततः स्वादि की उत्पत्ति। विकृत होने पर भी प्रा० धर्म सही रहा। सु और जस् इत्यादि आये। अव्ययीभाव हो गया। अव्ययीभावसंज्ञा होने पर अव्ययादाप्सुपः से सुपोलुक। अधिहरि (ब्रह्माण्डं) भगवान में संसार है। अधिविद्यं (विद्याओं में) प्रकाशते व्याकरणम्। १। जो अनव्यय अव्ययीभाव (समास में) हो गये हो वे नपुंसक हों। अस्वपदविग्रह और विभक्ति अर्थ में विद्यमान अव्यय का दूसरा उदाहरण—अधिगोपं गाः पातीति=गाय की रक्षा करता है वह (गोपाः, तस्मिन्नधि इति लौकिकवाक्य-शरीरं सप्तमी का अर्थ कहने के लिए 'अधि' अव्यय उपस्थित है। गोपाङि अधि इति अलौकिक विग्रहे, सप्तमी अर्थ में विद्यमान अधि का सुबन्त गोप के साथ 'अव्ययंविभक्ति' सूत्रेण समासे। समासशास्त्र में प्रथमा से निर्दिष्ट अव्यय (अधि) को उपसर्जनसंज्ञा। उपसर्जनस्य पूर्वप्रयोगे सुपोलुक् (अधिगोपा) अव्ययी-भावश्च इति नपुंसकसंज्ञा, नपुंसके प्रातिपदिकस्य अचः ह्रस्वे, प्रथमायाः एकवचने सु। स्वमोर्नपुंसकात् इति लुक्प्राप्ते ततः। २। अतः=अदन्त अव्ययी-भाव से परे सुप् का लुक् न हो। और पंचमीविभक्ति को, छोड़कर सभी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २ । ४ । ८३ । अदन्तादव्ययीभवात् सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना अमादेशः स्यात् गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम् ३ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २ । ४ । ८४ । अदन्तादव्ययीभवात्तृतीयासप्तम्योः-बहुलमम्भावः स्यात् । कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् उपकृष्णेन । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा संप्रति न युज्यते इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य

विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो । इति लुङ्न ज्ञेयः । ३ । ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव समास से परे तृतीया और सप्तमी विभक्ति को बहुल (इच्छानुसार) अम् आदेश हो, इसलिए अधिगोपेन अधिगोपे भी संस्कृत है। उपकृष्णं (कृष्णस्य समीपं) सत्या तिष्ठति । समीप अर्थ में वर्तमान अव्यय उपका कृष्ण के साथ 'अव्ययं विभक्ति' आदिसूत्रेण (उप) का (कृष्णङस्) सुबन्त के साथ समास हुआ । उपशब्द समासविधायक शास्त्र (सूत्र) में प्रथमासे निर्दिष्ट होने पर उपसर्जनं, तस्य पूर्वप्रयोगे । उपकृष्ण नपुंसक संज्ञायां विभक्ति स्थाने (अम्) आदेशे उपकृष्णं भक्ताः भजन्ति । तृतीया सप्तमी में विकल्प (अम्) उपकृष्णे गौराग्च्छति । मद्रदेशवासियों की समृद्धि सम्पन्नता, विकास ही सुमद्र है। मद्र 'आम्' सु । समृद्धि अर्थ में वर्तमान अव्यय 'सु' का सुबन्त (मद्र आम्) के साथ समास उप० संज्ञा, पूर्वप्रयोग, सुपोलुक्, एकदेश वि० सु, अव्ययीभाव, नपुंसकसुको अम् और नपुंसकलुक् दोनों कों वाधकर (नाव्ययीभा०) अम्भाव सुमद्रं पश्यामि । मद्रासियों को समृद्ध देखता हूं । सुमद्रात् आगच्छामि । यवनों की विनष्ट ऋद्धि (सम्पत्ति) ही दुर्यवन है । यवन आम् दुर विनष्ट ऋद्धि अर्थ में वर्तमान दुर शब्द का सुबन्तेन सह समासे पूर्वं प्रयोगे दुर्यवनम् । यवनों की नष्ट सम्पत्ति समासार्थं । मक्खियों का अभाव (सन्नाटा) समासार्थवाचक मक्षिका आम् निर । अभाव अर्थ में वर्तमान निर अव्यय का सुबन्त मक्षिका आम् के साथ समास आदि कार्य । निर का अभाव अर्थ प्रधान है । निर्मक्षिकं स्थानं पश्यामि । बर्फ का अत्यय विनाश अधिक पिघलना ही अतिहिमं हैं। बर्फ का अधिक ह्रास या अधिक ठण्ढ । पूर्वपद के अर्थप्राधान्य का ध्यान रहे । निद्रा-सम्प्रति=इस समय नीद का आना न युज्यते ठीक नहीं है । निद्रासु अति । असम्प्रति (अनुचित) अर्थ में वर्तमान अति शब्द का सुबन्तेन सह समासादि-कार्यं, नपुंसंज्ञा, ह्रस्वे अतिनिद्रम् । हरि शब्द का प्रादुर्भाव प्रकाश अर्थवाचक इति । हरि ङस् के साथ समासादिः इति हरि (हरि का प्रकाश) समासार्थ । विष्णु के बाद मैं आता हूँ अनुविष्णुरहमागच्छामि । विष्णु ङस् अनु पश्चात् अर्थ में विद्यमान (अनु) का विष्णु ङस् के साथ समासादिः । यथार्था :—

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सा-पदार्थानतिवृत्ति-सादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति। ४ अव्ययीभावे चाकाले ६।३।१८। सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले। हरेः सादृश्यं सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्त्राणां सम्पत्तिः—सक्षत्त्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते—साग्नि।

यथा शब्द के चार अर्थ हैं। १–योग्यता=जन्मान्तरीय प्रतिभा, स्वाभाविकशक्ति। २–वीप्सा क्रिया का कई बार होना ३–पदार्थ की अनतिवृत्ति=उलंघन न होना। ४–सादृश्य उदाहरणों में यथा शब्द के चारो अर्थ क्रमशः शृणु ! रूपस्य योग्यं (पड़के अनुकूल अर्थवाचक) रुपङस् अनु। यथा–शब्द के योग्यता अर्थ में वर्तमान अनुशब्द के साथ समास हो। वरस्य अनुरूपं (रूपस्य योग्यं) कन्या। अर्थम् अर्थं प्रति। एक-एक अर्थ पर बारम्बार विचार। अनेकबार अर्थ का वाचक अव्यय (प्रति) का सुबन्त अर्थ अम् के साथ समासादिकार्यं प्रत्यक्षं यथाशक्ति=शक्तिमनतिक्रम्य दानं कर्तव्यं शक्ति का अनुल्लंघन करके पदार्थानतिवृत्ति (पदार्थ का अनुलंघन अर्थवाचक) यथा का सुबन्तके साथ समासादिः।४। अव्ययीभाव समास में वर्तमान सह के स्थान में 'स' आदेश हो। परन्तु सहशब्द काल अर्थ में न हो तो। हरि के सादृश्य=समानता को सहरि कहते हैं। हरिटा सह, यथा के सादृश्य अर्थ में वर्तमान सह अव्यय का सुबन्तेन सह समासादिः। अव्ययीभावेचाकाले सह स्थाने 'स' आदेशे, 'सहरि' पठिष्यामि। हरि के साथ पढूंगा। (जेष्ठ बड़े) के आनुपूर्वी क्रम से) इस समासार्थ में अनुजेष्ठं जेष्ठता क्रमेण नियुक्तिर्भविष्यति। ज्येष्ठ अम् अनु। यौगपद्य (एककाल में) चक्र के साथ तत्क्षण। चक्र टा सह। युगपत् अर्थ में वर्तमान सह शब्द का समास, सह स्थाने स आदेशादिः सचक्रं दुर्वासा पलायते। सखि (मित्रके) सदृश समान, ससखि, मित्रं वर्तते। सखि 'टा' सह। क्षत्रियों की सम्पत्ति ही सक्षत्र हैं। सम्पत्ति अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का समासादिः सक्षत्रं पश्यामि। शाकल्य शकलस्य सम्पूर्णस्य भावः सम्पूर्णता। तृणका भी त्याग नहीं करता है। पत्तल सहित खा जाता है। सतृणमत्ति। तृण अम् सह शाकल्यस्य अर्थं वर्तमानम् अव्ययं सह इति। समासादिकार्यं। अग्निग्रन्थमधीते साग्निः पर्यन्त अर्थ में वर्तमान सह शब्द का 'अग्नि टा के साथ समासादिकार्ये, अग्निग्रन्थ तक जो पढ़ता है, वह साग्नि है। अग्नि अर्थ में वर्तमान अव्यय सहका समास, प्रा० संज्ञा, पूर्वप्रयोग, सुलोप, आदिकार्यं मुख्य हैं। भाष्यग्रन्थ पर्यन्तधीते सभाष्यम्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

९१५ नदीभिश्च २।१।२०। नदीभिः सह संख्या समस्यते। (समाहारे चायमिष्यते) पञ्च गङ्गम्। द्वियमुनम्। ६ तद्धिताः ४।१। ७६। आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्। ७ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७। शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्यीभावे। शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम्। (जराया जरस्) उपजरसमित्यादि।

।९१५। नदीवाचकशब्द के साथ संख्या वाचीशब्द का समास हो। (वा०) यह समास समाहार अर्थ में इष्यते=अभीष्ट है। पञ्चानां गङ्गानां समाहारः (पाँच गंगा नदियों का समुदाय) लौकिक विग्रहे। पञ्चन् आम्, गङ्गा आम्। नदीवाचक गङ्गा के साथ संख्यावाचक पञ्चन् का समास। प्रा० संज्ञा, सुलोपे, प्रातिपदिकान्तस्य नस्य लोपे, नपुंसकसंज्ञायां प्रातिपदिकत्वात्सु, समोर्नपुंसकात् इतिलोपे प्राप्ते नाव्ययीभावात् इति सुस्थाने अम् आदेशे। पाँच गंगा का संगम समासार्थ। द्वयोः यमुनयोः समाहारः दो यमुना का सङ्गम। नदीवाची यमुना का संख्यावाची द्वि के साथ समास, द्वि ओस् अमुना ओस् आपञ्चम अध्याय समाप्तिपर्यन्त अधिकार तद्धित का है। तद्धिताः ४।१।७६ से लेकर पञ्चम अध्याय समाप्ति तक के सूत्रों सहित सभी प्रत्यय को तद्धितसंज्ञा हो। जिसका फल कृतद्धित से प्रातिपदिकसंज्ञा।६। अव्ययीभाव समास में शरद आदि शब्दो से समासान्त टच्प्रत्यय हो। टच इत् (अ) शेष। तद्धितसंज्ञा, प्रा० संज्ञा, स्वादिकार्य। शरदः (ऋतु के) समीपम् (आसपासको) उपशरदं, शरद्ङस् उप इति अलौकिक विग्रहे। समीपे अर्थे वर्तमानम्-अव्ययं 'उप' इतितस्य शरद् इति सुबन्तेन सह 'अव्ययंविभक्ति' सूत्रेण समासे, उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यं, नपुंसक संज्ञा, टच्प्रत्यये 'सु' स्थाने अम् आदेशे। प्रतिविपाशं विपाशायाः अभिमुखं (विपाशा नदी के समक्ष) इति लौकिक विग्रहे अथवा विपाशं विपाशं प्रति। विपाश अम् प्रति। इति अलौकिक विग्रहे अव्ययीभाव समासे उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोगे, समासान्तटच्, भसंज्ञायां अकारलोपे नपुंसकह्रस्वादिकार्ये। जरायाः समीपमुपजरसं तिष्ठति। वृद्धावस्थाके आस-पास।७। जराके स्थान में जरस् आदेश हो, चकारसे समासान्त टच्भी हो। जराङस् उप। समीपार्थे वर्तमानमव्ययं उप इति, समासादिकार्यें, समासान्तटच् अकारान्त अव्ययीभाव से विभक्ति के स्थान में अम् आदेशे।८। अन्नन्त अन् अन्त में हो ऐसे अव्ययीभाव से टच् हो।९। 'न' अन्त में हो ऐसे भसंज्ञक टिका लोप हो, तद्धितपरे। राज्ञः समीपमुपराजं (राजा के आस-पास) राजन् ङस् उप। समीपार्थे वर्तमानस्य (उप्) इति अव्ययस्य राजन् ङस् इत्यनेन सह समासे उपसर्जनसंज्ञा आदि कार्ये, उपराजन् इति दशायाम् 'अनश्च' सूत्रेण टच (अ) 'नस्तद्धिते' सूत्रेण टि (अन्) लोपे सुअम् आदेशे रूपम्।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८ अनश्च ५।४।१०८। अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात्। ६ नस्तद्धिते ६।४।१४४। नान्तस्त भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।

६२० नपुंसकादन्यतरस्याम् ५।४।१०९। अन्नन्त यत् क्लीवं तदन्ता-दव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् उपचर्मम्, उपचर्म। १ झयः ५।४।१११। झयन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात्। उपसमिधम्, उपसमित्।

इत्यव्ययीभावः।

अथ तत्पुरुषः

२ तत्पुरुषः २।१।२२। अधिकारोऽयम्। प्राग्बहुव्रीहेः। ३ द्विगुश्च

उपराजम्। अध्यात्मम् आत्मनि चैतन्ये स्थिरम् (आत्मा के विषय में) आत्मनि अधि इति लौकिक विग्रहे आत्मन् ङि अधि इति अलौकिक विग्रहे सप्तम्यर्थे वर्तमानेन अधिशब्देन सह सुबन्तस्य समासे उप० संज्ञा, पूर्वप्रयोगे, सुपोलुक्। अनश्चेति टच् नशतद्धिते इति टिलोपे प्रा० संज्ञा, सुविभक्ति आदि-कार्यें। शरीर में चेतन है। अथवा अध्यात्मं वक्तव्यम् आत्मा के विषय में बोलना चाहिए।

।६२०। नपुंसकशब्द अन्नन्त हो तो, उस अव्ययीभाव से टच् (अ) विकल्प से हो। चर्मणः समीपं (चमड़े के आस-पास) इति लौकिक विग्रहे, चर्मन ङस् इति अलौकिक विग्रहे अव्ययं विभक्ति इति समासे, पूर्वनिपाते, सुलोपे, उपचर्मन् नपुंसकलिङ्गात् उपचर्मनशब्दात् टच् विकल्पे, टिलोपे, सुप् स्थाने अम् आदिकार्यें, उपचर्मम्। पक्षे नकारलोपे उपचर्म। १। झयः=झय प्रत्याहारके अक्षर अन्त में हों ऐसे अव्ययीभाव से टच् विकल्प से हो। समिधायाः समीपं लकड़ी के आस-पास। समिधाङस् उप् समासादिकाये, झयः सूत्रेण विकल्पेन टच्। सुस्थाने अमादेशे उपसमिधम्। टच्अभावपक्षे उपसमित्। नपुंसकवद्रूपम्। इत्यव्ययी--भावाधिकारे समासः प्राभाकर्याम्।

अथतत्पुरुषाधिकारे समास :— (२) उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो ऐसा समास तत्पुरुष है। जिसमें तत् पद सर्वनाम (सर्वार्थवाचक) विशेषण है। पुषरुपद विशेष्य उत्तर भाग में प्रधान अर्थ का बोधक है। इससे उत्तर पदार्थ प्रधान इष्टः। अतः तत्पद में सातो विभक्तियों की सम्भावना से, सातों विभक्तियों में समास होगा। तत्पद के विशेषण होने से विशेषणविशेष्य सम्बन्ध भी तत्पुरुष का अर्थ है। इसलिए सचासौ पुरुषः, तं पुरुष, तस्मै, तस्मात्, तस्य, तस्मिन् पुरुषः तत्पुरुषः स च पुरुषश्च तत्पुरुषः सौत्रं पुंस्त्वं। बहुव्रीहि समास के पहले

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२।१।२३। द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।४ द्वितीया श्रितातीत-पतित गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः २।१।२४। द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह समस्यते वा, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः—कृष्णश्रितः, इत्यादि।

९२५ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।३०। तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृत-गुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत्। शङ्कुलया खण्डः शङ्कुला-

---

जो समास हो वे तत्पुरुष संज्ञक हो तत्पुरुषाधिकार पठितत्वं तत्पुरुषत्वम्।३। द्विगुसमास भी तत्पुरुषसंज्ञक हो। यह दो या अनेकपद वाला (प्रथमान्त उत्तरपद वाला समास)है। प्रथमान्त का समास विशेषणविशेष्यभाव के व्याज से) आगे कहेंगे। द्वितीयान्ततत्पुरुष से प्रकरण का प्रारम्भ।४। द्वितीया—द्वितीयाविभक्ति हो अन्त में ऐसे पद का श्रितः (शरण प्राप्तः) अतीतः (बीताकाल) पतित, गत, अत्यस्त (फिसला हुआ, अस्त व्यस्त) प्राप्त, आपन्न, ये शब्द प्रकृतिक (प्रातिपदिक हो ऐसे सुबन्त के साथ समास हो, विकल्प से। वह समास तत्पुरुष समझा जाय। यथा कृष्णं श्रितः (कृष्णस्य शरणं प्राप्तः (भगवान् का भक्त) समासार्थवाचक कृष्णं श्रितः इति लौकिक विग्रहे, कृष्ण अम् श्रित सु। इत्थं लौकिकविग्रहे द्वितीयान्तं पदं 'कृष्णं' तस्य श्रित सु शब्देन सह उक्त सूत्रेण समासे, एकपद, एकअर्थ, एकशक्ति, होना समास है। उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोगे, जल में वर्षा की तरह प्रा० संज्ञा सुपोलुक्, एक देश विकृतन्यायेन, प्रा० संज्ञा, विभक्ति कार्ये। कृष्ण की शरण में प्राप्तः। एवमादिपदेन दुःखम् अतितः (दुःख को पार कर गया) आशातीतः कूपं पतितः (दर्दुरः) नरकं पतितः ग्रामगतः (गाँव में गया) स्वर्गगतः, अत्यस्तः तुहिनं। बर्फ फिसला। प्रह्लादः समुद्रात्यस्तः समुद्र में फेंका गया। त्रिशङ्कुः स्वर्गात्यस्तः, स्वर्ग से ढकेला हुआ। सुखं प्राप्तः, (नरः) दुःखापन्नः शंकटापन्नः एवमनन्ताः शब्दाः बोधव्याः।

।९२५। तृतीयान्तपद का उसी तृतीयान्त शब्द का अर्थ (वस्तु) सरौता आदि से कृत=किया हुआ गुणवचन=गुणवाचक (खण्ड) आदि शब्द के साथ और अर्थशब्द के साथ समास (एकार्थीभाव) हो अनेकपद का एकपद एक शक्ति होना फल है। यथा शंकुलाखण्डः (सरौते से किया हुआ टुकड़ा) यहाँ पर तृतीयान्तपद (शंकुलया खण्ड इति लौ० में) शंकुलया है। उसका अर्थ (सरौता) शंकुलारूपं करणं तत्कृतो गुणः (उससे किया हुआ खण्डन) क्रियारूपः (टुकड़े करना) उसका वाचक खण्डपद है। तृतीयान्तप्रकृतिकसुबन्त शंकुलाटा' का खण्डसु के साथ समासे मेघवर्षणन्यायेन उपसर्जनसंज्ञा प्रा० संज्ञा प्रयोगे, विभक्तिसम्बन्धिकार्यें

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

खण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः। तत्कृतेति किम् अक्ष्णा काणः। ६ कर्तृकरणे कृता बहुलम् २। १। ३२। कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातो हरित्रातः नखैर्भिन्नो नखभिन्नः। (कृद्ग्रहणे गतिकारक-पूर्वस्याऽपि ग्रहणम्)। नखनिर्भिन्नः। ७ चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः

शंकुलाकरणकखण्डनक्रियाश्रयः धान्येन अर्थः धान्यार्थः [धान से मतलब] अर्थ्यते इष्टं साध्यते, अनेनअर्थः [प्रयोजन] जिससे इष्ट सिद्धि हो वह अर्थ (अभीष्ट साधक] प्रयोजन है। धान्य टा अर्थसु। इति विग्रहे तृतीयान्तस्य धान्यटा इत्यस्य अर्थशब्देन सह समासे। समासनिमित्तकस्वादिकार्यें तत्कृत तृतीयान्तपद का अर्थ [सरौता] उससे कृत (खण्ड) ऐसा क्यों कहा ? अर्थात् (कर्तृकरण कृता बहुलं) सूत्र से समास सिद्ध था, पुनः सूत्रमेव किमर्थम् ! दोनों उदाहरण में करणे तृतीया है, सूत्र व्यर्थ होकर नियम बनता है कि यदि गुणवचन के साथ तृतीयान्त का समास हो, तब तत्कृतेनैव = तृतीयान्त वस्तु से किया हुआ गुण होने पर ही हो। इसलिए अक्ष्णा काणः। (आँख का काना). यहाँ काणत्व गुण आँख की क्रिया से नहीं, किन्तु रोगादि अन्यकारणों से है तत्कृत न कहते तब यहाँ भी समास हो जाता है। ६। कर्ता और करण अर्थ में तृतीयान्त पद का कृदन्त शब्द के साथ बहुलं = इच्छानुसार समास हो, यथा हरिणा त्रातः—हरिकर्तृक रक्षणाश्रयः रक्षा का पात्र। हरि टा त्रात सु अलौकिक विग्रहे कर्तृकरणे कृता बहुलं सूत्रेण, कर्तरि तृतीयान्तपदं [हरिणा] तस्य (कृदन्तपदं) त्रातः, तेन सह समासे स्वादि-कार्ये। हरित्रातः भगवान से रक्षा किया गया इति समासार्थः। नखैर्भिन्नः लौकिकं वाक्यं, करणे तृतीयान्तपदं नखैः नखभिस् अस्य भिन्नसु इत्यनेन सह समासे प्रा० सं०, सुपोलुक, स्वादिकार्ये नखभिन्नः नखकरणकभेदनाश्रयः चणकः। नख से निकोला गया आलू। जहाँ पर निर् उपसर्ग होगा। नखैः निर्भिन्नः परन्तु प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य, तस्य च ग्रहणं इस परिभाषा से केवल कृदन्त ददादिभिन्न ही ग्राह्य होगा, निर्भिन्न नहीं, तब निर्भिन्न शब्द के साथ नखै का समास सम्भव नहीं। अत आह-कृद्ग्रहणे—जहाँ कृदन्त का ग्रहण हो वहाँ गतिसंज्ञक (निर्) और कारक पूर्व में हो उसका भी ग्रहण हो गतिसंज्ञक निर् के पूर्व में रहते समासे, स्वादिसम्बन्धि कार्ये। नख-निर्भिन्नः नख से विदारण किया हुआ। (हिरण्यकश्यपु वक्षस्थलम्)। ६। चतुर्थी = चतुर्थी अन्त में हो तदर्थार्थ उस शब्द का वाच्य अर्थ (यूप आदि) इसी के लिए जो वस्तु [दारु = लकड़ी आदि] उसके वाचक पद के साथ और अर्थ [वस्तु] बलि, पूजा, (उपहार) हित (भलाई) सुख, रक्षित, शब्द के साथ, चतुर्थ्यन्त पद का समास [एकार्थी-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२।१।३६। चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना, अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। यूपाय दारु यूपदारु। (तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः) तेनेह न रन्धनाय स्थाली। (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्) द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः। द्विजार्थं पयः। भूतबलिः। गोहितम्।

भाव) हो विकल्प से। यूपाय-दारुः यूपः = यज्ञस्तम्भः, के लिए दारु [लकड़ी] यूपङे दारुसु इति अलौकिक वाक्ये 'चतुर्थीतदर्थार्थः आदि सूत्रेण समासे, प्रा० संज्ञा; सुपोलुक् आदि कार्यें। यूपपद की यहाँ तदर्थपद से [पूर्वपद उदत्तर पद्म में] प्रकृतिविकृतिभाव ही इष्ट है। प्रकृति [समवायिकारण] विकृति [कार्य] इस प्रकार का कार्यकारणभाव होने पर समास हो। दारु समवायिकारण है यूपकार्य है। दारु प्रकृति है, उसी को काट छाँट गढ़कर यूप = खम्भा बना [विकार] है। अतः समास हुआ, एवं घटाय मृत्तिका घटमृत्तिका। पटाय तन्तवः पटतन्तवः। वस्त्र के लिए सूत। शङ्कवे दारुः शंकुदारुः [खूंटी के लिए लकड़ी] इस कार्यकारणसम्बन्ध का फल तेनेह न = रन्धनाय स्थाली [चावल रींधने = पकाने के लिए वटलोही] यहाँ स्थाली का रींधने के साथ प्रकृतिविकृतिभाव [समवायिकारणसम्बन्ध] न होने से समास नहीं हुआ। द्रव्य और क्रिया में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं होता [वा०] अर्थेन-अर्थ शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त का नित्य समास हो। विशेष्य = प्रधान मुख्य शब्द का लिङ्ग समस्त पद में होना चाहिए परवल्लिङ्गद्वन्द्वतत्पुरुषयोः। इस सूत्र से उत्तरपदका लिङ्ग ही प्राप्त था उसका बाधक यह सूत्र ही विशेष्य (प्रधान) जैसा लिङ्ग हो वैसा ही लिङ्ग समास होने पर हो। यथा—द्विजाय अर्थः द्विजार्थः सूपः ब्राह्मण के लिए दाल। द्विजङे अर्थ सु। अलौकिक-विग्रहे वार्तिकेन नित्यसमासादिकार्यें। यहाँ सूपपुलिङ्ग और प्रधान है उसी के अनुकूल समस्तपदका लिङ्ग हुआ। द्विजाय अयम् इति अस्वपद विग्रहे द्विज उद्द्येश्यक अर्थ (वस्तु) समासार्थः। द्विजाय इयं द्विजार्था यवागू (ब्राह्मण के लिए हलुआ) खीर द्विजाय इदं द्विजार्थं पयः, जलं, दुग्धंवा इत्यादौ अस्वपदविग्रहे अर्थेन नित्यसमासः। सूप, यवागू पयः के प्रधान होने से इन्हीं का लिङ्ग समासपद में हुआ। प्रधान के अनुसार लिङ्ग। भूतेभ्यो बलिः। भूतभ्यस् बलि सु चतुर्थी-बलिहितसुखरक्षितैः सह चतुर्थ्यन्तं समस्यते एकार्थीभावो भूयते। प्रा० संज्ञा सुपोलुक् विभक्तिकार्यें भूतबलिः। भूतों प्रेतों या जीवों के लिए पूजा या उपहार यजमानेन भूतबलिः दीयते। एवं गोभ्योहितं गोहितं गव्यं घासः गौवों के लिए हितकर (गोशाला) तीनों ऋतु मे भला है। गोभ्यः सुखं गोसुखं बनं गौवों के लिए सुखकर वन है। गोभ्यो रक्षितं गौवो के लिए

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गोरक्षितम्। ८ पञ्चमी भयेन २।१।३७। चोराद्भयं चोरभयम्। ९ स्तोकान्तिक-दुरार्थ-कृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९।

९३० पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२। अलुगुत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः। १ षष्ठी २।२।३७। सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुषः। २ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे।२।२।१। अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते

रक्खा हुआ खली, कराई, मूसा आदि। ८। पञ्चम्यन्त शब्द का भयवाचक शब्द के साथ समास हो। चोराद्भयं, लौकिकं वाक्यं, चोरङसि भय सु इति अलौकिकं वाक्यं। पञ्चमीभयेन पञ्चम्यन्तं चोरात् इति तस्य भयेन सह समासे इत्यादि। चोरभयम्। चोर (अवधिक) से भय। समासार्थं। एवं सिंहाद्भयं सिंहभयं। राजपुरुषात् भयं राजपुरुषभयं, दुष्टभयं कुञ्चिकाभयम् ।९। स्तोक, अल्प, अन्तिक (समीप) दूर (विप्रकृष्ट) और कृच्छ्र (कष्ट) वाचक सुबन्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास हो।९३०। पञ्चमी विभक्ति का स्तोक आदि शब्दो से परे लुक् न हो, उत्तरपद-परे, होतो। अत्र उत्तरपदंसमस्तपदम् अन्तिमें अवयवे रूढ़म्। समासमें, अन्तिमशब्द उत्तरपद है। इसका फल विभक्तिलुङ्न होने पर भी एकार्थीभाव बना रहे। स्तोकान्मुक्तः स्तोक ङसे मुक्त सु स्तोकान्तिक-आदि सूत्रेण समासे, सुपो अलुक। तथापि थोड़े ही प्रयास से मुक्त हो गया। अन्तिकात् (समीपात्) आगतः (पास से आया हुआ) समासार्थः। समासे पञ्चम्याः अलुक् पूर्ववत्। अभ्यासात् (निकरात्) आगतः = प्राप्तः। (समीपसे आया हुआ) बालकः ब्रूते। दूरात् आगतः सम्बन्धी स्वागतेन भवितव्यम्। कृच्छ्रात् दुःखात् पापात् आगतः कष्ट से आया हुआ वृद्ध। अत्र सर्वत्र समासे पञ्चम्याः अलुक्। एकपद एकअर्थ एकशक्ति होनाफल है। दूरादागतस्य अपत्यं दौरादागतिः। आभ्यासादागतिः, आदिवृद्धिः, अन्तोदात्त से एकपद होना अनुभूत है।१। षष्ठयन्तपद का सुबन्तपद के साथ समास हो राज्ञः पुरुषः लौकिकं वाक्यं, राजन् ङ स् पुरुष सु, इति अलौकिकं वाक्यं, तत्र षष्ठी सूत्रेण (राजन्ङस्) पदस्य [पुरुषसु] पदेन सह समासे (एकार्थीभावे) दोनों पद मिलकर एकार्थ हो गये। राज सम्बन्धीपुरुषः राजपुरुषः। राजा का सेवकस्वामि सम्बन्ध समासत्वात् प्रा० संज्ञायां सुपोलुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रा० संज्ञा, स्वादिकार्यं। पत्युः पत्निः पतिपत्निः। द्वारपूजा।२। पूर्व—आगे, अपर (पीछे) अधर—नीचे, उत्तर—ऊपरी भाग ये अवयव हैं। एकदेशिना—अवयविना (एक देश शब्द अवयववाची है। पूर्वादि अवयव हैं।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः । एकाधिकरणे किम् पूर्वश्छात्राणाम् । ३ अर्धं नपुंसकम् २।२।२। समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्याः अर्धपिप्पली । ४ सप्तमी शौण्डैः २ । १ । ४० । सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः । इत्यादि । द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि

पूर्वादयः—उनका एकदेशी अवयवीवाचक शब्दों के साथ समास हो, यदि अवयवी (अङ्ग अवयव) समुदाय में (शरीर में) एक संख्या युक्त (एकत्वसंख्याविशिष्ट) एकवचन अन्त में हो षष्ठी समासको बाधकर । यदि षष्ठी समास होता विभक्ति लुक् होकर प्रथमान्तपदका षष्ठी में निर्देश से कायशब्द का पूर्वनिपात होने लगता । षष्ठीसमास का बाध होने से पूर्व, अपर, अधर, उत्तर शब्द का ही पूर्व निपात होगा । वे ही प्रथमान्तपदबोध्य है । यह एकदेशी समास है । पूर्वं कायस्थ पूर्वकायः [शरीर का अग्रभाग] पूर्व अम् काय ङस् अलौकिक विग्रहे पूर्वापराधरोत्तर सूत्रेण समासे पूर्वशब्दो अवयव, वाचकः, काम शब्दो अवयवी । समासशास्त्र में प्रथमान्तपदपूर्वशब्द का प्रथमप्रयोग हुआ । एवम् अपरं कायस्य अपरकायः । शरीर का पृष्टभाग [पीठ] अधरकायः [पैर] उत्तरकायः [शिरः] सूत्र में एकाधिकरण ग्रहण क्यों ? एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवी अर्थ क्यों ? इसलिए कि पूर्वपूछात्राणाम् । यहां समास न हो । क्योंकि छात्राणां शब्दे बहुसंख्या विशिष्टं बहुवचनं वर्तते । यद्यपि उत्तर पदार्थं प्रधानतत्पुरुषलक्षण, यहां नहीं घटता, तथापि तत्पुरुष के अधिकार में पढ़ा गया लक्षण घट जायेगा ।३। समासवाची—समभाग, बराबर अंश, वाचक, आधा अर्थ बोधक, अर्ध शब्द जो नित्यनपुंसकलिंग है, उसका सुबन्त के साथ समास हो । इदमपि षष्ठीसमासबाधकं पूर्ववत् । पिपल्याः अर्ध लौकिकं वाक्यम्, अर्ध सु, पिप्पली ङस् । इति अलौकिकं वाक्यम् । अर्धं नपुंसकं-सूत्रेण समास आदिः । प्रथमान्तस्य (अर्धं) पदस्य पूर्वं निपाते । पूर्वपदप्रधानं अर्थः के अनुपसर्जन होने से (एक विभक्तौ अषष्ठचन्त वचनम् । गोस्त्रियोः इति ह्रस्व नहीं हुआ । अर्धपिप्पली (पीपरि का आधा] । ४ । सप्तम्यन्त पद का शौण्डादि (धूर्त, कितव, व्याड, प्रवीण, अन्तर, पण्डित, कुशल, चपल, [निपुण] आदि के साथ समास हो । यथा— अक्षेषु शौण्डः अक्ष सुप्, शौण्ड सु, सप्तम्यन्तम् अक्षसु इति सुबन्तं शौण्ड सु इत्यनेन सह समासे । सप्तम्यन्त का पूर्व निपात आदिः अक्षशौण्डः पाशः, द्यूतक्रीडा में प्रवीण । द्वितोया से लेकर सप्तमीपर्यन्त का समास प्रदर्शित हुआ । परन्तु निर्दिष्ट पदों से अन्यत्र भी समास देखा गया । अतः बोले द्वितीया तृतोया सप्तमी इत्यादि का योग = सूत्र विभाग—अलगाव किये जाने से । अन्यत्रापि—अन्य स्थलों में भी द्वितीयान्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः।

९३५ दिक्संख्ये संज्ञायाम् २। १। ५०। संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः। तेनेह न–उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः। ६ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत् पूर्वस्यां शालायां भवः

तृतीयान्त आदि पदों का प्रयोगवशात्--आवश्यकतावशात् समास समझना चाहिए। अर्थात् जो सूत्र का अर्थ है। उसके अतिरिक्त भी द्वितीयान्त सप्तम्यन्त आदि का समर्थ सुबन्त के साथ समास हो। पतित आदि के विना भी समास सम्भव है। इति व्यधिकरणतत्पुरुषः समाप्तः।

अथ समानाधिकरणतत्पुरुषः प्रारभ्यते। ९३५। दिक्च संख्याच दिक संख्ये, दिशावाचक, संख्या-सुबन्त शब्दों के साथ समर्थ सुवन्त का समास हो, यदि किसी की संज्ञा [नाम] हो तो पूर्वश्च इशुकामशमीच (ग्राम विशेषस्य संज्ञा] पूर्वसु इपुकामशमी सु इत्यत्र (दिकसंख्ये) सूत्रेण समासे इत्यादिः पूर्वषु-कामशमी। पूर्वग्रामः सप्तर्षयः सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः, वशिष्ठ आदि। सात ऋषियों की संज्ञा। सप्तन्जस ऋषिजसा समादिकार्यं। यह समानाधिकरण—समान विभक्ति वाला तत्पुरुष है। न च विशेषणं विशेषेण बहुलमिति सूत्रेण समान विभक्तिस्थले समासः, सिध्यति। दिक्संख्ये सूत्रं किमर्थं नियम करता है कि दिशा-वाचक संख्यावाचक, विशेषण के साथ समास हो तो संज्ञा में ही हो। इसी नियम के लिए सूत्र है। इसका फल (तेनेहन) उत्तरा वृक्षाः पञ्चब्राह्मणः, यहाँ दिक्संख्या पूर्वपद है, परन्तु संज्ञा अर्थ न होने से समास नहीं हुआ। ६। तद्धितार्थे—तद्धित प्रत्यय के अर्थ के विषय में उत्तरपद परे हो और समाहार (समुदाय] मिलावट अर्थवाच्य (बोध्य) हो तो तब दिशा, संख्यावाचक सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास (एकार्थीभाव) हो तद्धितार्थश्च उत्तरपदञ्च समाहारश्च एतेषां समाहारः तस्मिन् तद्धितार्थोत्तरदससमाहार (एक सप्तमी तीनों के साथ विषय-भेद से अन्वित है) यथा एकापि षष्ठी विषयभेदात् भिद्यते। विषयसप्तमी (तद्धितार्थविषये) परसप्तमी (उत्तरपदे) परे। वाच्यसप्तमी (समाहार के साथ) दिशावाची संख्यावाची का समर्थसुबन्त के साथ समास हो। क्रमशः उदाहरणं—पौर्वशालः पूर्वस्यां शालायां भवः (पूर्वदिशा के घर में होने वाला) दिशावाची से तत्रभवः (होने वाला) अर्थ में अण्—अ। पूर्वा ङि शाला ङि अ इति अलौकिक विग्रहे तद्धितार्थोत्तर सूत्रेण समासे, प्रा० संज्ञायां सुपोलुक् तद्धितका विषय होने पर ही समास हुआ। पूर्वा शाला इति स्थिते (वा०) सर्वनामको

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वशाल इति, समासे जाते (सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः)। ७ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः ४।२।१०७। अस्माद्भवार्थे ञः स्यादसंज्ञायाम्। ८ तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७। ञिति णिति च तद्धितेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। (२३६) यस्येति च। पौर्वशालः। पञ्च 'गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्)। ९ गोरतद्धितलुकि ५।४।९२। गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः।

९४० तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः २।१।४२। १ संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्। २ द्विगुरेकवचनम् २।४।१। द्विग्वर्थः समाहार

वृत्तिमात्र = एकार्थीभावरूपवृत्ति (कृत्तद्धितसमाससनाद्यन्त, एकशेष) में पुंवद्भाव हो। प्रसङ्ग में समासवृत्ति है। सर्वनाम 'पूर्व' को पुंवद्भाव होने से स्त्रीलिङ्गबोधकप्रत्यय टाप् हट गया। पुलिङ्गे यादृशं कार्यं तादृशं सम्भूयते पूर्वशाला इति स्थिते। ७। दिशावाचकशब्द जिसके पूर्व हो अस्मात् = उससे भवार्थे = होने वाला अर्थ में 'ञ्' प्रत्यय हो। असंज्ञायां = संज्ञा अर्थ न हो तो। ञ इत् (अ) शेष। ८। ञित् णित् तद्धितप्रत्यय परे अचों में आदि अच्को वृद्धि हो। इति आदिवृद्धौ। यस्येति च आकारलोपे स्वादिकार्यें, पौर्वशालः (पूर्वदिशाके घर मे पैदा हुआ) बालकः। पञ्चगवधनः पञ्च गावो धनं यस्य पांच गाय ही धनसम्पति है जिसके, पञ्चन् जस् गोजस् धन सु इति अलौकिक शरीरे प्रथमम् (अनेकमन्यपदार्थे) इति त्रिपदबहुव्रीहिसमासे। उसके अन्तर्गत (अन्तर्वर्ति) पञ्चन् गो इस अंशको उत्तरपदपरे (तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च) सूत्रेण समासे, परन्तु अयं समासो नित्य (वा०) द्वन्द्व और तत्पुरुषसमास नित्य हो उत्तरपद परे रहते। समासत्वात् प्रा० संज्ञा, सुपोधातु इतिसुपोलुक् अन्तर्वर्ति समासके पूर्वविभक्तिनिमित्तक पद मानकर नकारलोप पञ्चगोधन इत्यवस्थायां। ।९। गोशब्दान्त तत्पुरुष से टच् (अ) हो वह समासान्त हो, अतद्धितलुकि = तद्धितप्रत्ययका लुङ्न हुआ हो। प्रसङ्ग में गोशब्दान्ततत्पुरुष पञ्चनूगो है। अतः समासान्त टच् (अ) अवादेशे। पञ्चगवधनः। पूरे तीनों पदों में एकार्थीभाव है। स्वादिकार्ये,।

।९४०। समानाधिकरण = समान विभक्तिवाले पदका तत्पुरुष (सचासौ-पुरुषश्च) (विशेषणविशेष्यभाववाले समास) को कर्मधारय कहते है। कर्म (समानविभक्तिकं विशेषण) धारयति। १। तद्धितार्थे, उत्तरपदे, समाहारे ये तीनों प्रकार के समास सङ्ख्यापूर्वक हो तो उनकी द्विगुसंज्ञा हो। २।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात् अनश्वः। नैकधेयादौ तु 'न'-शब्देन (९०६) सह सुप्सुपेति समासः। ९ कुगतिप्रादयः २।१।१८। एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः=कुपुरुषः।

९५० ऊर्यादि-च्वि-डाचश्च १।४।६१। ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य। सुपुरुषः।

किन्तु सुपसुपा का समास नञ् समास नहीं माना गया, अतः नलोपादि नहीं हुए नैकधा। ९। ऐते—कुशब्द, गतिसंज्ञक और प्रपरा इत्यादि शब्दों का समर्थ परस्परसम्बन्धित सुबन्त के साथ नित्य समास हो। यद्यपि गतिसंज्ञा से प्रादि का भी ग्रहण हो सकता था। पृथक्क्यों पढ़ा तथापि क्रिया के योग में ही प्रादिकों को गति संज्ञा का विधान है। जहाँ क्रिया से सम्बन्ध नहीं है। वहाँ प्रादिकों गतिसंज्ञा नहीं होगी। इसलिए अलग पढ़ा। यत्क्रियायुक्ताः प्रादयः तं प्रत्येव प्रत्युपसर्ग संज्ञकाः भवन्ति। यथा—उपगतः आचार्यः उपाचार्यः। यहां उपशब्द गतः—गमन क्रिया के प्रति' गतिसंज्ञक है। आचार्य के प्रतिगतिसंज्ञक नहीं। अतः प्रादि गतिसंज्ञक नहीं। अतः प्रादिको भी पढ़ा। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः निन्दित, घृणित व्यक्ति। कुत्सित अर्थवाचक (कु) अव्ययशब्द का समर्थसुबन्त पुरुष के साथ नित्य समास हुआ।

।९५०। ऊरी आदि च्व्यन्ता—च्वि प्रत्ययान्त डाजन्ताः—डाच्प्रत्यान्त शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक हो। ऊरीकृत्य—स्वीकृत्य, मनसिकृत्वा, हृदयंगम करके, कृत्य—क्रिया पद के योग में ऊरी शब्द को ऊर्यादिसूत्रेण गतिसंज्ञा। कुगतिप्रादयः इतिसमासे समासेऽनञ्पूर्वे इति क्त्वास्थाने ल्यप् ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् [त] आगमे स्थानिवद्भावेन क्त्वा इति मत्वा क्त्वातोसुकसुन् इति अव्यय-संज्ञा, समासे लब्धविभक्तिका अव्ययादाप्सुप इति लुकि। उरीकृत्वा इत्यर्थः। अशुक्लं शुक्लं कृत्वा इति शुक्लीकृत्य। जो सफेद नहीं था उसे श्वेतकर दिया [अभूततद्भावे च्विः) जो नहीं था वह हो गया। शुक्ल शब्दात् कृ भू उसके योग में च्वि [अस्यच्वौ' इति अकारस्य ईकारे। यहां च्विप्रत्ययान्त मानकर 'ऊर्यादि' से गतिसंज्ञा, कृत्वा इत्यनेनसह समासे क्त्वास्थाने ल्यप्, तुकि रूपं पूर्ववत्। पटत् पटत् इति कृत्वा इति लौकिक विग्रहे (पट-पट करके) अव्यक्तध्वनि का अनु-करण होने से डाच् [आ पटत् शब्द] को द्वित्वे पररूपे पटपटाकृत्वा अत्रापि गति-संज्ञा, समासादिकार्यें। शोभनः पुरुषः सुपुरुषः सुन्दर अर्थवाचक सुशब्द प्रादि है। क्रिया योग 'न' होने से गतिसंज्ञा नही हुई। उसका समर्थ सुवन्त पुरुष के साथ कुगतिप्रादयः इति समासे रूपम् (वा०) प्रपराअपसम आदि का प्रथमान्ते समर्थ के

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

(प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया) प्रगत आचार्यः—प्राचार्यः (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया) अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे—१ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४। विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः। २ गोस्त्रियोरुपसर्जस्य १।२।४८। उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः। (आवदयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया) अवक्रुष्टः कोकिलया–अवकोकिलः। (पर्या-

---

साथ 'गत' अर्थ में समास हो, प्रगतः आचार्यः प्राचार्यः प्रगतिशील, अनुशासनकुशल, शिरमौर आचार्य 'गत' अर्थ में प्र का समर्थसुबन्त आचार्य के साथ समासादिः। प्राचार्यः (प्रधानाचार्य) अत्यादयः—'अति' आदिशब्दों का द्वितीयया—द्वितीयान्त समर्थ के साथ समास हो, क्रान्त—अतिक्रमण आदि अर्थ हो तो 'अतिक्रान्तो' मालां' जो माला (लक्षणया माली) पुष्पविक्रेता उसका भी अतिक्रमण कर (बढ़ चढ़) गया हो। इति लौकिकविग्रहे अतिक्रान्त अर्थबोधक अतिका द्वितीयान्तसमर्थ माला अम् इत्यनेन सह अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया इति समासे, प्रथमा निर्दिष्टं (अत्यादयः) शब्द से बोध्यविग्रह में वर्तमान अतिशब्दको उपसर्जनसंज्ञा, उपसर्जनं पूर्वं तिष्ठति। समासत्वात् प्रा० संज्ञा सुपोलुक् अतिमाला इति स्थिते ततः।१। एक—नियत (निश्चित) एक विभक्ति (विग्रह वाक्य में जो स्थाई विभक्ति हो) उसकी उपसर्जनसंज्ञा हो। अपूर्वनिपाते—तस्य पूर्वनिपातः प्राक् प्रयोगो न भवति। विग्रहवाक्ये यत् अनियत विभक्तिकं तस्य अपेक्षया तस्मिन्वाक्ये स्थिरविभक्तिकं पदम् उपसर्जनसंज्ञं भवति। यहाँ अतिपद अनिश्चित विभक्तिक है। अतिक्रान्तं अतिक्रान्तेन अतिक्रान्ताय। प्रसंग से परिवर्तन स्पष्ट है। मालाशब्दाद्द्वितीयान्त स्थिर है। उसीको उपरर्जनसंज्ञा। यद्यपि उसका फल पूर्व प्रयोग है, तथापि उपसर्जन का निषेध होने पर किं फलम्? अत आह। २। गौश्च स्त्रियश्च गोस्त्रियौ तयोः गोस्त्रियोः उपसर्जनसंज्ञक जो गोशब्द और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त तदन्तस्य—वह हो अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक को ह्रस्व हो। प्राति० ह्रस्वे स्वादिकार्ये। अतिमालः अतिक्रमण–अतिक्रम्य सामर्थ्य। फूल की खेती या व्यापार में माली को मात कर दिया। अन्य पदार्थ में विशेषण होना उपसर्जन है। (वा०) अव आदि उपसर्ग शब्द का तृतीयान्तसमर्थसुबन्त के साथ समास हो। क्रुष्ट आदि—कूजित अर्थ में अव के होने पर अवक्रुष्टः कोकिलया, क्रुष्ट—कूजित अर्थ में विद्यमानस्य अवशब्दस्य तृतीयान्त कोकिलया के साथ क्रियाकारककूजनक्रिया कूजककर्ता भाव सामर्थ्य में समासे, सुपोलुक्, नियतविभक्तिककोकिलाशब्दस्य उपसर्जनसंज्ञा, उपमजनस्त्रीप्रत्यान्तस्य ह्रस्वे,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या) परिग्लानोऽध्ययनाय—पर्यध्ययनः (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या) निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः—निष्कौशाम्बिः । ३ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३ । १ । ९२ । सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् । ४ उपपदमतिङ् २ । २ । १९ । उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अतिङन्तश्चायं समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ् किम्–मा भवान् भूत्, माङि लुङिति सप्तमी-

---

विभक्तिकार्थे, अवकोकिलः । कोयल से कूजित गृह वा० परिआदि का ग्लानि आदि अर्थ में चतुर्थ्यन्त—समर्थ सुबन्त के साथ समास हो । परिग्लानः = बहुत खिन्न, मलिन, हारा, छुआ । अध्ययन = पढ़ने के लिए, ग्लानि अर्थे परि-शब्दस्य चतुर्थ्यन्त [अध्ययन ङे] इत्यनेन सह ग्लानिसम्बन्धसमर्थ समासे । अध्ययनपरे ग्लानि अर्थबोधक यण् । अन्य कार्ये पर्यध्ययनः छात्रः । अध्ययन से पूर्ण ग्लानि समासार्थः । निर आदि का क्रान्त आदि अर्थमें पञ्चम्यन्तसमर्थसुबन्तके साथ समास हो । निष्क्रान्तः = निकल गया कौशाम्ब्याः = कौशाम्बी नगरी से । अत्र निष्क्रान्ते अर्थे वर्तमानस्य निर शब्दस्य निष्क्रम्मनिष्क्रमणभावसामर्थ्येन पञ्चम्यन्तस्य कौशाम्ब्याः शब्देन सह समासे । सुपोलुक् उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्वे, निष्कौशाम्बिः, पुरुषः । कौशाम्बी से निकला हुआ । क्रिया योग में गतिसमासः, अन्यत्र प्रादिसमासः । ३ । सप्तम्यां = सप्तमी अर्थो तिष्ठति [विद्यते] इति सप्तमीस्थम् = यहां सप्तम्य पद में [कर्मणि अण्] सूत्र से । कर्मणि सप्तम्यन्तपद है । तत्र = द्वितीयान्तपद को उपपद संज्ञा हो । ४ । उपपदसंज्ञक, सुबन्त का समर्थ के साथ नित्यसमास हो, अतिङ = तिङन्त के साथ समास न हो । यथा-कुम्भं [घड़ा को] करोति [बनाता है] इति लौकिकविग्रहे कुम्भ अम् कृ-कर्मणि अण् [अ] ऋकारस्य [अचोऽञ्णिति] आर् वृद्धिः । कुम्भ अम् कार इत्यलौकिक विग्रहे [तत्रोपपदं सप्तमीस्थं] सूत्रेण कुम्भम् इत्यस्य उपपदसंज्ञा । [उपपदमतिङ] उपपदं सुबन्तं कुम्भ + अम् तस्य क्रियाकारकभाव सम्बन्ध-सामर्थ्येन कारशब्देन सह नित्य समासे । प्रा० संज्ञा । सुलोप, स्वादिकार्य सर्वत्र हो, कुम्भकारः । कुम्भकर्मककरणाश्रयः । घट निर्माता । विशेषः :— कार शब्दके सुबन्त होने से पहले समास । क्योंकि गतिकारकोपदानां कृद्भिः सह समास वचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः । गतिकारकसंज्ञा उपपदका कृदन्तके साथ समास [सुप् उत्पत्ति के पहले) होता है । अतः वृत्ति में सुबन्त न कहकर 'सामर्थ्येन' कहा । नित्य समास में अस्वपद विग्रह ही होता है । इसे उपपदसमास कहते हैं । सूत्र में अतिङ् ग्रहणं किमर्थम् ? अतिङन्त को समास क्यों ? इसलिये कि मा भवान् भूत में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

निर्देशान्माङुपपदम्। गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपीत्यादि।

६५५ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ५।४।८६। संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्।

तिङन्त है, समास न हो। यदि अतिङ् न कहते तब माङि लुङ् सूत्र में माङि के सप्तम्यन्त् पद में वाच्यत्वेन विवक्षित मा को उपपदसंज्ञा होकर समास होता। तिङन्तके समास निषेध से नहीं हुआ। [वा०] गतिसंज्ञक [उपसर्गयोगे] कारक, (क्रियान्वयी] और उपपदसंज्ञक, का कृद्भिः = कृदन्त पदों के साथ समास, सुप आने के पूर्व हो। त्रयाणां क्रमशः उदाहरणं दीयते। गतिसंज्ञक— समास व्याघ्री = बाघिन। व्याजिघ्रति वि [विशेषरूप से] आ घूमती हुई]। चारो ओर का जिघ्रति = गन्ध ग्रहण करती है। वि आङ् पूर्वक घ्रा धातोः [आतश्चोपसर्गे] इति कः (अ) प्रत्यये, कित्, आलोपे, घ्र—[गन्ध ग्रहण] क्रिया के योग में गतिसंज्ञा वि—इकारस्य यण्। गतिसंज्ञकव्याशब्दस्य कृदन्त घ्र इत्यनेन सह सुबुत्पत्तिपूर्वं समासे व्याघ्र इति जातिवाचकशब्दः तेन [जातेरस्त्रीविषयादिति ङीष्। अलोपे व्याघ्री। बाघ जाति की स्त्री। अश्वक्रीती अश्वेन=घोड़ा से क्रीता खरीदी गई स्त्री कर्तृकरणे कृता बहुलं सूत्र से गतिकारक परिभाषा की सहायता से सुप् उत्पत्ति के पहले करण अश्व टा का कृदन्त क्रीत के साथ क्रियाकारक भाव सामर्थ्य मानकर समास हुआ। इसका फल करणपूर्वक क्रीतशब्द से ङीष् है। यदि सुबन्त होने पर समास होता तब अदन्तत्वात् टाप् होने पर अदन्त ह्रस्व 'अ' न मिलने से ङीष् न होता। अश्वक्रीती अश्वकरणकक्रयणाश्रया स्त्री। कच्छपी कच्छं जलं पिबति। अथवा कच्छेन साधनेन पिबति (कछुवी) इति विग्रहे, कच्छ उपपदक 'पा' धातोः सुपि स्थःसूत्रेण क (अ) प्रत्यये कित् (आतो लोप) इति आलोपे, उपपदसंज्ञा उपपदसमासे, शेषकार्ये, जातिवाचक कच्छप शब्दात् स्त्रीलिंगबोधक ङीष् [ई] प्रत्यये (जल से रक्षित) यदि परिभाषा न होती तो प्रथम टाप् होता। ङीष् न होता। यदि सुबन्त हो जाता तब स्वार्थं द्रव्यलिंगसंख्याकारक ये पांच प्रातिपदिकार्थ हैं। स्वार्थे परिपूर्णं पदम् अर्थान्तरमाकाङ्क्षते।

६५५। तत्पुरुषस्य=संख्या और अव्यय शब्द जिसके आदि में हो अंगुल्यल्यन्तस्य = अंगुलिशब्द अन्त में हो, ऐसे तत्पुरुषसमास के अन्त में अच् प्रत्यय हो। यथा—द्वे अंगुली (दो अंगुल) प्रमाणं = मात्रा (लम्बाई, चौड़ाई

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

निर्गतमङ्गुलिभ्यो–निरङ्गुलम् । ६ अहः—सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः ५ । ४ । ८७ । एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात् संख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् । ७ रात्राह्नाहाः पुंसि २ । ४ । २९ । एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौपुंस्येव । अहश्च-रात्रिश्चाहोरात्रः । सर्वरात्रः । संख्यातरात्रः । संख्यापूर्वंरात्रं क्लीबम्

है) अस्य = इसका द्वि औ अंगुलि औ, इति अलौकिक विग्रहे (तद्धितार्थोत्तर पद समाहारे च) इति सूत्रेण तद्धितार्थः प्रमाणे मात्रच् (द्विगोर्लुगनपत्ये) इति मात्रस्य लोपे) समासे सुपोलुक् । द्वि अंगुलि यण् । संख्यापूर्वकतत्पुरुषः द्वयंगुलिः (तत्पुरुषस्यांगुलेः) सूत्रेण समासान्त अच् प्रत्यये अनुबन्धलोपे । यस्येति च इकारलोपे नपुंसक लिंगे प्रथमायाः एकवचने द्वयंगुलम् । राम का हाथ कागभुशुण्डि के बीच दो अंगुल का अन्तर है । शकुन्तलायाः अंगुलेः निर्गतं निरंगुलम् अंगुलीयकम् । अंगुली से निकली हुई अँगूठी । अत्र (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्याः) वार्तिकेन निर्गत अर्थे निर् इति अव्ययस्य पञ्चम्यन्त—अंगुलिशब्देन सह समासे (तत्पुरुषस्यांगुलेः) इति समासान्त अच् प्रत्यये इलोपे, नपुंसकविभक्तिकार्ये निरंगुलम् । अंगुलिभवविकनिष्क्रमणाश्रयः समासर्थः । ६ । अहः सर्व, एकदेश संख्यात, पुण्य, इनसे परे रात्रिशब्द से समासान्त अच् प्रत्यय हो च = संख्या, अव्यय से परे रात्रि शब्द से भी । अहर्ग्रहणम् = अहन्शब्द से परे रात्रि शब्द से अच्प्रत्यय केवल द्वन्द्वसमास में हो क्योंकि अहन् और रात्रि का तत्पुरुषसमास सम्भव ही नहीं । ७ । रात्र अहन् अह ये शब्द जिनके अन्त में हो, ऐसे द्वन्द्व और तत्पुरुषपुल्लिङ्ग ही हो । इससे पुलिङ्ग का विधान हुआ । अहश्च रात्रिश्च अनयोः समाहारः (दिन और रात का समुदाय) इति द्वन्द्वः जातिर-प्राणिनां] सूत्र से एकवचनभाव के पश्चात [सनपुंसकम्] से प्राप्त नपुंसकको बाधकर [रात्राह्नाहाः पुंसि । सूत्र से पुलिङ्गविधान । अहः [सर्वैकदेश] सूत्र से अच्, इलोपे, अहन् नकारस्य रुः । हशि च उत्वे, गुणे, स्वादिः अहोरात्रः = दिनरात (कार्यकर्ता) सर्वाचासौ रात्रिश्च । सर्वासु रात्रिसु । सर्वशब्द का रात्रि शब्द के साथ विशेषणसामर्थ्यसे [पूर्वकालैकसर्वजरत] इति कर्मधारयसमासे, पुंवद् कर्मधारय इति सूत्रेण पुलिङ्गभाव से सर्वरात्रि [अहः सर्वैकदेश] सूत्रेण अच्प्रत्यये, यस्येति इलोपे रात्रिशब्दान्ततत्पुरुष पुलिङ्ग हुआ । सर्वरात्रः (सभी रात) स्वप्नकाल । संख्याता चासौ रात्रिश्च, संख्यातरात्रः गिनी हुई रात्रि । यहाँ भी विशे-षणसमास; पुंवद्भावः, अच् पुलिङ्गः । पूर्वरात्रः (वा०) संख्यापूर्वक रात्रिशब्द नपुंसकलिङ्ग हो । द्वयोः रात्र्योः समाहारः दो रात का समुदाय द्वि + ओस् । अत्र तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इति, समाहार (समुदाय) समासे, सुपोलुक् संख्या आदिका तत्पुरुषसमास होने पर रात्रि शब्द से अच् । भ संज्ञायाम् इलोपे,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् । ८ राजाहः—सखिभ्यष्टच् ५ । ४ । ६१ । एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् । परमराजः । ९ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६ । ३ । ४६ । महत आकारोऽन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रकारवचने जातीयर् । महाप्रकारो=महाजातीयः ।

९६० द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६ । ३ । ४७ । आत् स्यात् ।

द्विरात्रशब्दस्य पुंलिगं बाधित्वा वार्तिकेन नपुंसकलिङ्गे द्विरात्रम् । तिसृणां रात्रीणां समाहारः । अत्राऽपि त्रिरात्रं तद्धितार्थः समासे, सुपोलुक् अच्, इलोपे, नपुंसकलिङ्गे (तीन रात्रि का समुदाय) जागरणम् । षण्मासरात्रम् कुम्भकर्णस्य शयनम् ।८। राजन् अहन् सखि शब्दान्त तत्पुरुष से टच् अ हो । परमश्चासौ राजा च परमराजः, सर्वश्रेष्ठ राजा; समानाधिकरणतत्पुरुषसमासे, परमराजन् से समासान्त टच् (अ) नस्तद्धिते इति टि (अन्) लोपे प्रथमायाः एकवचने रूपं परमराजः । परमराजौ । परमराजाः । देवानां राजाः देवराजाः । धर्मस्य राजा धर्मराजः । उत्तमश्चासौ अहश्च उत्तमाहः (उत्तम दिन, सप्ताह, सात दिन) कृष्णस्य सखा कृष्णसखः मित्रम् । विद्वत्सखः । सखिशब्दान्त टच् इकारलोप आदिः ।९। आन्महतः = महत् शब्द के अन्त्य अल् को आत् = आकार आदेश हो । समानाधिकरणे = समान विभक्तिवाला उत्तरपद हो, और जातीयर प्रत्यय परे हो तो । महांश्च राजा च, सर्वश्रेष्ठराजा । महत् सु राजन् सु । दोनों के समानविभक्ति होनेसे समानाधिकरणतत्पुरुषः समासे (आन्महतः) सूत्रेण आकार अन्तादेशे "राजाहः इति टच्, भसंज्ञा; टिलोपे, विभक्तिसम्बन्धिकार्ये महाराजः । महाराजौ महाराजाः दिलीपादयः । एवं महांश्चासौ पुरुषश्च महापुरुषः महादेवः महावीरः । प्रकारवचने जहाँ भेद सदृश कहना हो, वहां जातीयर प्रत्यय हो । 'आन्महत्'—सूत्र से जातीयरप्रत्यय परे आकार अन्तादेशे । महान इव महाजातीयः । महत् शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त होनेपर भी आत्व होता है । महती गीता महागीता । महतीचासौ नदी च महानदी । जहां समानाधिकरण नहीं होगा वहां वहाँ आत्व नहीं होगा । महतां सेवकः महत्सेवकः । समानाधिकरण में महद्धनं यस्य स महाधनः, महत् फलं यस्याः सा महाफला लता ।

९६० । द्वि और अष्टन् शब्द को आत्व अन्तादेश हो, संख्या अर्थ में किन्तु, बहुव्रीहिसमास और अशीति शब्द परे नही तो । यथा—द्वौ च दश च द्वादश; (१२) अथवा द्वयधिका दश (दो अधिक दश) द्वादश । द्वि औ दशन् सु । द्वन्द्वसमासे । द्वयधिका दश, पक्ष में अधिकपद का लोप, समास भी ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

द्वौ च दश च द्वादश। अष्टाविंशतिः। १ परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः २।४। २६। एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली (द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः) पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः = पुरोडाशः। २ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।२।४। समस्येते। आकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्त-

---

(द्व्यष्टनः) संख्या अर्थ में आत्व द्वादश अष्टाधिकाः विंशतिः अष्टौ च विंशतिश्च इति वा। (२८) अत्रापि समासे अष्टन् शब्दस्य आत्वे अष्टाविंशतिः द्वात्रिंशत् अष्टात्रिंशत्। द्वाचत्वारिंशत् द्विअष्टाचत्वारिंशत् द्वापञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्। बहुव्रीहिसमास में द्वित्राः इत्यादिस्थल में और आशीति परे द्वि शब्द को आत्व नहीं होता द्व्यशीतिः (८२)। त्रेस्त्रयः त्रिशब्दस्य त्रयः आदेशे संख्या अर्थ में। त्रयश्च दशच त्रयोदश। त्रयस् आदेशे। त्रयश्च विंशतिश्च त्रयोविंशतिः त्रयश्च त्रिंशत् च त्रयस्त्रिंशत् (३३) द्वित्राः बहुव्रीहि में त्रयस् नहीं हुआ। अशीति परे त्र्यशीतिः। यहाँ भी त्रयस् नहीं हुआ।१। एतयोः-द्वन्द्वः और तत्पुरुषसमास में परवत् = दूसरे पद के लिंग के समानलिङ्ग हो। दो लिङ्गकपद के समास में सन्देह होता है कि कौन लिङ्ग हो (सूत्र) परपद के लिंग का समर्थन करता है। कुक्कुटश्च मयूरी च; कुक्कुट सु मयूरी सु द्वन्द्व समासादिः। परन्तु कौन लिंग हो परवल्लिङ्गं पर पद स्त्रीलिंग है। द्वन्द्वसमास में भी वहीं स्वीकृत हुआ। कुक्कुट मयूर्यौ नृत्यतः (मुर्गा, मोरिनी नाचते हैं) (इमे) शब्द स्त्रीलिंग का सांकेतिक है। मयूरीकुक्कुटौ परपद का लिङ्ग। पुलिंग का सांकेतिक इमौ। अर्धं पिप्पल्याः अर्धं पिप्पली (पीपरिका आधा) अर्धं नपुंसकमिति 'समासः। परपद स्त्रीलिंग है, अतः तत्पुरुषसमास में परवल्लिङ्ग हुआ। वा० द्विगुसमास प्राप्त, आपन्न, अलं पूर्वक समास तथा गतिसंज्ञक प्रादिके साथ समास में परपद के समानलिंग का निषेध हो। अर्थात् परका लिंग न लगे किन्तु अन्यपदार्थ का लिंग सम्मानित हो। यथा—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः (पाँच कसोरे में पकाया गया हवनीय खीर) अर्थ में 'तद्धितार्थः—इति द्विगुसमासे। यहाँ परपद कपाल नपुंसक है। उसका वार्तिक से निषेध हुआ। किन्तु तद्धित प्रत्ययार्थ पुरोडाश के अनुरोध से पुलिङ्ग हुआ। पाञ्चकपालः (पाँचपात्र में संस्कार किया गया हविष)।।२। प्राप्त और आपन्न सुबन्तशब्द द्वितीयान्त समर्थ के साथ समस्त हों, और अन्त में इन दोनों को अकार अन्तादेश हो। यद्यपि द्वितीयाश्रितातीत सूत्र में प्राप्त आपन्न शब्द पढ़े गये हैं। पुनः उक्तसूत्र से समास विधान, द्वितीयान्त का पूर्वनिपात सिद्ध करता है। प्राप्तजीविकः। जिसे जीविका मिल गयी है। प्राप्तो जीविकां,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

जीविकः । आपन्नजीविकः अलं कुमार्यै अलङ्कुमारिः । अत एव ज्ञापकात् समासः । निष्कौशाम्बिः । ३ अर्धर्चाः पुंसि च २ । ४ । ३१ । अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः, अर्धर्चम् । एवं ध्वजतीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहाङ्कुश-पात्र-सूत्रादयः । सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ।

इति तत्पुरुषः ।

प्राप्तसु जीविका अम् (प्राप्तापन्न) सूत्रेण समासे, सुपोलुक्, अकार अन्तादेशे । अथवा उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्वे । अत्र तत्पुरुषसमासे । परपदं जीविकापदं तेन परवल्लिगं स्त्रीलिगं प्राप्तं वार्तिकेन तं निषेध (पुरुषका लिग हुआ) पक्षे जीविका-प्राप्तः । आपन्नजीविकाः आपन्ना लब्धा, प्राप्ता, जीविका । अथवा अपन्ना = संकटग्रस्ता जीविका (वेतनं) यस्य सः । अलङ्कुमायैं कुमारी के लिए सुयोग्यो वरः । अलं = पर्याप्त, पूर्ण कुमारः यहां भी परपद कुमारी स्त्रीलिंग का प्रतिषेधः कुमार के अनुसार पुंलिग । यद्यपि अलं के साथ समास विधायक सूत्र नहीं है । तथापि वार्तिक में पठित अलंशब्द को परलिंगका प्रतिषेध ही समास सिद्ध करता है । यदि समास नहीं होगा । तब निषेध व्यर्थ होगा । अतएव ज्ञापकात् समासः कहा । वस्तुतः (पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्याः) से समास, उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्व, एवं निष्कौशाम्बिः = अत्रनिरादयः इति समासे परलिंग निषेधे अन्यपदार्थ, लिंग, सत्ता । इति प्रादिसमासः । ३ । अर्धर्च आदि शब्द पुंलिग नपुंसक दोनों हों । ऋचाम् अर्धम् अर्धर्चः । मन्त्र का आधा । ऋच् आम् अर्ध सु अर्ध नपुंसकमिति समासे ऋक्पूरब्धूः इति समासान्त [अ] प्रत्यये अर्धर्चंइति । यहां ऋच् स्त्रीलिंग परलिंग मानकर प्राप्त है । [अर्धर्चाः पुंसि च] पुंलिगे, विभक्ति कार्ये, अर्धर्चः पक्षेनपुंकेअर्धर्चम् । इसी प्रकार अर्ध शब्द का, ध्वज, तीर्थ, मण्डप, शरीर, यूप, देह, अंकुश, पात्र, सूत्र इत्यादि के साथ समास आदि को समझना चाहिए । यहाँ सामान्य में नपुंसक है । जहां लिंगविशेष का स्पष्ट ज्ञान न हो वह सामान्य नपुंसक है । अथवा लिंगविशेष की अविवक्षा में नपुंसक हो । यथा —मृदुपचति । हलकी आंच से पकाता है । प्रातः कमनीयम् सवेरा रमणीय है । यहां सामान्य में नपुंसक ॥ इति प्रभाकरीटीकायां तत्पुरुषः ।

अथअन्यपदार्थप्रधानोंबहुव्रीहि :—अथ = तत्पुरुष समास [उत्तरपदार्थ प्रधान] समाप्ति के पश्चात् बहुव्रीहिः अधिकधान्य] शुद्ध, अनेक विशेषण [व्रीहिः] [सम्पत्तिः] यस्यस । विशेषण ही विशेष्य [प्रधान] की सम्पत्ति है । वहवः (अनेकानि) व्रीहयः (विशेषणानि) यस्य स बहुव्रीहिः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ बहुव्रीहिः

६४ शेषो बहुव्रीहिः २ । २ । २३ । अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात् ।

९६५ अनेकमन्यपदार्थे २ । २ । २४ । अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः । ६ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५ । सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । अतएव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो

अन्य पदार्थप्रधान को बहुव्रीहिसंज्ञा हो किस विभक्ति के साथ हो, तब बोले ।४। शेषः=प्रथमान्तः उक्तादन्यः :—द्वितीयाश्रितातीत से लेकर सप्तमी पर्यन्त समासविधायक सूत्र बोले गये । किन्तु प्रथमान्त का प्रथमान्त के साथ समास विधायकसूत्र तत्पुरुष में न हो अतः प्रथमान्तों का समास ही शेष है उसी को बहुव्रीहिसंज्ञा हो अधिकारः—इस सूत्र का अधिकार द्वान्द्वात्=चार्थे द्वन्द्वः के प्राक्=पहले तक है ।

। ९६५ । अनेकम् (अनेक शब्द में लिंग स्पष्ट न होने से नपुंसक दिया) सामान्ये नपुंसकम् । अनेक प्रथमान्त शब्द अन्यस्य पदस्य=अन्य किसी पद के अर्थ में वर्तमान हो वहां विकल्प से बहुव्रीहि समास हो । अन्य पदार्थ प्रधान होने से प्रथमान्तार्थका महत्व नहीं रहता । यथा पीतम् अम्बर यस्य (पीला है वस्त्र जिसका) स पीताम्बरो विष्णुः अनेक प्रथमान्त पीतं और अम्बरं है । अन्य अर्थं विष्णु हैं । पीताम्बर से विष्णु का बोध (६) सप्तम्यन्त विशेषण हो उसका बहुव्रीहिसमास में प्रथम प्रयोग हो । प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनं, बहुव्रीहिं समास में अनेकप्रथमान्त उच्चारित हैं । जिसकी उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग हो । सूत्र निर्णय देता है कि जो सप्तम्यन्त हो, विशेषण हो, वही पूर्व में रहे । विशेषण का पूर्वप्रयोग सत्य है । किन्तु सप्तम्यन्त का विशेषण बहुव्रीहि में आश्चर्य है । क्योंकि अनेक प्रथमान्त अन्य पदार्थ में विशेषण हो यह सत्य है । सप्तम्यन्त की बहुव्रीहि में चर्चा भी नहीं । समास कैसे ? अतएव सप्तम्यन्त ग्रहण के ज्ञापन से सिद्ध है कि व्यधिकरण=भिन्नविभक्तिवाले पदों का भी बहुव्रीहिसमास सत्य है । प्रथमान्तों का ही बहुव्रीहि होगा तब सप्तम्यंत व्यर्थ हो जायेगा । पूर्वविधान भी व्यर्थ होकर नियम बनाता है : व्यधिकरणबहुव्रीहि हो । और अनेकप्रथमान्तो का द्वितीयासे सप्तम्यंन्तपर्यंत विभक्ति के साथ बहुव्रीहि हो । कर्ताकर्मकरणादि का सुबन्तेन सह समास हो । कण्ठेकालो यस्य स । गले में काला लक्षण, मृत्युकारकतीक्ष्ण विष हो जिसके नीलकण्ठो महादेवः । कण्ठे कालस् इति अलौकिक विग्रहे (सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ) सूत्र प्रमाणेन

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

बहुव्रीहिः । ७ हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।३।९ । हलन्तावदन्तात् सप्तम्या अलुक् । कण्ठेकालः । प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना = स्थाली । पीताम्बरो = हरिः । वीरपुरुषको = ग्रामः । (प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः) अविद्यमानपुत्रो-

---

व्यधिकरण = भिन्न-भिन्न विभक्तिकपदयोः समासे सप्तम्यन्तस्य कण्ठे इत्यस्य पूर्वप्रयोगे प्रा० संज्ञा सुलोपे प्राप्ते । ७ । हलदन्तात्--अदन्त से परे सप्तमीका लुक्न हो । इससे अलुक् । अदन्त प्रातिपादिक है । प्रथमायाः एकवचने कण्ठेकालः । नीलकण्ठनामकः पक्षी । एवं पद्मनाभः पद्मं कमलं नाभौ यस्य स विष्णुः (नाभि में कमल हो जिसके) शरेभ्यो जन्म यस्य स = शरजन्मा । कार्तिकेयः । ये व्यधिकरण के उदाहरण है । हलन्तका दृष्टान्त—शरसिजातं शरसिजम् । सप्तमीका अलुक् । प्राप्तोदकोग्रामः प्राप्तं (पहुंच गया है) उदकं = जल यं = जिस गांव तक वह अनेक प्रथमान्त, प्राप्त सु, उदकसु । अन्य पदार्थ द्वितीयाविभक्ति का अर्थ 'ग्राम' । कर्तृवाचकसुबन्त के साथ बहुव्रीहि-समासादिः । कर्मार्थे द्वितीया प्राप्ता किन्तु उक्ते समासे प्रथमा । विशेष्य (प्रधान) अर्थ के अनुकूल लिङ्ग वचन होते हैं । ऊढः = खींचा गया रथः = बैलगाड़ी येन (जिससे वह) ऊढरथः अनड्वान् (बैल) करणार्थे बहुव्रीहिः अनेकप्रथमान्तं उढसु, रथसु का (अन्यपदार्थ) तृतीयाविभक्ति का अर्थ (बैल में विद्यमान) समास, अन्य पदार्थ तृतीयार्थ है । करणे अर्थे बहुव्रीहिः कर्मणि अर्थे बहुव्रीहिः आदि हो किंतु कर्म आदि का समासे अभिधान् = उक्त होने से उक्ते प्रथमैव न द्वितीयादिः । यहां समास के उक्त होने से समासपद में प्रथमा होगी । प्रत्येक समासमें प्रथमा विभक्ति हुई है । उपहृतः (समीप में लाया गया) पशुः यस्मै (जिसके लिए) । उपहृतपशुः रुद्रः । उन्हीं के लिए पशु लाया गया अनेक प्रथमान्त (उपहृतसु पशुसु) का अन्यपदार्थ (चतुर्थीका अर्थ रुद्र) में विद्यमान का समासादिः । चतुर्थी के उक्त होने से प्रथमा । उद्धृतं = निष्कासितं (निकाला गया) ओदनं, (भात) यस्याः (जिस वर्तन से स्थाली, पात्र) उद्धृतसु, ओदनसु । अन्यपदार्थं पञ्चमी का अर्थ अवधिभूत, ध्रुव पात्र । उद्धृतौदना स्थाली । अनेकमन्यपदार्थे समासादिः । पीतम् अम्बरं यस्य (पीले वस्त्र हैं जिसके, पीताम्बरो विष्णुः (पीत सु, अम्बर सु) अन्यपदार्थं षष्ठी का अर्थ है विष्णुः । उक्तेप्रथमा । वीराः पुरुषा यस्मिन् ग्रामे (पहलवान् पुरुष जिस गाँव में हों) वीरसु पुरुषसु अन्यपदार्थे समासादिकार्ये अधिकरणकारक (ग्रामे) अत्र सप्तमी-प्राप्ता किन्तु उक्ते अधिकरणे प्रथमा । शेषाद्विभाषा स्वार्थे कप् वीरपुरुषको देशः (वा०) प्रादिभ्यः = प्रपरा इत्यादि से परे धातुज = वाक्यमे (धातु से) पैदा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ऽपुत्रः । ८ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी-प्रियादिषु ६ । ३ । ३४ । उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहि-निपातनात् पञ्चम्या अलुक् षष्ठयाश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवा-चकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे, न तु पूरण्यां

हुआ शब्द (पतित) आदि । तदन्त = वह (धातुजशब्द) हो अन्तमे उसका दूसरे पद के साथ समास हो, और पूर्व पद के उत्तर पदका लोप हो । प्रकर्षेण अल्पकालेन (वेगेन) पतितानि भूमौ, सम्पृक्तानि प्रपतितानि तादृशानि पर्णानि यस्य [यस्मात्] स । उपर से गिरे हुए, पत्तों के समान पत्ते हैं जिसके प्रपतित सु पर्ण सु । अत्र वार्तिकेन समासादिकार्यें पूर्वपदके अन्तर्गत पतधातुज पतित-शब्द का विकल्प लोपे, स्वादिः । प्रपर्णः । लोपस्य अभावे प्रपतितपर्णः पतझड़ के [वसंत] वृक्षः । (वा०) नञ् से परे जो अस्त्यर्थविद्यमान, उपस्थित, अर्थ-वाचक पद [विद्यामान आदि] वह हो, अन्त में जिसके, अविद्यमान आदि । उसका अन्यपद के साथ समास हो । और पूर्वपदके अन्तर्गत, अस्ति अर्थवाचकशब्दका लोपविकल्प हो । न विद्यमानो अविद्यमानः [जो वर्तमान न हो] तादृशः पुत्रो यस्य स ऐसा पुत्र हो जिसके नञ् से परे अस्ति अर्थका वाचक विद्यमान तदन्तपद अविद्यमान का पुत्र के साथ अन्यपदार्थबोधकसमास हुआ । विद्यमानपद का लोप स्वादिः अपुत्रः । पक्षे अविद्यमानपुत्रः । रूपद्वयं सिद्धम् । यद्यपि अनेकमन्य-पदार्थें से भी समास सिद्ध है । तथापि उत्तरपदलोपविकल्प के लिए वार्तिकम् ॥८॥ स्त्रियाः = स्त्रीलिङ्ग के स्थान में पुंवद = पुल्लिग, हो । परन्तु भाषित-पुंसकात = भाषित = ज्ञानविषयीभूतः पुंस्कः पुमान् पुंस्त्वं यस्मिन् उस स्त्री-लिंकपदमें पुल्लिगभी भाषित = प्रतीत दोनों लिंगो में हो अथवा भाषितः पुमान् यस्मिन्नर्थे स भाषितपुंस्कः सो अस्ति अस्य भाषितपुंस्कः तस्मात् अनूङ् अङ् प्रत्ययान्तं न हो । ऊँङोअभावो यस्याः इति बहुव्रीहिः । भाषितपुंस्कमें पञ्चमी का श्रवण, (षष्ठी का श्रवण न होना) इसका कारण निपातनात् = निपा-तनात् से पञ्चमी का लुक् नहीं हुआ, और षष्ठी का लुक् हो गया । भाषितपुंस्क का अर्थ देते हैं कि तुल्ये समाने प्रवृत्ति में निमित्त कारण, विशेषण, पुंल्लिग, स्त्रीलिंग दोनों दशा में एकजाति को तुल्य प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं । जो भाषित-पुंस्क हो । ऊङ् प्रत्यय का अभाव हो ऐसे स्त्रीवाचक शब्द का पुंल्लिग की तरह रूप हो । समानाधिकरण = समानविभक्तिस्त्रीलिंग उत्तरपद हो पूरणी संख्या और प्रिया आदिशब्दपरे न हो तो । पूरणी संख्याबोधक प्रत्यय तद्धित में है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रियादौ च परतः। (९५२) गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। चित्रगुः रूपवद्भार्यः। अनूङकिम्–वामोरूभार्यः। ६ अप्पुरणीप्रमाण्योः। ५। ४। ११६। पूरणार्थ-प्रत्ययान्त यत् स्त्रीलिङ्गं तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्--कण्याणीप्रियः, इत्यादि।

चित्रगुः चित्रा = विचित्रा, विविधरङ्गवती गौः यस्य। चित्रासु गोसु इति। अनेक प्रथमान्तानां यस्य इति (षष्ठीविभक्त्यर्थे) 'अनेकमन्यपदार्थे' इति समासे, सुलोपे सम्बन्धिकार्ये, 'चित्रागो' इति स्त्रियाः पुंवद्भाषित–सूत्रेणचित्रा शब्दस्य (भाषित-पुंस्कसत्वात्) पुंवद्भावे = पूंलिगे, समानविभक्तिक उत्तरपदे (गो) इति गोस्त्रियो-रूपसर्जनस्य इति ह्रस्वे, तत्र [एक विभक्ति] इति उपसर्जनसंज्ञा स्वादिः। चित्रगुः [विचित्र गाय वाला पुरुष] रूपवती सुन्दरी भार्या (पत्नी) यस्य। रूपवती सु भार्या सु। अनेकमन्यपदार्थे इति षष्ठी विभक्त्यर्थे समासे सुलोपादिः भाषितपुंकम् उङ्रहितं, पूर्वपदं रूपवती इति समानविभक्तिकम् उत्तरपदं भार्या इति। पुंवद्भावेन स्त्रीलिंगबोधकस्य ङीपो निवृत्तिः। नियतविभक्तिकभार्या इति तस्य उपसर्जनह्रस्वे, स्वादिः। रूपवद्भार्यः (सुन्दरी पत्नीवाला) सूत्रे अनूङ्ग्रहणं किमर्थं तस्य फल वामोरुभार्या यस्य वामोरुभार्यः (यहां पुलिंगभाव न होना) उॅङ् प्रत्ययान्त को पुंवद न हो। इसलिये निषेध वचन (अनूङ्) शब्द दिया। पूरण्यान्तु = पूरणी अर्थ में पुलिंग निषेध का उदाहरण ॥ ६ ॥ पूरण अर्थबोधक प्रत्यय अन्त में हो ऐसा जो स्त्रीलिंग, तदन्त = वह हो अन्तमें उसको और प्रमाणी शब्द अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त (अप्) प्रत्यय हो। यथा–कल्याणी = मंगलमयी पंचमी = पञ्चानां पूरणी (पांचवीं) यासां रात्रीणां (जिन रात्रियों की) ताः इति लौकिकविग्रहे। कल्याणी सु पञ्चमी सु। इत्यलौकिकविग्रहे। समासे पुंवद्भावे प्राप्ते अपूरणी इति निषेधांशेन निषेधे समुदाय से अप्पूरणी प्रमाण्योः इति अप् = (अ) प्रत्यये (यस्येति च) ईलोपे प्रा० संज्ञा, टाप्, प्रथमायाः बहुवचने कल्याणीपञ्चमाः अन्य पदार्थ रात्रि है। स्त्री = भरणीया, पोषणीया; प्रमाणी सत्यवचनोपस्थापिका' यस्य (स्त्री ही प्रमाण है जिसका) स्त्रीप्रमाणः भार्याभक्तः। स्त्री सु प्रमाणी सु। अन्यपदार्थ षष्ठचर्थ में, समासे, पुंवद्भावे प्राप्ते, तस्य निषेधे। समासान्त अप्प्रत्यये ईलोपे, विभक्तिकार्ये। सूत्र में अप्रियादि-ग्रहणं किमर्थं ? तस्यफलं प्रिय [या] उसके सदृश शब्द परे पुंवद्भाव न हो। कल्याणी मंगला प्रिया = प्रेयसी यस्य कल्याणीप्रियः। यहां पर प्रिया परे रहते पुंवद्भाव नहीं हुआ। उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्वादिः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६७० बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५ । ४ । ११३ । स्वाङ्गवाचि सक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात् । दीर्घसक्थः जलजाक्षी । स्वाङ्गात् किम्-दीर्घसक्थि=शकटम्, स्थूलाक्षा=वेणुयष्टिः । (६६१) अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच् । १ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः । ५ । ४ । ११५ । आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ द्विमूर्धः । त्रिमूर्धः । २ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५ । ४ ।११७। हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ । व्याघ्र-

---

।। ६७० ।। स्वाङ्गात्=अपने ही अंग का वाचक सक्थि (हड्डी) अक्षि (आंख) शब्द जिसके अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहि से षच् (अ) हो । षित् का फल (षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् । दीर्घसक्थः । दीर्घे लम्बायमाने सक्थिनी=जघने यस्य (जिस पुरुष के जङ्घे लम्बे हों) दीर्घ औ (स्वाङ्गवाचिनी) शक्थिनी औ षष्ठयर्थे बहुव्रीहिः । समासमें स्वाङ्गवाची सक्थि शब्दान्त बहुव्रीहि से षच्, अनुबन्धलोपे, इकारलोपे, स्वादिकार्यें जलजाक्षी (कमल के समान आंखवाली) जलजे कमले 'इव अक्षिणी (नेत्रे) यस्याः । जलज शब्द का स्वाङ्गवाचक अक्षिशब्द के साथ समास, षच्प्रत्यय ईलोप, षित्वात् ङीष ई । प्राणी के अंगको ही स्वांग कहेंगे । मूर्तिके अंगको नहीं । स्वाङ्गात् किम् ? अक्षि, ये स्वांङ्गवाची क्यों कहे गये ? इसलिए कि दीर्घसक्थिः शकटं (लम्बी पहियावाली गाड़ी) (शकट) चेतनप्राणी नहीं है । उसका अंग न लिये जाने से षच् नहीं हुआ । एवं स्थूलाक्षा—स्थूले अक्षिणी यस्याः मोटी आँख वाली (बाँस की छड़ी) चेतन न होने से स्वाङ्गवाची नहीं हैं । षच् नहीं हुआ । अक्षणो अदर्शनात् से अच् प्रत्यय, टाप् । अच् षच् में टाप् ङीप् का अन्तर है । १ । द्वि और त्रिशब्द शब्द से परे मूर्ध=मूर्धन शब्दको समसान्त ष (अ) हो बहुव्रीहिमें । ष और षच् में चित्स्वर का अन्तर । द्वौ मूर्धानौ यस्य (दो सिर हो जिसके) अनेकप्रथमान्तों का षष्ठीविभक्ति-के अर्थ में समासे, अ प्रत्यये, नस्तद्धिते इतिटि (अद्) लोपे विभक्तिकार्यें । द्विमूर्धः । त्रयो मूर्धानो यस्य (तीन सिर हों जिसके) समासे, षः, टिलोपे त्रिमूर्धः (त्रिशिरा) ।२। आभ्याम्=अन्तर और वहिष् शब्दसे परे लोमन् शब्द से 'अप्' प्रत्यय हो, बहुव्रीहिसमास में । अन्तः (गुप्तोन्द्रियपर) लोमानि (रोयें) यस्य सो अन्तर्लोमः अन्तर+लोमन+जस् के बीच समासे, 'अन्तर्बहिर्भ्याम्' अप्, (नस्तद्धिते) टिलोपे, विभक्तिकार्यें, अन्र्लोमः अन्तरंगरोमवाला । वहिः लोमानि (वाहर रोम, मूंछवाला] वहिर्लोमः । समासे अप् टिलोप आदि ।३। हस्ती=हाँथी आदि [ऊँट वगैरह] वर्जितात्=त्यागकर उपमानात्=उपमानवाची शब्द से परेपादशब्द का लोप हो, बहुव्रीहि समास में अलोन्त्यपरिभाषा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्येव पादावस्य व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम्--हस्तिपादः, कुसूलपादः । ३ संख्या सु-पूर्वस्य ५ । ४ । १४० । पादस्यलोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ । द्विपात् । सुपात् । ४ । उद्विभ्यां काकुदस्य ५ । ४ । १४८ । लोपः स्यात् । उत्काकुत् । विकाकुत् ।

९७५ पूर्णाद् विभाषा ५ । ४ । १४९ । पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः । ७ सुहृद्-

---

से अन्त्य अल् पाद के (अ) का लोप हो। इस लोप को [अभावरूप होते हुए भी समासान्त माननाचाहिए, ताकि कप् प्रत्यय न हो। व्याघ्रः पादौ यस्य (यद्यपि बाघ किसी का पैर नहीं होता, इसलिए व्याघ्र शब्द का व्याघ्रपाद में लक्षणा) अतः व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात्। तथापि बाघ के पैरके समान अर्थं लक्षणा से है। तथापि जैसे—बाघ चलते हैं, पैर चुट-चुट बोलते हैं। जिसका पाद चलते समय वैसा बोले वह व्याघ्रपाद। यहाँ उपमानवाची व्याघ्रका पाद के साथ समास होने पर पादशब्दान्त अकार का लोप उक्त सूत्रसे हुआ। जश्त्वे, चर्त्वे अहस्त्यदिभ्यः किम् ? हाँथी ऊँट घोड़ा आदि से वर्जित उपमान, ऐसा अर्थ क्यों ? इसलिए कि हस्तिनः पादौ इव पादौ यस्य स हस्तिपादः (हाँथी के पाँव के समान पाँव है जिसका, पीलपांव वाला) यहाँ पाद के अ का लोप न हो। कुशूलपादौ इव पादौ यस्य, कुठिला की तरह पैर हैं जिसका यहां अकार लोप न हो अतः अहस्त्यादिग्रहण किया। हाँथी आदि का वर्जन हुआ। ३ संख्या और सु पूर्वमें हो, ऐसे पादका लोपहो, बहुव्रीहिमें वह समासान्त समझाजाय। द्वौ पादौ यस्य (दो पैरवाला) द्विपाद मनुष्यः। द्वि औ पाद औ। अनेक प्रथमान्तों का षष्ठीके अर्थमें बहुव्रीहिसमास, संख्यापूर्वकपादशब्द का अन्त्य अल् अकारका लोप हुआ। चर्त्वे। शोभनौ सुन्दरौ पादौ चरणौ यस्य। सुपाद औ षष्ठीविभक्त्यर्थे बहुव्रीहि समासे संख्या सु-पूर्वस्य। इति पाद शब्दान्त अकारलोपे। चत्वारः पादाः यस्य चतुष्पात्। ४ उत् और वि से परे काकुदशब्दका समासान्त लोप हो। उत्= उद्गतं काकुदं (तालु या डील) यस्य स उत्काकुत्। उन्नत डील वाला बैल। बहुव्रीहि समासे, काकुदस्य अन्त्यअकारस्य लोपे, वि=विशिष्टं विनष्टं वा काकुदं यस्य। तालु, डील बड़ा हो या नष्ट हो, वह विकाकुत है। यहाँभी समास, अलोपादिः।

। ९७५। पूर्ण शब्द से परे काकुद्का लोप हो; विभाषा--विकल्प से। पूर्णं काकुदं यस्य (पूर्ण है तालु जिसका) पूर्ण सु तालु सु। इत्यलौकिक विग्रहे अनेकमन्य पदार्थे इति षष्ठ्यर्थबहुव्रीहिसमासे। पूर्णाद्विभाषा इति काकुदस्य अकारलोपे चर्त्वे, पूर्णकाकुत् यदा न लोपः, तदा पूर्णकाकुदः। ७। सुहृच्च

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ५ । ४ । १५० । सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः । ८ उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५ । ४ । १५१ । ९ कस्कादिषु च ८ । ३ । ४८ । एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः । इति सः । व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः ।

९८० निष्ठा २ । २ । ३६ । निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । युक्तयोगः । १ शेषाद् विभाषा ५ । ४ । १५४ । अनुक्तसमासान्तात् बहुव्रीहेः कप् वा । महायशस्कः । महायशा । इति बहुव्रीहिः ।

सुहृद्दुर्हृदौ मित्रञ्च अमित्रञ्च मित्रामित्रे तयोः । सु और दुर् से परे हृदय शब्द को हृद् आदेश, निपातनसे हो । क्रमशः (मित्र और शत्रु अर्थ में) सुष्ठु = शोभनं हृदयं यस्य सुहृत् । मित्रम् । बहुव्रीहिसमासे, हृदयस्य हृद् आदेशे (कृतज्ञ परोपकारी मित्र) दुष्ठु = दूषितं क्रोधलोभादिना पूरितं हृदयं यस्य । समासे हृद आदेशे, दुर्हृद (अमित्रः, शत्रुः) । ८ । उरस् प्रभृति = इत्यादि से समासान्त कप् हो बहुव्रीहि में 'क' शिष्यते (सोऽपदादौ) पास, कल्प, काम्य, परे रहते विसर्ग को स हो । ९ । कस्क आदि गणमें पठित शब्दोंमें इण् से परे विसर्ग को 'ष' हो । अन्य से परे 'सः' । यथा व्यूढोरस्कः । व्यूढं विशालम् उरो वक्षस्थलं यस्य । अनेकप्रथमान्तव्यूढ सु उरस् सु का षष्ठी अर्थमें बहु० समासे । उरः प्रभृतिभ्यः इति कप्-कप्रत्यये उरस् के सकार को रुः रेफको विसर्गः । कस्कादिषुच इण् से परे विसर्ग को ष हो यथा—प्रियसर्पिष्कः प्रियः सर्पिः यस्य (प्रिय हो घी जिसे) वह प्रियसर्पिष्कः प्रियसु सर्पिसु समासे, कप् प्रत्यये, सकारस्य रुत्वे विसर्गे, इण् = इकार से परे विसर्गको मूर्धन्य ष हुआ ।

९८० । निष्ठान्तं = निष्ठा प्रत्यय अन्तमें हो, उसका पूर्वप्रयोग बहुव्रीहिमें हो । युक्तः = सफलीभूतः योगः = एकाग्रता, ध्यानं यस्य स युक्तयोगः । सिद्धयोगी । युक्तसु योगसु । षष्ठी अर्थमें समासे निष्ठाप्रत्ययान्तयुक्तशब्दका पूर्वप्रयोग । यद्यपि (योगयुक्तो विशुद्धात्मा) यहां युक्तका पूर्वप्रयोग नहीं है । योगेन युक्तः तत्पुरुषः होने से । १ । शेषात् = अनुक्त समासान्तात् = जिस बहुव्रीहिमें समासान्त प्रत्यय अनुक्तः = न कहा गया हो उससे कप् हो । उक्तादन्यः शेषः । शेषे भवः शैषिकः कप् । महद् यशो यस्य स महायशस्कः महायशाः, व्यापक यश वाला । षष्ठ्यर्थे बहुव्रीहिसमासे यहां कोई समासान्त प्रत्यय न होने से शेष अर्थ में शेषाद्विभाषा सूत्र से कप् विकल्प हुआ । इति प्रभाकरी टीकायां बहुव्रीहिः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथद्वन्द्वः

२ चार्थे द्वन्द्वः २। २। २९। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते; स द्वन्द्वः समुच्चायान्वाचयेतरेतरयोग-समाहाराश्चार्थाः। तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्य' इति परस्पर निरयेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः=समुच्चयः। 'भिक्षामट गां चानय' इति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। धवखदिरौ छिन्धि इति मिलितानामन्वयः=इत-

---

अथद्वन्द्वः—द्वौ द्वौ मिलित्वा सहविवक्षावशात् एकक्रियान्वयीभवनं द्वन्द्वसमासः। दो या अनेक पद एकसाथ अन्वित होकर अपनी प्रधानता बनाये रहे। । ९८२। चार्थे=अनेकसुबन्त (च) के अर्थमें वर्तमान हों, उनका समास विकल्प से हो, वह द्वन्द्व कहलाये। च के कौन अर्थ हैं। जिनमें वर्तमान सुबन्तोंका समास हो जाय। चार्थाः=च के चार अर्थ हैं समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार इन चारों के अर्थ और उदाहरण दिये जा रहें हैं। समुच्चय का उदाहरणः हे भक्त ! इश्वरं और गुरुं च भजस्व=भजनकरो। (भज, सेवायां, सेवासे) ईश्वर और गुरु को प्रसन्न करो। दोनों के साथ भक्तका सेव्यसेवकसम्बन्ध सापेक्ष है। परन्तु ईश्वर का गुरु के साथ परस्पर कोई सम्बन्ध या क्रिया में सह विवक्षा ध्वनित नहीं है। अतः परस्पर निरपेक्षस्य आपस में एक दूसरे की कोई अपेक्षा न करके अनेकका एक में (ईश्वर गुरुका एक भजस्व क्रिया में) अन्वय समुच्चय है। विना गुरुका भजनक्रिया में उसी क्रिया की आवृत्ति करके ईश्वर का अन्वय होना निरपेक्ष है। अर्थात् ईश्वरं भजस्व, गुरुञ्च भजस्व। दोनों भजन क्रिया में स्वतन्त्र हैं। अन्योन्याश्रित नहीं (चं)का समुच्चय अर्थ है। एकस्यां क्रियायां परस्परनिरोपक्ष्यसम्बन्धः समुच्चयः। १—अन्वाचय–दो क्रियाओं के मध्य में जहां एक की प्रधानता हो दूसरे की प्रासङ्गिकता गौणत्व; अप्रधानरूप, अन्वय हो उसे अन्वाचय कहते हैं। जैसे–भिक्षाम्भट् (जाकर भिक्षा मांगो) हां आते समय गाम् आनय (गायको भी लाओ)। यहां भिक्षाटन मुख्यकर्म है। किन्तु गाय का लाना अन्यतरस्य=दूसरी क्रिया का आनुषङ्गिकत्वेन प्रसंगवशात्= अन्वय होना अन्वाचय है। अनयोः=समुच्चय और अन्वाचय इन दोनों अर्थोंमें असामर्थ्यात् परस्परमें एकार्थीभावरूवसामर्थ्य, परस्परशक्ति न होने से समास नहीं होता। क्योंकि समसनं पृथक्-पृथक् अर्थानां पदानां मिलित्वा एकार्थीभवनं समासः है। उन दोनों में वृत्तिका अभाव है। (यत्र-यत्र परिनिष्ठितपदेषु वृत्तिः)

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रेतरयोगः। संज्ञापरिभाषम् (इति) समूहः=समाहारः। ३ राजदन्तादिषु परम्। २। २। ३१। एषूपूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजा=राज-

---

तत्र समासः समुच्चयः परस्पर निरपेक्ष है। अन्वाचयमें प्रधान गौणभाव है। १—इतरेतरयोगः=एक पदार्थका इमस्मिन्=दूसरे पदार्थ के साथ योगः (सम्बन्धः) मिलकर सहविवक्षा। मिलितानां परस्य सापेक्षतामन्वयः। पदार्थ आपसमें मिलकर एक क्रिया का आधार हों, किन्तु उनमें भेद भी उद्भूत हो मिलकर एक धर्मावच्छिन्न=एक ही क्रिया में अन्वय में इतरेतरयोग हैं। यथा धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ छिन्धिः। धव और खैर को एकसाथ काटो। यहां धव और खदिर एक दूसरेके साथ मिलकर (किन्तु यह धव है, यह खदिर है) ऐसा भेद होते हुए छेदन क्रिया में साथ अन्वित है। यहां वृत्ति एकार्थीभाव है। ४:—समाहारः-समाहरणं तिरोहितावयवगतसंख्यः समूहः) समाहारः। जहां सभी पदार्थ की अवयवगतसंख्या छिप जाय या समाप्त हो किन्तु समुदाय की संख्या रहे उस समूहको समाहार कहते है। यथा संज्ञा च परिभाषा च अनयोः समाहारः संज्ञापरिभाषम् यहां पर अवयव की संख्या छिप गयी। समुदाय संख्या उद्बुद्ध हो गयी इतरेतर योग में समासकिये गये पदार्थ की संख्या समुदाय में आरोपित होकर द्विवचन बहुवचनका प्रयोग संभव है। परन्तु समस्यमान समाहार-द्वन्द्व में समस्यमानपदार्थं की संख्या समुदाय के संख्या में अन्तर्भूत हुई। समाहार और द्विगु का द्वन्द्व में क्या अन्तर-यत्र विग्रहे षष्ठयन्तं पदं (पंचानां गवां समाहार इति) तत्र समाहारः, द्विगुः। यत्र विग्रहे प्रथमान्तानां पदानां संज्ञा च परिभाषा च इति प्रयोगः तत्र समाहारो द्वन्द्वः चकार के चारो अर्थ सोदाहरण सम्पन्न हुए। यह (संख्या) लौकिक विग्रहमें श्रुत, समासमें अश्रुत है। अनेक पदोंका भी द्वन्द्व होता है। इसमें पूर्वप्रयोग का नियम अनियत है। पूर्वप्रयोग का नियत नियम आगे प्रस्तुत कर रहे हैं॥ ३॥ राजदन्त आदि शब्दों में पूर्वप्रयोगार्ह है=पहले प्रयोगके योग्य शब्दका परं=बादमे प्रवेश हो। यथा=दन्तानां राजा (दांतो का राजा) राजदन्तास्तु चत्वारो, दन्तानाम् उपरि स्थिता। चौड़े चारदांत दांतो के राजा हैं। दन्त आम् राजन् सु। षष्ठी सूत्रेणसमासे, सुलोपादिः, समासविधायकषष्ठीसूत्र में षष्ठीपद प्रथमान्त है अतः षष्ठयन्त दन्तशब्दको उपसर्जनसंज्ञा। तस्यपूर्वं प्रयोगः प्राप्तः, राजदन्तादिषु=सूत्रेणपूर्वप्रयोग के योग्य दन्त शब्द का पर=आगे प्रयोग हुआ। इसी तरह गुरुणां राजा राजगुरुः। वैद्यानां राजा, मन्त्रीणां राजा राजमन्त्रिः अध्यापकानां श्रेष्ठः श्रेष्ठाध्यापकः। यहाँ राजा के दांत या राजाके गुरु, ऐसे अर्थ का भ्रम न हो। विशेष नियम स्मरण से द्वन्द्वसमास में ऐसा ही नियम है।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दन्तः। (धर्मादिष्वनियमः) अर्थधर्मौ, धर्मार्थावित्यादि। ४ द्वन्द्वे घि २। २। ३२। द्वन्द्वे घिसंज्ञंपूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च–हरिहरौ

९८५ अजाद्यदन्तन्तम् २। २। ३३। इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात् ईशकृष्णौ। ६ अल्पाच्तरम् २। २। ३४। शिवकेशवौ। ७ पिता मात्रा १। २। ७०। मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ, मातापितरौ वा। ८ द्वन्द्वश्च प्राणि-तूर्य-सेनाङ्गानाम् २। ४। २। एषां द्वन्द्व एकवत्।

(वा०) धर्मादिषु = धर्म अर्थ काम मोक्ष और उसके सदृश शब्दोंमें किसका प्रथम प्रयोग हो, इस विषय में अनियमः = नियम नहीं है। कोई भी पूर्व में रहे। अर्थश्च धर्मश्च अर्थ सु धर्म सु। चार्थे द्वन्द्वः। इतरेतरयोगे अर्थे वर्तमानस्य धर्मस्य अर्थेन सह समासे प्रा० संज्ञा, सुलोप आदि कार्यें। पूर्व प्रयोगस्य यस्य कस्य इति नियमो नास्ति अर्थधर्मौ धर्मार्थौ एतौ द्वावपि भवतः ॥४॥ द्वन्द्व समास में घिसंज्ञं जिसको घी संज्ञा हुई हो उसका प्रथम प्रयोग हो। यथा–हरिश्च हरश्च हरि सु हर सु। द्वन्द्व समासे (शिषौ छ्यसखि) घि संज्ञकहरिशब्दस्य पूर्वप्रयोगे हरिहरौ उपकुरुतः। विष्णुशिव उपकार करते हैं। क्रियाकारक सम्बन्ध इतरेतरयोगसम्बन्ध।

॥ ९८५ ॥ अजादिश्च अदन्तश्च अनयोः समाहारः (अजाद्यदन्तम्) अच् आदि में हो, अकार अन्तमें हो, ऐसे शब्द का द्वन्द्व में पहले प्रयोग हो। ईशश्च कृष्णश्च ईश सु कृष्ण सु। इत्यलौकिक विग्रहे द्वन्द्वसमासे (ईश शब्द अजादि है अदन्त भी) उसी का पूर्वप्रयोग द्विवचने ईशकृष्णौ, युद्ध्यतः। शिव कृष्ण वाणासुर प्रसंग में युद्ध करते हैं॥ ६ ॥ समासपदों में अल्प अच् पूर्वमे रहे। शिवश्च केशवश्च (शिव सु केशव सु) द्वन्द्वसमासे अल्प अच् वाले शिवपद का पूर्वप्रयोग अल्पाच्तरं से हुआ। प्राति० सं०, (औ) शिवकेशवौ परस्परं नमतः। शिवकेशव एक दूसरे को नमस्कार करते हैं। ७। मात्रा = माता के साथ उक्तौ = कथन होने पर पितापदका एकशेष विकल्पसे हो। माता च पिता च द्वन्द्वसमासे, माता के साथ पिता का उच्चारण है। पितृपद का एकशेष। माताशब्द लुप्त यः शिष्यते (जो शेष रहता है) सलुप्यमानार्थाभिधायी भवति। वह लुप्त हुए के अर्थ को बोलता है। पितृपद माताको भी कहेगा। अतः द्विवचने पितरौ धर्म पालयतः। यदा नैकशेषः तदा मातापितरौ। पितुर्दशगुणा माता, गौरवेणातिरिच्यते, माता पिता से दशगुना अभ्यर्हित (पूज्य) है। मातृ-पितृऔ आनङ् ऋतो द्वन्द्वे इतिमातृ ऋकारस्त आनङ् (आ) मातापितरौ इति एकशेषद्वन्द्वः। ८। प्राणी = चेतन् तुर्य = वाद्य, सेना = देशरक्षक, इनके अङ्ग-वाचकका द्वन्त समास में एकवचनान्त समुदायवाचक है। पाणि (हाथ) अङ्ग-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्वारोहम्। ९ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ५।४।१०६। चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात् समाहारे। वाक् च त्वक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छात्रोपानहम्। समाहारे किम्–प्रावृट्शरदौ। इति द्वन्द्वः।

अथ समासान्ताः

९९० ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ५।४।७४। अ अनक्षे इति च्छेदः।

वाचक पाणीच पादौच पाणिओ पादओ, अनयोः समाहारः द्वन्द्व समासे, पाणि-अङ्गवाचक (हाथ पैर का) द्वन्द्वश्च प्राणितुर्य-आदिना एकवद्भावे स्नपुंसकं समाहारे नपुंसक हो। पाणिपादं वध्नाति। मृदङ्गवादनं शिल्पं एषां (मृदङ्ग बजाना स्वाभाविक कला हो जिनके) वेणुवादनं शिल्पमेषान्ते (बंशी बजाना कला हो जिनकी) मर्दिङ्गिकाश्च वैणविकाश्च एषां समाहारे अर्थे द्वन्द्वसमासे तूर्यं—वाद्य का अंग मृदंगः, वंशी है मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्च अश्वारोहाश्च (रथवाले और घुड़सवार ये सेना के अंग हैं) अतो द्वन्द्वसमासे एकवद्भावे रथिकाश्वारोहं पश्यामि। एक क्रिया में अन्वय का नियम पूरे द्वन्द्व में माननीय है। ।९। चुदषहान्तात् = चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) और दषह ये अन्त में हो, ऐसे द्वन्द्व से टच् (अ) हो समाहार अर्थ में वाक्चत्वक्च वाणी और त्वचा (स्पर्शग्राहक इन्द्रिय चर्म) वाच्सु त्वच्सु समाहारे अर्थे द्वन्द्वसमासे चवर्गान्त द्वन्द्व से टच् अकारान्त शब्द। चोः कु इति कुत्वे, नपुंसकैकवचने वाक्त्वचं जीर्यते (वाणी स्पर्शेन्द्रिय शिथिल हो रहे हैं) त्वक् च स्रक् च तयोः समाहारः चर्म इन्द्रिय और माला पदों का समाहार द्वन्द्वे, कुत्वे, टच्, त्वक्स्रजं सहैव पश्यामि। शमी-दृषदम्। शमीच् दृषद् च समाहारः शमी लकड़ी और पत्थर इनके मिलजाने अर्थमें द्वन्द्वः। दकारान्त से टच् 'अ' समाहारे नपुं० इत्यादिः। वाक् च त्विट् च वाक्त्विषम् और चमक दोनोंका (वाच् सु त्विष् सु) समाहारे—मेल अर्थ में द्वन्द्वसमासः, षान्त होने से टच् आदिः। क्षत्रञ्च उपाहनो च एषां समाहारः, द्वन्द्वसमासे टच् नपुं० एक० छात्रोपाहनम् आपणे क्रीणामि। सूत्र में एक समाहार क्यों पढ़ा? इसलिए कि प्रावृट्शरदौ। प्रावृट् च शरच्च—वर्षा और शरद ऋतु, इस इतरेतरयोगद्वन्द्व में टच् न हो। अतो नपुंसकएकवचन नहीं हुआ। इति प्राभाकरी-टीकायां द्वन्द्वसमासः।

अथसमासान्ताः समासस्य अन्तः समासान्तः प्रत्ययः प्रारभ्यते।

।९९०। आनक्षे (अ अनक्षे अ—अप्रत्यय हो, अनक्षे—अक्ष (चक्र, धुरा) को छोड़कर। इतिक्षेदः ऐसा विभाग है। ऋगाद्यन्तस्य—ऋच् (मन्त्र)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

ऋगाद्यन्तस्य समासस्य 'अ' प्रत्ययोऽन्तावयवः स्यात् अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। विमलापं=सरः। राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः। १ अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६। अचक्षुःपर्यायादक्ष्णेऽच् स्यात् समासान्तः। गवामक्षीव—गवाक्षः। २ उपसर्गादध्वनः ५।४।८५। प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो=रथः। ३ न पूजनात् ५।४।

पुरः ग्राम। अप्—जल। धुर—चक्का और पथिन् ये शब्द जिससमास के अन्तमें हों उससे (अ) हो। वह समास का अन्त अवयव माना जाय। परन्तु अक्ष (रथ का चक्र) उसका मध्य धुर शब्द अन्तमें न हो। क्रमशः उदाहरण ऋचाम् अर्धः, अर्धर्चः मंत्र का आधा। षष्ठी समासे, अप्रत्यये, अथवा अर्धं नपुंसकमिति समासे सुलोपे, गुणेः ऋक्पूरब्धूः—सूत्रेण अप्रत्यये अर्धर्चादयः पुंसि इति नियमेन पुंलिङ्गे, अर्धर्चः। विष्णोः पूः (विष्णु भगवान्की नगरी) अत्र षष्ठी तत्पुरुषः समासादिकार्ये ऋक्पूइति 'अ' प्रत्यये। परवल्लिंगमिति नपुंसकासंभवात्। कर्णपुरम्—कानपुर। लक्ष्मणपुरम्—लखनऊ। नागपुरम्। विमलाः आपो जलानि यत्र तत् विमलापं सरः तडागः। निर्मलजल वाला तालाब। विमलयश, अपयश, समासे समासान्त अप्रत्यये। सरः विशेषणानुसारी। लिंगवचन। राज्ञोधू राजधुरा (राजाओं का (भार) कर्तव्य पृथ्वीपालन) षष्ठीसमासे; अप्रत्यये टाप्; राजधुरा। धूः स्त्री क्लीबे यानमुखम् इत्यमरः। सूत्र में अ अनक्षे इस निषेध, अंशसे अक्षधूः में समासान्त अप्रत्यय नहीं हुआ। अक्षश्चक्रं तस्य धूः अग्रभागः। (रथ पहिए का अगलाभाग) अक्षधूः दृढ़धूः दृढ़ा धूः यस्य (मजबूत धुरा है जिसका रथ नाभिच्छिद्रम्। बहुव्रीहिसमासे अप्रत्यये प्राप्ते अनक्षे इति निषेधे। सख्युः पन्था इति सखिपथः मित्रका मार्ग। सामान्यसम्बंध। मित्रसंबंधी रास्ता। सखि ङसि पथिन् सु। षष्ठीसमासे, समासान्तो अप्रत्ययः। मस्य टेर्लोपे विभक्तिकार्ये सखिपथः प्रशंसनीयोऽस्ति। रम्याः पन्थानो यस्य (रमणीय रास्ते वाला देश) रम्यपथः बहुव्रीहिसमासे अप्रत्यये रूपम्। १। अदर्शनात्—दर्शन अर्थ में प्रसिद्ध न हो अचक्षुपर्यायात् [आंख] अर्थसे भिन्न अक्षिशब्दसे अच्प्रत्यय हो। वह समासांत माना जाय। गवाम् अक्षि, इव [गाय की आंख की तरह] खिड़की; झरोखा, गौंखा, गवाक्षः। षष्ठीतत्पुरुषसमासे, यहां अक्षशब्द के नेत्र भिन्न अक्षसदृश अर्थसे समासान्त अच् हुआ सुपोलुक्, आदिः। गवाक्षः। वातायनं हवादार खिड़की। २। उपसर्गसे परे अध्वन, शब्दको समासांत अच हो, क्रिया के योगमें। प्रादि उपसर्ग हैं। प्रगतो अध्वानं (मार्ग पर चला हुआ। अत्यादयः क्रांताद्यर्थे द्वितीयया। प्रगतः—दौड़ा हुआ या तेज चला हुआ। अर्थवाचक प्रशब्दका अध्वनके साथ समासे, टिलोपादिः प्राध्वोः रथ आनीयते। ३। पूजनार्थात्—प्रशंसनीय

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६९। पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः। (स्वतिभ्यामेव। सुराजा। अतिराजा। इति समासान्ताः।

अर्थसे परे समासांत प्रत्यय न हो [वा०] सु और अति के प्रशंसनीयअर्थसे परे ही समासान्त प्रत्यय का निषेध है। अर्थात् सु अति से भिन्न प्रशंसार्थक शब्दों से प्रत्यय हो। शोभना राजा सुराजा प्रशंसनीयः राजा (स) सुराजन् से कुगति प्रादयः समासे 'राजाहः सखिभ्यष्टच् इति टच् प्राप्ते नपूजनात् इति निषेधे। पूजनीय अर्थमें सु स्वादिकार्ये। राजानमतिक्रान्तोऽतिराजा। राजतेशोभते राजा अतिशायितः राजा अतिराजा अत्रापि कृते समासे टज्न भवति। इति प्रभाकर मिश्रकृतायां प्राभाकर्यां समासान्ताः।

अथतद्धिताः—समास समाप्ति के अनन्तर तद्धितप्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। ये प्रातिपदिकके अधिकार में पढ़े गये हैं। अतः प्रातिपदिकात्तद्धितोत्पत्तिः अथवा सुबन्तात्तद्धितोत्पत्तिः। प्रातिपदिक से या सुबन्त से तद्धितप्रत्यय होते हैं। शब्दार्थः—तस्मै प्रातिपदिकाय हिताः अथवा प्रयोगाय हिताः तद्धिताः। प्रयोगों के लिए उपयोगी हितैषी, दिव्य, सुन्दर अर्थवर्धक, व्यवहारसुगम, कुशल, अल्प, अक्षर से असन्दिग्ध अधिक अर्थदायक, सुन्दरीकरण आदि गुणसंस्कारक, प्रत्यय हों। यदि प्रातिपदिक के लिए हितकारी हैं तब सभी प्रत्ययों का अर्थ प्रातिपदिकार्यसे सम्बद्ध होगा। जो जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक रूप हैं। प्रायः अपत्य (पुत्र) गोत्रापत्य (पौत्र) युवापत्य (प्रपौत्रादि) ये सभी अर्थ जाति अर्थके बोधकप्रातिपदिकार्थ हैं। जो जननात् जायते या. सा जातिः जन्म से जाति का (अपत्यादि अर्थ का) बोध होता है। जाति का आधार व्यक्ति प्रधानरूप से बोध्य है। यथा—दिति का पुत्र दैत्य, जाति भी, व्यक्ति भी। आदिति का पुत्र आदित्य देवता जाति और व्यक्ति भी बोध्य है। लिङ्गबोधक भी प्रत्यय हैं। भाव में त्व और तल् आदि अनेक प्रत्यय हैं। उनका अर्थ व्यक्ति शब्द में जितने विशेषण हैं गुण क्रिया जाति धर्म योग्यता विशेषता सभी (त्व) प्रत्यय के अर्थ। त्वान्तं क्लबं तलन्तं स्त्रियाम्। यथा—अस्य ब्राह्मणत्वं जानामि। इसके ब्राह्मणत्वं=तपस्या, वेदका ज्ञान, जाति, सन्ध्याबन्दन, पवित्रता सदाचार त्याग, तप क्षमा शम दम आदि को जानता हूँ। सभी प्रत्ययों का अर्थ किसी न किसी रूप में प्रातिपदिकार्थ से सम्बद्ध है। प्रत्येक प्रयोगों में पूर्ण या आंशिक रूपसे सुलभ हैं। तद्धितवृत्ति है। परार्थ=एकार्थीभाव का अभिधानं का बोधक है। प्रकृति सुबन्तका अर्थ और प्रत्ययका अर्थ मिलकर एकार्थीभाव होते हैं। पृथगर्थानाम् एकार्थोपस्थितिः एकार्थीभावः। प्रत्येक वृत्ति में लौकिक विग्रह और

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथतद्धिताः

९९४ समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२। इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत्।

९९५ अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४। एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यती-

अलौकिक शरीर अवश्य है। यथा–अश्वपतेरपत्यं यह लौकिक (लोक, समाज में उपयोग के योग्य) शरीर हैं अश्वपतिङस् अलौकिक विग्रह, जिससे अणादि होते हैं। 'तत्रादौ साधारणप्रत्ययाः—प्रथम प्रकरण में साधारण=व्यापक, अधिकदेशमें कार्यरत, प्रत्ययाः–प्रत्याययन्ति=अपत्य, अधीत, भव, जात, हित, आगत, निवास, विकार, आदीन् अर्थात् बोधयन्ति, इतिप्रत्ययाः ।४। समर्थानां=प्रतिपादिक या पद का अर्थ प्रथमात्:–प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत शब्द (तस्य, तेन, आदि उसका उद्देश्य षष्ठयन्त, तृतीयान्त पद से वा=विकल्प। पदत्रयं=तीनों पद अधिक्रियन्ते। त्रयं में एकवचन से तीनों पदों का एकसाथ अधिकार चलना व्यङ्ग्य है। तब सूत्रमधिक्रियते =ऐसा क्यों नहीं कहा। पदत्रयमधिक्रियते ऐसा क्यों ? इसलिए कि स्वार्थिकप्रकरणों में केवल 'वा' का सम्बन्ध आता है। अन्य दोनों का नहीं, प्राग्दिशः=प्राग्दिशोविभक्तिः इस सूत्र तक तीनों पदों का पूर्ण अधिकार है। तदनन्तरं स्वार्थिक प्रत्ययाः प्रारभ्यन्ते। इनका केवल विधि सूत्रके वाक्यार्थ बोधमें उपयोग है। स्वतन्त्र नहीं। यथा समर्थः पदविधिः पदको उद्देश्य करके प्रत्यय आदि का विधान वृत्ति (सामर्थ्य) परस्पर सम्बंध, योग्यता के अधीन है। यह पदोद्देश्यकविधि कृत्तद्धितसमाससनाद्यन्तएकशेष, पांचों वृत्तियों में है। प्रसङ्ग में प्रकृत्यर्थ (सुवन्तार्थ) और प्रत्ययार्थका मिलकर एकार्थीभावरूप योग्यतावृत्ति है। अधिकारका फल प्रयोग के योग्यसमर्थशब्दोंका तद्धितवृत्ति विधायक सूत्रमें प्रथम उच्चारित (पद) से जिसका बोध हो उससे प्रत्यय विकल्प से हो। यथा तस्यापत्यं तस्येदं, तस्य निवासः, तस्य विकारः, इत्यादि में प्रथमात्-प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत (तस्य) शब्द है। इस षष्ठयन्तपद से जिस शब्दका ग्रहण हो उसी से प्रत्यय हो। उपगोः अपत्यं—षष्ठयन्तपद उपगोः से अण् प्रत्यय हुआ। यह तद्धित प्रत्यय विधिसूत्रों में प्रथम उच्चारित से उसके उद्देश्यभूत शब्दों से होता है। अपत्यम् इदं, निवासः विकार, शब्द से नहीं, क्योंकि वे उद्देश्य नहीं विधेय हैं। प्रथम उच्चारित नहीं है। पक्षमें लौकिक विग्रह भी रहते हैं।

।९९५। एभ्यः=अश्वपति आदि शब्दों से अण् प्रत्यय हो।६। प्राग्दीव्य-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

येष्वर्थेषु। अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम्। गाणपतम्। ६ दित्यदित्यादित्य पत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५। दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात्। अणोऽपवादः। दितेरपत्यं दैत्यः। अदितेरादित्यस्य

तीयेषु अर्थेषु। तेन दीव्यति खनतिजयत जितम्' इस सूत्रमें पठित अर्थ से प्राक्= पहले तक (यावन्तो अपत्यादयोअर्थाः' जितने अपत्य इत्यादि प्रत्यय पढ़े गये हैं) उनका अधिकार है। जैसे :—तस्यापत्यं तत्राजातः ततआगतः, तदधीते, तेनप्रोक्तं। तस्मैहितं, सोऽस्यनिवासः, तेननिवृत्तं तस्य समूहः, इत्यादि अर्थ प्राग्दीव्तीय कहलाते हैं। यथा आश्वानांपतिः, अश्वपतिः (घोड़ों का मालिक) उसके अपत्य—सन्तान कहने की इच्छा हुई, तब षष्ठचन्त अश्वपतेः अपत्यम् (अश्वपतिका सन्तान) लौकिकं वाक्यम् 'अनश्वपति ङस्' इति अलौकिकशब्दात् समर्थात् (अश्वपत्यादिभ्यश्च) इति सूत्रेण अपत्ये अर्थे जन्यजनक भावयोग्यता सत्येव अण्। तद्धितवृत्तिः अण्प्रत्यय विधायक सूत्र में प्रथम उच्चारित उद्देश्यभूत अश्वपति शब्द है। अण्पद सन्तान आदि अर्थका बोधक है। 'कृत्तद्धितसमासाश्चेति) प्रा० संज्ञा, सुपोधातुप्रातिपदिकयोः इति सुपोलुक्। अनुबन्धलोपे, अश्वपति अ। इतिदशायां तद्धितेष्वचामादेः इति सूत्रेण आदि अकारस्य आवृद्धिः, यस्येति च' अन्त्येकारस्यलोपे स्वादिः आश्वपतः। पुत्रः अश्वपतिनां समूहः आश्वपतम्। आदि पद से अन्य अनेक अर्थ भी लिए जायेंगे। अश्वपतेः निवासो देशः आश्वपतः। अश्वपतेः विकारः—शुक्रशोणित मूत्रपुरीषादिः अश्वपतेरिदगृहम आश्वपतमित्यादि। गणनां प्रथमादीनां पतिः गणपतिः गणेशः। तस्य—गणपतेः अपत्यमिति लौकिके 'गणपति ङस्' अस्मात् समर्थात् अश्वपत्यादिभ्यश्चेति सूत्रेण अपत्यादि (सन्तान) अर्थबोधकअण्प्रत्यये, अनुबन्धलोपादिः पूर्ववत् जन्यजनक भावसामर्थ्यं (गणेश में पुत्र पैदा करने की योग्यता) प्रत्यक्ष (पुत्र पैदा) होने पर ही यह वृत्ति बनेगी। गणेशपुत्रः जन्यजनकसम्बन्धात्मक एकार्थीभावः।

।६। दितिः (दैत्यों की माता) आदितिः (देवमाता) आदित्यः (सूर्य) और पतिशब्द जिसके उत्तरपदमें हों ऐसे षष्ठचन्त समर्थ सुवन्तों से ण्य (य) प्रत्यय हो। प्राग्दीव्तीय अर्थ में जो समझाये गये हैं। अणोअपवादः—अण् अश्वपत्यादि अण् प्राग्दीव्यतोऽण् का बाधक है। दितेरपत्यं (दैत्यमाता दिति की सन्तान) लौकिकविग्रहे, दिति ङस् इत्यस्मात् षष्ठचन्त पदं (दिति ङस्) (सन्तान अर्थ में) जन्यजनकभाव सामर्थ्यं रहते सुबन्त (दिति ङस्) पद से प्राग्दीव्यतीय के किसी अर्थ (अपत्य अर्थ) में ण्य (ण इत्) य प्रत्यय हुआ, आदिवृद्धिः, ऐकारे। भसंज्ञा,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वा [अपत्यम्]। ७ हलो यमाँ यमि लोपः ८।४।६४। हलः परस्य यमो लोपः स्याद् वा यमि। इति यलोपः। आदित्यः। प्राजापत्यः देवाद्यञञौ दैव्यम् दैवम्। बहिषष्टिलोपो यञ् च बाह्यः। ईकक् च वाहीकः। ८ किति च ७।२।११८। किति तद्धिते चाचामादरेचो वृद्धिः स्यात्। बाहीकः। गोरजादिप्रसंगे यत् गोरपत्यादि-गव्यम्। ९ उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६।

इकारलोपे, विभक्ति कार्ये दैत्यः। दितिसम्बन्धीसन्तान तद्धितार्थः। एवम् अदितेरपत्यम् अदितिः (देवमाता) की जननयोग्यता से प्रत्यक्षसन्तान आदित्यः। साधनिका पूर्ववत्। आदित्यस्य अपत्यम् सूर्य की जननयोग्यता से प्रत्यक्षसन्तान अर्थ षष्ठयन्त जननयोग्यतासमर्थ सुबन्त (आदित्य ङस्) उससे अपत्य आदि अर्थमें ण्य—य आदित्य य। यस्येति च भ० सं० यकारस्य अकार लोपे। ततः। ७। हल् वर्ण से परे यम् प्रत्याहार के अक्षर का लोप हो, यम् परे। अत्र हल्—आदित्य का तकारः उससे परे यम् (यकारः) तस्य लोपे, यम् प्रत्यय परे ण्य का 'य' आदित्यः (स्वादिसम्बन्धि कार्ये) सूर्य की जनन योग्यतापरिचायकः पुत्रः। प्राजापत्यः—प्रजापतेः (दक्षस्य) अपत्यम् आदि (पति-उत्तरपदात्) प्रजापतिशब्दात् (ण्य) पूर्ववत्। प्रजापति दक्ष की सन्तान 'सती' अन्य अर्थ भी प्रसङ्ग के अनुसार ण्य आदि पूर्ववत् (वा०) देवात्—देव शब्द से अपत्य, जात; निवास, इत्यादि अर्थो में समर्थसुबन्त से यञ् और अञ् प्रत्यय हो। अकार इत् यञ् और 'ण्य' में स्वर का अन्तर। देवस्य अपत्यं निवासः आदि अर्थे यञ् अनुबन्धलोपे, आदि बृद्धिः, अकार अलोपे, स्वादिकार्ये दैव्यम्। अञ्पक्षे दैवम् (गृहम्) सन्तानादिर्वा [वा०] वहिष् शब्द से प्राग्दीव्यतीय अपत्य आदि अर्थबोधक यञ् हो। टि का लोप भी। वहिर्भवः वाह्यः। बाहर हो, या पैदा हुआ हो। वहिष् शब्दात्भव अर्थे यञ् टि [इष्] का लोप वार्तिकसे। आदिवृद्धिः, वाह्यः [सन्तानादिः, प्राकारः] [ईकक्च] वहिष् शब्द से भव आदि अर्थमें ईकक् प्रत्यय भी हो। टिलोप भी। वाहीकः [बाहरी कार्य कर्ता] ईकक् प्रत्यये टिलोपे। ८। कितिच-कित् (क इत्] तद्धित प्रत्ययेपरे अचाम् = अचोंके आदि अच् को वृद्धि हो इति आदिवृद्धिः [वा०] अच् आदि प्रत्ययोंके प्रसंगमें गोशब्द से अपत्यआदि अर्थोंमें यत् हो। अच्प्रत्याहारस्य अक्षराणि आदौयस्य स अजादिः, गोः अपत्यं गव्यम् अथवा गवि भवं, इदं, गोर्विकारः गव्यः गोः निवासो गव्यः गोङस् इति समर्थ सुबन्तात् अपत्य, भव, आदि अर्थे अण् प्राप्तः, वर्त्तिकेन यत्। तद्धितान्त प्रा० संज्ञा सुपोलुक् वान्तोयि प्रत्यये, अवादेशे स्वादिकार्ये गव्यम्। गोसम्बंधिविकारः गृहंसन्तानादिः। ९। उत्स आदि शब्दों से अपत्य, निवास आदि अर्थबोधक अञ् (अ) प्रत्यय हो।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

औत्सः । इत्यपत्यादिविकारान्तार्थाः साधारण-प्रत्ययाः ।

अथापत्याधिकारः

१००० स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४ । १ । ८७ । धान्यानां भवने इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्-स्नञौ स्तः । स्त्रैणः । पौंस्नः

उत्सोनिर्झरः तत्रभवः, औत्सः, शैवालादिः अथवा उत्सस्य उत्सनामकव्यक्ति की अपत्य आदि । उत्स ङस् अपत्यादिअर्थं=षष्ठयन्तसमर्थसे अपत्यादि अर्थं अञ् आदि । उस्थाने और वृद्धिः अन्त्य अलोपे रूपम् । इति=यह अपत्यादि= तस्यापत्यम् से लेकर विकारान्त=तस्यविकारः सूत्रपर्यन्त अर्थबोधकसाधारण (व्यापक) प्रत्यय कहे गये । इति प्राभाकर्यां साधारणप्रत्ययाः ।

अथ अपत्यधिकारः । अथ=तद्धित के साधारण (व्यापक) प्रत्ययों के संस्कार और परिचय के अनन्तर अपत्याधिकार आरम्भ करते हैं । यद्यपि अपत्य का पुत्र अर्थ है न पतन्ति पितरो अनेन अपत्यम् । पुंनाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः (जिसके कर्म से पितरों का पतन न हो या नरकसे उद्धार, रक्षा हो) तथापि अपत्यशब्द गोत्रापत्य (पौत्र) युवापत्य (प्रपौत्र) आदिका भी उपलक्षण (बोधक) है । युवापत्य प्रपौत्र आदिका मूल गोत्रापत्य पौत्र है । उस पौत्र का मूल अपत्यपुत्र है । उस पुत्रका भी मूल पुरुष पिता से प्रकरणका प्रारम्भः । तद्धितान्त शब्द वास्तविक शब्दब्रह्म है । उससे अनेक सृष्टिकी वृष्टि दृष्ट है । प्रकृति (स्त्री) के साथ प्रत्यय (पुरुष) का सम्बन्ध वृत्ति है । जितने प्रत्यय (पुरुष) है प्रकृति (स्त्री) उतनी रूप धारण करती है । देखने में प्रकृति एक है । प्रत्यय अनेक है । पुरुष बहुत्वं सिद्धं, जितने प्रत्यय उतना ही विचित्र अर्थ जीवजड़ व्यक्त है ।

। १००० । स्त्रीशब्द पुंसशब्दसे क्रमशः नञ् स्नञ्प्रत्यय हो, धान्यानां भवनेक्षेत्रे इत्यतः=इस सूत्रसे प्रागर्थेषु=पहले आये हुए अर्थोंमें यथा स्त्रैणः, स्त्रियाः अपत्यं स्त्रीका लड़का (पुमान्) जननीजन्यसम्बन्धरूपसामर्थ्यं रहते, षष्ठयन्तस्त्री ङस्से (स्त्रीपुंसाभ्याम्) आदिसूत्रेण (नञ्) अनुबन्धलोपे आदि वृद्धिः, णत्वं, विभक्तिकार्यं, स्त्रैणः । एवं स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूहः, स्त्रीणाम् अयं स्त्रियाः भावः स्त्रैणः । स्त्रीत्वं स्त्रियोंका समुदाय । स्त्रिया जितः स्त्रैणः (स्त्रीके वशीभूतपुरुष, आदि अनेक अर्थ अवसरके अनुसार समझें) पौंस्नः, पुंसो अपत्यं (पुरुषकी सन्तान), पुंसु भवः (पुरुषमें पुरुषार्थं) पुंसां समूहः पुंभिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ तस्यापत्यम् ६।१।९२। षष्ठयन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः। २ ओर्गुणः ६।४।१४६। उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते। उपगोरपत्यमौपगवः। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः। ३ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२। अपत्यत्वेन

जितः, इत्यादि किसी का एक अर्थ में. पुंसशब्दात्समर्थात् स्त्रीपुंसाभ्यां सूत्रेण स्नञ्। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इतिपदसंज्ञा, संयोगान्तस्य, पुंसः सकारस्यलोपे, आदिवृद्धिः, शेषकार्ये पौंस्नः। पुरुष का पुत्र, पुरुषार्थ, समुदाय, वशीभूत, निवास आदि अनेकसम्बन्धसे एकार्थीभाव हो गये। १। तस्य (षष्ठयन्तानुकरणं लुप्त-षष्ठीकंपदम्। इसका अर्थ षष्ठयन्तात् कृतसन्धेः=षष्टयन्तहो, सन्धि हुई हो। ऐसे सुबन्त समर्थपदसे अपत्ये=सन्तान (अत्र सप्तम्यर्थे प्रथमा) अर्थमें उक्ताः= कहे गये और वक्षमाणश्च=कहेजाने वाले प्रत्यय विकल्प से हो (तस्य) शब्द सर्वनाम से सिद्ध है। सभी षष्ठयन्तों का परामर्शक है। समर्थानांके अधिकार में है (सामर्थ्य) का (सन्धिक्रिया हुआ) अर्थ है इसी आशय से (कृतसन्धेः) बोले। कृतसन्धिका मुख्यफल सू स्थितिस्य अपत्यं सौत्थितिः है। कृतसन्धि बिना सु में उ को आदिवृद्धि, होकर आव्। सावुत्थितिः अनिष्ट होगा। जैसे अपत्यं की प्रथमा, सप्तमी अर्थको कहती है। एंव तत्रजातः, तेनप्रोक्तं तस्मैहितं, तत आगतः, तदधीते, सोऽस्य, निवासः इत्यादि सबमें प्रथमा, सप्तमी के अर्थोंको कहेगी। अर्थनिर्देशे सर्वत्र सप्तम्यर्थे सौत्रीप्रथमा। २। ओः=उकार अन्तमें हो, ऐसे समर्थसुबन्त भसंज्ञकको गुण हो, तद्धितप्रत्यय परे। उप (समीपे) गावो यस्य स उपगुः, (समीप गाय वाला) तस्य (उपगोः) अपत्यं पुमान्। अत्र षष्ठयन्तम् (उपगु ङस्) पदं, जन्यजनकसामर्थ्यं (सन्तानोत्पत्तिक्षमता) प्रत्यक्षे, तस्यापत्यं सूत्रेण अपत्ये अर्थे अण् (अ) तद्धितान्तं, मत्वा, प्रा० संज्ञा सुपोलुक्। णित्परे आदि-अचस्थानेवृद्धिः औपगु अ, ओर्गुणः, इतिगुणे अवादेशे एकदेशवि० स्वादिः औपगवः। अश्वपतेः अपत्यं पुमान् आश्वपतः। पितापुत्र भावजननयोग्यतासामर्थ्ययुक्तषष्ठयन्तपदम् अश्वपति ङस्। तस्मात् अपत्ये अर्थे अणि पूर्ववत्। भसंज्ञा, इलोप, इति विशेषः। दितेः अपत्यं (पुमान् दैत्यः, राक्षसः) स्त्री (दैत्या) मातापुत्रपालनयोग्यता सम्बन्धः। उत्सस्य आपत्यम् औत्सः, पितापुत्रभावः। स्त्रियाः अपात्यं स्त्रैणः। पुंसः पुत्रः पौंस्नः। इति शुद्धापत्याधिकारः। अथ परम्परापत्यधिकारः। ३। अपत्यशब्दसे पितासे पुत्र, अनन्तरापत्य, मूलपुरुष, (पिता) उसका पुत्र समझें। यदि अपत्यत्वेन= वंशपरम्परा (सन्तान की सीढ़ी) रूपसे विवक्षितं=वक्ताको अभीष्ट हो, जैसे-पौत्रः (तीसरी पीढ़ी) प्रपौत्रः (चौथी पीढ़ी आदि) उससे आगे की पीढीको

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्। ४ एको गोत्रे ४।१।९३। गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्। उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः।

।१००५। गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५। गोत्रापत्ये। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः वात्स्यः। ६ यञञोश्च २।४।६४। गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च

भी अपत्य कहना इष्ट हो उसको गोत्रसंज्ञा होगी। तीसरी, चौथी, इत्यादि आगामीको गोत्रसंज्ञा। पौत्रादि शब्दसे सिद्ध है। गोत्रशब्द वंश परम्पराका बोधक है। कस्यप गोत्रवाले कस्यपकी वंशपरम्परा (गोत्र) शब्दसे प्रसिद्ध है। पूरे वंशको होनेवाली, पूरी परम्पराको काश्यपः यही कहेंगे। सांकृत्यगोत्रः। भारद्वाजः वशिष्ठः, मार्जनी आदि गोत्र, उनकी वंशावली है। गोत्रशब्दका सीधा अर्थ, वंशपरम्परा है। मूलपुरुषसे उत्पन्न सन्तान अपत्य है। अण् होगा। परन्तु चार छ या सैकड़ों सन्तानकी पीढ़ी कहने के लिए क्या सैकड़ों प्रत्यय होना चाहिए ? प्रत्ययों की अनन्त परम्परा (लम्बीलाइन) पुंस्तकमें नहीं ठहर सकती। इसका नियन्त्रक सूत्र।४। गोत्र अर्थमें एकही अपत्य प्रत्यय सभी गोत्रापत्य (सन्तान परम्परा) अर्थका कहेगे। यथा—उपगोः अपत्यं (पुत्रः) उपगोर्गोत्रापत्यं (पौत्र) अर्थमें भी औपगवः यही होगा। उपगु-ङस् तस्यापत्यं से अण्। चौथी पीढ़ी के लिए भी उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः ही कहना होगा। तीसरी या चौथी पीढ़ी बोलने के लिए औपगवस्य अपत्यम् औपगविः ऐसा प्रयोग स्वीकृत है। अण्प्रत्यय ही सैकड़ोंके बोध में पर्याप्त है। अतः नियम सूत्र पढ़ा।

।१००५। गर्ग इत्यादि गणमें पठित षष्ठचन्तसमर्थशब्दोंसे गोत्रापत्य (जिसको गोत्रसंज्ञा हुई हो) उससे यञ् (य) प्रत्यय हो। गर्गस्य गोत्रापत्यं गर्गऋषिके वंश (तीसरी पीढ़ी पौत्र से) गोत्र मान्य है। अतः विवाह आदि में तीन पीढ़ी के वंश की शाखा का उच्चारण होता है) षष्ठचन्त (पौत्रपरम्परा सम्बन्ध, बोधकताशक्तिसामर्थ्यं) युक्तपद गर्ग-ङस् उससे गोत्रापत्य पौत्र आदि की विवक्षा में (पौत्रप्रभृतिगोत्रं) गोत्रसंज्ञा, उसी अर्थमें यञ् प्रा० सं० सुलोप (य) आदिवृद्धिः भसंज्ञा, अन्त्य अलोपे, विभक्ति गार्ग्यः। गर्गवंशकी सन्तानतद्धितार्थः। एवं वत्सस्य गोत्रापत्यं, (वत्स, ऋषिके वंशकी सन्तान पौत्र आदिः गोत्रसं० यञ्, आदिवृद्धिः पूर्ववत् वात्स्यः।६। यञ्=गोत्र (वंशपरम्परा) अर्थमें यत् (जो) यञन्तं=यञ् प्रत्ययान्तं, अञन्तम्=अञ् प्रत्ययान्तं पदं तदवयवोः=उसका अङ्गभूतएतयोः=यञ् अञ् का लुक्हो। यदि तत्कृते= उन्हींका अर्थ गोत्रापत्य का बहुवचन बोलना हो, तभी लुक् होगा। स्त्रीलिङ्ग अर्थमें यञ् और अञ्का लुक नहीं होगा। यथा-गार्ग्यः गार्ग्यौ गर्गाः गार्ग्य जस्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे; न तु स्त्रियाम्। गर्गाः। वत्साः। ७ जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।१६३। वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात्। ८ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४। यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात्, स्त्रियां न तु युवसंज्ञा। ९ यञिञोश्च ४।१।१०१। गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात्।

इति बहुवचने गोत्राप्रत्येऽर्थे यञ् 'यञञोश्च सूत्रेण यञो लुक्, पूर्वसवर्णदीर्घे, रुत्वेविसर्गे। एकवचन द्विवचनमें यञ् ठहरेगा) बहुवचनमें लुप्त होगा। इसीप्रकार वात्स्यः, वात्स्यौ, वत्साः बहुवचनमें यञ्का लुक्। ७। वंश्ये=वंशपरम्परामें पित्रादौ पिता, पितामहप्रपितामहाः शाखोचारयोग्याः) उनके जीवित रहते-जो चौथी पीढ़ी पौत्रकी सन्तान प्रपौत्र आदि उसको युवसंज्ञा ही हो गोत्रसंज्ञा नहीं। भाव यह है कि अपत्य शब्द यद्यपि आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियान्त्वमी। आहुर्दुहितरं सर्वे अपत्यं तोकं तयोः समे इति कोषात् पुत्रपर्यायः। तथापि अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रं सूत्रमें अपत्यशब्द (न पतन्ति पितरो अनेन (पितरनरकमें न जांय जिसके कर्म से) यह यौगिक अर्थ ग्राह्य हैं, इसमें (अनेक) दस पूर्वान् दशापरान् आत्मनश्च पवित्रीकर्तुम् इत्यादिमे दशपीढ़ी पूर्वको दशपीढ़ी-पर तारने वाले सभी सन्तान अपत्य हैं। इसप्रकार अपत्यं त्रिविधं अदन्तरापत्य (पुत्र) गोत्रापत्य (पौत्र) युवापत्य (प्रपौत्र) इत्यादि भी अपत्यके अर्थ हैं। मूल पुरुष पिताकी तृतीय सन्तानपौत्रसे गोत्र (वंशावली) प्रारम्भ होती है। गोत्रापत्य अपत्यापत्य, इत्यादिकी दिवक्षामें, मूलपुरुषपिताकी सन्तान से एक या अनेक पीढ़ीकी गोत्र विवक्षा में एक ही अपत्य प्रत्यय हों। यह नियम एकोगोत्रे सूत्र बोलता है। अपत्य (सन्तान) अनन्त हैं, परन्तु प्रत्यय एक। (एकही पुरुषसे अष्टधा प्रकृति सेव्य है) इसप्रकार गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः गर्गाः; गर्गस्य गोत्रापत्य गार्ग्य गर्गाः युवापत्यं गार्ग्यः गर्गाः तदपत्य जिससन्तानके पिता पितामह आदिमें कोई भी हो उसकी युवसंज्ञा है। गोत्रसंज्ञा नहीं। गोत्रप्रत्ययान्तसे प्रत्यय हो, गोत्र प्रत्ययार्थ से नहीं। मूलप्रकृतिसे अनन्तरापत्य प्रत्ययान्त हो, या युवापत्य प्रत्ययान्त, उसीसे प्रत्यय होने का नियम है। गोत्राधिकारमें विधान किया गया प्रत्यय अनन्तरापत्य अर्थमें नहीं होते। इसप्रकार गर्गस्य अनन्तरापत्ये अर्थे गार्गिः गोत्रापत्य अर्थमें गार्ग्यः युवापत्य अर्थमें गार्ग्यायणः होता है। ८। यूनि—युवापत्य अर्थमें गोत्रात्—गोत्र प्रत्ययान्त शब्दसे ही प्रत्यय हो अस्त्रियां स्त्रीलिङ्गमें युवासंज्ञा होती ही नहीं। गोत्रप्रत्ययान्त गार्ग्यशब्दः। ९। गोत्रे— गोत्रापत्य (पौत्र) अर्थमें यञ् और इञ् प्रत्यय हुए हो—तदन्तात्—यञन्त इञन्त शब्दसे फक् (फ) जिसको आयन।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

। १०१० । आयनेयीनीयियः फ-ढ-ख-छ-घां प्रत्ययादीनाम् ७ । १ २ । प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय स्युः । गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । दाक्षायणः । १ अत इञ् ४ । १ ९५ । अपत्येऽर्थे । दाक्षिः । २ बाह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ९६ । बाहविः । औडुलोमिः । (लोम्नोऽ

। १०१० । आयन—प्रत्ययादीनां—प्रत्ययके आदिमें फ, ढ, ख, छ, घ, को क्रमसे आयन ऐय ईन, ईय, इय आदेश हो । फ को आयन, ढ को एय, ख–ईन छ-ईय घ- इय । यथा गर्गस्य युवापत्यं (प्रपौत्रः) लौकिकविग्रहे (गर्गकी चतुर्थपीढ़ी की विवक्षामें) गोत्राद्यून्यस्त्रियां, गोत्रप्रत्ययान्तसे युवापत्य अर्थ में प्रत्यय हो, इस नियमके अनुरोध से प्रथम गर्गस्य गोत्रापत्यं गर्ग्यः शब्दसे युवापत्य अर्थमें यञिञोश्च सूत्रेण यञन्तगार्ग्य शब्दात् फक् (फ) स्थाने 'आयनेयी' आदिना आयन आदेशे । गार्ग्य+आयन+अ । फ का 'अ' शेष रहा । भसंज्ञकस्य अवर्णस्य लोपे, आदिवृद्धौ, णत्वे विभक्तिकार्ये । गार्ग्यांणः । गर्गकी चौथी पीढ़ीके बालकको ही युवा संज्ञा, यह तभी संभव है यदि मूलपुरुष प्रपितामह, पिता जीवित हों । यदि कोई खण्डित हों या पूरे न हों, तब युवापत्य संज्ञा नहीं होगी, किन्तु गोत्रसंज्ञा ही होगी । गार्ग्यः ही बनेगा, (गार्ग्यंयणः) नहीं । दाक्षायणः दक्षस्य युवापत्यं दक्षके चौथी पीढ़ीका बालक प्रपौत्र कहनेकी विवक्षा हो, तब गोत्राद्यूनि नियमसे दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः । शब्दबनाकर इञ् प्रत्ययान्त दाक्षिः शब्द से यञिञोश्चेति फक् तस्य स्थाने आयन आदेशे । इकारलोपे, णत्वादिकार्ये, दाक्षायणः । दक्षसम्बन्धी प्रपौत्र । १ । अत—अदन्त षष्ठचन्त, समर्थसे अप्रत्य अर्थमें यो गोत्रापत्य अर्थमें इञ् हो । दाक्षिः दक्षस्यापत्यं पुमान् (दक्षजन्यपुत्र) इति लौकिक दक्ष-ङस् इति दशायाम् 'अत इञ्' सूत्रेण अदन्त, षष्ठचन्त, दक्ष ङस् तत्र सामर्थ्येन—जनन-योग्यता सामर्थ्य प्रत्यक्षे, अपत्य अर्थमें इञ् दक्ष 'इ' आदिवृद्धिः अकारलोपे एकदेशविकृतन्येन प्रा० सं० स्वादिः । २ । बाहु आदिगण पठितशब्दोंसे षष्ठचन्त और समर्थ होने पर अपत्य अर्थमें इञ् हो । अकारान्त न होनेसे पूर्वसूत्रसे, इञ् प्राप्त नहीं था । एकदेशविकृतन्यायेन प्रा० सं० स्वा० । बाहविः, बाहोः अपत्यं पुमान् व्यक्तिवाचक बाहुशब्दसे जन्यजनक सामर्थ्य रहते अपत्य अर्थमें इञ, वृष्टि-न्यायेन आदिवृद्धिः । ओर्गुणः उकारस्य गुणे अवादेशे प्रा० सं० स्वा० बाहविः । बाहवी बाहवयः । बाहुराजाका पुत्र । राहोरपत्यं राहविः । औडुलोमिः उडूनि-नक्षत्राणि इव लोमानि यस्य स उडुलोमाः । तारों की तरह चमकनेवाले रोम हैं जिसके । उसे उड़लोमा (ऋषि) कहते हैं । तस्यापत्यं पुमान् नरसन्तान अर्थं विवक्षामें बाह्वादिभ्यश्च इति उडुलोमन् ङस् शब्दादिञ् । आदि उकारस्य स्थाने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

पत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः) उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् । ३ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४ । १ । १०४ । ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । विदस्य गोत्रं-बैदः । बैदो बिदाः । पुत्रस्यापत्यं-पौत्री । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः ४ शिवादिभ्योऽण् ४ । १ । ११२ । अपत्ये । शैवः । गाङ्गः ।

ऋौवृद्धिः । नस्तद्धितेः टिलोपे स्वादिः । लोम्नो—लोमनशब्दसे अपत्यअर्थके बहुवचन में इञ् को बाँधकर 'अ' कहना चाहिए । उडुलोमाः उडुलोम्नो इति विग्रहे उडुलोमन्शब्दात् अपत्यार्थस्य बहुवचने अ, टिलोपे, प्रथमाबहुवचने रूपम् । अत्र आदिवृद्धिर्न कारणस्य अभावात् । आकृति—बाहु आदि शब्दोंकी आकृति के अनुकूल स्वरूप, अक्षरगणन, सत्य मिले तो उनकोभी गणमें मान ले । ३ । अनृषि—विदादिगणपठित शब्द से षष्ठचन्त समर्थ रहते गोत्रापत्य (पौत्र) अर्थ में अञ् प्रत्यय हो । परन्तु, विदादिगण जो अनृषयः ऋषिवाचक नहीं हैं उनसे आनन्तर्ये—अनन्तर केवल पिताजन्य अपत्य, अर्थमें अञ् हो । यथा–विदस्य गोत्रापत्यं वैदः । यहाँ विद नामक ऋषि हैं उनकी तीसरी पीढी, पौत्र अर्थमें उक्तसूत्र से अञ् प्रत्यये आदिवृद्धिः अकारलोपे प्रा० सं० स्वा० वैदः वैदो विदाः—विदस्य गोत्रापत्यानि विग्रहे विदादिभ्यः—गोत्रे अञ्, तस्य (यञिञोश्च) बहुवचने लुक् जसादिः । बिदऋषिके परम्पराकी अनेक सन्तान इति ऋषे–उदाहरणम् । अथ अनृषि जो ऋषि नहीं हैं । पुत्रस्य अपत्यं (पुत्रसे उत्पन्न पुत्र, अर्थमें) अञ् आदिवृद्धिः, प्रा० सं० स्वा० पौत्रः । पुत्रशब्दऋषिवाचक न होने से गोत्र अर्थमें अञ् प्राप्त था । अनृषि कहनेसे अनन्तरापत्य (विनाव्यवधान) जनकसम्बन्धसे अञ् । तस्य न लुक् पौत्रः । यत्र गोत्रे अञ्, तत्र बहुवचने लुक्, यत्र अपत्ये अञ् तत्र न लुक् । पुत्रस्यापत्ये, पौत्रौ । पुत्रस्य अपत्यानि पुत्राः, अत्र अञ् प्रत्ययस्य बहुवचने नलुक् गोत्रे प्रत्यय अभावात् अनन्तरापत्य अर्थमें प्रत्ययका लुक् नहीं होता । इसीप्रकार दुहितुरपत्यं लड़कीकी सन्तान (नरः) दौहित्रः । दौहित्रो दुहित्राः । ४ । शिवआदि गणपठित समर्थसुबन्तशब्दसे अपत्य अर्थमें अण् (अ) हो । यद्यपि गोत्रसंज्ञा सूत्रतक गोत्रका अधिकार है । यूनिलुक् सूत्रके भाष्यसे सिद्ध है, तथापि वृत्तिमें गोत्राधिकारकी निवृत्ति मान्य होनेसे सामान्य अपत्य अर्थमें प्रत्यय हो । शिवस्यापत्यं शैवः । यहाँ समान्य अपत्यका पुत्र शिष्य, भक्त, सेवक, आदि व्यापक अर्थग्राह्य है । शिवस्यापत्यं शैवः जन्मसे, विद्यासे, भक्तिसे शिवका हो गया । श्रद्धासामर्थ्य युक्त शिवशब्दात् अण् आदिवृद्धिः अन्त्य अकारलोपे । गङ्गायाः अपत्यं गङ्गाङस्शब्दात् अपत्ये अर्थे अण् आदि वृद्धिः अकारलोपे । गङ्गाका सन्तान, भक्त गाङ्गः ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१०१५ ऋष्यन्धक-वृष्णि-कुरुभ्यश्च ४ । १ । ११४ । ऋषिभ्यः-वासिष्ठः, वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः वासुदेवः । कुरुभ्यः-नाकुलः, साहदेवः । ६ मातुरुत् संख्या-सं-भद्र-पूर्वायाः ४ । १ । ११५ । संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः । ७ स्त्रीभ्यो ढक् ४ । १ । १२० । स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् ।

। १०१५ । ऋषि (मंत्रद्रष्टा) अन्धक (सोमवंशी क्षत्रिय) वृष्णि (यदुवंशी और कुरुवशी) इनसे सामान्य अपत्य अर्थमे अण् हो, ऋषि, वेद, मंत्र,) दर्शक । सर्गादिसमये वेदान् ऐतिहासान् महर्षयः । लेभिरेतपसापूर्वम्, अनुज्ञाताः स्वयंभुवा । सृष्टि के आदिकालमें महर्षिगण ब्रह्मासे आज्ञापाकर इतिहाससहित वेदोंका साक्षात्कार (लाभ) किया । यथा—वशिष्ठस्य अपत्यं वाशिष्ठो मंत्रः, पुत्रः आदि वशिष्ठङस् ऋष्यंधकः सूत्रेण अण् आदिवृद्धिः स्वादिकार्यें । वशिष्ठ सम्बंधी सन्तान या मन्त्रः, एवं विश्वामित्रस्य अपत्यं सम्बन्धी सन्तान, भक्त, शिष्य । वैश्वामित्रः । भरद्वाजस्य अपत्यं भारद्वाजः । कस्यपस्य आपत्यं कास्यपः । अन्य तीन कुल के नाम हैं । श्वफलकस्य अपत्यम् (अन्धक वंशमे श्वफल्क की सन्तान श्वाफल्कः (अक्रूरः) अण् आदिः । वसुदेवस्यापत्यं (यदुवंशी) वसुदेवकी सन्तान श्री कृष्णः । अण् आदिः वासुदेवः । नकुलस्यापत्यं, सहदेवस्यापत्य (कुरवशी) कुलके नकुल या सहदेव की सन्तानको नाकुलः, साहदेवः । अण् आदिः । दोनों माद्री के पुत्र हैं । ६ । मातुः, उत् । सङ्ख्या, सं, भद्रशब्द पूर्व में हों, मातृशब्दके ऋस्थाने उत् आदेश, अण् प्रत्यय हो, आपत्य अर्थमें । रपरे—द्वयोर्मात्रोः अपत्य नरः (दो माता का पुत्र) गणेशः । द्विमातृङस् इत्यस्मात् मातुरुत्सङ्ख्या इति सूत्रेण सङ्ख्यापूर्वमातृशब्दस्य ऋस्थाने उत् । रपरे =उर्, आण्, आदिवृद्धिः, प्रा० सं० स्वादिकार्यें द्वैमातुरः । अत्र तद्धितार्थे इति समासानन्तरं तद्धितप्रत्ययः । षण्णां मातृणाम् अपत्य पुमान् । छ माताओं की एक संतान कार्तिकेय षण्मातृ+आम् इत्यस्मात् अण् आदि वृद्धिः ऋस्थाने उर् आदेशे, सम्मातुरपत्यं (शांत माताका पुत्र) अणादिः साम्मातुरः । भद्र माताकी सन्तान भाद्रमातुरः । द्वैमातुः कृपासिन्धोः षण्डमातुराग्रजप्रभो, वरदस्त्वं वरं देहि, वाञ्छितं वाञ्छितार्थद । ७ । स्त्रीभ्यः=स्त्रीप्रत्ययान्त समर्थशब्दसे अपत्य अर्थ मे ढक्—ढ हो । विनतायाः अपत्य पुमान् (विनतापुत्रो गरुणः) अत्र स्त्रीप्रत्ययान्तं मातापुत्रभावसम्बन्धशब्द विनता ङस् तस्मात् ढक्) ढस्थाने (आयनेयी इति एय आदेशे कितिच-आदि वृद्धिः, भसञ्ज्ञा अन्त्येलोपे स्वादिः वैनतेयः । कृष्णायाः पुत्रः कार्ष्णेयः । विमलायाः पुत्रः वैमलेयः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वैनतेयः । ८ कन्यायाः कनीन च ४ । १ ११६ । चादण् कानीनो=व्यासः, कर्णश्च । ९ राज-श्वशुराद् यत् ४ । १ । १३७ । (राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्) ।

१०२० ये चाऽभावकर्मणोः ६ । ४ । १६८ । यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः । जातावेवेति किम्– १ अन् ६ । ४ । १६७ । अन् प्रकृत्या स्यादणि परे राजनः । २ क्षत्राद् घः ४ । १ ।१३८ । क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षात्रिरन्यत्र । ३ रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४ । १ । १४६

।८। कन्याशब्दको अपत्य अर्थमें कनीन आदेश हो, च=अण् भी हो । कानीनः । कन्यायाः पुत्रः, अविवाहितास्त्री की सन्तान । सत्यवती से व्यास, कुन्ती से कर्ण कानीन है । कन्या ङस् इत्यस्मात् अण् प्रत्यये कन्या स्थाने कनीन आदेशादिः कानीनः । ९ । राजन् और श्वसुर शब्द से यत्प्रत्यय, अपत्य अर्थमें हो । (वा०) राजन्शब्दसे जाति अर्थमें ही यत्प्रत्यय हो अपत्ये नहि । इससे यत्प्रत्यय जाति अर्थका परिचायक है ।

। १०२० । ये=यकारात्तद्धित प्रत्ययपरे अन्को प्रकृतिभाव (जैसा है वैसा रहे) हो नतुभाव कर्मणोः भाव और कर्म अर्थ में अन्को प्रकृतिभाव न हो । राज्ञः [जातिः] राजन्यः [क्षत्रियजातिः] वार्तिकनियमसे जाति अर्थमें राजश्व-सुराद्यत् सूत्रसे यत् नस्तद्धिते इतिभसंज्ञक टि [अन्] लोपे प्राप्ते, येचाभाव-कर्मणोः इति प्रकृतिभावे राजन्यः । क्षत्रियात्—स्व विवाहिता क्षत्रियजातिकी स्त्रीमें उत्पन्न सन्तान से यत्प्रत्ययः । मूर्धाभिषिक्तोराजन्यः बाहुजः क्षत्रियोविराट इत्यमरः जातौ–राजन् शब्दसे जाति अर्थमें यत् क्यों कहा ? इसलिए कि अपत्यादि अर्थमें यत्प्रत्यय न हो यथा–राज्ञों अपत्यं पुमान् [राजाओं से उत्पन्न सन्तान) जाति भिन्न अपत्य अर्थमें अण् टिलोपे प्राप्ते । १ । अणपरे अन्को प्रकृतिभाव हो। इति प्रकृति भावे राजनः । वैश्य शूद्र जाति की कन्या में क्षत्रियसे उत्पन्न सन्तान राजन है । श्वसुरस्यापत्यं पुमान् ससुरका लड़का अर्थमें श्वसुरशब्दसे राजश्व-सुरात् यत्प्रत्यये आकारलोपे, श्वसुर्यः [श्यालकः] । २ । क्षत्रशब्दसे घप्रत्यय हो । जातावित्ति—यह घप्रत्यय जाति अर्थ में ही हो । क्षत्रस्यजातिः क्षत्रियः । क्षत्रशब्दात् 'जाति' अर्थे घः, घस्थाने 'आयनेयी' आदि सूत्रेण इयादेशे, अन्त्य अकारलोपे, अन्यत्र जातिंभिन्न अर्थमें क्षत्रस्यापत्यम् (अत इञ्) आदिवृद्धिः अस्य लोपे क्षात्रिः । क्षत्रनामक पुरुषकी सन्तान । ३ । रेवती आदि समर्थशब्दोंसे,

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

४ ठस्येकः ७ । ३ । ५० । अङ्गात् परस्य ठस्येकादेशः स्यात् । रैवतिकः ।

१०२५ जनपदशब्दात् क्षत्त्रियादञ् ४ । १ । १६८ । जनपदक्षत्त्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये । पाञ्चालः (क्षत्त्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्) पञ्चालानां राजा—पाञ्चालः । (पूरोरण् वक्तव्यः) पौरवः । (पाण्डोड्यण्) पाण्ड्यः । ६ कुरु-नादिभ्यो ण्यः ४ । १ । १७२ ।

अपत्य अर्थमें ठक् [क इत्] ठ हो । ४ । ठस्य—अङ्गसंज्ञक शब्द से परे ठस्थाने इक् आदेश हो । रेवत्याः अपत्यं रेवती ङस् रेवत्यादि भ्यष्ठक्, ठस्य स्थाने ठस्येकः, 'इक्' आगमे रेवतीं इक्आदिवृद्धिः, यस्येतिच ईकारलोपे, तद्धितान्तत्वात्, प्रा० संज्ञा प्रथमायाः एकवचने रैवतिकः—रेवती से उत्पन्न पुत्र ।

। १०२५ । जनपद शब्दात् जनपदनाम यस्य स वाचकोशब्दः जनपद शब्दः एवं च जनपदवाचक शब्द होकर क्षत्रियवाचक शब्द हो तव षष्ठ्यन्त समर्थसे अपत्यअर्थमें अञ् पञ्जाबप्रान्त या पञ्जाबी क्षत्रिय दोनों पाञ्चालः हैं । पञ्चालस्य अपत्यं विग्रहे पञ्चाल ङस् अस्मात् जनपदशब्दात् इति सूत्रेण अपत्ये अर्थे अञ्प्रत्यये, आदिवृद्धिः, अलोपे पाञ्चालः । (वा०) क्षत्रिय=जातिवाचक शब्दके समान यदि जनपदात्=जनपद वाचक शब्द भी हो उसे राजन्यपत्यवत्= राजा अर्थ में अपत्य के समान अर्थ हो पाञ्चालः । अङ्गबङ्गमगधकलिङ्ग आदि शब्द देशवाची, राजावाची भी है । देशवाचीअर्थमें बहुवचनान्त हैं । राजवाचीमें एकवचनान्त । यहाँ पञ्चालस्य राज्ञो अपत्यम् इस विग्रहमें अपत्य प्रत्यय । जहाँ देशवाची वहां पञ्चालानां राजा षष्ठीबहुवचनान्तसे राजाअर्थमें पञ्चालानां— देशविदेशके राजाका (राजा अर्थमें) अपत्यार्थ के समानरूप अण् । आदिवृद्धिः इत्यादि । शब्दसमान होते हुए अर्थमें अन्तर :—पञ्चालस्य राज्ञो अपत्यं पाञ्चालः । पंजाबी राजा का पुत्र । दूसरेमें पंजाबियोंका राजाअर्थ । रूपसमान । (वा०) पुरोरण्—पुरुशब्द से राजा अर्थ और अपत्य अर्थमे अण्प्रत्यय हो । पुरोः राज्ञो अपत्यं पुरुवंशीराजा की सन्तान पौरवः । अण् आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, पुरूणां राजा पौरवः पुरुवंशियो का राजा अर्थ । ग० । पाण्डुशब्दसे राजाअर्थमें ड्यण् (य) हो । डित्फलं टिलोपः यद्यपि पाण्डुशब्द श्वेत और पाण्डवजनकका बोधक है तथापि देश और क्षत्रिय अर्थ ही ग्राह्य है । पाण्डोः अपत्यं पाण्डु देश का राजा या सन्तान अर्थ में ड्यण् (य) टि (उ) का लोप पाण्ड्यः । ६ । कुरु और नकारादि शब्द जनपद और वहांके निवासी क्षत्रिय के वाचक हों, तव राजा और अपत्य अर्थ में ण्यप्रत्यय हो । कुरोः राज्ञो अपत्यं कुरुवंशी राजाका पुत्र अथवा कुरुणां कुरुनामक देशस्यराजा कौरव्यः । कुरुशब्दात् अपत्ये राजनि

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कौरव्यः । नैषध्यः । ७ ते तद्राजाः ४ । १ । १७४ । अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः । ८ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २ । ४ । ६२ । बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक्; तदर्थकृते बहुत्वे; न तु स्त्रियाम् । इक्ष्वाकवः । पञ्चालाः इत्यादि । ९ कम्बोजाल्लुक् ४ । १ १७४ । अस्मात्तद्राजस्य लुक् । कम्बोजः । कम्बोजौ (कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्) चोलः शकः । केरलः । इत्यपत्याधिकारः ।

चार्थे 'ण्य' (य) आदिवृद्धिः उकारस्य गुणे अवादेशे प्रथमैकवचने निषधस्य अपत्यं निषधके राजा का पुत्र या निषधानां देशविशेषाणां राजा (नलः) निषध शब्द नकारादि है । ण्य, आदिवृद्धिः, अन्त्यलोपादिः नैषध्यः । ७ । ते— अञादयः अपत्य और राजा अर्थ में विधान किये गये इञ्, अञादिको तद्राज संज्ञा हो । ८ । बहुषु–बहुवचन अर्थ की विवक्षा में । जिसको तद्राजसंज्ञा हुई हो । ऐसे प्रत्यय का लोप हो, तदर्थकृते—वह बहुवचन तद्राज प्रत्यय के अर्थ में हो, (स्त्रीलिङ्ग में लुक् न हो) इक्ष्वाकुवंशी राजाका लड़का या राजा परन्तु बहुवचन में इक्ष्वाकूणां राजा (अर्थमें) इक्ष्वाकुशब्दात् 'जनपदशब्दात्' सूत्रसे अञ् बहुवचनमें अञ् प्रत्ययको 'तेतद्राजा' इति तद्राजसंज्ञा, उससे परे तद्राजसंज्ञक अञ् का लुक् बहुवचने जस् इक्ष्वाकवः । जनपद का राजा एवं पाञ्चालः पाञ्चाली पञ्चालाः । पञ्चालानां राजा इत्यर्थे तद्राजसंज्ञक अञ्प्रत्ययस्य लुक् (जस्) विभक्तौ रूपम् । ९ । कम्बोजशब्दसे तद्राजसंज्ञकका लोप हो, कम्बोज शब्द भी जनपद और क्षत्रिय वाचक है । कम्बोजानां राजा कम्बोज देश का राजा । क्षत्रियः । कम्बोज आम् राजा अर्थे अञ्प्रत्यये, तद्राजसंज्ञा तस्यलुक् (वा०) कम्बोज आदिगणपठित शब्दों से लुक् हो । चोलस्य राज्ञो आपत्यं या चोलानां राजा अञ्, तद्राजसंज्ञा लुक् चोलः । एवं शकस्य जनपदस्य राज्ञो अपत्यं शकानां राजा शकः द्व्यच् मगध इति अण् । केरलस्य राज्ञः पुत्रः केरलानां राजा । केरलः । यवनशब्द भी देश या क्षत्रिय विशेषका वाचक है । यवनानां राजा जनपदशब्दात् अञ् लुक् अपत्यअर्थ विभिन्न प्रत्ययों का प्रसङ्गः पूर्ण ।

इति प्राभाकर्यामपत्याधिकारः ।

अथरक्ताद्यर्थका :—अपत्यार्थके अनन्तर रक्तः—लालरङ्गवाचक शब्द हो आदिमें जिसके ते रक्तादयः । रक्त, युक्त, दृष्ट, परिवृत, संस्कृत, सास्यदेवता, समुह, तदधीते इत्यादयः अर्थाः येषान्ते (ये अर्थ है जिनके) वे प्रत्यय रक्ताद्यर्थकाः है । उनका प्रकरण । इसमें तृतीयान्त (क्रियाकारकभाव) समर्थ (साधन अर्थ) से कार्यका महत्वविशेष है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ रक्ताद्यर्थकाः

१०३० तेन रक्तं रागात् ४ । २ । १ । अण् स्यात् रज्यतेऽनेनेति रागः । कषायेण रक्तं वस्त्रं-काषायम् । १ नक्षत्रेण युक्तः कालः ४ । २ । ३ । अण् स्यात् (तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्) पुष्येण युक्तं- पौषमहः । २ लुबविशेषे ४ । २ । ४ । पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् षष्टिदण्डा-

---

। १०३० । तेन—(साधन से)। तृतीया विभक्तिका साधन अर्थ है । क्रिया की सिद्धि में साधकतमं करणं रक्तं, लालवर्णादि (रङ्ग कार्यं) रागात् रज्यते अनेनं रागः तस्मात् रंगने का साधन (कारण) नील, पीत, हरित, कपिश, आदिकारणसे रंगरूप कार्यंअर्थ में अणप्रत्यय हो । अर्थात् रञ्जक द्रव्यवाचक रङ्ग आदि साधन (कषाय) शब्दसे रंगे हुए वस्त्रादि अर्थ में अण् हो । यथा—कषायेन (गेरुआ रङ्ग से) रक्तं— रंगा हुआ वस्त्र काषायं यहां तृतीयान्त साधन गुणगुविभावसमर्थ रंगवाचक कषायशब्दात् रक्तं (रंगा हुआ अर्थ में) कषाय टासे तेन रक्तं रागात् सूत्रेण अण् । प्रा० संज्ञा सुपोलुक् आदिवृद्धिः । यस्येति अकारलोपे स्वादिः । कषायगुणसे गुणवान् वस्त्र तद्धितार्थः । १ । नक्षत्रेण=नक्षत्र, अश्वनी भरणी इत्यादि से युक्त—सम्बद्ध, आधारित, काल अर्थ में प्रथम उच्चारित नक्षत्रवाचक शब्दसे अण् हो । नक्षत्रका सम्बन्ध चन्द्रमासे विशेष हो । जैसे :—पुष्यनक्षत्रसे युक्त पूर्णमासी का चन्द्रमा जिसमासमें हो उसे पौषं कहते हैं । (वा०) तिष्य और पुष्य शब्दों से नक्षत्रयुक्त काल अर्थ में अण् हुआ हो, तब 'य' का लोप कहना चाहिए । नक्षत्र युक्त काल ही प्रत्यय का अर्थ है । पुष्य नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा से युक्त (सम्बद्ध) दिन, पूर्णिमा अवश्य होनी चाहिए । आधाराधेय सामर्थ्यवान् तृतीयान्त, कारणभूत, नक्षत्रवाचक पुष्येण (शब्द से) पुष्यनक्षत्रयुक्त, चन्द्रमायुक्त, काल अर्थमें नक्षत्रेण युक्तः कालः सूत्रेण अण् (ण इत्) प्रा० संज्ञा सुप्लोपे, पुष्य+अ आदिवृद्धिः अलोपे; वार्तिकेन यलोपे, स्वादिकार्ये नपुंसकलिङ्गे, प्रथमायाः एकवचने रूपं पौषम् (अहः) पूसमहीनेका दिन या पूर्णमासी । २ । अत्र नक्षत्रेणयुक्तः काल इति सूत्रात् अण् अनुवर्तते, षष्ठ्या विपरिणमते, अत आह पूर्वेण—पूर्वसूत्रसे विधान किये गये अणका लोप हो । अविशेषे—कोई विशेषता अन्तरं न प्रतीत हो कि, षष्ठीदण्डात्मकस्य—षष्ठिदण्डः (साठघड़ी) आत्मा (है) यस्य (जिसका) (२४ घंटे) के कालका अवान्तरविशेष (अन्य दिन, रातका विशेष--भेद) न गम्यते—प्रतीत न होता हो, तब अण् का लुक् हो । दिन है कि रात यह ज्ञात नहीं । यथा अद्यपुष्यः पुष्यनक्षत्रयुक्त चन्द्रमा युक्तकाल अद्य है पुष्यसे अण्प्रत्यये ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

टमकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः । ३ दृष्टं साम ४ । २ । ७ । तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं-वासिष्ठं साम । ४ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४ । २ । ९ । वामदेवेन दृष्टं साम-वामदेव्यम् ।

१०३५ परिवृतो रथः ४ । २ । १० । अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । वस्त्रेण परिवृतो-वास्त्रो रथः । ६ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४ । २ । १४ ।

परन्तु उससे दिन या रात रूप काल का निश्चय न होने से लुबविशेष—अविशेषे (दिन रात के भेद की विशेषता (अन्तर्भेद) न होने से) अण् का लुप्—अद्यपुष्यः । आज पुष्य नक्षत्र से युक्त काल है । यहां कालमात्र की प्रतीति हो रही है । अद्य २४ घटे (पूरी तारीख) १२ बजे दिनसे १२ बजे रात तक काल मात्रकी प्रतीति । ३ । दृष्टं —देखा गया, सामवेद, 'तेन' इति अनुवर्तते । तृतीयान्तात्—साधन और दर्शक दृश्यसम्बन्धसमर्थ तृतीयान्तशब्दसे दृष्ट साक्षात्कार ज्ञानप्राप्त, प्रत्यक्ष विषयीभूत यदि सामवेद हो तभी अण् हो । वसिष्ठ ऋषि से दृष्टं —प्रत्यक्ष विषयीभूतं (देखा गया) सामवेद उसको वासिष्ठम् कहेंगे वशिष्ठेन दृष्टं, लौकिकं वाक्यं, तृतीयान्त दर्शकदृश्यसम्बन्ध समर्थ वशिष्ठशब्दात् अण् आदि वृद्धिः, अलोपे स्वादिः । मन्त्रद्रष्टा (ऋषि) वशिष्ठ से देखा गया साममन्त्र । ४ । तृतीयान्त दर्शक दृश्यभावसमर्थं वामदेव शब्द से दृष्टं सामवेदका मन्त्र देखा) अर्थं में ड्यत् (य) प्रत्यय हो । वामदेव से साक्षात (देखा गया) साममन्त्र वामदेव्यं है । तृतीयान्तसमर्थ वामदेव शब्दात् (दृष्टं साम) इत्यर्थे ड्यत् या ड्य (ड् इत्) होनेसे टि (अ) का लोप स्वादिः । रूप एक समान । परन्तु त इत् होनेसे परिस्वरित और उदात्त का अन्तर ।

। १०३५ । परिवृतः—चारों तरफ से घिरा हुआ । अस्मिन्नर्थे—इस अर्थमें तृतीयान्तसाधन परिवृतपरिवर्तकभावसमर्थ शब्द से परिवृत घिरा हुआ अर्थ में अण् । अथवा उपलक्षण द्विचक्रिका, त्रिचक्रिका तैलयानी (कार) आदिका । वस्त्रसे घिरा हुआ रथ आच्छादित या लिपटा हुआ अर्थ में, तृतीयान्त आच्छादन समर्थ साधनभूत, वस्त्र टा से अण् (अ) आदिवृद्धिः अलोप इत्यादिकार्यं । यहां तक रक्त लुप्त, दृष्ट, परिवृत्त, चार अर्थमें प्रत्ययका विधान हुआ । रथो-वास्त्रः । वास्त्री द्विचक्रिका, तैलयानीच । ६ । तत्र—सप्तम्यन्तपदसे उद्धृतं [निकालकर रक्खा हुआ] अर्थमें अमत्र—पात्रवाचक शब्द से अण् हो । अमत्रेभ्यः में बहुवचनसे छोटा बड़ा अनेक पात्र । शरावो मृन्मयपात्रं । मिट्टी का पात्र कड़ाहा कड़ाही, भगोना, चादर, आदि । शरावे उद्धृत (पात्रमें निकाला हुआ) इति विग्रहे सप्तम्यन्त उत्सृज्यं उत्सर्जकसमर्थ सप्तम्यन्त [शराव ङि]

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

शरावे उद्धतः शाराव ओदनः। ७ संकृतं भक्षाः ४।२।१६। सप्तम्यन्ता-दण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् स्युः। भ्राष्ट्रेषु संस्कृता :— भ्राष्ट्राः = यवाः। ८ साऽस्य देवता ४।२।२४। इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्रं = हविः। पाशुपतम्। बार्हस्पतम्। ९ शुक्राद् घन ४।२।२६। शुक्रियम्।

१०४० सोमाट्ट्यण् ४।२।३०। सौम्यम्। १ वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।

अस्मात् तत्रोधृतममत्रेभ्यः सूत्रेणाण् आदिवृद्धी अलोप आदिकार्ये, कटाहे उद्धृतः काटाहः सूपः। पात्रे उद्धृता पात्रा, यवागू।७। अत्र 'अण्' तत्र इति अनुवर्तते। सप्तम्यन्त संस्कार्यसंस्कारक भाव समर्थशब्दसे संस्कृतं [संस्कार किया गया) अर्थमें अण् हो। परन्तु संस्कार किया पदार्थ, भक्ष्यन्ते इति भक्षाः कर्मणि घञ्—खाने की वस्तु हो। यथा—भ्राष्ट्रेषु भाड़में संस्कृताः = भूँजा गया जो चना भ्राष्ट्राः। भाड़का जौ के साथ भर्ग्य भर्जक [भूँजना भूँजाने वाला सम्बन्ध] सप्तम्यन्तभर्जनसमर्थ भ्राष्ट्र+सुप् शब्दात् पाकसंस्कारे [भुने हुए जौ] अर्थे अण् आदिवृद्धिः अलोप इत्यादि कार्ये। एवं दध्ना संस्कृतं दाधिकं = दहीवाड़ा अग्निषु संस्कृतम् आग्नं मृत्पात्रम्] रसेषु संस्कृता रासाः [रसगोलिका] गुलाब जामुन।८। सा—प्रथमान्त समर्थ अस्य—सम्बन्धित, प्रथमोच्चारित देवतावाचक किसी भी समर्थ [अधिकारसम्बन्ध, युक्त] शब्दसे अस्य—सम्बन्धित अर्थमें अणादि हों। इन्द्र है देवता इस हवि के (देवताभोग्य वस्तु) ऐन्द्रम्। प्रथमान्त अधिकृत-अधिकारीभाव समर्थ देवतावाचक इन्द्रशब्दात् इन्द्रसम्बन्धी हविष (वस्तु) अर्थमें अण् (देवता विशिष्टदेय) इतना प्रत्यार्थ है। आदिवृद्धिः, अलोप आदिः। पाशुपतं, पशुपतिः (भगवान् शंकरः) देवता। अधिकृत अधिकारी हैं) अस्य। इस वस्तु के वह हवि पाशुपतम्। पशुपति शब्दात्समर्थात् देवताविशिष्टदेये अर्थे अण् आदिवृद्धिरित्यादि। वृहस्पतिशब्दात् ण्यप्रत्यये, आदिवृद्धिः, इलोपे आदि। बार्हस्पत्यम्। सूर्यो देवता अस्य इति सौर्यं भोजनम्। मङ्गलः देवता अस्य माङ्गलं दधि। गुरुः देवता अस्य गौरवो ग्रन्थः। भगवान् देवता अस्य भागवतम्।९। शुक्रात्=शुक्रशब्दसे देवताअस्य अर्थमें घन् प्रत्यय हो। प्रथमान्त समर्थ शुक्र शब्दात् देवताविष्ट समर्थात् घन=घ तस्य (घस्य) आयनेयी' आदि सूत्रेण इय आदेशे अलोपे स्वा० शुक्रियं—शुक्राचार्यनिमित्तकदेवम्।

।१०४०। प्रथमान्त सोमशब्दसे सोमः देवता अस्य अर्थमें टयण्—य प्रत्यय हो। सोम्यं घृतं, सोमः, चन्द्रमा सदेवता अस्य सोमाट्यणसे टयण्, आदिवृद्धिः, अलोपे रुपम्। सौम्यं हवि। चान्द्रं वस्त्रं दधि। सौम्या (वनस्पतिः) सोमो वनस्पतीनां राजा।१। वायु, ऋतु, पितृ, उषस्, इनका प्रथमान्त समर्थशब्दसे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२।३१। वायव्यम्। ऋतव्यम्। २ रीङ्‌ऋतः ७।४।२७। अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः। (२३६) यस्येति च। पितृव्य-मातुल-मातामह-पितामहाः ४।२।३६। एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्राता=पितृव्यः। मातुर्भ्राता=मातुलः। मातुः-पिता=मातामहः। पितुः पिता=पितामहः। ४ तस्य समूहः ४।२।३७। काकानां समूहः—काकम्।

साऽस्य देवताअर्थमें यत् (य) हो। वायुः देवता अस्य (वायु है देवता इस वस्तु के) अत्र प्रथमान्त सम्बन्ध समर्थवायुशब्दात् देवता अस्य (देवतासम्बन्धी देने की वस्तु अर्थ में) यत् वायु+य ओर्गुणः उकारस्यगुणे। वान्त अवादेशे स्वा० वायव्यम्। वायु देवता सम्बन्धी देय वस्तु। ऋतुः देवता अस्ति। ऋतुः (वसन्तः) देवता है इसके (कामदेव) यत् गुण आदिः पूर्ववत्। ऋतव्यम्। २। रीङः, अकृत्—कृदन्तभिन्न यकार, सार्वधातुक भिन्न यकार, और च्विप्रत्ययपरे ऋदन्त अङ्गको रीङ् आदेश हो। ऋस्थाने रीङ्। पित्र्यं–पितरोदेवता अस्य (पितर है देवता इस हवि, पिण्ड आदि) विग्रहे सास्य देवता सूत्रेण प्रथमान्त सम्बन्ध सामर्थ्यवान् पितृशब्दात् देवता अर्थे यत् (वायुऋतुसूत्रेण) पितृ+य यह कृद्भिन्न सार्वधातुक है, ऋदन्त अङ्गके ऋको ऋतः से रीङ् हुआ। यस्येति च इलोपे स्वादिकार्ये पित्र्यम्। पितरों के लिए देने की वस्तु। उषा देवता [प्रातः काल के अभिमानी देवता] सम्बन्धी देय अर्थ में यत् उषस्यम् अर्घ्यः प्रातः काल अभिमानी देवता सूर्य उनको देय अर्घ्य—पूजा। ३। ये निपातन [सूत्रमें ग्रहण] होने से सिद्ध स्वीकृति है अर्थविशेष—उपयोगिताकी दृष्टिसे प्रत्यय और अर्थ की कल्पना। पितुः भ्राता पितृव्यः। पिता का भाई चाचा ताऊ। पितृ शब्दसे भ्राता अर्थमें [व्य] प्रत्यय। मातुर्भ्राता [माँ का भाई मामा) मातृशब्दात् डुलच्प्रत्ययो निपातनात् भवति। उल् शेष, टि। (ऋकारलोपे)। मातुः पिता [माताका पिता] मातामहः [नाना] एवं पितुः पिता [पिताका पिता] पितामहः। बाबा दादा। मातृ, पितृशब्दसे पिता अर्थमें डामहच्—आमह टि (ऋ) लोपे, माता-महः। पितामहः। ये सभी अर्थं रक्तादिमें मान्य हैं। इति देवतार्थे प्रत्ययः। अब समूह अर्थ में प्रत्यय प्रस्तुत करते हैं। ४। तस्य—षष्ठयन्त समर्थसे समूह [समुदाय] अर्थमें अण् हो। काकानां [कौओंके] समूहः–झुण्डको काकं, विशेष्य विशेषणभावसमर्थ षष्ठयन्त काकआम्। अस्मात्समूहे अर्थे अण् आदिवृद्धिः, अन्त्य अकारलोपे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१०४५ भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८। भिक्षाणां समूहो-भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो-गार्भिणम्। इह (भस्याढे तद्धिते) इति पुंवद्भावे कृते—६ इनण्यनपत्ये ६।४।१६४। अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्। तेन (९१९) 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न युवतीनां समूहो—यौवनम्। ७ ग्राम-जन-बन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३। तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता। जनता। बन्धुता। (गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्) गजता। सहायता। (अह्नः खः क्रतौ) अहीनः। ८ अचित्त-हस्ति-धेनोष्ठक् ४।२।४७। ९ इसुसुक्तान्तात् कः ७।३।५१।

।१०४५। भिक्षा आदि षष्ठ्यन्तसमर्थ से समुदाय अर्थमें अण्। अनेक भिक्षा का एक समुदाय कई भिक्षाका मिला हुआ होना भिक्षाणां समूहः भिक्षा शब्दात्सुबन्तात्समूहे अर्थ अण् आदिवृद्धिः लोपादिः भैक्षम्। अत्र अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् इति ठक् प्राप्ते। अण्। अचित्त—अन्नसमुदाय है। गर्भिणीनां [गर्भिणीके] समूहः—झुण्डको गार्भिणम्। गर्भिणी आम् इति दशायाम अनुदात्तादेः अञ् प्राप्तः, तं बाधित्वा भिक्षादिभ्यो अण् आदि। गर्भिणी अण् इति दशायां भस्याढे ढ से भिन्न, तद्धितपरक भसंज्ञकको पुंवत् हो। इति पुंवद्भावे गर्भिन् अ नस्तद्धिते सूत्रसे टिलोप प्राप्त है। ६। अनपत्ये—अपत्य अर्थसे भिन्न अर्थमें अणप्रत्यय होने पर इन् को प्रकृतिभाव हो जैसा था वैसा रहे। अपत्य अर्थसे भिन्न समूह अर्थमें इन्को प्रकृतिभावे युवतीनां समूह युवतियोंका समुदाय यूनस्तिः इति प्रत्ययान्त युवतिशब्दात् समुदाये अर्थ अण् पुंवद्भावे ति निवृत्तः युवन् अ। अन् इति प्रकृति भावेन न टिलोपः आदिवृद्धिः यौवनम्। अत्र टिलोपो न भवति। इन् अणि अनपत्ये इति प्रकृतिभावात्। सत्रन्त युवती झुण्डको यौवृतं। अण् इलोपे। ७। ग्राम जन बन्धु ये षष्ठयन्त समर्थ सुबन्त हो समुदाय अर्थमें तल्। तलप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्गः है। ग्रामाणां समूहः [गांवोंका समुदाय] ग्राम+आम् समुदाये अर्थ तल् टाप्] ग्रामता। जनानांसमूहः जनता। लोगोंका समुदाय, तल टाप्। बन्धूनां समूहः बन्धुता। भाइयोंकी एकता, तल् टाप्। [वा०] गज [हाथी] सहाय [मददगार] शब्दोंसे समूहे अर्थ तल्। गजानां समूहो गजता। सहायानां—सहयोगियोंका धर्म समूहः सहायता (वा०) अहन् शब्दसे समुदाय अर्थमें ख हो, यज्ञ अर्थ हो तब। अहीनः (यज्ञः] अह्नां दिनानां समूहेन साध्यः (रात दिन होने वाला यज्ञ] अहन् ख, तस्य ईन आदेशे टिलोपे रूपम्। ८। अचित्त चेतन शून्य वस्तु, हस्ति, धेनु—गायके। षष्ठ्यन्त समर्थसे ठक् हो, समूहअर्थमें। कइत्। ९। इस् उस् उक्, [उ ऋ लृ] और त अन्तमें हो उन समर्थ शब्दोंसे परे उ को क आदेश हो। इकको बाधकर शक्तूनांसमूहः शक्तुकों

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

इस्-उस्-उक्-तान्तात् परस्य ठस्य कः। साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्।

१०५० तदधीते तद्वेद ४। २। ५९। १ न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७। ३। ३। पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किंतु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेद वा-वैयाकरणः। २ क्रमादिभ्यो वुन् ४। २। ६१। क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः। इति रक्ताद्यर्थकाः।

का ढेर साक्तुकम् हाटकम्। बाजार। चेतन रहित शक्तु शब्द से समूहेऽर्थे उक्। ईसु-सुक्तात्तात्कः इति ठ स्थाने क आदेशे आदिवृद्धिः, शाक्तुकं गृहं पात्रं। हस्तिनां समूहः हाँथियोंका झुण्ड हास्तिकम् आयाति। विशिष्टसम्बन्ध समर्थहस्तिन् आम् शब्दात् अचित्तहस्तिधेनोः ठक् प्रा० संज्ञा सुपोलुक्; ठस्थाने इक् (ठस्येकः) टि (इन्) का लोप हास्तिकं हस्तिगृहम्। धेनूनां समूहः गायोका झुण्ड धेनुशब्दात् ठक् उगन्त मानकर ठस्थाने क, आदिवृद्धि, एकवचने। समूहार्थेप्रत्ययपूर्णः।

। १०५०। तं=द्वितीयान्तं, समर्थसुबन्तसे अधीत या वेद (पढ़ा या ज्ञान करता है। अर्थमें कहेगये और कहे जानेवाले प्रत्यय हों। अणादि। १। पदान्त यकार और वकारसे परे अच्को वृद्धिनहो, किन्तु उनके ताभ्याम्—यकार वकारसे पूर्वौ पहले क्रमसे ऐच्=(ऐ औ) आगम हो, यसे पूर्व ऐ, वसे पूर्व औ। यथा—व्याकरणम् अधीते, वेद, वा (व्याकरणको पढ़ता है या जानता है) द्वितीयान्त ज्ञाता ज्ञेयवर्तमानकालाध्ययन समर्थ सुबन्तव्याकरण अम् शब्दात् (तदधीते तद्वेद) इति अध्ययनार्थे अण् यस्येति अलोपे, प्रा० सं०, सुलोपे णित्वात् प्राप्तां आदिवृद्धि बाधित्वा नय्वाभ्याम् आदि सूत्रेण वृद्धिनिषधे, किन्तु वृद्धिस्थाने ऐच्+(यकारसे पूर्वमें 'ऐ' हुआ) स्वादिः वैयाकरणः। व्याकरण पढ़नेवाला। ग्रन्थमधीते ग्रान्थः। (२) क्रमादि=क्रम, पद, धन, जटा, शिक्षा, आदि द्वितीयान्त समर्थ हों, अधीते, वेद अर्थमें वुन्=वुस्थाने अक्। क्रमम् अधीते वेदवा क्रमकः। वेदका पाठक्रम जाननेवाला। वु को अक् अन्त्य अकारलोपे। पदम् अधीते वेत्तिवा पदकः। पदपाठग्रन्थः पदम्। शिक्षापाठग्रन्थः शिक्षाम् अधीते वेत्तिवा। शिक्षकः मीमांसाम् अधीते (मीमांसाशास्त्र पढनेवाला) मीमांसकः यह रक्तम् अर्थ बोधक प्रत्ययसे लेकर अधीते वेदपर्यन्त अर्थ रक्ताद्यर्थकः समाप्तः।

इति प्राभाकर्यं रक्ताद्यर्थकाः।

अथचातुरार्थकाः—चतुर्णाम् अर्थानां समूहः चातुरर्थः (चारअर्थोंका समुदाय) तत्रभवाः=उन अर्थोंमें होनेवाले प्रत्ययाः चातुरर्थिकाः है। अथवा

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ चातुरर्थिकाः

३ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७। उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरो देशः। ४ तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८। कुशाम्बेन निवृत्ता नगरीकौशाम्बी।

१०५५ तस्य निवासः ४।२।६९। शिबीनां निवासो देशः शैवः। ६ अदूरभवश्च।४।२७०। त्रिदिशाया अदूरभवं नगरं-वैदिशम्।

चतुर्णां सूत्राणामर्थाः तत्र भवाः प्रत्ययाः इसप्रकरणमें चारप्रत्यय प्रमुख हैं। चारों देश अर्थके बोधक हैं १–वस्तु के कारण प्रसिद्ध देशः। २। क्रिया, निर्माण, सिद्धि द्वारा, व्यक्तिके नामसे प्रसिद्धदेश। ३—स्थान वास्तव्य निवासकेकारण प्रसिद्ध देश। ४—समीपसम्बन्धसे देशनगरकी प्रसिद्धि, ये चार अर्थ चातुरर्थिकनामसे प्रसिद्ध हैं। क्रमशः सूत्र उदाहरण। ३। तदस्मिन्=प्रथमान्त समर्थसे अस्मिन् (सप्तम्यन्त आधार–अर्थमें) अस्ति विग्रहमें प्रत्यय हो, वह प्रत्ययान्त शब्द तन्नाम्नि=उसी शब्दसे सम्बद्ध देश प्रसिद्ध हो। ऐसे प्रत्यय कुछ कहे गये हैं कुछ कहे जायेंगे। यथा–उदुम्बराः सन्ति अस्मिन्देशे उदुम्बरका देश के साथ आधार आधेयभाव रहते प्रथमान्तवस्तु उदुम्बर जस्। 'तदस्मिन्' सूत्रेण अण् आदि वृद्धिः अलोपे औदुम्बरः (जिसदेशमें गूलरका) पेड़ हो। एलाः सन्ति अस्मिन्देशे ऐलः। गोधूमाः सन्ति अस्मिन्देशे गौधूमः। पाञ्चालः। ४। तेन=तृतीयान्त साधनभूत समर्थकार्यकारणात्मकशब्दसे निर्वृत्तं (सिद्धं) निर्माण किया गया इस अर्थमें कहे गये और वक्षमाण प्रत्यय हों। सुबन्त शब्द ही देशका नाम ग्रहण करे। यथा–कुशाम्बेन निर्वृत्ता (कुशाम्बराजासे निर्माण या सिद्ध की गयी) नगरी तन्नाम्नि=उसी कुशाम्बराजाके नामसे देश कौशाम्बी प्रसिद्ध है, राजाका देशके साथ कार्यकारण सम्बन्ध) तृतीयान्त समर्थ कुशाम्बशब्दात् निर्वृत्ते—निर्माणे अर्थे अण् आदिवृद्धिः। स्त्रित्व बोधके ङीपिरूपम्। कुशाम्बराजासे बसाई हुई नगरी। इन्दिरया निर्वृत्तं दलम् ऐन्दिरम्। त्रिपूरेण निर्वृत्ता नगरी त्रैपुरी।

। १०५५। तस्य—षष्ठयन्तसमर्थसे निवास अर्थमें उक्त, वक्षमाण प्रत्यय हों। (आधारसम्बन्ध) शिवीनां शिवि नामक प्रसिद्ध राजाओं का निवासदेश, रहनेका स्थान, वास्तव्य, अर्थमें षष्ठयन्तसमर्थ शिवि+आम् शब्दात् निवासे अर्थे तस्य निवासः अण् आदिवृद्धिः इलोपे शैवः। शक्तीनां निवासो देश शाक्तः। सूर्यवंशीनां सौर्यवंशः। यवनानां यावनः। आध्यापकः मन्त्रीणां मान्यः अङ्गानाम् आङ्गः, वाङ्गः, कालिङ्गः। ६। पञ्चम्यन्तसमर्थशब्दसे अदूरभव—समीप होने अर्थमें अण् आदि हों। यथा–विदिशानगरीसे अदूरभव। समीपमें विद्यमान नगरं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७ जनपदे लुप् ४।२।८१। जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप्। ८ लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १।२।५१। लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः। पञ्चालानां निवासो जनपदः—पञ्चालाः। कुरवः। अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः। ९ वरणादिभ्यश्च ।४।२।८२। अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं-वरणाः।

१०६० कुमुद-नड-बेतसेभ्यो ड्मतुप् ४।२।८७।१ झय ८।२।१०।

वैदिशम्। विदिशा के पास की नगरी। वाराणस्याः अदूरभवं वाराणसेयं यामदग्निपुरं, वैन्ध्याचलं, विदिशा शब्दात् अदूरभवअर्थे अण्आदिः। ७। जनपद—नगरके नामसे उसीअर्थमें होनेवाले चातुरर्थिक—तदस्मिन, निर्वृत्तं, निवासः, अदूरभवः इन अर्थोंमें हुए प्रत्ययका लुप् (लोप) हो। ८। लुपि—चातुरर्थिक प्रत्ययका लोपहोनेपर युक्तवत्—प्रकृतिवत् जिससे प्रत्यय हुआ हो उसीके समान युक्त—प्रकृतिके तुल्य लिङ्गवचन हो। व्यक्तिवचने-जिससेपरे प्रत्ययका लुप् हुआ हो उस व्यक्तिका लिङ्गवचन हो। व्यक्ति शब्दः लिङ्गवाची है। पाञ्चालाः पंजाबियोंके रहने का स्थान जनपद, महल्ला, ग्रामनगर, पाञ्चालः षष्ठयन्त समर्थपाञ्चाल शब्दात् निवासेअर्थे अण्। अत्र निवासः पाञ्चालोंके ठहरनेका स्थान जनपदपदवाची अस्ति। जनपदे लुप्—चातुरर्थीमें प्रसिद्ध अण्का लोप लुपि—युक्तवद् सूत्रेण लिङ्गवचने अभिधाने यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी। इस न्यायसे लुप्तप्रत्यय की प्रकृति अकेली ही निवासरूप अर्थको भी कहेगी। एकवचने पुंलिंग। जिसमें एक जिलाधीश हों उसे जनपद कहते हैं। बहुनगर ग्राम व्याप्त मण्डलाधिकरणं स्थानम्। एवं कुरुणां निवासो जनपदः कुरुः अण् आदिकालोप होनेसे ? आदिवृद्धि, अन्त्य लोप नहीं होते। अंङ्गानां निवासो जनपदः। अङ्गः उड़ीसा प्रांतः। बङ्गानां निवासोदेशः जनपदः बङ्गाः—बंगाल। कलिगानांनिवासः कलिंगः। केरलः। ९। वर्ण आदि शब्दोंसे परे चातुरर्थिक प्रत्ययका लोप हो। जनपदेलुप्से लुप् अनुवर्तते। जनपद अर्थमें पूर्वसूत्रके लोपसे भिन्नअर्थमें लोप हो। इसलिए जनपदार्थः कहा। वरणा शहरसे अदूरभव अर्थे अण् तस्य वर्णादिभ्यश्चेतिलोपे, लुपियुक्तवत् वचने प्रकृतिके समान लिंगवचन वर्णाः।

।१०६०। कुमुद, नड वेतस शब्दसे (अस्मिन्नस्ति देशे) इस अर्थ में डमतुप् (मत्) देशवाची अर्थ में हो। डित् से टिलोप)।१। झय् प्रत्याहारके अक्षर अन्तमें हों उससे मतुप्के म को व हो। कुमुदाः सन्ति अस्मिन्देशे। (जिसदेशमें) कुमुद=रात्रिकमल, अधिक हो, वह कुमुद्वान् है। कुमुदशब्दात् उक्तसूत्रेण ड्मतुप् अनुबन्धलोपे, डित्से टि (अ) का लोप, 'म' स्थाने झयः सूत्रेण (व) कृते

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

झयन्तान्मतोर्मस्य वः। कुमुद्वान्। नड्वान्। २ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८। २। ९। मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात् परस्य मतोर्मस्य वः। वेतस्वान्। ३ नड-शादाड्-ड्वलच् ४। २। ८८। नड्वलः। शाद्वलः। ४ शिखाया वलच् ४। २। ८९। शिखावलः। इति चातुरर्थिकाः।

कुमुद्वत् प्रथमायाः एकवचने रूपम्। नडाः सन्ति अस्मिन्देशे नरकट, नर्कुल, अधिक हो। देश अर्थमें नडशब्दात् ड्मतुप् प्रक्रिया पूर्ववत्। २। 'म' व, 'अ' च् अनयोः समाहारः 'मं' तस्मात्=मकारान्त अकारान्त या मकार और अकार उपधामें हो उससे परे मको 'व' हो। यवादि परे न हो तो। वेतसाः सन्ति अस्मिन्देशे वेंत अधिक हो जिस देश में। वेतस्शब्दात् सूत्रेण ड्मतुप टि (अ) लोपे, अवर्णोपरि होनेसे मादुपधायाश्च से म को व वेतस्वत् प्रथमायाः एकवचने वेत्तस्वान्। किं परिमाणम् अस्य किम्वान्। ज्ञानमस्ति अस्य ज्ञानवान्। भाग्यवान् लक्ष्मीवान्। ३। नड और शाद्शब्दसे (आधार अर्थ में) ड्वलच=वल् प्रत्यय हो। डित्फलं टिलोपः। नडाः घमन् नर्कट हों जिस देशमें वलच् नड्वलः। हरीघास बहुलदेश शादाः हरितघासाः सन्ति यस्मिनदेशे। शाब्दलानि वनानि पश्यन्=हरेघासवाले वनको देखते हुए शाद्बलः। ४। शिखाशब्दसे निवृत्तं या अस्मिन् अस्ति इत्यादि अर्थमें वलच्=वल शिखाशब्दात् वलच् शिखया निबृतः शिखाबलः। इति प्राभाकर्यां चातुरर्थिकाः प्रत्ययाः समाप्ताः।

अथशैषिका :— शेषेभवाः=शेष (अवशिष्ट) अर्थमें प्रत्यय हों। उक्तादन्यः शेषः। कहे हुए चारों अर्थों से भिन्न अर्थः।

। १०६५। तत्र समर्थं (सम्बन्ध सहित). सुबन्तात् शेषेअर्थे प्रत्ययाः स्युः अपत्यादि=तस्यापत्यं से लेकर रक्त, युक्त, दृष्टंवसाम, परिवृत्त, संस्कृतं, भक्षाः, सास्य देवता, समूह, अधीते, वेद, अस्मिन्देशे, निर्वृतं, निवासः, अदूरभवः, इति चतुरर्थपर्यन्त अर्थ, उक्तात्=कहे गये, उनसे अन्यो यः (बचा हुआ) अर्थः (पश्यति गृह्यते, पिपट, जात, भव आदि शेष है उसी अर्थ में अण आदि प्रत्यय हों। वक्षमाणा=कहे जाने वाले प्रत्यय भी हों। भाव यह है कि जिन अर्थोंका प्रतिपादन सूत्र कर चुके हैं उससे भिन्न अर्थोंका सूत्रमें कथन, उपदेश, उच्चारण नहीं है वही अर्थ 'शेषे' सूत्र के अधिकारमें प्रत्यय मान्य हैं। यह अवशिष्ट अर्थमें प्रत्ययविधानसे विधिसूत्र है। इसका अधिकार पूरे प्रकरणतक पहुँचता है। अतः अधिकार सूत्र भी है। अर्थके अनुकूल शक्ति, सामर्थ्य, परस्परसम्बन्ध और प्रत्ययकी कल्पना कर्तव्य है। यथा—ग्रहण अर्थमें किसी सूत्र ने प्रत्ययविधान नहीं किया, अतः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शैषिकाः

१०६५ शेषे ४ । २ । ९२ । अपत्यादिचतुर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । औपनिषदः पुरुषः । दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः । चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् । चातुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः । तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः । ६ राष्ट्राऽ-

---

उस में शेष की कल्पना । चक्षुषा गृह्यते (नेत्रसे जो ग्रहण किया जाय, नेत्रेन्द्रिय का ग्राह्यविषय (रूप) है अतः तृतीयान्त ग्राह्य (रूप) ग्राहक (इन्द्रिय) शक्ति समर्थ चक्षुष+टा, शेषे सूत्रेण ग्रहणेऽर्थे 'अण्' (अ) आदिवृद्धिः प्रा० संज्ञा, 'सुलोपे' नपुंसकैकवचने चाक्षुषं रूपम् । आँख से ग्रहण करने योग्य रुप चक्षुर्मात्र-ग्राह्योगुणोरूपं, घ्राणेन (नाकसे) गृह्यते घाणो गन्धः । त्वचा (चर्मसे) गृह्यते त्वाकः स्पर्शः । रसनया गृह्यते रासनः स्वादः । जीभसे ग्रहण के योग्य । श्रवणेन श्रूयते (कानसे सुनाजाय) श्रावणः श्रोत्रमात्रग्राह्यः शब्दः । तृतीयान्त (ग्राह्यग्रा-हकसामर्थ्यशक्तियुक्त) श्रवण+टा, अण् आदिवृद्धिः प्रा० सं० सुलोपे स्वादिः । मनसा अनुभूयते मानसः खेदः । औपनिषदः पुरुषः उपसमीपे निषीदन्ति—उप विशन्ति उपनिषदः ब्रह्मतत्ववेत्तरः, साक्षात्सम्बन्ध कृतग्रन्थः, या, मन्त्र, वेदका अन्तिम भाग (दर्शन) उपनिषद्भिः ब्रह्मज्ञानकुशलैः, मन्त्रैः, बुधैः ग्रन्थैर्वा प्रतिपादितः ज्ञान विषयः, पुरुषः, परब्रह्म आत्मा, उपनिषद्का ब्रह्म के साथ प्रतिपाद्यप्रतिपादक सम्बन्ध । तृतीयान्त समर्थ उपनिषद् भिस् प्रतिपादनसमर्थ अर्थं अण इत्यादिः (दृषदि) चक्कीमें पिष्टाः=पीसे गये जो भी सत्तू आँटा, सीमेन्ट, चूर्ण, मसाला, सभी दार्षदाः हैं सप्तम्यन्तपेष्यपेषणशक्तिसमर्थ दृषदङि से पीसने अर्थमें अण् आदिः । शिलापुत्रे (शिलोटीपर) पेष्टाः शैलापुत्राः । भाँग, चटनी, उपटन आदि । (चार व्यक्ति घोड़ा, बैल, मनुष्य, से) चतुर्भिः उह्यते, ढ़ोया खींचा जाय बग्घी, पालकी, रथ आदि चातुरं शकटम् । अथवा चतुर्भि चतुश्चक्रैः उह्यते=चार पहियों से जो चले, कार, ट्रक, बस आदि । त्रिभिः उह्यते+अम् द्वाभ्यामउह्यते 'द्वम्' इन अर्थमें अण् आदिवृद्धिः । स्वादिसमञ्ज्ञे । अतुर्दशीमे दीखने-वालेको चतुर्दश्यां दृश्यते, चातुर्दशंरक्षः=राक्षस । सप्तम्यन्त कार्यकारणभाव-सामर्थ्य अण् आदिवृद्धि आदिः । द्वितीयायां दृश्यते, द्वैतीयश्चन्द्रः पुर्वस्यां दृश्यते पौर्वश्शुक्रः । उत्तरस्यां दृश्यते औत्तरः=ध्रुवतारा । तस्य विकारः सूत्रसे प्राक्=पहले शेषाधिकारः=बिनासूत्रके कहे गये अर्थोमें प्रत्ययका अधिकारः । ।६। राष्ट्र और अवारपार (इसपार, उसपार) इन सप्तम्यन्त समर्थ शब्दोंसे

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वार-पाराद्ध-खौ ४।२।९३। आभ्यां क्रमाद् घ-खौ स्तः शेषे। राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः। अवारपारीणः। (अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्)। अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्टटच्युटच्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते। ७ ग्रामाद् य-खञौ ४।२।९४। ग्राम्यः, ग्रामीणः। ८ नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७। नादेयम्। माहेयम्। वाराणसेयम्।

शेष अनुकूल अर्थ क्रमसे घ और ख प्रत्यय हो। शेष शब्दसे जो अर्थ सिद्धशेे राष्ट्रे जातः, भवः (राष्ट्र में, जन्म लिया, पैदा हो) अनुकूल अर्थ भव या जातः। सप्तम्यन्त समर्थ (अस्तित्व) राष्ट्र ङि शब्दात् "राष्ट्रावार–" सूत्रेण घप्रत्यये 'आयनेयी' सूत्रेण घस्थाने इय् आदेशे, भसंज्ञायां, यस्येति च अन्त्य अलोपे। अबारपारीणः–अवारपारं आदिअन्त ग्रन्थ, या आरपार नदी, या इहलोक परलोक। शब्दब्रह्मज्ञानमें पूर्णनिष्णात प्राप्तः; पारंगत; तत्ववेत्ता। द्वितीयान्तसमर्थ अवारपारशब्दात् उक्तसूत्रेण ख तस्य स्थाने "आयनेयी" सूत्रेण इन आदेशे अलोपणत्वे स्वादिः वा० अवारपारशब्दात् बिग्रहीतादपि=अलग-२ रहने पर भी ख प्रत्यय हो। विपरीतात्=अवारपारको उलटकर पारावार से भी ख हो। अवारे जातः इसपार, इहलोक, आरम्भमें जिसकी सत्ता उपस्थित हो वह अवारीणः है। अवारशब्दात् ख–ईन, अलोप, णत्वादिः पारीणः। पारे जातः उसपार पहुँचना शास्त्रमें पारंगत, पूर्ण, ख इन आदिः। ये विगृहीतके उदाहरण है। अब विपरीतका उदाहरण :–पारावारे जातः उसपारसे इसपार पहुँचा (परब्रह्म परमात्मा व्यापक) वार्तिकसे विपरीत दशामें भी ख-ईन आदिः। इह= शेषिकप्रकरणमें राष्ट्रवारपारात् घखौ सूत्रमें किसी अर्थका निर्देश न होनेसे अनिर्दिष्ठार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति अनिर्दिष्ट असंकेतित अर्थ वाले प्रत्यय स्वार्थ में हों। इस नियम से घर आदि प्रत्यय स्वार्थे=प्रकृति के अर्थ में हों, ऐसी शंका होने पर समाधान करते हैं कि इस शिर्षक प्रकरणमें प्रकृतिविशेषात्=राष्ट्र अवारपारआदि प्रकृति है उनसे घादय=घ ख इत्यादिसे लेकर टच्, टयुल् पर्यन्त कहें है तेषां उनप्रत्योंके जातादयो अर्थविशेषा=जातः, भवः आदि अर्थ का विशेष उच्चारण या अर्थं निर्देश, प्रत्यय के अर्थका सम्बन्ध, एक वाक्यता और समर्थ विभक्तियां, वक्ष्यन्ते कही जायेगी। ७। सप्तम्यन्तसमर्थ शक्तिसम्पन्न ग्राम शब्दसे य' और खञ् प्रत्यय हो जातः या भवः अर्थमें। ख–शेष, ञ इत्फलं उदात्तः। ग्राम्यः–ग्रामे जातः गांव में पैदा हुआ। ग्राम शब्दात् जातादि य। अलोपे ग्राम्यः, खञ् संथाने ईन अलोप आदि वृद्धि, णत्वे ग्रामीणः।८। नदी आदि गणपठित शब्दों से ढ़क हो। क इत। नदी, मही, वाराणसी श्रावस्ती,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६ दक्षिणा-पश्चात्-पुरसस्त्यक् ४।२।९८। दाक्षिणात्यः। पाश्चात्यः। पौरस्त्यः।

१०७० द्यु-प्रागपागुदक्-प्रतीचो यत् ४।२।१०१। दिव्यम्। प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्। १ अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४। (अमेह-क्वतसि-त्रेभ्य एव) अमात्यः। इहत्यः। क्वत्य। ततस्त्यः। तत्रत्यः।

कौशाम्बी, काशपरी, काशफरी, खादिरी पूर्वनगरी, पाठा, मायां, साल्वा दार्वा केतकी, इति नद्यादिः। नद्यां जातं, भवं नादेयं (नदीमें जो हुआ हो। शैवाल, शोपी, जल मूर्ति) स० नदी शब्दात् जातादिअर्थे नद्यादिभ्यः सूत्रेण ढक्, क इत। ढस्थाने एय इलोपे आदिवृद्धिः। नादेयम् मह्यां जातं भवं वा पृथिवीपर पैदा हुआ, या होनेवाला, मही-ङि से ढक् आदि। पर्वत नदी वनस्पति जीवजन्तु मायेहं है। वाराणस्यां भवः, जातः वाराणसीशब्दात् ढक् एय, इलोप बनारसमें होनेवाला दर्शनीय स्थान विश्वविद्यालय, गंगा, विश्वनाथ आदि। वाराणसेयम्। मायायां जातं मायेयम्। ६। दक्षिणा पश्चात् पुरस इन अव्ययशब्दोसे जात, भव आदि शैषिक अर्थोंमें व्यक्त हो दक्षिणस्यां जातः दक्षिणदिशामें पैदा हुआ या होगा। वह दक्षिणात्यः—दक्षिणास्याम् (अदूरे) दक्षिणा, तत्र जातः। सप्तम्यन्तसमर्थदक्षिणा शब्दात् भवादि अर्थे शैषिक त्यक्प्रत्यये, क इत्। पाश्चात्यः—पश्चात्भवः विकसितः पीछे या पश्चिममें हुआ या होगा। त्यक आदि वृद्धिः। पौरस्त्यः पुरोभवः अग्रे (पहले हुआ) (पूर्वः पौरस्त्यः प्रथमः आद्य इत्यमरः) व्यक्। पुरस् शब्दात्।

।१०७०। दिव (द्यौः स्वर्गे) प्राच (पूर्वदिशा) अपाच (दक्षिण) उदक (उत्तर) प्रतीच (पश्चिम) इन सप्तम्यन्त समर्थ शब्दसे भव आदि अर्थमें यत् हो। दिविभवं (स्वर्गमें हो) दिव्यम्। सप्तम्यन्त समर्थदिव शब्दात् भव आदि अर्थे यतादिः प्राच्यां भवं जातं प्राच्यम्। प्राची दिशामें पैदा हुआ, पूर्वी, सूर्य, ऊषा,। अपाच्यां भवम् दक्षिणमें हुआ, होनेवाला, अपाच्यम्। दक्षिणी मनुष्य, समुद्रादिः। उदिच्यां दिशिभवम् उत्तरीदिशामें हुआ हिमालय आदि। प्रतीच्यां दिशि भवं प्रतीच्यं (पश्चिमी पंजाबी, राजस्थानी आदि) प्राच अपाच उदीच, प्रदीचशब्दात् भवार्थे यत्। १। अव्ययसे जात आदि अर्थमें त्यप् हो। प इत्। सूत्रकारस्य न्यूनतां सक्षेपोक्ति दृष्टवा वार्तिककारः प्रपूरयेत्। अव्यय अनेक है। किनसे त्यप हो उसका नियन्त्रकवार्तिक अमा (साथ सहयोग सलाह मन्त्रणा) इह = यहां क्व = कहां, तसि = तस प्रत्ययान्त ततः अतः और त्र प्रत्ययान्त

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

(त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्) नित्यः । २ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १ । १ । ७३ । यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्धसंज्ञं स्यात् । ३ त्यदादीनि च १ । १ । ७४ । वृद्धसंज्ञानी स्युः । ४ वृद्धाच्छः ४ । २ । १४४ । शीलीयः । मालीयः । तदीयः । (वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या) देवदत्तीयः दैवदत्तः ।

अत्र, तत्र, उत्र आदिसे भी त्यप् अमात्यः अमया सह भवः सहयोग, या साथ मे मन्त्रणा, समर्थ मंत्र देने में सहयोगी अमा अव्ययसे व्यप् स्वादिकार्यें । इह भवः इहत्यः यहाँ है । क्व भवः क्वत्यः, कहाँ है । ततोभव ततस्त्यः । वहां से सम्बन्धित अतोभवः अतस्त्यः (इसलिए होगा) तत्र भवः जातः तत्रत्य (वहाँ का है) सर्वत्र इह क्व ततः शब्दसे त्यप । क्वत्यो भवान ? वाराणसीयोऽहम् । अत्रत्याः अमात्याः विवेकिनः सन्ति । तत्रत्यं वृत्तान्तम् ।

(वा०) त्यब्नेः = नि उपसर्गसे त्यप्रत्यय (ध्रुव = स्थिर अर्थं) में हो । नितरांभवः, नित्यः, निउपसर्गात ध्रुव इत्यर्थे वार्तिकेन त्यप् । नित्यः । सदा स्थिर, अविनाशी । २ । यस्य समुदायस्य जिस समुदायके अचोके मध्यमें आदि अच् बृद्धि (आ ए औ) हो तद्वृद्धम । उस समुदायको वृद्ध संज्ञा हो । ३ । त्यद् यद् इदम् अदस् आदि को भी वृद्धसंज्ञा हो ।४। बृद्धात् = बृद्धसंज्ञक शब्द से शेष अर्थमें छप्रत्यय हो–शालीयः– शालायां भवः जातः । (घरमें पैदा हुआ) शालाशब्दके अचोंमें आदि अच् 'आ' समुदाय बृद्धसंज्ञक है । अतः (वृद्धिर्यस्य अचामादिः) सूत्रेण शालासमुदायस्य वृद्धसंज्ञा वृद्धाच्छः, छस्थाने आयनेयी सूत्रेण ईय् आदेशे, भसज्ञा, अन्त्य आलोपादिः । एवं मालीयः मालायां जातः मालाशब्दमें आदि अच् समुदायको वृद्धसंज्ञा, भवार्थेछः, ईय, (मालामें फूलया सुमेरु मालीयः) । तदीयः- तस्मिन्भवः (उसमे (हो) हुआ) या तस्य अयम् (उसका सम्बन्धी) तद् शब्दस्य वृद्धसंज्ञा, (त्यदादीनि च से) वृद्धाच्छः । ईय आदेशे, तदीयो उपानहो । अस्मावमयं मदीयः । तव अयं त्वदीयः भवताम् अयं भवदीयः । अस्माकं अस्मदीयः युस्माकं युस्मदीयः एतस्यायमिति एतदीयः । यस्यायं यदीयः । वाराणस्यां भवः वाराणसीयः मूर्तौ (भवः) मौर्तः । गुरौ जातः गुर्वीयः छात्राणामयं छात्रीयः । (वा०) वा नामधेयस्य किसी के नाम (व्यक्तिवाचक शब्द) को वृद्धसंज्ञा विकल्पसे हो । देवदत्तस्य पुत्रः, ग्रन्थः, देवदत्तीयः देवदत्तशब्दस्य वार्तिकेन विकल्पेन वृद्धसंज्ञा छप्रत्ययः ईय आदेशे । पक्षे अण्वृद्धिः दैवदत्तः ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१०७५ गहादिभ्यश्छः ४ । २ । १३८ । गहीयः । ६ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४ । ३ । १ । चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकं वाऽयं युष्मदीयः । अस्मदीयः । ७ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४ । ३ । २ । युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि, अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः । ८ तवकममकावेकवचने ४ । ३ । ३ । एकार्थवाचिनोर्युस्मस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि, अणि च । तावकीनः, तावकः । मामकीनः, । मामकः । छे तु—९ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७ । २ । ९८ । मपर्यन्तयोरेकार्थ-

---

। १०७५ । गहादिभ्यश्छः--गह आदि गणपठित शब्दों से भी छप्रत्यय जात आदि अर्थमें गहीयः । गहे = देशनाम्नि भवः गहनामक देशमें हुआ । गहशब्दात् छप्रत्ययादिः । ६ । युस्मदस्मदोः = युष्मद और अस्मद् शब्दसे खञ् चात = छ हो । अन्यतरस्याम् = विकल्पसे, अण् भी हो । खको ईन, छको ईय, आदेश । आयनेयीनी-फढखछघाम् सूत्रसे होते हैं । युष्मदीयः युवयो युष्माकं वा तुमदोनों या तुमलोगों की वस्तु यह है । युष्मद्ङस् आम् । उक्त सूत्रेंण छ प्रत्यये तस्य ईय आदेशे युष्मदीयः । कुत्र आवयोः अस्माकं वा गृहम् । हमदोनों, हमलोगोका घर अस्मदीयः । अस्मद् छ, ईय । यदा युष्मदशब्दात् युष्मदस्मदोः सूत्रेण खञ, तस्य ईन ततः । ७ । तस्मिन्नणिच उस खप्रत्यय ओर अण् परे युष्मद् और अस्मद् दोनोंके स्थानमें एतौ = युष्माक और अस्माक ये दोनों आदेश हों । इति सूत्रेण युष्मद् स्थाने युष्माक आदेशे, आदिवृद्धिः, अलोपे, णत्वं, यौष्माकीणः, ग्रन्थः । तुम्हारी पुस्तक । आवयोः = हमदोनोंकी अस्माकं = हमलोगोंकी, वस्तु आस्माकीनः अस्मद् शब्दात् खञ् अस्मद्-स्थाने स्माक आदेशे । खस्ये ईन आदिवृद्धिः । यदा अण् भवति तदा युस्माक अस्माक च आदेशे । आदिवृद्धिः, अलोपे । यौष्माकः आस्माकः तद्धितार्थः पूर्ववत् । द्विवचनं बहुवचन प्रकृतिकरूपसमान हो । एकवचनमें, ।८। एकार्थवाचिनोः एकवचनार्थकप्रकृति युष्मद् या अस्मद् शब्दके स्थानमें क्रमसे तवक, ममक । आदेशहों खञ् अण् परे । तावकीनः अव अयम् (तुमसे सम्बन्घित वस्तु । एक अर्थ, व्यक्तिवाचक या एकवचन प्रकृतिक युष्मद् शब्दात् खञ्, तवकममकावेकवचने इति युष्मद्स्थाने तवकआदेशे आदिवृद्धिः । खको ईन तावकीनः । अण् कृते तावकः (तुमसे सम्बन्धित व्यक्ति या वस्तु ग्रन्थः) मम अयं मामकीनः पुत्रः । अस्मद शब्दात् खञ् ममक, ईन, आदेशे । अण् पक्षमें भी वैसा आदिवृद्धिः । छेतु युष्मद्छ ततः । ९ । मपर्यन्तयो=म भाग तक एकार्थवाचिनोः=एकवचनसे सम्बन्धित युष्मद् अस्मदके स्थानमें क्रमसे त्व म आदेश हों प्रत्ययपरे, उत्तरपदपरे रहते । तव अयं त्वदीयः शिष्यः । मम अयं मदीयः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये-उत्तरपदेच परतः। त्वदीयः। मदीयः। त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः।

१०८० मध्यान्मः ४।३।८ मध्यमः। १ कालाट्ठञ् ४।३।११। कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्। कालिकम्। मासिकम्। सांवत्सरिकम्। (अव्ययानां भमात्रे टिलोपः) सायंप्रातिकः। पौनःपुनिकः। २ प्रावृष एण्यः ४।

(मेरेसे सम्बन्धित व्यक्ति (वस्तु) युष्मद् शब्दस्य अस्मद् शब्दस्यच। त्यदादीनि सूत्रेण वृद्धसंज्ञा, वृद्धाच्छः। यहा एक अर्थवचन। व्यक्तिवाची, युष्मद युष्मस्थाने त्व, अस्मद्के मपर्यन्त भाग अस्मको 'म' युस्मको 'त्व' हो। छस्थाने ईय त्वदीयः। त्वसम्बन्धी वस्तु। यत् किञ्चित्पुलिङ्गीयः। मदीयः मत्सम्बन्धिद्रव्यगुणक्रिया। इतिप्रत्ययपरकोदाहरणम्। अथोत्तरपदपरकमुदाहरणं:—समासमें तवपुत्रः त्वत्पुत्रः (तुमसे सम्बन्धित पुत्र) मम पुत्रः मत्पुत्रः (मेरी सन्तान) तत्पुरुष समासेकृते उत्तरपदपुत्रशब्दपरे युष्म, अस्म भागको 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च सूत्रसे (त्व। म) आदेशे।

।१०८०। मध्यशब्दसे जात, भव आदि अर्थबोधक शैषिक (म) प्रत्यय हो। मध्येभवः जातः मध्यमें हो या जन्मले वह मध्यमः। मध्यशब्दात् भव अर्थे म।१। कालवाची सप्तम्यन्त (परिछेद्य परिच्छेदक भावसमर्थ) समयबोधकशब्दसे ठञ् भव आदि अर्थमें हो। विपल, पल, दण्ड होरा, प्रहर दिन रात सप्ताह पक्षमास ऋतु वर्ष युग परार्ध आदि कालवाची हैं। सामान्यकाल और भेदककाल दोनोंका प्रयोग व्यापककाल। काले-भवं जातं (समयमें होनेवाले या हुए) कालिकं= ग्रीष्म वर्षावसन्तादि। अन्न, फल, सूर्य, चन्द्र आदि सामयिकम्। सप्तम्यन्त (जन्यजनकसम्बन्धसमर्थ) कालशब्दात् भवार्थे ठञ् ठस्य इक् आदेशे, अलोप, आदिवृद्धिः नपुंसकैकवचने। विशेषभेदककाल। मासे भवं मासिकम् (वेतन रजो धर्मः) सप्तम्यन्त जन्यजनकसमर्थमासशब्दात् ठञ्; इक्, अलोप, आदिवृद्धिः। सम्वत्सरे वर्षे भवम् (एकवर्षमें होनेवाला) साम्बत्सरिकम् मेलापकं, वार्षिकोत्सव आदि कालवाचक सम्वत्सरशब्दात् भवार्थे ठञादिः। (वा०) अव्ययानाम्=अव्ययोंको भसंज्ञामात्रमें टिलोप निश्चित। सायं प्रातर्भवः (सुबह शाम होनेवाला) सन्ध्याकालीनस्नानादिः। कालवाचक सायं प्रतार शब्दात् कालाट्ठञ, ठस्य इक्, भसंज्ञा, वार्तिकेन टि (अर्) लोपे, सायंप्रातिकः नियमः। पुनः पुनर्भवः (बार-बार होनेवाला। कालवाचक पुनः पुनर् अव्ययात् ठञ् पूर्ववत्कार्यम् पौनःपुनिकः नखः, केशः, बुभुक्षा आदि बार-बार होते हैं। २। काल विशेष अर्थबोधक वर्षाऋतुवाचक प्रावृषि शब्दसे भव अर्थमें 'एण्य' प्रत्यय हो ठञ्को

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

३ । १७ । प्रावृषेण्यः । ३ सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगे-ऽव्ययेभ्यस्टयु-ट्युलौ तुट् च ४ । ३ । २३ । सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्यः अव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दोषातनम् । ४ तत्र जातः ४।३।२५। सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणदयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । उत्से जातः–औत्सः । राष्ट्रे जातः–राष्ट्रियः । अवारपारे जातः–अवारपारीणः इत्यादि ।

बाधकर । प्रावृषि (वार्षाकाले) भवः जातः अर्थे एण्य प्रत्यये, कालाठञ् को बाधकर प्रावृषेण्यः । वर्षाकालिकजीवजन्तुः । ३ । सायं शाम, चिरं (देर) प्राह्णे (पूर्वदिन) प्रगे अपराह्ण और कालवाचक अव्यय शब्दोंसे भव, उत्पन्न, जात, (जन्म लिए) अर्थमें टयु टयुल् हों उनको तुट् (त) हो । अनुबन्धलोप होनेपर 'यु' मात्र शेष युवोरनाकौ यु स्थाने 'अन' आदेशे (स्वरमें भेद) लितिपरे पूर्वं उदात्त आद्युदात्तश्च । तुटके टित् होनेसे अन्के आदिमें (त) हो । सायं चिरं शब्दद्वितीयान्त हैं । निपातनसे मान्तमानकर अव्यय भी हैं । सायंकाले भवं सायन्तनम् । पक्षिघोसलागमनम् । सन्ध्या । सायं शब्दात् कालवाचकात् कार्य-कारणसमर्थात् भव अर्थे टयु (यु) तस्य अन आदेशे तस्य तुट् (त) आगमें विभक्तिलुकि सति 'मान्तत्वं निपात्ये । अनुस्वारपरसवर्णे नपुंसकैकवचने रुपम् सायंभवं, चिरंभवम् इत्यपि विग्रहः । चिरेभवः चिरंभवं चिरंतनं=देरतकभावी । टयु तुट् आदि पूर्ववत् । प्राह्णे प्रगे अनयोः इनदोनों शब्दोंको, एदन्त्म्=एकारान्त-निपातन करते हैं । सूत्रमें उच्चारणसे निपातन मान्य हैं । प्राह्णेभवं (पूर्वाह्णमें जो हो) प्राह्णेतनम् । दिनके पूर्वभागमें उत्पन्न वेदाध्ययनम् । टयु टयुल् एदन्त निपातनं तुट् पूर्ववत् । प्रगेतनम् प्रातः काले उत्पन्नं, प्रगेभवः अर्थमें सप्त-म्यन्त समर्थ टयु, तुट, एदन्त निपातन आदि । दोषा=रात्रौभवम् रातमें उत्पन्न टयु तुट् इत्यादि दोषातनम् । चक्रवाकयुगलवियोगः, उलूकदर्शनम् ।४। तत्र जातः सप्तम्यन्तसमर्थ कृतसन्धि शब्दसे जातः (पैदा हुआ अर्थमें) अण इत्यादि प्रत्ययः घादयश्च—घ इत्यादि प्रत्ययभी हों । जात अर्थमें सूत्र निर्देश, इसके पहले नहीं किया गया, किन्तु राष्ट्रवार पारादृघखौ, सूत्र प्रसङ्गमें, इहप्रकृतिविशेषात् के निर्देशससे भव जात अर्थभी हैं । सुघ्ने जातः स्रौघ्नः पाटलिपुत्र—पटना प्रसिद्ध नगर सुघ्न है । इति पद्मचन्द्रकोषः । स्रुघ्नशब्दात् जातः इत्यर्थे अण् ; आदिवृद्धिः, अलोपे, प्रथमैकवचने स्रौघ्नः शिष्यः । उत्से—झरनामे जातः (पैदा हुआ) औत्सः शैवाल घास घोंघा आदि सप्तम्यन्त समर्थ (कार्यकारण) उत्सादिभ्यो अञ् इति अञ् पूर्ववत् । राष्ट्रेजातः राष्ट्रियः राष्ट्रमें जन्मवान् । अवारपारीण—पूर्णपारङ्गत । आदि अन्त, तत्ववेत्ता आरपारगन्ता पूर्ववत् । अर्थ निर्देशमुख्य है ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१०८५ प्रावृषष्ठप् ४ । ३ । २६ । एण्यबाधकः । प्रावृषिकः । ६ प्रायभवः ४ । ३ । ३९ । तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण=बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः । ७ सम्भूते ४ । ३ । ४१ । स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः । ८ कोशाड्ढञ् ४ । ३ । ४२ । कौशेयं (वस्त्रम्) । ९ तत्र भवः ४ । ३ । ५३ । स्रुघ्ने भवः-स्रौघ्नः । औत्सः । राष्ट्रियः ।

१०९० दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ । दिश्यम् । वर्ग्यम् । १ शरीरावयवाच्च ४ । ३ । ५५ । दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । (अध्यात्मादेष्ठञिष्यते)

।१०८५। सप्तम्यन्त समर्थप्रावृषिशब्दसे जातअर्थं ठप् ठस्य इक् । एण्य प्रत्ययका बाधक । प्रावृषि (वर्षाऋतुमें पैदा हो) ठ इक् प्रावृषिकः ।६। सप्तम्यन्तसमर्थसे प्रायभवः बहुलतया होना अर्थमें अण् आदि ध आदि यथायोग्य हों । अतः बोले तत्र इत्येव स्रुघ्नदेशमें अधिकतर होनेवाला प्रावृषि प्रायभवः प्रावृषिकः पुनः पुनः प्रायभवः पौनःपुनिकः रोगः ।७। सप्तम्यन्त समर्थ से सम्भूत उत्पन्न सम्भावना अर्थमें अनुकूल अणादि प्रत्यय हों । स्रुघ्ने संभवति । (श्रुघ्नदेशमें जिसकी संभावना हो) उसे श्रौघ्नः भारते संभवति भारतकः । विदेशे सभवति वैदेशिकः । यहां अर्थसंकेत अन्य प्रत्ययविधायकसे और भी हों) ।८। कोशात् समर्थकोश शब्दसे संभावना अर्थमें ढञ्, ढस्य एय । कोशे संभवति कौशेयं—रेशमीवस्त्रं, कृमिकोशोत्थम् । कीडारुपकोशसे उत्पन्न । सप्तम्यन्त कार्यकरणभाव समर्थ कोशशब्दात् संभावना अर्थं ढञ् एय आदेश आदिवृद्धिः ।९। तत्र—सप्तम्यन्त आधाराधेयभाव समर्थ शब्दसे भव अर्थमें अण्, घ आदिहों; स्रुघ्नेभवः—उत्पन्न अण् आदिवृद्धिः । भव और जातशब्द एकार्थक होने से दूसरा अर्थ व्यर्थ है (शंका न करें) यातका उत्पन्न, भवका विद्यमान, अर्थ होने से दोनों में भेद है उत्सेभवः औत्सः ।

।१०९०। दिगआदिगणपठित समर्थशब्दसे भव अर्थं यत् हो, दिशिभवं दिश्यं दिश्यं शुक्रः नक्षत्रं सप्तप्यन्त समर्थदिश् शब्दात् दिगादिभ्यो यत् भव अर्थे । वर्गेभवम् (पार्टीवाला) वर्गशब्दात् यत्, अलोपे, वर्ग्यम । किसीगुटका । १ । शरीरका अवयव—अङ्गवाचक समर्थशब्दसे भी यत हो भवार्थे । दन्तेषु भवं दन्त्यं क्रिमिः रोगः । सप्तम्यन्त समर्थ शरीराङ्गवाचक दन्तशब्दात्यत्, यस्येतिच अलोपे । कण्ठे भवं कण्ठयम् (कण्ठमाला) शरीरावय होने से यत (वा०) अध्यात्मादि सप्तम्यन्तसमर्थसे भवार्थे ठञ् अध्यात्मं भवम् आध्यात्मिकं ज्ञानम । ज्ञान आत्मामें होता है । अध्यात्मन् शब्दात् वार्तिकेन ठञ्, इक् आदिवृद्धिः,

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम्। २ अनुशतिकादीनां च ७। ३। २०। एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च। आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्। आकृतिगणोऽयम्। ३ जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४। ३। ६२। जिह्वमूलीयम्। अङ्गुलीयम्। ४ वर्गान्ताच्च ४। ३। ६३। कवर्गीयम्।

१०६५ तत आगतः ४। ३। ७४। स्रुघ्नादागतः, स्रौघ्नः। ६ ठगाय-

अलोपे रुपम्। आत्मनि अधि इति अध्यात्मम्—आत्मामें जो हो। २। अनुशतिक आदिगणपठितशब्दोंके उभयपद वृद्धिः—दोनोंपदके आदिअच्को वृद्धि हो। ञिणित्कित् परे। देवमधि इति आधिदेवम तत्रभवम् आधिदैविकम। [देवताओं में होनेवाला शान्ति या उपद्रव] सप्तम्यन्त समर्थअधिदेव शब्दात् अध्यात्मदेश्ठञ् इति भवार्थे ठञ् आदिवृद्धिः प्राप्ता। तं बाधित्वा अनुशतिकादीनाञ्च इति उभयपदवृद्धिः। अधिदैव ठस्य इक अलोपे। भूतानि [पञ्चमहाभूतानि पृथिवी जल अग्नि. वायु. आकाश] अधि. अधिभूते भवं सृष्टिः आधिभौतिकम्। जीव आदिः। ठञ उभयपद वृद्धिः। इहलोकेभवं वस्तु ऐहलौकिकम्। इससंसारमें उत्पन्न सुखभोग आदि। परलोके स्वर्गादिः। इहलोक परलोक अब्दसे ठञ् दोनोंपदकी आदिवृद्धिः आकृतिगण—अनुशतिकादिगणकी। आकृति दोनोंपदमें आदिअच्को वृद्धि जहां भी मिले उसे इसगणमें मान ले। ३। जिह्वामूल और अंगुल शब्द सप्तम्यन्तसमर्थ—शक्तिसम्पन्न हों. तबभवअर्थमें छ हो। जिह्वामूले भवं जिह्वामूलं रोगः जीभकी जड़में होनेवाला] सप्तम्यन्त आधार आधेय—सम्बन्धसमर्थी जिह्वामूलशब्दात भवार्थे प्राप्तं शरीरावयवात् यतं बाधित्वा उक्तसूत्रेण छ—ईय. अलोपे. जिह्वामूलीयम्। अंगुल्यां भवम् अंगुलियम् [मुद्रिका] अंगुलशब्दात छ [ईय] आदिः। ४। वर्गशब्द अन्तमें हो ऐसे समर्थसे छ हो। कवर्गेभवं कवर्गमें जो रहे वह वर्गान्तसप्तम्यंत (आधाराधेयसमर्थ) कवर्ग शब्दात भवार्थे वर्गान्ताच्च इतिछः (ईय) आदेशे अलोपे स्वादिकार्यें कवर्गीयं खवर्गे भवं खवर्गीयम्। हिन्दुवर्गीयम. शूद्रवर्गीयम।

। १०६५। तत=पञ्चम्यन्तसमर्थसे आगत (आया हुआ) अर्थमें यथायोग्य अणआदि, घ आदिप्रत्यय हों। स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः नगरादागतः=नागरः। वैदेशः, ग्राम्यः गृहादागतः गार्हः ६ ठक् आय स्थानेभ्यः। स्वामिग्राह्यो भागः आयः राजा या अधिकारीके ग्रहणयोग्य धन (आयकर) जहांसे लब्ध हो उसपञ्चम्यन्तसमर्थशब्दसे आगतअर्थमें ठक् हो। शुल्कशाला करगृहं (चुङ्गीखानासे आया धन)

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानेभ्यः ४ । ३ । ७५ । शुल्कशालाया आगतः–शौल्कशालिकः । ७ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४ । ३ ७७ । औपाध्यायकः । पैतामहकः । ८ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४ । ३ । ८१ । समादागतं समरूप्यम् । पक्षेगहादित्वाच्छः–समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् । ९ मयट् च ४ । ३ । ८२ । सममयम् । देवदत्तम् ।

११०० प्रभवति ४ । ३ । ८३ । हिमवतः प्रभवति—हैमवती=गङ्गा ।

शौल्कशालिकः । विभाजकसम्बन्ध समर्थ शुल्कशालाशब्दात् ठक् (इक्) आदिवृद्धिः (आय स्थानवाचक) ।७। विद्या (गुरुशिष्यभाव) योनि=रक्तसे जन्म का सम्बन्धवाचक पञ्चम्यन्तपदसे वुञ् । उपाध्यायात् आगतः (गुरु के पाससे आयी) विद्यासम्बन्धवाचक पञ्चम्यन्त उपाध्याय-ङस् अस्मात् विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ । वुस्थाने युवोरनाकौ इति अक्, आदिवृद्धिः । पितामहादागतः पितामहके पाससे आया, योनि (जन्म) कृत-सम्बन्धवाचक पितामहशब्दात् आगत अर्थे वुञ् । पैतामहकः आदिवृद्धिः । पितुः आगतः पैतृकः । मातुः आगतः मातृको गुणः । गुरोः आगतः गुरुकः । ८ । हेतु=कारण वाचक और मनुष्यवाचक शब्दसे आगत अर्थे रुप्यप्रत्यय विकल्पसे हो । समात् (समतासे) आगतम् आया हुआ । हेतुवाचक पञ्चम्यन्तसमशब्दात् रुप्य-प्रत्यये । समरुप्यम् । विषमात् संग्राम या घोर जङ्गलसे आया हुआ विषमरूप्यम् । विषमहेतु भूत है उससे रुप्यप्रत्ययः । पक्षमें छ ईय, विषमीयम् । विषम रास्तेसे आया हुआ । वक्रीयम् । मनुष्यवाचक देवदत्त शब्द से आया हुआ अर्थमें रुप्य प्रत्यय देवदत्तादागतं देवदत्तरुप्यम् । पक्षे वा नाम धेयस्य इति वृद्धिसंज्ञावाच्या, वृद्धाच्छः ईय, देवदत्तीयम् । पक्षे शेषे सूत्रेण अण् । आदिवृद्धिः दैवदत्तम् (देवदत्त के पास आया हुआ) मकरान्दादागतं मकरन्दरुप्यम् मकरन्दम् । ९ । मयट प्रत्ययः हेतुवाचक, मनुष्मवाचक समर्थ पञ्चम्यंतपदात् आगते अर्थे भवतु । टइत् । हेतुवाचक-समादगत सममयं मयट् प्रत्यये मनुष्यवाचक देवदत्तादागतं देवदत्तमयम् । ग्रामादागतं ग्राममयम् ।

। ११०० । प्रभवति प्रथमं प्रकाशते (प्रगटहोना) हिमवतः=हिमालयसे प्रभवति अर्थे अणादिः हैमवती गङ्गा । पञ्चस्यन्त निःसार्यं निःसरण या प्रकाश्य प्रकाशकसम्बन्धसमर्थं हिमवत् शब्दात् प्रभवति अर्थे अण्=अ आदिवृद्धिः । स्त्रीलिङ्गविवक्षामें टिड्ढाणञ् आदि सूत्रेण ङीप् (ई) हैमवती=हिमालयसे प्रकट हुई । वाराणस्याः प्रभवति=वाराणसी (विद्या) मुखात् प्रभवति मौखा (गीता) शरीरात्प्रभवति शारीरी (एकादशी) यन्त्रस्थानात् प्रभवति यन्त्र-

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ तद्गच्छति पथिदूतयोः ४ । ३ । ८५ । स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः—पन्था दूतो वा । २ अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४ । ३ । ८६ । स्रुघ्नमभिनिष्क्रामतिस्रौघ्नं-कान्यकुब्जद्वारम् । ३ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४ । ३ ८७ । शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः—शारीरकीयः । ४ सोऽस्य निवासः ४ । ३ । ८९ । स्रुघ्नो निवासोऽस्य—स्रौघ्नः ।

११०५ तेन प्रोक्तम् ४ । ३ । १०१ । पाणिनिना प्रोक्तं—पाणिनीयम् ।

स्थानकंवस्तु । १ । तद्=द्वितीयान्तसमर्थशब्दसे गच्छति (उस स्थानको जाता है) अर्थे अण, यदि गन्ता; पन्था (रास्ता) दूत (समाचार वाहक) यथा असिश्छिनत्तिमें असिः कर्ता है । इसीप्रकार पथमें कर्ताकी विवक्षा सुघ्नं गच्छति । सुघ्न देशमें जाता है । चाहे रास्ता हो या दूत । गच्छति अर्थमें अण आदिः सौघ्नः दूतः, मार्गम् । कालीकटम (कलकत्ता) गच्छति कालीकटः (ग्रैण्ड टैंक रोड) दिल्ली दरवाजा आदि प्रसिद्ध हैं । २ । अभिनिष्क्रामति सीधे निकलना अर्थमें द्वितीयान्तसमर्थसे आण आदि हो । निष्क्रमणकर्ताके द्वारसे सुघ्नदेशतक सीधे रोड निकलती है । वह द्वार सौघ्नः । कान्यकुब्जः [कन्नौज] शहरका दरवाजा । अण आदिः । ३ । उक्तविषय (वाचक द्वितीयान्तसमर्थ वाच्यवाचकसम्बन्ध) शब्दसे अधिकृत्य कृते ग्रन्थे=विषयपर अधिकारपूर्वक बनाया ग्रन्थ अर्थमें अण आदि हो । शरीरकं शरीरे जातम् आत्मानम् [शरीरमें स्थितजीवविषयपर] अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः (अधिकारपूर्वक बनाया गया ग्रन्थ विषय] वाचक द्वितीयान्त वाच्यवाचकशक्तिसमर्थं शारीरिकशब्दात् वृद्धसंज्ञकात् वृद्धाच्छ सूत्रेण अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थे छ प्रत्यये । तस्य [ईय) आदेशे, अलोपे शारीर-कीयः किरातार्जुनौ अधिकृत्यकृतो ग्रन्थः किरातार्जुनीयं, व्याकरणम् अधिकृत्य व्याकरणीयः । इतिहासम्, इतिहासीयः । ४ । निवासोवासदेशः (रहने का स्थान) सो अस्य-हो जिसका । प्रथमान्तसमर्थसे (अस्य निवास] अर्थमें प्रत्यय हो । स्रुघ्नदेश है निवास जिसका स्रौघ्नः । स्थानवाचकप्रथमान्त समर्थं स्रुघ्नशब्दात् निवासे अर्थे अणादि इन्द्रप्रस्थः निवासोअस्य ऐन्द्रप्रस्थः । जङ्गलं निवासो अस्य जांगलः । प्रसादः निवासो अस्य प्रासादः ।

११०५ तृतीयान्त समर्थसे प्रोक्त [प्रवचन क्रिया] अर्थमें यथायोग्य अण् आदि हों । पाणिनिसे प्रवचन किया गया सूत्र पाणिनीयम् । तृतीयान्तवाच्य-वाचकसमर्थ पाणिनि 'टा' शब्दात प्रोक्ते अर्थे वृद्धाच्छः इति प्रत्यये तस्य ईयादेशे इकारलोपे । महाशयेन प्रोक्तं महाशयीयं, नारदेनप्रोक्तं नारदीयं व्याख्यानम् । शुकेनप्रोक्तं शौकं प्रवचनं । व्यासेन व्यासीयं महाभारतं

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

६ तस्येदम् ४ । ३ । १२० । उपगोरिदम्—औपगवम् । इति शैषिकाः ।

अथ प्राग्दीव्यतीयाः

७ तस्य विकारः ४ । ३ । १३४ । (अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः)

।६। तस्य=षष्ठ्यन्त समर्थ शब्द से इदं [सम्बंधित वस्तु अर्थ में] अण् आदि हों। यथा—उप=समीपे गावः सन्ति अस्य उपगुः तस्य इदम् (उपगुसे सम्बंधित वस्तु औपगवं वस्त्रं, ज्ञानं, यंत्रं, षष्ठयंतसम्बन्ध समर्थ उपगुशब्दात् तस्येदम् अर्थे अण् आदि वृद्धि। ओर्गुणः। शेष अर्थ में प्रत्ययका प्रकरणपूर्ण हुआ। तद्धित-प्रकरण बहुत विषम है, उसमेंभी शैषिकं महाविषम। कहीं सूत्रमें अर्थ निर्देश है तो प्रत्यय निर्देश नहीं। जैसे वृद्धाच्छः, परंतु दोनों प्रकारके सूत्रों की एकवाक्यता तद्धितार्थ बोधमें कारण है। एक ही प्रत्यय अनेक अर्थमें अनेक प्रत्यय एक अर्थमें यह विषमता [अनुगम होनेमें] कठिनाई उत्पन्न करती है। परंतु प्रसंग के अनुसार निर्णय उपयोगी है। इति शैषिकाः प्राभाकर्याम्।

अथप्राग्दीव्यतीयेषु विकारार्थका :—शेष अर्थों में प्रत्यय कहा गया। अब विकरादि अर्थबोधकप्रत्यय बोलेंगे। इसका अधिकार तेनदीव्यतिखनति' सूत्र तक है। ७। तस्य=षष्ठ्यन्त सम्बन्धसमर्थ शब्दसे विकारः=कार्यम् अर्थमें अण् आदि प्रत्यय यथायोग्य हो। किसी वस्तुसे सिद्ध उपयोगीकार्य विकार है। जैसे लकड़ी का विकार शङ्कु (खूँटी) चौकी, पीठासन, मूर्ति आदि। किसी प्रकृति की अवस्था भेद भी विकार है। अथवा तस्य=किसी वस्तु से सम्बन्धित विशेषता, कार्य,। इस सूत्रमें भी अर्थ प्रधान निर्देश है। प्रत्यय जिस सूत्र से प्राप्त होंगे उसीसे होंगे। पूर्वसूत्र स्मरणीय हैं। (वा०) अस्मन (शब्द) विकारे=विकारार्थक प्रत्ययपरे टि (अनका) लोपो वक्तव्य=बोलना चाहिए। यद्यपि 'अन्' इति प्रकृतिभावसे टिलोपो दुर्लभः। अतः टिलोपका प्रति-प्रसवक वार्तिक बोले अस्मनोविकारः पत्थर (पाषाण) का विकार शिलापुत्र (शील, लोढ़ा) सीमेन्ट, लीलाजीत, मूर्ति आदि। आस्मः। षष्ठ्यन्त समवायि-कारण कार्यभाव समर्थ अस्मन् ङस्शब्दात् विकारे अर्थे अण् (अ) आदिवृद्धिः। वार्तिकेन अस्मन् शब्दस्य टेः (अन्) भागस्य लोपे स्वादिः आस्मः। पत्थरसे बनी हुई कोई भी बस्तु। भस्मनो विकारः (राखका विकार) भस्मन् शब्दात् समवायिकार्यकारणसमर्थात् अण् आदिवृद्धिः नस्तद्धिते.इति टिलोपस्य (अन्) सूत्रेण निषेधे (प्रकृतिभावे) भास्मनः। भस्मसम्बन्धी कार्यं। भट्ठे की राखसे इँट जुड़ते हैं। मृत्तिकायाः विकारः मार्तिकः। मिट्टी का कार्य मकान, पात्र

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अश्मनो विकारः—आश्मः । भास्मनः । मार्त्तिकः । ८ अवयवे च प्राण्योषधि वृक्षेभ्यः ४ । ३ । १३५ । चाद्विकारे । मयूरस्याऽवयवो विकारो वा मायूरः । मौर्वं-काण्डं भस्म वा । पैप्पलम् । ९ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४ । ३ । १४३ । प्रकृतिमात्रान् मयड् वा स्यात् विकारावयवयः ।

मूर्ति आदि । पात्र, धातु लोहा, सोना चाँदी आदि । कार्यंकारणसमर्थात् मृत्तिका शब्दात् षष्ठयन्तात् तस्य विकारः इति अण् आदिवृद्धिः अलोपे मार्तिकः । मिट्टी की बनी वस्तु । दुग्धस्य विकारः दौग्धं सर्पिः दधि । पिष्टान्नस्य विकारः पैण्टान्नम् हलुआ, रोटी । ८ । अवयवे=अवयव अर्थ विकार अर्थ में प्राणिवाचक औषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दसे अण् आदि प्रत्यय हो । यथा—मयूर (मोर) का अवयव [पंख] - [विकार, कार्य [मायूरः । प्राणिवाचक समवायिकारण समर्थ षष्ठयन्त शब्दात् अवयव या विकारे अर्थे अण् आदिवृद्धिः अलोपे मायूरः । मूर्वाशब्द औषधि विशेष अर्थका वाचक है । मूर्वायाः अवयव [काण्डं] मूंगाका टुकड़ा या भस्म या मूर्वा औषधिका भस्म मौर्वम् । षष्ठयन्त औषधिवाचक अवयव [विकार] अर्थमें अण् आदिवृद्धिः अन्त्य अलोप । पिप्पलस्य अवयवः [डाली, पल्लव] विकारः कार्य पैप्पलम् । वृक्षवाचकसमर्थं षष्ठयन्तं पिप्पल शब्दात् तदर्थे अण् आदिवृद्धिः, अलोपे तद्धितान्तत्वात् प्रा० संज्ञा स्वादिकार्ये ।९। मयट् वा= विकल्पसे एतयोः [विकार अवयव] अर्थोमें मयट् हो । विकल्पसे भाषामें । परन्तु भक्ष—भोजन के योग्य आच्छादन—ओढ़ने योग्य वस्तु का अवयव (विकार अर्थ] न हो । तस्य विकारः और अवयवेच 'प्राण्योषधि वृक्षेभ्यः इन दोनोंसे विकार और अवयव अनुवृत्त हैं । भाषा शब्दसे बोलचालकी संस्कृतभाषा नतु वेद भाषा, राजा प्रजा संस्कृत बोलते थे । प्रकृतिमात्र [विना विभक्तिका शब्द प्रातिपदिकको प्रकृति कहते हैं] से मयट् हों, विकल्पसे वा एतयोः विकारावयवार्थयोः । अस्मनो अवयवो विकारो वा पत्थरका अंग टुकड़ा, पत्थर से बनी वस्तु मूर्ति आदि अस्ममयम् । अस्मन् शब्दात् समवायसामर्थात् विकारे अर्थे मयट् (मय) प्रत्यये नलोपे अस्ममयम् । पत्थरकी मूर्ति, गोलक, चक्र आदि । पक्षे अण् आदिवृद्धि, आश्मनम् स्वर्णस्य बिकारः स्वर्णमयम् आभूषणम् बुद्धेः विकारः बौद्धं विज्ञानम् । अभक्ष्येत्यादि किमिति अवयव और विकार अर्थको भोजन आच्छादन से भिन्न क्यों ? इसलिएकि मुद्गायाः विकारः मौद्गः सूपः मूंगकी दाल । यहाँ मयट् न हो क्योंकि यह भक्ष्य [भोजन योग्य] है । विल्वादिभ्यो अण्, आदिबृद्धिः अलोपे । कार्पासस्य विकारेः (रुईकी बनी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अश्ममयम्, आश्मनम्। अभक्ष्येत्यादि किम्-मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्।

१११० नित्यं वृद्ध-शरादिभ्यः ४।३।१४४। आम्रमयम्। १ गोश्च पुरीषे ४।३।१४५। गोः पुरीषं—गोमयम्। २ गोपसोर्यत् ४।३।१६०। गव्यम्। पयस्यम्। इति प्राग्दीव्यतीयाः।

अथ ठगधिकारः

३ प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१। तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते। ४ तेन

वस्तु, तोषक, तकिया कार्पासम सामान्य अण् आदिः। चणकस्य विकारः चाणकम् चनेकी पकौड़ी।

१११० वृद्धसंज्ञक और शरादिगणपठित शब्दोंसे विकार, अवयव अर्थमें मयट नित्य हो। विकल्पस्य बाधकमिदम्। शर, (दर्भ) मृद, कुटीर कुटी, तृण, सोम, विल्वज इति शरादयः। आम्रस्य विकरो अवयवो 'वा' [आमका विकार अमावट, अवयव, खटाई, आदि] आम्रमयम्। मयड्वैतयोः सूत्रसे प्राप्तविकल्प [मयट] *का बाधकसूत्र नित्यं वृद्धशशरादिभ्यः*। शराणामवयवो विकारोवा सरकण्डा सरपतका टुकड़ा या कार्य शरशब्दात् विकल्पमयटको बाधकर शरादिगणपठित होनेसे नित्यमयट् शरमयं कुटीरः आच्छादनं वा झोपड़ो। षष्ठचन्त समर्थ गो शब्द से पुरीष (गोबर) अर्थ मयट्। गोः पुरीषं गोमयम् (गायका गोबर) गोश्च पुरीषे इति मयट। मध्यपतितन्यायेन पुरीष भी विकारार्थ स्वीकृत हुआ अन्यथा पुरीषं न विकारो नाप्यवयव गोबर। गायका अङ्ग, टुकड़ा नहीं है। विकार गायसे (बने कार्यभी नहीं है।२। षष्ठचन्त समर्थ (गोश्च पयश्च गोपयसी तयोः गोपयसोः) गोशब्द, पयः शब्दसे अवयव विकार; अङ्ग टुकड़ा कार्य, अर्थमें यत् हो। गव्यं गोः अवयवः विकारोवा गायका अङ्ग, या कार्य गव्यम्। गोशब्दात् विकारे अर्थे यत्। वान्तोयिप्रत्यये अवादेशे। पयस्यम् पायसम्। दुग्धस्य विकारः कार्यं दौग्धं। दूध का कार्य खीर, दधि, मक्खन, दूधसे पैदा हुआ। पयस् शब्दात् विकासे यत्। मयट् बाधने के लिए सूत्र है प्रासाकर्याम् इति विकारार्थाः।

अथठगाधिकार :—यहाँ से ठक्का अधिकार प्रस्तुत करते हैं। ३। तद्वइति 'रथयुग प्रासङ्गम्' इससूत्रतक (वहतेः प्राक्=पहले) ठक्प्रत्ययो अधिक्रियते= अधिकार चलता है। जितने सूत्र है सबके ठक्प्रत्ययका भिन्न-भिन्न अर्थ है। उसी भिन्न अर्थोंका अधिकार (प्रमुखता) कही जा रही है। ४। तृतीयान्त कार्य-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दीव्यति खनति जयति जितम् ४। ४। २। अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितं वा—आक्षिकः। ५ संस्कृतम् ४। ४। ३। दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। मारीचिकम्। ६ तरति ४। ४। ५। तेनेत्येव। उडुपेन तरति—औडुपिकः। ७ चरति ४। ४। ८। तृतीयान्ताद् गच्छति भक्षयतीत्यर्थयोष्टक् स्यात्।

करणभाव समर्थशब्दसे दीव्यति=क्रीडति, खेलना। जयति=जीतना, खनति=खोदना, जितं जीतलिया। इन अर्थोंमें ठक्प्रत्यय हो। अक्षैः दीव्यति=पाशासे खेलता है, जितं, जीत लिया है —वह आक्षिकः। तृतीयान्त क्रीडन कीडनकमाव- समर्थ अक्षशब्दात् खनति आदि अर्थे 'तेनदीव्यति' सूत्रेण ठक्, ठस्य इक् आदिवृद्धिः, अलोपे, आक्षिकः। परशुना खनति पारशुकः। कुद्दालेन खनति कौद्दालिकः। असिना जयति आसिकः। तलवारसे विजयते। लेखन्या जितः लैखनिकः।

। ११११५। तृतीयान्त संस्कार्य संस्कारक समर्थ शब्दसे संस्कृतं उत्कर्षाधानरूप संस्कार किया हुआ स्वादगुणवृद्धि अर्थमें ठक्। दहीसे संस्कार (वढ़ा) हुआ स्वादगुण) दध्ना संस्कृतं दाधिकं (दहीबाड़ा) दहीसे स्वादिष्ट की हुई कोईभी वस्तु) तृतीयान्त समर्थदधि टा शब्दात् उत्कर्षाधाने (स्वादगुण) वृद्धि अर्थे ठक्, ठस्यइक्, आदिवृद्धिः, इलोपे। मारीचिकं मरीचिकाभिः मिर्चनामक तिक्तगुणसे संस्कृतं संस्कारित स्वादगुण वृद्धिसे बढ़ा हुआ। मिर्चसे जो भी वस्तु संस्कृत मिलाकर बनी हो प्रशंसित हो, सबको मारीचिकम्। संस्कार्य (पकीआलू) संस्कारक (मिर्च) संस्करण क्रियासे समर्थ मरीचिका शब्दात् ठक् इक् आदिवृद्धिः लोपे। लवणेन संस्कृतं लवणिकम्। मिष्ठेन संस्कृतं मैष्ठिकं (रस- गुल्ला) घृतेन संस्कृता घार्तिका=रोटिका, सूपः। तृतीयान्तसमर्थ तरति (तरण- कर्ता तैरनेवाला) अर्थे ठक्। तेन इत्येव तृतीयान्तसमर्थसे ही ठक् हो। उडुपेन तरति (छोटी नौकासे पार जाता है) तरणं=पारतटगमनं। तृधातुका प्लवन (पौड़ना) तरण=पारगमन् अर्थ है। हस्ताभ्यां तरति, प्लवते। हास्तिकः। पादाभ्यां तरति पादिकः। जलयानेन तरति जालयानिकः। उडुप शब्दात् ठक् इक्, वृद्धिः, अलोपे। औडुपिकः।७। करण तृतीयान्तशब्दसे चरति। चरगति भक्षणयोः। गच्छति=गमन करनेके अनुकूल क्रिया। भक्षयति=खाने अर्थमें ठक् हो। हस्तिना=हाथीपर चढ़कर चरति चलनेवाला हास्तिकः। करण तृतीया अन्तमें। गन्तृगमनसमर्थ हस्तिन टा 'चरति' सूत्रेण गच्छति अर्थे ठक्, इक्, नस्तद्धिते टि (इन्) का लोपः, वृद्धिः। दध्ना=दहीसे चरति भक्ष्यति= खाता है दाधिकः। भक्षणक्रियाके प्रतिदधिकरण साधनतृतीयान्तभोजनविषयक साध्यसाधनसमर्थ दधिशब्दात् भक्षणकर्ता अर्थे चरति' ठक्, ठस्य इक्, वृद्धिः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हस्तिना चरति हास्तिकः। दध्ना चरति दाधिकः। ८ संसृष्टे ४।४।२२। दध्ना संसृष्टं-दाधिकम्। ९ उञ्छति ४।४।३२। बदराण्युञ्छति-बादरिकः।

११२० रक्षति ४।४।३३। समाजं रक्षति—सामाजिकः। १ शब्द-दर्दुरं करोति ४।४।३४। शब्दं करोति—शाब्दिकः। दर्दुरं करोति

अन्त्य इलोपे। अश्वेन चरति आश्विकः रेलशंकटेन चरति रैलशकटिकः त्रिचक्रिकया द्विदलेन खादति द्वैदलिकः। मूलकेन खादति मौलकिकः।८। करण-तृतीयान्त शब्दसे संसृष्टं संसर्गाश्रय। संसर्गोंमेलनं (मिलाया हुआ। अर्थे ठक् दध्ना दहीसे संसृष्टं संस्कार, सिञ्चन मेलन किया हुआ। दाधिकं दधिसिञ्चित वस्तु दाधिकानि (वटकानि)=दही बाड़े।९। द्वितीयान्त समर्थसे उच्छति (खेती कटनेपर भूमिमें गिरे अन्नका कण-२ चुनना उञ्छः) उसके अनुकूल क्रिया कर्ता अर्थे ठक् (यथा—बदराणि (बेरोको) उञ्छति चुन-चुनकर इकट्ठा करता है। उञ्छच उञ्छक सम्बन्धसमर्थ बदरशब्दात् ठक्, इक्, आदिवृद्धिः, लोपे, अलोपे। मधूकम् (महुआ) उञ्छति माधूकिकः। विज्ञानम् उञ्छति वैज्ञानिकः। धनम् उञ्छति, धानिकः। बदर्याः फलानि बदराणि तानि उञ्छति अवयशो ग्रहणाति। एकैकं चिनोति। बादरिकः अखाद्यम् उञ्छति आखादिकः

।११२०। द्वितीयान्तसमर्थशब्दसे रक्षति रक्षणानुकुलक्रियावाला अर्थे ठक्। समाजं रक्षति सामाजिकः। रक्षा अर्थमें किसीभी शब्दसे ठक् सम्भव है। रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध समर्थं समाजशब्दात् रक्षतिमर्थे ठक्। इक् आदिवृद्धिः अन्त्य अलोपे सामाजिकः। समाजरक्षक, नेता। पशून् रक्षति पाशुकः। पुत्रं रक्षति पौत्रिकः शास्त्राणि रक्षति शास्त्रिकः क्षेत्रं रक्षति क्षैत्रिकः।१। द्वितीयान्तसमर्थशब्द और दर्दुरशब्द से करोति, उत्पत्यनुकूल व्यापारार्थे ठक्प्रत्यय हो। शब्दं करोति। शब्दको बनाता है (यहाँ बनाना प्रकृतिप्रत्ययविभागपूर्वक अर्थज्ञान पुरस्सर-व्युत्पत्ति बोध करना है। प्रकृति प्रत्ययके पृथक् अर्थ एकार्थीभाव (मिलित) अर्थ या अन्वित अर्थ कहलाता है। शब्दान्वाख्यानं व्याकरणम्। शब्दसे करोति अर्थे ठक् इक् वृद्धि अलोपे शाब्दिकः। जहाँ प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ पुरःसर ज्ञान हो वहीं ठक् हो, केवल आवाज करना अर्थ हो तब नहीं होता। दर्दुरं करोति टर्रटे करता है। मेढक की आवाज। दादुर धुनि चहुँदिशा सुहाई। दर्दुरशब्दात् ठक् आदि दार्दुरिकः कार्ये अथवा दर्दुरनाककं पात्रम्। दर्दुरके अनेक अर्थ हैं। दर्दुरस्तोयदे (जलद बादल) भेके—मेढक, वाद्य, माण्डादिभेदयोः, दर्दुराः

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दादु रिकः । २ धर्मं चरति ४ । ४ । ४१ । धर्मं चरति—धार्मिकः । (अधर्माच्चेति वक्तव्यम्) आधर्मिकः । ३ शिल्पम् ४ । ४ । ५५ । मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य—मार्दङ्गिकः । ४ प्रहरणम् ४ । ४ । ५७ । तदस्येत्येव । असिः प्रहरणमस्य—आसिकः । धानुष्कः ।

११२५ शीलम् ४ । ४ । ६१ । अपूपभक्षणं शीलमस्य—आपूपिकः । ६ निकटे वसति ४ । ४ । ७३ । नैकटिकौ—भिक्षुः । इति ठगाधिकारः ।

चण्डिकायां स्यात्, पामजालेतु दर्दु रम् । २ । धर्म द्वितीयान्त धर्मशब्दसे चरति (आचरण, व्यवहार, करने) अर्थ में ठक् हो । धर्मं चरति । (धर्मका आचरण करता है । द्वितीयान्तआचरणक्रियाकारक भावसमर्थ धर्मशब्दात चरति अर्थौं ठक् इक् आदिवृद्धिः अकारलोपे । धर्मका नित्य आचरण कर्ता धार्मिकः (वा०) अधर्म शब्दसे भी आचरण करने अर्थमें ठक् हो । अधर्मम् आचरति अधार्मिकः । अधर्म शब्दात ठक आदिः । चरति शब्द अनुकूल उपसर्गको स्वीकार करता है । सदाचारी आदरपूर्वकभी स्वीकार्य है । धर्मविरोधी । ३ । तदस्य इति अनुवर्तते । प्रथमान्त समर्थ शब्द से शिल्पकला—विशेष गुणवाला अर्थमें ठक् हो । यथा—मृदङ्गवादनं शील्पमस्य मदङ्ग बजाना है शिल्पं (कला गुण) अस्य—इसका । षष्ठयर्थौ ठक् प्रथमान्त मृदङ्ग, शब्दात् ठस्य इक् आदिवृद्धिः अलोपे । वेणुवादनं शिल्पं विशेषज्ञता मास्ति अस्य है जिसकी वैणुकः । दुन्दुभिवादनं शिल्पमस्य दौन्दुभिकः । ४ । शिल्पं (कलासु कौशलम्) । किसी भी कलामें कुशलता ही शिल्प है । प्रहरणं प्रह्रियते (प्रहारः ताडनं क्रियते) अनेन साधनेन (जिस साधन से दूसरे पर वार किया जाय) वह प्रहरणम् । आयुधम्, अस्त्र, प्रथमान्तपदसे शस्त्रवाचक प्रहरणविषयकसाध्यसाधन समर्थ शब्दसे ठक् हो । यथा—असि, (तलवार) प्रहरणमस्य । असिशब्दात् ठक्, इक्, आदिवृद्धिः आदि । धनुः प्रहरणम् अस्य (धनुष् है प्रहार का शस्त्र जिसका) धनुष्शब्दात् प्रहरणम् अर्थे ठक्, ठस्थाने इसुसुक्तान्तात्कः इति क आदेशे इणः षः । मूर्धन्य आदेशे धनुष्कः । लगुडः प्रहरणंमस्य लागुडिकः । भुशुण्डिका प्रहरणमस्य भौशुण्डिकः ।

। ११२५ । शीलं=प्रथमान्त समर्थसे अस्य शीलम् (इसका यह स्वभाव है) इत्यर्थे ठक् अपूप (मालपूआ) भक्षणं खाना शील=स्वभाव है जिसका । अपूपशब्द भक्षणअर्थमें लाक्षणिक है । अपूपशब्दात् शीलमित्यर्थे ठक्, इक्, आदिवृद्धिः, अन्त्य, अलोपे । आपूयिकः=पूआ भक्षणकर्ता । ६ । सप्तम्यन्त निकटशब्दसे वसतिअर्थे ठक् । निकटमें जो रहे वह नैकटिको भिक्षुः । सप्तम्यन्तनिकट-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ यदधिकारः

७ प्राग्घिताद्यत् ४ । ४ । ७५ । तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ।

८ तद्वहति रथ युग-प्रासङ्गम् ४ । ४ । ७६ ।

शब्दात्वसति अर्थे ठक्, ठस्थाने-इक्; आदिवृद्धिः अलोपे (सन्यासी उसीके निकट आसपास रहते हैं। जहाँ भिक्षा सुलभ हो) नैकटिको भृत्यः मित्रमादिः। भिक्षुकः सन्यासी वा भिक्षार्थं निकटे वसति। इति प्रभाकरमिश्र विरचितायां प्राभाकर्यां ठगधिकारः।

यताधिकारः—इदानीं यत्प्रत्ययस्य अधिकारः अर्थश्च आरभ्यते, अथ यदधिकार इति। ७। प्राक्=पहले हितात्=तस्मै हितं सूत्रतक यत्का अधिकारः चलति। अर्थनिर्देश प्रकरणके सूत्रोंमें, निर्दिष्ट है। यत्का प्राधान्य है। अन्य-प्रत्ययभी होंगे। ८। तत्=द्वितीयान्तसमर्थ (क्रियाकारक भाव) शब्दसे वहति= ढोना, खींचना, लेजाना अर्थमें यत् हो। रथयुग (बैलके कन्धेका काष्ठ)-प्रासङ्गः— ये वहनक्रियाके कर्म हों। रथं वहति रथ्यः। रथस्य वोढा अश्व आदिः। रथ खींचनेवाला रथं वहति इति विग्रहे वहन क्रियायाः कर्म द्वितीयान्त-रथशब्दात् वहन, कर्षण, क्रियाअर्थे यत्। रथ+य भसंज्ञा यप्रत्यय परे, येस्तेतिच-सूत्रेण भसंज्ञकस्य, अकारस्यलोपे रथ्यः। रथकर्मक वहनकर्ता। अनड्वान् घोटकोवा (बैलः) रथ्यः। युगं वहति युग्यः युगशब्दस्य रथाङ्गवाचत्वात्। युग-शब्द रथका अङ्ग है। रथ या हल या गाड़ी खींचते समय जो अङ्ग घोड़े आदिके कन्धोंपर रखकर पशुओंको जोड़े युग (जूआ) कहते हैं। युगशब्दात् द्वितीयान्त समर्थात् वहति (कर्षण खींचने) अर्थे यत्, भसंज्ञकस्य अङ्गस्य अलोपे युग्यः, युग-कर्मक वहनकर्ता अश्वः। प्रासङ्गं वहति एक जूऐके साथ दूसरा जूआ या रस्सी या लगाम जोड़ें वह प्रासङ्ग है। सुशिक्षित घोड़ोंकी सन्नद्धताके लिए दोहरा लगाम या जूआठी। अथवा कर्षणकाले जोतने या खींचते समय वृषभकन्धे= बैलके कन्धेपर यत् काष्ठमासज्जते (जो लकड़ी संयुक्त की जाय वह) प्रासङ्गः अथवा जोती हुई भूमिको समतल समीकरण काष्ठ=पाटा (हेंङा) प्रासङ्गः तं यो वहति स प्रासङ्गिकः वृषभः। प्रासङ्गकर्मक वहनकर्ता बैलः। रेलशकटं वहति= रैल शकट्यः तैलयान्यः तेलयानकर्मक वहनकर्ता यन्त्रम्। इष्टिकां वहति इष्टिक्यः [ट्रक] द्वितीयान्तवाह्यवाहक भावसमर्थात् प्रसङ्गशब्दात् यत् आदिः। ९। वहन क्रियाका कर्म हो ढोनेवाला ढोनेकी वस्तुकेसाथसमर्थद्वितीयान्तधुर् शब्दात् कर्षण या वहनक्रिया अर्थे यत्, ढक् प्रत्ययभी हो [धूः स्त्रीक्लीबे यान—

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

रथं वहति-रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्यः । ९ धुरो यड्ढकौ ४ । ४ । ७७ । हलि चेति दीर्घे प्राप्ते । ११३० न भकुर्छुराम् ८ । २ । ७९ । भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् । धुर्यः धौरेयः । १ नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्यप्राप्य वध्याऽऽनाम्य सम-समित-सम्मितेषु ४ । ४ । ९१ । नावा तार्यं-नाव्यम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं-धर्म्यम् ।

मुखमित्यमरः) धुर=भार, बोझा चक्र नाभिः । धुरं वहति इत्यर्थे वहति, क्रियायाः कर्म वाह्यवहकभाव-समर्थद्वितीयान्त धुरशब्दात् वहनकर्ता अर्थे धुरो यड्ढकौ सूत्रेण यत् धुर्यः । अत्र (हलिच) सूत्रेण रेफस्य उपाधायः उकारस्य स्थाने दीर्घः प्राप्तः तस्य निषेधं वक्ति ।

(११३०) न इति भस्य – भसंज्ञक कुर् और छुर् की उपधाके स्थान में दीर्घ नहो । इति दीर्घनिषधे धुर्यः = भारवाहकः धुरकर्मकवहनकर्ता (संस्थायाः धुर्यः, राष्ट्रस्य धुर्यः । यही अर्थ धौरेयः का भी है । यदा यत् न भवति तदा वहति अर्थे ढक्प्रत्ययो भवति । ढस्थाने आयनेयी आदिसूत्रेण एय् आदेशे । धुर + एय् आदि वृद्धिः धौरयः । (साँड़) स्थूलवृषभ रथके आगे धर्मवाला । इस प्रकार कोई भी कार्य कुशल अग्रणी धौरेय हो सकता है । अध्यापकधौरेयः छात्रधौरेयः (नेतृधौरेयः । कर्मणि कुशलः छात्रश्रेष्ठः । दीर्घनिषेधः) । (१) सूत्रमें आठ शब्द हैं और आठ अर्थ भी यथा—सङ्ख्याक्रमके अनुरोध से स्व-स्व अर्थों में होते हैं । नौ = नौका, वयस्य = अवस्था धर्म = मर्यादा, विष (जहर) मूल धन । मूल = सीता, जोता हुआ । तुला = तराजू । इन शब्दों से तृतीयान्तसमर्थ होने पर क्रमसे तार्य = (तरने योग्य) तुल्य (समान) प्राप्य = (प्राप्त करने योग्य), वध्य = मारने योग्य, आनाम्य = सम सदृश । समित, समतल, सम्मित, सन्तुलित अर्थों में यत्प्रत्यय हो । प्रथममूलशब्दका आनाम्य अर्थ के साथ सम्बन्ध है । द्वितीयका समित के साथ । प्रथममूलशब्दतक द्वन्द्व, द्वितीयमूल, सीता, तुलाका अलग द्वन्द्व । अन्यथा मूलशब्दोंको एक शेषका भय होगा । नावा 'तार्य तरितुं शक्यं तैरने योग्य तार्यं (जलम्) नौकासे पार करने योग्य जल है । कारण तृतीयान्त (तारका-तार्य भाव) समर्थं नौशब्दात् तार्यं = पार करने योग्य अर्थ में उक्त सूत्रसे यत्प्रत्यय, नौका और जलका तार्यतारक सम्बन्ध समर्थ नौ + य तद्धितान्तत्वात् प्रा० संज्ञायां स्वादिकार्ये । यकारादिप्रत्ययपरे वान्तोयि प्रत्यये इति औस्थाने आवादेशे । नाव्यं नौकरणकतरणविषयः तद्धितार्थः । वयसा = अवस्थया तुल्यं सदृशं मित्रमेव वयस्यः = समान उम्रवाला (स्निग्धो, वयस्यः, सवया इत्यमरः । तृतीयान्त-सादृश्यसम्बन्ध समर्थवयसशब्दात् सदृशे अर्थे यत् । अवस्था सादृश्यवाला मित्र । धर्मेण सदाचारेण प्राप्यं लब्धुं शक्यं धर्म्यं धर्मफलम् । धर्मसे लाभ धर्मकरणके

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

विषेण वध्यो-विष्यः मूलेन आनाम्यं-मूल्यम् मूलेन समो-मूल्यः। सीतया समितं-सीत्यं क्षेत्रम्। तुलया सम्मितं-तुल्यम्।

२ तत्र साधुः ४।४।९८। अग्रे साधुःअग्र्यः सामसु साधुः सामन्यः। (१०२०) ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः कर्मण्यः शरण्यः। ३ सभाया यः ४।४।१०५। सभ्यः।

इति यतोऽवधिः

फलम्। धर्मं साधनसे प्राप्य प्रापक सामर्थ्य रहते यत्प्रत्यय। विषेण = गरलेन वध्यः (मारितुं योग्यः वधम् अर्हति) जहर देकर मारने योग्य। विषकरणक वधाश्रयः। विषशब्दात् वध्यवधकसमर्थात् 'यत्' विष्यः। मूलेन लाभसहितेन मूलधनेन (यावताद्रव्येण वैश्याः वस्त्रादिवस्तु क्रीणन्ति तद्धनं मूलधनम्। मूलधनेन आनाम्यम् आत्मानं प्रतिशेषीकर्तव्यम् (लाभसहितं धनम्) आनाम्यम्। लोके लाभसहिते मूलधने मूलशब्दों रुढ़ः। जितनी पूँजी लगी हो उससे अधिक भाग लाभ है। मिलकर मूल्य मूलशब्दात् मूलधन लाभसमर्थात् लाभसहिते अर्थे यत् अलोपे। मूलेन = मूलधनेन समः सदृशः (मूल अंशके बराबर जो हो वह) मूल्यम्। सादृश्यसम्बन्ध। सीतया हल द्वारा कर्षणलेखा सीता उच्यते। हलसे खींची रेखा (सीता लाङ्गलपद्धतिः। यया समितं समीकरणकृतं निम्नोन्नत्तं कृतम् ऊँचा-नीचा भाग समतल हुआ। क्षेत्रं = खेत अथवा समितं मिला हुआ तुलया = तराजू से समितं परिच्छिन्नं=तौला गया, तुल्यं, सदृशं, सर्वत्र यत् प्रत्ययः तोल्यतोलकभाव तराजू से तौली हुई कोई भी वस्तु योगरुढ़ोऽयं तुल्यशब्दः सदृशे अर्थे प्रयुज्यते। यत्प्रत्यय प्रकृति के अनुकूल अर्थ प्रस्तुत करता है।

(२) तत्र सप्तम्यन्त हो कुशलविषयक आधराधेय समर्थशब्द से साधु कुशल प्रवीण योग्य, दक्षादिनोपकर्ता अर्थमें यत्प्रत्यय हो। जो कुशल हो, किन्तु उपकार न करे। अग्रे=आगे-आगे साधुः, कुशलः, निपुणः, दक्ष। सप्तम्यन्त कुशलता समर्थ अग्रशब्दात् यत् अग्र्यः। अग्राधिकरणककौशलम्। भोजने साधुः भोज्यः। सामसु सामवेदगायकेषु साधुः दक्षः, प्रशस्तः सामन् शब्दात् प्रवीणतासमर्थे यत् अत्र 'टिलोपे प्राप्ते' ये चाभवकर्मणोः इति अनः प्रकृतिभावे सति सामन्यः टिलोपो न भवति। कर्मणिसाधुः कर्मण्यः। सफलकार्यकर्ता शरणे = सरणागतस्य रक्षणे साधुः शरण्यः निपुणः कुशलः, साधुतार्थे यत् भसंज्ञा अलोपे। पठने साधुः पठन्यः भोजने साधुः भोजन्य। लेखन्यः संचालन्य। (३) सप्तम्यन्तसभा, प्रवीण विषयक आधाराधेयभावसमर्थं सभा शब्दात् साधु अर्थे यत्। सभायां साधुः सभ्यः सभा में कुशल, प्रवीण, (आकर्षण करने में) सभाशब्दात् प्रवीणे अर्थे यत् भसंज्ञा अवर्णस्य लोपे। इति प्रभाकायां यतोऽवधिः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथछयतोरधिकारः

४ प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१ तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते। ११३५ उ-गवादिभ्यो यत् ५।१।२। प्राक्क्रीतादित्येव। उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात्। छस्यापवादः। शङ्कवे हितं शङ्कव्यं

अथछयतोरधिकारः—यत्प्रत्ययके अनन्तर छ, और यत्प्रत्ययका अधिकार हित, अवयव आदि अर्थमें करते हैं। सामान्य 'यत्' प्रत्ययकी अवधि पूरी हुई। अब सामान्यरुपसे छप्रत्ययका विशेष विधान भी है। हितअर्थका प्राधान्य है। (४) प्राक्=पूर्वक्रीतात्=तेन क्रीतं इस सूत्रसे पहले छप्रत्ययका अधिकार चलता है। छस्थाने इय् भवति। यह अधिकार सूत्र है। तेन क्रीतं सूत्रके पहले जिनसूत्रों से जो अर्थ उक्त है उसी अर्थ बोधक छप्रत्ययका अधिकार है। (११३५) उगवादिभ्य= उकारान्तशब्द, गो आदिशब्दों से हितं अर्थ में यत् हो। प्राक्कीतात्, तेन क्रीतं सूत्रसे पहले यह नियम है छस्य = छका बाधक यत् है। अतः तेन क्रीतं के पहले के अर्थो में यत्प्रत्यय उकारान्त और गो-आदि शब्दोंसे होगा। छ बाधित है। उवर्णान्त का उदाहरण—शङ्कवेहितं कीलोपकारकं शङ्कव्यं शङ्कु कील= खूंटी के योग्य दारु (काष्ठ, लकड़ी) पशवे हितं पशव्यं शङ्कु (या) पशु शब्दात् चतुर्थ्यन्तात् उपकार्योपकारक-समर्थात्। (अधिकार तस्मैहितम्) सूत्र से हित अर्थमें यत् हुआ। भसंज्ञा, ओर्गुणः, उकारस्यगुणे, वान्तोयि प्रत्यये, अवादेशे शङ्कव्यम्। खूटी के लिए हितकारक काष्ठ। एवं पशवे हितं पशव्यं=पशुओंका हितकारी खाद्यवस्तु। भानवे सूर्याय हितम् भानव्यं हविः, पुष्पं गुरवे हितं=गुरव्या दक्षिणा। गवेहितं=(गायके लिए घास, खली, गोशाला, हितकर हों) चतुर्थ्यन्त भोग्य भोजक समर्थगोशब्दात् तस्मैहितं सूत्रेण हितकारी अर्थे यत्प्रत्यये, (वान्त) अवादेशे गव्यम्। महिष्यै हितम् महिष्यम् तृणादिः घोटकाय हितं घोटक्यं चणकम्। (ग०) नाभिशब्दके स्थानमें नभ आदेश और यत्प्रयय हो। हितकारी अर्थ में (सच्छिद्रंरथाङ्ग—नाभिः) रथके चक्रके छिद्रको नाभि कहते हैं। जीवकी नाभि अग्राह्य है। तदनुप्रविष्टः काष्टविशेषो अक्षः उस छिद्रमें प्रविष्ट काष्ठ अक्ष है। वह नाभिके अनुगुण है। उसका हितकारी प्रत्ययार्थ है। जहाँ शरीरका अङ्ग नाभिशब्द से शरीरावयवात् यत् है। अक्षदण्ड का प्रवेश भाग छिद्रवाचक नभि ये हितं चतुर्थ्यन्त नाभिशब्दात् हितकारके अर्थे (उगवादिभ्योयत्) इति यत्प्रत्यये नाभिशब्दस्य नभ आदेशे।° अलोपे तद्धितान्त प्रा० कार्ये। उसी नाभि के लिए हितकारी अभ्यञ्जनं रथनाभिमें लगाने वाला तेल। वह सरलतया घुमानेमें

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

=दारु। गव्यम्। (नाभि नभं च) नभ्योऽक्षः, नभ्यमञ्जनम्। ६ तस्मै हितम् ५। १। ५। वत्सेभ्यो हितो—वत्सीयो-गोधुक्।

वत्सेभ्यो हितो—वत्सीयो-गोधुक्। ७ शरीरावयवाद् यत् ५। १। ६। दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। नस्यम्। ८ आत्मन्-विश्वजन-भोगोत्तरपदात् खः

हितकारी भी है। यन्त्रायहितं यन्त्रीयं तैलं (ग्लेसरीन् वारलीन्) आदि। शरीर का अवयव नाभि के यत् नहीं होता।

(६) तस्मै=चतुर्थीकारकका अर्थ हो प्रत्ययार्थ के साथ प्रकृत्यर्थ समर्थ हो, हो, ऐसेशब्दसे हितं=हितकारी अर्थमें छ प्रत्यय हो। परन्तु उगवादिभ्यो यत्—उवर्णान्त और गवादि शब्दसे यत्प्रत्यय हो। वत्सेभ्यो हितः (बछड़ों के लिए हितकारी) विग्रहमें चतुर्थ्यन्तवत्सशब्दात् उपकार्यं उपकारकसम्बन्धे सति हितकारी दूध, अहीर, भोजन, संरक्षण, रक्षक अर्थमें, छप्रत्यये, ईय आदेशे, भसंज्ञा, अलोपे वत्सीयो गोधुक्। गाय दुहनेवाला, वत्स हितकारी सभी वस्तु।

(७) चतुर्थीविभक्ति अन्तमें हो शरीरका अवयव किसी अङ्गका वाचक शब्द हो, उपकार्यं उपकारकसामर्थ्य हो तभी हितकारी अर्थ में यत्। दन्तेभ्यो= दांतोंके लिए हितं=रक्षकं दन्त्यं दन्तमन्तजनं दन्तधावनं। चतुर्थ्यन्त रक्ष्यरक्षक भावसमर्थं दन्तशब्दात् हितं मञ्जनमर्थे यत् अलोपे दन्त्यम्। एवं कण्ठाय हितं (गलेके लिए लाभदायक) कण्ठ्य=हार कण्ठाः। तस्मै हितं कण्ठ्यम् (कण्ठ-माला की दवा) यत्, अलोपे। नस्यम्=नासिकायैहितं नाकके लिए हितकारी (सुंघनी) घ्रातव्यं तमालचूर्णं, इत्रं। शरीरावयवसमर्थ चतुर्थ्यन्तनासिकाशब्दात् हितकारी अर्थे यत्। पद्दन्नेतिसूत्रेण नासिकास्थाने नस् आदेशे (नासिकायाः नस्) इति वार्तिकेनवा (८) आत्मन् विश्वजन और भोगोत्तरपद मातृभोग आदि। चतुर्थ्यन्त समर्थसे खप्रत्यय हो हितकारी अर्थ में। छप्रत्ययको बाधकर (९) आत्मन और अध्वन्, एतौ = येदोनों, खे = खप्रत्ययपरे, प्रकृतिभाव = जैसाका तैसा रहे। आत्मने=स्वस्मै हितं (अपने लिए उपयोगी वस्तु) इतिविग्रहे आत्मन् शब्दात् चतुर्थ्यन्तसमर्थात् हितम् उपयोगी-अर्थे आत्मन् विश्वजन् सूत्रेण ख, तस्य ईन् आदेशे। आत्मन्+ईन्। टिलोपे प्राप्ते आत्माध्वानौ खे इति प्रकृतिभावे, आत्मनीनं जगत्। स्वार्थी। विश्वेषां जनः (सब लोगोंका आदमी) तेभ्यो हितं (विश्वका कल्याणकर्ता) सर्वोपकारकत्वसमर्थं विश्वजनशब्दात् ख तस्य ईन्, अन्त्य अलोपे, विश्वजनीनं, विद्युत्सूर्यः, सन्तः, महात्मा। मातृभोगीनः मातुर्भोगः शरीरं तस्मैहितं माताके शरीरका हितकर्ता, वस्त्रं पिता, पितुर्भोगः देहः। तस्मै-हितः पितृभोगीणः। खप्रत्यये ईन आदेशे अन्त्य अलोपे, कुमतिच इतिणत्वे।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

५ । १ । ९ । ९ आत्माध्वानौ खे ६ । ४ । १६९ । एतौ खे प्रकृत्या स्तः । आत्मने हितम्-आत्मनीनम् । विश्वजनीनम् । मातृभोगीणः ।

इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ।

अथ ठञधिकारः

११४० प्राग्वतेष्ठञ् ५ । १ । १८ । तेन तुल्यमिति वति वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते । १ तेन क्रीतम् ५ । १ । ३७ । सप्तत्या क्रीतं-साप्तकिम् ।

पुत्रभोगीणः । स्त्रीभोगीणः, इति प्रभाकर्यां छयतोः पूर्णेऽवधिः ।

(६) छयत्प्रत्ययके समाप्तिके पश्चात् ठञ्का अधिकार प्रारम्भ किया जाता है । विशेष सूत्रोंपर शीर्षक दिया है ।

(११४०) प्राक्-तेन तुल्यं क्रियाचेद्वतिः सूत्रसे वति प्रत्ययका विधान बोला जायेगा । उसकेपहले ठञप्रत्ययका अधिकार है । उन सूत्रोंके बताये गये अर्थों में ठञ्प्रत्यय हो । (१) करणतृतीयान्त साध्यसाधनसमर्थं शब्दसे क्रीतं = (खरीदा हुआ) अर्थमें या क्रयणक्रियाके कर्म (साध्य) अर्थ में ठञ् हो । कोईभी तृतीयान्त-शब्द (वस्तु सामग्री खरीदनेमें) समर्थ होना चाहिए तभी ठञ् होगा । यथा— सप्तत्या = सप्तरुप्यकेण (सातरुपयेसे) क्रीतं = खरीदी हुई वस्तु साप्ततिकम् । खिलौना, बन्दूक, मिष्ठान्न आदि । खरीदी वस्तुका साधनसातसङ्ख्या हो । क्रयण-क्रियाका साधन हो, वस्तु साध्य हो । प्रकृतिका अर्थ साधन प्रत्ययका अर्थ साध्य । तृतीयान्तसाधनसमर्थसप्ततिशब्दात् क्रीतं (साध्य) अर्थ में तेन क्रीतं सूत्रेण ठञ्प्रत्यये । ठस्य इक्, ञित्कारणेन आदिवृद्धिः, क्रयणसाधन सप्ततिके अन्त्य इकारका यस्येति-चसे लोप, तद्धितान्तत्वात् प्रा० संज्ञा, विभक्तिकार्यं, साप्ततिकं वस्त्रम् । पुस्तकं घृतं फलं वा । प्रस्थेन पंचसेटकेन (पसेरीमें परिच्छिन्नेन, मापदण्डेन धान्येन यवादिकेन क्रीतं-क्रयणं कृतं (खरीदा गया) शाक आलू बैगन टमाटर आदि प्रास्थिकम् । करणतृतीयान्त (खरीदनेके मूल्य साधनमें) समर्थ प्रस्थशब्दात् क्रीतं प्रास्थिकं (खरीदनेकी प्रकृतिका साधन, प्रत्ययका साध्य अर्थ है । विंशत्या क्रीतं

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रास्थिकम्। २ तस्येश्वरः ५।१।४२। सर्वभूमि-पृथिवीभ्यामणञौ स्तः। ३ अनुशतिकादीनां च ७।३।२०। एषानुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च तद्धिते। सर्वभूमेरीश्वरः–सार्वभौमः। पार्थिवः। ४ पङ्क्ति-विंशति-

---

वैंशतिकम्। द्वाभ्यां क्रीतं द्विकं फलम्। सहस्रेणक्रीतः **साहस्रिको** गौः पञ्चाशत्सहस्रेण क्रीतं **पाञ्चाशत्साहस्रिकम्** यन्त्रम्। लक्षेण क्रीतं **लाक्षिकम्** जानताभारवाहनं (ट्रक) इति। सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ सर्वभूमि और पृथिवीशब्दसे यथासङ्ख्य क्रमसे अण् और अञ्प्रत्यय हो। इसकी अनुवृत्ति अगले सूत्रमें।

(२) **तस्य** षष्ठचन्त सम्बन्धसमर्थस्य **ईश्वर** इत्यर्थे प्रत्ययो भवति। अनुवृत्तसर्वभूमि शब्दसे ईश्वर अर्थमें अण्, पृथ्वीशब्दसे अञ् हो। (३) **अनुशतिकादिः**—एषाम् = अनुशतिकादिगणमें पठितशब्दोंके **उभयपद** = दोनोंपदोंको आदिवृद्धिः हो, ञित्, णित्, कित् परे। ये तद्धितके ही हों। सर्वभूमेः (समस्तपृथिव्याः) ईश्वरः = स्वामी, राजा, सम्पूर्ण पृथ्वीका चक्रवर्तीसम्राट् **सार्वभौमः** षष्ठचन्त स्वाभित्वसमर्थसर्वभूमिपदसे सर्वस्वामित्व अर्थमें तस्येश्वरः सूत्रेण अण् (अ) सर्वभूमि अ। अनुशतिकादीनाञ्च इति उभयपदयोः आदिवृद्धिः, इलोपे, **सार्वभौमः** अखण्डभूलेश्वरः। पृथिव्याः ईश्वरः (पृथिवीका स्वामी राजा अर्थमें) स्वामित्वसमर्थ-पृथिवीशब्दात् ईश्वरेअर्थे अञ्, आदिवृद्धिः, ईलोपे, **पार्थिवः**। दोनों प्रत्ययमें एकरूपता होनेपर स्वरमें अन्तर। अञ् आदिः उदात्तः। अण् अकारः केवलमुदात्तः। (४) **क्रमके** अनुसार पंक्तिशब्द, दससंख्याअर्थमें भी है। पंक्तिः १०, विंशतिः २०, त्रिंशत् ३०, चत्वारिंशत् ४०, पञ्चाशत् ५०, षष्ठि ६०, सप्ततिः ७०, अशीति ८०, नवतिः ९०, शतम् १००, एते रुढ़िशब्दाः। **तदस्य परिमाणं**=संख्याके परिमाण अर्थमें निपातनसे सिद्ध हैं। यद्यपि पङ्क्तिशब्द नानाअर्थदायक है। क्रमसन्निवेश अर्थमें ब्राह्मणपंक्तिः। पिपीलिकापङ्क्तिः। चीटीकी लाइन। दश संख्या अर्थमें प्रसिद्ध है। पङ्क्तिरथो दशरथः, छन्दसोविशेषे च भूमौ च पङ्क्तिः। पञ्चपादाः परिमाणमस्य पंक्तिश्छन्दः। पांचचरणवालाछन्द। पञ्चशब्दात् परिमाणेअर्थे तिप्रत्यये, टिलोपे, कुत्वे, अनुस्वारे परसवर्णे रूपम्। (विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः सङ्ख्येयसंख्ययोः तासु चावनते स्त्रियः इत्यमरः। विंशति, त्रिंशत् इत्यादिशब्द संख्येय गणनीयवस्तु अर्थमें और संख्या अर्थमें, सदाएकवचनान्त प्रयोग किये जाते हैं। संख्येय वस्तुअर्थमें **विंशतिर्गावः**। विंशतिशब्द बीस संख्यावाली वस्तु (गाय) अर्थमें प्रयुक्त है। गवां त्रिंशनिः गायोंका बीस (संख्या प्रधान) है। वस्तुप्रधान संख्येय, संख्या प्रधान, संख्या विंशति इत्यादिशब्द दशता-से सिद्ध हैं। '**पञ्चद्दशतौ वर्गे**' सूत्रसे वर्ग अर्थमें दशतशब्द बना दशन् शब्दसे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिंशच्चत्वारिंशत्-पञ्चाशत्-षष्टि-सप्तत्य-शीति-नवतिशतम् ५ । १ । ५९ ।
एते रूढिशब्दा । निपात्यन्ते ।

११४५ तदर्हति ५ । १ । ६३ । लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्-ठञादयः स्युः । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः । ६ दण्डादिभ्यो यत् ५ । १ । ६६ । एभ्यो यत् स्यात् । दण्डमर्हति–दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः ।

प्रत्येकके साथ व्यवहारचातुर्य देखिये । द्वौदशतौ परिमाणमस्य समुदायस्य, दो दस (२०) संख्या (परिमाण, मात्रा) है जिससंघका द्विदशत्शब्दात् परिमाणे (अर्थे शतिच्) प्रकृतिः द्विशत्स्थाने 'विन्' आदेश निपातनसे हुआ । (सूत्रमें पतितशब्दोंकी प्रयोगसिद्धिके अनुरोधसे प्रकृतिप्रत्ययकी कल्पना निपातन है) विन्-शतिच्' अनुबन्धलोपे नकारस्य अनुस्वारे विंशतिः संघ और संघीके भेद और अभेद सम्बन्धसे गवां विंशतिः भी सिद्ध है । एवं त्रयो दशतः परिमाणमस्य संघस्य (तीनदस्) तीससंख्यावाला संघसे शत्प्रत्यय त्रिदशत्को त्रिन् आदेश त्रिंशत् । चत्वारो दशतः (चारदस ४०) संख्यावाला समुदाय प्रकृति चत्वार दशत्को (शत्) चत्वारिन् बना, चत्वारिंशत् । पञ्चाशत् पञ्चदशतः (५०) को 'पञ्चा' आदेश शत्प्रत्यय । षड्दशतः परिमाणं संख्या अस्य ६० संख्याक छात्रसंघ षष् आदेशतिप्रत्यय षष्ठि सप्ततिः सप्तदशतः परिमाणं सात दश (७०) अष्टादशतः (८०) संख्याकसंघ ति प्रत्यय अशी आदेश । नवदशतः परिमाणं अस्य नब्बे सङ्ख्याक समूह (ति) प्रत्यय । नव आदेश । शतं दशदशतः संख्या । (सौ) यहाँ सभी प्रकृतिप्रत्यय निपातनानुरोधी हैं ।

(११४५) तत् = द्वितीयान्त, समर्थात् कर्म अर्थवाचक क्रियाकारकसामर्थ्य द्वितीयान्तशब्दसे अर्हति लब्धुं योग्योभवति । प्राप्तकरने योग्य है अर्थमें अञ् आदिः । यथा—श्वेतच्छत्रं सफेद छाता (अर्हति) पाने योग्य है । इस अर्थ में प्राप्यप्रापक समर्थ श्वेतच्छत्रशब्दात् प्राप्ति के योग्य अर्थ में ठक् ठस्य इक्, आदिवृद्धिः । अलोपे, विभक्तिसम्बन्धि कार्यें । श्वैतच्छत्रिकः सुवर्णपदकं लब्धुं योग्यो भवति सौवर्ण-पदिकः चन्द्रपदकं लब्धुं योग्यः चान्द्रपदिकः । सहस्रं लब्धुं योग्यः साहस्रिकः । पुरस्कारं पौरस्कारिकश्छात्रः धनं — धानिकः । विद्यां लब्धुंयोग्यो भवति वैदिकः ।

(६) दण्ड-आदि गणपठितः, कर्मणि कुशलः, प्रापकसमर्थद्वितीयान्तशब्दात् दण्डम् अर्हतियोग्यो भवति दण्ड्यः दण्डनीय व्यक्ति । अपराध (प्रकृतिका) अर्थ, फललाभके योग्य प्रत्ययका अर्थ । अर्घ्यं मूल्यं पूजाविधिं वा अर्हति — मूल्य के योग्य या पूजाविधि के योग्य प्रत्यय का अर्थ । द्वितीयान्त अर्च्यअर्चक सम्बन्धसमर्थ अर्घशब्दात् लब्धुं योग्यअर्थ में दण्डादिभ्यो यत् अलोपे अर्घ्यः । वधम् अर्हति वध्य. ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

७ तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९। अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम्। इति ठञोऽवधिः।

अथत्वतलोरधिकारः

११४८ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५। ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवद् अधीते। क्रिया चेदिति किम्–गुणतुल्ये मा भूत्, पुत्रेण तुल्यः

वधलायक नहि पुरुष अनूपा। अवध्यः। वध् शब्दात् यत् आदि। (७) तेन करणतृतीयान्त साधन अर्थ में तृतीया विभक्ति हो, तब कालवाचक शब्दसे निर्वृत्त= निष्पन्नं, सिद्धं (सफल हुआ) अर्थ में ठञ् हो अह्ना (दिन भर में) करणे तृतीया कालवाची अहन् शब्द से निर्वृतं सिद्धम् अर्थ में ठञ्। प्रकृतिकाका काल अर्थ, प्रत्यय का सिद्ध अर्थ। अहन् शब्दात् निर्वृत्तम् अर्थे ठञ् ठस्येक, अल्लोपोनः अकारलोपे, आदिवृद्धिः आदि। आह्निकं भाष्यम्। ट और ख प्रत्यय में नस्तद्धिते नियन्त्रित है, अह्नष्टखोरेव इति सूत्रात्। इति प्राभाकार्यां ठञोऽवधिः।

अथत्वतलोरधिकारे भावकर्मार्थाः–त्व और तल् प्रत्ययके अधिकार में भाव और कर्म अर्थ में प्रत्यय होंगे। किसी शब्द में व्यक्ति या वस्तु में जाति गुण क्रिया और विशेषतायें ही भाव और कर्म हैं। प्रकारी (विशेषणी) भूत धर्म ही भाव है। फलजनकक्रिया ही कर्म है। इनकी प्रधानताका प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। क्रिया अर्थ में (वत्) प्रत्यय का विधायक सूत्र (८) तेन उपमानवाची हो कर्तृतीयान्त हो, उपमेय के साथ क्रिया की तुल्यता (समानता) हो समर्थ पद से 'वत्' प्रत्यय हो। तेन=तृतीयान्तेन तुल्यं क्रियाफलजनककर्म चेत् वति=इकार इत् 'वत्' प्रत्यय। वत् जिसके अन्त में हो, वह अव्यय और क्रियाविशेषण मान्य है। दो व्यक्ति में क्रिया का सादृश्य सम्भव हो, उपमानशब्दवत् प्रत्यय के अर्थ का लाभ होता हो। यथा—ब्राह्मणेन=वेदज्ञानतप-सदाचारपूतेन, ब्राह्मणत्वधर्मवता तुल्यं सदृशं अधीते=अध्ययनक्रियां कुरुते ब्राह्मणवत् अध्ययन क्रिया ब्राह्मण में है उसी तरह की क्रिया अन्य क्षत्रिय आदि में हो, वे ब्राह्मणवत् हैं। ब्राह्मणलक्षणं तपः श्रुतश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मणकारणम्। तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्थूलः। ९ तत्र तस्येव ५।१।११६। मथुरायामिव-मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। चैत्रस्येव-चैत्रवन्मैत्रस्य गावः। ११५० तस्य भावस्त्व-तलौ ५।१।११९। प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः गोर्भावो–गोत्वम्, गोता। त्वान्तं क्लीबम्। १ आ च त्वात् ५।१।१२०। 'ब्रह्मणस्त्व' इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियते। अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्। चकारो नञ्-

---

एव सः। अत्र विप्रकर्मणः सादृश्यं, अतः कर्तृतृतीयान्त = अध्ययनक्रिया की तुल्यता से क्षत्रिय आदि में आरोपित ब्राह्मणशब्दात् तुल्ये अर्थे तेनतुल्यं क्रिया चेद्वतिः सूत्रेण इकार इत्संज्ञक वत्प्रत्यये ब्राह्मणवत्। क्रियाचेत् इतिकिम्? उपमान उपमेय में क्रिया की (बराबरी) ऐसा अर्थ क्यों कहा? इसलिए कि गुण की समानता में वत् न हो। यथा—पुत्रेण तुल्यः (सदृशः) स्थूलः=पीनः पुत्र के समान मोठा तगड़ा। यहाँ मोटाइ एक गुण है क्रिया नहीं, अतः वत् नहीं हुआ। पुत्रवत् स्थूल इति वाक्यं न भवति। अरविन्दवत् अधीते मकरन्दः भीमवत् भुङ्क्ते भागिनेयः =भीम की तरह भोजन करता है भोजन क्रिया की तुलयता। परशुरामवत् युध्यति जनः।

तत्र = सप्तम्यन्त (अधिकरणवाचकपद) तस्य = षष्ठयन्त (सम्बन्धी वाचक) पद से इव = सादृश्य (समानता) अर्थमें वत्प्रत्यय। यथा—मथुरायामिव, मथुरावत्, मथुरा में जैसी चहरदिवाली प्रकार (चतुर्दिक्षु आवरणम्) वैसा ही श्रुघ्न देशमें चौतरफा घेरा है। सप्तम्यन्त (सादृश्यबोध में समक्ष) मथुरा शब्दात् इव (तुल्ये) अर्थे (इ इत्) 'वत्' प्रत्यये मथुरावत्। काश्यामिव काशीवत् अयोध्यायां वैदुष्यम्। त्रिपाठीवत् लुक्ले वैदुष्यम्। शिवकुमारवत् देवस्वरूपः। षष्ठयन्तका उदाहरण—द्रव्यकी तुल्यता, चैत्रस्येव चैत्र सम्बन्धी गायकी तरह चैत्रवन्मैत्रयस्य गावः। स्वच्छन्दगोविषयक सादृश्यसम्बन्ध समर्थ चैत्रशब्दात् इवअर्थे वतिप्रत्यये मकारपरे तकारस्य परसवर्णे अनुनासिके। क्रिया अर्थ में वतिप्रत्ययका बाधक द्रव्य की समानता में वतिप्रत्यय है। महाशयः एव महाशयवत् त्रिपाठिनः शिष्याः। पंतञ्जलेरिव भर्तृहरेः व्याकरणत्वम्। प्रधानमन्त्रिण इव मुख्यमन्त्रिणो अनुशासनम्।

(११५०) तस्य षष्ठयन्त सम्बन्धसमर्थशब्द से भाव अर्थ में त्व और तल्प्रत्यय हो। भाव क्या है ऐसी उदीयमान जिज्ञासा शान्तिके लिए लक्षणप्रस्तुत करते हैं। प्रकृतिजन्यबोधे = जिस सुबन्त (समर्थ शब्द से) 'त्व' या 'तल्' प्रत्यय हो वह प्रकृति है। जैसे—गो शब्द से त्व प्रत्यय हुआ गोत्व बना। यहाँ गो प्रकृति है। तज्जन्यबोधे = उस प्रकृति से उत्पन्न बोध (गुण क्रिया जाति द्रव्य) जितने विशेषण हों सब गो प्रकृति के अर्थ बोधक है। गो शब्दसे गुण क्रिया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। स्त्रियाः भावः-स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्। स्त्रीता। पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता। २ पृथ्वादिभ्य इमनिच् वा ५।१।१२२। वा-ववचनमणादिसमावेशार्थम्। ३ र ऋतोः हलादेर्लघोः ६।४।१६१।

शास्नालाङ्गूल ककुद्विषाण आदि अर्थका ज्ञान गो शब्दरूप प्रकृति से होता है। गोशब्दमें जो-जो अर्थ विशेषण हैं उन सभी को भाव कहते हैं। जो विशेषण भाव से विशेष्य में रहता है। जैसे—जाति गुण क्रिया द्रव्य में रहती है। गोव्यक्ति में गोत्व जाति भी भाव पदार्थ है। गोत्व प्रकारक गोविशेष्यकः तत्र= प्रकारः विशेषणं गोत्वं स भावप्रत्यार्थः मुख्य विशेषतानिरुपित प्रकाशाश्रयः। यथा—गोर्भावः गाय में सभी विद्यमान विशेषण ही गोत्व है। षष्ठचन्तविशेष्यता समर्थगोशब्दात् तस्यां प्रकृतौ विशेषणीभूते अर्थे त्व प्रत्यये। इस प्रसंग में प्रत्यार्थ विशेष्य है। प्रकृत्यर्थ विशेषण है। गोशब्दात् त्वप्रत्यये तद्धितान्तत्वान् प्रा० संज्ञायां स्वदिकार्ये, ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वम्। ब्राह्मणवृत्ति तप, वेद शास्त्र का ज्ञान, सदाचार आदि त्वप्रत्ययका अर्थ है। वैश्यत्वम् (क्रय विक्रय कर्म कुशलता) क्षत्रियत्वम् (संरक्षण सौर्यवीर्य पराक्रम प्रवीणता। शूद्रत्वम् (सेवाकर्मकौशलम्) स्त्रीलिङ्ग कहना हो तब तल्प्रत्यय (ल इत्), टाप, गोता। गोवृत्तिधर्मः। त्वान्तं सदा नपुंसकम्। तल्प्रत्यय अन्त में है। नित्यस्त्रीलिङ्ग। जिसका बोधक टाप् प्रत्यय है। देवत्वं देवता मनुष्यत्वम् मनुष्यता। मनुष्य की सारी विशेषता। भगवत्त्वं भगवत्ता।

(१) आच ब्राह्मणत्वः ५।१।१३६ इस सूत्रपर्यन्ततक प्रथमाध्यायके प्रथमपाद की समाप्ति तक त्व और तल् का अधिकार चलता है। अधिकार सूत्र मानने का प्रयोजन अपवादेः— भाव अर्थ में वे, प्रत्ययके प्रकरणमें इमनिच् आदि के अपवाद प्रत्यय कहे जायेंगे। वे (त्व) और तल् के बाधक न बने एतदर्थम्—अधिकार सूत्रम्। आ च सूत्र में चकार पढ़नेका फल स्त्रीपुंसाभ्यां सूत्रसे विधान किये गये नञ् स्नञ् के साथ त्व, तल् प्रत्यय भी हों अर्थात् जहाँ इमनिच् होकर प्रथिमा होगा वहीं पृथुता और पृथुत्वम् भी हो। बाध्यबाधकभाव न बने। तथा स्त्रैणं, स्त्रीत्वं स्त्रीता आदि बने। यही समावेशका फल है।

(२) पृथ्वादि=पृथु आदिशब्दोंसे भावअर्थमें इमनिचप्रत्यय विकल्पसे हो। सूत्रमें 'वा' शब्दसे अण्, त्व, तल् आदि प्रत्यय भी भाव अर्थमें हों। यही 'वा' वचनका फल है। ये पुलिङ्गान्त शब्द है। अण्प्रत्यय है, प्रत्याहार नहीं। (३) हलादि और लघुसंज्ञक ऋकारको रेफ आदेश हो। इष्ठन् इमनिच् इयसुन् प्रत्यय-परे। (वा०) पृथु=स्थूल, मृदु—मुलायम, भृश=प्रचुर अधिक। कृश—दुर्बल। दृढ़=प्रौढ़, परिवृढ़—स्वामी, इन्हीं शब्दोंसे परे इष्ठन् आदिके रहते ऋस्थाने

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठेमेयस्सु परतः। ४ टेः ६।४।१५५। भस्य टेर्लोप इष्ठेमेयस्सु। (पृथु-मृदु-भृश-कृश-दृढ-परिवृढानामेव रत्वम्)। पृथोर्भावः प्रथिमा, पार्थवम्। म्रदिमा, मार्दवम्।

१११५ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ५।१।१२३। चादिमनिच्। शौक्ल्यं, शुक्लिमा। दार्ढ्यं, द्रढिमा। ६ गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४।

'र' आदेश हो, अन्यत्र न हो। यह वार्तिकका नियन्त्रण है। (४) टेः—भसंज्ञक-टिका लोप हो, इष्ठन्, इमनिच् और इयसुन् परे। पृथोर्भावः स्थूलव्यक्तिमें विशेषणीभूत अर्थ धर्म गजगामित्व, भीमतुल्यता आदिभाव (विशेषण पृथु व्यक्तिमें है) षष्ठ्यन्त विशेष्यविशेषणभाव समर्थ 'पृथु अस्' शब्दात् पृथ्वादिभ्यः इति इमनिच् विकल्पे अनुबन्धलोपे। तद्धितान्तत्वेन प्रातिपदिकत्वात् विभक्तेर्लुक्। रऋतोः हलादेर्लघोः, सूत्रेण ऋस्थाने 'रः'। भसंज्ञकः (टि) उकारः तस्य 'टेः' सूत्रेणलोपे प्रथमिन् नान्तशब्दात् स्वादिः प्रथिमा। यदा इमनिच् न भवति तदा 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' सूत्रेण अण्प्रत्यये आदिवृद्धौ ओर्गुणः इति उकारस्य गुणे अवादेशे स्वादिसम्बन्धकार्ये पार्थवम्। पृथुत्वं पृथुता। एवं मृदोर्भावः म्रदिमा, मार्दवं, मृदुत्वं मृदुता।

(११५५) वर्ण=सफेद, लाल, पीला, शुक्ल, रक्त, पीत, हरित, नील इत्यादि रङ्ग ही वर्ण हैं। उनकावाचकशब्द विशेष्यत्वसमर्थ और दृढादिभ्यः=दृढ आदि समर्थषष्ठ्यन्तसे भाव (विशेषता बोलनेवाला, सौन्दर्य, माधुर्य, आकर्षण, हृदय) अर्थवाचकसे ष्यञ्प्रत्यय हो, चात्—सूत्रमें चकार पढ़नेसे इमनिच् भी हो। ष्यञ् प्रत्ययान्त नित्यनपुंसक हैं। यथा—शुक्लस्य भावः शौक्ल्यं (सफेदी, श्वेत, चमक, मनमोहक, सौन्दर्य गुण, विशेष धवलिमा) समर्थवर्णवाचकशुक्लशब्दात् षष्ठ्यन्तसमर्थात् शुक्ल ङस् अस्माद्भावे, प्रकृतिविशेषता अर्थे ष्यञ् प्रत्यये। ष् ञ् इत् (य) शिष्यते। आदिवृद्धिः भसंज्ञायाम् अलोपे। तद्धितान्तत्वात् प्रा० संज्ञा इत्यादि कार्ये। शुक्लशब्दात् भावेअर्थे इमनिच्, शुक्ल + इमन् विभक्तिनिमित्तकं सर्वकार्यम्। नान्तउपधायाः दीर्घः सुलोपनलोपौ च। शुक्लिमा शुक्लिमानौ शुक्लिमानः। कार्पासः ऊर्णा, वस्त्राणि। रक्तस्यभावः राक्त्यं रक्तिमा। पीतस्य-भावः पैत्यं पीतिमा। हारित्यं हरितिमा। यह वर्णका उदाहरण। दृढादिका उदाहरण दृढस्य भावः=मजबूती, तगड़ापन, लौहपुरुषत्व अटलता दार्ढ्यम्। दृढपुरुषमें दृढताषष्ठ्यन्तसमर्थदृढ + ङस्शब्दात् (वर्णदृढादि) सूत्रेण ष्यञ् आदि-कार्ये। यदा दृढशब्दात् इमनिच् प्रत्ययः, तदा दृढइमन् 'र ऋतोः हलादेर्लघोः' सूत्रेण ह्रस्वे, ऋस्थाने 'र' आदेशे, अलोपे, द्रढिमा द्रढिमानौ द्रढिमानः (६) गुणवचन=गुणवाचक शब्द और ब्राह्मण आदिगण पठित शब्दोंसे षष्ठ्यन्त

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

चाद्भावे। जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम्। मूढस्य भावः कर्म वा मौढचम्। ब्राह्मण्यम्। आकृतिगणोऽयम्। ७ सख्युर्यः ५। १। १२६। सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्। ८ कपि-ज्ञात्योर्ढक् ५। १। १२७। कापेयम्। ज्ञातेयम्।

अवस्थामें विशेष्यत्व समर्थ (जिसमें विशेता बोलनेके लिए विशेषण भरे हों, उसे विशेष्य कहते हैं।) उन शब्दों को भाव=गुणधर्म और कर्म अर्थमें ष्यञ् प्रत्यय हो। यहाँ कर्म दो हैं। क्रियारूप, कार्यरूप। स्वार्थ (शरीर) से सम्वन्धित नित्य नैमित्यिक=शौचादिकर्म क्रियांरूप है तन्मात्रसे विधानकिया गया। यज्ञ, व्रत, तप, ये कर्म कार्य है। यह अन्तर हुआ। शरीरस्य आयासमात्रसाध्यं शौचादिकर्म (क्रिया) शास्त्रेण विहितो यागादिकर्म कार्यमित्यनयोर्भेदः। यथा—जडस्यभावः कर्मवा जाडचम्। मूर्खव्यक्तिका अविवेकपूर्णकार्य मूर्खता जाडच है कालीदासका जिस डालीपर बैठना उसीको काटना। गुणवाचक (मूर्खता धर्म) समर्थ जड + ङस् शब्दात् भावे कर्मणि वा' अर्थे गुणवचन सूत्रेण ष्यञ् आदिवृद्धिः, अलोपादिः जाडचम्। अविवेकी व्यक्तिकी शारीरिकक्रिया (निष्फलकार्य) नासमझी तद्धितार्थः। इस प्रकरणमें प्रकृति विशेष्य है प्रत्ययार्थं विशेषण। विशेषणविशेष्यभावसम्बन्धः मूढ़स्य = मोहमग्नस्य, ममताग्रस्तस्य, कर्म = क्रिया, कार्य, भावः, गुण, धर्म, विशेषताको मौढ्यं कहते हैं। मूढ़ता पुत्रान्प्रति धृतराष्ट्रस्य मौढचं। हस्तिनः स्नानम्। मोहममता आदिगुणवाचकविशेष्यधर्मसमर्थं मूढ़ङस् शब्दात् कर्मणि भावे वा अर्थे ष्यञ् आदिः सूत्रमें ष्यञ् अनुवृत्त, इमनिच् निवृत्त। सुखस्य भाव, सौख्यं, दुखस्यभावः दौख्य दुख (सुखकाविपरिणामी) कर्म। रसस्यभावः कर्मवा रास्यम्। स्वादिष्टवस्तु। दुर्गन्धस्य भावः दौर्गन्ध्यम् सुगन्ध्यस्य भाव कर्मवा सौगन्ध्यम्। नेतुर्भं वः कर्मवा नैतृत्वम्। ब्राह्मणादिक उदाहरण—ब्राह्मणस्यभावः (गुणविशे ता, धर्म) कर्म = तप, श्रुति, सदाचार, त्याग, आदिको ब्राह्मण्यम्। ब्राह्मणके गुण विशेषता त्याग, तपस्या, धर्म है। षष्ठचन्त विशेष्यत्वसमर्थ ब्राह्मणशब्दात् गुणवचनब्राह्मणादि सूत्रेण ष्यञ् वृष्टिवत् अनावश्यक स्थलेऽपि आदिवृद्धिः। अलोपादिः। क्षत्रियस्य भावः कर्म-वा क्षत्रियं। शूद्रस्य भावः कर्म-वा शौद्रचम्। ब्राह्मणादिः आकृतिगण हैं। जहाँ-जहाँ ष्यञ् प्रत्यय मिले वहाँ ब्राह्मणादिगणके अन्तर्गत मानले।

(७) षष्ठचन्तसखिशब्दसे भाव और कर्म अर्थमें य प्रत्यय हो। यथा—सख्युः = मित्रस्यभावः अभिप्रायः, उपकारकत्वं दुःखसमये सहयोगित्वं कर्म (साथ देना) सख्यं—रामसुग्रीवयोरिव। सखि ङस् भावे कर्मणि वा अर्थे 'य' प्रत्यये अलोपे

(८) कपिश्च ज्ञातिश्च कपिज्ञाती तयोः। कपि शब्द और ज्ञाति शब्द विशेष्य अर्थमें समर्थ हों, तब षष्ठयन्तसे भाव और कर्म अर्थमें ढक् प्रत्यय हो। अत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

९ पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यो यक् ५ । १ । १२८ । सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ।

इति त्वतलधिकारः ।

पञ्चम्यर्थे षष्ठी । कपि (बन्दर) के भाव विचार, चञ्चलता गुण धर्म, कर्म कापेयं हैं कपेर्भावः कर्मवा कपिशब्दात् विशेषण (अस्तित्व) धारणसमर्थात् षष्ठचन्तात् ढक् । ढ़स्थाने एय् आदेशे, आदिवृद्धिः । इलोपे, कापेयं कर्म चाञ्चल्यम् । ज्ञातेः = भाईबन्धु जाति, विरादरीका कर्म परस्पर मेल जोल सहयोग बन्धुत्व आदि ज्ञातेयं है । षष्ठ्यन्तबन्धुत्वधारणसमर्थज्ञातिशब्दात् भावे कर्मणिअर्थे ढक् आदिपूर्ववत् (९) षष्ठचन्तपत्यन्त (पतिशब्द अन्तमें हो) और पुरोहितादिगणपठित शब्दसे भाव कर्म अर्थे यक् । सेनापतेः = देशरक्षकस्य योद्धुः स्वामिनः भाव. कर्मवा देश रक्षणक्रिया षष्ठ्यन्त सेनापतिशब्दात् पत्यन्तसूत्रेण यक् । कित्वात् कितिचेति आदिवृद्धिः अन्त्य इकारलोपे । सैनापत्यम् । पुरोहितस्य अग्रे-अग्रे धर्मोपदेशेन हितकारकस्य कर्म (द्विजमार्गप्रदर्शनं सन्ध्यावन्दनयज्ञादि) क्रियाभावः (धर्मोपदेशत्वं सदाचारस्य) इति विग्रहे षष्ठ्यन्तपुरोहितशब्दात् भावे, कर्मणि अर्थे उक्तसूत्रेण यक् आदि वृद्धि अलोपे पौरोहित्यम् । पुरोहितजीका धर्म (क्रियाकलाप) इस प्रकरणमें विशेषण और क्रियाअर्थ प्रधान माना गया । प्रकृत्यर्थं यद्यपि विशेष्य (प्रधान) है ; तथापि विशेषण प्रत्ययार्थ ही व्यवहारमें प्रधानरूपसे दीखता है । इति । प्रभाकर्यां भावकर्मार्थाः त्वतलोरधिकाराः ।

अथभावनाद्यर्थकाः—अथ=इस प्रकरण में भवन=उत्पत्ति का स्थान अर्थः । आदिपद से विकारः, अस्य सञ्जातं प्रमाण, परिमाण, अवयव, अधीते, कृतं पूर्वम्, इष्टः, आदि अर्थ शब्दसाधुत्व में सहयोगी दिखायें जायेंगे ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भवनाथकाः

११६० धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५ । २ । १ । भवत्यस्मिन्निति भवनम् । मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् । १ व्रीहिशाल्योर्ढक् ५ । २ । २ । व्रैहेयम् । शालेयम् । २ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ५ । २ । २३ । ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशः, विकारेऽर्थे खञ् च निपात्यते । दुह्यत इति दोहः=क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारः-हैयङ्गवीनम्=नवनीतम् । ३ तदस्य

(११६०) धान्यानां=मूङ् मोती, मक्का, मटर गोधूम, गन्ना आदि उत्पत्ति की भवने=अन्न उत्पत्ति के लिए प्रसिद्ध खेतवाचक शब्द से क्षेत्र अर्थ में खञ् प्रत्यय हो । भवति अस्मिन्निति भूधातु से अधिकरण अर्थ में ल्युट् भवनम् उत्पत्ति स्थानं, यथा—मुद्गनां भवनं क्षेत्रम् (मूङ् उत्पादनप्रधान खेत) मौग्द्रीनं हैं । षष्ठयन्त उत्पाद्यउत्पादनसमर्थं मुद्गशब्दात् क्षेत्रमित्यर्थे (भवन शब्द का क्षेत्र अर्थ है) धान्यानां भवने सूत्रेण खञ् अनुबन्धलोपे, खस्थाने (ईन्) आदेशे आदिवृद्धिः अलोपे रूपम् । चणकानां भवनं क्षेत्रं चाणकीनम् । यावीनम् । कालायकीनं, तिलानां भसनं क्षेत्रं तैलीनं, यवानां यावक्यं सर्षपाणां भवनं क्षेत्रं सार्षपीणम् । अववीनम्=तीसीका खेत । (१) षष्ठ्यन्त हो, और समर्थ हो । उत्पादन-समर्थ व्रीहि (धान्य) शाली (साठी) भवनं क्षेत्रं (धान उत्पत्ति प्रधान खेत अर्थ को) व्रैहेयं षष्ठ्यन्त उत्पादन समर्थ व्रीहिशब्दात् क्षेत्रे अर्थे ढक् । ढस्थाने (एय्) आदेशे आदिवृद्धिः । इकारलोपे । एवं शालीनां भवनं क्षेत्रं (साठी उत्पादन प्रधान खेत) इत्यर्थे ढक् आदि शालेयम् इति भवनार्थे प्रत्ययाः । (२) अथ (सम्बन्धित) ह्योगोदोह शब्द के स्थान में हियङ्गु आदेश हो । विकार अर्थ हो तो । खञ् प्रत्यय निपातन से हो, संज्ञायां=संज्ञा अर्थ होने पर । दुह्यते इति दोहः । (जो दुहा जाय वह दूध) क्षीरं ह्यः=कल, गोदोह (गाय दूध का विकार) विकृतकार्य घी, दही, मक्खन दुह (प्रकरणे) धातोः कर्मणि घञ् । एक दिन पहले के दूध का विकार मक्खन घी (अनेक दिन पहले का दूध का विकार ग्राह्य नहीं है) हियङ्गु ङस् शब्दात् विकारे अर्थे 'ख' प्रत्यये खस्य 'ईन' आदेशे अकारस्य गुणे (ओर्गुणः) अवादेशे आदिवृद्धिः तद्धितान्तत्वात् विभक्तिकार्ये । हैयङ्गवीनम् । अमरकोष में यत्वं हैयङ्गवीनं स्यात् ह्योगोदोहोद्भवं घृतं । हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् । यह निपातन सूत्र है ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सञ्जातं तारिकादिभ्य इतच् ५।२।३६। तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं–नभः। पण्डितः। आकृतिगणोऽयम्। ४ प्रमाणे द्वयसज्-दघ्नञ्-मात्रचः ५।२।३७। तदस्येत्यनुवर्तते। ऊरु प्रमाणस्य–ऊरुद्वयसम्। ऊरुदघ्नम्। ऊरुमात्रम्। ११६५ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९।

---

(३) तदस्य तेभ्यः प्रथमान्तेभ्यः तारकादिभ्यः=प्रथमान्त प्रातिपदिक अर्थ में विद्यमान तारकादि गणपठित शब्द से अस्य सञ्जातम्=इसका हो गया। जो पहले नहीं था अब हो गया। जैसे—वृद्धि नहीं थी अब हो गयी। इस अर्थ का बोधक इतच् हो। च इत् तारकाः (तारागण) सञ्जाताः अस्य (हो गये हैं इसके) वह नभ=आकाश तारकितं है। रात में तारे निकल आये ऐसा आकाश। प्रथमान्त नभ, नभत्व, पुंस्त्व पुंस्त्वत्व नियतप्रातिपकार्थं में विद्यमान तारकाः अस्य सञ्जातं अर्थं में इतच्। भसंज्ञा यस्येति च अलोपे पण्डा=सदसद् विवेकनी बुद्धिः (सत्य असत्य, उचित-अनुचित, उपयोगी, अनुपयोगी, अर्थ निर्णय करने वाली बुद्धिको पण्डा कहते हैं) सा सञ्जाता अस्य वह निर्णयात्मिका बुद्धि हो गयी हो जिसकी वह पण्डितः। प्रथमान्त पण्डाशब्दात् अस्य सञ्जातम् अर्थें इतच्, (इत) आलोपे, तद्धितादिकार्यें विवेकी, बुद्धिमान, कुशल। इसी प्रकार लज्जा सञ्जाता अस्येति लज्जितः। तृषा (प्यास) सञ्जाता अस्य इति तृषितः। पुष्पं सञ्जातं अस्याः पुष्पिताः स्त्रीः। फलिता (लता) पुलकं सज्जातम् अस्य पुलकितो भक्तः। रोमाञ्चितः। आकृतिं दृष्ट्वा गणो नेयः। इतच्प्रत्यय दर्शनमात्रसे तरकादिगणमें ग्रहणकर ले। (४) प्रमाणे=मात्रा, मापदण्ड इयत्ता, इसका इतना ही प्रमाण है। इस अर्थमें वर्तमान प्रथमान्त (प्रातिपदिकार्थवाचकशब्दसे द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् ये तीन प्रत्यय हों तीनोंका मात्रा निश्चित इयत्ता) अर्थ है। 'तदस्य' की अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे आती है। प्रमेय अर्थमें प्रमाणशब्दसे तीनों प्रत्यय हों। मात्रच् प्रत्यय परिच्छेदक मात्रमें होता है। तराजू दण्ड, कटि, मात्रअर्थं है। अद्योद्वौ, उर्ध्वमाने एव। प्रथमदो प्रत्यय उर्ध्वमानमें होते हैं। प्रथमश्च द्वितीयश्चउर्ध्वमाने मतोमम, ऊपरभाग या उठाकर जो मात्रा, प्रमाण, वोला जाय वह ऊर्ध्वमान है। यथा—उरुः प्रमाणम् अस्य। जङ्घातक जलका जमाव है। यहाँ उरुशब्द प्रमाण अर्थमें होकर प्रथमान्त शब्दसे द्वयसच् और दघ्नच् प्रत्यय हुए। उरुद्वयसम्। उरुदघ्नम्। कटिमात्रम् (कमरतक पानी है) प्रत्यय होकर विभक्तिकार्य हुए। पञ्चसेटकं प्रमाणम् अस्य पञ्चसेटक मात्रम्। मणमामम्। कियन्मानं जलं विप्र-जामदघ्नं नराधिप। कितनाजल है विप्र घुटनेतक। ..

(११६५) परिमाणोपाधिक प्रथमान्त यत् तत्, एतत् शब्दसे अस्य अर्थमें

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

यत् परिमाणमस्य—यावान्। तावान्। एतावान्। ६ किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०। आभ्यां वतुप् स्यात्। ७ इदं किमोरीश्की: ६।३।९०। दृग्दृशवतुषु इदमइश किमः की स्यात् इयान् कियान्।

वतुप् (उप) लुप्येते (वत्) हो। यत्परिमाणमस्य—जितनीमात्रा हो इसका। अर्थात् जितना अर्थमें यत्शब्दात् प्रथमान्तात् परिमाण (अनिश्चितमात्रा) अर्थमें वतुप्=वत्। यत्शब्दसे वत्प्रत्ययका अनिश्चितमात्रा तद्धितार्थः। जितनाभी दें। यत्के तको (आ सर्वनाम्नः) से आकार यावत् शब्दं तद्धितान्तं मत्वा प्रा० संज्ञा पुलिङ्गे प्रथमायाः एकवचने सुविभक्तिपरे। उकार इत् होनेसे उगिदचां सूत्रसे नुम्। अत्वसन्तस्य उपधादीर्घे यावान् पुरुषः तिष्ठति। तत्परिणामस्य (उतना) अनिश्चित या गर्भनिश्चित अर्थः। एतत्परिमाणम् अस्य (इतनी मात्रा है इसका) वतुप्। आत्व, नुम्, दीर्घआदिः पूर्ववत्। (६) किमिदं आभ्यां=किम्शब्द और इदम् शब्दसे वतुप् प्रत्यय हो। वो घः वतुप्के वके स्थानमें घ आदेश हो। (७) इदम् शब्दको ईश् किम् शब्दको की आदेश हो। दृग् दृश् और वतुपरे। इदम्के स्थानमें ईश आदेश, श इत्काफल अनेकाल और शित् सम्पूर्णके स्थानमें होनेके लिए। किं परिमाणमस्य। कितनी मात्रा है इसका? (कितना)। अनिश्चित मात्रा और जिज्ञासा, उत्सुकता अर्थं प्रातिपदिकार्थं है। ऐसे प्रथमान्त किं शब्दात् (अनिश्चितमात्रा) समर्थात् किमिदम्भ्यां वो'घः, इतिसूत्रेण वतुप् अनुवन्ध (उप) का लोप (वत्) व स्थाने घ घस्थाने इय् आदेशे इदंकिमोः इति कि-स्थाने की आदेशे। की इयत्। यस्येतिच ईकारस्य लोपे, वर्णसम्मेलने, तद्धितान्तत्वात् प्रथमायाः एकवचने रूपं कियान् कियन्तौ कियन्तः। कियता रुप्यकेण पुस्तकं दास्यति। इदं परिमाणम् अस्य=इतनी मात्रा है इसका (निश्चितमात्रा) प्रकृतिप्रत्ययका मिलित अर्थं है। प्रथमान्त इदम् शब्दात् परिमाणे अर्थे किमिदं सूत्रेण वतुप्=वत् (वस्थाने घः) घस्य इय् आदेशे। इदं स्थाने (इदं किमोः) सूत्रेण इश् आदेशे वतुप् परे। शित्वात् सर्वादेशः। यस्येतिच इकारलोपे (प्रत्ययमात्रं) पुलिङ्गे एकवचने इयान्। प्रच्छन्न=निश्चित मात्रा। इयन्तौ, इयन्तः। नुम्, सुलोप, संयोगान्तलोप। नान्तस्यं उपधादीर्घादिः पूर्ववत्। (८) सङ्ख्यायाः=अनेक संख्याका समुदाय। उस समुदायमें जितने अवयव (सङ्ख्याभेद) हों तब अवयव (गिनी हुई संख्या) अर्थमें वर्तमान संख्यावाचक शब्दसे (प्रथमान्त प्रातिपदिकार्थवाचकशब्द) से अवयविरुपे अर्थे (समुदायरूप अर्थमें) तयप् हो।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८ संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२। पञ्च अवयवा अस्य—पञ्च-तयम्। ९ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा ५।२।४३। द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम्, त्रितयम्।

११७० उभादुदात्तो नित्यम्।५।२।४४। उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स आद्युदात्तः। १ तस्य पूरेण डट् ५। २। ४८। एकादशानां पूरण—एकादशः।

समुदाय अवयवी है, उसमें अनेक सङ्ख्या अवयव हैं। परन्तु अवयवी (समुदाय) में कहीं अवयव भेद अनुद्भूत अप्रकट हो। यथा—मुनित्रयं त्रयो अवयवाः यस्य (तीन अवयव हैं जिसके) यहाँ मुनिमात्रका ज्ञान हो रहा है। वे मुनि कौन हैं यह अनुद्भूत है। कही अनुद्भूत अवयव समुदाय। यथा—उभये देव मनुष्याः इस समुदाय में निश्चित सङ्ख्या अनुद्भूत है। पञ्चअवयवाः=पाँच सङ्ख्या अस्य (इस समुदाय के)। उसको पञ्चतयम्। प्रथमान्त पञ्चन् शब्द से (गिनो हुई सङ्ख्या समुदाय अर्थ में) सङ्ख्यायाः अवयवे अर्थे तयप् पञ्चतयम् (पञ्च सङ्ख्याक समुदाय) सप्त अवयवाः अस्य सप्ततयं, चत्वारः अवयवाः अस्य चतुष्टयम्। (९) द्वि और त्रि शब्द से परे तयप् के स्थान में अयच् आदेश विकल्प से हो। यथा—द्वौ अवयवौ अस्य (दो अवयव, सङ्ख्या है जिस समुदायका। वह द्वयम्। प्रथमान्त द्विशब्दात् सङ्ख्याः अवयये अर्थे तयप। द्वित्रिभ्यां परस्य तयप स्थाने अयच् वा। द्वि+अय्। यस्येति इकार लोपे, वर्णसम्मेलनने द्वयम्। यदा अयच् न भवति, तदा द्वितयम्। त्रयो अवयवाः अस्य तीन अवयव सङ्ख्या है इसके वह समुदाय त्रयम्। प्रथमान्त त्रिशब्दात् तयप् तस्य स्थाने अयच्। यदा अयच् न भवति तदा त्रितयम्।

(११७०) उभात्—उभ शब्द से परे तयप् के स्थान में अयच् हो सच=वह अयच् आदि उदात्त भी हो नित्य हो। उभौ अवयवौ अस्य दो सङ्ख्या है इसकी वह समुदाय उभयम्। प्रथमान्त उभशब्दात् अवयव अर्थे अयच् अन्त्य अकारलोपे रुपम्। (१) तस्य षष्ठ्यान्त सङ्ख्यावाचक शब्द से पूर्ण अर्थ में डट्प्रत्यय। ड ट इत् 'अ' शिष्यते पूर्यते अनेन इति पूरणः (पूरा किया जाय जिस साधन से) पॄपालन पूरणयो करणे ल्युट्। जिस सङ्ख्या से पाचवीं छठी सङ्ख्या पूर्ण मानी जाय, वह पूरणी सङ्ख्या है। यथा—रामष्षष्ठः राम छठें हैं। राम सङ्ख्यय (सङ्ख्याका बोध्य विषय) है। षष्ठः शब्द पुरणी सङ्ख्या है। अतः सङ्ख्येय प्रथमान्त शब्द से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय हो। इति सूत्रार्थः। जिस सङ्ख्यावाची शब्द से प्रत्यय का विधान हो, उसीका प्रवृत्ति निमित्त जाति, धर्म, पञ्चत्व) आदि पूरणप्रत्ययके अर्थ है। इतिनिष्कर्षः। भाव यह है कि पूरण अर्थ में, प्रत्यय सङ्ख्या-वाचक एक शब्द से नहीं होते। किन्तु द्वित्रिचतुरश्च इत्यादि सङ्ख्यावाचक शब्द

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२ नान्तादसंख्यादेर्मट् ५ । २ । ४९ । डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः-पञ्चमः । नान्तात्किम्—३ ति विंशतेर्डिति ६ । ४ । १४२ । विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे विंशः असंख्यादेः किम्-एकादशः । ४ षट्-कति-कतिपय-चतुरां थुक् ५ ।

से ही डट् प्रत्यय हों । क्योंकि एकत्व सङ्ख्याको पूरणी सङ्ख्या की अपेक्षा नहीं होती । द्वितीयादि को अपेक्षा होती है । क्योंकि एकत्व द्वित्व आकि सङ्ख्या के बिना द्वित्व त्रित्व आदि सङ्ख्यायें अपूर्ण विफल रहती हैं । डट् प्रत्यय का अवयव अर्थ है । पूरणप्रत्ययान्त एकादशानां (११ सङ्ख्याका पूरणः=पूर्ण करने वाला एकादशः रुद्रः (हनुमान्) षष्ठ्यन्त सङ्ख्यावाचक एकादशन् शब्दात् पूरणे अर्थे डट् प्रत्ययः (डट् इत्) (अ) शेष । जहाँ डित् हैं वहाँ टि (अन्) का लोप मान्य है । वर्ण सम्मेलने आदि एकादशः । दशानां पूरणः दशः । द्वादशानां पूरणः द्वादशः । वारहवां सूर्य द्वाविंशतीनां पूरणः द्वाविंश । पञ्चत्रिंशतां पूर्णतः पञ्चत्रिंशः चतुष्पञ्च शतां पूर्णः चतुष्पञ्चाशत् । पञ्चषष्ठीनां पूरण (२) नान्तात्=न अन्त में हो सङ्ख्यावाचक होते हुए असङ्ख्यादेः=सङ्ख्यावाचक शब्द आदि में न हो । ऐसे शब्दों से परे डट्को मट्=म आगम हो । ट इत् (आदि विधायक) अउच्चारणार्थक केवलं 'म' शिष्यते पञ्चनां पूरणः (पाण्डवों में) पाँचवी सङ्ख्याको पूरण करने वाला पञ्चम नकुलः । षष्ठ्यन्त=सम्बन्धित अर्थ प्रतिपादन् समर्थ नकारान्त सङ्ख्यावाचक पञ्चन्शब्दात् पूरणे अर्थे डट् प्रत्यये (नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्) सूत्रेण डट् स्थाने मट् आगमे अनुवन्ध लोपे 'पञ्चन्' नकारस्य प्रतिपादिकान्त लोपे पञ्चमः । दशानां पूरणः । नान्तात् किम् ? सूत्र में नान्त सङ्ख्यावाचक शब्द से डट् को मट् क्यों ? इसलिएकि जो नान्त नहीं हैं उससे परे डट्को मट् न हो । यथा— विंशतेः पूरणः=बीसवीं सङ्ख्याको पूर्ण करने वाला विंशः पुरुषः । षष्ठ्यन्त विंशतेः पूरणः इति विग्रहे तस्य पूर्णे इति डट् प्रत्यये ततः (३) विंशतेः=विंशतिशब्द के भसंज्ञक तिका लोप हो डित्प्रत्यय परे । सम्भवे भसंज्ञायाँ तिशब्दस्य लोपे, लोपविधान सामर्थ्येन तिमात्रस्य लोपे विंश+अ इति दशायां यस्येतिच अकारस्य लोपे प्राप्ते असिद्धवदत्राभात्) इति तिलोपस्य असिद्धेः लोपोऽपि न भवति । विंशः । बीसवीं सङ्ख्या । पूर्व सूत्र में नान्त न कहते तब यहाँ भी मट् हो जाता । असङ्ख्यादेः किम् मट् विधायक सूत्र में सङ्ख्यावाचक शब्द आदि में न हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि एकादशः में सङ्ख्यावाचक एक शब्द आदि में है । द्वादशः में द्वि है । पञ्चदशः में पञ्च है । यहाँ मट् न हो अतः असङ्ख्यादिशब्द दिया । त्रिंशः चत्वारिंशः त्रयस्त्रिंशः (४) षष् (छ सङ्ख्या) कति=कितना अनिश्चित सङ्ख्या कतिपय कुछ सङ्ख्या, चतुर इन शब्दों से परे डट् प्रत्ययको थुट् (उक्-इत्) 'थ' आगम हो यथा—षण्णांपूरणः छठवीं सङ्ख्याका पूरक, षष्ठः राष्ट्रपतिः छठाँ अत्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२ । ५१ । एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः—षष्ठः । कतिथः । कतिपय-शब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकात् डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ।

११७५ द्वेस्तीयः ५ । २ । ५४ । डटोऽपवादः । द्वयोः पूरणो—द्वितीयः । ६ त्रेः सम्प्रसारणं च ५ । २ । ५५ । तृतीयः । ७ श्रोत्रियञ्छन्दोऽधीते ५ । २ ।

षष्ठ्यन्त षष्शब्दात् पूरणे अर्थे (प्रकृति का छठा अर्थ है, उसका पूरक प्रत्यय का अर्थ है) डट् प्रत्यये तस्य स्थाने 'षट्कति' सूत्रेण थुक्=थ आगमे, यदागमास्त-द्गुणीभूताः जो आगम होते हैं वे आगमी के अर्थ गुण धर्म में शामिल हैं । तब थुक्का भी आगम ही अर्थ होगा । षष् + थ, ष्टुत्वे षष्ठः । कतीनां पूरणः (कितनी सङ्ख्यका पूरक अर्थ में) **कतिथः** । डट् थुक् पूर्ववत् । कतिपयानां पूरणः कुछ सङ्ख्याका पूरक अर्थ में डट् तस्य स्थाने थुक् कतिपयथ । ननु षट्कतिपय चतुरां थुक् सूत्रेण डट् स्थाने थुक् आगमः क्रियते । डट् सङ्ख्या वाचकात् भवति । कतिपय शब्द सङ्ख्यावाचक नहीं है डट् कैसे ? अतः मूल में कहा, यद्यपि कतिपय-शब्दसङ्ख्यावाची नहीं है इसलिए सूत्र में कतिपय शब्द को थुक् का विधान व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि **कतिपयानां पूरणः अर्थ में भी डट् प्रत्यय होता है । कतिपयथः** । चतुर्णां **चतुर्थ**, चौथीसङ्ख्या का पूरक चतुर्थः । शत्रुघ्नः । षष्ठ्यन्त चतुरशब्दात् डट् तस्य थुक आगेमे । छ प्रत्यय करने पर आदि अक्षर लोप होकर **तूरीयः** । यत्प्रत्यये तूर्यः ।

(११७५) **षष्ठ्यन्त** सङ्ख्यावाचक द्विशब्द से पूरण अर्थ में **तीय** प्रत्यय हो डट् प्रत्यय को बाधकर । द्वयोः पूरणः दूसरी सङ्ख्याका पूरक द्वितीयः बलरामः । षष्ठ्यन्त द्विशब्दात् पूरणे अर्थे प्राप्तं डटं बाधित्वा । **द्वस्तीयः** इति तीय प्रत्यये **द्वितीयः** दूसरी सङ्ख्याका पूरक (६) **त्रेः** षष्ठ्यन्त त्रिशब्द से पूरण अर्थ में **तीय** प्रत्यय हो । **च**=प्रकृति को सम्प्रसारण भी हो । यथा—त्रयाणां पूरणः **तृतीयः** (शिवचक्षु: तीसरी सङ्ख्याका पूरक षष्ठ्यन्त त्रिशब्दात् तीसरी सङ्ख्या के पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय । प्रकृति (त्रि) शब्दों में र को सम्प्रसारण ऋ हुआ । सम्प्रसारणाच्च इति इकाररस्य पूर्व रूपे । अब तक सभी सङ्ख्यायें पूरण अर्थ में होने से पूरणी सङ्ख्या मानी गयी । इस रूपमें दृष्टान्त भी मिलते हैं । अप्पूरणीप्रियादिषु । **न पूरणीणां** समुपैति सङ्ख्या । एकविंशतीतां पूरणः एक **विंशः** । **एकविंशतितमः** (इक्कीसवीं मुद्रा । त्रिशतां पूरणः **त्रिशत्तमः** । **षष्ठितमः** अशीतितमाः । नवतितमः शततमः (सौवां) इत्यादि । (६) **श्रोत्रियन्**=द्वितीयान्त छन्दस् शब्द से **अधीते**=पढ़ता है अर्थ में घन् प्रत्यय । प्रकृति (छन्दस्) के स्थान में **'श्रोत्र'** आदेश निपातनं से हो । **छन्दो अधीते** वेद पढ़ता है अर्थ में श्रोत्रियम् शब्द निपातन से सिद्ध है । **यः छन्दो अधीते, वेदं पठति स श्रोत्रियः ।** द्वितीयान्त छन्दस् शब्द से अधीते=

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

-२ नान्तादसंख्यादेमंट् ५।२।४६। डटो मडागमः। पञ्चानां पूरणः-पञ्चमः।
नान्तात्किम्—३ ति विंशतेर्डिति ६।४।१४२। विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे विंशः असंख्यादेः किम्-एकादशः। ४ षट्-कति-कतिपय-चतुरां थुक् ५।

से ही डट् प्रत्यय हों। क्योंकि एकत्व सङ्ख्याको पूरणी सङ्ख्या की अपेक्षा नहीं होती। द्वितीयादि को अपेक्षा होती है। क्योंकि एकत्व द्वित्व आकि सङ्ख्या के बिना द्वित्व त्रित्व आदि सङ्ख्यायें अपूर्ण विफल रहती हैं। डट् प्रत्यय का अवयव अर्थ है। पूरणप्रत्ययान्त एकादशानां (११ सङ्ख्याका पूरणः=पूर्ण करने वाला एकादशः रुद्रः (हनुमान्) षष्ठ्यन्त सङ्ख्यावाचक एकादशन् शब्दात् पूरणे अर्थे डट् प्रत्ययः (डट् इत्) (अ) शेष। जहाँ डित् हैं वहाँ टि (अन्) का लोप मान्य है। वर्ण सम्मेलने आदि एकादशः। दशानां पूरणः दशः। द्वादशानां पूरणः द्वादशः। बारहवां सूर्य द्वाविंशतीनां पूरणः द्वाविंश। पञ्चत्रिशंतां पूर्णतः पञ्चत्रिंशः चतुष्पञ्चशतां पूर्णः चतुष्पञ्चाशत्। पञ्चषष्ठीनां पूरण (२) नान्तात्=न अन्त में हो सङ्ख्यावाचक होते हुए असङ्ख्यादेः=सङ्ख्यावाचक शब्द आदि में न हो। ऐसे शब्दों से परे डट्को मट्=म आगम हो। ट इत् (आदि विधायक) अउच्चारणार्थक केवलं 'म' शिष्यते पञ्चनां पूरणः (पाण्डवों में) पाँचवी सङ्ख्याको पूरण करने वाला पञ्चम नकुलः। षष्ठ्यन्त=सम्बन्धित अर्थ प्रतिपादन् समर्थ नकारान्त सङ्ख्यावाचक पञ्चन्शब्दात् पूरणे अर्थे डट् प्रत्यये (नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्) सूत्रेण डट् स्थाने मट् आगमे अनुबन्ध लोपे 'पञ्चन्' नकारस्य प्रतिपादिकान्त लोपे पञ्चमः। दशानां पूरणः। नान्तात् किम्? सूत्र में नान्त सङ्ख्यावाचक शब्द से डट् को मट् क्यों? इसलिएकि जो नान्त नहीं हैं उससे परे डट्को मट् न हो। यथा—विंशतेः पूरणः=बीसवीं सङ्ख्याको पूर्ण करने वाला विंशः पुरुषः। षष्ठ्यन्त विंशतेः पूरणः इति विग्रहे तस्य पूर्णे इति डट् प्रत्यये ततः (३) विंशतेः=विंशतिशब्द के भसंज्ञक तिका लोप हो डित्प्रत्यय परे। सम्भवे भसंज्ञायाँ तिशब्दस्य लोपे, लोपविधान सामर्थ्येन तिमात्रस्य लोपे विंश+अ इति दशायां यस्येतिच अकारस्य लोपे प्राप्ते असिद्धवदत्राभात्) इति तिलोपस्य असिद्धेः लोपोऽपि न भवति। विंशः। बीसवीं सङ्ख्या। पूर्व सूत्र में नान्त न कहते तब यहाँ भी मट् हो जाता। असङ्ख्यादेः किम् मट् विधायक सूत्र में सङ्ख्यावाचक शब्द आदि में न हो ऐसा क्यों कहा? इसलिए कि एकादशः में सङ्ख्यावाचक एक शब्द आदि में है। द्वादशः में द्वि है। पञ्चदशः में पञ्च है। यहाँ मट् न हो अतः असङ्ख्यादिशब्द दिया। त्रिंशः चत्वारिंशः त्रयस्त्रिंशः (४) षष् (छ सङ्ख्या) कति=कितना अनिश्चित सङ्ख्या कतिपय कुछ सङ्ख्या, चतुर इन शब्दों से परे डट् प्रत्ययको थुट् (उक्-इत्) 'थ' आगम हो यथा—षण्णांपूरणः छठवीं सङ्ख्याका पूरक, षष्ठः राष्ट्रपतिः छठाँ अत्र

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

२ । ५१ । एषां थुगागमः स्याड्डटि । षण्णां पूरणः–षष्ठः । कतिथः । कतिपय-शब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकात् डट् । कतिपयथः । चतुर्थः ।

११७५ द्वेस्तीयः ५ । २ । ५४ । डटोऽपवादः । द्वयोः पूरणो–द्वितीयः । ६ त्रेः सम्प्रसारणं च ५ । २ । ५५ । तृतीयः । ७ श्रोत्रियञ्छन्दोऽधीते ५ । २ ।

षष्ठ्यन्त षष्शब्दात् पूरणे अर्थे (प्रकृति का छठा अर्थ है, उसका पूरक प्रत्यय का अर्थ है) डट् प्रत्यये तस्य स्थाने 'षट्कति' सूत्रेण थुक्=थ आगमे, यदागमास्त-द्गुणीभूताः जो आगम होते हैं वे आगमी के अर्थ गुण धर्म में शामिल हैं । तब थुक्का भी आगम ही अर्थ होगा । षष्+थ, ष्टुत्वे षष्ठः । कतीनां पूरणः (कितनी सङ्ख्यका पूरक अर्थ में) **कतिथः** । डट् थुक् पूर्ववत् । कतिपयानां पूरणः कुछ सङ्ख्याका पूरक अर्थ में डट् तस्य स्थाने थुक् कतिपयथ । ननु षट्कतिपय चतुरां थुक् सूत्रेण डट् स्थाने थुक् आगमः क्रियते । डट् सङ्ख्या वाचकात् भवति । कतिपय शब्द सङ्ख्यावाचक नहीं है डट् कैसे ? अतः मूल में कहा, यद्यपि कतिपय-शब्दसङ्ख्यावाची नहीं है इसलिए सूत्र में कतिपय शब्द को थुक् का विधान व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि **कतिपयानां पूरणः अर्थ में भी डट् प्रत्यय होता है । कतिपयथः** । चतुर्णां **चतुर्थ**, चौथीसङ्ख्या का पूरक चतुर्थः । शत्रुघ्नः । षष्ठ्यन्त चतुरशब्दात् डट् तस्य थुक आगेमे । छ प्रत्यय करने पर आदि अक्षर लोप होकर **तूरीयः** । यत्प्रत्यये **तूर्यः** ।

(११७५) **षष्ठ्यन्त** सङ्ख्यावाचक द्विशब्द से पूरण अर्थ में **तीय** प्रत्यय हो डट् प्रत्यय को बाधकर । द्वयोः पूरणः दूसरी सङ्ख्याका पूरक द्वितीयः बलरामः । **षष्ठ्यन्त** द्विशब्दात् पूरणे अर्थे प्राप्तं डटं बाधित्वा । **द्वस्तीयः** इति तीय प्रत्यये **द्वितीयः** दूसरी सङ्ख्याका पूरक (६) **त्रेः** षष्ठ्यन्त त्रिशब्द से पूरण अर्थ में **तीय** प्रत्यय हो । **च**=प्रकृति को सम्प्रसारण भी हो । यथा—त्रयाणां पूरणः तृतीयः (शिवचक्षु: तीसरी सङ्ख्याका पूरक षष्ठ्यन्त त्रिशब्दात् तीसरी सङ्ख्या के पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय । प्रकृति (त्रि) शब्दों में र को सम्प्रसारण ऋ हुआ । सम्प्रसारणाच्च इति इकाररस्य पूर्व रूपे । अब तक सभी सङ्ख्यायें पूरण अर्थ में होने से पूरणी सङ्ख्या मानी गयी । इस रूपमें दृष्टान्त भी मिलते हैं । अप्पूरणीप्रियादिषु । **न पूरणीणां** समुपैति सङ्ख्या । एकविंशतीतां पूरणः एक **विंशः** । **एकविंशतितमः** (इक्कीसवीं मुद्रा । त्रिशतां पूरणः **त्रिशत्तमः** । **षष्ठितमः** अशीतितमाः । नवतितमः शततमः (सौवां) इत्यादि । (६) **श्रोत्रियन्**=द्वितीयान्त छन्दस् शब्द से **अधीते**=पढ़ता है अर्थ में घन् प्रत्यय । प्रकृति (छन्दस्) के स्थान में **'श्रोत्र'** आदेश निपातनं से हो । **छन्दो अधीते** वेद पढ़ता है अर्थ में श्रोत्रियम् शब्द निपातन से सिद्ध है । **यः छन्दो अधीते, वेदं पठति स श्रोत्रियः** । द्वितीयान्त छन्दस् शब्द से अधीते=

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

८४। श्रोत्रियः। वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः। ८ पूर्वादिनिः ५। २। ८६। पूर्वं कृत-मनेन पूर्वी। ९ सपूर्वाच्च ५। २। ८७। कृतपूर्वी।

११८० इष्टादिभ्यश्च ५। २। ८८। इष्टमनेन इष्टी। अधीती।

इति भावनाद्यर्थकाः।

पढ़ने वाला अर्थ में घन=घ। छन्दस्‌को श्रोत्र आदेश, श्रोत्र+घ। घस्थाने इय् आदेशे, अकार लोपे, श्रोत्रियः (वेदपाठी) 'वा' इत्यनुवृत्तेः = इस सूत्र में विकल्पार्थक वा अनुवर्तते। विकल्प से घन। निपातनके अभावपक्ष में छन्दस् शब्द से अधीते अर्थ में अण् और आदिवृद्धिः छान्दसः। (८) द्वितीयान्त पूर्व शब्द से अनेन तृतीयान्त समर्थ से कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यय पूर्वादिनिः। विग्रह में अनेन शब्द से कर्ता रुप अर्थ, क्रिया के विना असम्भव होनेसे (कृतम्) क्रियाका अध्याहार किया। पूर्वशब्द क्रिया विशेषण है। पूर्व कृतम् अनेन (पहलेही कार्य कर लिया) इसने। द्वितीयान्त क्रिया विशेषण पूर्वशब्द से इनिप्रत्यय हुआ। भसंज्ञा अन्त्य अकारलोपे पूर्विन् प्रथमायाः एकवचने पूर्वी। पूर्वं भुक्तम् अनेन पूर्वीशब्द का वास्तविक अर्थ (पहले ही क्रिया करलेनेवाला) पूर्वं पठितम् अनेन पूर्वी (९) सपूर्वशब्दसे अनेन कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यय हो। कृतं पूर्वम् अनेन (पहले ही कार्य कर लिया इसने) कृतपूर्व शब्दात् कर्तरि अर्थे सपूर्वाच्च इनि प्रत्यये। अविवक्षित कर्मक कृधातु से भाव अर्थ में क्तप्रत्यय, कृतं पूर्वम् अनेन इति विग्रहे (सहसुपा) इति समासे ततः। किं-कृतमिति आकांक्षायाम् आसनादेः अध्याहारः आसनं कटं कृतमित्यादि। एवं श्रुतं पूर्वम् अनेन श्रुतपूर्वी। भुक्तं पूर्वम् अनेन भुक्तपूर्वी। भोजनं। दण्डिनं गतं पूर्वम् अनेन, गतपूर्वी (ग्रामः) दृष्टं पूर्वम् अनेन दृष्टपूर्वी मानसमन्दिरम् आदि।

(११८०) इष्ट=प्रथमान्त इष्ट आदि शब्दों से अनेन इष्टमादिक्रिया के कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यय हो। यज् धातोः भूते भावे-क्त सम्प्रसारणे षत्व इष्ट=यज्ञ किया इसने किया। प्रथमान्त इष्ट आदि शब्द से यज्ञ क्रियाके कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यये, यस्येतिच अलोपे। इष्टिन् शब्दात् प्रथमायाः एक वचने इष्टी। यज्ञ कर चुका है। अधीतम् अनेन अधीती=जिसने पढ़ लिया है। अधीत शब्दात् कर्तरि अर्थे इन् आदि।

इति प्राग्भवनीयाः भवनाद्यर्थका प्रत्ययाः।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ मत्वर्थीयाः

१ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५ । २ । ९४ । गावोऽस्यास्मिन् वा सन्ति–

अथमत्वर्थीयाः—भवन आदि अर्थों में प्रत्यय समाप्त्यनन्तर **मत्वर्थे भवाः,**
मत्वर्थीया, मतुप्प्रत्ययक अर्थ में होने वाले प्रत्यय मत्वर्थीय हैं। मतुप्प्रत्यका अर्थ
भूम, निन्दा, प्रशंसासु, नित्य योगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्ति विवक्षायां, भवन्ति
मतुबादय। भूमा=वहुत, ढेर, अधिकांश, अर्थः (यथा—गोमान् कहने से बहुत
गाय वाला अर्थ में तात्पर्य हो तभी मतुप् होगा) साधारण व्यक्ति हो गोमान् हो
सकता है। चक्रवर्ति नरेन्द्र लाखों गाय रखकर भी गोमान् नहीं हो सकते। **निन्दा-**
जीभ लोढ़ने वाली **ककुदा वर्तिनी कन्या।** निन्दा में इनि प्रत्यय **प्रशंसा-रुपवान्**
प्रशंसनीय रुपवाला। यहाँ मतुप्प्रत्यय रुपकी प्रशंसा अर्थ व्यक्त करता है। जो रुप
प्रशंसनीय नहीं है उसे रुपवान नहीं कहेंगे। सभी मूर्तवस्तु रुपवान् हैं जिस अर्थ में
प्रत्यय हो महत्व उसीका। **नित्ययोग**—(सदासम्बन्ध) **क्षीरिणो** वृक्षाः क्षीरमस्ति
अस्मिन् अस्य वा दूध से भरे, वृक्ष का दूध के साथ नित्य सम्बन्ध अर्थ प्रत्ययार्थ है।
गन्धवती पृथ्वी का गन्ध के साथ नित्य स० **अतिशयान**—उदरिणी कन्या। अतिशयं
लम्बायमानम् उदरं यस्याः, लम्बोदरी (तुन्दिल पेट्) अतिशय अर्थ मतुबर्थ है।
संसर्ग=सम्बन्धः दण्डमस्ति अस्य दण्डी (दण्डधारी) दण्डका दण्डधारी के साथ
संयोग सम्बन्ध ही प्रत्ययार्थ है। ये मत्वर्थ कहलाते हैं। इन्हीं अर्थों में लच्, श, न,
इलच, उरच, व, इन, ठन, णिन्, ग्विन, अच् युस् आदि प्रत्ययों को समझना
चाहिए (१) **तदस्य**=तद् शब्द प्रथमान्त अर्थ बोलता है। तत् **अस्य**
अस्ति। (वह इसका है) **तद् अस्मिन् अस्ति** । इसमें है। अस्ति क्रियाका समाना-
धिकरण=समान वचन तिप्रत्ययका कर्ता अर्थ से है। उसका अन्वय जिसमें हो अर्थात्
सत्ताक्रिया का कर्तृभूत प्रथमान्त समर्थ से अस्य (इसका, सम्बन्धित) अस्मिन्
(इसमें) अधिकरण अर्थवाचक मतुप्प्रत्यय हो (उ, प्-इत्) मत् शिष्यते। इसी अर्थ
में आनेवाले सभी प्रत्यय होंगे। सूत्र में 'इति' शब्द प्रतिपाद्य विषय विशेष बोधके
लिए है। अस्ति क्रिया में अस् धातु का सत्तानुकूल व्यापारो अर्थः। तिप्रत्ययका
प्रथमपुरुष, एकवचन, और वर्तमानकाल तीन अर्थ हैं। किन्तु पुरुष और वचन
अनिवार्य नहीं हैं। किन्तु वर्तमानकाल अवश्य अनिवार्य है। मतुप्प्रत्ययके अर्थ जब
वर्तमान काल में हो। तभी प्रत्यय होगा। भूतकाल में नहीं। गावो अस्य आसन्
(इसकाल में गोमान् साधु नहीं है) गोमान् आसीत्। ऐसा प्रयोग पहले के वर्तमान
में था। उसी का व्यवहार इस समय सूचित है। गावः अस्य सन्ति। गायें इसके
पास हैं वह गोमान् है। **सन्ति शब्द** में तिप्का अर्थ कर्ता। अन्वित होने से प्रथमान्त-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

गोमान्। २ **तसौ मत्वर्थे १ । ४ । १६ । तान्त-सान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे। गरुत्मान् (३५३) वसो संप्रसारणम्। विदुष्मान्। (गुणवचनेभ्यो मतुपो**

गोपदसे अस्य अर्थ में (तदस्यास्ति) सूत्र से **मतुप्**=मत् गो+मत् शब्दः। प्रथमाया: एकबचने **गोमान्**। धनम् अस्ति अस्य=धनवान्। बलवान्, बलमस्ति अस्मिन् अधिकरण अर्थ में मतुप्। गुणा: सन्ति अस्मिन् गुणवान् इत्यादि (२) **तसौ** तान्त सान्तौ=अन्त में हो यथा **गरुत्**। स अन्त में हो यथा—**विद्वस्** ये भसंज्ञक हो, मत्वर्थ प्रत्ययपरे रहते। जिसका फल पदसंज्ञाका बाध है। पदनिमित्तककार्य नहीं होना। गरुतौ पक्षौ (पङ्खे) स्तः अस्य। गरुत्मान् (पक्षी) पङ्खवाला। यहाँ सन्ति में क्रिका अर्थ कर्ताका **समानाधिकार** (अभेद सम्बन्ध) प्रथमान्त गरुत् शब्द से अस्य=सम्बन्धित अर्थ में मतुप् हुआ। गरुत्+मत् तसौ मत्वर्थे, सूत्र से तान्तमानकर **भसंज्ञा** हुई। जिसकाफल पदसंज्ञा **न** होने से जश्त्व और (प्रत्यये भाषायां नित्यम्) से अनुनासिक न होना। **गरुत्मान्**। विद्वांसो अस्य सन्ति (विद्वान् जिससे सम्बन्धित हों। वह **विदुष्मान्**। सत्ताक्रिया कर्तृभूत प्रथमान्त समर्थ विद्वस् शब्द से अस्य अर्थ में मतुप् हुआ। सकारान्त होने से भसंज्ञा, जिसकाफल वसोः सम्प्रसारणं से सम्प्रसारण। सम्प्रसारणाच्च पूर्वरुपे रुपं **विदुष्मान्** (वा०) **गुण**=गुणवाचक शब्द से मतुप प्रत्यय का लुक् हो। **गुणे तद्वति च। प्रसिद्धः ये ये शब्दा शुक्लादयः, तेगुणवनाः तेभ्यः परस्य मतुपोलुक्**। गुण अर्थ में और गुणवान् अर्थ में प्रसिद्ध जो शब्द, उसीसे मतुप्का लुक् करना चाहिए। वही गुणवचन भी है। जैसे—शुक्ल, पीत, हरित आदि। यही गुणवाचकका लक्षण ही है। अमरकोष में गुणे **शुक्लादयः पुंसि। गुणलिङ्गस्तु** तद्वति। शुक्ल, हरित, पीत आदिशब्द गुण अर्थ में पुलिङ्ग प्रसिद्ध हैं। तद्वति= गुणका आश्रय द्रव्य के अनुसार लिङ्ग होता है। यथा—**वस्त्राणां शुक्लोगुणः। हंसः पक्षिणां।** वकानाञ्च शुक्लोंगुणः। शुद्ध गुण अर्थ में पुलिङ्ग शुक्लः पटः। शुक्ला शाटी। शक्लं वस्त्रम्। विशेष प्रधान द्रव्य (लिङ्गानुसारी गुण) हुआ। अतएव **रुपवान्** घटः इत्यत्र लुङ् न भवति। क्योंकि शुक्लं वस्त्र की तरह रुप वस्त्र नहीं होता। **गुणलक्षण**=जाति, द्रव्य, क्रिया, पारतन्त्र्यं **गुणलक्षणम्**। स्वातन्त्र्यन्तु **द्रव्यलक्षणम्**। परतन्त्रोहि गुणः। द्रव्यमाश्रयते। **सत्वेनिविशते अपैति पृथग्जातिषु दृश्यते। आधेयश्चाक्रियाजश्च, असत्वप्रकृतिर्गुणः।** सीदन्ति गुणक्रियादयः विशेषणी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

लुगिष्टः) शुक्लो गुणोऽस्यास्ति=शुक्लः पटः कृष्णः। ३ प्राणिस्थातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६। चूडालः। चूडावान्। प्राणिस्थात्किम् शिखावान्–दीपः। प्राण्यङ्गादेव, नेह–मेधावान्। ४ लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००। लोमादिभ्यः शः लोमशः=लोमवान्। रोमशः=रोमवान्। पामादिभ्यो

भवन्ति यस्मिस्तत् सत्वं, यथा—शुक्लोगुणो अस्यास्ति, (सफेद रङ्ग है इसका) पट (कपड़ा) (यहाँ गुणवाचक गुणगुणी दोनों में) समान प्रथमान्त शुक्ल शब्दात् मतुप् हुआ। उसका वार्तिक से लुक्। तब शुद्ध शुक्लशब्द (सफेद कपड़ा अर्थ में समर्थ हो गया) क्योंकि यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी भवति। पीतोगुणोऽस्यास्तीति पीतं वस्त्रम्। नीलं जलं, रक्तं पुष्पं श्वेतः केशः (३) प्राणिस्थात्= अस्ति क्रिया का कर्ता प्रथमान्त हो। प्राणिस्थ जीवके किसी अङ्गका वाचक आकारान्त शब्द से मतुप्के अर्थ में लच् प्रत्यय विकल्प से हो। चूडाशिखा (अणिशिखा) अस्य सन्ति वे चूडालः कुक्कुटः मयूरः (मुर्गामोर) चूडा प्राणिस्थ अङ्ग है, आकारान्त है अस्ति क्रियाका कर्ता भी। प्रथमान्त से लच् चूडालः। यदा 'लच्' न भवति, तदा मतुप् चूडा+मत् मादुपधायाश्च से मको व होकर चूडावान् (अरुन सिखा धुनिकान्)। सूत्रमें प्राणिस्थ क्यों कहा ? इसलिएकि अप्राणिस्थशिखाशब्द से लच् न हो। शिखावान् दीपः (दीपसिखा सम युवति तन)। मन जनि होसि पतङ्ग। यहाँ शिखा प्राणिस्थ नहीं है, अतः लच् नहीं हुआ। (वा०) प्राण्यङ्गादेव=प्राणीका मूर्तिमान् अङ्ग होना चाहिए। प्राणिवृत्ति मूर्तिमदङ्गवाचकादेव। मेधा शब्द बुद्धिका पर्याय है। मेधा अस्ति अस्य मेधावान् कुशाग्र बुद्धिवाला। मेधाशब्द आकारान्तः प्राणिस्थो अङ्गः होकर भी मूर्त अङ्ग न होने से लच् नहीं हुआ, किन्तु मतुप्प् के म को व मेधावान् ग्रीवालुः ग्रीवावान्। (४) लोमन् आदि, पामन् आदि, पिच्छ आदि, शब्दों से क्रमशः शनेलचः=श, न, इ, लच् प्रत्यय मत्वर्थ में हो, विकल्पसे लोमादिगणसे श लोमानि अस्य सन्ति (रोये बहुत हैं, इसके) वह लोमशः पुरुषः। (भल्लूकः) प्रथमान्त लोमन् शब्दात् (लोमादि) सूत्रेण मत्वर्थे शप्रत्ययये नकारस्य प्रातिपदिकान्तलोपे लोमशः। पक्षे मतुप् लोमवान्। रोमाणि अस्य सन्ति रोमशः। पामादिगणसे नप्रत्यय हो। पामः (चर्म रोगः) अस्ति अस्य

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

नः । **पामनः** । (**अङ्गात् कल्याणे**) । **अङ्गना** (**लक्ष्म्या अच्च**) । **लक्ष्मणः** **पिच्छादिभ्य इलच्** । **पिच्छिलः=पिच्छवान्** ।

११८५ दन्त उन्नत उरच् ५ । २ । १०६ । उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य—दन्तुरः । **६ केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५ । २ । १०९ । केशवः, केशी, केशिकः, केशवान् । (अन्ये-**

(विर्चचिता से युक्तः । खुजली या चेचक रोग जिसे हो) वह **पामनः** है । प्रथमान्त-पामन्शब्दात् 'न'प्रत्यये प्रकृति नकार लोपे, पक्षे **पामवान्** (ग० सु०) **कल्याणानि** (शोभनानि) अङ्गानि यस्याः कल्याण विशेषण हो तब प्रथमान्त अङ्गशब्द से **न**-प्रत्यय हो टाप् यथा—**अङ्गना** (सुन्दर अङ्गवाली) न प्रत्यय, टाप् (ग० सु०) **प्रथमान्त लक्ष्मी** शब्द से अकारान्त आदेश और नप्रत्यय हो मत्वर्थ मे लक्ष्मीः अस्य अस्ति । लक्ष्मीया लक्षण जिससे सम्बन्धित हो वह **लक्ष्मणः** लक्ष्मीवाला । प्रथमान्त लक्ष्मीशब्द से मतुप् अर्थ में नप्रत्यय । ईकार को अकार आदेशे, णत्वम् । चकारात् मतुप् । **लक्ष्मीवान्** पिच्छादिगणपठित शब्द से **इलच्** प्रत्यय । पिच्छमस्ति अस्य **पिच्छ शब्दों मयूरपक्ष पर्यायः**) (**पिच्छिलः** पन्थाः) कीचड़मय रास्ता । इससे पिच्छिल-शब्द आर्द्र भूमिका भी वाचक है । उससे इलच् **पिच्छिलः** पक्षे मतुप् **पिच्छवान्** (मोर-पङ्खवाले श्रीरामः) मोरपङ्ख शिरसोहत नीके ।

(**१२८५**) **प्रथमान्त** दन्त शब्द से उन्नत ऊँचे दाँत अर्थ में **उरच्** प्रत्यय उन्नताः दन्ताः (ऊँचे ओठ से न छिपने वाले दाँत हो जिसके) वह **दन्तुरः** । प्रथमान्त दन्त शब्द से उन्नत अर्थ में उरच् । अकारलोपे (६) **केशाद्**=प्रथमान्त केश शब्द से अस्ति अस्य अर्थ में **व** प्रत्यय विकल्प से हो । यद्यपि समर्थानां प्रमाद्वा सूत्र के अधिकार से विकल्प सिद्ध था (अन्यतरस्यां ग्रहण से **इनठन्** का भी समावेश

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भ्योऽपि दृश्यन्ते) मणिवः (अर्णसो लोपश्च) अर्णवः। ७ अत इनि-ठनौ ५। २। ११५। दण्डी, दण्डिकः। ८ व्रीह्यादिभ्यश्च ५। २। ११६। व्रीही, व्रीहिकः। ९ अस्-माया-मेधा-स्रजो विनिः ५। २। १२१। यशस्वी, यशस्वान्। मायावी। मेधावी। स्रग्वी।

हो) यह ज्ञापन किया। इसलिए चार प्रत्यय के उदाहरण—यथा—केशाः सन्ति अस्य। प्रथमान्त केश शब्द से वप्रत्यय होने पर केशवः। इन केशी ठन् इक्, केशिकः मतुप्, मको व आदेश करके केशवान् (वा०) अन्यशब्दों से भी व प्रत्यय देखा जाता है। यथा—मणिः अस्ति अस्य मणिवः (मणिधरनाग) प्रथमान्त मणिशब्दात् मत्वर्थे व। (वा०) प्रथमान्त अर्णस् शब्द से अस्ति अस्य अर्थ में व हो। 'स' का लोप भी अर्णांसि=जलानि सन्ति अस्य (जिसमें अपार जल हों) वह अर्णवः समुद्रः। प्रथमान्त अर्णस् शब्दात् मत्वर्थे व प्रत्ययें प्रअन्य सकारलोपे रुपम् (६) अत=ह्रस्व अकारान्तप्रथमान्त समर्थशब्द से अस्य अस्मिन् अर्थ में इन् और ठन् हों यदा अन्य तरस्यामनुवर्तते तदा मतुबपि। दण्डो अस्यास्ति। इसके पास डण्डा है। दण्डी=दण्डधारी। अदन्त ग्राह्यग्राहकसम्बन्धसमर्थ दण्डशब्दात् अस्य (सम्बन्धित अर्थे) अत इन्ठनौ इति इनि प्रत्यये अन्त्य अलोपे दण्डिन् शब्दात् दण्डी। यदा ठन्प्रत्ययः तदा ठस्य इक् आदेशः अलोपे दण्डिकः, यदा मतुप् तदा दण्डवान्। धनी धनिकः। अर्थी अर्थिकः। शिक्षार्थी, शिक्षार्थिकः। (८) प्रथमान्त समर्थ व्रीहि आदि शब्दों से भी इन् ठन् हो। अदन्त न होने से यह सूत्र पढ़ा। व्रीहयः सन्ति अस्य (बहुतधान हो जिसके) प्रथमान्त आधेयसमर्थ भूमा अर्थ में 'इन्' या ठन् भसंज्ञा अन्त्य इलोपे व्रीहि शब्द से व्रीही। ठस्थाने इक् आदेशे व्रीहिकः (९) अस्=प्रथमान्त अस् अन्त में हो और माया, मेधा, स्रज शब्दों से अस्य अस्मिन् अर्थ में विनि प्रत्यय हो अस्का उदाहरण यशो अस्ति अस्य (कीर्ति है इसका) यशस्वी और (यशवाला) प्रथमान्तयशस् शब्द से सम्बन्धित और आधार अर्थ में अस्मायामेधा सूत्र से विन् यशस्विन् प्रथमायाः एकवचने यशस्वी। पक्षे मतुप् यशस्वत्। नुम, दीर्घादि कार्ये यशस्वान्। यहाँ तसौ मत्वर्थे से भसंज्ञा, जिसकाफल पदनिमित्तक कोई कार्य न होना। माया अस्ति अस्य (छलकपट हो जिसके) मायावी (छली, कपटी) प्रथमान्त सम्बन्धसमर्थमायाशब्दात् 'अस्माया' सूत्रेण विन्। पक्षे मतुप् मायावान्। मेधा=बुद्धिः अस्ति अस्य (धारण करने की शक्ति हो जिसकी। मेधावी=बुद्धिमान् प्रथमान्तधारण समर्थ मेधाशब्द से विन्। पक्षमें मतुप् मेधावान्। स्रग् (माला) अस्ति अस्य स्रग्वी। प्रथमान्त धारण योग्य स्रज् शब्द से विन्। चोः कुः कुत्वेन 'ग' पक्षे मतुप्। स्रग्वान् मतुप् के मको व कुत्वादिः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भिभ्यां च ५ । ३ । ९ । आभ्यां तसिल् स्यात् । परितः=सर्वत इत्यर्थः । अभितः=उभयत इत्यर्थः ।

१२०० सप्तम्यास्त्रल् ५ । ३ । १० । कुत्र यत्र । तत्र । बहुत्र । १ इदमो हः ५ । ३ । ११ । त्रलोऽपवादः । इह । २ किमोऽत् ५ । ३ । १२ । वा-ग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे त्रल् । ३ क्वाति । ७ । २ । १०५ । किमः क्वादेशः स्यादति । क्व, कुत्र । ४ इतराभ्योऽपि

नहीं है । अतः पृथक् विधिः । परिशब्दसे तसिल परितः (सब ओर से) भ्रमति । **अभितः** (दोनों ओरसे) घूमता है । तसिल प्रत्ययको विभक्तिसंज्ञा करके त्यदादीनामः लगता है ।

(१२००) **सप्तमी** अथमें किम् आदि सर्वनामसे त्रलप्रत्यय हो । जिसका (में पैं पर) चिह्न है । आधार अर्थ है । आधारो अधिकरणम् । अधिकरणे सप्तमी, । कस्मिन्देशे **कुत्रः** किसमें, कहाँ पर अर्थः । किं शब्दात् त्रल् । किम्-ङि-त्र । तद्धितान्त प्रा० कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्रेण । सुपोधातुप्रातिपदिकयोः ङेर्लुक् । त्रल्, इत्यस्य विभक्तिसंज्ञा 'कुतिहोः सूत्रेण तादिप्रत्ययपरे किं स्थाने 'कु' आदेशे **कुत्र** निवसन्ति भवन्तः । यस्मिन्स्थाने **यत्र** जिसमें, जहाँपर) अर्थः । **यत् ङि त्रल** । विभक्तिसंज्ञा त्यदादीनामः अत्वे **यत्र** अधीते । तस्मिन्-स्थाने **तत्र** (उस स्थानमें या वहाँ पर) त्रलविभक्ति संज्ञा अत्वंपूर्ववत् । तत्र अध्यापकाः छात्राश्च सन्ति । वहपु इति । **बहुत्र** (वहुतोंमें, अनेकस्थानपर) त्रल् आदि पूर्ववत् । एवं सर्वत्र, उभयत्र आदि : प्रथम तीन शब्द देशके लिए, बहुत, कालके लिए भी प्रयोक्तव्य है ।

(१) **सप्तम्यन्त** इदं शब्द से ह प्रत्यय हो, त्रल्को बाधकर । अस्मिन्देशे **अत्र** (इसमें यहाँ पर) इदम् ङिशब्दात् त्रल-प्राप्ते इदमोहः आदेशे । इदं स्थाने इश् सर्वादेशे रुपम् इह । अस्मिन् एतस्मिन् स्थाने एतद्शब्दसे त्रल् अन् सूत्रसे एतद्के स्थानमें अत्आदेशे **अत्र** (२) **सप्तम्यन्त** किम्शब्दसे अतप्रत्यय हो (त-इत्) तस्य फलं तित्स्वरितम् । (**वाह चछन्दसि**) सूत्रसे 'वा' **अपकृष्यते**=खींचकर लाया गया (उत्तरसूत्रसे आई अनुवृतिअत्तको अपकर्षण कहते हैं ।) इससे अत्-विधान । विकल्पपक्षे त्रल् । (३) **किमशब्दको** क्व-आदेशहो अत्प्र० परे । कस्मिन्देशे इति **क्व, कुत्र** । (किसस्थानमें) कहाँ पर किम् ङि शब्दात् किमो 'अत्' प्रत्यये (क्वाति) सूत्रेण कि स्थाने **क्व** आदेशे क्व+अ अतोगुणे इति पूर्वरुपे । **क्व** विकल्प पक्षे त्रल् । कुतिहोः इति किम् स्थाने कु आदेशे **कुत्र** । कहाँ । पञ्चम्यन्त सप्तम्यन्त शब्दसे तसिल् आदि प्रत्यय कहे गये । अन्य विभक्त्यन्तसे भी त्रल आदि देखे जाते हैं । प्रमाण—

(४) **इतराभ्यः**=पञ्चमी और सप्तमीसे **इतर**=अन्य विभक्त्यन्त शब्दसे भी

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दृश्यन्ते ५ । ३ । १४ । पञ्चमीसप्तमीतरवीभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । तत्र भवन्तम् एवं दीर्घायुः, देवानांप्रियः, आयुष्मान् ।

१२०५ सर्वैकान्य-किं-यत्तद् काले दा ५ । ३ । १५ । सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् । **६ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५ । ३ । ६ ।** दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले-सदा । सर्वदा ।

तसिल् त्रल् आदि प्रत्ययाः **दृश्यन्ते** = दिखाई देते हैं । (वा०) **दृशिग्रहणात्** = सूत्रमें दृश्यन्ते शब्दके ग्रहणसे यह सिद्ध है कि जहाँ **भवत्** आदिका. योग (सम्बन्ध) रहे वहीं विभक्त्यन्त शब्द से **तसिलादि** प्रत्यय हो (दिखाई देना अर्थ हो तभी) यह नियम **दृशिग्रहणसे** निश्चित किया गया । यथा—'स' भवान् (प्रथमान्त शब्द है) भवत्का सम्बन्ध है, अतः सप्तमी पञ्चमीसे भिन्न प्रथमा विभक्त्यन्त (सः) है । जो विभक्ति भवत्में रहेगी, वही तत्मे भी होगी । अतः **तत्**+सुशब्दसे **तसिल** और त्रलप्रत्यय पूज्य अर्थ में होंगे । स-भवान् विग्रह है । तत् शब्द से पूज्य अर्थ में तसिल् । **ततो भवान्** । **तत्रभगवान्** । तं भवन्तं विग्रह होगा (पूज्य आपको), इस अर्थ में तत्+अम् इस द्वितीयान्त शब्द से भवत् के योग में तसिल् । **ततो भवन्तं** त्रल् होगा । तव **तत्रभवन्तं** सिध्यति । एवं आदि पद से दीर्घायुः, देवानां प्रियः, और आयुष्मान् आदि शब्दों के सम्बन्ध में भी त्रल् तसिल हों । यथा—स **दीर्घायुः** । **ततो दीर्घायुः**, **तत्रदीर्घायुः** । स आयुष्मान्, ततो आयुष्मान् तत्र आयुष्मान् । तत्र आयुष्माता भवता भाव्यम् । तत्र दीर्घायुं पृच्छामि ।

(१२०५) **सर्वैक**=सप्तम्यन्त हो, कालवाचक हो, ऐसा सर्व, एक, अन्य, किम् यद् और तद् शब्दों से स्वार्थ में 'दा' प्रत्यय हो । स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः । चूँकि प्रकृतिका काल अर्थ है, इसलिए प्रत्यय का भी काल ही अर्थ होगा । (६) **सर्वस्य 'स'**=दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्ययपरे सर्वशब्द स्थाने **'स'** आदेश विकल्प से हो । सर्वस्मिन् काले **सदा** (सभी समय में) कालवाचक सप्तम्यन्त सर्व शब्द से (सर्वैकान्य) सूत्र से दाप्रत्यय सुपोलुक् **सर्वदा** । प्राग्दिशीय प्रत्ययः दा परे सर्वशब्दस्य **स** आदेशे । पक्षे **सदा** सभी काल में । **एकदा**=एक समय में । अन्यस्मिन्काले **अन्यदा**=अन्य समय में । कालवाची एक या अन्य शब्द से (दा) कस्मिन्काले **कदा** किं+ङि शब्दात् 'सर्वैकान्य' सूत्रेण दा प्रत्यय, तस्य विभक्तिसंज्ञा, प्राग्दिशोविभक्तिः । तस्यफलं किमः क आदेशः । **कदा** तपः करिष्यामि । यस्मिन्काले **यदा** (जिस समय) तस्मिन्काले **तदा** (उस समय) कालवाचक यत् तत् सप्तम्यन्त से **दा** । तस्य विभक्ति संज्ञा । तस्याः फलं त्यदादीनामः अः **यदा तदा** ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भिभ्यां च ५ । ३ । ९ । आभ्यां तसिल् स्यात् । परितः=सर्वत इत्यर्थ । अभितः=उभयत इत्यर्थः ।

१२०० सप्तम्यास्त्रल् ५ । ३ । १० । कुत्र यत्र । तत्र । बहुत्र । १ इदमो हः ५ । ३ । ११ । त्रलोऽपवादः । इह । २ किमोऽत् ५ । ३ । १२ । वा-ग्रहणमपकृष्यते । सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा स्यात् । पक्षे त्रल् । ३ क्वाति । ७ । २ । १०५ । किमः क्वादेशः स्यादति । क्व, कुत्र । ४ इतराभ्योऽपि

नहीं है । अतः पृथक् विधिः । परिशब्दसे तसिल परितः (सब ओर से) भ्रमति । **अभितः** (दोनों ओरसे) घूमता है । तसिल प्रत्ययको विभक्तिसंज्ञा करके त्यदादीनामः लगता है ।

(१२००) **सप्तमी** अथर्में किम् आदि सर्वनामसे त्रलप्रत्यय हो । जिसका (में पैं पर) चिह्न है । आधार अर्थ है । आधारो अधिकरणम् । अधिकरणे सप्तमी, । कस्मिन्देशे **कुत्रः** किसमें, कहाँ पर अर्थः । किं शब्दात् त्रल् । किम्-ङि-त्र । तद्धितान्त प्रा० कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्रेण । सुपोधातुप्रातिपदिकयोः ङेर्लुक् । त्रल्, इत्यस्य विभक्तिसंज्ञा 'कुतिहोः सूत्रेण तादिप्रत्ययपरे किं स्थाने 'कु' आदेशे **कुत्र** निवसन्ति भवन्तः । यस्मिन्स्थाने **यत्र** जिसमें, जहाँपर) अर्थः । **यत् ङि त्रल** । विभक्तिसंज्ञा त्यदादीनामः अत्वे **यत्र** अधीते । तस्मिन्-स्थाने **तत्र** (उस स्थानमें या वहाँ पर) त्रलविभक्ति संज्ञा अत्वंपूर्ववत् । तत्र अध्यापकाः छात्राश्च सन्ति । वहपु इति । **बहुत्र** (वहुतोंमें, अनेकस्थानपर) त्रल् आदि पूर्ववत् । एवं सर्वत्र, उभयत्र आदि : प्रथम तीन शब्द देशके लिए, बहुत, कालके लिए भी प्रयोक्तव्य है ।

(१) **सप्तम्यन्त** इदं शब्द से ह प्रत्यय हो, त्रल्को वाधकर । अस्मिन्देशे **अत्र** (इसमें यहाँ पर) इदम् ङिशब्दात् त्रल-प्राप्ते इदमोहः आदेशे । इदं स्थाने इश् सर्वादेशे रुपम् इह । अस्मिन् एतस्मिन् स्थाने एतद्शब्दसे त्रल् अन् सूत्रसे एतद्के स्थानमें अत्आदेशे **अत्र** (२) **सप्तम्यन्त** किम्शब्दसे अतप्रत्यय हो (त-इत्) तस्य फलं तित्स्वरितम् । (**वाह चछन्दसि**) सूत्रसे 'वा' **अपकृष्यते**=खींचकर लाया गया (उत्तरसूत्रसे आई अनुवृतिअत्तको अपकर्षण कहते हैं ।) इससे अत्-विधान । विकल्पपक्षे त्रल् । (३) **किमशब्दको** क्व-आदेशहो अत्प्र० परे । कस्मिन्देशे इति **क्व, कुत्र** । (किसस्थानमें) कहाँ पर किम् ङि शब्दात् किमो 'अत्' प्रत्यये (क्वाति) सूत्रेण कि स्थाने **क्व** आदेशे क्व+अ अतोगुणे इति पूर्वरुपे । **क्व** विकल्प पक्षे त्रल् । कुतिहोः इति किम् स्थाने कु आदेशे **कुत्र** । कहाँ । पञ्चम्यन्त सप्तम्यन्त शब्दसे तसिल् आदि प्रत्यय कहे गये । अन्य विभक्त्यन्तसे भी त्रल आदि देखे जाते हैं । प्रमाण—

(४) **इतराभ्यः**=पञ्चमी और सप्तमीसे **इतर**=अन्य विभक्त्यन्त शब्दसे भी

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दृश्यन्ते ५ । ३ । १४ । पञ्चमीसप्तमीतरवीभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते । दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव । स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । तत्र भवन्तम् एवं दीर्घायुः, देवानां-प्रियः, आयुष्मान् ।

१२०५ सर्वैकान्य-किं-यत्तद् काले दा ५ । ३ । १५ । सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् । ६ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५ । ३ । ६ । दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात् । सर्वस्मिन् काले-सदा । सर्वदा ।

तसिल् त्रल् आदि प्रत्ययाः **दृश्यन्ते**=दिखाई देते हैं । (वा०) **दृशिग्रहणात्**=सूत्रमें दृश्यन्ते शब्दके ग्रहणसे यह सिद्ध है कि जहाँ **भवत्** आदिका. योग (सम्बन्ध) रहे वहीं विभक्त्यन्त शब्द से **तसिलादि** प्रत्यय हो (दिखाई देना अर्थ हो तभी) यह नियम **दृशिग्रहणसे** निश्चित किया गया । यथा—'स' भवान् (प्रथमान्त शब्द है) भवत्का सम्बन्ध है, अतः सप्तमी पञ्चमीसे भिन्न प्रथमा विभक्त्यन्त (सः) है । जो विभक्ति भवान्में रहेगी, वही तत्मे भी होगी । अतः **तत**+सुशब्दसे **तसिल** और त्रलप्रत्यय पूज्य अर्थ में होंगे । स-भवान् विग्रह है । तत् शब्द से पूज्य अर्थ में तसिल् । **ततो भवान्** । **तत्रभगवान्** । तं भवन्तं विग्रह होगा (पूज्य आपको), इस अर्थ में तत्+अम् इस द्वितीयान्त शब्द से भवत् के योग में तसिल् । **ततो भवन्तं** त्रल् होगा । तव **तत्र-भवन्तं** सिध्यति । एवं आदि पद से दीर्घायुः, देवानां प्रियः, और आयुष्मान् आदि शब्दों के सम्बन्ध में भी त्रल् तसिल हों । यथा—स **दीर्घायुः । ततो दीर्घायुः, तत्रदीर्घायुः** । स आयुष्मान्, ततो आयुष्मान् तत्र आयुष्मान् । तत्र आयुष्माता भवता भाव्यम् । तत्र दीर्घायु पृच्छामि ।

(१२०५) **सर्वैक**=सप्तम्यन्त हो, कालवाचक हो, ऐसा सर्व, एक, अन्य, किम् यद् और तद् शब्दों से स्वार्थ में 'दा' प्रत्यय हो । स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः । चूँकि प्रकृतिका काल अर्थ है, इसलिए प्रत्यय का भी काल ही अर्थ होगा । (६) **सर्वस्य 'स'**=दकारादि प्राग्दिशीय प्रत्ययपरे सर्वशब्द स्थाने **'स'** आदेश विकल्प से हो । सर्वस्मिन् काले **सदा** (सभी समय में) कालवाचक सप्तम्यन्त सर्व शब्द से (सर्वैकान्य) सूत्र से दाप्रत्यय सुपोलुक् **सर्वदा** । प्राग्दिशीय प्रत्ययः दा परे सर्वशब्दस्य **स** आदेशे । पक्षे **सदा** सभी काल में । **एकदा**=एक समय में । अन्यस्मिन्काले **अन्यदा**=अन्य समय में । कालवाची एक या अन्य शब्द से (दा) कस्मिन्काले **कदा** किं+ङि शब्दात् 'सर्वैकान्य' सूत्रेण दा प्रत्यय, तस्य विभक्तिसंज्ञा, प्राग्दिशोविभक्तिः । तस्यफलं किमः क आदेशः । **कदा** तपः करिष्यामि । यस्मिन्काले **यदा** (जिस समय) तस्मिन्काले **तदा** (उस समय) कालवाचक यत् तत् सप्तम्यन्त से **दा** । तस्य विभक्ति संज्ञा । तस्याः फलं त्यदादीनामः अः **यदा तदा** ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अन्यदा। कदा। यदा। तदा। काले किम्-सर्वत्र देशे। ७ इदमो र्हिल् ४।३।१६। सप्तम्यन्तात् काले इत्येव। ८ एतेतौ रथोः ५।३।४। इदम्शब्दस्य एत-इत् इत्यादेशौ स्तौ रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। अस्मिन् काले-एतर्हि। काले किम्-इह देशे। ९ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१। कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा।

१२१० एतदः ५।३।५। एत इत एतौ स्तौ रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये। एतस्मिन्काले-एतर्हि। १ प्रकारवचने थाल् ५।३।२३।

कालेकिम् दा प्रत्यय काल अर्थ में ही क्यों कहा ? इसलिए कि देश अर्थ में दा न हो। सर्वस्मिन्देशे इति **सर्वत्र**। यहाँ दा नहीं हुआ (७) **सप्तम्यन्त** कालवाचक इदम् के स्थान में स्वार्थ में र्हिल् प्रत्यय हो। ल इत्। (८) **एतेतौ**=इदं शब्द के स्थान में एत् और इत् आदेश क्रम से हो) **रथोः**=रेफादिः थकरादिः परे। रेफपर एत्। थ परे इत्। इति विवेकः। वह प्राग्दिशीय विभक्तिसंज्ञक हो। अस्मिन्काले एतर्हि। इसीसमय। अभी। सप्तम्यन्त काल अर्थ में समर्थ इदम् शब्दात् इदमोर्हिल् सूत्रेण शब्दके स्थान में र्हिल् प्रत्यये। ल इत् 'एतेतौरथोः सूत्र से रादिप्रत्ययपरे इदं स्थाने **एत्** आदेशे। इसी अर्थ में **अधुना**। और **इदानीं** भी बनते हैं। जो अधिक प्रसिद्ध हैं। **काले-किम्**=काल अर्थ में र्हिल्प्रत्यय क्यों कहा ? इसलिए कि देशवाचक या देश अर्थ में प्रत्यय न हो। **इहदेशे**। देश अर्थ में विद्यमान इदम् शब्द से केवल 'ह' प्रत्यय हुआ (९) **अनद्यतन**काल में विद्यमान् **किम् यत्** तत् सर्वनाम आदि सप्तम्यन्त शब्द से काल अर्थ में र्हिल्प्रत्ययः। **अन्यतरस्यां**=विकल्प से हो। बीती हुई रात्रिके आधे-भाग के पश्चात् आगामी आधीरात तक का समय अनद्यतनकाल है। इस काल में अंग्रेजी ता० प्रसिद्ध है। इस काल में र्हिल्प्रत्यय हो पक्षे दा भवति। कस्मिन्काले **कदा** किस समय में या कब जगाम। अद्यभिन्नभूतकाल में वर्तमानसप्तम्यन्त किम् शब्द से र्हिल् प्रत्यय, तस्य विभक्तिसंज्ञा। जिसकाफल किं स्थाने क आदेशः। **कर्हि**। पक्षे दा **कदा**। अद्यभिन्नभूतकाल अर्थ में विद्यमान यत्—शब्दात् र्हिल् विभक्ति संज्ञा, त्यदादीनामः अत्वे **र्हि**। पक्षे **यदा**, **तदा**। तस्मिन्काले (उस समय में) अद्यतन भिन्न भूतकालार्थक तद् शब्दात् प्रत्ययौ भवतः **तर्हि तदा** कण्ठो अभवत्।

(१२१०) **एतद्** शब्द के स्थान में एत् और इत् आदेश हो **प्राग्दिशीय** (विभक्तिसंज्ञक) रेफादिप्रत्ययपरे **एतदोः अन्**। का प्रथमयोग (सूत्र) है। एतस्मिन्काले इसी समय अभी, काल अर्थ में समर्थ एतत् शब्दात् अनद्यतने र्हिल् प्रत्यये रादिप्रत्यय परे एतद्स्थाने एत आदेशे **एतर्हि** (१) **इदानीम्** अधुना प्रकार अर्थ में विद्यमान् किम् यत् तत् सर्वनाम आदि शब्द से काले अर्थे थाल् प्रत्ययः। यद्यपि प्रकार शब्द का सादृश्य=समानता तुल्यता आदि अर्थ है तथापि विशेषण, धर्म, भाव सामान्य भेदक (विशेष धर्मको) प्रकार कहते हैं। जैसे—सामान्य रूप से देवदत्त का

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे। तेन प्रकारेण - तथा यथा। २ इदमस्थमुः ५। ३। २४। थालोऽपवादः। (एतदोऽपि वाच्यः) अनेन एतेन वा प्रकारेण—इत्थम्। किमश्च ५। ३। २५। केन प्रकारेण-कथम्।

इति प्राग्दिशीयाः।

ज्ञान है किन्तु उसकी अवस्था के विषय में या पढ़ाई। स्वास्थ्य शिक्षा के विषय में जो जिज्ञासारूप विशेष धर्म है उससे युक्त (विशिष्ट या अवच्छिन्न) देवदत्त के विषय में प्रश्न कथं देवदत्तः (२) शिक्षा स्वास्थ्य, दशा के विषय में किसी ने पूँछा (आप जैसी जानते थे वैसी ही) शिक्षा दशा से युक्त देवदत्त है। इसी उत्तर का बोधक। तथा देवदत्तः। तेनप्रकारेण तथा। जिस प्रकार से थे उसी तरह अब भी है। इस आशय का बोधक थाल्प्रत्यय है। प्रकार अर्थ में विद्यमान किंशब्द से थाल् कथा। केन प्रकारेण। तत्शब्द से थाल तथा (तेन प्रकारेण। विभक्तिसंज्ञा, त्यदादीनामः अ इति विशेषः। तथैव येन प्रकारेण यथा-कथा देवदत्तः यथा-भवता ज्ञातः तथा इदानीमपि (२) प्रकार (वशेषण) अर्थ में समर्थ इदं शब्द से थमुप्रत्यय हो। उइत् (जो मका रक्षक है) थाल बाधा जाता है। (वा०) एतद्शब्द से भी प्रकार अर्थ में थमुहो। अनेन एतेन प्रकारेण (इसप्रकार, विधि से) प्रकार अर्थ में इदम् एतद् शब्द से थमु= थम् थादिप्रत्ययस्य विभक्तिसंज्ञा। एतैतौ रथोः सूत्रसे इदं स्थाने इत् आदेश एतदः सूत्रेण एतद्स्थाने इत् आदेश इत्थम् (३) किम्शब्द से भी प्रकार अर्थ में थमु प्रत्यय हो तस्य विभक्तिसंज्ञा। किम्स्थाने क आदेशे कथम्। किस प्रकार। इति प्राग्दिशीयाः तद्धितके कुछ प्रत्ययोको विभक्तिसंज्ञा का प्रकरण समाप्त।

अथ प्रागिवीयाः—इवीयाः=इवे प्रतिकृतौ सूत्रके प्राक् (महले) भवा (होनेवाले) प्रत्यय प्रागिवीय हैं। जैसे—तमप् इष्ठन् तरप् इयसुन् कल्पब्देश्य देशीयर बहुच् क, अकच् डतर डतम् आदि। अतिशीयते=अधिकं भूयते यः सः तस्मिन् अतिशायने इत्यत्र कर्मणि लुट्। अतिशयः=प्रकर्षः उत्कर्षः अधिकता, श्रेष्ठता, आदि फलितो अर्थः अतिशयविशिष्ट अर्थ में वर्तमान प्रथमान्तपद से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हो। स्वं प्रकृतिः तस्य अर्थः स्वार्थः। प्रकृति में अर्थ की अधिकता श्रेष्ठता या विशेषण मान्य है। उसी का उद्दीपक, प्रकाशक, तमप् और इष्ठन् है इन्हीं के संसर्ग से अतिशय अर्थ उद्दीप्त होता है। बहुषु=तुल्यरूपप्रकर्षसम्भवात् जहाँ बहुतों में स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाणकृत समानप्रकर्ष श्रेष्ठता सम्भव हो उनमें (सभी श्रेष्ठों में) अधिकश्रेष्ठ अतिशयप्रकर्षका प्रकाशक तमप् और इष्ठन् प्रत्यय है जहाँ दो समान व्यक्ति में एकका अतिशयित्व विशेषविशेषता व्यक्त करनी हो, वहाँ तरप् और ईयसुन् होते हैं। यथा—अयमेषाम् अतिशयेन आढ्यः। बहुत आढ्यों (धनवानों) के मध्य में कौन सबसे श्रेष्ठ है किसी एक का प्रकर्ष (सर्वश्रेष्ठता) विवक्षित हुई, यथा—अय-

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रागिवीयाः

४ अतिशायने तमबिष्ठनौ ५ । ३ । ५५ । अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः । अयमेषामतिशयेनाढ्यः-आढ्यतमः । लघुतमो-लघिष्ठः ।

१२१५ तिङश्च ५ । ३ । ५६ । तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् । ६ तरप्तमपौ घः १ । १ । २२ । एतौ घसंज्ञौ स्तः । ७ किमेत्तिङव्ययघा दाम्वद्रव्यप्रकर्षे १ । ४ । ११ । किम एदन्तात्तिङोऽव्ययांच्च यो घस्तदन्तादामुः

मपि आढच ' २ अयम् एषाम् अतिशयेन आढचः (यह इन सबों में अधिक धनी (सम्पन्न है) । इस अतिशय अर्थ में वर्तमान प्रथमान्तात् आढच शब्दात् अतिशायने अर्थे **तमप् आढ्यतमः** । धनियों का राजा । प्रकृति का सर्वोत्कर्ष विशिष्ट अर्थ उसी का प्रकाशक बहुतों में एक की विशेषता । अयम् एषामतिशयेन लघुः (यह व्यक्ति इन लोगों में अधिक छोटा हल्का है) **लघुतमः** । **अतिशयन्यून**=हल्का अर्थ में वर्तमान प्रथमान्त लघुशब्दात् अतिशायने सूत्रेण सर्वाधिकलघु अर्थे तमप् लघुतमः । यदा इष्ठन्प्रत्ययः । अजादिप्रत्ययपरे पूर्वस्य भसंज्ञा टेः इति टिलोपः । **तद्धितान्तत्वात्**= विभक्तिकार्ये **लघिष्ठः** । अयमेषाम् अतिशयेन विद्वान् **विद्वत्तमः ह्रस्वतमः, दीर्घतमः, महत्तमः** ।

(१२१५) **तिङन्तसे** भी क्रिया की अधिकता द्योतन के लिए तमप्प्रत्यय । यहाँ अधिकताविशिष्ट क्रियाविशिष्टकर्ता या कर्ताद्वारा क्रिया में अधिककुशलता प्रत्यय का अर्थः । (६) **ऐतौ**=तरप् और तमप्को **घसंज्ञा** हो । (७) **किमेदन्त**= एकारान्त **तिङ**=तिङन्त और अव्यय इनसे परे जो **घः**=घसंज्ञक प्रत्ययः (तरप् और तमप्) **तदन्तात्**=तरप् तमप् अन्त में हो उनसे आमुप्रत्यय हो । **नतुद्रव्य प्रकर्षे**=किसी वस्तुका (उत्कर्ष) श्रेष्ठता सिद्ध होती हो—तब आम्प्रत्यय न हो । उकार उच्चारणार्थकः मका (इत्संज्ञा से) रक्षकः यह प्रत्यय भी अनेक में एकका अतिशयित्व अधिकताका परिचायक है । **किन्तमाम्**=अयमेषाम् अतिशयेन किम् यह इनमें अधिक क्यों-क्यों प्रश्न करता है । यह भी, यह भी । परन्तु यह सबसे अधिक किं किं पृच्छति इति विग्रहे किम्शब्दात् अतिशयार्थकर्किकिम् (प्रश्न) प्रकाशन अर्थ में तमप्प्रत्यय किम्+तम् मकारस्य अनुस्वारे, किमेतिङ् सूत्रेण तमप्प्रत्ययान्त किन्तमशब्दात् आम्-प्रत्यये अन्त्य आकारलोपे रूपम् । तद्धितान्तत्वात् विभक्तिः । स्वरादित्वात् अव्ययसंज्ञा । विभक्तेर्लुक् । **प्राह्णेतमाम्** । अयम् एषामतिशयेन प्राह्णे (यह भी यध्याह्न यह भी, यह तो अतिमध्याह्न है) एदन्त प्राह्णे शब्दात् तमप् आम्प्रत्यय : पूर्ववत् (घकालतनेषु कालनाम्नः । इति सप्तमीका अलुक् अयमेषामतिशयेन पचति । यह इन लोगों में अधिक सुन्दर, स्वादिष्ट, शीघ्र, पकाता है । पचतिशब्दात् अतिशयपाकक्रियाकुशलकर्ता अर्थ में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किन्तमाम्। प्राह्णेतमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः। ८ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७। द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवाद। अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः। लघीयान्। उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः। पटीयांसः। ९ प्रशस्यस्य श्रः ५।३।६०। अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः परतः।

१२२० प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३। इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्।

तिङश्च सूत्रसे तमप् (आम्प्रत्यये) **पचतितमाम्**। सर्वोत्कृष्टपाठकर्ता **पठतितमाम्**। **खादतितमाम्**। **शेतेतमां कुम्भकर्णः**। कटतितमां मघामेघः। उच्चैस्तमाम्। अयमेषामतिशयेन उच्चैः (यह इन लोगों में सबसे ऊँचे पद पर है। **उच्चैस्तमाम्**। अव्यय से तमप्, आम्प्रत्यय। **द्रव्यप्रकर्षेतु**=जहाँ वृक्षआदिवस्तु की सर्वाधिक श्रेष्ठता सिद्ध करनी हो, वहाँ आम् नहीं होता। तमप् हो जाता है। अयमेषामतिशयेन उच्चैः **उच्चैस्तमः** सबसे ऊँचा वृक्ष **उच्चैस्तरः** का भी वही भाव है। **लघुतमा** पिपीलिका। (८) **द्विवचनञ्च**=द्विवचने च विभज्यच, उपपदञ्च, क्रम से द्वन्द्व और कर्मधारय समास। दो अर्थ का बोधक। जिसका विभाग करना हो या समीप में जिसका उच्चारण हुआ हो। उसको क्रम से द्विवचन, विभज्य, और उपपद कहते है। दो के मध्य में एक की अपेक्षा दूसरे को अतिशय उत्कर्ष, सर्वश्रेष्ठ, विशिष्ट अर्थ में विद्यमान धर्म हो और दो में एकका विभाग करना हो, अथवा उपपद के धर्म वाचक शब्द से (सुबन्ततिङन्त से) **एतौ**=तरप् ईयसुन्प्रत्यय हो। **पूर्वयोः**= पहले के तरप् और इष्ठन् का **अपवाद**= बाधक है। दो में एकको श्रेष्ठता का प्रकाशकः। अयमपि लघुः ३ (यह भी छोटा यह भी छोटा) किन्तु अयमनयोः अतिशयेन लघुः। यह इन दोनों में सबसे छोटा **लघुतरः**। अतिशय विशिष्ट लघुशब्दात् वर्तमानात् (दोनों में अन्तर) भेदक धर्म वाचक प्रथमान्त लघुशब्द से द्विवचने विभज्य इति तरप् **लघुतरः**। पक्ष में इयसुन् प्रत्यये लघु+इयस्। भसंज्ञकं टेः=उकारस्य-लोपे लघीयस् शब्दात् प्रथमायाः एकवचने नुम् उपधादीर्घे आदिकार्ये **लघीयान्**। **उदीच्याः**=उत्तर के लोग **प्राच्येभ्यः**=दक्षिणके लोगों से **पटुतरः**: (अधिक चतुर हैं) प्राच्येभ्यो अतिशयेन पटवः। यहाँ एकको अपेक्षा दूसरे में अधिक उत्कर्ष व्यक्त करने के लिए अधिक धर्मविशिष्ट वर्तमानपटुशब्द से तरप् बहुवचने पटुतराः पक्षे ईयसुन् टेः (उकारस्य) लोपः **पटीयान्** पटीयान्सौ पटीयान्सः। **कुशलतरः कुशलीयान्सः**। यह **विभज्य का उदाहरण** है। (९) **प्रशस्य** शब्द के स्थान में '**श्र**' आदेश हो अ, जादि=अतिशयार्थक इष्ठन् ईयसुन् प्रत्ययपरे।

(१२२०) **इष्ठादिषु**=इष्ठन् आदि प्रत्ययपरे **एकाच्**=एक अच्वाले शब्दको **प्रकृत्या**=जैसा था वैसा रहे। टिका लोप नहीं होगा। जहाँ इष्ठन् होगा वहाँ बहुतों में

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

श्रेष्ठः, श्रेयान्। १ ज्य च ५।३।६१। प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यात् इष्ठे-यसोः। ज्येष्ठाः। २ ज्यादादीयसः ६।४।१६०। (७२) आदेः परस्य। ज्यायान्। ३ बहोर्लोपो भू च बहोः ६।४।१५८। बहो परयो रमेय-सोर्लोपः स्यात् बहोश्च भूरादेशः। भूमा। भूयान्। ४ इष्ठस्य यिट् च ६।४।१५९। बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च। भूयिष्ठ।

एककी विशेषता। ईयसुन् दो में एककी विशेषता व्यक्त करता है। यथा—श्रेष्ठः अयं श्रेष्ठः अयमपि प्रशंसनीयः अयमपि प्रशंसनीयः किन्तु अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः। सर्वाधिक प्रशंसनीय। **प्रशस्यशब्दात्** अतिशय प्रशंसा अर्थे इष्ठन् प्रशस्य स्थाने आदेशे टिलोपे प्राप्ते, प्रकृत्यैकाच् इति प्रकृतिभावे ततः गुणैकादेशे **श्रेष्ठः**। अयम् अनयोः अति-शयेन प्रशंस्यः इन दोनों में एक अधिक प्रशंसनीय है। केवल ईयसुन् प्रत्यय का परि-वर्तन, शेषकार्य पूर्ववत्। श्रेयस् प्रथमा एकवचन नुमि-उपधादीर्घे आदि **श्रेयान्**। (१) **प्रशस्य** शब्द के स्थान में **ज्य** आदेश हो इष्ठन् और ईयसुन्परे अयमपि प्रशंसनीयः अयमपि। किन्तु अयमेषामतिशयेन **प्रशस्य**=वरिष्ठः प्राथमिकताअर्थ प्रशस्य शब्द को **ज्य** आदेश हो। प्रशस्यस्थाने ज्य आदेशे इष्ठन् प्रत्यये। ज्य+इष्ठन् प्रकृतिभावेन तिलोपो न। किन्तुगुणे एकादेशे **ज्येष्ठः**। यदा ईयसुन्प्रत्ययः तदा+ईयस्। (२) **ज्या** शब्द से परे ईयस् को आकार आदेश हो। क्या-पूरेको आदेश हो जाय? तब बोले (आदेशः **परस्य**) पर (ईयस) के आदि ईकार को आकार हो। अय-मनयोः अतिशयेन प्रशस्यः **ज्यायान्**। प्रशस्यस्थाने ज्य आदेशे। ईयस् इकारस्य आकारे प्रकृतिभावे, सवर्णदीर्घे प्रथमायाः एकवचने **ज्यायान्**। ज्यायान्सी ज्यायान्सः (३) **बहोः**=बहुशब्द से परे **इमनिच्** और इयसुन् प्रत्यय का लोप हो। परश्च (आदेः परस्य) सूत्र से, प्रत्यय के आदि अक्षर का लोप। **भूमा**—बहोर्भावः **बहुत्वं** भूमा=बहुतायत, अधिकता अधिक अर्थवाचक **बहुङस्** शब्दात् भावे अर्थे पृथ्वादिभ्यः इमनिच् प्रत्यये। बहु+इमन् बहुशब्द से परे (आदेः परस्य) नियम से आदि अक्षर इका-लोप। बहुशब्दको भू आदेशे एकवचने **भूमा, भूमानौ, भूमानः**। यदा इयसुनप्रत्ययः बहु+ईयस् अयमनयोः अतिशयेन बहुः (यह इन दोनों में अधिक है) इति तद्धितार्थः। बहोर्लोपः इयसुन्प्रत्ययस्य आदेः अक्षरस्य ईकारस्य लोपे। बहुशब्दस्य (भू) आदेशे एकवचने **भूयान्** भूयांसौ भूयांसः। (४) **बहुशब्द** से परे **इष्ठस्य**= इष्ठन् प्रत्यय का लोप हो, **यिट्**=यि आगम और बहु को भू आदेश हो। पञ्चमी निर्देश से, आदेः परस्य नियमे से, आदि अक्षर इका लोप **भूयिष्ठः**। अयमे॰ बहुः (यह भी अधिक, यह भी, किन्तु यह सबसे अधिक) इति विग्रहे बहुशब्दात् अति-शायने अर्थे **इष्ठन्** उक्तसूत्रेण इष्ठन् के इका लोप, यिट्, भू आदेशे, **भूयिष्ठः**। सर्वाधिकः श्रेष्ठः।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१२२५ विन्मतोर्लुक् ५ । ३ । ६५ । विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी-स्रजिष्ठः । स्रजीयान् अतिशयेन त्वग्वान्-त्वचिष्ठः । त्वचीयान् । ६ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५ । ३ । ६७ । ईषदूनो विद्वान्-विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् । ७ विभाषासुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५ । ३ । ६८ । ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुज्वा स्यात्स च प्रागेव न तु परतः । ईषदूनः पटुर्बहुपटुः ।

(१२२५) विन् और मतुप्प्रत्यय का लुक् हो, इष्ठन् इयसुन् परे । अतिशयेन स्रग्वी (बहुत अधिक मालावाला) स्रजिष्ठः स्रक् अस्ति अस्य इति स्रग्वी । अतिशयिन स्रग्वी (अस्मायामेधास्रजोविनिः) इति विन् स्रग्विन्, अतिशये अर्थे, इष्ठन् (विन्मतोर्लुक्) इति विन प्रत्ययस्य लुक् स्रज इष्ठन् निमित्तापाये नैमित्यकस्यापि अपायः जिसको मानकर पदसंज्ञा हुई थी वही नहीं रहा । तब कुत्वेन गकार भी नहीं रहा । अयमेषामतिशयेन (सबसे बड़ा माली) भत्वेन पदत्वाभावात् न कुत्वम् । द्वयोः अतिशयेन स्रग्वी स्रजियान् स्रग्विन् शब्दात् (दो में एक की श्रेष्ठता का साधक) ईयसुन् प्रत्यये विन् मतोर्लुक् स्रजीयस् एकवचने स्रजीयानिति । एषामतिशयेन त्वग्वान् (ग्राह, सुअर का मजबूत चर्मवाले) त्वचिष्ठः । इष्ठन् प्रत्यये । त्वचीयान् में ईयसुन् परे मतुप् प्रत्यय का विनमतोर्लुक् । पद के अभाव में कुत्व का अभाव । (६) इषदसमाप्तिर्विशिष्ट (थोड़ा हो और समाप्त न हो । इस आशय से विशिष्ट अर्थ में विद्यमान प्रथमान्तशब्द सुबन्त हो, या तिङन्त हो स्वार्थ में कल्पप् देश्य औ देशीयर प्रत्यय हो । इषदुनो विद्वान् थोड़ी विद्या हो, किन्तु असमाप्त हो) अर्थवाचक प्रथमान्तविद्वस् शब्द से स्वार्थ में कल्पप् सुलुक् विद्वस्कल्प । वसुस्रंसु इति सकारस्य दकारेः, चर्त्वं विद्वत्कल्पः । विद्वत्सदृशः । नहिविद्वानित्यर्थः । एषदूनः विद्वान् विद्वस् शब्दात् देश्यप्रत्यय देशीयर (अर्थसमान) । ईषद् न्यूनम् असम्पूर्ण पचति (कम पकाता है) पूर्णपकने नहीं पाता इषद्, असमाप्त अर्थ में समर्थ तिङन्त पचति शब्दात् कल्पप्प्रत्यये । पचतिकल्पं मूढ़कल्पः बुद्धिकल्पः, गच्छतिकल्पं पठतिकल्पम् । (७) विभाषा इषदसमाप्ति=थोड़ा हो समाप्त न हो, ऐसे अर्थविशिष्ट सुबन्त से बहुच्प्रत्यय विकल्प से हो । पुरस्तात्=वह प्रत्यय प्रकृति से पहले हो, पर में न हो । प्रागेव पहले ही, नतुपरतः परे न हो, इषदूनः पटुः (थोड़ा कम चतुर) किन्तु चतुरता समाप्त न हो ऐसे अर्थ विशिष्टसुबन्त से पटुशब्द के पूर्व में बहुच्प्रत्यय बहुपटुः । चतुर बन रहा है । यहाँ प्रा० संज्ञा अर्थवत् सूत्र से होगी क्योंकि यह तद्धितान्त नहीं है । अथवा तद्धितयुक्तः तद्धितः अर्थ हो तब कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से संज्ञा संभव है । यदा बहुच् न भवति तदा कल्पप् पटुकल्पः बहुमूर्खः । मूर्खकल्पः अविवेकी जैसा । बहुविज्ञानं विज्ञानल्पम् । सुपः किम् ? सूत्र में सुप् ग्रहण क्यों किया

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

एटुकल्पः । सुपः किम्-यजतिकल्पम् । ८ प्रागिवात् कः ५ । ३ । ७० । इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक्काधिकारः । ९ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ५ । ३ । ७१ । कापवादः तिङश्चेत्यनुवर्तते । (ओकार-सकार-भकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् ।) अन्यत्र सुबन्तस्य ।

१२३० अज्ञाते ५ । ३ । ७३ । कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः ।

इसलिए कि तिङ से बहुच्तिङ्त्यय न हो, किन्तु कल्पप् यजतिकल्पम् । यज्ञ का आडम्बर करता है । (८) **इवे प्रतिकृतौ**=अग्रिमप्रकरण के प्रथम सूत्र से पहले तक अधिकार: **इवात् प्राक्कः** कत्यय का अधिकार (जो स्वार्थ प्रकृति का अर्थ है । (९) **अव्यय** और **सर्वनाम** से अकच् प्रत्यय हो और वह **टेः प्राक्**=टिके पहले, कप्रत्यय को बाधकर । इसको तद्धितान्त न मानकर तद्धितविशिष्ट कहना उचित है । तिङश्च की अनुवृत्ति आती है । तिङन्त के भी टिके पहले अकच् हो (वा०) **ओकार** सकार भकार आदि में हो ऐसे सुप्परे **सर्वनाम्नाष्टे**=सर्वनामसंज्ञक टिके पहले अकच् हो **अन्यत्र**=ओकार सकार भकारादि सुप्परे न हो । वहाँ सुबन्त को टिके पहले अकच् हो ।

(१२३०) **अज्ञात** अर्थ से विशिष्ट सुबन्त से क हो । अज्ञात अर्थ का निर्देश **कस्यायम्** अश्वः (किसका यह घोड़ा है) अज्ञातो अश्वः जिसके अधिपति का पता न हो । **उच्चकैः** अश्वशब्दात् अज्ञाते अर्थे कप्रत्यये अज्ञातत्व ऊँचाई ज्ञात न हो) अज्ञातविशिष्ट उच्चैः शब्दात् टेः पूर्वम् अकच् । **सर्वकैः** अज्ञातं नीचै नीचकैः निचला भाग अथाह । अज्ञाताः सर्वैः **सर्वकैः** यहाँ अज्ञातविशिष्ट सुबन्त सर्वैः शब्द से ऐ के पहले अव्यय सर्वनाम्नां=सर्वनाम मानकर । अकच् और क प्रत्यय के रुप में अन्तर नहीं । **सवंके**=सर्वे इत्यर्थः । **ओकारपरे उदाहरणम्**—अज्ञातयोः आवयोः युव+ ओस् युष्मद अस्मद सर्वनामके स्थान में युव और आव आदेश । यहाँ ओकार परे टि (अ) के पूर्व अव्यय सर्वनाम्नां वार्तिक से अकच् युवक ओस् एत्वे, अयादेशे, **युवकयोः** (अज्ञात तुम दोनों) **आवकयोः** (वार्तिक न होता तो ओकार से पहले अकच् होकर अनिष्ट होता । सकारादि परे टिके पूर्व अकच् का उदाहरण—**युष्मकासु** युष्मा+सु वार्तिक से सकारादि प्रत्ययपरे सर्वनाम के टिके अकच् हुआ । (अज्ञात तुम लोगों में अज्ञात हम लोगों में) भकारादि परेका **उदाहरण—अज्ञातै युष्माभिः** (अज्ञात तुम से या हम से) अज्ञातत्व विशिष्ट अर्थ से वर्तमान् युष्मद् अस्मद शब्द भकारादि भिस् प्रत्यय परे टिके पूर्व अकच् युष्मकाभिः शब्द में (अज्ञात तुम सबोंने) अर्थ की शक्ति है । चुवन्त के टिको अकच् होता तव उसमें शक्ति स्वीकृत नहीं होती । **सुबन्त टिका उदाहरण**—अज्ञातेन त्वया **त्वयका** । अज्ञातेन मया **मयका** (अज्ञात तुमने, अज्ञात हमने) त्वया मया सुबन्त है । उसके टि (आ) के पूर्व अकच्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वकैः । युष्मकाभिः । युवकयोः । त्वयका ।　१ कुत्सिते ५ । ३ । ७४ । कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः । २ किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५ । ३ । ९५ । अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ।　३ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५ । ३ । ९३ । बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज् वा स्यात् । 'जातिपरिप्रश्ने' इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वाग्रहणमकजर्थम् । यकः । सकः ।

इति प्रागिवीयाः ।

त्वयका (१) **कुत्सिते**=कुत्सा, निन्दा, घृणा, हरामी अर्थ में कुत्सा सञ्जाता अस्येति कुत्सितः निन्दितः घृणितः कुत्साविशिष्ट अर्थवाचकसुबन्त से **स्वार्थ**=कुत्सा अर्थ में क प्रत्यय हो। कुत्सितः निन्दितः अश्वः दुष्टघोड़ा निन्दाविशिष्ट सुबन्त अश्व शब्द से निन्दा अर्थ में क प्रत्यय **अश्वकः** । कुत्सितः पुरुषः **पुरुषकः** । **अन्नकम्** । **विद्यका** (२) द्वयोरेकस्य निर्धारणे, दो व्यक्ति या वस्तु में निर्धारण=निश्चय करना हो। निर्धार्यमाण जिसको निश्चय करना हो उस अर्थ के वाचक किम् यत्तत् शब्द से डतरच् प्रत्यय हो। डच्-इत् । 'अतः' शेष । अनयो 'कः' वैष्णवः' इन दोनों में कौन वैष्णवे है। इस अर्थ का वाचक कतरः शब्द है। दो व्यक्ति में वैष्णव धर्मीका निश्चायक किं शब्द इदं शब्द है। निश्चयकरण का वाचक किम् शब्द से डतरच् ड इत् होने से भ संज्ञा के विनाभी किम् के टि (इम्) का लोप। विभक्तिकार्ये **कतरः यतरः** अनयोर्यः (उर्ध्वपुण्ड्रधारी इन दोनों में जिसका तिलक खड़ा है। यत् शब्दात् डतरच् अनुबन्धलोपे, टिलोपे, **ततरः** अनयोः सः इन दोनों में वही वैष्णव है। तत् शब्दात् डतरच आदिः (३) **बहूनां**=बहुतों के मध्य में किसी एक का निर्धारण (निश्चय करण) हो तब किम्, यत् से डतमच् । अनुबन्ध लोपे 'अतम' इति शेषः (**जाति परिप्रश्ने**) अंश का भाष्य में खण्डन किया गया, क्योंकि सूत्र केवल जातिविषयक निर्धारण में संकुचित सीमित नहीं है। **कतमः** भवतां कठः कठशाखा में आपकी कौन शाखा है। बहुत कठशाखाओं में एकका निश्चय हो रहा है। कठ जाति है क्योंकि कठशाखा के लोग भी कठ ही हैं अतः निर्धारण अर्थ में किम् शब्द से डतमच् । डित् होने से टिका लोप **कतमः** कौन सा। जाति से भिन्न में भी भवतां **कतमः** (कौन) कर्णपुरं गमिष्यति । **कतमः** लौहपुरम् (लाहौर)। येषां यो दक्षः **यतमः** । तेषां सः **ततमो** गमिष्यति । वाग्रहण से कः यः सः भी होंगे। अथवा **वाग्रहणमकजर्थम्** अकच्प्रत्यय के लिए भी है। येषां यः यकः इनमें जो। तेषां सः सकः । एकः शैवः । बहुतों में एक के निर्धारण अर्थ में जब उतमच् नहीं हुआ, तब टिके पूर्व में अकच् । यकद्, तकद्, अत्वं, पूर्वरूपं, सत्वं यकः सक । इति प्रागिवीय प्रत्ययाः पूर्णाः प्राभाकारी-टीकायाम् ।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्वार्थिकाः

४ इवे प्रतिकृतौ ५ । ३ । ९६ । कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिरश्वकः । (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्) अश्वकः

१२३५ तत्प्रकृतवचने मयट् ५ । ४ । २१ । प्राचुर्येण प्रस्तुतं=प्रकृतं तस्य वचनं=प्रतिपादनम् । भावे अधिकरणे वा ल्युट् । "आद्ये प्रकृतमन्नम्-

---

अथस्वार्थिकाः एत्वं (प्रकृतिः) तस्य अर्थः स्वार्थं, स्वार्थेभवाः स्वार्थिकाः । प्रकृति के अर्थ में होने वाले प्रत्यय का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं । (४) इवे=इवका सादृश्य (समानता चन्द्र के समान मुख) जैसा ही अर्थ है । चन्द्रवन्मुखम् । इव (सदृश) अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो, प्रतिकृतौ=मूर्ति चित्र, (मृदादि निर्मिता प्रतिमा) फोटो अर्थ हो तब जहाँ इव शब्द रहे वहाँ उपमान उपमेय भाव अवश्य रहे । हस्तिनी इव महिषी गच्छति । हथिनी की तरह रानी, उपमेय है, हस्तिनी उपमान । इसी प्रकार प्रतिकृतिः प्रतिमा, मूर्ति, चित्र, उपमेय उपमातुं योग्यः उपमा के गुण धर्म में समानता के योग्य हो । जिसकी उपमा दी जाय, गुण धर्म की बराबरी की जाय, वह उपमान है । वही गुण धर्म ही कन्प्रत्यय का या प्रकृतिका अर्थ है । विचित्रता यह है कि उपमान से कन् प्रत्यय हो, उससे उपमेय अर्थ खुले । सत्य वस्तु के समान ही मूर्तिमान लगे । सत्य उपमान है । उसका फोटो, नकल, उपमेय प्रतिकृति है । मूर्तिको साक्षात् भगवान् मानना कन् का विशेष अर्थ है यथा—अश्वइव प्रतिकृतिः मूर्तिः, चित्रम्वा वह अश्वकः यह मूर्ति (चित्र) मानो असली घोड़ा है । उत्प्रेक्षा । उपमान-अश्व शब्दात्कन्प्रत्ययः । असली घोड़े की मूर्तिमान् प्रतिकृति छाया । चित्र में सत्यता का आरोप कन् प्रत्यय का अर्थ है । कृष्ण इव प्रतिकृतिः (आकृतिः, चेहरा) कृष्णकः, कुमारी इव वर्तते कुमारिकः । शूद्रइव प्रकृतिः शूद्रकः । ब्राह्मणकः वराह इव प्रतिमा वराहकः । नेतृइव नेतृकः गुरुरिव गुरुकः । पिताइव पितृकः । यहाँ प्रतिकृतिका प्रतिमा के साथ छाया, स्वरुप आकृति, चित्र भी ग्राह्य है । (वा०) सर्व=सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ=प्रातिपदिकार्थ में कन्प्रत्यय हो । अश्वइव अश्वकः । वानर इव वानरकः । रावणइव रावणकः । करपात्रीकः । महाशयकः । शिवकुमारकः । बालशास्त्रीकः । शशिधरकः ।

(१२३५) तत् प्रथमान्तं प्रकृत=प्राचुर्य, अधिकता, वचने=बोधने, प्रकृत वचने अधिक वस्तु, बहुत अधिक अर्थ में वर्तमान समर्थ शक्तिसम्पन्न प्रथमान्त शब्द से स्वार्थ में (प्रकृति के अर्थ में) मयट् प्रत्यय हो । जिससे प्रचुरता, अधिकता, बहुतायत, भाव निकले । यहाँ प्रकृत का प्रस्तुत अर्थ नहीं है किन्तु अधिकता का वचन=बोधन कथन अर्थ है । भाव अथवा अधिकरण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करके

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अन्नमयम्। अपूपमयम्। द्वितीये तु अन्नमयो यज्ञः। अपूपमयं=पर्व। ६ प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८। अण् स्यात्। प्रज्ञ एव-प्राज्ञः। प्राज्ञी स्त्री। दैवतः। बान्धवः। ७ बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।४२। बहूनि ददाति-बहुशः। अल्पशः (आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम्) आदौ-आदितः। मध्यतः। अन्ततः। पार्श्वतः। आकृतिगणोऽयम्। स्वरेण स्वरतः।

वचन शब्द बना। सूत्रका दूसरा अर्थ—प्राचुर्य अर्थ में प्रस्तुत (विद्यमान) अन्नादि-शब्द (प्रथमान्त समर्थ) से अधिकरण अर्थ में मयट् प्रत्यय हो। प्रथम अर्थ का उदाहरण—प्राचुर्येण बाहुल्येन प्रकृतं विद्यमानम् अन्नमयम् (अन्न की ढ़ेर) प्रथमान्त समर्थ प्रचुरता में विद्यमान अन्नशब्द से मयट् प्रत्यय। अन्नकी अधिकता। प्रचुराः अपूपाः अपूपमयम् (मालपूओं की ढ़ेर) प्रथमान्तसमर्थ प्रचुर अर्थ में विद्यमान अपूप शब्द से स्वार्थ में मयट् अपूपमयम्। पूओ की अधिकता तद्धितार्थ है। नपुंसकलिङ्गः। यद्यपि मयट् प्रत्यय स्वार्थिक है अपूपके अर्थ में हुआ। **स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितो लिङ्गवचनानि अनुवर्तन्ते।** स्वार्थिकप्रत्यय प्रकृति के लिङ्ग वचन का आकर्षण करते हैं इस नियम से अपूप पुलिङ्ग है। अपूपमय को भी पुलिङ्ग होना चाहिए। तथापि स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितःलिङ्गवचनानि **अतिक्रमन्ते।** उल्लंघन करते हैं, नपुंसकता उचित है।

द्वितीय अर्थ का उदाहरण—अधिकरणे ल्युट् अधिकरण अर्थ में ल्युट्, आधार अर्थ में वस्तु की प्रचुरता यथा—**प्राचुर्येण** (अधिक मात्रा में) **प्रस्तुतानि** अन्नानि अस्मिन् यज्ञे। बहुत अधिक अन्न भरा हो जिस यज्ञ में वह यज्ञ अन्नमय है। यज्ञ में अन्न की अधिकता तद्धितार्थ है। भाव और अधिकरण भेद से वचन के दो अर्थ हुए। प्राचुर्यार्थ विशिष्टान्नशब्दात् मयट्। पक्षे **अपूपानां प्राचुर्यं अस्मिन्पर्वणि** (मालपूआ की बहुलता जिस त्यौहारमें हो)। अधिकरणे ल्युट् प्राचुर्य विशिष्टात् अपूपशब्दात् अधिकरणे अर्थे मयट् (६) प्रज्ञ आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् हो, प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञ (प्रतिभा, बुद्धि, ज्ञान वाला हो) एव **प्राज्ञः** विद्वान्। प्रज्ञ शब्दात् स्वार्थे अण् आदि वृद्धिः टिड्ढाणञ् सूत्र से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ङीप्। यस्येति अकारलोपे प्राज्ञी (विदुषी स्त्री) देवता एव (वही) **दैवतः**। देवताशब्दात् उक्त सूत्रेण अण् आदि वृद्धिः आलोपे। बन्धुरेव (भाई बन्धु ही) **बान्धवः**। स्वार्थे अण् (बन्धु शब्दात्) आदि वृद्धिः, ओर्गुणः, उकारस्य गुणादिः। प्रकृतिका जो अर्थ है प्रत्यय सहित का भी वही अर्थः (७) बहु अर्थ और अल्प अर्थ में विद्यमान कारक से स्वार्थ में शस् प्रत्यय विकल्प से हो। बहूनि ददाति (बहुत देता है) दान क्रिया का कर्म कारक बहूनि है। बह्वर्थकभी है। स्वार्थ में बहु शब्द से शस् **बहुशः**। अल्पं ददाति इति अल्पशः अल्पार्थक कर्मकारक अल्पशब्दात् शस्। बहुत कम दान करता

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वर्णतः। ८ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०। (अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्) विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्त्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे। ९ अस्य च्वौ ७।४।३२। अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ। वेर्लोपः। च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति। गङ्गीस्यात् (अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्) दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः।

है। न्यूनं ददाति न्यूनशः। (वा०) आद्यादिभ्यः=आदि, इत्यादि शब्दों से सभी विभक्तियों के अर्थ में तसेः=तस् प्रत्ययका (उपसङ्ख्यानम्) उपयोग करना चाहिए। अयं तसिः सार्वविभक्तिकः 'आदिम्' इति आदित। मध्यात् इति मध्यतः अन्तेन इति अन्ततः। पार्श्वे इति पश्वर्त। वार्तिक से तस् प्रत्यय। यह आद्यादिगण आकृति गण है। तस् प्रत्ययान्तकी आकृति जहाँ दृष्ट हो, वार्तिक से तस् प्रत्यय। यथा— विद्यालयतः, दिल्लीतः, प्रदेशतः, स्परतो वर्णतोवा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स्वरशब्द से तस् वार्तिक के आकृतिगण से प्रादुर्भूत हैं। ये प्रत्यय असार्वविभक्तिक तद्धित अव्यय हैं (८) कृ, भू अस् धातु के (क्रिया) योगे=सम्बन्ध में, सम्पद्यमाने कर्तरि सिद्धि (सम्पत्ति) की क्रिया के कर्ता में) यस्य यो भावी जिसको जो विकार (कार्य) होने वाला है। नभूतः=वह कार्य हुआ नहीं है। तद्भावं वह उस वस्तु में कार्य) को सम्पद्यते =सम्पन्न करे। वहाँ अभूततद्भाव जो न हुआ हो किन्तु हो रहा हो ऐसे अर्थ में वर्तमात सम्पत्ति क्रिया का कर्तृभूत प्रातिपदिक से स्वार्थ में च्विप्रत्यय हो विकल्प से। कृ भू अस् धातु के सम्बन्ध में वार्तिकका अभूत (जो नहीं हुआ था) तद्भाव अर्थ में च्विप्रत्यय कहना चाहिए। वार्तिकका अर्थ सूत्र से जुड़ता है। विकारात्मतां=कार्यरुपतां कार्य के रुप में परिणत होने वाली प्रकृति=समवायिकारण अर्थ में वर्तमान विकार शब्द (कार्यवाचक शब्द से) कर्ता में च्वि हो। इसका सर्वापहारलोप (९) अवर्णस्य=अकार को इकार हो। च्वि-प्रत्ययपरे। वेर्लोपः च्विके-व का 'लोपो व्योर्वलि' से लोप च इत्, इकार उच्चारणार्थक, च्वि प्रत्ययान्त होने से अव्ययसंज्ञा है। कृ भू अस्का क्रमशः उदाहरण—

कृष्णी करोति अकृष्णः (जो काला नही था वह) कृष्णः सम्पद्यते (काला हो रहा है) यहाँ प्रकृतिः कृष्ण है वही विकारात्मा है तं करोति (उसको करता है)। वह कृष्णी करोति है। कृष्ण शब्दात् अभूततद्भावे अर्थे च्विः। कृधातु योगो अस्ति। च्वेः सर्वापहारलोपे 'अस्य च्वौ' इति अकारस्य ईकारे रुपम्। कृष्णलीला में नाटककार जो बालक कृष्ण नहीं है उसे कृष्णभावको सम्पन्न करते हैं। अभिन्न बनाते हैं। यह सम्पूर्ण क्रिया अभूतद्भाव है वही तद्धितार्थ भी है एवं चञ्चलीकरोति। अदोषी-करोति। अब्रह्म, ब्रह्म सम्पद्यते तद्भवति ब्रह्मीभवति। जो ब्रह्म नहीं था वह ब्रह्म बन रहा है। भूधातुयोगे ब्रह्मन् शब्दात् अभूततद्भावे अर्थे च्विः। लुप्तविभक्

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१२४० विभाषा साति: कार्त्स्न्ये ५।४।५२। च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये। १ सात्-पदाद्योः ८।३।१११। सस्य षत्वं न स्यात्। दधि सिञ्चति कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यते अग्निसाद्भवति। २ च्वौ च ७।४।२६। च्वौ च परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति। ३ अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५।४।५७। द्व्यजेवावरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति यावत्तादृशमर्धं यस्य

पदत्वं, ततो नकाराकारलोपौ, अकारस्य ईकारे। अगङ्गा गङ्गा सम्पद्यमाना स्यात् इति गङ्गीस्यात्। गङ्गाशब्दात् अस् धातु योगे स्वार्थे च्विः। अनुबन्धलोपे अस्य च्वौ आकारस्य ईकारे (वा०) अव्ययपदको च्विपरे रहते अकारको ईकार नहीं होता। अदोषा दोषा सम्पद्यमानम् अभूत् (जो रात न हो वह रात हो गया) दिन रात नहीं है परन्तु घनघोर बादल के घेरे से अंधेरा हो गया। वह दोषाभूतमहः। रात जैसा दिन। अत्र इत्वं प्राप्नोति, वार्तिकेन निषिध्यते। अदिवा दिवा सम्पद्यमानम् अभूत (जो दिन नहीं है निमल आकाश में चाँदनी से दिन जेसा हो रही रात्रि भूधातुयोगे दिवा शब्दात् क्वि सम्पूर्ण लोपे। दिवाभूतारात्रि।

(१२४०) विभाषा त्विप्रत्यय के विषय में अभूततद्भाव अर्थ में वर्तमान सम्पत्ति क्रिया कर्तृभूतप्रातिपदिक से साति प्रत्यय हो विकल्प से। कार्त्स्न्ये= सम्पूर्णता अर्थ में कृ भू अस् के योग में (१) सात्—प्रत्यय के सकार और पदाद्योः=पद के आदि सकारको षकार न हो। कृत्स्नं=सम्पूर्ण शस्त्रम्=आयुधं अग्निरुप हो रहा है (अग्निः सम्पद्यते) भू धातु योगे अभूतवद्भावे अर्थे अग्नि शब्दात् सात्प्रत्यये च्विको बाधकर इति सस्थाने षत्वं प्राप्तं। तं साति मत्वा सात्पदाद्योः इति षत्वनिषेधे। पदादिमें षत्वनिषेधका उदाहरण दधिसिञ्चति (दही सींचता है) यहाँ सको आदेशप्रत्ययोः से षत्व प्राप्त था। उसको पदादिमानकर निषेध हुआ। यह प्रासङ्गिक है, प्राकरणिक नहीं। क्रुद्धीभवति (२) च्विपरे पूर्व अण्को दीर्घ हो। अनग्निः सम्पद्यमानो भवति। जो अग्नि नहीं था वह आग बबूला हो रहा है। भूधातुयोगे अभूतपूर्वे अर्थे च्विः। 'च्वौ' इति दीर्घे अग्नीभवति। आग जैसा हो रहा है। क्रोधीभवति। लुब्धीभवती। मुखरीकरोति (३) अव्यक्त जिसध्वनि से कुछ अर्थ स्पष्ट न हो उसे अव्यक्त कहते हैं। जैसे :—नगाड़ा, पटाखा बन्दूक की ध्वनि। उसका अनुकरणात्=द्व्यच् एव (दो अच् या अनेक अच् हो अवर= न्यून है। नतुततो न्यूनं उससे कम (एक अच् या आधा अनेकाच्) उसको डाच् विवक्षिते द्वे बहुलं=डाच् प्रत्ययकी विवक्षा में ही विकल्प से द्वित्व हो। अनुकरण शब्द से कृ भू अस् के योग में डाच् प्रत्यय हो, अनितौ=इति शब्द परे न होने पर (डाच् इत्) 'आ'शेष। (वा०) डाच् प्रत्यय की विवक्षा में द्वित्व हो बहुल करके। अच् हो जिसमें अवर=न्यून (ऐसा न्यूक) अर्धभाग=अर्थात् उससे न्यून हो।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे (डाचि च द्वे बहुलम्) इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् । (नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्) डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्, इति तकारपकारयोः पकारः । पटपटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात्किम्=ईषत्करोति । द्व्यजवरार्धात्किम्-श्रत्करोति । अवरेति किम्-खरटखरटाकरोति । अनितौ किम्-पटिति करोति ।

इति तद्धिताः ।

अनेकाच=सुबन्त शब्द से डाच् भवति । कृ भू अस् का अनुकरण नपुंसक होता है । द्वौ अचौ यस्मिन् द्व्यच् । ऐसा कम से कम अर्धभाग (दोच् हो कम न्यून जिससे ऐसा अर्धभाग हो) जिस समुदाय का, ऐसे समुदाय से डाच् हो । डाच् की विवक्षा में ध्वनि के अनुकरणवाचक शब्द को द्वित्व हो । यथा—पटत्-पटत् करोति इति पटपटा करोति है । ध्वनि का अनुकरण पटत विवक्षा में द्व्यच् अनेकाच् । सुबन्त समुदाय से कृ भू अस् योग में कोई भी लकार हो । तब डाच् हो । तपत्-पटत् अम् डाच् करोति सुब्लुक् पटत्-२ आकरोति । द्विरुक्तको आम्रेडित संज्ञा वार्तिके नित्यमाम्रे० । डाच् परे पूर्वपरयोः स्थाने आम्रेडित परे पूर्व पटत् तप के स्थान में पररूप हो । डित परे पटत् के टिका लोप । **पटपटाकरोति** । सु । अव्यय मानकर सुलोप । अव्यक्त अनुकरण या ? **इषत्करोति** थोड़ा करता है । व्यक्त है द्व्यचः किं श्रत् एकाच् है । अवर-दो अच् से अधिक न हो । **खरट खरटा** करोति । खरटं (अस्य नासिका खरटा करोति) तीन अच् होने पर पररुप न हो । इति प्राभाकर्यां स्त्रार्थिकाः प्रत्ययाः ।

अथस्त्रीप्रत्ययाः—अथ—कृदन्ततद्धित सर्ग समाप्तिके पश्चात्स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि कृदन्त तद्धितान्त शब्दोंसे स्त्रीलिङ्ग अर्थ बोधक (व्यञ्जक टाप् ङीप्ऊङ्, ति आदि) प्रत्यय जुड़ते हैं । अतः अन्य प्रकरणोंका सम्बल उचित होने से स्त्रीप्रत्यय आरम्भ । प्रातिपदिकके अधिकारमें ऊक्तप्रत्यय होंगे । प्रातिपदिक शब्दके ६ अर्थ स्पष्ट हैं । जातिव्यक्ति लिङ्ग, सङ्ख्या-कारकशब्द (समवाय) ये शब्दके वाच्य अर्थ हैं । इन अर्थों में लिङ्ग अर्थ के (पु० स्त्री, नप) तीन लिङ्ग भी वाच्य अर्थ हुए उनमेंसे स्त्रीलिङ्ग अर्थका बोधक, द्योतक व्यञ्जक, प्रकाशक, सभी प्रत्यय होंगे । स्त्रीलिङ्ग बोध्य द्योत्य है । अतः स्त्रीप्रत्य [illegible] स्त्रिय स्त्रीधर्म (लिङ्गं प्रत्याययन्ति, बोधयन्ति प्रकाशयन्ति, ये ते । रजोगुणप्र[illegible] यह लिङ्ग प्रातिपदिक शब्द में है । अतः शब्दनिष्ठधर्म स्त्रीत्व सिद्ध है । यद्यपि ना[illegible] यह ज्ञान सुगभ है, रजस्वला धर्मसे । किन्तु नदी, तटी, आदि जड़ या अमू[illegible] [illegible]ण बोधगम्य नहीं है तथापि सूत्र, शास्त्र, ऋषिवचन प्रमाणसे अनुमेय है[illegible]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

४ स्त्रियाम् ४। १। ३। अधिकारोऽयं समर्थानामिति यावत्।

१२४५ अजाद्यतष्टाप् ४। १। ४। अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् अजा। एडका। अश्वा। चटका।

प्रकृति प्रातिपदिक् है, प्रत्यय स्त्रीधर्मका प्रकाशक ङीप् टाप् आदि है अतः (४) स्त्रियां = स्त्रीलिङ्ग बोधविवक्षायां प्रत्ययाः भवन्ति। यह अधिकार सूत्र है। पूरेप्रकरण में गतिशील है, इसका अधिकार समर्थानां प्रथमाद्वा तक चलेगा। उसके पहले सभी-सूत्रोंमें स्त्रियां (स्त्रीलिङ्गविवक्षायां) अर्थ उपस्थित होगा, सभी प्रत्यय स्त्रित्वका बोध करायेंगे। यद्यपि द्योतिका वाचिका वा स्युः द्वित्वादीनां विभक्तयः। यहाँ विभक्ति-शब्द प्रत्ययमात्रका उपलक्षण है, सभी प्रत्यय द्योतक, व्यञ्जक, प्रकाशक, वाचक होते हैं। जिनके मतमें द्विकं प्रातिपदिकार्थः है। लिङ्गशब्द निष्ठ नहीं है। उनकेमतमें ये प्रत्यय वाचक हैं।

(१२४५) प्रातिपदिकमधिक्रियते। अजादिश्च अच्च तयोः समाहारः अजाद्यत् तस्मात् अजादीनां = अजा—आदि गणपठित प्रातिपदिकसंज्ञक शब्द अतः = अकारान्तस्य अकारान्तप्रातिपदिकशब्द हों, उन शब्दोंका वाच्यं यत्स्त्रीत्वम् अर्थभूत जो स्त्रीलिङ्ग (पांचप्रातिकार्थमें लिङ्ग भी आता है) तत्र = प्रातिपदिकार्थस्त्रीलिङ्ग द्योत्ये = प्रकाश्ये, प्रकाशित करनेके लिए टाप् प्रत्यय हो, ट, प् इत् 'आ' शेष। अजादि प्रातिदिकके उदाहरण—अजत्व जाति विशिष्टा (बकराजातिकी) स्त्री अजा (बकरी)। अज, प्रातिपदिकमें जहाँ अजत्वव्यक्ति अजत्वजाति, पुंस्त्वलिङ्ग, प्रातिपदिकके अर्थ हैं। और अजादिगणका प्रथमशब्द अज है उसका वाच्य स्त्रीलिङ्ग अर्थका प्रकाशक टाप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोपे अज + आ सवर्णदीर्घे प्रथमायाः एकवचने 'सु' सकारस्य अपृक्तसंज्ञा, तम् आबन्तं मत्वा हल्ङ्यादिलोपे रूपम्। अजा। यद्यपि सुकी उत्पत्ति ङ्याप्प्रातिपदिकात से है, तथापि प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं जिसकार्य में प्रातिपदिकका ग्रहण हो वहाँ लिङ्गबोधक प्रत्ययसहितका भी ग्रहण हो। परिभाषाबलसे टाप् विशिष्ट अजाका ग्रहण इष्ट है। अजा = बकराजातिकी स्त्री। यहाँ जाति लक्षणङीप् प्राप्त था उसे बाधकर टाप् हुआ। छागी अर्थः। एडकत्वजाति स्त्री एडका भेड़ा जातिकी स्त्री (जाति लक्षणङीपको बाधकर) अजाद्यत्टाप् स्वादिः (मेढ्रोरभ्रोरणोर्णायुमेषवृष्णयेय एडके) इत्यमरः। अश्वत्व जातिविशिष्टा स्त्री (घोड़ा जातिकी स्त्री) अश्वा, तुरङ्गी, बडवा, घोड़ी। यहाँ भी ङीष्को बाधकर टाप्। (चटकः कलविङ्कः स्यात्) तस्य स्त्री चटका (चिड़िया जातिकी स्त्री)। ...न्दरी, गन्धमूसी, दीर्घ देहातु मूषिका आखुः, मूषकत्व जाति विशिष्टा स्त्री (चुहिया) ...षकशब्दात् प्रातिपदिकात् लिङ्गबोधने अर्थे टाप्, अनुबन्धलोपे, सवर्णदीर्घे, ...दिकार्ये। एषु जाति लक्षणोङीष् बाध्यते, बालावस्थां प्राप्तां स्त्री बाला। यह शब्द

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

मूषिका बाला। वत्सा। होडा। मन्दा। विलाता। मेधा। गङ्गा। शर्वा। इत्यादि: (अजादिगण:)। ६ उगितश्च ४।१।६। उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। भवन्ती। पचन्ती। दीव्यन्ती। ७ टिड्ढाणञ्-द्वयसज्-दघ्नच्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरप: ४।१।१५। अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं तत: स्त्रियां ङीप् स्यात्।

प्रथम वयोवाची अवस्थाबोधक होने से 'वयसि प्रथमे' सूत्रेणङीप् प्राप्त: तं वाधित्वा वालशब्दात् अजाद्यतष्टाप्। अकारान्तप्रातिपदिकं मत्वा तस्य वाच्य: स्त्रीलिङ्गरूपो अर्थ:, तत्र द्योत्येटाप् **बाला** (कन्या) वत्स अवस्थाया: स्त्री **वत्सा** बछडी (प्यारी) होडअवस्थाया: स्त्री होडा भिल्लजाति की लड़की। मन्ददशाया: स्त्री **मन्दा** अप्रौढ़ा। **बिलाता**=नवयौवना, स्त्री इत्यादि अजादिगण पठितशब्द हुए। वयसि प्रथमेका ङीष् वाधा गया। **अकारान्तका** उदाहरणं—मेघशब्दात् मेघप्रातिपदिकका वाच्य स्त्रीलिङ्ग अर्थका व्यञ्जक टाप् **मेधा**=कुशाग्रवुद्धि:। गङ्गत्व त्रिलोकपावनत्व सहितास्त्री **गङ्गा**। सर्वस्य स्त्री, **सर्वा** सर्वशब्दात् टाप् सर्वा नामकी स्त्री। सभी आकारान्तशब्दमें स्त्री अर्थ होता हो तो टाप् समझें। (६) **उगित्** उक्=उ ऋ ऌ अक्षरइत् हो, ऐसे प्रत्यय अन्तमें हों उस प्रातिपदिक शब्दका वाच्य अर्थ स्त्रीलिङ्ग हो उसका बोधक ङीप् हो। ङ् प् इत् 'इ' शेष भवत: स्त्री **भवन्ती** (होती हुई) गच्छति। प्रकाश अर्थ में भाधातु से डवतु=अवत्, डित् से 'आलोप'। यह सर्वनाम भवत् शब्द से ङीप् उगित् मानकर **भवती**। यदा भू धातु से शतृ=अत्। भवत् शब्द भी उगित् अन्त है। उगितश्च सूत्रेण स्त्री विवक्षायां ङीप् शप्श्यनोर्नित्यमिति नुम् (न्) **भवन्ती** व्रजति। एवं शतृ प्रत्ययान्त पचत् शब्दात् स्त्री विवक्षायां ङीप् नुम् पचन्ती (पकाती हुई) खादति। एवं दीव्यत् शब्दात् ङीप् नुम्। **दीव्यन्ती** (खेलती हुई रोदिति) आकारान्त ईकारान्त से 'सु' का हल्ङ्यादि लोपे। **सर्वत्र**=सभी उगित् में ङीप् का विधान। **श्रेयसी**, कल्याण कारिणी, पटीयसी, वहुचतुरी, नेदीयसी (निकटस्था) (७) **टित् अनुपसर्जन** (जो उपसर्जन=गौड, विशेषण, किसी के आधीन, न हो, किन्तु) प्रधान हो, ऐसे **यट्टिदादि** टइत् टित्, ढ, अण्, अञ, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच, तयप् ठक् ठञ् कञ् क्वरप्। **तदन्तम्**=ये प्रत्यय हों अन्त में जिसके **यदन्तम्**=ऐसा जो अकारान्त प्रातिपदिक उसका वाच्य स्त्रीलिङ्ग, अर्थबोधक प्रत्यय हो टित् कृदन्त है, शेष तद्धितान्त हैं। क्रमेण उदाहरणम् कुरुषु चरति या सा कुरुदेश में विचरने वाली **कुरुचरी चरेट:** (कुरुचर टित् है) टिदन्त प्रातिपदिकं कुरुचर, उसका वाच्य स्त्रीलिङ्ग अर्थमें ङीप्। सुलोप आदि कुरुचरी। यस्येति अलोपे। नदट्धातुसे पचादि-अच् होने अदन्तप्रातिपदिक नद, शब्दात् अलोपे **नदी**। वर्षायाम् अव्यक्त शब्दङ्करोति या नदाद्प्रभिन्ना। देवट्, ट इत्, पचाद्यच्, अदन्तं मत्वा ङीप् **देवी** दीव्यति स्वपात्र

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

कुरुचरी । नदट् नदी । देवट् देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी । (नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुण-तलुनानामुपसंख्यानम्)

स्त्रियं जेतुमिच्छति या सा स्त्रीत्व विवक्षायां ङीप् । शोभनी पर्णौं यस्या सा सुपर्णा, सुन्दर पांखवाली **विनता** । तस्या अपत्यं, स्त्रीभ्यो ढक् (एय) आदिवृद्धिः । सौपर्णेयस्य जाति स्त्री सौपर्णेयी (गरुणकी बहन) ढ़ प्रत्यान्त प्रातिपदिकसे ङीप् । अलोपे । इन्द्रो देवता अस्याः **ऐन्द्री**, ऋक् इन्द्र हैं देवता जिस ऋचाके सास्य देवता इति अण् आदि-वृद्धिः । ऐन्द्रप्रातिपदिकात् (अणन्तं मत्वा) उक्तसूत्रेण ङीप्, ऐन्द्री, इन्द्र देवता की दिशा (पूर्व) ऋचा, मन्त्र । **उत्सस्य** = निर्झण्याः (झरनाका) इयम् (सेवार घास आदि अथवा उत्स ऋषि सम्बन्धिनी ऋक् । **औत्सी** । उत्सादिभ्यो अञ् उत्स सम्बन्धी वस्तु अर्थमें अञ्, औत्सः उसमें स्त्री विवक्षा होनेपर ङीप् । अलोपे रुपम् । ऊरू प्रमाणम् अस्याः, जंघातक जलकी मात्रा जिस नदीका है वह **उरुद्वयसी** । उरुशब्दसे द्वयसच् अन्तमानकर ङीप् । इसी अर्थमें दघ्नच्, ङीप् **उरुदघ्नी** (छातीभर पानी-वाला तालाब या नदी) । ये प्रत्यय अन्तमें होनेसे ङीप् अलोपे । पञ्च अवयवयाः यस्या सा **पञ्चतयी** (पाँचसङ्ख्या हो जिस समुदाय में पञ्चन् शब्दात् सङ्ख्यायाः अवयवे तयप्, तयप्प्रत्ययान्त अदन्तप्रातिपक पञ्चतय तस्मात् स्त्रीलिङ्गःबोधक ङीप् । अक्षशब्दात् जयति अर्थे ठक्, इक् अदन्त आक्षिक शब्दात् वाच्यार्थ लिङ्ग बोधने ङीप्, **आक्षिकी** (पाशों से खेलने वाले की स्त्री) आक्षिक्यौ आक्षिक्यः युवत्यः । प्रस्थेन क्रीता **प्रास्थिकी** कञ्चुकी (पसेरी से खरीदी हुई) तेन क्रीतमिति ठञ् । तदन्तप्रातिपदिक् प्रास्थिक शब्दात् ङीप् । लवणंपण्यमस्ति अस्याः (नमक की दूकानवाली) **लावणिकी** । तदस्य पण्यं, (विक्रेता अर्थ में) ठञ् (प्रत्ययान्त) लावणिकशब्दात् ङीप् भसंज्ञायां अलोपे । **यादृशी** यत्पूर्वक दृशधातोः त्यदादिषु दृशोः इति कञ् 'आ' सर्वनाम्नः इति यत् शब्दस्य आकारान्तादेशे, सवर्णदीर्घे, कञ्प्रत्ययान्तयादृश, शब्दात् ङीप् **यादृशी** (जैसी) तादृशी (तैसी) **इत्वरी** = एति गच्छति स्वेच्छाचारिणी इण्गतौ धातो क्वरप् इ + वर ह्रस्वस्य तुक्, क्वरप्प्रत्ययान्त इत्वर शब्दात् ङीप् लोपे । (वा) **नञ् स्नञ् ईकक्, ख्युन्** ये प्रत्यय अन्त में हों और **तरुण तलुन**, इन प्राति० से स्त्रित्वविवक्षा में ङीप् कहना चाहिए । स्त्रियाः अपत्यं स्त्री, **स्त्रैणी** । अथवा स्त्रैणस्य स्त्री । स्त्री के वशीभूत (भार्याभक्तः) पुरुषः स्त्रैणः उसकी स्त्री अर्थ में 'स्त्री पुंसाभ्यां' सूत्रेसे नञ्, आदिवृद्धिः, णत्वं, स्त्रैणशब्दात् योगे (स्त्री विवक्षायां) ङीप् वार्तिकेन । एवं पुंसो अपत्यं स्त्री **पौस्नी**, स्नम् प्रत्ययान्त पौस्नशब्दात् ङीप् । शक्तिः प्रहरणम् अस्याः शक्तिनामक अस्त्र का प्रहार विषय है जिसका वह स्त्री शक्तियष्ट्योः ईकक् प्रत्यये आदि वृद्धिः शाक्तिक् ।

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुनी । ८ यञश्च ४ । १ । १६ । यञन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । अकारलोपे कृते । ९ हलस्तद्धितस्य ६ । ४ । १५० । हलः परस्य तद्धित-यकारस्योपधाभूतस्य लोप ईकारे परे । गार्गी ।

१२५० प्राचां ष्फ तद्धितः ४ । १ । १७ । यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः । १ षिद्गौरादिभ्यश्च ४ । १ । ४१ । षिद्भ्यो गौरादि-

---

शब्दात् ङीप् लोपे । शाक्तिकी (**चण्डिका**) यष्टिः प्रहरणम् अस्याः छड़ी है प्रहारका साधन इसका । यष्टिशब्दात् शक्तियष्ट्योरीकक् प्रहरणम् अर्थे । आदिवृद्धिः अन्त्य इकार लोपे याष्टीकशब्दात् वार्तिकेन ङीप् अकारलोपे, **याष्टिकी** अप्सरा । अनाढ्य (निर्धनिनम्) आढ्यं कमधनवान को बहुतधनवान् बनाने वाली आढ्यङ्करणी आढ्य पूर्वक कृधातोः आढ्य, सुभग, स्थूल पलित, नग्नान्ध प्रियेषु इति करणे अर्थे ख्युन्=यु तस्य 'अन' आदेशे णत्वे गुणादेशे आढ्य+करण अरुर्द्विषद-जन्तस्य मुम् (म्) आगमे, अनुस्वारे परसवर्णे, णत्वे, वार्तिकेन ङीप्, यस्येति च अलोपे । तरुणत्ववयोविशिष्टा स्त्री **तरुणी** । अथवा उन्नतौ यौवनवयोवाचिनौ । तरुणीतलुनीशब्दौ तरुण-तलुन शब्दात् वार्तिकेन ङीप् सभी स्त्रीप्रत्यय प्रायः अजादि हैं वहाँ वहाँ भसंज्ञा और इकारलोप न भूले । (८) **यञश्च**—यञप्रत्ययान्त शब्दका वाच्यस्त्रीलिङ्गः, उसका बोधक ङीप् हो, यस्येतिच सूत्र से अकारलोप करने पर । (९) हल् से परे **तद्धितस्य**=तद्धित प्रत्यय के उपधाभूत यका लोप हो, ईकार परे । गर्गस्य स्त्री अथवा गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री गर्गके बंशपरम्परा की स्त्री अर्थ में गर्गादिभ्यो यञ् । गोत्र अर्थ में यञ् कृते, अन्त्य अलोपे, यञन्तगार्ग्य शब्द से यञश्च सूत्र से ङीप् गार्ग्य+ई आलोपे हलस्तद्धितस्य हल से परे तद्धित प्रत्यय के यकार लोपे **गार्गी** कन्या ।

(१२५०) **प्राचां**=प्राचीनों के मत में यञन्तगार्ग्य शब्द से ष्फप्रत्यय विकल्प से हो, उसकी तद्धितसंज्ञा हो । जिसका फल प्रा० संज्ञा होना । गार्ग्य+ष्फ, षः प्रत्ययस्य इति षकारलोपे आयनेयी—सूत्रेण फस्थाने 'आयन' आदेशे णत्वे गार्ग्यायण ततः (१) **षिद्**=ष इत् हो और **गौर** आदि गण में पठित हो, ऐसे शब्द से ङीष् हो (ङ् ष् इत् 'ई' शेष) ङीप् और ङीष् के रूप में भेद नहीं । किन्तु स्वर में पित् (अनुदात्त), ङीष् (उदात्त) होता है । ष्फ प्रत्यय होने से षित् जिसका फ... षिद्गौरादिभ्यश्चसे ङीष् । **गार्ग्यायणी** (गर्गगोत्र की औरत) नर्तनशीला नर्त... (नाचने वाली) नृती गात्रविक्षेपे (शरीर से हावभावप्रदर्शन कला) अर्थ में शिल्पि... निष्वुन्=वु, अक् आदेश, नर्तक । (व्यवसाय की दृष्टि से नृत्यकला में कुशल) ... भी षिद्गौरादिभ्यश्च सूत्र से ङीष्, यस्येतिच अन्त्य अलोपे, **नर्तकी** । गणिका (घर की स...

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

भ्यश्च ङीष् स्यात्। गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी। (आमनडुहः स्त्रियां वा) अनड्वाही, अनडुही। आकृतिगणोऽयम्। २ वयसि प्रथमे ४। १। २०। प्रथम-वयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी। ३ द्विगोः ४। १। २१। अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् स्यात्। त्रिलोकी। अजादित्वात्त्रिफला। त्र्यनीका=सेना। ४ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४। १। ३९।

घर में नाचे वह नर्तकी नहीं है। गौरवर्ण विशिष्टा स्त्री गौरी (गौराङ्गवाली) गौरादिगणपठित गौर शब्दात् सूत्र से ङीष्, अलोपे, गौरी। **अष्टवर्षा भवेत् गौरी, नववर्षातु, रोहिणी, दशवर्षाभवेत् कन्या, अत उर्ध्वं रजस्वला।** (वा०) **अनः** शकटं वहति या सा गौरादिगण पठित अनडुहशब्दात् स्त्रीवोधविवक्षायां ङीष् अनडुह ई। आमनडुहस्त्रियां वा वाच्यः इति वार्तिकेन स्त्रीप्रत्ययविवक्षायां आम्प्रत्ययो विकल्पेन वक्तव्यः। आम् होने पर यण् अनड्वाही। यदा आम्न, तदा अनडुही। गौरादिगण आकृतिगण है। ङीपकी आकृति से गण का ज्ञान करे। (२) **वयसि** =पहली अवस्था के वाचक अदन्तप्रातिपदिक से वाच्य स्त्रीलिङ्ग अर्थ का प्रकाशक ङीष् हो। यहाँ प्रथम शब्द अन्तिम वय को रोकता है। अर्थात् **वार्धक्य**=वृद्धावस्था में ङीप् का विधान है। **कौमारं पञ्चमाब्दान्तं, पौगण्डं दशमावधि। कैशोरमापञ्चदशाद् यौवनंतु ततः परम्।** पाँच वर्ष तक कुमार, दस वर्ष तक पौगण्ड, १५ तक कैशोर, उसके बाद जवानी। कौमार, यौवन, वृद्धत्व-भेदात् त्रीणि वयांसि। आयूंषिचतुर्भागैः, चत्वारि वा, यौवन से पहली अवस्था को वय कहते हैं। वयस्यचरमे वार्तिक बल से वृद्धावस्था को छोड़कर सर्वत्रैव ङीप् इष्टः। कुमारत्व वयोविशिष्टा स्त्री **कुमारी** (अविवाहिता लड़की) प्रथम अवस्थावाचक कुमार शब्दात् वयसि प्रथमे सूत्रेण ङीप्, भसंज्ञा, अलोपे। (वधूट चिरन्ट शब्दौ यौवनवाचिनौ) [illegible]स्मात् ङीप् **वधूटी, चिरन्टी।** (३) **अदन्त द्विगु** समास से ङीप् हो। त्रयाणां [illegible]णां समाहारः (तीनों लोकों का समुदाय) सङ्ख्या पूर्वो द्विगुः, द्विगुसमासे [illegible]न्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः। द्विगुसमास के अन्त में अकारान्त पद हो [illegible] स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय इष्ट है। द्विगोः सूत्र से ङीप् अकारलोपे **त्रिलोकी। अजादि**[illegible]दिगण पठित मानकर अजाद्यतष्टाप्। त्रयाणां, फलानां समाहारः [illegible] वहेरी का मिलित चूर्ण) त्रिफला टाप्। त्रयाणाम् अनीकानां समा[illegible] जल सेनाओं का समाहार=समुदाय ही **त्र्यनीका।** अजादिगण [illegible]र त्रिभुवनं, पञ्चपात्रं, चतुर्युगमित्यादावपि [illegible]र्तिकेन स्त्रीत्वविवक्षायाः निषेधात्। [illegible] वर्णवाची जो अनदात्त[illegible]

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा ङीप् तकारस्य नकारादेशश्च । एता, एनी । रोहिता, रोहिणी ।

१२५५ वोतो गुणवचनात् ४ । १ । ४४ । उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीप् स्यात् । मृद्वी, मृदुः । **६ बह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ४५ ।** एभ्यो वा ङीष स्यात् । बह्वी, बहुः, (कृदिकारादक्तिन) रात्रिः, रात्री । (सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके) शकटी, शकटिः । **७ पुंयोगादाख्यायाम् ४ ।**

जिसके तदन्तात्=वैसा शब्द अन्त में हो अनुपसर्जनात्=उपसर्जन=विशेषण न हो, ऐसे प्रतिपदिक से विकल्प से ङीप् हो 'त' के स्थान में 'न' आदेश भी हो । एतत्वगुण विशिष्टा स्त्री (चित्रं किर्मीरकल्माषं सवलैताश्च कर्बुरे) विचित्रवर्णवाची एत्त शब्दः अनुदात्तान्तः तणतिनितान्तानाम् आदिः उदान्तः अन्त्य अकारो अनुदान्तः । अनुपसर्जन=अविशेषण भी है, उपधा में तकार है, अतः वर्णादनुदात्त सूत्रेण ङीष्, तकारस्य नकारे, एनी सु तस्य हल्ङ्यादिलोपे, ङीप् । अभावपक्षे टाप् एता (चितकबरी हरिणी) रोहितत्वगुणविशिष्टा स्त्री **रोहिणी** (रोहितो लोहितो रक्तः इत्यमरः) लाल रङ्ग वाली रक्तवर्णवाची अनुदात्तान्त,-तोपध,-अनुपसर्जनप्रातिपदिकरोहित शब्दात् ङीष् । तकारस्य नकारे णत्वे । पक्षे **रोहिता गौः** ।

(१२५५) **वोत** वा, उत् इतिच्छेदः ।=उकारान्त हो, गुणवाचक हो, i शब्द से स्त्रीलिङ्ग बोधविवक्षा में ङीष् विकल्प से हो । मृदुत्व गुणविशिष्टा स्त्री (कोमलाङ्गिनी) उकारान्तकोमलतागुणरूप अर्थवाचक मृदुशब्दात् वोतोगुणव- सूत्रेण ङीष् मृदु+ई, उकारस्य यण् **मृद्वी** । यदा न ङीष् तदा मृदु (मुलायम श एवं पटुत्वगुणविशिष्टा स्त्री (चतुराई से भरी हुई) **पट्वी** पटु, । तनुत्व= गुणविशिष्टा स्त्री **तन्वी** । (६) **बह्वादिभ्यः**=बहुआदिगण में पठित शब्द हो । यहाँ बहुशब्द बैपुल्य=अधिक अर्थ कहते हुए एकवचनान्त है यह (एकी आधार) में विद्यमान है । बहुरोदनः, बहुसूपः, बहुज्ञानम्, जैसे- शब्द अधिक अर्थ को कहते हुए बहुवचनान्त रहते हैं । ऐसा यहाँ सङ्ख्या से बहुत्व स्वीकृत है । दो, एक, में असम्भव हैं बहुत्वगुण विशि- बहुशब्दात् ङीष, उकारस्य यण् बह्वी । पक्षे प्रकृतिभावः बहु । जैसा (ग) 'कृद' क्तिन् प्रत्यय के अभाव से... तदन्त शब्द से ङीष् विकल्प से हो । ...को आराम दे रा धातोः ...ी । पक्षे

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ । ४८ । या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री गोपी । (पालकान्तान्न) गोपालिका । अश्वपालिका । ८ प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुपः ७ । ३ । ४४ । प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत् । सर्विका । कारिका । अतः किम्-नौका । प्रत्ययस्थात्किम्-शक्नोतीति शका । असुपः किम—बहुपरि-

---

ङीष् हो इत्यके=ऐसा किसी आचार्य का मत है । इस वार्तिक से अव्युत्पन्न इकारान्त से ङीष् सिद्ध है । शकटी=छोटी गाड़ी, यह इकारान्त है क्तिन् प्रत्यय से भिन्न है, वार्तिक से ङीप्, इलोपे । पक्षे प्रकृतिभावः । (७) पुंयोगात्=पुरुष के योग सम्बन्ध में आख्यायां=प्रसिद्धायां या पुमाख्या जो शब्द पुरुष के अर्थ में प्रसिद्ध हो । पुरुष के सम्बन्ध से स्त्री अर्थ निकलता हो, ऐसे शब्द से ङीष् प्रत्यय । यहाँ योगशब्द से दाम्पत्य सम्बन्ध, जन्यजनकभाव, आदि साधारणसम्बन्ध समझना चाहिए । यथा—गोपशब्दपुलिङ्ग में प्रसिद्ध है, किन्तु गोपस्य स्त्री कहनेपर पतिपत्नीभाव स्पष्ट हो रहा है । वही गोपशब्द स्त्री के लिए भी प्रयुक्त हो रहा है । इस दशा में गोपशब्दात् ङीष् अलोपे गोपी । एकवचने 'सु' तस्य हल्ङ्यादि लोपे । यहाँ पुरुषसम्बन्ध मुख्य है । [illegible]ति नहीं, गोप से सम्बन्ध जोड़नेवाली कोई भी स्त्री गोपी है । इसी प्रकार शूद्रस्य [illegible] शूद्री । वह चाहे जिस जाति की हो । जन्यजनकभाव, सम्बन्ध भी ग्राह्य है । [इ]सलिए केकय, देवक, रेवत, सम्बन्धिकन्या भी केकयी, देवकी, रेवती शब्दों में ङीष् [हु]आ । (वा०) पालक शब्द अन्त में हो और पुंयोग=पुरुष अर्थ कहता हुआ वही [श]ब्द स्त्री अर्थ भी कहे, उस सम्बन्ध में ङीष् हो । गाः पालयतीति गोपालः, स एव [पा]लकः तस्य स्त्री गोपालिका (गाय पालन करने वाले की स्त्री) पालकान्त [पा]लक शब्दात् पुंयोगे अर्थे ङीष् प्राप्तः, पालकान्तान्न इति वर्तिकेन निषेधे । ततः [अजादि]त्वात् टाप् गोपालक आ । (८) प्रत्ययस्थात्=प्रत्यय में रहनेवाला कात्=[ककार] से पूर्वस्य=पूर्व के स्थान में अकारस्य=अकार के स्थान में, इत्व हो आप् [स] आप्=वह टाप सुपः परो न चेत्=उससे परे सुप् न हो तब । कन् प्रत्यय के [पू]र्व में पाल में अ को 'इ' हुआ । गोपालिका । अश्वं पालयतीति अश्वपालकः [illegible] लिक। पुंयोगे ङीष् प्राप्तः वार्तिकेन निषेधे । ततः टाप् इत्वं पूर्ववत् । [illegible]सेवक की स्त्री । गवां पालिका अत्र षष्ठी समास नहीं कर सकते, [illegible] सूत्र से [illegible] । एवं नगरपालिका, राष्ट्रपालिका, ब्रह्माण्ड-[illegible] [illegible]यों को सर्विका कहेंगे । सर्वशब्दात [illegible] [illegible] व के बीच) सर्वकशब्दात् [illegible] अकच् प्रत्यय [illegible] [illegible] [illegible]ती है । [illegible]

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

व्राजका—नगरी (सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः) सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्—(सुर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च) यलोपः। सूरी=कुन्ती। मानुषीयम्। ९ "इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक ४। १। ४९। एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी। (हिमारण्यायोर्महत्त्वे) महद्धिमं=हिमानी, महदरण्यमरण्यानी। (यवा-

---

अक्आदेशे, ऋकारस्य 'आर' वृद्धिः कारकशब्दात् स्त्री विवक्षायां टाप् ककारस्य पूर्वम् अकारस्य इकारे कारिका। अतः किम्=सूत्र में अकार को इकार हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि नौका, यहाँ क के पूर्व में औ को इत्व न हो जाय। प्रत्ययस्थात् किम् ? प्रत्यय का ही ककार हो ऐसा क्यों कहा ? शक्नोति सक्षमो भवति या सा शका समर्थस्त्री। यहाँ शक धातुस्थः ककारः है उसके पूर्व अ को इत्व न हो इसलिए। असुपः किम् ? आप सुपपरक न हो ऐसा क्यों कहा ? बहवः परिव्राजकाः सन्यसिनः यस्यां नगर्यां सा बहुपरिव्रजका नगरी। इस बहुव्रीहि समास में बहुजस् परिव्राजक जस्। दशा में सुपका लुक् हुआ है। उसके पश्चात् बहुपरिव्राजक शब्द से टाप् हुआ। समास होने के पहले जो विभक्ति थी। समास होने पर उसका लोप जो हुआ था उ[illegible] अन्तर्वर्तिनी विभक्ति कहते हैं, उसको प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षण से लायेंगे। तब सुप् प[illegible] मिल जायेगा। और इत्व नहीं होगा। यही असुप् कहने का फल है। (वा०)[illegible] शब्द देवताजाति को स्त्री रूप अर्थ से पुंयोग=पुरुषसम्बन्ध होनेपर चाप्[illegible] प्रत्यय वाच्यः=कहना चाहिए। सूर्यस्य स्त्री देवता इत्यर्थे सूर्यशब्दात् पुंयो[illegible] लिङ्ग विवक्षायां प्राप्तं पुंयोगादाख्याम् इति ङीषं बाधित्वा वार्तिकेन चाप् [illegible] अकारलोपे सूर्या देवतायां किम् ? सूत्र में देवता अर्थ क्यों कहा। इसलिए,[illegible] अर्थ में चाप प्रत्यय न हो। (वा०) सूर्य और अगस्त शब्द के यकार [illegible] छ और ङी प्रत्यय परे सूर्यस्य स्त्री मनुष्य जातीया सूरी (कौन है) [illegible] मानुगी है मनुष्य रूप वाली मनुष्य जाति की स्त्री अर्थ में विद्यमान[illegible] पुंयोगलक्षण् ङीष् अलोपे वार्तिकेन यकारलोपेच। छ परे आगस्तीय[illegible] वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड़ हिम, आरण्य, यव, यवन्, मातुल, आच[illegible] ङीप् हो आनुक=आन आगम भी। कित् होने से अन्त में होत[illegible] इन्द्र की स्त्री को इन्द्राणी कहते हैं इन्द्र [illegible] ङीष उक इत्। इन्द्र आन ई, सवर्णे[illegible] भवानी शंकर[illegible]

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

दोषे) दुष्टो यवो=यवानी । (यवनाल्लिप्याम्) यवनानां लिपिर्यवनानी (मातुलोपाध्याययोरानुग्वा) मातुलानी, मातुली । उपाध्यायानी; उपाध्यायी (आचार्यादणत्वं च) आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी । (अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे) अर्याणी, अर्या । क्षत्रियाणी, क्षत्रिया ।

१२६० क्रीतात् करणपूर्वात् ४ । १ । ५० । क्रीतान्ताददन्तात्

विशालता अर्थ हो । बड़ा जंगल, भारी हिम अर्थ में थोड़ा या छोटा अर्थ हो तब नहीं । महद्हिमं हिमानी अपारबर्फ महद्, अरण्यं अरण्यानी विशाल जंगल । यहाँ हिम और अरण्य शब्द से महत्व, अधिक अर्थ में ङीष् आनुक् हुए । (वा०) यवशब्द से दोष अर्थ में ङीष् आनुक हों । दुष्ट (घुना, सड़ा) जौ (अन्न विशेष) अर्थ में यवशब्दात् ङीष् आनुक (निर्दोष जौ यवानी नहीं होगा) । (वा०) यावनात्= यवनशब्द लिपि अर्थ में वर्तमान हो यभी ङीष् आनुक् हो । यवन (मुसलमान) की लिपि (अक्षर वर्ण) को यवनानी (उर्दू अरबी की लिपि ली जायेगी । यवन की स्त्री नहीं । वहाँ यवनस्य स्त्री यवनी होगा । (वा०) मातुल=मामा, उपाध्याय, गुरु, अध्यापक, इन से आनुक् विकल्प से हो । मातुलस्य स्त्री मातुलानी, (मामी) इस वार्तिक में वाशब्द प्राप्ताप्राप्तविभाषा है । मातुल में आनुक प्राप्त है । उपाध्याय में अप्राप्त है । मातुर्भ्राता मातुलः तस्य स्त्री अर्थे मातुल शब्दात् इन्द्र वरुण इत्यादि सामान्यसूत्रेण ङीष् आनुक् वार्तिकेन विकल्प्यते । उपेत्य अधीते अस्मात् इति उपाध्यायः तस्य स्त्री (इङश्च इति अपादाने घञ्) उपाध्याय शब्दात् अपादाने स्त्रीयामुपसङ्ख्यानम् इति 'वा'ङीष् वार्तिकेन वा आनुक् उपाध्यायानी । आनुक् अभावे उपाध्यायी । ङीष् अभावे उपाध्याया । आचार्यस्य स्त्री इति विग्रहे आचार्य शब्दात् इन्द्र वरुण आदि सूत्रेण पुंयोगेङीष् आनुगाग में अट णत्वे, प्राप्ते (वा०) आचार्य शब्द से ङीष् आनुक हुआ हो तब णत्व नहीं होता । इति निषेध । आचार्यलक्षणम् आचिनोतिच शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि । स्वयमाचरते यस्मात् स्मादाचार्य इष्यते । यह शिष्ट वचन है धर्मशास्त्रेंतु उपनीय यः वेदमध्यापयेद्विजः सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते । या स्त्री स्वयमेव आचार्य गुण सम्पन्ना । जो स्त्री स्वयं पढ़कर आचार्य कक्षा पास कर चुकी हो वह [illegible] है । स्यात् आचार्यापि च स्वतः इत्यमरः । (वा०) अर्य और क्षत्रिय शब्द से [illegible] में ङीष् और आनुकविकल्प से हो । अर्याणी (वैश्य कुल की स्त्री) वार्तिक [illegible] आनुक् । पक्ष में टाप आर्या । यदि पुंयोग में ङीष् हो तब आर्यी । [illegible] स्वयम् अर्या स्यात्), क्षत्रिया क्षत्रियाण्यपि पूर्ववत्सिद्धिः ।

[illegible]) क्रीतात्=क्रीत शब्द अन्त में हो करणपूर्वात्=करण कारक आदि [illegible] स्त्री लिङ्ग विवक्षा में ङीष् हो । वस्त्रेण क्रीता (कपड़े से खरीदी [illegible])

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्। वस्त्रक्रीती। क्वचिन्न-धनक्रीता। १ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४। १। ५४। असंयोगोपसर्जनं यत् स्वाङ्गं

(उपयोगार्थं) वस्त्रकीति। (कर्तृकरणे कृता बहुलं) सूत्र से **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समास वचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः**। इस परिभाषा के बल से सुप् के पहले समास हुआ। वस्त्र क्रीत प्रातिपदिकात् क्रीतान्त—अदन्त करणादि स्त्रित्व विवक्षया मानकर ङीष् हुआ। क्वचिन्न—बहुलग्रहणसे परिभाषा कहीं नहीं भी लगती। सुप् उत्पत्ति के बाद समास होने पर अन्तरङ्ग मानकर टाप् होगा। तब समास करने पर **धनक्रीता** यही बनेगा। अब अकारान्त न मिलने से ङीष् नहीं होगा। धनेन क्रीता धनक्रीता धन से खरीदी गयी स्त्री। (१) **स्वाङ्गात्-असंयोगोपधात**=न संयोगो, असंयोगः। स उपधायां यस्य तत्। संयोगसंज्ञक वर्ण ऊपधा में (अन्त्य अल्का पूर्व वर्ण) न हो **उपसर्जनात्**=अप्रधान, गौड़, विशेषण, परतन्त्र हो, और स्वाङ्गवाचक शब्द हो, **तदन्तात्**=वह शब्द अन्त में ही जिसके ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् विकल्प हो। यद्यपि स्वाङ्ग का अपना अङ्ग अर्थ है। किन्तु परिभाषिक अर्थ सूत्र ग्राह्य है। स्वाङ्गलक्षणं विलक्षणम् (१) **अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं, प्राणिस्थमविकारजम्**। (२) **अतत्स्थं तत्र दृष्टं च** (३) **तेन चेत्तत्तथा युतम्**। जो अद्रव=पिघला तरल, न हो। मूर्तिमत् रूपवान् साकार हो, प्राणी में वर्तमान रहे, अविकारजम्=किसी वस्तु का विकार न हो। इस लक्षण के अनुसार प्राणी का अवयव ही स्वाङ्ग सिद्ध है। **अतत्स्थं**=उसमें उत्पन्न न हो, किन्तु, उसमें दृष्ट हो। इस लक्षण के अनुसार केश आदि, नदी तट या कूड़े में पड़े हों, वे वहाँ उत्पन्न नहीं है किन्तु वहाँ दृष्ट हैं। वे वे भी स्वाङ्ग हैं। इस लक्षण के अनुसार प्राणी के समान मूर्तियों का अङ्ग भी स्वाङ्ग है। यथा—केशान् अतिक्रान्ता **अतिकेशी** मूर्तिः कन्या वा (इतनी काली है कि काले केश का भी अतिक्रमण कर गयी) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया से समास होने पर केश उपसर्जन है, प्राणी में स्थित, उत्पन्न, अद्रव, मूर्तिमान्, किसी अन्य का विकार नहीं (उपसर्जन अन्य में विशेषण) अङ्ग, तदन्त अदन्त, प्रातिपदिक अतिकेश शब्दार्थः। उक्त सूत्रेण ङीष् विकल्पे। यदा न ङीष् तदा टाप्। **अतिकेशा**। स्वादिः। चन्द्र मुखं यस्याः, चन्द्रमा की तरह आह्लादक मुख है जिसका, **चन्द्रमुखी**=मुखश[illegible] उपधा में संयोग नही है अन्यपदार्थ प्रधान बहुव्रीहि में उपसर्जन भी है। प्र[illegible] लक्षण के अनुसार स्वाङ्ग वाची ऐसा मुख शब्दान्त अदन्त प्रातिपदिक च[illegible] शब्दात् ङीष् यस्येति अलोपे। यदा न ङीष् तदा टाप्। **चन्द्रमुखा**। प्रथम उद[illegible] द्वितीय लक्षण का स्पष्ट ज्ञान पड़ता है। **असंयोगोपधात् किम्?** संयोग उपधा में न हो ऐसा क्यों? शोभनौ गुल्फौ यस्या सा। दर्शनीय घुटने है [illegible] शब्दों घुटिका पर्यायः) तद्धि ग्रन्थिः घुटिके गुल्फौ [illegible] शब्द स्वाङ्गवाचक ऊपसर्जन होकर भी ङीष् न हो।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

तदन्तादवन्तात् ङीप् वा स्यात्। केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम्—सुगुल्फा। उपसर्जनात्किम्—सुशिखा। २ न क्रोडादिबह्वचः ४। १। ५६। क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। ३ नखमुखात् संज्ञायाम् ४। १। ५८। न ङीष्। ४ पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः ८। ४। ३। पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायां न तु गकारव्यवधाने। शूर्पणखा। गौरमुखा। संज्ञायां किम्-ताम्रमुखी कन्या।

उपधा में संयोग का होना कहा ल, फ, का संयोग। किन्तु टाप्। उपसर्जनात्किम्? सूत्र में उपसर्जन क्यों कहा? इसलिए कि शोभना शिखा सुशिखा। यहाँ न ङीष्। क्योंकि उपसर्जन (विशेषण) नहीं है। सुन्दर शिखा, ज्योति, शीङ्धातु से ख। ई का ह्रस्व शिख शब्दात् टाप् (२) क्रोडादेः क्रोड आदि नख, खुर गोखा, उखा, शिखा (बाल) शफ् शुक्र इत्यादि शब्द से और वहृवृचः। अनेक ऋचा स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक से ङीष् न हो। कल्याणी क्रोडा यस्या सा। माङ्गलिक गोद, छाती हो जिसका। अश्वानामुरः क्रोडा। शुभ लक्षण वक्षस्थल, (ऐसी घोड़ी) क्रोडा (छाती) स्वाङ्ग, उपसर्जन, संयोगरहित, शब्दस्तदन्त अदन्त प्रातिपदिक कल्याणक्रोड से स्वाङ्गात् ङीष् प्राप्त था, 'नक्रोडा' इति निषेध। किन्तु अतष्टापि रुपम्। यह गण [आ]कृति गण है। रुप देखकर साधनिका अनुमेयः है। शोभने जघने यस्याः। [जि]स स्त्री का जङ्घा सुन्दर सुडौल हो वह सुजघना। अत्र जघनशब्दः स्वाङ्ग-[वा]ची उपसर्जनम्, उपधयां, संयोगरहितः सुजघनशब्दात् ङीष् प्राप्तः। वहु-अचं [त्]वा ङीष् निषेधे। अतष्टाप्। एवं कमले इव नयने यस्या सा कमलनयना। [पद्म]ा इव वदनं (मुखं) यस्या सा पद्मवदना। हस्तिगमना आदि। (३) नख [औ]र मुख इन स्वाङ्गवाची शब्दों से ङीष् न हो संज्ञा में (४) पूर्वपद में स्थित [नि]मित्तात् (कारण से) परे 'न' के स्थान में 'ण' हो संज्ञा अर्थ में। अगः = ग का [व्य]वधान न हो तब सूर्पवत् नखं यस्या सा (सूपकी तरह नखवाली रावण बहन) [शूर्पण]खा, स्वाङ्गवाची उपसर्जन उपधा में संयोगरहितो नखशब्दः। तदन्त को ङीष् [प्राप्त]ः नखमुखात् सूत्रेण निषेधे। अदन्त लक्षण टाप्। शूर्पनखा समानपद न होने से [रषाभ्यां नो णः सम]ानपदे से णत्व न हो सका। तब पूर्वपद शूर्प में स्थित णत्व का निमित्तकारण [र] परे 'न' को 'ण' हुआ। गौरंमुखं यस्या (गोरामुखावली) संज्ञा। यहाँ मुख स्वाङ्गवाची आदि होने से प्राप्त ङीष् का 'नखमुखात् से निषेध तथा (टाप्) [संज्ञा]यां किम्? ङीष् का निवेध, 'संज्ञा में क्यों कहा, ? इसलिए कि ताम्रं (गौरं) [मुखं यस्या] सा ताम्रमुखी कन्या। यहाँ मुख से ङीष् का निषेध न हो। यहसंज्ञा [नहीं है अ]तः स्वाङ्ग लक्षण ङीष्।

CCO. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१२६५ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४ । १ । ६३ । जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात् । तटी । वृषली । कठी । बह्वृची । जातेः किम्–मुण्डा । अस्त्रीविषय किम्–बलाका । अयोपधात्किम्–क्षत्रिया । योपधप्रतिषेधे हय-गवय-मुकय-मनुष्य मत्स्यानामप्रतिषेधः । हयी । गवयी । मुकयी । (१२४३) हलस्तद्धितस्येति यलोपः । मनुषी । (मत्स्यस्य ङ्याम्) यलोप । मत्सी । ६ इतो मनुष्यजातेः ४ ।

(१२६५) जातेः = जातिवाचक शब्द हो, अयोपध = उपधा (अन्त्य अल् का पूर्व वर्ण) यकार न हो, ऐसे अदन्त प्रा० से ङीष् हो । जननात् जायते या 'सा' जातिः । जन्म से जो प्रकट हो । आकृतिग्रहणा जातिः आक्रियते व्या॰त्यते पृथक्करोति । लिङ्गानां च न सर्वभाक् । जो सभी लिङ्गको न धारण करे, सकृदाख्यात निर्ग्राह्या एकबार बोलने से, उससे प्रसिद्ध सम्पूर्णका ग्रहण हो । गोत्रं च चरणैः सह । किसी चरण (शाखा) के साथ गोत्रका होना भी जाति है । जातिवाचकसंज्ञा मनुष्य, पशु तट आदि । ऊपजाति ब्राह्मण आदि । अपत्यप्रत्यय औपगवी । शाखा पढ़ने वाले, जातिवाचक, आकृति मात्र से जातिवाचक संज्ञा तट, नित्य स्त्रीलिङ्ग नहीं । और उपधा में य नहीं है । स्त्रीलिङ्ग विवक्षा में जाति लक्षण ङीष् तटीवृषली, स्त्री, उपजाति वृषल (शूद्र) जाति । एकबार कहने से समस्त शूद्रका ज्ञान । जाति अर्थ में ङीष् । कठी कठेन प्रोक्तम् अधीयाना । कठ गोत्रोत्पन्ना कठ् शाखा को पढ़ने वाली कठ वेद की एक शाखा है) उससे जाति अर्थ बोधक ङीष् । चरण शाखा के गोत्र होने से भी जाति लक्षण सिद्ध है । बह्वृची (शाखा अधीयाना स्त्री) वैदि शाखा बह्वृच् शब्दात् जाति लक्षणङीष् । सूत्र में जाति ग्रहण क्यों किया । इसलि मुण्डा । मुण्डित हुई स्त्री । यहाँ ङीष् न हो जाय क्यों कि वह जाति नहीं है प अस्त्रीविषयात् किं ? नित्य स्त्रीलिङ्ग का विषय न हो, ऐसा क्यों कहा ? बा (बकुला) ङीष् न हो इसलिए । वह नित्य स्त्रीलिङ्ग है वहाँ अदन्त लक्षण ङ बलाका बकपंक्तिः स्यात् बलाका बिसकण्ठिका बलाकामुकी प्रोक्ता बल... । बके अयोपधात् किम् ? 'य' उपधा में न हो, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि क्षत्रिय की स्त्री क्षत्रीया में जाति मानकर ङीष् न हो क्योंकि य, उपधा में है । परन्तु योपध = उपधा में यकारके निषेध से क्षत्रिय की तरह, हयी, गवय, मुकय, म मत्स्य, इनको भी वर्जित न समझे । यहाँ ङीष् होगा ही । हयी (घोड़ी) घोड़ा जातिकी स्त्री । यहाँ निषेध नहीं, किन्तु वार्तिक सहायता से ङीष् । नील गाय, पशु जाति (गो के सदृश) मुकयी । यह भी पशुजातिस्त्री, ङीष् । जाति अर्थ में मनुषी—मनुष्यजातीया स्त्री । मनुष्य शब्दात् वार्ति ङीष् । हलस्तद्धितस्येति अलोपे हलस्तद्धितस्यसे यलोपे । मानुषी (प्रा०) मत ङी ...स्येति अलोपे ... मत्स्य शब्दात् वार्तिक बलेन ङीष् अलोपे ...

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

१ । ३५ । ङीष् । दाक्षी । ७ ऊङुतः ४ । १ । ६६ । उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनःस्त्रियामूङ् स्यात् । कुरूः । अयोपधात्किम्–अध्वर्युर्ब्राह्मणी । ८ पङ्गोश्च ४ । १ । ६८ । पङ्गूः । (श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च) श्वश्रूः । ९ ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४ । १ । ६९ । उपमानवाचि पूर्वपदमुरूत्तपदं यत् प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात् । करभोरूः ।

१२७० संहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च ४ । १ । ७० । अनौपम्यार्थं

इञः=मनुष्य हो, जातिवाचक हो, ईकारान्त हो, ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् । जातेरस्त्री सूत्र अदन्त से ङीष् करता है । ईकारान्त के लिए सूत्रमिदम् । यथा दक्षस्य गोत्रापत्यं कन्या दाक्षिः । दक्ष शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में अत इञ् 'सूत्र से इञ् इकारान्त प्रातिपदिक दाक्षिसे (मनुष्य जाति की स्त्री) अर्थ में ङीष् । यस्येति इकारलोपे दाक्षी । कालीदासः कालस्यापत्यं कालिः मनुष्य जातिकी स्त्री । अर्थ में ङीष् । (७) ऊङुतः = उकारान्त हो अयोपधात्=यउपधा में न हो, मनुष्य जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्री अर्थ बोधक ऊङ् प्रत्यय हो । ङ् इत् कुरूः (कुरुजातिकी स्त्री) कुरुशब्दः उकारान्तः उपधायाँ यकाररहितः, मनुष्यजातिवाचकः प्रातिपदिक कुरुशब्दात् ऊङ् (ऊ) सवर्णेदीर्घे । अत्र 'प्रातिपदिकग्रहणेलिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं । यहाँ ङीप्, आप, प्रातिपदिक, से ही विभक्ति इव आती है । यहाँ परिभाषा से विभक्ति आई । अयोपधात्किम्—य ऊपधा में न हो, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि अध्वर्युः । अध्वर्यु शाखाका अध्ययन करने वाली । (यजुर्वेद ऋत्विग् अध्वर्यु शब्दे ोच्यते) तस्य स्त्रियाँ मुदाहरणं, शाखावाचकः, जातिवाचकः, अध्वर्यु से ऊङ् न हो । क्योंकि य उपधा में है (८) पङ्गोः=ऊकारान्त पङ्गु शब्द से ऊङ् प्रत्यय हो स्त्री अर्थ में । पूर्वसूत्र से ऊङ् प्राप्त नहीं है । क्योंकि ऊकारान्त होने पर भी जातिवाचक नहीं है । लंङड़ी स्त्री । पङ्गु शब्दात् स्त्री अर्थे ऊङ् सवर्णदीर्घे स्वादिः । वा०) स्वशुर शब्द से स्त्री अर्थ में ऊङ् हो, ऊकाराकारलपौ । श से परे 'ऊ' का, [illegible] परे [illegible] का लोप हो । श्वशुरस्य स्त्री अर्थे श्वशुर शब्दात् पुंयोगे ङीषं बाधित्वा [illegible]केन ऊङ उकारस्य अकारस्य च लोपे श्वश्रूः (सास) (९) ऊरूत्तर-[illegible]=उरू शब्द उत्तरपद हो औपम्ये=उपयायां भवम् औपम्यं तस्मिन् । [illegible]मानवाचीशब्द पूर्वपद में हो ऐसे प्राप्रातिपदिक से स्त्री अर्थ में ऊङ् हो । [illegible] इव स्निग्धौ सुन्दरौ मनोहरौ, उरू जघने यस्याः सा । (मणिबन्धात् आक [illegible]करस्य करभो बहिः) हाथ के मणिबन्ध से कानी ऊँगली के बीच कोमल भाग है उसके समान सुन्दर हाथी के बच्चेका सूँड की तरह । पूर्वपद (उपमान (कोमलताधर्म) करभ, उत्तरपद उरुः से ऊङ सवर्णदीर्घ आदिः ।

[illegible]) संहित (सटा हुआ) शफ (खुर) लक्षण (चिह्न) [illegible]

[illegible]पद—उरु उत्तरपद [illegible]

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

सूत्रम्। संहितोरूः शफोरूः। वामोरूः। १ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४। १। ७३। शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचनो ङीन् स्यात्। शार्ङ्गरवी। बैदी। ब्राह्मणी। (नृनरयोर्वृद्धिश्च) नारी। २ यूनस्तिः ४। १। ७७। युवनशब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात्। युवतिः। इति स्त्रीप्रत्ययाः।

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥ १ ॥

इति श्रीवरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता।

मिति। यह सूत्र उपमाका विषय न हो उसके लिए है। पूर्व पद में उपमान, आवश्‍ न हो। संहितौ स्थूलत्वात् संश्लिष्टौ, निविडौ, उरू जघने यस्या सा। मोटाई से चिपके जंघे जिस स्त्री के पूर्वपद संहित (उपमान नहीं है) उत्तरपद उरु प्रातिपदिकसे स्त्री अर्थ में ऊङ् दीर्घादिः संहितोरूः। शफौ खुरौ इव संश्लिष्टौ (जंघोपर खुर का आरोप) ऊङ् आदि। लक्षणौ लक्षणवन्तौ उरु यस्या सा शुभलक्षण वाली। वमौ, सुन्दरौ उरु यस्या सा। सर्वत्र उरूत्तरपदे सति स्त्री अर्थे दीर्घादिः (१) शार्ङ्गरवः इत्यादि शब्द और अञ्का अकारान्तशब्द किन्तु जाति वाचक, प्रातिपदिक से ङीन् प्रत्यय हो ङ्‌न इत् ई-शेष। नित्का फल आदि उदात्त शृङ्गरोः अपत्यं स्त्री, शृङ्गरुः जाति की स्त्री। तस्यापत्यं अण्, आदि वृद्धिः जाति वाचक साङ्गरव शब्दात् ङीन् यस्येति अलोपे। रूपं, बैदी। विदस्य गोत्रापत्यं (विद जाति की सन्तान) विदादिभ्योऽञ् वैदशब्दात् ङीन अलोपे। ब्रा. ब्राह्मणजातिया स्त्री। ब्राह्मणी जातिवाचक ब्राह्मणान्ङीष् प्राप्तः तं बाधित्वा. अलोपे। (ग०स०) नृ और नर शब्दों से स्त्री अर्थ बोधक ङीन् हो। और वृद्धि नारी (नरस्य स्त्री। नुः स्त्री) नर जातीया। नृ या नर शब्दात् जाति वाचक ङीन ऋस्थाने आरवृद्धिः। नृ शब्दे ऋन्नेभ्यो ङीप् (नर) जातिलक्षण ङीष् का बाधक ङीन्। (२) युवन शब्द से स्त्री लिङ्ग बोधकति प्रत्यय हो। यौति 'सह' आत्मानं मिश्री करोति (पति से मिलने वाली) युवती। युवन् शब्द अर्थे तिप्रत्यये स्वादिषु इति पदसंज्ञा नकारलोपे,। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया कार्यम्। युवतीशब्दः दीर्घेकारान्तः रूपं सिद्ध्यति (शतृ =अत उगितश्चेति ङीष्।

टीका लघुकौमुद्याश्छात्राणा मुपकारिका। प्रीत्यैभूयात् शर्वाण्यै शिवश्शन्तनोतु

इति प्रभाकृटीकायां स्त्रीप्रत्ययप्रकरणं समाप्तम्

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

CC0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri